(द्वितीय भाग)

[स्वर यन्त्र के रोग, हृदय के रोग, कुष्ठादि चर्मरोग विकार, रक्तसंस्थान के रोग तथा
क्षुद्र रोगों का विस्तृत सचित्र क्रमबद्ध साहित्य,
श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी आयुर्वेद सूरि द्वारा लिखित—चिकित्सा रहस्य ।]

प्रमुख लेखक एवं विशेष-सम्पादक आयुर्वेद खण्ड

कविराज श्री वी. एस. प्रेमी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य M. A, M. S.
प्राध्यापक—आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बी कालेज, दिल्ली

सह-सम्पादक यूनानी एवं एलोपैथी

कविराज श्री शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि D. I. M. S.
प्राध्यापक—आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज, दिल्ली

होमियोपैथिक

डा० श्री बनारसीदास दीक्षित H. M. D. S.
दीक्षित फार्मेसी, कसौल जि. चम्पारण (बिहार)

सम्पादक

वैद्य श्री देवीशरण गर्ग आयुर्वेदोपाध्याय
वैद्य श्री ज्वालाप्रसाद अग्रवाल D. Sc.
वैद्य श्री दाऊदयाल गर्ग, A., M. B. S.

फरवरी-मार्च

वार्षिक मूल्य ८.५०
इस अङ्क का मूल्य १०.००

आवश्यक सूचना
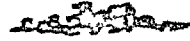
१-सभी ग्राहकों से निवेदन है कि विशेषांक के ऊपर के पेपर को संभाल कर रखें या उस पर लिखा ग्राहक नम्बर तथा पोस्ट आफिस का नम्बर इस विशेषांक के टाइटिल के पृष्ठ २ पर नोट करलें ।

२-भविष्य में पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर पत्र में अवश्य लिख दिया करें ।

३-कोई भी अङ्क मिलने पर देख लिया करें कि उससे पहिले माह का अंक मिला है या नहीं । न मिला हो तो पोस्ट आफिस में तलाश करें और उनके उत्तर के साथ हमको लिखें। पोस्ट व्यय के लिये १० न.प. का टिकट साथ भेजें।

४-धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाने का अवश्य प्रयत्न करें ।

५-ध्यान रहे, यह विशेषांक फरवरी+मार्च २ माह का अंक है।

प्रकाशकीय निवेदन

"चिकित्सा विशेषांक" प्रथम भाग वर्ष १९७० के विशेषांक के रूप में धन्वन्तरि के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। उसे पाठकों ने अत्यधिक पसन्द किया तथा उसकी प्रशस्ति में हमको धन्वन्तरि के अन्य विशेषांकों से कहीं अधिक पत्र प्राप्त हुए। उसी से उत्साहित होकर यह द्वितीय भाग पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। हमको विश्वास है कि पाठक इस विशेषांक को भी प्रथम भाग के समान पसन्द करेंगे तथा इसके अनुभवपूर्ण लेखों तथा प्रयोगों से लाभ उठायेंगे।

चिकित्सा विशेषांक के प्रथम भाग के विषय में अनेक पाठकों ने यह लिखा था कि उसमें प्रकाशित अधिकांश प्रयोग बड़े लम्बे तथा निर्माण प्रक्रिया की दृष्टि से जटिल हैं और उन प्रयोगों को साधारण व्यक्ति निर्माण करने में अपने को असमर्थ पाता है। इस दृष्टि से उन प्रयोगों से लाभ उठाना हर एक के वस की बात नहीं है। इस भावना का आदर करते हुये विशेष सम्पादक श्री प्रेमी जी से विशेष आग्रह किया था कि इस बार विशेषांक में वही प्रयोग जो उपयोगी होने के साथ साथ सरलता से निर्माण किये जा सकें, सङ्कलित किये जावें। हमारा विश्वास है कि इस विशेषांक में प्रकाशित प्रयोगों को पाठक पसन्द करेंगे और उनको निर्माण एवं उपयोग करने में कठिनाई भी अनुभव नहीं करेंगे।

चिकित्सा-विशेषांक प्रथम भाग में प्रयोग सूची प्रकाशित नहीं कर सके थे इसलिये प्रयोगों को विशेषांक में समय-समय पर देखना असुविधा-जनक प्रतीत होता था। इस बार इस कमी को दूर कर दिया है तथा प्रयोग सूची भी दी जा रही है।

विशेष सम्पादक श्री प्रेमी जी द्वारा द्वितीय भाग के लिये प्रस्तुत साहित्य प्रारम्भ में ऐसा अनुमान होता था कि इससे विशेषांक पूर्ण हो जायगा लेकिन जब लगभग ३०० पृष्ठ छप गये तब प्रतीत हुआ कि यह साहित्य ४०० से भी कम पृष्ठों में ही समाप्त हो जायगा श्री प्रेमी जी को इस विषय में पत्र लिखा लेकिन इतना शीघ्र और लेख भेजना सम्भव नहीं हो सका। वहुत कुछ विचार किया लेकिन समस्या का समाधान किस प्रकार किया जाय यह समझ में नहीं आया। स्वर्गीय श्री कृष्ण प्रसाद जी त्रिवेदी जी ने "चिकित्सा रहस्य" पुस्तक लिखी थी जिसका प्रथम भाग प्रकाशित किया जा चुका है। उसी क्रम का एक विशाल साहित्य हमारे पास रखा था, उसे हम पुस्तक रूप में प्रकाशित करना चाहते थे, लेकिन कुछ कारणों से यह सम्भव नहीं हो सका! इस विशेषांक की कमी को पूर्ण करने के लिये इसमें से कुछ अंश प्रकाशित किया जा रहा है। हमारा विश्वास है कि पाठक स्वर्गीय श्री त्रिवेदी जी के इस निबंध को अवश्य पसन्द करेंगे। अभी इस क्रम का श्री त्रिवेदी द्वारा लिखित लगभग ३०० पृष्ठों का साहित्य और रखा है। यदि पाठकों ने पसन्द किया तो हम इसे आगामी विशेषाङ्क में प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे, चिकित्सा रहस्य प्रथम भाग की थोड़ी प्रतियां अभी हमारे पास हैं, धन्वन्तरि के पाठक इसे प्राप्त करना चाहें तो मूल्य ४.५०

धन्वन्तरि

चिकित्सा-विशेषांक (द्वितीय भाग)

की

विषय—सूची

श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी द्वारा लिखित

चिकित्सा रहस्य प्रकरण

सत्रहवां अध्याय

अठारहवां अध्याय

उन्नीसवां अध्याय

भारत-प्रसिद्ध "रसायनशास्त्री" पं० श्यामसुन्दराचार्य जी द्वारा स्थापित
श्यामसुन्दर रसायनशाला, गायघाट वाराणसी के
चिकित्सा एवं स्वास्थ्योपयोगी संग्रहणीय प्रकाशन

* रसायन सार *

रस-रसायनों के निर्माण में शोधन, मारण, जारण आदि का प्रत्यक्ष कर्माभ्यास होना अति आवश्यक है। इस ग्रन्थ में विद्वान लेखक ने इस विषय पर अपने प्रत्यक्ष कर्माभ्यास का सम्पूर्ण अनुभव संस्कृत में पद्यबद्ध कर हिन्दी भाषा टीका सहित प्रस्तुत किया है। श्री गोवर्धन शर्मा छांगणी, वैद्य यादवजी त्रिकमजी आदि ने इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह ग्रन्थ रसायन शास्त्रों का सच्चा सार है। वैद्य एवं छात्र सभी इस एक ही ग्रन्थ से पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं।

पुस्तक का नाम	लेखक	मूल्य
१—रसायनसार :	पं० श्यामसुन्दराचार्य	८.००
२—अनुपान विधि	,,	०.५०
३—अनुभूत योग (प्रथम भाग)	,,	१.००
४—अनुभूत योग (द्वितीय भाग) :	केदारनाथ पाठक	१.००
५—सिद्ध मृत्युञ्जय योग	,,	१.००
६—प्रयोग रत्नावली	,,	२.००
७—भोजन-विधि (पथ्यापथ्य)	,,	२.००
८—आहार-सूत्रावली	,,	०.५०
९—ग्राम्य-चिकित्सा	,,	०.६२
१०—टोटका-विज्ञान (प्रथम भाग)	,,	०.३७
११—आरोग्य लेखाञ्जलि	,,	१.००
१२—देहातियों की तन्दुरुस्ती	,,	०.७५
१३—नीम के उपयोग	,	१.००
१४—मधु के उपयोग	,,	१.००
१५—मट्ठा या छाछ के उपयोग :	प्रवासीलाल वर्मा	१.००
१६—मोटापा कम करने के उपाय :	प्रभुनारायण त्रिपाठी	१.००
१७—स्वास्थ्य और सद्वृत्त :	कविराज अत्रिदेव गुप्त	२.००
१८—व्यायाम और शारीरिक विकास :	अशोककुमारसिंह	२.५०
१९—प्रारम्भिक स्वास्थ्य :	गौरीशंकर गुप्त	०.३७
२०—अनुभूत योग (तृ.भाग) :	वैद्यराज उमेदीलाल वैश्य	१.००
२१— ,, (चतुर्थ भाग)	,,	१.००
२२— ,, (पंचम भाग)	,,	१.००
२३—मौसमी सात बीमारियां	,,	०.३०
२४—ऋतुयें और स्वास्थ्य	,,	०.६०
२५—हल्दी के उपयोग	,,	०.३०
२६—लहसुन के उपयोग	,,	०.३०
२७—सौंफ के उपयोग	,,	०.३०
२८—अजवाइन के उपयोग	,,	०.३०
२९—अदरख के उपयोग	,,	०.३०
३०—तेजपात के उपयोग	,,	०.३०

पुस्तक का नाम	लेखक	मूल्य
३१—मेथी के उपयोग :	वैद्यराज उमेदीलाल वैश्य	०.३०
३२—हींग के उपयोग	,,	०.३०
३३—जीरा के उपयोग	,,	०.३०
३४—धनियां के उपयोग	,,	०.३०
३५—राई के उपयोग	,,	०.३०
३६—मगरैला के उपयोग	,,	०.३०
३७—प्याज के उपयोग	,,	०.३०
३८—नीबू के उपयोग	,,	०.३०
३९—आंवला के उपयोग	,,	०.३०
४०—गूलर के उपयोग	,,	०.३०
४१—मसालों के उपयोग	,,	५.००
[सं० २५ से सं० ४० तक की १६ पुस्तकें सजिल्द]		
४२—स्वच्छता और स्वास्थ्य	,,	०.२५
४३—व्यायाम और स्वास्थ्य	,,	०.२५
४४—भोजन और स्वास्थ्य	,,	०.२५
४५—मनोवेग और स्वास्थ्य	,,	०.३५
४६—मादक वस्तुयें और स्वास्थ्य	,,	५.२५
४७—आचार-विचार और स्वास्थ्य	,,	०.२५
४८—स्वास्थ्य-साधन	,,	१.७५
[सं० ४२ से सं० ४७ तक की ६ पुस्तकें सजिल्द]		

आगामी प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक
१—प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान	,,
२—तुलसी के उपयोग	,,
३—आम के उपयोग	,,
४—आरोग्य लोकोक्तियां	,,
५—टोटका विज्ञान [द्वितीय भाग]	,,
६—ग्रामोपयोगी नुस्खे	,,
७—प्रसूता और शिशु परिचर्या	,,
८—रसायनसार परिशिष्ट	,,

पुस्तकें मंगाने का पता— १. श्यामसुन्दर रसायनशाला गायघाट वाराणसी-१
२. धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ [अलीगढ़] उ. प्र.

धन्वन्तरि के ग्राहक

बनने के नियम

१–धन्वन्तरि का वार्षिक-शुल्क पोस्ट व्यय सहित ८.५० है। विशाल-विशेषांक ग्लेज कागज पर छपा प्राप्त करना चाहें तो वार्षिक-शुल्क १०.५० देना होगा।

२–धन्वन्तरि के ग्राहकों को हर साल एक विशाल-विशेषांक तथा एक लघु-विशेषांक भेंट किया जाता है। वर्ष १६७२ का विशाल-विशेशांक "चिकित्सा-विशेषांक द्वितीय भाग" आपके हाथ में है। लघु-विशेषांक की सूचना मई या जून के अङ्क में प्रकाशित करेंगे।

३–वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होकर दिसम्बर में समाप्त होता है। पूरे वर्ष के लिए ही ग्राहक बनाये जाते हैं। ग्राहक किसी भी समय बनें जनवरी से उस समय तक के अंक भेज कर जनवरी से ही ग्राहक बना लिये जाते हैं और उनका वर्ष भी दिसम्बर में समाप्त हो जाता है।

४–वार्षिक-शुल्क मनियार्डर से भेजना सुविधाजनक होता है किन्तु यदि चाहें तो अंक विशेषांक वी० पी० द्वारा भेजकर भी ग्राहक बना लेंगे। खर्चा दोनों प्रकार समान होता है।

५–नए ग्राहक को मनिआर्डर से वार्षिक शुल्क भेजते समय मनियार्डर कूपन में यह अवश्य लिख देना चाहिए कि 'नए ग्राहक बन रहे हैं'।

६–केवल विशेषांक कामूल्य १०.०० होता है लेकिन ग्राहक बन जाने पर यही विशेषांक वार्षिक मूल्य ८.५० में ही अन्य अंकों सहित मिल जाता है।

नोट—यह नियम सम्भवतः अटपटा लगें। लेकिन वास्तव में विशेषांक इतना उपयोगी एवं विशाल होता है कि उसका मूल्य १०.०० भी कम है। हम केवल आयुर्वेद प्रचार के लिये ही बहुत घाटा सहते हुये ये विशेषांक धन्वन्तरि के ग्राहक बन जाने पर भेंट स्वरूप वार्षिक मूल्य में ही देते हैं।

७–धन्वन्तरि के ग्राहकों से हम साग्रह निवेदन करते हैं कि वे धन्वन्तरि के अधिक से अधिक नवीन ग्राहक बनावें। धन्वन्तरि की ग्राहक संख्या जितनी बढ़ेगी हम धन्वन्तरि को उतना ही अधिक उपयोगी और विशाल बनाने की क्षमता प्राप्त कर सकेंगे। ग्राहक बनने के लिए किसी आर्डर-फार्म की आवश्यकता नहीं है। वार्षिक शुल्क मनियार्डर से भिजवा दें या पूरा पता लिखते हुए अंक-विशेषांक वी० पी० से भेजने की आज्ञा दें।

८–आजीवन सदस्य बनना चाहें तो १००.०० एक बार में भेजकर जमा करावें। जब तक यह रुपया जमा रहेगा आपको धन्वन्तरि निःशुल्क भेजा जायगा। जब धन्वन्तरि न लेना चाहें १००.०० वापस मंगा सकते हैं।

वर्ष १९७३ में

धन्वन्तरि मुफ्त मंगावें

धन्वन्तरि के जो भी ग्राहक—

(१) मार्च १९७२ से ३० नम्बवर १९७२ तक
(२) धन्वन्तरि कार्यालय द्वारा निर्मित औषधियां
(३) धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़) से
(४) १ बार में १४१) की
या २ बार में १७१) की
या ३ बार में २०१) की

मंगा लेंगे उनको वर्ष १९७३ में धन्वन्तरि मुफ्त दिया जायगा।

नियमों को भली प्रकार समझ लीजियेगा—

१—वर्ष १९७२ में जो 'धन्वन्तरि' के ग्राहक हैं वही सज्जन उपर्युक्त विज्ञप्ति के अनुसार औषधियां मंगाकर वर्ष १९७३ में धन्वन्तरि मुफ्त प्राप्त कर सकेंगे।

२—जो सज्जन "धन्वन्तरि" के ग्राहक नहीं बन सके हैं और १ मार्च १९७२ के बाद औषधियां मंगाकर उपर्युक्त नियम की पूर्ति कर दी है तो वे ३० नवम्बर १९७३ से पहिले ही १९७२ के लिये धन्वन्तरि के ग्राहक बन कर वर्ष १९७३ में धन्वन्तरि मुफ्त प्राप्त कर सकेंगे।

३—इसकी पृष्ठ पर एक तालिका छपी है उसे भर कर १५ दिसम्बर १९७२ से पहले-पहले जब भी नियमों की पूर्ति हो जाय कार्यालय को भेजना आवश्यक होगा। तालिका मिलने पर उसकी जांच करके नियमों की पूर्ति हो गई है तो आपका पता वर्ष १९७३ के निःशुल्क ग्राहकों में लिखकर आपको सूचना दी जायगी।

४—१ मार्च १९७२ से पहले के या ३० नवम्बर १९७२ के बाद के बिलों पर यह रियायत कदापि नहीं दी जायगी।

५—जो सज्जन इसके पृष्ठ पर छपी तालिका भर कर १५ दिसम्बर १९७२ से पहले-पहले भेज देंगे उनको ही (उक्त नियमों की पूर्ति होने पर) वर्ष १९७३ में धन्वन्तरि मुफ्त दिया जा सकेगा। अस्तु तालिका (फार्म) भर कर भेजने का उत्तरदायित्व ग्राहक पर है।

तालिका

जो १५ दिसम्बर १९७२ से पहिले-पहिले भेजनी होगी

श्री व्यवस्थापक—

धन्वन्तरि कार्यालय

विजयगढ़ जिला अलीगढ़

आपकी विज्ञप्ति के अनुसार मैं—

१ बार में १४१.०० की

२ बार में १७१.०० की

३ बार में २०१.०० की

तीनों में से जो दो अनावश्यक हों उन्हें काट दीजियेगा

औषधियां मंगा चुका हूँ जिसका विवरण नीचे लिखा है। अपने यहां जांच करके मेरा पता वर्ष १९७३ के निःशुल्क ग्राहक रजिस्टर में लिख लें और ग्राहक संख्या की सूचना दें।

	बिल	दिनांक बिल	औषधियों का मूल्य	वी० पी० छुड़ाने की तारीख	विवरण
प्रथम बार					
द्वितीय बार					
तृतीय बार					

मेरा पूरा पता..

....

....

धन्वन्तरि ग्राहक संख्या..............................

आपका शुभ नाम वर्ष १९७३ के लिये निःशुल्क ग्राहक रजिस्टर में ग्रा० सं०.................... पर लिख लिया गया है।

हस्ताक्षर..............................व्यवस्थापक

दिनांक....................

धन्वन्तरि चिकित्सा विशेषांक द्वितीय भाग

के

यशस्वी लेखक एवं विशेष सम्पादक

कविराज श्री बी. एस. प्रेमी, शास्त्री एम. ए. एम. एस. आयुर्वेदाचार्य
अग्निस्थायी पारद के अनुसंधानकर्ता
प्राध्यापक—आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज, करौल बाग, नई दिल्ली–५

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते । —चरक ।

भाग ४६ | चिकित्सा—विशेषांक | फरवरी-मार्च
अंक २-३ | (केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिये प्रकाशित) | १९७२

धन्वन्तरि चिकित्सांक प्रशस्ति

पृथ्वी नभ मंडल गूंज उठा, सुन 'धन्वन्तरि' का श्रेष्ठ घोष ।
ज्ञानी जन भी खिलखिला उठे, हमने पाया शुभ ज्ञान कोष ॥
वीरत्व युक्त नर-वीर कहें, रिपु विजय हेतु ब्रह्मास्त्र मिला ।
विद्वान ज्योतिषी देख कहें, हमको ज्योतिष का पुष्प खिला ॥
लेखक पढ़कर मन मंजु पत्र, पुलकित शरीर अति मोद भरा ।
कल्पना शनैः शनैः करते-करते, लेखक ने लेख पर ध्यान धरा ॥
लेखक ने सुन्दर लेख लिखा, कवि हृदय खाए नवनीत बना ।
कवि काव्य कला शृङ्गारधार, रच दिया गीतिका प्रेम सना ॥
वर बन्धु वैद्य क्यों सुस्त आज, तू ही पतनोन्मुख पथ पर है ।
उत्थान हेतु पढ़ 'धन्वन्तरि' पत्रिका श्रेष्ठ सुख हितकर है ॥
गुजरात, मध्य, उत्तर प्रदेश, भूपति बिहार पंजाब सकल ।
घर-घर में 'जनमानस' समान व्यापक सुन्दर पत्रिका सबल ॥
धन्वन्तरि पढ़ करके हमको, अति हर्ष हिये में होता है ।
एक सूत्र के बन्धन में, बंधने का श्रेय उबलता है ॥
भारत के कोने-कोने से, आवाज यही सुनि आती है ।
अद्वितीय पत्रिका "धन्वन्तरि" निज सेवा भाव जताती है ॥

—शंकर कवि रचित, तपस्वी, दूरा (आगरा)

सम्पादकीय—

दो शब्द

भगवान् धन्वन्तरि की असीम कृपा से 'धन्वन्तरि' का सन् ७२ ई. का यह 'चिकित्सा–विशेषांक द्वितीय भाग अपने मान्य पाठकों तथा ग्राहकों के हाथों में पहुँच रहा है। इस चिकित्सा-विशेषांक के द्वारा हमने आयुर्वेद जगत की सेवा में एक नवीन प्रकार का रोग—निदान का विषय तथा चिकित्सा विषय का सूत्रपात, जो कि चिकित्सा विशेषांक प्रथम भाग सन् ७० ई० के माध्यम से किया था, उसी को और आगे बढ़ाया है। कृपालु पाठकों और ग्राहकों तथा अन्य आयुर्वेद प्रेमी जगत ने उस विशेषांक को बहुत पसन्द किया था और सैकड़ों ही प्रशंसापत्र मुझे और श्री सम्पादक धन्वन्तरि को प्रेषित कर उत्साह वृद्धि की थी। तदनुसार ही पुनः यह दूसरा विशेषांक प्रस्तुत किया जा रहा है।

सम्पादक धन्वन्तरि का धन्यवाद

हमें यह लिखते हुए भारी गर्व है कि सम्पादक धन्वन्तरि श्रीमान् वैद्य श्री ज्वाला प्रसाद जी अग्रवाल B Sc. ने हमें बारम्बार प्रेरित किया है कि इस द्वितीय भाग को विशेष उपयोगी बनाया जाए और अधिक से अधिक चित्रों के माध्यम से विषय को स्पष्ट किया जाए, फलतः इस विशेषांक में ऐसा ही किया गया है। इस विशेषांक को चित्रों से विभूषित करने के लिए सम्पादक धन्वन्तरि ने भारी धन व्यय किया है। अतः हम सम्पादक धन्वन्तरि का हृदय से धन्यवाद करते हैं।

इस अंक की विशेषता

प्रस्तुत चिकित्सा विशेषांक में विषय सूची के क्रम को परिवर्तित करके विषय प्रस्तुत किया गया है। ऐसा करने के लिये हमें मान्य पाठकों और ग्राहकों के अनेक पत्र मिले थे। हमने जनमत का आदर करते हुए आयुर्वेद प्रेमियों की रुचि का भी स्वागत किया है। इसके अतिरिक्त इस विशेषांक के विशेष रोगों पर शास्त्रीय चिकित्सा और अनुभूत चिकित्सा दोनों ही प्रकारों से पृथक–पृथक विषय को प्रस्तुत किया है जिससे पाठकों को सुविधा रहे। चिकित्सा विषय का चयन करते समय यह ध्यान रखा गया है कि सभी प्रकार के सज्जन लाभ उठा सकें। एक भी प्रयोग केवल भरती के नाम पर नहीं रखा अपितु चाहे वे शास्त्रीय हैं अथवा अनुभूत सभी प्रयोग विद्वानों के द्वारा बार–बार के परीक्षित, अनुभूत एवं प्रमाणित हैं वे ही यहाँ पर दिये गए हैं। प्रत्येक रोग पर चिकित्सा विषय विस्तार से दिया गया है। आयुर्वेदिक, एलोपैथिक और यूनानी तथा होमियोपैथिक चिकित्सा का सारभूत यहां पर दिया गया है।

हमारा विशेष कार्य

इस विशेषांक में चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांगहृदय संहिता, चक्रदत्त, भैषज्यरत्नावली, योगरत्नाकर और रस योग सागर से ही प्रयोग आदि चिकित्सा विषय लिए गए हैं। और वे सब बहुत उत्तम लाभप्रदायक है अतः यहां प्रस्तुत किए हैं। उनमें वर्णित चिकित्सा की सभी विधियां भी यहां दी गई हैं। क्योंकि आयुर्वेद की चिकित्सा विविध प्रकार की प्रक्रियाओं में विभक्त होने से अतीव श्रेष्ठ और अन्तिम लाभकारी है। विद्वानों के अनुभव भी उसी दृष्टि से दिए गए हैं चाहे वे देखने में और सुनने में कदाचित सुन्दर न लगें परन्तु

गुणवती प्रक्रिया का सौन्दर्य यही होना चाहिए कि रोगी को रोग से मुक्त करदे। अतः हमने इस पद्धति का स्वागत किया है और आयुर्वेद प्रेमी जनता के कल्याण के लिए परीक्षित विषय ही प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही हमने कोई भी प्रयोग ऐसा नहीं दिया जिससे आडम्बर प्रतीत होता हो। आज के प्रगतिशील युग को जिस प्रकार के चिकित्सा ग्रन्थों की पसन्द है, हमने वही रास्ता अपनाया है, यद्यपि विषय वही शास्त्रों का है और है पुराना भी, केवल हमने उसके प्रस्तुत करने की शैली को आधुनिकता प्रदान कर कृपालु जनता का ध्यान उसकी अच्छाई की ओर आकर्षित किया है क्योंकि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है। ऐसा करते समय हमने न तो विषय को बदला है, न कुछ घटाया और न बढ़ाया है। वास्तविकता को यथार्थ का रूप देकर सत्य को सत्य का प्रकाश में प्रकाशित किया है। क्योंकि किसी प्राचीन मौलिकता को परिवर्तित करने का हमें कोई भी अधिकार नहीं है।

हमारा दृष्टिकोण

धन्वन्तरि के चिकित्सा विशेषांक में श्वास संस्थान, कंठगत, रक्त संस्थान, त्वचागत, क्षुद्र रोग आदि का समन्वय करते हुए प्रकरणों के रोगों के निदान एवं चिकित्सा विषय को विभक्त किया है। बहुत से रोग इस विशेषांक की सूची में ऐसे भी हैं जो कि या तो लक्षणों में हैं या उपद्रवों में, किन्तु पूर्ण स्वतन्त्र व्याधि नहीं, उनका भी वर्णन यथास्थान शास्त्र के अनुसार तथा विद्वानों के अनुभव के आधार पर किया गया है। हमारी दृष्टि में चाहे वे सामान्य विकार ही हों रोगी की दृष्टि में वे मुसीबत हैं अतः उन पर भी विशेष ध्यान दिया गया है।

हमारा विशेष प्रयास

हमने सम्पादक धन्वन्तरि की आयुर्वेद के प्रति अनन्यनिष्ठा एवं अगाध प्रेम को देखते हुए एक कठिन कार्य अपने ऊपर लिया, वह था भारत के प्राचीन ऋषि परम्परा के छिपे हुए वे रत्न प्रकाश में लाना जो कि आज के युग में सौभाग्य से ही मिलते हैं। हमने आयुर्वेद के अनुभवी, विद्वान एवं वयोवृद्ध विद्वानों को प्रसन्न किया कि वे अपने अमूल्य अनुभवी चिकित्सा प्रयोगों को आयुर्वेद प्रेमी जनता के कल्याण के लिए प्रदान करें। हमें इस विषय में सफलता भी मिली। यह हर्ष का विषय है, कि अपने अमूल्य सिद्ध प्रयोग प्रदान करने वाले आयुर्वेद के प्रकांड विद्वान पं० बालकराम जी शुक्ल आयुर्वेदाचार्य प्राणाचार्य शास्त्राचार्य प्रिंसिपल काली कमली वाला आयुर्वेदिक कालेज ऋषिकेश जि० देहरादून (यू. पी.), पं. शिवव्रत जी वैद्य आयुर्वेदाचार्य

श्री पं. बालकराम जी शुक्ल
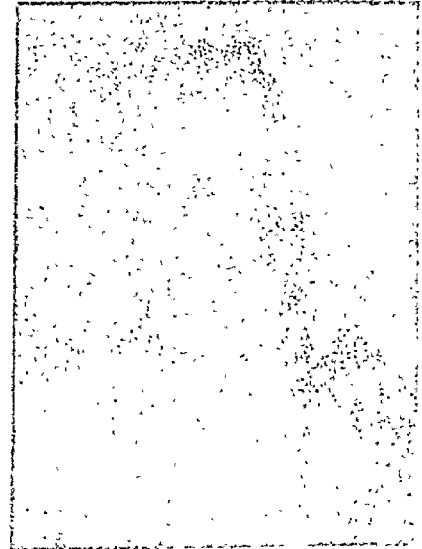
वैद्य श्री शिवव्रत जी

प्रधान चिकित्सक काली कमली वाला औषधि निर्माणशाला मु. पो. ऋषिकेश जि. देहरादून (यू. पी.) ने अपने अमूल्य प्रयोग इस विशेषांक के लिए दिए हैं। ये दोनों ही महान व्यक्ति आयुर्वेद जगत में विगत साठ वर्षों से विशेष महत्व पूर्ण कार्य करते आए हैं लगभग पचास हजार छात्रों को आयुर्वेद की मौलिकशिक्षा एवं दीक्षा प्रदान कर भारत के कोने कोने में पहुँचाया है, जहाँ वे गुरु प्रदर्शित मार्ग से प्राचीन ऋषिपरम्परा की चिकित्सा पद्धति से सफलतापूर्वक जन स्वास्थ्य की रक्षा करते हुए आयुर्वेद की अभूतपूर्व सेवा कर रहे हैं। ये दोनों ही महानुभाव आज के संकीर्ण युग में असाध्य रोगों की चिकित्सा में अपार यश प्राप्त कर रहे हैं। इनके पास विविध प्रकार के जटिल पुराने बिगड़े हुए रोगों के चाहे वे बालकों, स्त्रियों और पुरुषों के ही क्यों न सही, ऐसे चमत्कारी इलाज और प्रयोग हैं कि आश्चर्यचकित रहना पड़ता है। धन्वन्तरि के पाठक उपरोक्त दोनों विद्वानों के लेख इस विशेषांक में पढ़ेंगे और उन पर विचार कर सत्यासत्य का निर्णय स्वयं ही करेंगे। हमारा कार्य इनको जनता के समक्ष प्रस्तुत करना था, सो कर दिया है। इस प्रकरण में हम प्रातः स्मरणीया पूज्या माता श्रीमती विद्यावती जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य प्रख्यात बाल रोग एवं स्त्री रोग विशेषज्ञा को भी आयुर्वेद प्रेमी जनताके कल्याणार्थ प्रकाश में लाने में सफल हुए हैं। ये वैद्य पं. शिवदत्त जी की अर्धाङ्गिनी हैं और ऋषीकेश में पिछले ४० वर्ष से बालकों और स्त्रियों के कठिन से कठिन रोगों की निःशुल्क चिकित्सा करती चली आरही हैं। आज के युग में यह काम कितना महान है, यह पाठक लोग स्वयं ही विचार सकते हैं। आप स्त्री रोगों में निहायत ही सिद्ध हस्त हैं। रक्तप्रदर और ल्यूकोरिया,सन्तान न होना आदि नारियों के अनेक रोगों पर विजय प्राप्त की है। विद्वान पाठक इनका भी प्रयोग इस विशेषांक में पढ़ेंगे। जनता का पर्याप्त उपकार करने वाली इस महिमामयी वैद्या ने कन्या शिक्षा के क्षेत्र में सन् १९२९ ई. में एक कन्या पाठशाला स्थापित करके आज से ४२ वर्ष पूर्व जबकि कन्या शिक्षा के नाम पर लोग हिचकते थे, एक क्रांतिकारी कदम उठाया था जो कि आज तक अबाधगति से निरन्तर आगे बढ़ता जा रहा है। हम प्रयास कर रहे हैं कि आपके भी सिद्ध प्रयोग जनता तक पहुँचाए जासकें।
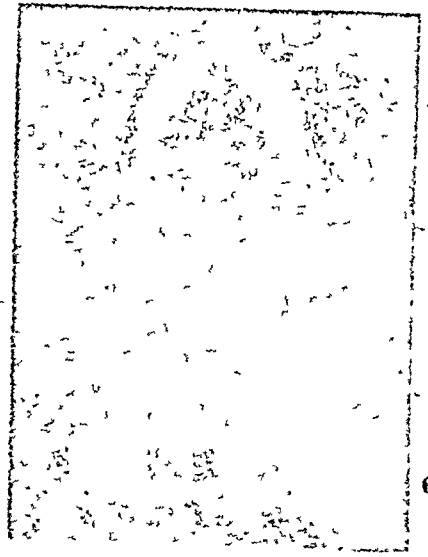
श्रीमती विद्यावतीदेवी शास्त्री आयु०

भारत के प्राचीन चिकित्सा शास्त्र और आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में आयुर्वेद के गूढ़तम प्रकाण्ड विद्वान पं. काशीनाथ जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य भूतपूर्व प्रिंसीपल नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय धन्वन्तरि भवन पंजाबी बाग नई दिल्ली, भी ऐसे ही छिपे हुए आयुर्वेद के विद्वान रत्न हैं जिन्हें कि ख्याति एवं प्रचार से चिढ़ है। उनका मत है कि विश्व में ऐसा कोई भी रोग नहीं है कि जिसका आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति से आधुनिक चिकित्सा के समान शीघ्र ही एवं स्थाई इलाज न हो सकता हो। उनकी यह चुनौती विगत सत्तर वर्षों से अङ्गद के पैर की भांति अडिग रही है। आज भी इस विषमता और मिथ्या आहार विहार के पराकाष्ठा के बिगड़े हुए समय में वे केवल आयुर्वेदिक औषधियों का ही प्रयोग करके अति शीघ्र रोगों पर विजय प्राप्त करते हैं। हमने बड़ी ही कठिनता से उन्हें प्रसन्न करके आयुर्वेद प्रेमी जनता के कल्याणार्थ प्रकाश में लाने की सफलता प्राप्त की है। आप एक महान सिद्ध हस्त चिकित्सक हैं और अपना एक लेख इसी विशेषांक में प्रस्तुत कर रहे हैं।

विशेष आभार

धन्वन्तरि पाठकों के समक्ष हमें यह कहते हुए प्रसन्नता है कि इस विशेषांक के लिए विशेष लेख भेजने की कृपा करने के कारण हम स्वनामधन्य पं. श्री बालकराम जी शुक्ल का अतीव आभार प्रदर्शित करते हैं। वे आयुर्वेद जगत के एक विख्यात असाधारण विद्वान हैं। वे काली कमली वाले विद्यालय के प्रिंसिपल के अतिरिक्त यहां की आयुर्वेद सेवा समिति जैसी महान संस्था के अध्यक्ष भी हैं अतः बहुत ही व्यस्त रहते हैं। फिर भी एक उच्च कोटि का वैज्ञानिक लेख 'समक श्वास' पर लिखना और वह भी पूर्ण विस्तृत यह एक बड़ी बात है। आप सिद्ध हस्त चिकित्सक तो हैं ही एक महान ग्रन्थकार भी हैं। आपने आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व 'संक्रामक रोग विज्ञान–नामक एक अद्वितीय आयुर्वेदिक ग्रन्थ लिखा था जो कि धन्वन्तरि कार्यालय आदि से प्राप्त होता रहता था (जो कि अब समाप्त होगया है) इसके अतिरिक्त आपने तुलनात्मक कायतंत्र, मानस रोग विज्ञान, बालरोग विज्ञान आदि अनेक ग्रन्थ लिखकर आयुर्वेद जगत की साहित्यक भी वृद्धि की है।

वैद्य श्री हरदयाल जी आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद वाचस्पति ई–२१ आनन्द निकेतन नई दिल्ली—२३ का विशेष धन्यवाद किया जाता है कि उन्होंने कण्ठगत रोगों पर अपने अमूल्य लेख भेजकर हमें कृतार्थ किया है। वैद्य जी उत्तरी भारत के माने हुए आयुर्वेदिक प्रकांड विद्वान हैं। मूलचन्द खैरातीराम अस्पताल नई दिल्ली के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं प्रधान चिकित्सक रह चुके हैं और दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज लाहौर व जालन्धर आदि कई संस्थाओं के प्रधानाचार्य रह चुके हैं। आप नेत्र रोगों और उदर रोगों के विशेष सिद्धहस्त प्रख्यात चिकित्सक हैं। आपने अपने सुदीर्घ जीवन के सत्तर वर्ष केवल आयुर्वेद प्रचार और प्रसार में ही व्यतीत किए हैं। आप उत्तरी भारत, उत्तरी पश्चिमी भारत और पूर्वी भारत के सहस्रों विद्वानों के गुरु हैं। आप यशस्वी लेखक भी हैं। प्राणाचार्य आदि के अनेक विशेषांक आप लिख चुके हैं और कई ग्रन्थ भी आपने प्रकाशित किए हैं। अनुभवी चिकित्सा क्षेत्र में आपका विशेष स्थान है।

कविराज श्री पं० माधवानन्द जी व्यास आयुर्वेदाचार्य मु० पो० धवाकर, वाया मऊरानीपुर जिला झांसी, उत्तर प्रदेश का विशेष आभार प्रदर्शित किया जाता है। आप एक विशेष सिद्ध पुरुष हैं और आपको अनेक सिद्धियां प्राप्त हैं। धातुवाद के विषय में हमें आप से बहुत ही पथ प्रदर्शन हुआ है। आप वनों के स्वामी हैं, लगभग संम्पूर्ण वनों और पर्वतों का भ्रमण करके सैकड़ों ही वनस्पतियों की सफल खोज की है। आप एक सिद्ध हस्त चिकित्सक हैं, विशेषकर पुराने रोगों के अचूक चिकित्सक हैं। आपकी आयु सौ वर्ष से ऊपर है किन्तु शारीरिक बल, मुखमण्डल का तेज और चलने की गति आदि अनेक क्षमताओं को देखकर आश्चर्य होता है। चांदी जैसे श्वेत केशों वाले इस महान् आत्मा को हमने बड़ी कठिनता से काबू में किया है। क्योंकि इनके पास माधवी प्राश आदि ऐसे अनेक दिव्य रसायन छिपे पड़े हैं कि जिनको प्राप्त करना सरल काम नहीं था। परन्तु हमने भी इस तेजस्वी ब्राह्मण को प्रसन्न करके उनके कुछ प्रयोग जो कि अचूक है, इसी विशेषांक में प्रकाशित किए हैं। हमारा प्रयास हो रहा है कि उनके

कविराज श्री माधवानन्द व्यास

पास के नेत्र रोग, मधुमेह, श्वेत कुष्ठ, ल्यूकोरिया और हृदय रोग के कुछ विशेष प्रयोग रखे पड़े हैं, उन्हें निकालकर आयुर्वेद जगत् की सेवा में प्रस्तुत किया जाए।

पं० श्री० द्वारकामिश्र वैद्य आयुर्वेदाचार्य मन्त्री विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन मु० पो० ओड़ो गया विहार प्रान्त का भी विशेष धन्यवाद है। आपका भी एक अमूल्य लेख इसी विशेषांक में प्रकाशित है। पं०

श्री द्वारका मिश्र वैद्य मंत्री

श्री शंकरलाल जी गौड़ 'शंभुकवि'
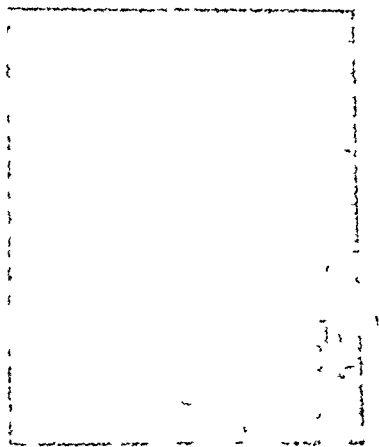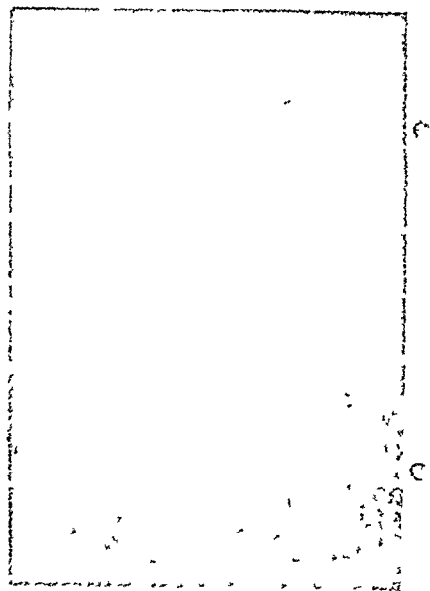
शंकरलाल जी गौड़ 'शम्भु कवि' दुर्वासानगर मु० पो० कुरा जिला आगरा का विशेष धन्यवाद है। आपने इस विशेषांक के लिए मधुर कविता में प्रशस्ति और ज्योतिष के आधार पर समस्त रोगो के सिद्धान्त का वर्णन किया है। आप एक वैद्य तो हैं ही किन्तु विशेष रूप से प्रख्यात ज्योतिषी और तांत्रिक तथा सिद्ध मंत्र दिव्य पुरुष हैं। कविराज श्री रुद्रनारायणसिंह जी आयुर्वेदाचार्य मु० पो० नगगांव जिला सारण विहार राज्य का हमें बहुत ही अमूल्य लेख इस अंक में प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आप एक माने हुए सफल चिकित्सक एवं विद्वान् व्यक्ति हैं।

कविराज श्री पी० टी० उत्तरेश्वर वैद्य मनीषी आयुर्वेदाचार्य मु० पो० जोगाईंगणी वाया-किन्दरड़ जि० बीड़ (महाराष्ट्र) का विशेष धन्यवाद है। आपने अपना एक विशेष महत्वपूर्ण लेख हमें प्रकाशनार्थ भेजा है।

वैद्य श्री शालिग्राम जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य [illegible] चिकित्सालय मु० पो० रायपुर जि० देहरादून का भी हमें एक लेख मिला है, एतदर्थ उनका विशेष धन्यवाद है। [illegible] विशेष-कर बालरोगों और स्त्री रोगों [illegible] बिताता है।

डा० श्री त्रिलोकीनाथ पाण्डे सिन्धिया कालेज के रिसर्च विभाग में अधिकारी हैं। आपने भी इस विशेषांक के एलोपथी विषय लेखन में अपना सहयोग प्रदान किया है।

वैद्य श्री शालिग्राम शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

श्रीयुत श्रीनिवास वैद्य आयुर्वेदाचार्य बी० आई० एम० एस० एक होनहार एवं विलक्षण चिकित्सक हैं। आपने इस विशेषांक के लेखन में बड़ी ओजस्विता का परिचय दिया है। आप भी एक सिद्धहस्त चिकित्सक हैं आपका विशेष धन्यवाद है।

विशेष लेखकों का धन्यवाद
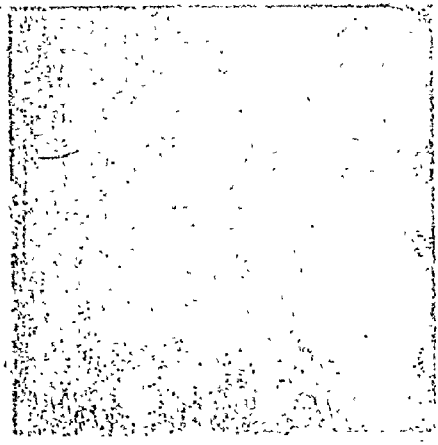
इस विशेषांक के लिये अपने अमूल्य लेख भेजने वाले विद्वान चिकित्सकों का हम अत्यन्त हार्दिक धन्यवाद करते हैं। वे हैं—श्री राजकुमार सिंह कुशवाहा श्रीमान् विश्वंभरदयाल सक्सेना, वैद्य श्री सोहर्रसिंह जी आर्य, श्रीमान्, डा० एन० एल० राठौर, श्रीमान् डा० माधोप्रसाद जी, श्री युधिष्ठर सिंह जी, श्री नलिनी देवी पंचोली बी० ए० आदि। डा० श्री छगनलाल जी समदर्शी आयुर्वेद जगत के जाने पहिचाने विद्वान् लेखक है। साथ ही एक अनुभवी कुशल चिकित्सक भी हैं उनका एक विशेष लेख इस विशेषांक की शोभा बढ़ा रहा है।

विशेष सम्पादक के सहयोगी

हमें इस विशेषांक के विषय चयन और लेख में भरपूर सहयोग देने वाले आयुर्वेद जगत् के प्रकाण्ड विद्वान एवं छिपे रत्न कविराज श्री वागीशदत्त जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि औषधालय, रेलवेरोड, गाजियाबाद (यू० पी०) का नाम हमें बहुत ही गौरव के साथ प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। ये मनीषी उन रत्नों में से हैं जिन्हें आवरण से ढका हुआ है ताकि संसार के वे लोग जो किसी के गुण प्रकर्ष को नहीं समझते वे भीलनी की भांति उपेक्षित न कर दें। आप आयुर्वेद जगत के श्रेष्ठ लेखक ओजस्वी वक्ता एवं ग्रन्थों के मर्मज्ञ हैं। आपका चिकित्सा अनुभव चालीस वर्ष का प्राचीन है। आज सत्तर वर्ष की आयु में भी वे ऐसा स्वास्थ्य रखते हैं कि जो निःसन्देह एक वैद्य का होना चाहिए। आप स्त्री पुरुषों और बालकों के सभी रोगों पर विशेष अनुभव रखते हैं। आपके हाथ को यश प्राप्त है। एक चिकित्सक के नाते वे बड़े ही दयालु और रोगी के प्रति कारुणीक रहते हैं। स्वयं ही औषध निर्माण करके चिकित्सा करने के पक्षपाती हैं। आज के युग के सभी प्रसिद्ध रोगों पर आपके अभूतपूर्व फलदायी योग तैयार किए हुए हैं। हम यहां पर इस महान् आध्यात्मिक तत्वज्ञाता के स्वरूप में भी उन्हें पाते हैं। जब आपका किशोर काल था तब आप उत्तरी भारत के महान देश भक्त क्रान्तिकारियों में से एक थे और सिर धड़ की बाजी लगाकर ब्रिटिश शासन से लगातार लोहा ले रहे थे, यह बात सन् १९३० के आस पास की है। ऐसे वीतराग निर्लोभ चिकित्सक विद्वान ने हमें अपना आशीर्वाद देकर यह विशेषांक सम्पूर्ण कराया है बहुत सा विषय आपका ही लिया हुआ है। मैं आपका अतीव अभिनन्दन

करता हूँ।

शेष हमारे दो सहयोगी डा० श्री शिवकुमार जी व्यास और डा० श्री बनारसी दास जी दीक्षित प्रथम अङ्क की भांति अब की बार भी पूर्ण सहयोगी रहे हैं। अतः उनका विशेष अभिनन्दन है।
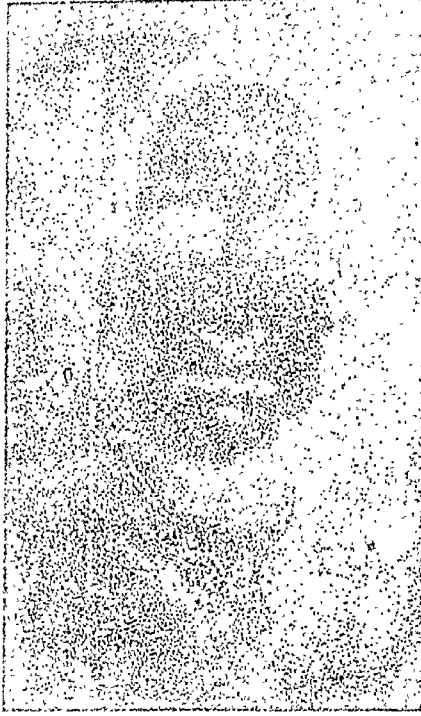
श्री डा० बनारसीदास दीक्षित एच०एम०डी० एस०

अन्त में

कृपालु धन्वन्तरि परिवार की पूर्ण सहायता एवं मार्ग दर्शन के कारण ही हम लोग आयुर्वेद जगत की पुनः इस वर्ष भी सेवा करने में सफल हो सके हैं। अतः श्री देवीशरण जी गर्ग आयुर्वेदोपाध्याय, वैद्य श्री दाऊदयाल जी गर्ग A. M. B. S. तथा सर्वाधिक विशेषरूप से वैद्य श्री ज्वालाप्रसाद जी अग्रवाल B. Sc. का हम अभिनन्दन करते हैं कि जिन्होंने रात और दिन इस विशेषांक के विषयों को जन सुलभ बनाने में पूर्ण मार्गदर्शन किया है। फिर भी यदि इस अङ्क में कुछ त्रुटि रह गई हों तो कृपालु पाठक क्षमा करेंगे।

—विशेष सम्पादक

श्वास एवं कास

दमा और खांसी

(Asthma & Bronchitis)

श्वासरोग का गाम्भीर्य-प्राणीमात्र के शारीरिक तथा आगन्तुक तथा मृदु और दारुण भेद से दो प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। और वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों से रोगों का प्रादुर्भाव सर्वदा होता है तथा असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, प्रज्ञापराध और परिणाम इन दोनों प्रधान कारणों से सम्पूर्ण रोग उत्पन्न होते हैं। उन रोगों में से कौनसा रोग अत्यन्त गम्भीर और कष्ट साध्य होता है। और वास्तविक रूप से प्राणहारक अनेक रोग होते हैं। परन्तु वे इतनी शीघ्र प्राणनाशक नहीं होते हैं कि जितना गम्भीर तथा प्राणान्तककारी श्वास रोग होता है। और नाना प्रकार के अन्य रोगों से आक्रान्त प्राणी को भी मृत्यु के समय में तीव्र पीडाकारक श्वास रोग ही समुत्पन्न हो जाता है। श्वास रोग कफवातान्तक होता है और पित्त-स्थान से समुत्पत्ति होती है। और हृदय तथा रसादि सात धातुओं का उपशोषण करता है और श्वास रोग का समुचित उपशमन होने से वह कुपित हुए सर्प के समान मृत्यु का कारण होजाता है।

> कामंप्राणहरा रोगाः वहवो न तु ते तथा।
> यथाश्वासश्चहिक्काच प्राणानाशुविकृन्ननः॥
> (च. चि.)

श्वासरोग (Dyspnoea)--चारों तरफ कफ के द्वारा अवरुद्ध गतिवाला प्राणवायु जब कफ के साथ ऊपर नीचे की ओर वारवार आने जाने लगता है तब इसको श्वास रोग कहते हैं। वायु की गति के अनुसार यह महा, ऊर्ध्व, छिन्न, तमक और क्षुद्र श्वास नाम से ५ प्रकार का होता है। इसमें पहले तीन असाध्य होते हैं और तमक श्वास कृच्छ्र साध्य है। क्षुद्र श्वास साध्य होता है। यहां पर विशेष कर तमक श्वास का ही वर्णन किया जाता है।

> अधश्चोर्ध्वं कफो वातो यात्यायतिमुहुर्यदा।
> कफरुद्धगतिर्विण्णकतदा श्वासान्न करोन्थ सौ॥
> महोर्ध्वछिन्नतमक क्षुद्राख्यात् स्वाभिंवमन्ना।
> (आ. चि.)

तमकश्वास (Asthma)—श्वास नली की पेशियों के सूत्रों के आक्षेप तथा संकोच से संयुक्त श्वास नली की नाड़ी सम्बन्धी पीड़ा को तमक श्वास कहते हैं। इसमें श्वास फूलता है और समय समय पर वेग के स्वरूप में श्वास चढ़ता है। कभी कभी अथवा नियत समय में श्वास लेने में बड़ा कष्ट होता है।

निदान—

अधिकतर यह व्याधि वंश परम्परा से पैदा होती है। पिता, माता, पितामह पूर्व पुरुषों को दमा होने पर उसकी संतान में दमा पैदा हो जाता है। इसके अतिरिक्त इनको किसी भांति की नाड़ी सम्बन्धी मानसिक उन्माद, अपस्मार, हिस्टिरिया आदि होने पर भी यह रूपान्तरित होकर के दमा के रूप में पुत्रादि में भी उत्पन्न होजाता है। एक परिवार में कई व्यक्ति इससे आक्रान्त देखे जाते हैं। पिता से सन्तान में पैदा होने का कोई नियम नहीं है। माता से भी पुत्र में उत्पन्न हो सकता है। यह रोग प्रायः अधिकतर शीतल और आर्द्र जल वायु वाले प्रदेश में देखा जाता है। परन्तु यह कोई प्रधान कारण नहीं है। दूसरे प्रदेश में भी होता है। किसी रोगी को शीतकाल में दौरे अधिक आते हैं और किसी को गर्मी में अधिक दौरे आते हैं। जब यह रोग एक बार पैदा हो जाता है तो फिर इसके वेग समय-समय पर गर्मी, ठंडक, शुष्क और आर्द्र काल में कारणानुकूल उत्पन्न होते ही रहते हैं। इन वेगों को पैदा करने के लिये कारणों की आवश्यकता होती है। अतः कारण नीचे लिखे जाते हैं।

किसी रोगी को धूलि के कणों से, किसी में धूम से दूषित वायु से, किसी में जन्तु वा द्रव्य की गन्ध से, शीत स्थान व जल के सेवन से, व्यायाम अधिक करने से, विषय भोग अधिक करने से, अधिक मार्ग चलने से, रुक्ष अन्न सेवन से तथा विषमाशन से, आम दोष से, आनाह से, रूक्षता से और लंघन करने से, दुर्बलता से, हृदयादि मर्म स्थानों में आघात होने से, वमन-विरेचन आदि के अतियोग से तथा अतिसार, ज्वर, छर्दि, प्रतिश्याय, क्षत, क्षय, रक्त-पित्त, उदावर्त, कालरा, शुष्क कालरा, पांडु रोग, विष प्रयोग से यह रोग होजाता है और किसी किसी को नासिका के अन्दर की श्लैष्मिक कला में सूजन होने से प्रतिश्याय, पक्वाशय, यकृत (लीवर), आन्त्र, तथा जरायु आदि की उग्रता से भी यह होता है। पारद, शीशा आदि धातुओं के विषाक्त होने पर, अधिक मद्यपान करने आदि से भी यह रोग होजाता है।

श्वास जनक रोगान्तर कारण—

श्वास संस्थान के संक्रामक विकार (Infectious diseases of the respiratary tract) एडीनायडस (Adenoids) तुण्डिकाशोथ (Tonsil enlargement) नासाकोटर (Nasal sinus) इसमें पूयजनक जीवाणुओं का उपसर्ग प्रतिश्याय नासा टरमीनेट (Terminate) नामक ग्रन्थि की वृद्धि, भोजन पान करने की वृद्धि, श्वास नलिका शोथ, फुफ्फुसावरणीयकला (प्लूरा) का शोथ प्रभृति श्वास रोग के कारण होजाते हैं।

रासायनिक कारण

इसमें प्राणियों के शरीर से आने वाली गन्ध से श्वास होजाता है और गन्धयुक्त वातजनक पदार्थों के सेवन से भी यह रोग होजाता है। विषाक्त औषधियों की गन्ध से भी यह होता है और गन्धयुक्त पुष्पों के कारणों से हे फीवर (Hay fever) होता है। उससे भी श्वास रोग होजाता है।

> विषौषधि पुष्पगन्धेन वायु को पनीमेना क्रम्यते।
> योदेशस्तत्र दोष प्रकृत्यविशेषेण कास श्वास॥
> वमथुप्रतिश्याय शिरोरुज्वरैरुपतपाने।
>
> (सु. सू.)

आधुनिक विज्ञान में अभिष्यन्दी पदार्थों के सेवन से जो श्वास होता है उसको एलर्जी (Allergy) के अन्तर्गत मानते हैं। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होता है। युवा अवस्था के पूर्व ही इसका आक्रमण होता है। कभी कभी बाल्यावस्था में भी इसका आक्रमण होता है। परन्तु प्रवल रूप युवावस्था में ही धारण करता है। स्वाभाविक अवस्था का परिवर्तन इस रोग का उद्दीपक कारण है। यह रोग अधिकतर स्वतन्त्र ही होता है। परन्तु किसी-किसी में आतशक (सिफलिस) राजयक्ष्मा (टी. वी.) वातरक्त आदि उद्दीपक कारण हो जाते हैं। दमावालों में शिशु अवस्था में फुंसियां, शिरोवेदना, शीतपित्त और आमाशयिक रोग, तथा दूसरे रोग होजाते हैं। दमा वाले रोगियों में आमाशय और आन्त्र सम्बन्धी रोगोत्पादक कारण पहले से उपस्थित होने पर किञ्चिन्मात्रा में भी, मिथ्याआहार-विहार कर लेने पर प्रवल रूप में यह रोग होजाता है। अनेक रोगियों में प्रोटीनयुक्त आहार करने पर यह रोग होजाता है। और मटर, उड़द, तिल की खली, तिलतैल, कद्दू, गागली (अरुई) कटहल, आदि विष्टम्भी तथा विदाही गुरुभोजन करने से, जलीयजन्तु मछली आदि का मांस खाने से, दधि, कच्चा दूध पीने से, अभिष्यन्दी तथा कफकारक खाद्य पदार्थों के सेवन से, कण्ठ, वक्ष स्थान में आघात लगने से, विवन्ध (कब्जी) अर्थात् गैस ट्रबल से भी यह होता है।

> रजसा धूमवाताभ्यां शीत स्थानाम्बु सेवनात्।
> व्यायामाद्ग्राम्यधर्माध्वरूक्षान्न विषमाशनात्॥
> आमप्रकोपदा दाना दाहरौक्ष्यादपतर्पणात्।
> दौर्बल्य कर्मणोघ्मानाद्वन्दच्छुद्धयमियोगता॥
> अतिसारज्वरच्छर्दि प्रतिश्याय क्षत क्षयात्।
> रक्तपित्तादुदावर्तात् विसूच्यलसकादपि ॥१२॥
> पाण्डु रोगाद्विषाच्चैव प्रवर्तते गदाविमौ।
> निष्पाव माष पिण्याक तिल तैल निषेवणात् ॥१३॥
> पिष्टशालूक विष्टम्भि विदाहि गुरु भोजनात्।
> जल आनूपपिशित दध्यामक्षीर सेवनात् ॥१४॥
> कण्ठोरसोः प्रतिवाताद्विवन्धैश्च पृथग्विधैः॥१५॥
>
> —च० चि०

सम्प्राप्ति

प्राणवाही स्रोतों का पुञ्ज फुफ्फुस नामक श्वास यंत्र में वायु प्रणालियां संकुचित हो जाती हैं और वायु कोष्ठ

फैल जाते हैं। इसके साथ-साथ किञ्चिन्मात्र वक्षोदर मध्यस्था मांसपेशी (डायाफ्राम) भी संकुचित हो जाता है। दौरे के बाद वायु प्रणालियां और वायु कोष्ठ अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। पुरानी अवस्था में यह स्वरूप कुछ अवशिष्ट ही रह जाता है। गुर्दे की बीमारी, हिस्टीरिया, हृदय रोग जन्य तमक श्वास में यह दशा नहीं होती है। श्वास नली के प्राचीर निर्माण में जो अनेक पैशिक सूत्र सहायता करते हैं और जो नली के अति सूक्ष्म भाग तक फैले रहते हैं उन सबमें आक्षेप होने से श्वासनलीय पेशी में आक्षेप और संकोच होता है। जिससे श्वास रोग पैदा हो जाता है।

मारुतः प्राणवाहिनी स्रोतांस्याविश्य कुप्यति।
उरःस्थः कफमुद्धूय हिक्का श्वासान्करोति सः ॥१६॥
—च० चि०

पूर्वरूप एवं लक्षण

अचानक अर्ध रात्रि के समय दमा का दौरा शुरू हो जाता है। यह दौरा दो-तीन घण्टे लगातार रहने से रोगी की नींद भंग हो जाती है। दौरे से पहले रोगी की दशा अच्छी रहती है। रोग का कारण ज्ञात न होकर रोग अचानक शुरू हो जाता है। कभी-कभी अनेक प्रकार के पूर्व लक्षण प्रकट होते हैं। यथा मलावरोध, प्रतिश्याय, छींकों का आना, जृम्भा आदि कभी-कभी आध्मान युक्त अतिसार, कभी-कभी अति क्षीणता, आलस्य, शिर दर्द, अवसाद, तन्द्रा आदि पूर्वरूप उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी मानसिक स्फूर्ति अस्वाभाविक रूप से उपस्थित हो जाती है। कभी-कभी हल्का रंग वाला पेशाब अधिक मात्रा में निकलता है। उसका आपेक्षिक गुरुत्व (स्पेसिफिक ग्रैविटी) कम हो जाती है।

कभी-कभी वक्षः स्थल में भारीपन मालूम होता है। कभी-कभी साधारण खांसी आने लगती है और ऊर्ध्व श्वास मार्ग में उग्रता पैदा हो जाती है। कभी-कभी वक्षः स्थल में दबाव प्रतीत होता है। कभी-कभी हनु के नीचे के भाग में खुजली पैदा हो जाती है।

जब दमा पुराना हो जाता है तब ये रूप थोड़ी मात्रा में पैदा होते हैं *अथवा पूर्वरूप* के बिना भी अचानक रोग पैदा हो जाता है। रोगी को श्वास लेने में बहुत कष्ट होता है। रोगी लेटा हो तो उठकर चारपाई पर बैठ जाता है। दोनों बाहु सामने की ओर स्थिर भाव से रखता है। दोनों कंधों को ऊपर उठाता है। शिर पीछे की तरफ झुका रहता है। चारों तरफ तकिया का सहारा लेकर चारपाई पर बैठ जाता है। आमाशयिक प्रदेश पर स्पन्दन (Epigastric pulsations) होता है। रोग की प्रबलता के समय श्वास कठिनाई से निकलता है, उच्छ्वास अल्प और निःश्वास लम्बा होता है। श्वास प्रश्वास का शब्द सिटी बजने के तुल्य शब्द सुनाई देता है। कभी-कभी उच्च ग्राम विशिष्ट (सिबिलेन्ट राल्स) वा. कूजन-शब्द (Rhonchii) फां, फां शब्दादि सुनाई पड़ते हैं। रोगी का नीला रंग, मलीन मुख तथा दुःखी मालूम होता है।

साधारणतया बीमार हिलने-डुलने और बोलने में भी असमर्थ हो जाता है और रक्त संचालन की विलक्षणता से रोगी के हाथ पैर ठण्डे पड़ जाते हैं। मुख पर पसीना निकलने लगता है। कभी-कभी मुख मण्डल पर भयानक लक्षण दिखाई पड़ते हैं। ग्रीवा की शिरायें फूली हुई मालूम होती हैं। रोगी श्वास लेने की इच्छा करता है। अतः किसी वस्तु को पकड़कर अथवा बाहु पर शिर रखकर श्वास लेता है। श्वास प्रश्वास के अभाव में कण्ठ स्वर प्रायः लुप्त प्रतीत होता है। प्रति श्वास प्रश्वास में श्वास प्रश्वासीय पेशियों की क्रिया में अधिकता हो जाती है। नासिका फैली हुई, क्षीण, क्षुद्र नाड़ी हो जाती है और कभी-कभी अनियमित नाड़ी हो जाती है। श्वास के प्रारंभ में खांसी नहीं आती है, परन्तु बाद में खांसी आने लगती है। जब वेग समाप्त होने लगता है उसी समय खांसी आ जाती है। इसके साथ कुछ श्लेष्मा भी निकलता है। जब कफ निकलने लगता है, तब वेग अल्प हो जाता है। इस कफ की परीक्षा करने पर इसमें एक प्रकार के विशेष स्फटिक (Chorcot leyden crystals) मिलते हैं। ये स्फटिक दमा के कफ में ही होते हैं। जिस श्वास में कफ निकलता रहता है उसमें कम कष्ट होता है।

वेग का समय कोई निश्चित नहीं रहता है। किसी में अल्पकाल तो किसी में चिरकाल रहता है। एक ही रोगी में भी सदा वेग का समय समान नहीं रहता है। कभी-कभी

दमा का वेग कुछ मिनटों से लेकर कई सप्ताह तक रहता है। किसी किसी स्थान पर रोगी छः घंटा तक कष्ट भोगकर गहरी नींद में सो जाता है और जागने पर पूर्ण स्वस्थ प्रतीत होता है। किसी-किसी को एक-दो दिन तक श्वास-प्रश्वास में कूजन शब्द और कष्ट वर्तमान रहता है। कभी रोग का वेग कुछ काल तक शान्त रहकर फिर चार-पांच दिन तक बना रहता है परन्तु फिर वेग कम हो जाता है। इसके बाद कई महीना अथवा कई वर्ष तक रोग का आक्रमण नहीं होता है। इसमें कफ उबले हुए साबूदाना के समान गांठदार चिपचिपा निकलता है। इस समय वक्षःस्थल की परीक्षा करने पर रोग के चिह्न नहीं मालूम होते हैं। यदि रोग का वेग चिरकाल तक बार-बार प्रकट होता है, तब उरोगुहा के सब यन्त्र आक्रान्त होकर पीड़ा से पीड़ित हो जाते हैं। इस रूप में फुफ्फुस का एम्फीसेमा (Emphysema) और पुरातन श्वास नालीय प्रतिश्याय (ब्रोंकियल कैटार) उत्पन्न हो जाता है। सामान्य परिश्रम से भी श्वास बढ़ जाता है। और वयोवृद्धि के साथ-साथ हृदय का दक्षिण भाग आक्रान्त हो जाता है। अन्त में ट्राईकुस्पिड (Tricuspid) इन्सोफिसीयेन्सी, रक्त संचालन में व्याघात और शोथ उपस्थित होकर रोग सांघातिक हो जाता है। अंगुलिप्रहार (Percussion) से अभिगुञ्जन शब्द मालूम होता है। सुनने से तो उच्छ्वास लघु मालूम होता है, किन्तु प्रबल होता है। निःश्वास लम्बा किन्तु उसमें प्रबलता कम होती है। श्वास और प्रश्वास में कूजन शब्द सुना जाता है।

रोग निर्णय

लक्षणों को देखते हुए श्वास रोग का निर्णय किया जाता है परन्तु यह ध्यानगम्य बात है कि यह वस्तुतः तमक श्वास है अथवा अन्य रोग के कारणभूत लक्षण हैं। अन्य रोगों से उत्पन्न हुआ श्वास भी कुछ समय के बाद श्वास में परिणत हो जाता है। दमा में श्वास कठिनाई से आता है और कूजन शब्द दूर से ही सुनाई देता है। उसका आकार और श्वास लेने का तरीका इसको स्पष्ट प्रकाशित कर देता है। कफ में स्फटिक विशेष देखे जाते हैं। अम्ल रंगेच्छु बढ़ जाते हैं। स्वस्थावस्था में १-२ प्रतिशत देखे जाते हैं। परन्तु तमक श्वास में १०-३० प्रतिशत अम्ल रंगेच्छु देखे जाते हैं। इन लक्षणों से तमक श्वास का पूर्ण निर्णय हो जाता है। लक्षणों के अति प्रबल होने पर भी यह रोग सांघातिक नहीं होता है।

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते।
ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ।५४।
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा।
अतीव तीव्र वेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ।५५।
प्रताम्यत्यतिवेगाच्च कासते सन्निरुध्यते।
प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ।५६।
श्लेष्मण्युच्यमाने च भृशं भवति दुःखितः।
तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ।५७।
अथास्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम्।
न चापि लभते निद्रां शयानः श्वासपीडितः ।५८।
पार्श्वेनस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः।
आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ।५९।
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमर्तिमान्।
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासी मुहुश्चैवावधम्यते ।६०।
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्चाभि वर्धते।
स याप्यस्तमकःश्वासः साध्योवास्यान्नवोत्थितः ।६१।
—च० चि०

श्वास के भेद—हृदय विकारजन्य श्वास, हृदय का श्वास अधिक परिश्रम करने से होता है। इसको क्षुद्र श्वास के अन्तर्गत मानते हैं। वृक्क विकार जन्य श्वास (Renal Asthma) मूत्र विषमयता युक्त होने से होता है।

वास्तविक श्वास में बहिःश्वसन (Expiration) में कठिनाई होती है। शेष श्वासों में अन्तः श्वसन में कठिनाई होती है। वास्तविक श्वास में रक्तभार (ब्लडप्रेसर) कुछ कम होता है और अल्ब्यूमिन नहीं मिलता है, हृदय तथा वृक्क विकार जन्य श्वास में ब्लडप्रेसर अधिक होता है और अधिक अल्ब्यूमिन होता है।

पार्थक्य—एलर्जी से उत्पन्न श्वास में वंशज श्वास का इतिहास मिलता है। कास जनक श्वास में नहीं मिलता है। एलर्जी से उत्पन्न श्वास में, शीतपित्त अतिसार का पूर्ववृत्त मिलता है तथा कासज श्वास में श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) का भी इतिहास मिलता है। कासजन्य श्वास ३० वर्ष के बाद प्रायः होता है।

तमक श्वास चिकित्सा—

तमक श्वास रोगी की चिकित्सा तीन उद्देश्यों से की जाती है—

१—रोगी की यन्त्रणा नाशक चिकित्सा

२—रोग का वेग अथवा प्राबल्यता नाशक चिकित्सा

३—रोग का पुनराक्रमण नाशक चिकित्सा

यन्त्रणा नाशक चिकित्सा—श्वास रोगी के वक्षःस्थल पर तेल में सेंधा नमक मिलाकर मालिश करें। ऊपर से नाड़ी स्वेद, प्रस्तर स्वेद प्रभृति स्वेद विधि से स्निग्ध स्वेद देवें। इससे जकड़ा हुआ कफ पिघल जाता है, स्तब्धता नहीं रहती है, श्वासस्रोत मृदु हो जाते हैं। जिससे प्राणवायु का अनुलोम होता है। जैसे पर्वतीय कन्दराओं में जमा हुआ बरफ सूर्य भगवान की उत्तप्त किरणों से पिघल जाता है। इसी भांति शरीर में जमा हुआ कफ स्वेद देने से पिघल जाता है।

हिक्काश्वासार्दितं स्निग्धैरादौ स्वेदैरुपाचरेत्।
आक्तं लवणतैलेन नाडीप्रस्तरशङ्करैः ॥७०॥
तैरस्य ग्रथितः श्लेष्मा स्रोतः स्वभिलीयते।
खानिमार्दवमायान्ति ततो वातानुलोमता ॥७१॥
यथाऽद्रिकुञ्जेष्वर्कांशुतप्तं विष्यन्दते हिमम्।
श्लेष्मा तप्तः स्थिरो देहे स्वेदैर्विष्यन्दते तथा ॥७२॥
—(च० चि०)

मूल सिद्धान्त—वस्तुतः जो कुछ औषधि अन्नपाक कफ वातनाशक, उष्णवीर्य और वातानुलोमक होते हैं, वे ही श्वासनाशक होते हैं। केवल कफनाशक किन्तु वातवर्धक अथवा वातनाशक किन्तु कफवर्धक औषधि, अन्न पाक का उपयोग लगातार नहीं करना चाहिए। किन्तु इन दोषों में से वातनाशक ही प्रायः कल्याण कारक होता है। किन्तु सब रोगों में बहिरंग चिकित्सा करने से बल प्राप्त होने के कारण हानि की कम सम्भावना होती है तथा उसे नष्ट करना आसानी से शक्य होता है। शमनोपाय से हानि अवश्य नहीं होती है। किन्तु कर्षण चिकित्सा से यदि उपद्रव उत्पन्न हो जाता है तथा बल भी क्षीण हो जाता है तो ऐसी अवस्था में उसे दूर करना अत्यन्त अशक्य हो जाता है। अतः श्वास रोगी की स्थिति के अनुसार शोधन कर अथवा बिना शोधन किए हुए ही शमन अथवा बृंहण चिकित्सा फलदायक होती है।

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्।
भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वास रोगिणे ॥१४६॥
वातघ्नं कफहरं कफकृद्वाऽनिलापहम्।
कार्यं नैकान्तिकं ताभ्यां प्रायः श्रेयोऽनिलापहम् ॥१४७॥
—(च० चि०)

वमन प्रयोग—स्नेह स्वेद से फुफ्फुसस्थ कफ पिघल कर सूक्ष्म प्रणालियों के द्वारा आमाशय में पहुंचता है। उस समय स्निग्ध स्विन्न रोगी को स्निग्धशाली चावल का माड़, मछली या शूकर के मांसरस के साथ अथवा दधि के साथ भात खिलावें। इससे आमाशय में और भी अधिक कफ उत्क्लेशित होता है। उस समय पीपल, सैंधा नमक और मधु मिलाकर वमन कारक औषधियों का क्वाथ प्रयोग करें। वमन होने से दूषित कफ निकलता है। श्वास स्रोत शुद्ध हो जाते हैं और प्राणवायु अनुलोम हो जाता है। इससे कफाधिक्य वाले रोगी के फेफड़ों में प्रायः कभी-कभी कुछ कफ अवशिष्ट रह जाता है। उसके लिए नीचे लिखे धूम्रपान करावें।

हरिद्रादि धूम्र—हल्दी, वच, एरण्ड की जड़, लाख, मनः शिला, जटामांसी, देवदारु, बड़ी इलायची।

विधि—इनको समान मात्रा में लेकर पीसकर वत्ती बनाकर सुखावें फिर घी से स्निग्ध कर इसका धूम्र देवें। इससे अवशिष्ट कफ निकल जाता है।

धत्तूर धूम्रपान विधि—धतूरे के फल, पत्र एवं शाखा लेकर कूटकर सुखा लेवें। फिर चिलम पर रखकर इनका धूम्र पीवें। इससे कफ स्रोतों से बाहर निकल जाता है। विसृत स्रोत संकुचित होकर स्वस्थ अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

यह धूम्रपान अति लाभदायक है। इसके सिवाय कफ निकालने में भी अति लाभकर है। परन्तु पित्ताधिक्य में हानिकारक है। प्रतमक श्वास में भी इसका धूम्र पिलावें। धतूरे के पत्रों को सुखाकर इसकी सिगरेट बनाकर धूम्र पिलावें। आजकल बाजार में जो स्ट्रैमोलियम धतूरे के पत्ते नाइटपेपर, बेलाडोना और हाइपोसियामस के बने बनाए धूम्र द्रव्य मिलते हैं। उनका प्रयोग करें।

कनकस्य फलं शाखां पत्रं संकुट्य यत्नतः।
शोषयित्वा च तद्धूमपानाच्छ्वासोविनश्यति॥
—(भैं० र०)

स्वानुभूत अपामार्ग प्रयोग—रविवार के दिन स्नानादि से शुद्ध होकर वैद्य अपामार्ग की जड़ को लकड़ी से खोदकर उखाड़ लावें। फिर उसको जल से धोकर २ तोला जड़ लेकर साफ की हुई पत्थर की सिल पर रोगी स्वयं पीसे और उसको आधी छटांक जल में घोलकर वस्त्र से छानकर तथा २½ तोला मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पीवे। इसके बाद भोजन के समय दूध की खीर खावे इससे दमे का दौरा शान्त हो जाता है। यदि कुछ रोग शेष रहे तो फिर इस विधि से रविवार को दवाई दें।

अपथ्य—खटाई, लालमिर्च, तेल, गुड़, तम्बाकू और सिगरेट विशेष हानिकर हैं। यदि तम्बाकू सेवन करने वाला तम्बाकू नहीं छोड़ता है तो औषधि का प्रभाव निष्फल हो जाता है।

सद्यः फलप्रद सोमकल्पोपक्रम—कफाधिक्य वाले तमक श्वास में सोमकल्प चूर्ण ४ रत्ती, जल से प्रातः मध्याह्न और सायंकाल लेवें। यदि इससे खुश्की होवे तो आधा घण्टे के बाद गोदुग्ध पिलावें। जिसको कफ मामूली होवे उसको केवल २ मात्रायें देने पर लाभ होगा। खुश्की होवे तो दूध देवें।

कफ जन्य श्वास के दौरे में ४ रत्ती से १ माशा तक गरम जल से देवें। खुश्की होने पर दूध में मुनक्का पका कर देवें। प्रथम मात्रा में श्वास का दौरा रुक जावे। वरना दूसरी मात्रा १ घण्टे के बाद देवें। श्वास का दौरा दूसरी मात्रा से अवश्य शान्त हो जावेगा।

वातजन्य श्वास में सोमकल्प अत्यन्त उष्णवीर्य तथा तीक्ष्ण होने से यदि वात प्रकृति वाले रोगी को दिया जावेगा तो रोगी का कफ निकलना वन्द हो जावेगा। क्योंकि श्वास रोगी का कफ सरलता से निकलना आवश्यक है अतः शुष्क श्वास में सोमकल्प चूर्ण ४ रत्ती, मुलेठी का चूर्ण १ माशा दोनों को मिलाकर दिन में तीन बार प्रातः मध्याह्न तथा सायंकाल जल से देवें। ऊपर दूध में मुनक्का डालकर क्षीर पाक विधि से दूध पकाकर पीवें। एलादिवटी चूसने को देवें, बादाम मुनक्का की चटनी देवें, मलाई, रवड़ी, केले की फली, खजूर आदि तर चीजें देवें। वासावलेह, मधु के साथ सोमकल्प का प्रयोग करें।

सोमकल्पादि रस—सोमकल्प चूर्ण १० तोला, षड्गुण वलिजारित रस सिन्दूर ६ माशा, अभ्रक भस्म ३ माशा, प्रवाल भस्म ३ माशा, माणिक्य रस ३ माशा।

विधि—पहले सोमकल्प का कपडछन चूर्ण करें। फिर सब दवाइयों को खरल में पीस लेवें। फिर सोमकल्प का चूर्ण मिलाकर ५ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ ३-३ घण्टे में प्रयोग करें।

लाभ—इससे तमक श्वास में तत्काल लाभ होता है। उसका वेग शीघ्र ही कम हो जाता है।

सोमकल्पासव—सोमकल्प का चूर्ण ४० तोला, वासा मूल २½ सेर, छोटी कटेरी की मूल २½ सेर, बड़ी कटेरी की मूल आधा सेर, पुष्करमूल आधा सेर, तालीस पत्र आधा सेर, एपिकाकआग्दा चूर्ण १ पाव, लोवेलिया चूर्ण १ पाव, काकड़ासिंगी १ पाव, जल २० सेर, गुड़ १० सेर, धातकी पुष्प १ सेर, सुराबीज ६ माशा।

विधि—इन द्रव्यों को कूट-छान करके जल में घोल-देवें। ऊपर से गुड़, धाय के फूल, किराव, पात्र में डालकर मुख वन्द कर देवें। संधान हो जाने पर छानकर बोतलों में भर लेवें।

मात्रा—आधा तोला, जल आधा तोला मिलाकर प्रयोग करें।

लाभ—यह आसव तमक श्वास में अति उपयोगी है। इसके प्रयोग से श्वास कष्ट का नाश होता है तथा श्वास नलिकाओं में वायु का प्रवेश निर्गमन सरलता से होता है।

नोट—इसका अधिक प्रयोग करने से वमन हो सकता है। अतः उचित मात्रा में प्रयोग करें।

श्वास-कुठार रस—शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला, शुद्ध सुहागा का चूर्ण १ तोला, शुद्ध मैनसिल १ तोला, काली मिर्च १ तोला, सोंठ १ तोला, छोटी पीपल १ तो०।

विधि—पहले पारा गन्धक की कज्जली बनावें। फिर बाकी औषधियों को कूट-पीस छानकर उसमें मिलाकर पान के रस में ३ दिन घोटकर १ रत्ती की गोली बनावें। मात्रा १ रत्ती, वासा स्वरस १ तोला मधु ६ माशा, मिलाकर ३-३ घन्टे बाद सेवन करें। इससे वात कफज दमा खांसी नष्ट होता है। यह श्वास रोग के लिए अधिक लाभकर है। इसका कारण यह है कि

वत्सनाभ कफ शोषक है तथा सोहागा कफ निःसारक है। मैंनशिल श्वास नाशक है तथा फुफ्फुसों की के शिकाओं को विस्फारित करता है। इससे श्वास कृच्छता नष्ट होती है। और तमक श्वास का वेग ठीक होकर श्वास नियमित होता है और सौंठ, मिर्च, पीपल का फेफड़ों पर संशामक प्रभाव होता है। अतः श्वास के दौरे में लाभकारी होता है।

श्वास नाशक औषधियां
(वायु प्रणाली विस्फारक)
(Bronchio Dilators)

इन औषधियों के प्रभाव से श्वास, कास तथा उसके वेगों का नाश होता है।

यथा—त्रिकटु, पीपलामूल, गजपीपल, धनियां, तुम्वरू, वंशलोचन, कुटकी, चिरायता, रास्ना, तेजवल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, कायफल, भारङ्गी, वाकुची, चक्रमर्द, लशुन, यवक्षार। जायफल, जावित्री, लवंग, बड़ी इलायची, कचूर, तालीसपत्र, पाढ़ल, शालपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, गोखरू, दशमूल, एरण्ड, आक के फूल, वासा दोनों गुञ्जायाण, इन्द्रायण, शरपुङ्खा, शारिवा, भृङ्गराज, मेढ़ासिंगी, गुम्मा, हुलहुल, स्थल कमलनी, बबूल गोंद, सप्तपर्ण, वहेड़ा, मुलेठी, लिसोड़ा, द्राक्षा आदि श्वास कास नाशक हैं।

फल—द्राक्षा, खजूर, पिण्ड खजूर, छुआरा प्रभृति।

पत्रशाक—पालक, बथुआ, कुल्फा आदि।

फल शाक—तोरी, परवल, लौकी, सहजने की फली, कंटकारी फल।

अन्न—गेहूँ, जव, रक्तशाली, मूंग, अरहर, कुलथी।

घृत—गौ, बकरी का दूध, घृत, तेल, शीतलचीनी, चन्दन आदि।

यूनानी—अञ्जीर, ईसवगोल, मुलेठी सत, उदविल सांगान्तुक, जुन्दवेदस्तर, तवासीर, संगयशव (व्योमाश्म) आदि।

आधुनिक औषधियां जो वायु प्रणाली के ऐंठन को ढीला करती हैं जिससे वायु प्रणाली फैल जाती है। अतः दमे का दौरा शान्त हो जाता है।

(क) प्राणदा नाडी के सारों पर अवसादजनक प्रभाव डालने वाली जैसे वेलाडोना वर्ग की औषधियां यथा एट्रोपिन।

(ख) नाड़ीशामक (Depressing the vagal ganglia) अवसाद जनक प्रभाव डालने वाली यथा किलोटीक, लोवेलीन और ग्रिण्डेलिया आदि।

(ग) वायु प्रणाली की पेशियां (Depressing the Bronchiol muscles) पर अवसाद जनक प्रभाव डालने वाली औषधियां यथा—नाइट्राप्स, वेञ्जोयल, वेञ्जोइट, एण्टी हिस्टेमीन औषधियां यथा टर्पोटाइल।

(घ) पिंगला नाड़ियों पर उत्तेजनादायक प्रभाव डालने वाली औषधियां यथा—ऐड्रीनलीन (Adrenalin) एफेड्रीन (Ephedrine)।

(ङ) अवसादजनक औषधियां यथा—ब्रोमाइडस, मार्फीन, क्लोरोफार्म, हायोसीन। यद्यपि, क्लोरल हाइड्रेट, अहिफेन और भांग श्वास प्रणाली की ऐंठन (Muscular spasm) को शिथिल करने का गुण रखते हैं परन्तु ये कभी कभी श्वास प्रणाली विस्फारक (Bronchial dilators) की भांति भी प्रयोग आते हैं।

कभी-कभी तमक श्वास के दौरे में विश्राम देने के लिये क्लोरोफार्म, एमाइलनाइट्रेट, पोटासियम नाइट्रेट का प्रयोग होता है और कहीं पर मार्फीन का इञ्जेक्शन काम आता है।

कफावृत वातोल्वण शुष्क तमक श्वास में स्नेह स्वेदन

पुराने गौ के घी में थोड़ा नमक मिलाकर दायीं पसली पर मल कर स्वेदन करें। इस भांति दिन में कई बार करें इससे लाभ होता है। नीचे लिखे प्रयोग का सेवन करावें—

श्वास चिन्तामणि रस १ रत्ती, श्वासकुठार १ रत्ती, अपामार्ग क्षार १ रत्ती, मिश्रित १ मात्रा।

अनुपान—सरसों का तेल ६ माशा और पुराना गुड़ ६ माशा को प्रातः, सायं, मध्याह्न काल तथा रात को सोते समय प्रयोग करें। इसके वाद वनप्सादि क्वाथ चीनी मिलाकर पिलावें। इससे अत्यधिक लाभ होता है।

सितोपलादि चूर्ण ६ माशा, यवक्षार ४ रत्ती मिश्रित १ मात्रा।

अनुपान—वासा शर्वत १ तोला, श्लेष्मान्तक शर्वत १ तोला, गांजवा शर्वत १ तोला इन तीनों को मिलावें। उसमें उपरोक्त योग मिलाकर ३-३ घण्टे में लगातार दें। भोजन के वाद—द्राक्षारिष्ट १ तोला, कनकासव १तोला, जल २ तोला मिलाकर पीवें भोजनोत्तर दोनों समय।

खर्जूराद्यवलेह

पिण्ड खजूर (निर्वीज) ४ तोला, मुनक्का काला ४ तोला, बड़ी हरड़ का छिलका ३ माशा, नागरमोथा ३ माशा, जवासा ३ माशा, काकड़ासिंगी ३ माशा, मुलेठी ३ माशा, भार्गी ३माशा, पीपल छोटी ३ माशा।

विधि—इनको कूट, पीस छानकर सब एक में मिला कर घोटकर रखें। मात्रा २ माशा लेकर विषम मात्रा में गोघृत, मधु मिलाकर दिन में ३ वार सेवन करें। इससे विशेप लाभ होता है। अथवा भार्गी गुड़ कण्टकार्यविलेह और भार्गी हरीतक्यावलेह (यो० र०) का भी प्रयोग लाभदायक है।

कफोल्वण आर्द्र श्वास चिकित्सा

शृंग भस्म १ रत्ती, श्वास कुठार १ रत्ती, रससिंदूर आधा रत्ती।

विधि—इनको एक में मिलाकर एक मात्रा वनावें।

अनुपान—पान का स्वरस ३ माशा, मधु ३ माशा मिलाकर ३-३ घंटे के वाद सेवन करें।

देवदाली योग—देवदाली (वंदाल) ५ तोला को लेकर कूटकर दो सेर जल में डालकर हाड़ी में पकावें। १ पाव जल रह जावे तव उसको छान लेवें। शीशी में रखें फिर उसमें लाल फिटकरी २ तोला और शुद्ध तूतिया १ तोला डालकर सुखा लेवें। मात्रा आधा रत्ती एक मुनक्का में रखकर प्रातः सायं सेवन करें। इससे कफ निकल जाता है, मल भी निकलता है।

शृङ्गाराभ्ररस (भै. र.)—शृङ्गाराभ्ररस १ रत्ती, अर्क लवण १ माशा, पान का रस ३ माशा, मधु ३ माशा मिलाकर ३-३ घंटे के अन्तर से सेवन करें।

तालसिंदूर (भै. र.)—तालसिंदूर ½ रत्ती, पान में रखकर चूसें। समय प्रातः सायं और भोजन के वाद।

मुक्तादियोग (च. चि.)—मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, लहसुनिया मणि पिष्टी, शंख भस्म, स्फटिक मणिपिष्टी, शुद्ध काला सुर्मा, मरकतमणिपिष्टी, माणिक्यपिष्टी, नीलम पिष्टी, अर्कमूल, छोटी इलायची, सेंधानमक, काला नमक, ताम्र भस्म, लोहभस्म, रजतभस्म, माणिक्य (याकूत) पिष्टी, कसेरू, जायफल, शन वीज, अपामार्ग वीज। विधि-इनमें प्रत्येक १-१ तोला लेवें। फिर अर्कमूलादि द्रव्यों को कूट पीस छान लेवें। फिर पिष्टियां और भस्म मिला कर खरल में ३ दिन घोटकर शीशी में रखें। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक। अनुपान-विषम मात्रा में गोघृत, मधु से सेवन करें। ३-३ घंटे के अन्तर से, यह अतीव लाभ कर सद्यः फलप्रद योग है।

मल्लसिन्दूरादि प्रयोग—मल्लसिन्दूर १ रत्ती, शुद्ध सर्जिका सत्व (खाने वाला सोडा) २ रत्ती, एक में मिलाकर प्रातः सायं शीतल जल से सेवन करें। इससे कफोल्वण श्वास में लाभ होता है।

श्वास संहार—शुद्ध संखिया, फिटकरी, कलमीशोरा, शुक्ति भस्म, चौकिया सोहागा, नवसादर, प्रत्येक समभाग लेकर सेंहुड के दूध की तथा अपामार्ग के पत्र स्वरस से क्रमशः सात भावना देकर टिकिया वना कर सुखाकर, मिट्टी की हांड़ी में चूना भरकर वीच में टिकिया रख कर पुनः उसके ऊपर चूना भरकर मुख वन्द कर लघु पुट दे देवें। टिकिया निकाल कर घोटकर शीशी में रखें। मात्रा आधा रत्ती से एक रत्ती, अनुपान दूध की शाढ़ी १ तोला में रखकर सेवन करें, दिन में तीन वार इससे वहुत लाभ होता है।

स्नोफीलिया संयुक्त तमक श्वास निषूदन—

शुद्ध तवकी हरताल, शुद्ध गौरीपाषाण (संखिया), जायफल, जावित्री, अजवाइन, खुरासानी अजवाइन, अजमोद, भांग के वीज, लौंग प्रत्येक ३-३ तोला, मालकांगनी ६ तोला, कस्तूरी १ माशा,केशर १ तोला,गुग्गुल ३ तोला, आवलासार गंधक ३ तोला। विधि—इन सवको एक में पीसकर पातालयन्त्र से तेल निकालें। इस तेल को सींक से वोरकर पान में लगाकर खाने से सद्यः श्वास रोग इसिनोफीलिया संयुक्त नष्ट होजाता है।

शोरक भस्म—कलमी शोरा को आक के दूध की सात भावना देकर गज पुट में फूंक देवें। मात्रा १ रत्ती, अनुपान—मधु, समय सायं-प्रातः।

काकिक्षार—नवसादर, सेंधानमक, सुहागा, कलमीशोरा, विधि—इनको समभाग लेकर गज पुट में फूंक देवें। मात्रा—१ रत्ती मधु से प्रातः सायं, रात्रि में देवें। यह श्वास नाशक है।

प्रतमकश्वास—

श्वासारिलोह ३ रत्ती, अनुपान—मुलेठी चूर्ण १ माशा, औकाकी ३ माशा, मधु ६ माशा, समय—४-४ घंटे के बाद सेवन करें।

श्वेतपलाण्डु प्रयोग—श्वेत पलाण्डु स्वरस १ तोला, मधु १ तोला मिलाकर सूर्योदय से प्रथम सेवन करें। ४० दिन लगातार सेवन करने से पैत्रिक तमक श्वास में अपूर्व लाभ होता है।

शारदीय पौर्णमासिक प्रयोग माहात्म्यम्—स्नान पूजन करके तथा मन्त्र से अभिमन्त्रित कर प्रातः काल पीपल की हरीछाल को लेकर कूट छान कर लेवें। इसके पश्चात् शरद पूर्णमासी को खीर पकाकर थाली में रखकर ऊपर १ तोला चूर्ण डाल देवें, रात्रि भर थाली में रखी हुई खीर के ऊपर चन्द्र देव की शीतल किरणें पड़ती रहें। रोगी भगवानं धन्वन्तरि का श्रियंदेहि, जयंदेहि आरोग्यं-देहि, ऐसें मन्त्र से जप करता रहे। चार बजे उस खीर को खा लेवें। इससे श्वास रोग में अतीव लाभ होता है। रोगी प्रयोग कर लाभ उठावें।

पथ्यव्यवस्था—

गेहूं, जव, पुराना साठी, रक्तशालि, मूङ्ग, कुलथी अरहर की दाल, जंगल जीव, पक्षी, तीतर, लवा, बटेर, मोर, मुर्गा, खरगोश प्रभृति के मांस का रस, प्राचीन गौ का घी, बकरी दूध, घी, मधु, परवल, बेंगन, वनकुंदरू, चौलाई, बथुआ, पालक, सहजन की फली का शाक, नागफली के फल का शाक, कोष्ण जलपान प्रभृति सम्पूर्ण कफवात नाशक पदार्थ पथ्य हैं। शुष्क श्वास में दिवास्वाप पथ्य है। अजादुग्ध के अभाव में शुण्ठी, पिप्पलीशृत गौ दुग्ध भी अच्छा है। रोटी भोजन विशेष अच्छा है। यदि भात खाना हो तो सोंठ का चूर्ण मिश्रित करके खावें। मांस भोजी मांस रसों के साथ खावें।

खरगोश का ताजा रक्तपान सद्यः फलप्रद है।

अपथ्य व्यवस्था—

रूक्ष, शीत, गुरु अन्न, शीतल जल, बरफ का जल, शर्बत, भेड़ी का दूध घी, कन्द शाक, सेम, विदाही पदार्थ, सरसों राई आदि गरम मसाला, दही, उड़द की दाल, मछली आनूप जीवों का मांस, तेल से तले पदार्थ, कब्ज कारक पदार्थ, परिश्रम, मार्ग चलना, धूप सेवन, धूलि, धुआं में रहना, विषयभोग, बोझा ढोना, वेगावरोध, रक्तमोक्षण, पूर्वी हवा का सेवन प्रभृति कफ वात जनक पदार्थ अहितकर हैं।

—श्री पं. बालकराम प्राणाचार्य शास्त्राचार्य
प्रिंसिपल—काली कमली वाला आयुर्वेदिक कालेज
मु. पो. ऋषिकेश जि. देहरादून (यू. पी.)

दमा

सुश्रुत के अनुसार—

यैरेव कारणैर्हिक्का बहुभिः संप्रवर्तते ।
तैरेव कारणैः श्वासो घोरो भवति देहिनाम् ॥
—सुश्रुत उत्तरतंत्र (अध्याय ५१)

अर्थात्—जिन विदाही आदि बहुत से कारणोंसे हिक्का उत्पन्न होती है उन्हीं कारणों से मनुष्यों में भयानक श्वास उत्पन्न होता है। इसीलिए कहा है—

प्राणवायु प्रकृति को छोड़कर कफ के साथ मिलकर जब श्वास उत्पन्न करता है। तब इस अवस्था को श्वास रोग कहते हैं। क्षुद्रक, तमक, छिन्न, महान और उर्ध्व-श्वास भेद से श्वास नामक एक महान रोग पांच प्रकार का होता है।

पूर्वरूप—हृदय में पीड़ा, भोजन में द्वेष, बहुत बेचैनी, आनाह, पार्श्वों में शूल, मुख में विरसता ये पूर्वरूप हैं। कुछ भी काम करने से किसी को श्वास चढ़ने लगता है और बैठ जाने पर शान्त हो जाता है। उस श्वास को क्षुद्र श्वास कहते हैं। जिस श्वास में प्यास, स्वेद, वमन, अधिकता से हों, गले में घर्घराहट हो, खासकर बादल के

आने पर पीड़ा देवे, इस श्वास को तमक श्वास कहते हैं। तमक श्वास से पीड़ित, निर्बल, अन्नद्वेष करने वाला सोते हुए बड़े भारी शब्द के साथ कफयुक्त खांसता है तथा कफ के कम होने पर शान्त हो जाता है। सोने पर बढ़ता है। रोगी मूर्छा, ज्वर से पीड़ित हो उस श्वास को प्रतमक श्वास कहते हैं। आध्मानयुक्त वस्ति, मूत्राशय में दाह, वेदना के साथ जो प्राणि सम्पूर्ण रूप में रुका हुआ श्वास लेता है, उसे छिन्न श्वास कहते हैं। चेतना रहित, पार्श्वशूल से पीड़ित, शुष्क कण्ठ युक्त, जोर के शब्द के साथ शोथयुक्त आंखों वाला झुककर जिसमें श्वास लेता है, उसे महान श्वास कहते हैं। जिसमें हृदय वस्ति, शिर इन मर्मों के खिचने पर निश्चेष्ट बनकर जो मनुष्य बार-बार श्वास लेता है, ऊपर को देखता है, स्वर बैठ जाता है, उसे उर्ध्वश्वास कहते हैं।

दमा

इन श्वासों में क्षुद्र श्वास साध्य है, तमक श्वास कष्ट साध्य है, शेष तीन श्वास असाध्य हैं। दुर्बल रोगी का तमक श्वास भी असाध्य है। श्वास, कास, हिक्का, हृदय रोग में हरड़, विड़नमक और हींग से सिद्ध दश वर्ष पुराना घृत देना श्रेष्ठ है। सौवर्चल, हरड़, विल्व इनसे संस्कृत पुरातन घृत देवें अथवा विदारिगन्धादिगण के क्वाथ में पिप्पल्यादिगण का प्रक्षेप देकर घृत सिद्ध करें। पांचों नमक के प्रक्षेप के साथ घृत का उपयोग श्वास-कास को नष्ट करता है। हिंस्रा, विडंग, करंज, त्रिफला, त्रिकुट चित्रक इनके कल्क से चौगुने जल में एक प्रस्थ घी को दो प्रस्थ दूध के साथ सिद्ध करें। इसकी एक कर्ष मात्रा पीयें। यह श्वास और कास को नष्ट करता है। समूल पुष्प शाखा के साथ अडूसे का कषाय चार प्रस्थ लेकर इसमें एक एक प्रस्थ घी को अडूसा के मूल और पुष्प का प्रक्षेप देकर सिद्ध करें। इस शीतल घृत को मधु के साथ मिलाकर खायें।

काकड़ासिंगी, मधूलिका, भार्गी, सोंठ, रसौत, शर्करा, मुस्ता, हल्दी, मुलहठी प्रत्येक समान भाग लेकर इनके कल्क से चारप्रस्थ शीतल जल में एक प्रस्थ घी बुद्धिमान सिद्ध करें। यह घृत श्वास कास को नष्ट करता है। सुवहा (निशोथ) कालिका भार्गी, शुकाख्या, जलवेत-सफल काकादनी, सोंठ, पुनर्नवा, कटेरी, कटेरी बड़ी प्रत्येक आधा कर्ष लेकर इनसे एक प्रस्थ घृत, दो प्रस्थ जल में पकायें। यह कटु उष्ण घृत पीने से श्वास रोग नष्ट करता है। सौवर्चल, यवक्षार, कुटकी, त्रिकुट,चित्रक, वच, हरड़, विडंग इनके कल्क से जल में सिद्ध किया घृत श्वास को नष्ट करता है। सारिवा क्वाथ घी से दुगना लेकर, इसमें सिद्ध किया घृत श्वास नाशक है। तालीश, भूँई आंवला, वच, जीवन्ती, कूठ, सैंधव, विल्वपुष्करमूल, रोहिष घास, सौवर्चल, पिप्पली, चित्रक, हरड़, तेजबल इनके कल्क से एक द्रव्य की अपेक्षा हींग चतुर्थांश मिला-कर घी से चार गुने जल में घृत सिद्ध कर लें। यह घी सब प्रकार के श्वास को नाश करने में श्रेष्ठ है। वासाघृत षट्पलघृत, श्वास रोग में उत्तम है। तैल से दशगुने भांगरे के निर्मल स्वरस में सिद्ध किया तैल उचित विचारणा एवं अच्छपान विधि से सेवन करने पर श्वास कास को नष्ट करता है। बटेर आदि विष्किर प्राणियों के मांसरस में अनारदाना, बिजौरा आदि अम्ल, घी या तैल स्नेह और उत्कट सैंधव मिलाकर देवें। हरिण आदि के शिरों से बनाये मांसरस अथवा कुलथी के भली प्रकार संस्कृत यूष श्वास और कास को नष्ट करते हैं।

बृहत पञ्चमूल आदि वातहर द्रव्यों से संस्कृत दूध श्वास कास को नष्ट करते हैं। पंचलेह (१) तिमिर के बीज, कर्कटश्रृङ्गी, सज्जीखार (१) धमासा, पिप्पली, कुटकी, हरड़ (३) सेह, मोर इनके रोम, कोला (चव्य), पिप्पली, तण्डुल (४) भार्गी की छाल, सोंठ, शर्करा,शल्लक की छाल (५) वृत कौण्डक के बीज अकेले। इन लेहों को घी और मधु के साथ कास,श्वास से पीड़ित मनुष्यों को चटाना चाहिए। सप्तछन्द के पुष्प, पिप्पली इनका चूर्ण करके मस्तु के साथ पीयें। धाना को चूर्ण करके मधु के

साथ खायें। जौ को आक के पुष्प एवं कोमल पत्तों के क्वाथ से बहुत बार भावना देकर इन जौ का सत्तू बनावें। इस सत्तू को मधु के साथ श्वास रोग से पीड़ित पियें। शिरीष के फूल, केले का फूल, कुन्द का फूल, पिप्पली इनको चावल के धोवन के साथ पीने पर सम्पूर्ण प्रकार के श्वास नष्ट होते हैं। बेर की मज्जा, मूसली, हरिण चर्म की राख, इनको मधु के साथ चाटे अथवा भार्गी को घी और मधु के साथ चाटे। लघु कदम्ब के बीजों को मधु के साथ चावल के पानी के साथ पीयें। द्राक्षा, हरड़, पिप्पली कर्कटश्रृंगी, धमासा इनको घी और मधु के साथ चाटने पर भयानक श्वास भी नष्ट होते हैं। हल्दी, मरिच द्राक्षा, गुड़, रास्ना, पिप्पली, कचूर, इनको समभाग लेकर तैल से चाटे, हित भोजन करें।

गाय के गोवर के स्वरस में घी, मधु, पिप्पली मिलाकर या घोड़े की लीद में घी, मधु पिप्पली मिलाकर श्वास और कास में चाटें। भार्गी की छाल, त्रिकुट, तैल, हल्दी, कुटकी, पिप्पली, मरिच, चण्डा और गोवर का रस इनको चाटें। अंकोठ के बीजों से लप्सी बनाकर खाने पर भयङ्कर श्वास भी ठीक हो जाता है। पुरातन घृत, पिप्पली, कुलथी का यूष, जांगल मांस रस, सुरा, कांजी, हींग, बिजौरे का रस, मधु, द्राक्षा, आंवला, बिल्व ये श्वास और कास व हिक्का रोगियों के लिये उत्तम हैं। श्वास और हिक्का से पीड़ित रोगियों को स्नेहन देकर स्वेदन देवें। रोगी को सेंधव मिश्रित तिल तैल से अभ्यङ्ग करके स्वेदन देवें। इससे रोगी का स्रोतों में स्थित जमा कफ पिघलता है और वायु शान्त होती है। स्नेहन देकर फिर मांस रस के साथ भात खिलावें। वायु कफ का अनुबन्ध होने पर वैद्य रोगी को धुंआं देवे। मैंनसिल, देवदारु, हल्दी, तेजपत्र, गुग्गुल, लाख, एरण्डमूल, इनसे वर्ति बनाकर विधिपूर्वक धूम देवे। गाय के सींग, बाल, खुर, स्नायु खाल इन सबको धूम के लिए बरते। तुरुष्क शल्लकी, गुग्गुल और पद्माख इनका हलुवा खिलाना आवश्यक है। इन सब धूमों में घृत मिला कर प्रयोग करें। बलवान एवं कफ से पीड़ित रोगी को वमन और विरेचन देवें। दुर्बल एवं रूक्ष व्यक्ति का संतर्पण करना चाहिये। इसके लिए जांगल मांसऔर मृग का मांस या आनूप मांस भली प्रकार संस्कृत करके देवे।

असेवनीय पदार्थ—सेम, उड़द, तिल की चटनी, तिल तैल, चावल का आटा, कमल ककड़ी (बिस) कब्ज करने वाले, जलन करने वाले, भारी पदार्थ, दही, कच्चा दूध, वेगों को अर्थात मल-मूत्रादि को रोकना—ये त्याज्य हैं।

सामान्य चिकित्सा

श्वास के रोगी को प्रथम स्वेद देना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिये लवण मिश्रित तैल से भीगे हुये नाड़ी स्वेद अर्थात् हलुआ बनाकर स्वेद देना चाहिए।

वमन—स्वेद होने के उपरान्त शीघ्रता से वमन का कराना हितकर है अन्यथा पिघला हुआ श्लेष्मा पुनः शुष्क हो जायेगा। अतः चावलों को दही के साथ खिलाकर वमनकारक औषध देनी चाहिये। मैंनफल ४ तोला को आधा सेर जल में पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर सेंधव, पिप्पली, मधु मिलाकर देना चाहिये। यदि इस प्रकार भी कफ शेष रह जाये तो धूम का प्रयोग करना चाहिये। इसके लिये हल्दी, जौ, एरण्डमूल, लाक्षा (लाख) मैंनसिल, देवदारु, इलायची, जटामांसी इन सबको बराबर लेकर पीस कर बत्ती बनालें। घी चुपड़कर बत्ती पियें। एक शकोरे में मोम और राल को घृत में मिलाकर उसमें अंगारा रखकर दूसरा शकोरा जिसमें पेंदी में छिद्र हो, ढककर नलिका लगाकर धुंआ पीना चाहिए। इसी प्रकार गाय का सींग या गाय की पूंछ के बालों का धूंआ पीना चाहिए। एरण्ड की नाल को घृत से तर करके या कुश की सूखी नाड़ी को घृत से तर करके पीना चाहिए या पद्माख, गुग्गुल, लोध, देवदारु की लकड़ी के चूर्ण को पीसकर घी में मिलाकर वर्ती करके पीना चाहिए।

(१) कटेली का यूष (रस), छोटी कटेली, बेल की गिरी, काकड़ासिंगी, जवासा, गोखरू, गिलोय, कुलथी, चीता, इन आठ द्रव्यों को समान मात्रा में कुलथी को छोड़ कर शेष सात द्रव्यों में प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर एक सेर जल में पकाना चाहिए जब आधा रह जाये तो छानकर कुलथी की दाल २ तोला डालकर पकाना चाहिए। फिर छानकर यूष में पीपल, सोंठ, नमक उचित मात्रा में मिलाकर पिलावें। घृत से छौंक दे लें तो अच्छा है केवल जीरे से।

(२) **रास्नादि यूष**—रास्ना, खरैटी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, चीता। इनको भी ऊपर की भांति पकाकर पीपल, सोंठ, नमक मिलाकर मूंग का यूष बनाकर छौंक देकर पिलाना चाहिए।

क्षार यूष-विजौरे नीबू के पत्ते, नीम के पत्ते, कुलक वृक्ष के पत्ते, परवल के पत्ते या किसी एक को स्वतन्त्र रूपेण पकाकर इस रस में मूंग की दाल उचित मात्रा में सोंठ, मिर्च, पीपल मिलाकर क्षार यूप पकाना चाहिये। यवक्षार, सैंन्धव,सहंजना की फली मरिच युक्तिपूर्वक मिला देना चाहिये। यह श्वास, हिचकी को नष्ट करता है।

(४) यवागू—भोजन में पुराना साठी का चावल या गेहूँ लेना चाहिए। पुराने चावलों से बनी यवागू (पतली खिचड़ी) घृत में हींग भूनकर, काला नमक, जीरा, विडनमक, पोहकर मूल, चीता, काकड़ासिगी से साधित यवागू श्वास और हिचकी तथा श्वास से पीड़ित रोगी को देना चाहिए।

श्वास रोगी को पेय जल-

१. दशमूल का आधा पका क्वाथ या देवदारू का क्वाथ पीने के लिए प्यास लगने पर देना चाहिए।

२. हींग, काला नमक, वेर छोटा, अरलू, पीपल, वला इनको घृत में भूनकर बिजौरे के रस के साथ पीसकर कांजी के साथ पीना चाहिये।

३. काला नमक, सोंठ, भारंगी, इसमें दुगुनी शक्कर मिलाकर गर्म जल से खायें तो श्वास और हिक्का का नाश होता है।

चार योग

पित्त से उत्पन्न श्वास हिक्का-

(१) सिरस के फूलों के स्वरस अथवा सप्तपर्ण के स्वरस में पीपल और मधु मिलाकर देना चाहिए। (२) भूसी गेहूँ के आटे की ३ तोला, वंशलोचन, सोंठ, पीपल एक-एक तोला घृत से उत्कारिका (लपसी) बनाकर रोगी को दें। (३) दूध में अथवा घृत में सोंठ, मिर्च, पीपल मिलाकर साठी के चावल खाने के पश्चात् अनुपान रूप में पीना चाहिए। (४) मुलहठी, पीपलामूल के चूर्ण को गुड़, गोवर का रस, मधु और घृत इन सबको मिलाकर खावें।

दो योग-

(१) कफ की प्रवलता में गधा, घोड़ा, ऊंट, सूअर, मेंढ़ा, हाथी इनमें से किसी एक के विष्टा के रस को मधु में मिलाकर पीना चाहिए। (२) असगन्ध को जलाकर इसकी भस्म को पानी में घोलकर छान लेना चाहिए। पीछे नीचे बैठे क्षार को मधु और घी के साथ श्वास रोगी

शठ्यादि चूर्ण—(१) कचूर, पीपलामूल, जीवन्ती, दालचीनी, नागरमोथा, पोहकर मूल, तुलसी, भूमि आंवला, पीपल, अगर, सोंठ इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण से अठगुना बूरा मिलाकर ६ माशे मात्रा में गर्म जल से दिन में तीन मात्रा खावें। श्वास, कास, हिचकी को नाश करता है।

(२) मुक्ताद्य चूर्ण—मूंगा, मोती, विल्लौरी पत्थर, शंख, स्फटिक इन पांचों को सूक्ष्म चूर्ण (भस्म नहीं),सुरमा का चूर्ण, काच, गन्धक शोधित, इलायची, काला नमक, सैंधा नमक, ताम्र भस्म, लोह भस्म, रजत भस्म, कमल, कसेरू, जायफल, शन के फल, अपामार्ग के चावल। इन सबके चूर्ण को १ तोला शारीरिक वलानुसार घी और शहद के साथ चाटने के लिए देना चाहिए। इसीके चूर्ण को आंखों में आजने से तिमिर, काच, नीलिका, पिष्टक, तम, कण्डू, अभिष्यन्द मर्म भी नष्ट होता है।

लेह्य योग—(१) कचूर, पोहकर मूल के चूर्ण को मधु के साथ चाटना चाहिए। (२) आंवले के चूर्ण को मधु से साथ चाटना चाहिए। (३) लोह भस्म को मधु से साथ चाटना चाहिऐं। (४) शक्कर, भूमिआंवला, मुनक्का, गाय, घोड़े के मल के रस को गुड़ और सोंठ के साथ मिलाकर चाटना चाहिए। इसी का नस्य भी लें।

श्वास पर स्वानुभूत—एक पाव आटे को पूरियां करने योग्य मांड लें, उसकी एक रोटी बनाकर उसके ऊपर एक छटांक हल्दी के ४-४ टुकड़े करके रख दें, उसकी लोई बनाकर कीकड़ के अंगारों पर जलने तक रख दीजिए। जब ऊपर से जलकर काली हो जावे तब उतारें, शीत होने पर हल्दी निकाल लें। पीस छानकर ३-३ माशे गर्म जल से दिन में तीन बार देने से श्वास ३ दिन में ही नष्ट हो जाता है। यदि कुछ कमी रह जावे तो ३-३ दिन छोड़कर एक माह सेवन करने से श्वास कास नितांत ठीक हो जायगा।

कफकेतु रस—शुद्ध विष १ तोला, पिप्पली चूर्ण १ तोला, शंखभस्म १ तोला, सुहागा १ तोला-अदरक के रस में खरल करें। आधी-आधी रत्ती वटी बनालें। प्रतिश्याय कास, श्वास, तमक श्वास, कण्ठ का कफ हो, इन रोगों में अदरख शहद के साथ कण्ठ आदि में क्षत के कारण भयंकर ज्वरों में शीघ्र लाभ करता है।

श्वास पर स्वानुभूत—अजवायन २ तोला, लौंग २

तोला, सैंधव २ तोला, मुलहठी २ तोला एक मीठे अनार को आधा काटकर उस आधे अनार से दाने निकाल कर उपर्युक्त औषधियों को पीस कपड़छन कर उन दोनों को मिलाकर सिल पर पीस लेवें। उस निकले हुए दानों वाले भाग में भर दें। दूसरे दानों वाले भाग को, औषधि वाले भाग को रख कपड़मिट्टी करके पुट पाक विधि से अर्थात् कपड़ मिट्टी को सुखाकर धूप में ५ उपलों की अग्नि दें। शीतल होने पर ऊपर के जले भाग को हटाकर पीस लें। एक रत्ती मात्रा में पान में रखकर दो समय खावें।

शास्त्रीय चिकित्सा—

यवान्यादि क्वाथ—अजवायन, पीपल, अडूसे के पत्ते और कुड़ा की छाल इन चार औषधियों का क्वाथ करके पीवें तो श्वास रोग दूर होता है। कटेरी, कुलत्थी, अडूसा और सोंठ इनके क्वाथ में पोहकरमूल का चूर्ण मिलाकर पीवें तो श्वास रोग दूर होता है।

चूर्ण—हरड़-बहेड़ा-आंवला और पीपल इन चारों औषधियों का चूर्ण कर मधु के साथ चाटें तो मल का भेद हो, अग्नि प्रदीप्त होवे और श्वास दूर होवे। कायफल, नागरमोथा, कुटकी, सोंठ, काकड़ासिंगी और पुष्कर मूल इन ६ औषधियों का चूर्ण करके मधु के साथ अथवा अदरक के रस से सेवन करें तो श्वास रोग दूर होता है। कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासींगी, नागरमोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल और कचूर इन आठ औषधियों को पृथक-पृथक कूट कर अथवा सबको एक ही स्थान पर कूट कर चूर्ण करें। फिर अदरख के रस से अथवा मधु के साथ मिला कर दें तो श्वास रोग दूर होता है। सोंठ, संचर नमक, भुनी हुई हींग, अनारदाना और अमलवेत इनका चूर्ण गर्म जल के साथ लेवे तो श्वास रोग दूर होता है।

च्यवनप्राशावलेह—सिरस, अरनी, कासमर्द, बेल-वृक्ष की जड़, स्योनापाठा, गोखरू, शालिपर्णी, पृश्णिपर्णी, दोनों कटेली, दोनों पीपल, काकड़ासींगी, दाख, गिलोय, हरड़, खरेटी, भूमि आवला, अडूसा, ऋद्धि, जीवन्तिका, कचूर, जीवक, ऋषभक, नागरमोथा, पौहकरमूल, कौआ-ठोड़ी, मूंगपर्णी, मांषपर्णी, विदारीकंद, साठी, काकोली, कमल, मेदा, महामेदा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन ये सब औषधि ४-४ तोला लेकर थोड़ा-थोड़ा लेकर कूटलें फिर बड़े-बड़े आंवले ५०० लेकर बड़े मटके में डालें। उसमें १०२४ तोला पानी डालकर पकावें। जब उसका आठवां भाग शेष रह जावे तब उन औषधियों में से ५०० आंवलों को निकाल लेवें, फिर उन आंवलों को छील कर कलई किये हुए पात्र के ऊपर वस्त्र को दृढ बांध के उसके ऊपर रख सख्त हाथ से अत्यन्त मर्दन करें। फिर नीचे उतरे हुए आंवलों के मगज में २८ तोला घृत डालकर मंद अग्नि पर थोड़ासा भूनकर फिर पूर्वकिया हुआ क्वाथ और अर्वतुला परिमाण खांड डालना। जब तक वह कठिन न हो जावे तब तक पकावें। ऐसे इसको तेल की रीति से सिद्ध करें। बाद में पीपल ८ तोला, वंशलोचन १६ तोला, दालचीनी, इलायची और तेजपात ये औषधि ३ शाण परिमाण मिलावें। तब अवलेह को इकट्ठा करके उसमें २४ तो० मधु मिलावें। यह च्यवनऋषि का कहा हुआ च्यवनप्राश संज्ञक अवलेह है। यह श्वास रोगों का नाश करता है।

कंटकारी अवलेह—भटकटैया ४०० तोला प्रमाण लेकर थोड़ी थोड़ी कूटकर उसमें एक द्रोण (१०२४ तो०) पानी डालकर चौथाई पानी शेष रहे तब तक कषाय करके फिर उस काढे को छानना और उसमें इन औषधियों का चूर्ण मिलाना—गिलोय, चव्य, चीता, नागरमोथा, काकड़ासींगी, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवासा, भारंगी, रास्ना, कचूर ये बारह औषधि ४-४ तो० लेकर इनका चूर्णकर उस काढ़े में डालें। खांड ८० तोला, घृत और तेल ३२तो. डालना। ये सब औषधि डालकर औटाकर अवलेह करके ठण्डा करना, फिर इसमें ३२ तो० मधु और १६ तो० बंशलोचन तथा पिप्पलियों का चूर्ण उस अवलेह में मिला कर दृढ़ मिट्टी के पात्र में डालकर ठीक रीति से रखना चाहिए। यह अवलेह नित्य सेवन करने से हिचकी की पीड़ा और श्वास-कास रोगों का नाश करता है।

दशमूल, कचूर, रास्ना, पिप्पलीमूल इनसे विधिपूर्वक सिद्ध की गई यवागू अथवा क्वाथ खांसी, श्वास की शांति के लिए रोगी को पिलावें। पुष्करमूल, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, चकोत्तरा, अम्लवेत्ती इनके साथ घी, विडलवण, हींग के साथ अन्न और पान का प्रयोग करें।

पाठादि संधान—पाढ़ल, मुलहठी, रास्ना, धूपसरल तथा देवदारु टुकड़े करके धोकर सुरामण्ड के पात्र में डाल दें। इसको हल्का नमकीन करके रोगी को २ पल पिलावें तो हिक्का और श्वास शांत हो जाते हैं।

हींग, काला नमक, बेर लज्जावन्ती, पिप्पली, वला-(खरैंटी) चकौत्तरे के रस में पीसकर कांजी के साथ पीवें. इसे हिंग्वादियोग कहते हैं। कालानमक, सोंठ, भारंगी प्रत्येक १-१ भाग, शक्कर दो भाग गर्म पानी के साथ पीवें। भारंगी और सोंठ दोनों के कल्क को तथा मिर्च और जवाखार को तथा दारुहल्दी, चित्रक, हाफरमाली तथा मूर्वा जल के साथ पीवें। यह हिक्का श्वास में लाभ करता है।

श्वास की चिकित्सा

शास्त्रीय

श्वास और हिक्का से पीड़ित मनुष्य को विशेष करके नमक और तेल संयुक्त स्निग्ध स्वेदन क्रियाओं से उपचार करें। इस उपचार के करने से कफ टूट जाता है और श्वास नष्ट हो जाता है और वात भी शान्त हो जाती है। स्वेदन क्रिया से जब पसीना निकल चुके तब उस रोगी को मांस के रस के साथ भात देवें तथा शहद के साथ अदरक का रस पिलावें तो श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, जुखाम और कफ दूर होता है। वहेड़े ६४ तोले लेकर उनकी गुठली निकाल डालें, फिर उनको बकरे के मूत्र में पकावें। उसमें शहद मिलाकर चाटने से श्वास और खांसी दूर हो जाती है। देवदारु, खरेंटी और बालछड़ (जटामांसी) इनको एकत्र पीसकर वत्ती बनावें, उस वत्ती को घी में सानकर उसका धुंआ पान करने से महादारुण श्वास भी दूर हो जाता है। दशमूल, कचूर, रासना, पीपल, अतीस, अण्ड की जड़, काकड़ासिंगी, भुई आमला, भारंगी, गिलोय, सोंठ और चीता इनकी विधिपूर्वक बनाई हुई यवागू अथवा क्वाथ को पीने से श्वास, हृदय की जड़ता, पसली की पीड़ा, हिचकी और खांसी दूर हो जाती है। दशमूल का क्वाथ बनाकर उसमें अण्ड की जड़ का (अथवा पोहकर मूल का) चूर्ण डालकर पान करने से श्वास, खांसी और पसली की पीड़ा दूर होती है। केला, कुन्द और सिरस इन सबके फूलों को पीपल के साथ पीसकर चावलों के जल के साथ पीने से श्वास दूर हो जाता है। काकड़ासिंगी, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पोहकर मूल, कचूर और कालीमिर्च इन सब को एकत्र पीसकर चूर्ण बनावें। फिर उस चूर्ण को खांड में मिलाकर गिलोय, अडूसा तथा पञ्चमूल के क्वाथ में मिला कर पियें तो भयंकर श्वास भी तीन दिन में नष्ट हो जाता है। जहां 'पञ्चमूली' शब्द साधारण है वहां पित्त पर लघु पंचमूली और वात पर तथा कफाधिक्य वात पर वृहत्पंचमूली लेना चाहिये। पेठे की जड़ के चूर्ण को कुछ-कुछ गरम जल के साथ पीने से श्वास और दारुण खांसी दूर हो जाती है। हल्दी, मिर्च, दाख, पीपल, रास्ना, कचूर और गुड़ इन सबको सरसों के तेल में मिलाकर चाटने से भयंकर प्राणों को हरने वाला भी श्वास नष्ट हो जाता है।

भार्ङ्गी गुड़—भारंगी ४०० तोले, दशमूल की औषधि ४०० तोले और हरड़ ४०० तोले लेकर चौगुने जल में पकावें। जब पकते-पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उसको उतार कर वस्त्र में छान लेवें, फिर उसमें ४०० तोले गुड़ और उसी क्वाथ में की हरड़ डालकर मंद-मंद अग्नि से धीरे-धीरे पकावें, जब पकते-पकते सीरे के समान हो जाय तब उसमें शीतल होने पर २४ तोले शहद मिला देवें तथा सोंठ ४ तोले, मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात ४ तोले, इलायची ४ तोले और जवाखार २ तोले, इनका चूर्ण करके मिला देवें। फिर इसमें से प्रतिदिन १ हरड़ और दो तोले इस अवलेह को सेवन करें तो इससे महादारुण श्वास, पांच प्रकार की खांसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म, अतिसार और क्षय रोग नष्ट होता है। यह 'भारंगी गुड़' इस नाम से प्रसिद्ध है। भारंगी गुड़ अवलेह स्वर और वर्ण को उत्तम करने वाला और जठराग्नि को दीपन करने वाला है।

महाकट्फलादि—कायफल, अण्ड की जड़, काकड़ा-शिंगी, अजवायन, कलौंजी, सोंठ, मिर्च और पीपल इन आठ पदार्थों को समान भाग लेकर चूर्ण करके बकरी के दूध के साथ पीने से घोर खांसी युक्त भी श्वास अवश्य नष्ट हो जाता है।

दशमूल रस—श्वास को जड़ से नष्ट करने के लिये दशमूल का रस सेवन करना चाहिए, जो मनुष्य श्वास से अवश्य मरने वाला हो वह मनुष्य भी इसके प्रसाद से सौ वर्ष तक जीता है।

श्वास कुठार रस—पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, सुहागा १ तोला, मैनसिल १ तोला

और काली मिर्च ८ तोले इन सबका बारीक चूर्ण करके उसमें दो तोले सोंठ का चूर्ण, दो तोले मिर्च का चूर्ण और दो तोले पीपल का चूर्ण अलग-अलग मिला देवें तो यह 'श्वास कुठार' नाम वाला रस सिद्ध होता है। इस रस में से दो रत्ती भर पान में रखकर खांय। इससे सब प्रकार के श्वास नष्ट होते हैं।

सूर्य्यावर्ती रस—पारा तथा गन्धक एक-एक भाग लेकर पहले निश्चन्द्र कज्जली करें। फिर उसमें घी कुवार का रस डालकर एक पहर तक मर्दन करें। फिर दो भाग ताम्र पत्र पतला-पतला लेवें और उस कज्जली के कल्क को उन पत्रों पर लेप कर देवें, फिर उसे एक हांडी में रख, मुख बन्द कर, चूल्हे पर रखकर एक दिन तक पाक करें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर लेवें। यह सूर्य्यावर्ती रस है। मात्रा दो रत्ती उपयुक्त अनुपान के साथ खाने से श्वास और कास को दूर करता है।

इन्द्रवारुणिकादि चूर्णम्—इन्द्रायणमूल, देवदारु और त्रिकुटा चूर्ण समभाग शक्कर मिलाकर खावें। इससे ऊर्ध्वश्वास का नाश हो जाता है।

विजयवटी—पारा, गन्धक, लोह, विष, अभ्रक, वायविडङ्ग, मोथा, रेणुका, इलायची, पीपरामूल, नागकेसर, सोंठ, पीपर, मरिच, हरड़, बहेड़ा, आमला, ताम्रभस्म, शुद्ध जमालगोटे, चीतामूल समभाग ले चूर्ण करें। फिर सबका दुगुना पुराना गुड़ मिलाकर, रोगी के बलानुसार मात्रा (२ या ३ रत्ती) प्रयोग करें, तो कास, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषम ज्वर, सूतिका रोग, ग्रहणी रोग, शूल, पांडु रोग तथा हाथ पांव आदि की जलन सब शांत होजाते हैं।

वासक प्रयोग—वांसा की जड़ तथा पत्र घी में पाक कर प्रातःकाल ही उठकर खाने से श्वास तथा क्षय रोग चले जाते हैं।

देवदार्वादि चूर्णम्—देवदारु, पीपरा, सोंठ इन का चूर्ण समभाग ले उष्ण जल के साथ पान करें तो ऊर्ध्व-श्वास नाश हो जाय।

लोह पर्पटी रस—पारा दो भाग, गंधक दो भाग तथा लोह भस्म १ भाग ले, एकत्र मर्दन कर निश्चन्द्र करें। फिर मृदु अग्नि पर पिघला कर गोबर पर रखे केले के पत्र पर डाल कर, केले ही के पत्र से तथा गोबर की पोटली से दवा देवें। इस तरह उसकी पपड़ियां बना लेवें। फिर उसे खरल में डाल चूर्ण कर, भारंगी, गोरखमुण्डी, अगस्त त्रिफला, जयन्ती, संभालु, त्रिकटु बांसा, घी ग्वार तथा अदरख प्रत्येक के रस अथवा काढ़े की ७-७ भावनायें पृथक-पृथक देवें। सूखने पर चूर्ण कर तांबे के पात्र में भर कर मुख बन्द कर मध्यम पुट में पाक करें। जब उसमें से गन्धक की गन्ध आने लगे, तब निकाल लेवें व ठण्डा होने पर चूर्ण कर लेवें। यह लोहपर्पटी रस हो गया। इसे उन-उन अनुपानों के साथ उपयुक्त मात्रा में सब रोगों में प्रयोग करें। एक माष लें। अनुपान-पान के रस से। श्वास तथा कास का नाश करता है। ऊपर से तुलसी काढ़ा पीपरा चूर्ण डाल कर या बांसे के पत्रों का रस पीवें। खटाई, तेल, मिर्च, बैंगन, पेठा, केले का फल ये अपथ्य हैं, इन्हें त्याग देवें। मांस रस आदि पथ्य देवें। खासकर कफ को बढ़ाने वाले आहार-विहार तथा स्त्री सम्भोगादि त्याग देवें।

ताम्र पर्पटी—ऊपर के लोह पर्पटी रस में लोह भस्म न देकर यदि ताम्र भस्म दिया जाय, तो ताम्रपर्पटी रस तैयार होगा।

पिप्पल्याद्यं लौहम्—पीपर, आमला, दाख, बेर की गुठली की गिरी, मुलैठी, शक्कर, विडंग, पोहकर मूल प्रत्येक समान भाग ग्रहण कर चूर्ण करें और सर्वसम लौह भस्म मिलावें। इसे उचित अनुपान के साथ उचित मात्रा में (५ रत्ती) देने से वमन, हिक्का, श्वास रोग, इन्हें तीन ही दिन में निश्चय ही नाश कर देता है।

श्वासकुठार—सुहागा, पारा, गन्धक, विष, मैनसिल, सोंठ, मिर्च तथा पीपर चूर्ण, सम भाग लें जल में ही पीसकर ५-५ रत्ती की वटिका बनावें। अनुपान-उष्ण जल अथवा छोटी कटेरी का काढ़ा। इससे पांचों खांसियां, कफज श्वास तथा शिरो रोग नाश हो जाते हैं (प्रयोग में १-१½ रत्ती से शुरू करें)।

श्वासकास चिन्तामणि—पारा, सोनामाखी भस्म, स्वर्ण भस्म १-१ भाग, मोती भस्म ½ भाग, गन्धक २ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग तथा लोह भस्म ४ भाग एकत्र घोटकर कटहेली का रस, बकरी का दूध, मुलैठी का काढ़ा और पान का रस प्रत्येक की ७-७ भावनायें देवें व २

रत्ती की गोलियां बना लेवें। इसे पीपरा चूर्ण और शहद के साथ सेवन करने से श्वास तथा कास को नाशकरता है।

श्वासकुठारो रस—पारा, गन्धक, विष, सुहागा, मैनसिल, मरिच, सौंठ, पीपरा तथा मरिच सम भाग लेकर एकत्र जल से पीस गोली बनावें। (एक या डेढ़ रत्ती की) इसे रोगानुसार अनुपान से देवें तो वात कफ से उत्पन्न श्वास, कास तथा क्षय रोग को दूर करता है।

अन्य श्वासकुठारो रस—पारा, गन्धक, विष,सुहागा मैनसिल, प्रत्येक १ भाग, मरिच चूर्ण ४ भाग, सोंठचूर्ण, पीपरा चूर्ण तथा मरिच चूर्ण प्रत्येक ३ भाग एकत्र खरल में घोटकर एकदिल कर लेवें। यह श्वास कुठार रस है। दो रत्ती की मात्रा में प्रयोग करने से श्वास तथा कास नष्ट हो जाते हैं। सन्निपात में जब मनुष्य वेहोश हो तो नाक के छेद में इसकी प्रधमन नस्य देवें। होश लाने में यह उत्तम दवा है। जुकाम, क्षतक्षीण, ग्यारहों प्रकार के क्षय रोग, हृदय के रोग, श्वास, शूल, स्वरभेद, दारुण, सन्निपात तथा घोर तन्द्रा और मोह युक्त सन्निपात भी इससे नाश होता है।

मुक्तादि चूर्ण—मोती, मूंगा लहसुनियां, शंख, स्फटिक, अंजन, दृढ़कांच (इनकी पिष्टियां), गंधक, आक, छोटी इलायची, सेंधा नमक, काला नमक, ताम्र भस्म, लोह भस्म, रजत भस्म, माणिक्य भस्म, सीस भस्म, जायफल, सन के बीज, अपामार्ग के बीज, इनके एक कर्ष चूर्ण को बराबर घृत मधु के साथ चाटने से हिक्का, श्वास तथा कास शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

अनुभूत योग—श्वास शमन—प्रवालपिष्टी, शुद्ध अंजन, पांचों नमक, भारंगी का घनसत्व, धतूरे का घनसत्व, त्रिफला का क्षार, पीपल का घनसत्व, भूम्यामलक का घनसत्व, गिलोय सत्व, काकड़ासिंगी का घनसत्व, शिलाजीत सत्व, कुचला का पानी, कचूर का चूर्ण, जवाखार, सज्जीखार, शंख भस्म, विभीतक मज्जा, वांसा घनसत्व, बंगभस्म, गन्धक जारित ताम्र भस्म, शतपुटी अभ्रक भस्म, सुवर्ण माक्षिक भस्म (गन्धक और एरंड से सिद्ध) हरिताल सत्व, सुवर्ण भस्म, शुद्ध वत्सनाभ, गोरखमुण्डी क्वाथ, जवासा स्वरस, छोटी इलायची क्वाथ, जायफल क्वाथ, नागकेशर क्वाथ, मुलैठी क्वाथ, ताम्बूल स्वरस और बकरी का दूध। वत्सनाभ पर्यन्त सब द्रव्य १-१ भाग उससे आगे के क्वाथ आदि १६-१६ भाग सबको घोटकर कल्क बनालें। फिर कुल वजन का बत्तीसवां भाग कज्जली मिला दें। आधी रत्ती की गोली बनालें। प्रातः-सायं मिश्री और पान में देवें। १० मिनट में दौरा समाप्त होता है।

श्वास

श्री विश्वम्भर दयाल सक्सैना जिला जालैन (म.प्र.)

श्वास रोग पर प्राप्त श्री सक्सैना जी के कुछ आयुर्वेदिक योग इस लेख में दिये हैं। अतः अविकल रूप से प्रकाशित कर रहे हैं। पाठक लाभ उठावें।

फेफड़े की वायु वहन करने वाली नलियों की छोटी छोटी पेशियों में जब अकड़न भरा संकोच पैदा होता है तब सांस (श्वास) लेने में तकलीफ होती है। बस उसी अवस्था को श्वास या साँस कहते हैं। इसके भेद निम्न हैं—

१. क्षयी श्वास २. तमक श्वास ३. ऊर्ध्व श्वास ४. क्षुद्र श्वास ५. महा श्वास।

लक्षण—कण्ठ घरघराना, पसली दर्द, बड़े कष्ट के साथ कफ निकले दम बढ़े यह तमक श्वास के लक्षण हैं। बहुत ऊंची श्वास खिंचे उसे ऊर्ध्वश्वास कहते हैं। घर-घराके जोर से श्वास आवे विकल हो खांसने की शक्ति न रहे उसे महाश्वास करते हैं।

परन्तु चिकित्सा की दृष्टि से इसे हम दो प्रकार की मानते हैं। १. शुष्क श्वास (Dry Asthma) २. तर श्वास (Humid Asthma)।

शुष्क श्वास—जिस दमे की खासी में कफ ज्यादा नहीं निकलता है उसे हम शुष्क श्वास या Dry Asthma कहते हैं।

तर श्वास—जिस दमे की खांसी में कफ ज्यादा निकलता है उसे हम Humid Asthma या तर श्वास कहते हैं।

अब मैं इस बारे में ज्यादा लिखना पसन्द यों नहीं करता कि इसको समझाने के लिये काफी समय नष्ट होगा तथा काफी विवरण देना पड़ेगा। अतः मैं अपने पाठकों से निवेदन करूंगा कि यदि वे इस बारे में कुछ पूछना चाहें तो मैं सहर्ष बताने के लिए तैयार हूँ।

चिकित्सा—इसके लिये मुख्य दवायें नीचे लिखी जा रही हैं।

योग नं० १—जंगली प्याज १ सेर, कद्दूकस करके किसी मिट्टी के कोरे पात्र में डालें ऊपर से सिरका विशुद्ध २ सेर उत्तम प्रकार का डालकर कूड़े के मुख को कपड़ मिट्टी करके कूड़े के ढेर में दबाकर ४० दिन तक रखा रहने दें फिर निकालकर कपड़े से छानकर रख लें। अर्क में दुगुनी शक्कर मिलाकर शर्बत को मन्दाग्नि पर पका लें जब चाटने योग्य बन जावे तब उतार कर किसी पात्र में रख लें।

मात्रा—१ तोला प्रातःकाल और यदि शुष्क श्वास हो तो ऊपर से गाजवान अर्क पीलें।

योग नं० २—गाय का दूध १ सेर लेकर किसी बड़े बर्तन में डालें और विशुद्ध काली संखिया की २ तोला की डली व एक मुर्गी का अण्डा साबित ही छोड़ दें। फिर इस बर्तन को चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि से पकायें और किसी चम्मच आदि से चलाते रहें यहां तक कि दूध रबड़ी हो जाय। अब अण्डे निकालकर रख लें तथा मावे को पृथ्वी में दबादें ताकि कोई जीव उसे खाकर न मर जाय। अण्डे की श्वेतता को भी दबा दें। पीले पदार्थ को किसी कागज पर फैलाकर छाया में रखकर सुखा लें फिर पीसकर शीशी में रख लें।

मात्रा—१ चावल के बराबर प्रातःकाल पान में रखकर खिलावें और दोनों समय कम से कम आधा पाव घी खाने को दें।

नोट—यह दवा बहुत ही फायदेमन्द है तथा गर्मी बढ़ाती है अतः इस दवा का व्यवहार सर्दियों में केवल ८ दिन करावें।

योग नं० ३ · श्वास हरी रसायन अपामार्ग बूटी जिसे ओंगा या लटजीरा कहते हैं १० तोला, सज्जी व तम्बाकू १० तोला, ऊंट का मूत्र ३० तोला।

विधि—तीनों औषधियों को पीसकर ऊंट के मूत्र में मिला दें तथा पुनः महीन पीस लें फिर किसी कूड़े में डाल कर कपरोटी कर नर्म स्थान में रख दें। तीन दिन के पश्चात पात्र के ऊपर सफेद रंग का जोहर निकलने लगेगा उसे खुरच कर रख लें।

मात्रा—१ या २ रत्ती अर्क गाजबान के साथ दोनों समय तथा सामर्थ्यानुसार घी खाने को दें।

योग नं० ४—चमत्कारी लवण—कटीली, अपामार्ग, बांसा, तम्बाकू बराबर बराबर मात्रा में लें।

विधि—सबको जला कर राख को ४ गुने पानी में निरन्तर ३ दिन तक भिगोकर रखें तथा लकड़ी से चलाते रहें। तीसरे दिन पानी निथार कर पकावें। पानी जल जाने पर केवल नमक मात्र शेष रह जावेगा।

मात्रा—२ रत्ती शहद के साथ चाटने से कफ को निकालकर सीने को साफ कर देगी।

योग नं० ५—कलमी शोडा ४ तोला, धतूरे के सूखे पत्र ४ तोला, लोबान सत्त ६ माशा, सौंफ देशी १० तोला।

विधि—सर्व प्रथम सौंफ को दो सेर स्वच्छ जल में उबालें जिस समय जल आधा रह जाय तो उसे उतारकर छान लें। इसके बाद औषधियों को खरल में डालकर इसी पानी की सहायता से कूटते जावें। जब जल सूखकर चूर्ण रह जाय तो समझिये कि औषधि तैयार है।

सेवन विधि जिस समय आवश्यकता हो तो इस चूर्ण को २ माशा की मात्रा में बरतते हुए कोयलों पर डालें तथा धूंये को रोगी द्वारा भीतर खिचवायें।

योग नं० ६—पीपरा मूल १ तोला, मैनसिल १ तोला, धतूरे की जड़ें ५ नग पत्तों सहित, आक के पत्ते १० नग छाया में सुखाये हुए, पुराना गुड़ ५ तोला, काली मिर्च १ तोला भली भांति कूटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा—२ गोलियों को हुक्के में रखकर पीने से श्वास में आराम मिलता है।

योग नं० ७—कड़वी तम्वाकू का बीज लेकर आधा सेर उपलों में जला लें फिर इस राख को ८ गुने पानी में डाल दें और तीन दिन तक पड़ा रहने दें। प्रतिदिन हिला दिया करें, फिर नियार कर मन्दाग्नि पर पकालें जब पात्र में नमक जैसी अमूल्य दवा वनकर तैयार हो जाय तव उसे रख लें।

मात्रा—१ रत्ती क्षार आधे पान के पत्ते में रखकर खिलाने से दुष्ट से दुष्ट श्वास में भी आराम मिलता है।

परहेज—तेल तथा खटाई से परहेज रखें।

योग नं० ८—विशुद्ध एलुवा खरल में डालकर बारीक पीस लें और पानी द्वारा १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१ गोली प्रति दिन जल के साथ सेवन करने को दें।

योग नं० ९—दमा दमन—२ तोला आक (मदार) के फूल लेकर आधा सेर दूध में औटावें। जव दूध में तीन उफान आ जाय तव उतार कर रख लें और फूलों को निकालकर रख लें तथा दूध को फेंक दें। जव फूल छाया शुष्क हो जायें तब दवा हेतु कार्य में लावें।

मात्रा—२ तोला शहद में मिलाकर के ५ दिन सुबह शाम चाटें रोग दूर हो जायेगा।

योग नं० १०—वहेड़ा के फल का वक्कल ५ तोला, लौंग, अनार का छिलका, कत्था प्रत्येक २½ तोला काली-मिर्च १ तोला, कपूर ६ माशा।

विधि—सवको कूट पीसकर रख लेवें।

मात्रा—६ माशा चूर्ण कांच की प्याली में शहद २ तोला व अदरख का रस ६ माशा मिलाकर ७ वार में थोड़ा-थोड़ा चाटें।

योग नं० ११—गांजा १ तोला, तम्वाखू १½ तोला, सोरा १ तोला, सौंफ १० माशा, कोडिया लोबान ४ माशा।

मात्रा—चूर्ण कर लेवें तथा १ माशा चूर्ण को चिलम में रखकर पीवें या अंगारों पर डालकर धूंये को खींचें।

योग नं० १२—भारंगी मूल त्वक (भारंगी की जड़ की छाल) तथा सोंठ समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवें।

मात्रा—३ माशा चूर्ण गर्म जल के साथ सेवन करने से दमा के दौरे में आराम मिलता है।

योग नं० १३—स्वर्ण क्षीरी (सत्यानाशी) जिसे देहातों में अधिकांश मनुष्य वंग कहते हैं उसके पंचाग का अर्क बनाकर रख लेवें।

मात्रा—१ तोला एक माह पर्यन्त पथ्यापथ्य का विशेप विचार कर प्रतिकूल वस्तु उपयोग में न लावें।

योग नं० १४—सर्पगन्धा का चूर्ण वनाकर रख लेवें

मात्रा—१५ रत्ती चूर्ण शहद के साथ चाटने से दमा में आराम मिलता है।

योग नं० १५—जब रोगी तड़प रहा हो, उसका खाना-पीना, उठना-बैठना दुस्वार हो तब ३ ग्राम सोम-कल्पलता चूर्ण को ताजे जल के साथ देने से आराम मिलता है।

योग नं० १६—पीपल छोटी, पोहकरमूल, हरड़, सोंठ, कचूर और नागरमोथा समभाग लेकर चूर्ण बना लेवें और दुगुनी खांड या गुड़ मिलाकर ६-६ माशे की गोलियां बना लें।

मात्रा—१ या २ गोली उष्ण जल से लेने में आराम मिलता है।

योग नं० १७—अब कुछ क्षारों को नीचे लिखूंगा जो कि अधिक श्वास पर चलती हैं। बनाने की विधि निम्न प्रकार है—

अपामार्ग क्षार, कटैया क्षार, अडूसा क्षार, आक क्षार, एवं कण्टकारी क्षार इत्यादि।

बनाने की विधि—उपर्युक्त लिखित वनस्पतियों में से किसी एक वनस्पति के पंचाग को लेकर छाया में शुष्ककर जला दें और राख को ८ गुने पानी में भिगो दें। तीन दिन भिगोकर रखें तथा उसे किसी लकड़ी से चलाते रहें तीसरे दिन पानी को निथार कर मन्दाग्नि पर पकावें। जव नमक मात्र दवा शेष रह जाय और पानी जल जाय दवा को रख लें।

मात्रा—१ से २ रत्ती पान में रखकर खाने से श्वास में आराम मिलता है।

योग नं० १८—२ तोला घी, ३ कलियां लहसुन की लेकर घी में भून लें और १ तोला शहद मिलाकर रोगी को खिला दें।

योग नं० १९—सफेद संखिया ५ तोले लेकर खरल में डालकर बारीक पीस लें और उसमें लहसुन का पानी डालते जावें यहां तक कि उसमें १० सेर पानी जज्ब हो जाय, इसके बाद पाव भर जायफल के जुशादा का पानी जो कि ५ सेर पानी औटाकर सवा सेर रह गया हो उसको भी खरल के द्वारा उसी दवा में प्रविष्ट करें बस, दवा तैयार है।

सेवन विधि—पहले २-३ दिन रोगी को खिचड़ी में घी मिलाकर खिलावें फिर जमालगोटा का जुलाब देकर पेट साफ कर दें अब रोगी को दो दिन तक बिना घी की खिचड़ी खिलायें और दवा का सेवन करावें।

मात्रा—१ रत्ती दवा ५ तोला घी मिलाकर खिला दिया करें और १० तोला से २० तोला तक घी पिला दिया करें। इस प्रकार एक सप्ताह के अन्दर दमा चाहे २० वर्ष पुराना क्यों न हो दूर हो जायेगा।

पथ्य—मूंग की दाल, रोटी, या घिया कद्दू का साग

परहेज—तेल, मिर्च, खटाई तथा स्त्री सहवास से दूर रहना चाहिए।

नोट—इस दवा को उसी रोगी को देना चाहिए जो घी का सेवन कर सके अन्य को कदापि नहीं।

योग नं० २०—पोहकरमूल की जड़ तथा कचूर व आमले का चूर्ण समभाग बनाकर रख लें।

मात्रा—३ से ४ माशा शहद के साथ दिन में ३-४ बार चाटने से आराम मिलता है।

अब कुछ रसों का वर्णन किया जा रहा है उनके बनाने की विधि एवं मात्रा आदि भी सविस्तार लिख रहा हूँ।

कफान्तक रस १—शुद्ध काला वच्छनाग १ तोला, हल्दी १४ तोले, सुहागे का फूला और पिप्पली १०-१० तोला।

विधि—समस्त वस्तुओं को कूट कपड़छन करके शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१-१ रत्ती पान में रखकर चूना लगाकर खाने से कफ सरलता से निकलकर आराम मिलता है।

हुतासन रस २—शुद्ध काला वच्छनाग १ भाग सुहागा की खील २ भाग और कालीमिर्च १२ भाग चूर्ण कर लेवें।

मात्रा—१ से ८ रत्ती तक शहद के साथ देनें से कफ का नाश होकर अग्नि की वृद्धि होती है।

वत्सानामाद्या गुटिका ३—काला शुद्ध वच्छनाग २ भाग, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) ५ भाग, चित्रकमूल २ भाग, हरड़ २ भाग, शुद्ध गुग्गुल २४ भाग लेकर गुग्गुल में समस्त औषधियों को मिलाकर चूर्ण कर लेवें और गोलियां बना लें।

मात्रा—३ रत्ती की १ गोली चूसने को रोगी को दें। दिन में ३-४ गोली चूसने से श्वास में आराम मिलता है।

कफकेतु रस ४—(i) शुद्ध काला वच्छनाग, अकरकरा, समुद्र फल १-१ भाग तथा कालीमिर्च चूर्ण २ भाग। विधि—चूर्ण कर अदरख के रस में १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा—१-१ गोली के सेवन करने से कफ का नाश होता है और रोगी को फायदा होता है।

(ii) शुद्ध काला वच्छनाग, सुहागा खील, पिप्पली, कालीमिर्च, अदरख और कौड़ी की भस्म समभाग लेकर चूर्ण बना लें।

मात्रा—१ या २ रत्ती दवा शहद के साथ सेवन करने से कफ का नाश होता है।

—श्री विश्वम्भर दयाल सक्सेना गुप्ता
पत्रालय—लिडऊपुर
जिला—जालौन (उ. प्र.)

कास

कास परिचय—

धूमोप घाताद्रजसस्तथैव, व्यायामरुक्षान्न निषेवणाच्च ।
विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव ॥
प्राणोह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्न कांस्यस्वनतुल्यघोषः।
निरेतिवक्त्रात्सहसा सदोषः, कासः सविद्भिर्भिषदाहृतस्तु ॥

अर्थात् श्वास और हिक्का इन दो रोगों के कारण जो कहे हैं। वे ही कारण कास रोग की उत्पत्ती में भी जानने चाहिए। धूम की पीडा से। धूल से व्यायाम, रुक्ष अन्न के सेवन से। भोजन के विमार्ग में जाने से, छीक के उपस्थित वेग को रोकने से प्राण वायु उदान वायु से मिल कर कुपित बनकर टूटे हुए कासे के पात्र के समान आवाज वाली सहसा मुंह से निकलती है। इस दुष्टि को वैद्य 'कास' कहते है। यह कास वायु-पित्त-कफ क्षय तथा क्षत के कारण पांच प्रकार का वैद्यों ने कहा है। बढ़ने पर कास यक्ष्मा रोग को उत्पन्न करता है।

पूर्वरूप—कास के होने से पूर्व गले में कण्डू, ग्रास का गले में रुकना, गले और तालु में मलवृद्धि प्रकृति शब्द मे थोड़ी विषमता, अरोचक, अग्निमांद्य ये लक्षण होते हैं। वात जनित कास मे रोगी के हृदय-शंख-शिर-उदर-पार्श्व में शूल रहता है। मुख क्षीण हो जाता है। बल स्वर और ओज घट जाता है। निरन्तर अन्दर में कफ रहता है। सूखी खांसी निरन्तर आती है। रोगी को स्वर भेद रहता है। ये लक्षण वायु से होते हैं। पित्त जन्य कास में छाती में विदाह, ज्वर, मुख शोष से पीड़ित मुख का स्वाद तिक्त, प्यास से पीड़ित, पित्त के कारण पीला कटु रस का वमन रोगी का शरीर पाण्डु वर्ण तथा दाह युक्त पित्त कास में होता है। कफ के कारण मुख के लिप्त रहने से शिथिल बना शिरोवेदनायुक्त, कफ से शरीर भरा होता है, रोगी को भोजन में अरुचि, भारीपन, शिथिलता रहती है। कफ के कारण खांसी में बद्ध कफ आता है। व्यायाम, भार, अध्ययन से या चोट लगने पर जिस पुरुष की छाती में विशेष पीड़ा होती है, वह मनुष्य वक्षस्थल में चोट लगने से बार-२ रक्त मिश्रित थूकता है। इस अवस्था को क्षतज कास कहते हैं। क्षतज कास में रोगी के शरीर में दर्द, ज्वर, दाह, मूर्छा एवं मृत्यु होती है। रोगी दिन प्रतिदिन दुबला बनता हुआ रुधिर और पूय मिश्रित थूकता है। मांस क्षीण हो जाता है। इसमें तीनों दोषों के लक्षण रहते हैं। वह [illegible] साध्य है। [illegible] में उत्पन्न प्रत्येक कास याप्य होता है।

[illegible] चिकित्सा -

काकड़ाश्रृंगी, व[illegible], कटफल, [illegible], [illegible], धनियां हरड़- भार्गी, देवदारु, सोंठ और हींग [illegible] गरम पानी से पीयें, इससे चिरकालीन कास भी शीघ्र नष्ट हो जाती

काकड़ाशृंगी

है। [illegible], [illegible], वायविडङ्ग, [illegible], रास्ना, वच, पद्माख, देवदारु प्रत्येक समान भाग लेकर इनको मधु, शर्करा और घी में लेह बनाकर चाटें। इससे शीघ्र

कास के भेद.

शुष्क कास	स्वर यन्त्र श्वास प्रणाली. कफ्फ प्रदाह, कण्ठव्रण शोथ क्षोभक धूम्र, नासिकास्थि वृद्धि बाह्य पदार्थ आदि.
श्लेष्म सहित कास	जीर्ण फुफ्फुस शोथ. फुफ्फुस विद्रधि. कफजकास, श्वास. यक्ष्मा फु॰ अर्बुदादि.
वेग सहित कास	कुत्ताखांसी फुफ्फुस शोथ. फु॰ अर्बुद, फुफ्फुसावरण प्रदाह, हृदयावरणद्रव.
उद्ध्मांसिका-युक्त कास.	स्वर यन्त्र शोथ, व्रण, एन्युरिज्म, वक्षोस्थि अर्बुद, गल ग्रन्थि-शोथ, अन्नप्रणाली, अर्बुद श्वास अन्नप्रणाली में बाह्य पदार्थादि.
दबी हुई कास.	पर्शुका भग्न. तीव्र फु॰ आ॰ प्रदाह. वक्षकी वात नाडियोंमें वेदना. तीव्र फु॰ शोथ. हृदयावरण-शोथादि.

ही प्रबल कास भी नष्ट हो जाता है। हरड़, सिता, आंवला, लाजा, पिप्पली और सोंठ इनको मधु और घी के साथ कास रोगी चाटे। पिप्पली और सेंधव को गरम जल से पीवें। सोंठ और पीपल (पिप्पली) के साथ गुड़ खायें। घी और मधु के साथ द्राक्षा को चाटें। द्राक्षा सिता पिप्पली, सोंठ, मुलैठी, वंशलोचन इनको समान भाग लेकर घी और मधु के साथ चाटें। अथवा मिश्री को मरिच के साथ खायें। आंवला, पिप्पली, सोंठ, मिश्री इनका चूर्ण करके दही के मांड के साथ पीयें। कास रोग से पीड़ित मनुष्य हरेणु, पिप्पली समान भाग लेकर दही के साथ पीवें। हल्दी, दारु-हल्दी, देवदारु, सोंठ, खैरसार इनको समान भाग लेकर वकरे के मूत्र या गरम पानी से पीवें। दन्ती, द्रवन्ती, तिल्वक, वेरी के पत्र--इनको घी में भूनकर सेंधव के साथ खायें। हींग को एक कर्प मात्रा में कांजी के साथ या बिजौरे के रस से पीवें। मरिच को मधु से चाटें भार्गी वच, हींग से वनाई वर्ति या वांस की छाल, इला-यची और नमक से वनाई वर्ति को घृत में मिलाकर धूम पीयें, ये वर्तियां कास में उत्तम हैं।

वात, कफ, खांसी रोगी — मुस्ता, हिंगोट की छाल, मुलैहठी, जटामांसी, मेंनसिल, हरिताल इनको वकरी के मूत्र में पीसकर वटी वनाएं। इसका धूम पीकर पीछे से दूध पीयें। मरिच के साथ सीधु को पीयें इससे कास हठ पूर्वक नष्ट होता है। द्राक्षा, मोथा, मजीठ, गुग्गुल से सिद्ध किए दूध में मधु मिलाकर पीवें। कटेरी, सोंठ, पिप्पली से सिद्ध किए मूंग को मधु के साथ खायें। इलायची, वेर

के पत्ते और प्रचुर सोंठ के साथ घी में उत्कारिका(लप्सी) बनाकर खायें। इलायची,वेर के पत्ते, सोंठ इनसे पतली पेय बनाकर शीतल करके मधु मिलाकर खायें। प्लीहा में जो कट्फल घृत कहा है, यह घृत वातजन्य कास को शीघ्र अच्छा करता है। विदारीगन्धादिगण से पकाया अथवा वासा स्वरस से पकया घृत वातकास को नष्ट करता है। वात कास में एरंड तेल आदि की स्निग्ध विरेचन देवें। आस्थापन, अनुवासन देवें, विना आलस्य के स्नैहिक धूम पीवें। सुहाता हुआ घृत पीवें। मांस रसों से वनाई यवागू वातहर द्रव्यों से सिद्ध दूध घृत युक्त लेह प्रशस्त है। वमन,विरेचन, शिरोविरेचन, धूम्रपान,कवलग्रह, उष्ण एवं कटु द्रव्योंसे वने अवलेह, विशोषण ये विशेषतः कफ कास को नष्ट करते हैं। त्रिकुट भी पथ्य है। वायविडंग के स्वरस में पकाया घृत, संभालु के पत्तों के स्वरस में पकाया घृत कफजन्य कास को शीघ्र नष्ट करता है। पाठा, विडनमक, त्रिकुट, विडंग, सैंधव, गोखरू, रास्ना, चित्रक, वला, काकड़ासिंगी, वच, मोथा, देवदारु, दुरालभा भार्गी, हरड़, कचूर इनके कल्क से द्विगुण घृत, घृत से द्विगुण कटेरी के स्वरस में सिद्ध करें। यह घृत श्वास, अग्निमांद्य स्वर भेद तथा पांचों कासों को नष्ट करता है। विदारीगन्धादि, उत्पलादि, सारिवादि और काकोल्यादि सम्पूर्ण मधुरगण इनके क्वाथ में गन्ना के रस, जल और दूधमें काकोल्यादि गण का कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करें। इस घृत में शर्करा मिला कर पित्तजन्य कास में प्रातःकाल पीवें, क्षय जन्य कास में भी पीवें। खजूर, भार्गी पिप्पली, पियाल, मधूलिका, इलायची, आंवला प्रत्येक समान भाग लेकर इनका चूर्ण करें। इसमें शर्करा, मधु, घृत, प्रचुर मात्रा में मिलाकर चाटें इसके सेवन से तीनों कास नष्ट होते हैं। मजीठ, हल्दी, सौवीरांजन, चित्रक, पाठा, मूर्वा, पिप्पली समान लेकर मधु के साथ क्षतजन्य एवं क्षयजन्य कास में चाटें। अथवा ईख के रस से पकाया घृत पीयें। आंवले के चूर्ण को घृत के साथ पकाकर हित भोजन करते हुए दूध पीवें। गेहूँ, जौ और काकोल्यादिगण का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर दूध से या मधु और घृत के साथ तीनों प्रकार के कासों में पीना चाहिए। गुड़ का शीतकषाय विधि से क्वाथ करके र कुछ गर्म करके ठण्डा करके मधु मिलाकर मरि काच चूर्ण खाकर इसको पीवें। आंवले का स्वरस तीन प्रस्थ इसमें शुद्ध गुड़ पचास पल मिलायें। इसमें पिप्पलीमूल, चव्य, जीरा, त्रिकटु, गजपिप्पली, हाऊवेर, अजमोद, विडंग त्रिफला, अजवायन, पाठा, चित्रक, धनियां प्रत्येक एक कर्ष, निशोथ चूर्ण आठ पल और तेल आठ पल मिलाकर यथावत् विधि से पाक करें। इसमें से एक कर्ष मात्रा को दालचीनी, इलायची, तेजपात इन सुगन्धित द्रव्यों को मिलाकर खायें। इसमें किसी प्रकार का परहेज नहीं। इससे सब ग्रहणी रोग, श्वास, कास, स्वरभेद, शोथ शान्त हो जाते हैं। यह चिरकाल से नष्ट हुई अग्नि को वढ़ाता है। तथा मैथुनशक्ति को वढ़ाता है। स्त्रियों की वन्ध्यता को नष्ट करता है। यह कल्याण गुड़ उत्तम है मृदु, मध्य, क्रूर कोष्ठ की अपेक्षा से उचित मात्रा में देना चाहिए। दशमूल गजपिप्पली, कौंच, भार्गी, कचूर, पुष्करमूल, सोंठ, पाठ, गिलोय, पिप्पलीमूल, शंखपुष्पी, रास्ना, चित्रक, चिरचिटा, वला, धमासा प्रत्येक दो पल, जौ एक आढ़क, भारी हरड़ एक सौ गिनती करके लेवें, तथा एक द्रोण और एक आढ़क जल में क्वाथ करें। जब चतुर्थांश शेष रह जाए तब छान लें। फिर इस क्वाथ में एक तोला गुड़, स्विन्न हुई एक सौ हरड़ घी और तेल प्रत्येक आठ पल मिलाकर पकावें। पक जाने पर जब लेह समान वन जाए तब इसमें पिप्पली चूर्ण चार पल शीतल होने पर मधु आठ पल मिलायें।

फिर इस रसायन में से कल्क आधा पल चाट कर दो हरड़ नित्यप्रति खायें इसके सेवन से कास यक्ष्मा, ग्रहणी रोग, शोफ, अग्निमांद्य, स्वरभेद, कास, पाण्डु रोग, श्वास, शिरोरोग, हृदयरोग, हिक्का, विषम ज्वर नष्ट होते हैं। इससे मेधावल, उत्साह तथा बुद्धि वहुत वढ़ती है। इस रसायन को भगवान अगस्त्य ने वनाया है। कुलीर, शुक्ति, चिड़िया, हरिण, वटेर और सम्पूर्ण काकोल्यादि मधुरवर्ग इनका क्वाथ करके इनसे सिद्ध घृत करे। इस घृत को खाने से क्षतजन्य कास नष्ट होती है। शतावरी, नागवला से घृत सिद्ध करना चाहिये। यह घृत कास रोगियों को देना चाहिए।

अनुभूत योग—

कासरिपु—शुद्ध सिंगरफ की डली को अर्क दुग्ध में तर करके सुखा दें। पुनः उसी प्रकार अर्क दुग्ध में तर

करें और धूप में सुखा दें। ऐसा ११ वार करें। फिर उस दुग्ध लपेटित सिंगरफ की डली को एक बड़े जंभीरी नींबू के मध्यभाग में रखकर सम्पुट कर दें। यह सम्पुट पांच बार करके सुखाया हुआ होना चाहिए। फिर अन्त में पन्द्रह सेर उपलों में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर निकालें।

इस प्रकार से पाचित सिंगरफ एक तोला, शुद्ध वत्सनाभ का सूक्ष्म चूर्ण एक माशा, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली भी एक माशा, कालीमिर्च का चूर्ण तीन माशा, अभ्रक सत्व भस्म तीन माशा इन सबको घोट पीसकर एक भावना समान मात्रा में अदरख के रस की, दूसरी भावना पंचकोल के सम प्रमाण क्वाथ की, तीसरी भावना गिलोय स्वरस की, चौथी भावना त्रिफला क्वाथ की, पांचवाँ भावना वांसा के सम प्रमाण स्वरस की, छठी भावना आक की जड़ के क्वाथ की और सातवीं भावना वकरी के दूध की देवें। सभी भावनायें समान मात्रा में देनी हैं। जब कल्क जैसा हो जाए तो प्रवाल पिष्टी एक तोला, मुक्ता शुक्ति पिष्टी एक तोला और शृङ्ग भस्म पांच माशा मिलाकर समभाग शहद डालकर खूब मर्दन करें। तदनन्तर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। धूप में सुखा लें। कफ प्रधान कास, श्वास और हिक्का में गरम पानी से अन्य सभी दोष प्रधान कास श्वास और हिक्का में ताजा दूध से खावें। कास, श्वास और हिक्का के अत्यन्त प्रवल वेग में दिन में तीन बार और रात को सोते समय चौथी वार सेवन करावें मात्रा १ गोली अथवा १ रत्ती की है। हमारी यह चुनौती खुले आम है। इस विधि से यह दवा बनाकर सेवन कराने से केवल नौ घण्टों में कास, श्वास और हिक्का सदा के लिए समाप्त हो जाती है। वशर्ते कि इन रोगों के अलावा और कोई भी रोग रोगी को नहीं होना चाहिए। यदि एक रत्ती शिलाजीत और छः माशा पिस्ते १० वादाम के साथ इनका २४ घण्टों में दो वार ½ सेर दूध के साथ सेवन किया जाए तो सम्पूर्ण प्रकार की दुर्वलतायें समाप्त होकर अपूर्व वल और पराक्रम उत्पन्न होता है करके देख लें, तब वात करें।

कास पर स्वानुभूत दो योग

(१) गुलावी कनेर के पत्तों को एक हाडी में भर कर सम्पुट करे गजपुट में फूक दें। यह काली भस्म वनेगी किसी प्रकार की खांसी क्यों न हो २ रत्ती लगे हुये पान में रख कर चूसते रहना चाहिये निश्चित पहली मात्रा से वेगवती खांसी भी शान्त हो जायेगी।

(२) वहेड़े की गिरी निकाल कर उपर्युक्त भांति से छिलके और थोड़ा सा नमक डाल दीजिये और गज पुट में फूकना चाहिये। इस भस्म को पान या गर्म पानी से भी खा सकते हैं। यह कास श्वास के लिये भी अत्यन्त लाभकर है। मात्रा १ माशा, वच्चों को २,२ रत्ती दिन में तीन बार।

(३) रविवार या भौम के दिन अपामार्ग पञ्चांग लाकर धूप में सुखा देना चाहिये। जला कर छान लो। अर्क (आक) दुग्ध से टिकिया बनाकर सम्पुट में रखकर ५ उपलों की अग्नि दें शीतल होने पर निकाल लें जितनी भस्म होगी उतनी ही काली मिर्च का चूर्ण लोह भस्म भी उतनी ही खरल में डालकर घोटें ५ दिन तक खरल में न्यूनातिन्यून घुटाई अवश्य होनी चाहिये। मात्रा ४ रत्ती से २ माशे तक वलावल विचार कर। अनुपान गाय का घी, दो समय खाना चाहिये श्वास, कास के लिये सर्वोत्तम योग है।

काली खांसी (वातकास) पुराने उपले की राख ३ माशे मात्रा मलाई के साथ देना चाहिये। वच्चों को १ माशा ही पर्याप्त है दिन में ३ बार।

(५) मुलहठी, सौंफ, दालचीनी, काकड़ासिंगी, गोंदकीकर, वड़ीइलायची, समभाग लेकर कूट छान कर पुराने गुड़ से गोलियां ४-४ रत्ती की वनाकर सेवन करना चाहिये। ये गोलियां वच्चों के लिये वहुत उपयोगी हैं।

(६) **पेया**—अजवायन, पीपल, वेलगिरी, कचूर, चीता, पोहकरमूल, रास्ना, जीरा, ढाक के वीज, सोंठ प्रत्येक १ तोला लेकर एक सेर जल में काढ़ा बनाना चाहिये आधा सेर रहने पर सांठी चावल २ तोला डालकर पकाकर गाढ़ी होने पर घृत ३ तो० डालना चाहिये १ तो. अनार दाने से खट्टा करके नमक डालकर वातोत्पन्न कास में देना चाहिये। इससे कटिशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, श्वास, और हिक्का को नष्ट करती है।

(७) दशमूल के क्वाथ में उपर्युक्त भांति से सिद्ध पेया में पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीनी और सौंठ और गुड़ मिलाकर वातजन्य कास में देना चाहिये अथवा तिलों के

तुल्य चावलों को दूध में पकाकर थोड़ा सा सेन्धानमक मिलाकर वातजकास में देना चाहिये।

वातज कास में हितकारी शाक—बथुआ, कच्ची नरम मूली, चौलाई, तेल से बनाकर खाना चाहिये, गन्ने का रस, गुड़ से बने पदार्थ, स्वादु, अम्ल, लवण रस वातजन्य कास में हितकारी हैं।

वमन योग—

पित्तजन्य कास में यदि कफ मिश्रित हो तो घृत से वमन कराना चाहिये। मैनफल, खम्भारी, मुलहठी, के क्वाथ से वमन करानी चाहिये।

वमन के उपरान्त विरेचन अवश्य ही कराना चाहिये अन्यथा हानि की सम्भावना सम्भव है। अतः पित्तजन्य कास में पित्त गाढ़ा न हो तो मधुर पदार्थों से युक्त निशोथ का चूर्ण विरेचन के लिये देना चाहिये। यदि कफ गाढ़ा हो तो कड़वे पदार्थों से युक्त निशोथ का चूर्ण विरेचन के लिये देना चाहिये।

(८) (१) सिंघाड़ा, कमलगट्टा, पीपल, (२) पीपल, मोथा, मुलहठी, मुनक्का, मूर्वा, सोंठ, (३) लाजाखील, आंवला, मुनक्का, वंशलोचन, पीपल, शर्करा, (४) पीपल, पद्माख मुनक्का इनको बड़ी कटेरी के फल के रस में पीस कर (५) कचूर, पीपल, वंशलोचन, गोखरू इन पांचों योगों को पृथक् पृथक् चूर्ण करके उचित मात्रा में मधु और घृत मिलाकर पित्तजनित कास में खाना चाहिये।

कफ कास—यदि कफ कास का रोगी बलवान् हो तो प्रथम वमन द्वारा उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। पीपल, यवक्षार पड़े हुये कुलथी के क्वाथ या सूखी मूली के यूष के साथ साथ अन्न देना चाहिये।

(९) पोहकर मूल, अमलतास की जड़, परवल पत्र तीनों के समान भाग लेकर पानी में भिगो कर एक रात भर रखकर अगले दिन इनके शीत कषाय में मधु मिलाकर भोजन के तीनों समय में (पूर्व, मध्य, अन्त) पीना चाहिये अर्थात भोजन करने से पूर्व पुनः मध्य में पुनः करने के उपरान्त।

—वैद्य श्री वागीशदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
पुरातन रोग विशेषज्ञ, धन्वन्तरि औषधालय
स्टेशन रोड, गाजियाबाद (यू० पी०)

श्वास कास चिकित्सा

काकुभं चूर्ण ककुभ चूर्णम्—लोहे के चूर्ण को अडूसे के रस में बारंबार भावना देकर सहद, घी और मिश्री के साथ चाटें तो क्षय जन्य खांसी दूर हो जाती है। खांसी के संताप होने से नाक में से पानी गिरता हो, स्वर बैठ गया हो, छींक आती हो और गन्ध लेने की शक्ति नष्ट हो गई होय तो धूम्रपान करें। मैनसिल, हरिताल, मिरिच, बालछड़ (जटामासी), नागरमोथा तथा हिंगोट इन सबका चूर्ण करके बीड़ी बनाकर चिलम में रखकर धूम्रपान करें और उसके ऊपर गुड़ मिलाकर दूध पियें तो एक दोष से, दो दोष से अथवा सम्पूर्ण दोषों से उत्पन्न हुई खांसी और सैंकड़ों औषधियों के सेवन करने से जो खांसी अच्छी नहीं हुई हो वह भी इस धूम्रपान से अवश्य नष्ट हो जाती है। मैनसिल को जल में पीसकर बेरी के पत्तों पर लेप करके धूप में सुखा देवें, फिर इसको चिलम में रख कर पियें तो भयंकर खांसी दूर हो जाती है। कटेरी के क्वाथ में पीपल का चूर्ण डाल करके पीने से सर्व प्रकार की खांसी दूर हो जाती है, कटेरी और पीपल इन दोनों को एकत्र पीसकर शहद में मिलाकर चाटने से खांसी दूर हो जाती है। लौंग १ तोला, जायफल १ तोला, पीपल १ तोला, मिर्च २ तोले, सोंठ १६ तोले और सब के बराबर उत्तम सफेद बूरा लेवें, इन सबका चूर्ण अथवा गोली बनाकर खाने से खांसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, मन्दाग्नि और ग्रहणी विकार तत्काल नष्ट हो जाते हैं। मैनसिल, सैंधानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, कूठ और हींग भुनी इन सबका चूर्ण करके चाटने से खांसी, श्वास और हिचकी दूर हो जाती हैं। हरड़, पीपल, सोंठ और मिर्च इनका चूर्ण करके गुड़ में मिलाकर खाने से खांसी और कफ नष्ट हो जाता है और अग्नि अत्यन्त दीपन होती है। मिर्च १ तोला, पीपल २ तोले, अनार ४ तोले, गुड़ ८ तोले और जवाखार आधा तोला इन सबको एकत्र मिलाकर चाटने से भयंकर खांसी नष्ट हो जाती है, जो खांसी अनेक प्रकार की औषधियों के करने से आरोग्य

नहीं हो तथा जिसको वैद्यों ने भी त्याग दिया हो वह खांसी इससे शीघ्र नष्ट हो जाती है तथा जिस खांसी में रुधिर की वमन होती हो उसके लिए यह औषधि परमोत्तम है।

मरिचादि गुटिका—कालीमिर्च १ तोला, पीपल १ तोला, जवाखार ६ माशे और अनार के फल की छाल २ तोले, इन सबको चूर्ण करके आठ तोले गुड़ में मिलाकर २४-२४ रत्ती की गोलियां बनावें, एक गोली को मुख में रखने से सर्व प्रकार की खांसी नष्ट हो जाती है।

भृगु हरीतकी—जड़, छाल और पत्ते समेत कटेरी का सर्वांग ४०० तोलें और हरड़ १०० तोले लेवें, दोनों को एक पात्र में डालकर १०२४ तोले जल में पकावें, पकते-पकते जब चौथाई भाग क्वाथ बाकी रह जाय तब उसको उतार कर बारीक वस्त्र में छानकर रख देवें, फिर उस छने हुए क्वाथ में पूर्वोक्त पकाई हुई १०० हरड़ और गुड़ ४०० तोले डालकर पकावें, जब अच्छे प्रकार से पककर अवलेह के समान तैयार हो जाय तब उसको उतारकर शीतल कर लेवें, पश्चात् उसमें सोंठ ४ तोले, कालीमिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, इलायची, ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात ४ तोले, नागकेसर ४ तोले और शहद २४ तोले इन सबको मिला देवें। इस अवलेह को विधिपूर्वक शरीर के बल के अनुसार और अग्नि के बलानुसार सेवन करें तो वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, क्षतज, श्वास, पीनस और एकादश लक्षणों वाला महा भयंकर राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो। यह भृगु ऋषि की कही हुई 'भृगु हरीतकी' नाम से प्रसिद्ध है।

कण्टाकार्यवलेह—कटेरी का पंचांग ४०० तोले लेकर १०२४ तोले जल में पकावें। जब पकते-पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उसको उतारकर छान लेवें, फिर इस क्वाथ में गिलोय का चूर्ण ४ तोले, चव्य ४ तोले, चीता ४ तोले, नागरमोथा ४ तोले, काकड़ासिंगी ४ तोले, सोंठ ४ तोले, मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले धमासा ४ तोलें, भारंगी ४ तोले, रास्ना ४ तोले, कचूर ४ तोले, खांड ८० तोले, घी ३२ तोले और ३२ तोले तेल इन सबको डालकर उत्तम विधि से पकावें, जब पकते-पकते अवलेह के समान हो जाय तब शीतल करके उसमें ३२ तोले शहद, वंशलोचन ८ तोले और पीपल १६ तोले मिला देवें। इस अवलेह को उत्तम चिकनी मिट्टी के बासन में भर के रख देवें। इसको सेवन करने से हिचकी, खांसी और श्वास रोग नष्ट हो जाता है।

वृहसेन्द्र गुटिका—शुद्ध पारा, गन्धक, अभ्रक, ताम्र, हरिताल, लोह, विष, मैनसिल, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, धतूरे के बीज और मिर्च प्रत्येक का चूर्ण एक कर्ष परिमित लेवें। फिर एकत्र कर जयन्ती, चीतामूल, मानकन्द खारकोन या शकरकन्द, मण्डूकपर्णी, भांग, भांगरा, केशराज, अदरख तथा निर्गुण्डी प्रत्येक का १-१ कर्ष रस डालकर मर्दन करें। फिर उड़द जैसी गोलियां बना लेवें। इसे अदरख के साथ देवें तो पांचों कास को दूर करती है। यह कास, श्वास, राजयक्ष्मा, भगन्दर, अग्निमांद्य, अरुचि, शोथ, उदर रोग, पांडुरोग और कामला रोग को नष्ट करती है तथा रसायन है और बल, वीर्य तथा वर्ण को करती है। पथ्य में वीर्यवर्धक, मधुर, चिकना, मछली, जंगली जीवों का मांस तथा घी के पके पदार्थ खावें और तेल तथा रूखा आहार त्याग देवें।

अमृतार्णवो रस—पारा, गन्धक, लोहभस्म, सुहागे की खील, रास्ना, वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, देवदारु, चीता, गिलोय, पदमाख, शहद तथा विष एकत्र कर समभाग ले पीस लें और दो रत्ती की मात्रा से सेवन करें तो वात कास का नाश होता है। यह अमृतार्णवरस है।

पित्तकासान्तक रस—ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म और कान्तलोह की भस्म समभाग लेकर कसोंधी की छाल के रस तथा अगस्त या अगथिया के फूलों के रस तथा अम्लवेतस के रसों से एक दिन मर्दन कर, आधा निष्क की मात्रा में सेवन करें तो तीन दिन में पित्त-कास दूर हो जाता है। यह कास, श्वास, अग्निमांद्य तथा क्षय रोग को भी दूर करता है।

कास-संहार भैरवो रस—पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, शंख, सुहागा, लोह, मिर्च, कूट, तालीसपत्र, जायफल, लौंग प्रत्येक का १-१ कर्ष चूर्ण लेकर एकत्र मिलावें। फिर माण्डूकपर्णी, केशराज, निर्गुण्डी, मकोय, द्रोणपुष्पी याने रमा, सरिवन, गोमा, भारंगी, हरड़ तथा बांसा प्रत्येक के पत्र के १ कर्ष रस दे देकर मर्दन करें व ५ रत्ती

की गोलियां बनावें। श्रीमान् गहन नाथ जी ने इसे लोक-रक्षा के लिए यत्नपूर्वक तैयार किया है। यह कास संहार भैरव रस है। इसे वांसा, सोंठ तथा कंटकारी के काढ़े के साथ पिलावें तो वातज, पित्तज कफज, पुराना तथा नाना प्रकार के कास, उग्र श्वास और अरुचि नाश होकर बल, वर्ण, शोभा, पुष्टि तथा कान्ति की वृद्धि होती है।

लक्ष्मीविलासो रस—वंग, ताम्र,अभ्रक, कान्तलोह, कांसी, गन्धक, पारा तथा हरताल १-१ पल और खपरिया भस्म आधा पल लेवें। एकत्र सवको केशराज के रस से तीन दिन तक भावना देवें। फिर कुलथी के काढ़े से वार वार भावित करें। फिर इलायची, जायफल, तेजपत्र, लवंग, अजवायन, जीरा, सोंठ, मिर्च, पिपली, हरड़, बहेड़ा, आवला, तगर, दालचीनी और वंशलोचन प्रत्येक एक कर्ष प्रमाण ले मिलावें तथा फिर से केशराज का रस तथा कुल्थी के काढ़े से भावित कर चने समान गोलियां बनाकर, छाया में सुखा लेवें। इसे ठण्डे जल के साथ खाने से कास चला जाता है। इसमें मछली, मांस, दूध आदि चिकने पदार्थ पथ्य हैं। यह क्षय, खांसी, ज्वर सहित या विना ज्वर का श्वास, हलीमक, पांडु रोग, शोथ, शूल, प्रमेह, अर्श इन्हें नाश करता तथा बल को बढ़ाता है। इसको सेवन करते समय मनुष्य को सागभाजी, खटाई, भुने पदार्थ तथा आग से बचना चाहिए।

सर्वेश्वरो रस—पारा, गन्धक, अभ्रक, स्वर्ण सम भाग लेकर दोपहर तक मर्दन करे। फिर सोंठ, पीपरा, मरिच, लवंग, इलायची, सुहागा प्रत्येक स्वर्ण के समान ले चूर्ण कर मिलावें व खरल करें। फिर कटेहली के रस की २१ भावनायें देवें। फिर सहजने के बीज के रस की ७ भावना और अदरख के रस की ७ भावना देवें। यह सर्वेश्वर रस तैयार हो गया। यह श्वास, कास तथा क्षय नाशक है। इसे बहेड़े के फल के छिलके के साथ खावें।

श्रृङ्गाराभ्रम्—काला अभ्रका का उत्तम भस्म दो पल, कपूर, जावित्री, सुगन्ध वाला, गजपीपल, तेजपत्र, लवंग, जटामांसी, तालीस पत्र, दालचीनी, नागकेसर, पोहकर मूल, धाय के फूल प्रत्येक १ शाण, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मरिच, पीपरा प्रत्येक आधा शाण, इलायची, जायफल प्रत्येक २ शाण, पाताल यन्त्र से शुद्ध किया हुआ गन्धक १ तोला तथा पारा आधा तोला लेवें। पहले पारा और गन्धक को रगड़ कर निश्चंद्र कज्जली बनावें। फिर अन्य दवायें मिला, पानी से ही पीसकर भिगोए चने के समान गोलियां बना लेवें। प्रातःकाल ४ गोलियां कुछ अदरख और पान के रस के साथ खाकर, ऊपर से कुछ ठण्डा पानी पीवें तो नीचे कहे रोगों को शीघ्र ही दूर कर देता है। यह कोठे की अग्नि के दूषित होने से होने वाले रोग, ज्वर, उदर रोग, राजयक्ष्मा, क्षयरोग, कास, श्वास, शोथ, नेत्र का घूमना, मेह रोग, मेदो रोग, वमन, शूल, अम्लपित्त, वड़ी तृष्णा, वृहत-गुल्म रोग, पांडु रोग, रक्तपित्त, जहर से उत्पन्न रोग, पीनस, तिल्ली रोग, आमवात से होने वाले रोग, कफवात के रोग तथा सब प्रकार के पित्त रोग को नाश करता है तथा बल और वीर्य को बढ़ाकर नवजवान बना देता है। यह सब योगों में श्रेष्ठ प्रयोग है। पथ्य में मांस, घृत मिले यूष आदि, गाय दूध तथा सुन्दरी स्त्रियों द्वारा दिये हुए अच्छे-अच्छे भोजन मनमाना खावें। इस तरह इसके प्रभाव से कामी पुरुष सौ युवतियों के संभोग से भी सन्तोष को प्राप्त नहीं होता। पहले पहल कुछ दिनों तक भाजी तथा खटाई छोड़ देवें। बाद मन चाहे जो भोजन करें। इसके प्रसाद से मनुष्य दीर्घ-जीवी तथा काम देव जैसा सुन्दर हो जाता है और न बाल ही पकते, न झुर्रियां ही पड़ती हैं।

सार्व भौम रस—अगर इसी श्रृंगराभ्र रस में ही स्वर्ण भस्म व लोह भस्म डाल दिया जाय तो यह सार्व भौम रस बन जाता है। यह सब रोगों को नष्ट करता है।

तरुणानन्द रस—पारा दो कर्ष तथा गन्धक दो कर्ष लेकर, बढ़िया खरल में डालकर निश्चन्द्र कज्जली करें। फिर बेल छाल, अरणी, श्योनाक, गम्भारी, पाढ़ल, बला, नागरमोथा, पुनर्नवा, आमले, बड़ी कटेहली, बांसा का पत्र, विदारीकन्द और शतावर प्रत्येक का एक-एक कर्ष रस डालकर मर्दन करें। तब अभ्रक भस्म चार कर्ष, कपूर एक कर्ष, जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीशपत्र, इलायची और लवङ्ग प्रत्येक का चूर्ण एक माशा प्रमाण, उसमें मिलावें तथा पाताल कोंहड़ा के रस से घोटकर (डेढ़ रत्ती की गोलियां बना लेवें। यह अति प्रबल राजयक्ष्मा, क्षय, उरःक्षत, पांचों प्रकार की खांसी, श्वास, स्वरभेद, अरुचि,

कामला, पाण्डु रोग, प्लीहोदर, हलीमक, जीर्ण ज्वर, तृष्ण रोग, गुल्म, आमदोष से उत्पन्न ग्रहणी, अतिसार, शोथ, अठारह कोढ़ तथा भगन्दर को नाश करता है। यह प्रसिद्ध तरुणानन्द रस है। यह उत्तम रसायन, वीर्य तथा पुष्टि को बढ़ाने वाला तथा नेत्रों को हितकारी है। इसके सेवन से मनुष्य सहस्त्र स्त्री संभोग करके भी वीर्य, बल या बुद्धि किसी की कमी को प्राप्त नहीं होता। दो माह के उपयोग से कामला रोग को नष्ट कर देता है। वीर्य का संदीपन कर यह ज्वर को निःसन्देह नाश करता है। इसे रसायनार्थी नारियल के पानी के साथ खावें। दूध अनुपान से खावें, तो यह वीर्य को इतना बढ़ाता है कि वह स्त्रियों से कभी नहीं हारता।

महोदधि रस—पारा, गन्धक, लोहभस्म, विष, दालचीनी, ताम्रभस्म, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, प्रत्येक एक भाग, त्रिकुटा, नागरमोथा, वायविडंग, नागकेसर, रेणुका, आमले, पीपरामूल प्रत्येक दो भाग, एकत्र मर्दन कर गजपीपल के काढ़े की भावना देवें। फिर चने के समान गोलियां बना लेवें। यह कास, श्वास, अर्शोरोग, भगन्दर, हृदय का शूल, पसवाड़ों का शूल, कान के रोग, कपालिका रोग, संग्रहणी, आठों उदररोग, बीसों प्रमेह तथा चारों प्रकार के अजीर्ण को नष्ट करता है। इसमें खाने-पीने, ठण्ड, हवा, स्त्री संभोग आदि का कोई परहेज नहीं। मनुष्य, इसे जो इच्छा हो आहार-विहार करते हुए प्रयोग कर सकता है। इसके प्रभाव से शरीर सोने जैसा गोरा हो जाता है।

जया गुडिका—पारा, गन्धक, लोहभस्म, विष, इन्द्र जौ, वायविडंग, नागकेसर, नागरमोथा, इलायची, पीपरामूल, रेणुका, सोंठ, मरिच, पिप्पली, हरड़, वहेड़ा, आमला, चीतामूल और शुद्ध जमालगोटा-प्रत्येक एक भाग लें, पीस कर एकदिल कर लेवें तथा पुराना गुड़ दो भाग (वृद्ध वैद्य गुड़ सर्वतुल्य डालते हैं) मिला इमली के बीज जैसी बड़ी चपटी टिकिया बना लेवें। इसमें से एक गोली लेकर सुबह ही खावें। कास, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषम ज्वर, अजीर्ण, ग्रहणी रोग, शूल, पांडुरोग, गुदशूल, हृदयशूल, वात रोग, गलग्रह, अरुचि, अतिसार तथा सूतिका रोग का नाश करती है। यह जया गुडिका इतनी उत्तम है कि देवों के भी भक्षण-योग्य है।

विजया गुटिका—पारा, गन्धक, लोहभस्म, विष, चीतामूल, तेजपत्र, वायविडङ्ग, रेणुका, नागरमोथा, इलायची, नागकेसर, पीपरामूल, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपरा और ताम्रभस्म प्रत्येक एक भाग लें। पीस एक दिल कर लेवें। फिर दुगुना गुड़ मिलाकर गोलियां बना लेवें व उपयुक्त मात्रा में प्रयोग करें। यह कास, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषम ज्वर, सूतिका रोग, ग्रहणी शूल, पाण्डु रोग तथा हाथ-पांव आदि की जलन, इन रोगों में प्रशस्त है।

स्वच्छन्दभैरवो रस—पारा एक भाग, गन्धक दो भाग तथा सेंधा नमक दो भाग एकत्र ५ दिन तक भिलावे का रस दे देकर मर्दन करे। फिर सराइयों में रख, संधि कपड़ मिट्टी से बंदकर सुखा लेवें तथा रात्रि में मध्यम पुट में फूंक देवें। जब कुल दवा भस्म हो जाय तब निकालकर पीसकर रख लेवें। दो रत्ती की मात्रा से इसे प्रयोग करें। ग्रहणी, संग्रहणी, खांसी, श्वास में खासकर तेज ज्वर, तंद्रा तथा कम नींद की बीमारी में इसे देवें। अन्य रोगों में भी इसे देवें। यह स्वच्छन्द भैरव रस है। यह तुष्टि-पुष्टि तथा सुकुमारता के देने वाला है।

रस गुडिका—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, पिप्पली ३ भाग, हरड़ ४ भाग, वहेड़ा ५ भाग, आमला ६ भाग, भारंगी ७ भाग, इन सबको एकत्र चूर्णकर २१ बार बबूल की छाल के रस या काढ़े से भावनायें देवें तथा शहद से १-१ कर्ष की गुडिका बनावें। सुबह १ गुडिका खावें। अनुपान—कटेहली के काढ़े में पीपरा चूर्ण प्रक्षेप देकर पीवें। श्वास तथा कास को यह नष्ट कर देती है।

रसेन्द्रगुडिका—सोनामाखी, शुद्ध तूतिया, अभ्रक और हरताल समभाग लेकर अदरख के स्वरस की भावना देवें तथा २ रत्ती की वटिका करें। १ गोली भोजन जीर्ण होने पर खावें और पथ्य में दूध तथा मांस रस आदि खावें। पांचों खांसी, श्वास, क्षय, रक्त-पित्त, पांडु, क्रिमि, ज्वर, पतलापन, शुक्र की कमी, अम्लपित्त मन्दाग्नि तथा अरुचि का नाश करने में यह श्रेष्ठ है।

पुरन्दर वटी—पारा १ भाग तथा गन्धक २ भाग लेकर कज्जली करें। फिर सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, वहेड़ा, आवला प्रत्येक १ भाग, एकत्र चूर्ण कर बकरी के

दूध की भावना देकर (२ रत्ती की) गोलियां बना लेवें। इसे अदरख के रस के साथ खाकर ऊपर से कुछ ठण्डा पानी पीवें। यह श्वास तथा कास को नाश करती तथा विशेषकर अग्नि को बढ़ाती है। सदा सेवन करते रहने से यह गोली योगवाही होती है। इसके प्रभाव से वृद्ध मनुष्य भी तरुण और बलशाली होकर १०० स्त्रियों में सांड बन जाता है।

कासान्तको रस—पारा, गन्धक, विष, शालपर्णी तथा घनियां प्रत्येक समभाग तथा सर्वसम मरिच चूर्ण, एकत्र मिला ४ रत्ती मात्रा में शहद के साथ खावें तो कास शान्त हो जाय।

कास कुठार—हिंगुल, मरिच, गन्धक, सोंठ, मिर्च, पीपल और सुहागा समभाग ले जल में पीस २ रत्ती की गोलियां बना लेवें। एक गोली अदरख के रस से खावें तो दारुण सन्निपात, नाना प्रकार की खांसी तथा शिरो-रोग को दूर करता है।

चन्द्रामृत लोहम्—सोंठ, मिर्च, पीपली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, धनियां, चव्य, जीरा, सेंधा नमक समभाग ग्रहण करें तथा मैनसिल के प्रयोग से जारित लोहभस्म सब चूर्णों के समान ग्रहण कर सबको एकत्र जल से पीसकर नौ रत्ती की गोलियां बना लेवें। प्रातःकाल पवित्र होकर अमृतेश्वरी का ध्यान कर १ गोली लालकमल, नीलकमल अथवा कुल्थी के स्वरस के साथ खावें। यह नाना प्रकार के कास, त्रिदोष जनित, वातिक, पैत्तिक, जहर के असर से उत्पन्न, खून गिरता हो अथवा न गिरता हो, ऐसी सब खांसी, श्वास सहित होने वाला ज्वर, भ्रम, प्यास, दाह, शूल इन्हें नाश करता है तथा रुचि उत्पन्न कर अग्नि को बढ़ाता है। बल तथा वीर्य को बढ़ाता है तथा जीर्ण ज्वर को नाश करता है। यह चन्द्रामृत लोह चन्द्रनाथ जी का बनाया हुआ है।

चन्द्रामृतो रस—पारा, गन्धक, लोहभस्म प्रत्येक एक कर्ष, सुहागे की खील १ पल, मरिच चूर्ण आधा पल, सोंठ, मिर्च, पीपर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चव्य, धनिया, जीरा, सेंधा नमक प्रत्येक १ तोला ग्रहण करें। सब एकत्र मिला बकरी के दूध से पीसें। नौ रत्ती की वटिकायें बनावें। सुबह पवित्र होकर अमृतेश्वरी का ध्यान करें। फिर १ गोली, रक्तोत्पल का रस, कुल्थी का स्वरस या काढ़ा, बकरी का दूध, मण्ड या केशराज का रस किसी एक अनुपान के साथ खावें। यह नाना विधि कास, वात रक्त, वातश्लेष्म ज्वर, वातज, पित्तज या विषदोष से उत्पन्न हुए ज्वर को नाश करता है। वासा, गिलोय, भारंगी, मोथा, कटेहली समभाग ले काढ़ा बना प्रतिदिन दवा सेवन के उपरान्त पान करें।

अमृतमञ्जरी—हिंगुल, विष, पीपर, मिर्च, सुहागा, जावित्री समभागों में ग्रहण कर जम्भीरी नीबू के रस से मर्दन करें। फिर अदरख के रस से घोटें तथा रत्ती-रत्ती की वटिकायें बनायें। बलानुसार २ या ३ गोली उष्ण जल के साथ खावें तो दारुण सन्निपात, अग्निमांद्य, अजीर्ण, कठिन आमवात, पांचों खांसी, श्वास, सब अंगों का जकड़ना, जीर्ण ज्वर, क्षय तथा कास को यह अमृत मञ्जरी रस नाश करता है।

कासान्तक—हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मरिच, पीपल समभाग लें एकत्र चूर्ण कर शहद के साथ खावें, तो दुष्ट कास चला जाता है।

बृहच्छृङ्गाराभ्र—पारा, गन्धक, सुहागा, नागकेशर, कपूर, जावित्री, लौंग, तेजपत्र, सुवर्ण भस्म प्रत्येक एककर्ष, तालीशपत्र, मोथा, कूठ, जटामांसी, तज, धाय के फूल, इलायची के बीज, सोंठ, मिर्च, पीपर, हरड़, बहेड़ा, गज-पीपल प्रत्येक का चूर्ण दो कर्ष प्रमाण ग्रहण कर सब एकत्र खरल में रख पिप्पली के काढ़े से पीसें तथा (१½ या २ रत्ती की) गोलियां बना लेवें। इसे तज के चूर्ण और शहद के साथ खावें। अग्निमांद्य आदि रोग, अरुचि, पांडु, कामला, सब उदर रोग, शोथ, आनाह, ज्वर, ग्रहणी, श्वास, कास, राजयक्ष्मा तथा अन्यान्य रोगों को नाश कर बल, वर्ण तथा अग्नि को यह बढ़ाता है। यह बृहच्छृङ्गाराभ्र वटिका भगवान विष्णु की कही हुई है। इसके अभ्यास मात्र से ही मनुष्य निर्व्याधि हो जाता है।

भृङ्गराज गुटिका—भांगरे के पत्तों को सुखाकर चूर्ण कर डालें। फिर खरल में डालकर उसमें शहद दे देकर घोटें और (१ माशे की) गोलियां बना लेवें। १ गोली मुख में रखकर चूसता रहे। इससे खांसी चली जाएगी।

अनुभूत योग—

क्षय कासारि—१ तोला सिंगरफ की डली को

मध्यम अग्नि वाले स्टोव पर दृढ़ मृत्तिका की प्याली में रखकर ५ सेर अजामूत्र को बूंद-२ करके सुखा दें। थोड़ी थोड़ी देर बाद डली को बदलते रहना चाहिए। इस प्रक्रिया के बाद बकरी का दूध तीन सेर बूंद-२ करके खपा दें। फिर उस डली को ४ सेर बकरी की ताजी मेंगनियों की लुगदी में दबाकर लोहे की कड़ाही में रखकर कर खुला ही पकावें। जब उस लुगदी में से भाप निकलनी बन्द हो जाए तो नीचे उतार कर शीतल करें। २-२ इन्च मोटी २ लकड़ियों की आंच यहां देनी होती है। उस सिगरफ को निकाल कर खरल में डाल दें। साथ में १ माशा स्वर्ण भस्म और ५ माशा मुक्ता शुक्ति पिष्टी भी मिला दें, गिलोय के स्वरस की सम प्रमाण भावना दें। मात्रा १ चावल की। अनुपान ताजा दूध। क्षय, कास, राजयक्ष्मा, उरःक्षत की गारण्टी की दवा है।

यूनानी

सांस-दमा—उर्दू में इसे दमा तथा अरबी में जीकुन्नफस कहते हैं। इसके दो भेद बताए गये हैं—(१) आर्द्र (२) शुष्क। शुष्क में केवल वायु प्रणालियों में एवं श्वासोच्छ्वास की मांस-पेशियों में आक्षेप होता है—जिससे सांस लेने में कठिनाई होती है। आर्द्र अवस्था में आक्षेप के अतिरिक्त वायु प्रणालियों में कफ सञ्चित हो जाता है। इससे श्वास लेने में अधिक कठिनाई होती है। आर्द्र अवस्था की उत्पत्ति नजला-खांसी के बहुत दिन तक रहते रहने से होती है। इसी तरह चेचक के कारण से भी दमा हुआ करता है।

दमा का इलाज दो सिद्धान्तों पर होता है। एक आवेग के समय लाभ पहुँचाकर और दूसरे कारण को दूर करने का उपचार उस अवस्था में करते हुये जब आवेग का समय न हो। आवेग के समय कारण की परवाह नहीं की जाती तुरन्त आराम पहुंचाना आवश्यक होता है। इसके लिये यूनानी की निम्न औषधियां महत्वपूर्ण हैं—

(क) हब्ब जीकुन्नफस।
(ख) हब्ब जदवार।
(ग) तिरयाक नजला।
(घ) बरशाशा।

(क) **हब्ब जीकुन्नफस**—दार फिलफिल (पीपल), काकड़ासिंगी, असल अलसोस, लौंग, मीठा अनारदाना, जवाखार, प्रत्येक को ६ माशा की मात्रा में लें। सबको कूट छानकर बारीक चूर्ण बना लें। शहद में मिलाकर चना के बराबर गोली बना लें। इसको सुबह-शाम पानी के साथ प्रयोग करने पर दमा और खांसी में फायदा होता है।

(ख) **हब्ब जदवार**—एक साबुत नारियल लें। उसका ऊपर का छिलका हटा लें। अन्दर से जो सफेद गिरी का हिस्सा रह जाय उसे रखलें। अब उस साबुत गिरी वाले नारियल को एक चाकू से इस तरह काटें कि उसमें एक गोल रुपया जितना सुराख बन जाए। उसका कटा हुआ हिस्सा सम्भाल कर रखें। अब अफीम असली ५ तोला, जदवार खटाई ६ माशा, जाफरान (केशर) ४॥ माशे लें। जदवार और जाफरान को एक साथ बारीक पीसकर अफीम मिला लें। अब इन मिली दवाओं को उस नारियल में कटे हुये भाग से अन्दर भर दें। उसके ऊपर वही नारियल का टुकड़ा रखकर उसे बन्द कर देवें। अब उड़द का आटा पानी में गूंथ कर उस पूरे नारियल पर लेप करें। इससे नारियल ढक जाना चाहिए। उस लेप की मोटाई लगभग १ अंगुल हो जानी चाहिये। अब गाय का १० सेर दूध लें। उस दूध में इस नारियल को डुबो दें और दूध को उबालें। इतना उबालें कि दूध खूब गाढ़ा हो जावें। अब नारियल को निकाल लें। इसे इतने घी में रखें कि नारियल डूबा रहे। अब आग पर रखकर घी में भूनें। इतना भूनना चाहिए कि उस नारियल के ऊपर का लेप का आटा लाल-सुर्ख हो जाय। अब उस नारियल को घी में से निकाल लें। फिर उस आटे को नारियल के ऊपर से हटावें। अब उस नारियल को जिसमें दवायें अन्दर ही भरी है, कूट लें। कूटने से वह मरहम की तरह का लेसदार पदार्थ बन जाएगा।

अब इस कुटी मरहम में से ७॥ तोला लें। अम्बर, रोगन बलासान हरेक २ माशा, जोजबूआ, अजवायन खुरासानी, गोंद कीकर प्रत्येक सवा दो माशा लें।

जावित्री, बहमन सफेद, बहमन लाल, बादरंजबूया, खुलन्जान हरेक ४½ माशा लें। सफेद शक्कर १ तोला लें। सबको कूट छानकर उस मरहम जैसे पदार्थ में मिला
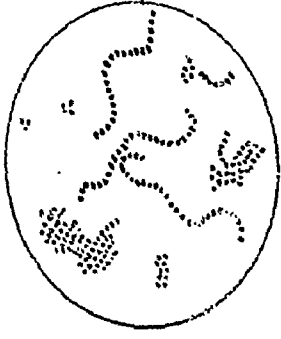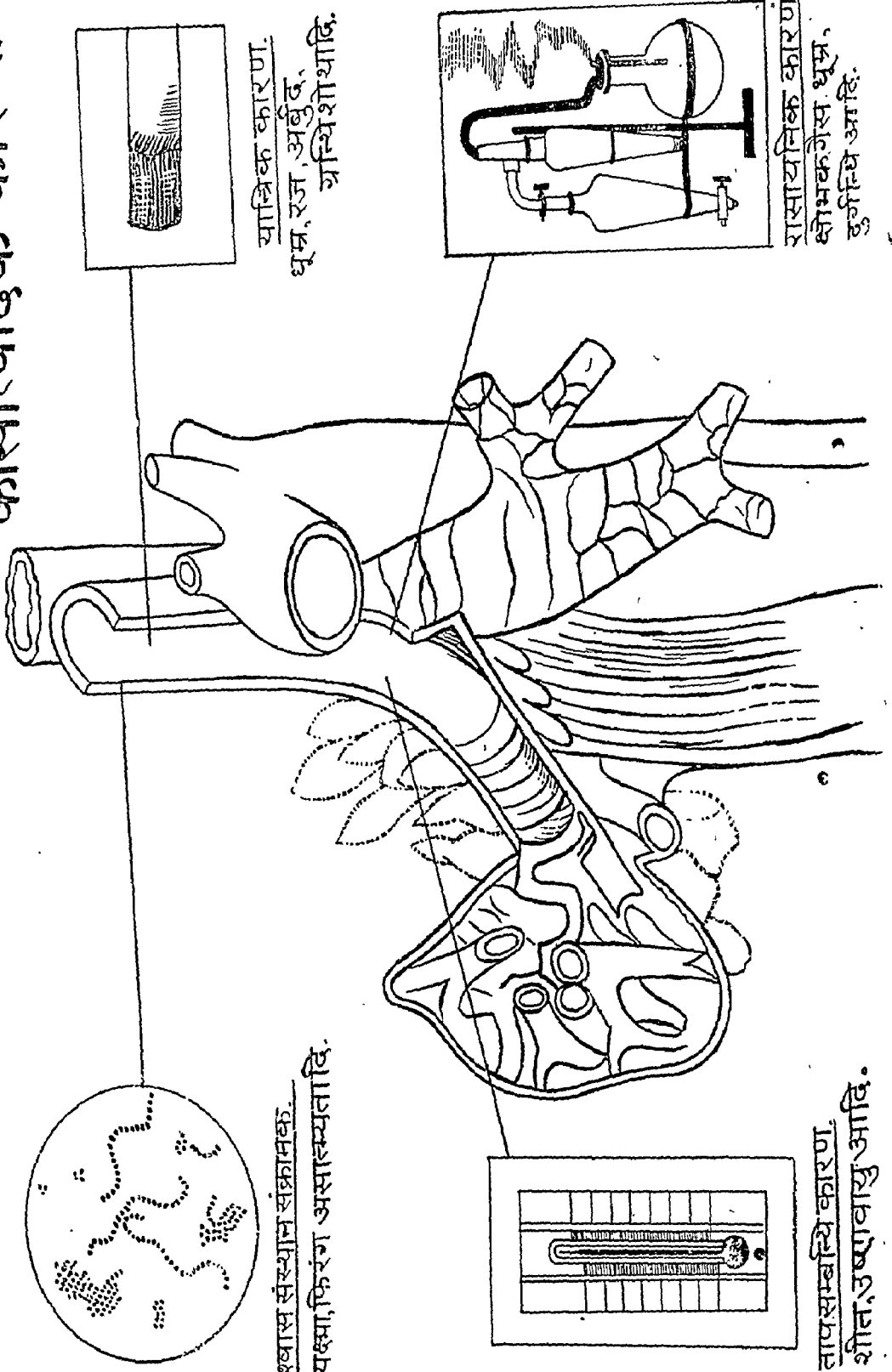
कासोत्पादक कारण.
श्वास संस्थान संक्रामक.
यक्ष्मा,फिरंग असात्म्यतादि.
यान्त्रिक कारण.
धूम्र,रज,अर्बुद,
ग्रन्थिशोथादि.
तापसम्बन्धि कारण.
शीत,उष्णवायु आदि.
रासायनिक कारण.
क्षोभक गैस धूम्र,
दुर्गन्धि आदि.
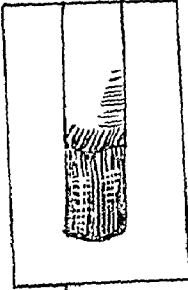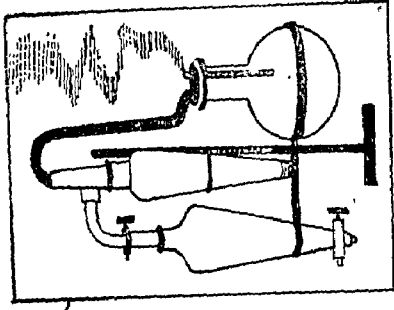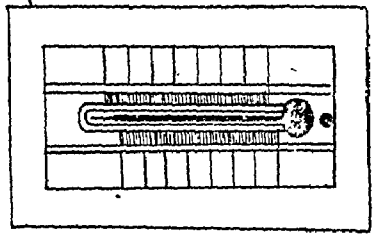
लें। अब चने के बराबर की गोली बनालें। इस पर सोने या चांदी के बरक चढ़ालें। सुबह शाम एक-एक गोली दूध के साथ दें। इससे नजला खांसी मिटती है। दिल और दिमाग को ताकत देता है। इसके अलावा यह वाजीकरण दवा है।

(ग) तिरयाक नजला—इसका नुस्खा आगे दिया जा रहा है। जहां यूनानी सिद्ध योग संग्रह के योग दिये गये हैं।

(घ) बरशाशा—कालीमिर्च, सफेद मिर्च, खुरासानी अजवायन प्रत्येक ५ तोला। असली अफीम २½ तोला, असली केशर १। तोला, जटामांसी (बालछड़), अकरकरा, फरफ्यून प्रत्येक ३ माशा, सब दवाओं को जुदा-जुदा कूट छानकर वजन करें। अब इनके बराबर का शहद लें (सब दवाओं के वजन के बराबर) और कवाम बनाकर दवाओं को मिला दें। इसके पात्र को तीन मास तक जौ में दबाकर रख दें। फिर निकालकर प्रयोग में लावें।

इसको ४ रत्ती की मात्रा में रात को सोते समय या दिन में सुबह के वक्त अर्क गावजबान बारह तोला से या पानी से दें।

यह यूनानी की बहुत श्रेष्ठ औषधियों में से है। जहां जुकाम-नजला, खांसी को दूर करती है वहां वायु के विकारों, फालिज वगैरह दिमाग की विकृतियों, कान, गले के रोगों, मेदे और जिगर के रोगों और बुखारों में भी आराम करती है।

हकीम मन्सा राम जी के मुताबिक इनमें से किसी दवा का प्रयोग दमा के आवेग के समय करना चाहिए। कारण की जांचकर उस कारण के अनुसार चिकित्सा करना हितकारक रहता है।

आर्द्रावस्था में अर्थात् बलगम की हालत में निम्न योग लाभ करते हैं—

(१) गाजवान ५ माशा, गुल गाजवान ५ माशा, उन्नाव ५ दाना, शुद्ध आबरेशम ५ माशा, गेहूँ की भूसी ५ माशा, मिश्री २ तोला सबको पानी में पका, छान कर पिलावें।

अगर बलगम गाढ़ा हो तो सौंफ की जड़ ५ माशा, छिली हुई मुलहठी ५ माशा, **बीज** निकाला हुआ मुनक्का ६ दाना, पीला अञ्जीर ३ दाना, जूफए खुश्क ५ माशा ऊपर के योग में और मिला दें और मिश्री की जगह पर खमीरा बनफशा मिलाकर दें।

(२) मालिश के लिए—अलसी का तेल २ तोला, सफेद मोम १ तोला, बकरी के गुर्दे की चरबी लेकर सुहाता गरम करें। फिर रोगी की छाती पर मालिश करें।

(३) रोगी को सोते समय में लऊक सपिस्तान १ तोला और लऊक मोतदिल १ तोला की मात्रा में दें। ऊपर से १२ तोला अर्क गावजबान पिलावें।

लऊक सपिस्तान का नुस्खा इसी प्रकरण में आगे यूनानीसिद्ध योग संग्रह के नुस्खों में दिया गया है। लऊक मोतदिल का नुस्खा निम्न प्रकार है—

लऊक मोतदिल—मीठा बादाम के बीज, कद्दू के बीज की गिरी दोनों को १०½-१०½ माशा की मात्रा में लें। कीकर का गोंद, कतीरा, निशास्ता तथा मुलहठी का सत हरेक डेढ़ तोला लें। इन सबको छः तोला सफेद खांड़ की चाशनी मिलाकर लऊक (अवलेह) तैयार करें। ऊपर की दवाओं को कूट पीसकर बारीक कर चाशनी में मिलाया जाता है। इसकी १ तोले की मात्रा १२ तोले अर्क गावजबान के साथ देने से नजला, जुकाम-खांसी को मिटाती है।

(४) पीला अंजीर ३ दाना, उस्तखद्दूस ५ माशा, हंसराज ५ माशा, शुद्ध मधु २ तोला पानी में पकाकर सवेरे शाम और लऊक कत्तान ७ माशा उक्त औषधियों के साथ देने से भी लाभ होता है।

(५) ईरसा ३ माशा, फितरासालियून ३ माशा, शुद्ध मधु २ तोला पानी में पकाकर पिलाने से लाभ होता है।

(६) जूफाए खुश्क ५ माशा और मिश्री २ तोला, पानी में पकाकर सवेरे शाम पिलाने और १ टिकिया इन्तिसाबी १ तोला मधु या मक्खन में मिला कर रात को खिलाने से लाभ होता है।

इन उपायों से यदि लाभ न हो तो विरेचन द्वारा कफ को निकाला जाता है। इसके लिए हब्ब अमारिज का प्रयोग कराया जाता है। कभी-कभी वमन कराके भी कफ को निकाला जाता है। ताकत के लिए खमीरा अबरेशम हकीम इर्शदवाला अथवा खमीरा अबेशम शीरा

उन्नाव वाला प्रयोग कराया जाता है।

खमीरा खशखश, लऊक नजली काम में लिया जाता है।

यदि शुष्कताजन्य दमा हो तो उसकी चिकित्सा इस प्रकार की जाती है कि लऊक नजली आब तरबूज वाला ७ माशा खिलाकर ऊपर से बिहदाना ३ माशा, उन्नाव५दाना, लिहसोड़ा ९ दाना सबको पानी में पकाकर छानकर शर्बत बनफसा २ तोला अथवा शर्बत खसखास २ तोला लें और काहू के बीज का शीरा ३-३ माशा मिलाकर पिलावें।

छाती पर मालिश करने के लिए गुलबनफसा ६ माशा और गुलनीलूफर ६ माशा पानी में पकाकर प्रयोग में लावें।

आवेग की अवस्था में लउक सपिस्तां या लऊक इसबगोल २ तोला की मात्रा में अर्क गावजबान १२ तोला में मिलाकर पिलाना चाहिए।

बेनजीर १ टिकिया १ तोला मधु या मक्खन में मिलाकर खिलाना चाहिए।

श्वास कष्ट की अवस्था में निम्न योग दिया जाना चाहिए—

कलमी शोरा १ तोला, लाहौरी नमक १ तोला, अफीम १॥ माशा लें। प्रथमोक्त दोनों द्रव्यों को यवकुट करके आधी अफीम नीचे और आधी ऊपर रखकर मिट्टी की दो प्यालियों में कपड़मिट्टी करके बेर की लकड़ी से एक लौ की हलकी मृदु अग्नि सवा घड़ी तक देवें। पुनः उतार कर ऊपर के प्याले में जितने औषध के वाष्प जाकर लगे हों उस सत्व को खुरच लेवें। इस सत्व में से १ चावल सवेरे और उतना ही सायंकाल २ तोला शर्बत जूफा में मिलाकर चाटना चाहिए।

श्वास रोगी के लिए अधिक सोना, शीतल और अम्ल पदार्थों का सेवन, अंगूर, सेव एवं नारंगी आदि फल, कठिन परिश्रम, तैल, गुड़, लाल मिर्च और लहसुन का प्रयोग हानिकारक होता है। इनको बकरी का शूरबा, चपाती, मूंग, अरहर की दाल, मुर्गी का शूरबा, बथुआ की भुजिया, चुकन्दर, कद्दू एवं तुरई का शाक हितकर होता है।

ब्याज करीब (हकीम कबीरुद्दीन साहब) जिसे दिल्ली का मतब भी कहा जाता है—में श्वास रोग पर निम्न लिखित योग बताए हैं—

(१) तुख्म अलसी ९ माशा और मिश्री २ तोला को पानी में जोश देकर छानकर पिलाने से दमा और पुरानी खांसी में फायदा होता है।

(२) जंजबील ३ माशा, गुल धावा ३ माशा, पोस्त डोड़ा एक अदद को पानी में जोश देकर छानकर पिलाने से बलगमी खांसी दूर होती है।

(३) बिसफेज ७ माशा, मुलहठी ५ माशा, अनीसून ५ माशा को पानी में जोश देकर छानकर खमीरा बनफशा ४ तोला के साथ पिलाने से दमा और खांसी दूर हो जाते हैं।

(४) अन्जीर जरद ४ अदद, उस्तखद्दूस ५ माशा, हंसराज ५ माशा और शहद असली ४ तोला को पानी में जोश देकर छानकर पिलावें। इससे बलगम बाहर निकलता है।

(५) ईरसा ३ माशे, फितरा साल्यून ३ माशा और असली शहद २ तोला पानी में जोश देकर छानकर पिलावें। यह बलगम निकालने की और अच्छी दवा है।

(६) खाकसी ५ माशा, अन्जीर जरद ५ दाना, अबरेशम मुकरज ५ माशा और शहद असली ४ तोला को पानी में जोश देकर छानकर पिलावें। यह दमा के लिए मुफीद है।

(७) सिंगरफ १ तोला, बरगे शाहतरा ५ तो. को कूट छानकर चने के बराबर की गोलियां बना लें। इन गोलियों का प्रयोग करें तथा आहार में गाय का दूध और घी ही प्रयोग में लावें। यह दमा के लिए बताया गया है।

(८) हीरा कसीस को चने के बराबर मात्रा में खिलावें। इससे बलगम बहुत खारिज होता है। बलगम निकल जाने पर माजून फल सफा ९ माशा सवेरे के समय में तथा नौशादर ९ माशा शाम के समय कुछ दिन तक प्रयोग करने से दमा रोग दूर हो जाता है।

(९) खाने का सादा नमक २ माशा को रोहो मछली के पित्त में हलकर के घीकुवांर के गूदे में डालकर पकावें। इस नमक की एक रत्ती की मात्रा को दो तोला शर्बत बनफशा में मिला कर खिलावें। यह बलगमी (आर्द्र) दमा के लिए मुफीद है।

(१०) **कुस्ता बेख मिरजान**—वसद १ तोला को मदार के दूध ३ तोला में खूब खरल करें। फिर मिट्टी के सकोरे में रख कर कपड़मिट्टी कर दें। इसे दो सेर जंगली उपलों की आग में फूंक दें। ठंडी होने पर निकाल लें। इसे काम में लावें। वलगमी दमा के लिए मुफीद है। इसकी एक मात्रा एक रत्ती की बनावें और सुबह के वक्त पान के पत्ते के साथ खिलावें।

इन योगों के अतिरिक्त ग्रन्थकार ने लिखा है कि खांसी में काम आने वाले लगभग सब नुस्खे दमा में भी लाभ करते हैं। खासकर वे नुस्खे जो सांस की नलियों से वलगम बाहर निकालते हैं। उन नुस्खों को खांसी के इलाज में अब लिखने जा रहे हैं।

अब हम दमा खांसी के लिए प्रसिद्ध यूनानी योगों का वर्णन करेंगे।

खांसी—खांसी को 'सुर्फ' और 'सुग्राल' नाम से भी वर्णित किया जाता है। इसकी उत्पत्ति में दो प्रकार के कारण बताए गए हैं—ठंड लगने-जुकाम होने से उत्पन्न खांसी। इस तरह की खांसी में पिलाई लिए हुए सफेद रङ्ग का बलगम निकलता है छाती में भारीपन और दर्द बना रहता है। इस तरह की खांसी बालकों और वृद्धों को प्रायः होती है। रात के समय और सवेरे ठंड के समय में ज्यादा उठती है। यदि इस तरह की खांसी का तत्काल इजाज न किया जाए तो पुरानी पड़कर बहुत कष्टदायक हो जाती है। दूसरी तरह की खांसी शुष्क होती है। यह गर्मी में तथा उष्ण चीजों के प्रयोग से उत्पन्न होती है। इस तरह की खांसी में वलगम नहीं निकलता। गला छिलता है और छाती में जलन होती है। यदि खांसी ज्यादा दिन तक बनी रहे तो यह फेफड़ों में क्षत करदेती है।

व्याज कबीर (दिल्ली का मतब) में खांसी के इलाज में निम्नलिखित योग दिये गये हैं—

(१) **नुस्खा गोंद कतीरे वाला**—यह गरम और खुष्क खांसी के लिये फायदा करता है। नजला में भी देते हैं।

गोंद बबूल १ माशा, कतीरा १ माशा, सत मुलहठी १ माशा सबको बारीक पीस कर खमीरा खशखश १ तो. में मिलाकर खिलावें। ऊपर से लुआब गावजवान ३ माशा, शीरा कोकनार (पोस्त) १ माशा—अर्क गावजवान १२ तो. में निकालकर और इसमें शर्बत खसखास २ तोला मिलाकर पिलावें।

(२) यह नुस्खा भी गरम और शुष्क खांसी के लिए बताया गया है।

गोंद बबूल १ माशा, कतीरा १ माशा, सत मुलहठी १ माशा तीनों को पीसकर खमीरा, खशखाश सात माशा में मिलाकर पहले खिलावें। ऊपर से शीरा हब्ब उलास ३ माशा, शीरा खुर्फा स्याह ३ माशा, शीरा कोकनार (पोस्त) एक अदद, अर्क गावजान १२ तोला में निकालकर रूब-ब-सीरीं २ तोला मिलाकर पिलावें।

गाहे बिहदाना ३ माशा, उन्नाब ५ दाना, सपिस्ता ९ दाना पानी में जोश देकर शर्बत बनफशा २ तोला मिलाकर पिलाते हैं। रात के समय हरीरा मगज बादाम में तुख्म खसखस सफेद दस माशा मिलाकर खिलाते हैं।

हरीरा मगजबादाम का नुस्खा—बादाम की मीठी गिरी चार दाने, कद्दू की मीठी गिरी ३ माशा, तरबूज के बीजों की मीठी गिरी ३ माशा, गोंद कीकर ३ माशा, निशास्ता ३ माशा, मिश्री २ तोला को पानी में पीसकर आग पर रखें। जब पाक हो जावे तब नीचे उतार कर ठंडा करें और ठंडा होने पर खावें।

(३) **हब्ब सुआल**—गोंद बबूल १ माशा, कतीरा १ माशा, सत मुलहठी १ माशा, मगज बिहदाना १ माशा, मगज बादाम मीठा १ माशा, मगज पिस्ता १ माशा, तुख्म खशखश सफेद १ माशा, शक्कर तुहाल १ माशा इन सबको मिलाकर कोकनार के पानी में पीसकर चने के बराबर गोलियां बना लें। एक या दो गोली मुख में रखकर चूसते रहें।

(४) खांसी के लिए और बलगम निकालने के लिए मुफीद है।

गुल बनफशा ७ माशा, मुनक्का ९ दाने, तुख्म तखमी ९ माशा, गावजबान ५ माशा, उन्नाव ५ माशा, छिली हुई मुलहठी ५ माशा, सपिस्ता ९ दाने को रात के समय गरम पानी में भिगोकर सुबह के समय मसलकर छानकर शर्बत बनफशा २ तोला मिलाकर पिलावें।

(५) **हब्ब अदरक**—गुल पिस्ता ६ माशा, हरड़ का छिलका अथवा बहेड़ा का छिलका ६ माशा को कूटकर

अद्रक के पानी में मिलावें। फिर मूंग के दाने के बराबर गोलियां बनाकर एक गोली मुंह में रखें और उसका लुआब चूसते रहें। इससे खांसी में लाभ होता है।

(६) **लऊक**—खांसी और जुकाम के लिए मुफीद है। इसमें छिली मुलहठी २१माशा, उस्ले खद्दूश २१माशा, गुल गावजवान २१ माशा, जोफे खुष्क २१ माशा, मेथी २१ माशा, वाकला २१ माशा, वादयान १० माशा, तुख्म खुब्बाजी १० माशा, पोदीना खुश्क १० माशा, वर्ग गावजवान १ तोला, गुल वनफसा ६ माशा, हंसराज ५ तोला, अन्जीर जर्द २२ माशा, तुख्म अलसी २ तोला, उन्नाव २० दाना, सपिस्तां ४० दाना, पोस्त खसखास १ तोला, सबको डेढ़ सेर पानी में जोश देकर जब आधा रह जाये तब छानकर १ सेर मिश्री मिलाकर क्वाथ बनावें। और आखिर क्वाथ में शीरा मगज वादाम मीठा २ तोला तथा सीरा मगज खसखास सफेद मिलावें। इसके बाद शक्कर तिगाल २ माशा, सुमाक अरबी २ माशा, कुन्दर २ माशा, मगज बिहादाना २ माशा, मुरमक्की (वोल) २माशा सबको पीसकर मिलावें। खुराक ३ माशा से ७ माशातक।

(७) कफ को बाहर निकालने के लिए निम्नलिखित नुस्खा फायदा करता है—गेहूँ का छिलका १ तोला तथा नमक १ माशा लेकर पानी में उबाल कर छानकर पिलाया जाता है।

(८) पित्तजन्य श्वास के लिए निम्नलिखित योग काम में लिया जाता है।

लुआब विहदाना ३ माशा, सीरा उन्नाव ५ दाना, शीरा मगज कद्दू मीठा ३ माशा, शीरा मगज तुख्म तरबुज ३ माशा, अर्क गावजवान १२ तोला में निकालकर शर्बत वनफशा मिलाकर पिलावें।

(९) श्वास की अवस्था में लाभ करने वाला नुस्खा निम्नलिखित है। गुल वनफशा ७ माशा, उन्नाव ५ दाना, सपिस्ता ६ दाना, तुख्म खतमी ७ माशा, तुख्म खब्बाजी ७ माशा, गावजवान ५ माशा, गुलगावजवान ५ माशा, बहमन सफेद ५ माशा, वर्ग बादरंजबोया ५ माशा, वर्ग फरञ्जमुशक ५ माशा, अब्रेशम ५ माशा, पा.ी में जोश देकर शर्बत वनफशा या शर्बत अजाज २तोला मिलाकर पिलावें।

(१०) कफजन्य श्वास के लिये निम्नलिखित योग दिया जाता है। चाय सब्ज ३ माशा, गुलबनफसा ७ माशा, मिश्री २ तोला जोश देकर छान कर मसल कर पिलावें।

(११) **शर्बत**—इस शर्बत से श्वास की नालियों से बलगम निकलता है और खरखराहट मिट जाती है। बेख सोसन दो तोला, मुलहठी ७ माशा, जोफाए खुशक ७ माशा, रात के समय गरम पानी में भिगोवें। सुबह के समय मसल छान कर तुरञ्जबीन ५ तोला और शहद ५ तोला मिलाकर शर्बत का क्वाथ बनावें। इसकी मात्रा दो तोला है।

(१२) **हब्ब लुआब बिहदाना**- यह खांसी के लिये लाभदायक है—

मगज बिहदाना २ माशा, मगज तुख्म कद्दूए सीरीं २ माशा, मगज तुख्म खरियान २ माशा, जाफरान १ माशा, सुमाक अरबी ३ माशा, निशास्ता ३ माशा, कतीरा ३ माशा, सीरा मगज बादाम शीरीं, सत मुलहठी ४ माशा, मुन्नका ४ माशा, तुख्म खसखास ४ माशा, शक्कर सफेद ७ माशा सबको कूट छान कर लुआब इसबगोल में गोंद कर चने बराबर गोलियां बनावें और मुख में रखकर चूसते रहें।

(१३) पुराना कफजन्य खांसी के लिये लाभकारी नुस्खा यह है। सोंठ ३ माशा, गुल धावा ३ माशा, पोस्त ३ माशा, पानी में जोश देकर जब आधा पानी बाकी रहे तब छान कर मिश्री दो तोला मिलाकर पिलावें।

(१४) **खांसी के लिये चूर्ण**—पोश्ता खुश्क २ अदद, पोस्त पीली हरड़ १ अदद, मीठे अनार का छिलका ४ माशा, तुख्म खतमी ४ माशा, तुख्म खुब्बाजी ६ माशा, गोंद कीकर ३ माशा, कतीरा ३ माशा, सतमुलहठी ३ माशा सबको कूट छानकर इन सबके बराबर सफेद शक्कर मिलाकर चूर्ण बनावें। इसकी मात्रा २ माशा है। पानी के साथ दें।

(१५) **खांसी का नमक**—अजवायन खुरासानी, अजवायन देशी, नमक सांभर हरेक १ तोला लेकर तमाम को कूट छानकर वारिश के पानी में गोंद कर मिट्टी के सकोरे में रखकर ५ सेर उपलों की आग दें। सर्द होने

पर निकाल कर वारीक पीसकर रखें । इसकी मात्रा ४ रत्ती है।

ब्याज कबीर (दिल्ली का मत्तब) नामक पुस्तक के ऊपर वर्णित पन्द्रह नुस्खों के अतिरिक्त खांसी के लिये निम्नलिखित औषधियां भी काम में ली जाती हैं—

कफ-जन्य गीली खांसी में गुलबनफशा ७ माशा, उन्नाव ५ दाना, लिसोड़ा ६ दाना, गावजवान ४ माशा, खतमी के बीज ७ माशा, छिली मुलहठी ५ माशा सबको पानी में पकाकर मसल छानकर २ तोला शर्वत वनफशा मिलाकर पिलावें ।

इसी तरह सौंफ की जड़ ५ माशा, मुलहठी ५ माशा, जुफर खुश्क ५ माशा, हंसराज ५ माशा, मिश्री २ तोला मिलाकर पानी में पकावें। फिर छानकर गरम-गरम पिलावें।

इसी तरह काकड़ाश्रृंगी, शकर तिगाल, सोंठ और पीपरामूल प्रत्येक १ माशा सबको महीन पीसकर २ तोला शहद मिलाकर चटावें ।

इसी तरह सत मुलहठी, बबूल का गोंद, कत्तीरा, शकरतिगाल, वादाम का मगज, सफेद पोस्त के दाने प्रत्येक ६ माशा, अफीम २ माशा, केशर २ माशा,–सबको पीसकर गावजवान के लुआब में मिलाकर गोलिया बनालें और मुख में रखकर चूसने के लिये दें।

खुश्क और गर्म खांसी में निम्नलिखित द्रव्यों के योग काम में लिए जाते हैं —

बबूल का गोंद १ माशा, कत्तीरा ७ माशा, मुलहठी का सत ७ माशा, शकरतिगाल १ माशा महीन पीसकर ७ माशा खमीरा खशखस में मिलाकर प्रथम खिलावें और ऊपर से ३ माशा बिहदाना, उन्नाव ५ दाना, लिसोड़ा ६ दाना, पानी में पका छानकर २ तोला शर्वत वनफशा मिलाकर सवेरे शाम पिलावें।

रूक्षता अधिक हो तो ३ माशा खीरा ककड़ी के बीज का शीरा, कुलफा के बीज का शीरा ३ माशा, मीठे कद्दू के मगज का शीरा ३ माशा-१२ तोला अर्क गावजवान में में पीसकर शीरा निकालकर २ तोला शर्वत खशखश मिला कर सवेरे शाम पिलावें।

इन योगों के अतिरिक्त कास और श्वास के लिए कुछ अन्य उपयोगी यूनानी नुस्खे इसी प्रकरण के अन्त में संग्रहित किए गये हैं जिनका आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सकता है।

दमा-खांसी के लिये प्रसिद्ध यूनानी योग

अक्सीर नजला—द्रव्य और निर्माण विधि–कलमी-शोरा ६ माशा, कपूर ६ माशा, अहिफेन २ माशा, शुद्ध वच्छनाग १½ माशा। इन सबको वारीक खरल करके जल से मूंग-प्रमाण की गोलियां बनायें।

मात्रा और सेवन-विधि—एक गोली सवेरे या रात को खा लें।

गुण तथा उपयोग—कैसा ही प्रसेक (नजला) हो, इसके उपयोग से दूर हो जाता है।

अतूस, नजला व जुकाम—द्रव्य और निर्माण-विधि—उस्तूखूदूस-पुष्प, सफेद इलायची, नीम के पत्र, तम्बाकू के पत्र, धनियां के सूखे पत्र, सिरस के बीज-प्रत्येक २ माशा। इन सबको कूट पीसकर रखलें।

मात्रा और सेवन-विधि—इसमें से थोड़ी सी औषधि चुटकी में लेकर नस्य की भांति प्रयोग करें।

गुण तथा उपयोग—यह प्रसेक व प्रतिश्याय (नजला व जुकाम) के लिये गुणकारी है। यह रुके हुए नजला को पतला करके उत्सर्गित करती है और उसकी भावी उत्पत्ति को रोकती है।

तिरियाक नजला—द्रव्य और निर्माण-विधि—उस्तूखुदूस १ तोला ५½ माशा, गावजवान पुष्प, विलायती मेंहदी के बीज (तुख्म मीरद), शुष्क धनियां प्रत्येक २ तोला ११ माशा, काहू के बीज ५ तोला १० माशा, खुरासानी अजवायन और पोस्ते की डोंडी (कौवनार) प्रत्येक ८ तोला ६ माशा, सफेद खसखाश के बीज (श्वेत खस बीज) ११ तोला ८ माशा समस्त द्रव्योंको रात्रि भर जल में भिगोकर सवेरे पकाएं। फिर मल छानकर तिगुनी मिश्री मिलाकर चाशनी करें। पीछे गुलाब पुष्प, शुष्क धनियां, मुलैठी का सत, गेहूं का सत (निशास्ता), बबूल का गोंद,

कतीरा, बौल (मुरमाकी)--प्रत्येक १ तोला ५१/२ माशा वारीक पीसकर मिला लें।

मात्रा और सेवन-विधि—७ माशा यह तिरियाक, २ तोला शर्बत खशखाश और १२ तोला अर्क गावजवान के साथ प्रातःकाल निराहार मुख खाऐं। भारी और अम्ल पदार्थों से परहेज करें।

गुण तथा उपयोग—यह हर प्रकार के सर्द व गरम नजला के लिये लाभकारी और सिद्ध भैषज है।

तिरियाक नजला दायमी—द्रव्य और निर्माण विधि—सफेद धतूरे के बीजों को पोस्ते की डांडी (पोस्त खशखाश) के पानी में सात वार भिगोकर सुखाऐं। फिर पोस्ते की डांडी के पानी में उवालें। जव सम्पूर्ण जल शोषित हो जाय तव उतारकर धतूरे के बीजों को काम में लेवें। इस प्रकार शुद्ध किये हुए धतूरे के बीज, बिनौले की गिरी, सफेद जीरा, छिला हुआ धनियां (कशनीज मुकश्शर) समभाग लेकर महीन करके त्रिफला के पानी से खरल करें और चना प्रमाण की गोलियां वनाकर छाया में सुखालें।

मात्रा और सेवन विधि—रात्रि में सोते समय १गोली का सेवन करें।

गुण तथा उपयोग—यह दायमी प्रसेक व प्रतिश्याय (जुकाम और नजला) के लिए रामवाण औषध है।

माजून नजला व जुकाम—द्रव्य और निर्माण-विधि' छिली हुई मुलैठी १४ माशा, उस्तूखूद्दूस १४ माशा, गावजवान ७ माशा, गावजवान पुष्प, जूफा खुश्क, मेंथी, वाकला, प्रत्येक १४ माशा, सौंफ, खीरा-ककड़ी के बीज, सूखा पोदीना प्रत्येक ४ माशा, वनफसा पुष्प ९ माशा, हंसराज (परसि यावशां) ९ माशा, अंजीर जर्द २२।। माशा, खतमी वीज २२।। माशा, अलसी वीज ४।। माशा, उन्नाव ४० दाना, लिसोड़ा ७० दाना, पोस्ते की डोंडी १ तोला। इन सबको आध सेर जल में इतना पकाऐं कि आधा जल (१ पाव) रह जाय। फिर मल छानकर आध सेर मिश्री की चाशनी कर लें। चाशनी के अन्त में ६ माशा बादाम की गिरि और ६ माशा पोस्त के दाने का शीरा मिलाऐं तथा मुलैठी का सत २ माशा, श्वकरतीगाल २ माशा, बबूल का गोंद, कुंदुर, मग्ज विहदाना-प्रत्येक २ माशा और वील (मुरमक्की) १ माशा पीसकर मिला लें।

मात्रा और सेवन विधि—३ माशा से ६ माशा तक गावजवान के अर्क से खिलायें।

गुण तथा उपयोग—जिनको वार-वार जुकाम व नजला होता हो, उनके लिये हितकर है।

लऊक नजली (जदीद)—द्रव्य और निर्माण विधि:—मुलैठी २ तोला ११ माशा, खतमी वीज, विहदाना-प्रत्येक ४ तोला १ माशा। सबको डेढ़ सेर जल में भिगोकर सवेरें क्वाथ करें। जव आधा जल रह जाय, तव १७१/२ तोला चीनी मिलाकर चाशनी करे। अन्त में मग्ज विहदाना और ववूल का गोंद—प्रत्येक १ तोला ९ माशा, कतीरा २ तोला ४ माशा, सफेद पोस्त का दाना (श्वेत खस वीज) और काले पोस्ते का दाना—प्रत्येक २ तोला ११ माशा पीसकर मिलायें। वस अवलेह (लऊक) तैयार है।

मात्रा और सेवन विधि—२ तोला अवलेह १२ तोला गावजवान के अर्क के साथ उपयोग करें।

गुण तथा उपयोग—यह नजला के लिए असीम गुणकारी है तथा प्रतिश्यायजन्य कास (नजली खांसी) को दूर करता है।

शर्बत फरयादरस जदीद—द्रव्य और निर्माण-विधि—गावजवान, गुलावपुष्प, खतमी-वीज, सोंफ प्रत्येक १ तोला, पोस्ते का दाना (खसवीज), श्वेत चन्दन, ऊदसलीब, हंसराज (परसियावशां), मुलैठी-प्रत्येक २ तोला, वीज निकाला मुनक्का (मवेज मुनक्का) २५ दाना, मिश्री आध सेर। इन सवका यथा विधि शार्कर (शर्वत) प्रस्तुत कर लें।

मात्रा और सेवन विधि—१ तोला शार्कर १२ तोला गावजवान के अर्क के साथ उपयोग करें।

गुण तथा उपयोग—यह प्रसेक व प्रतिश्याय (नजला व जुकाम) तथा कास में अतिशय गुणकारी है।

हब्ब जुकाम मुज्मिन—द्रव्य और निर्माण विधि—संखिया का सत्व (जौहर) १ माशा, शिलाजीत १।। माशा, लौहभस्म ६ माशा, अम्वर अशहव २ माशा इनको किसी कदर गावजवान के अर्क में घोटकर काली मिर्च के प्रमाण की गोलियां बना लें।

मात्रा और सेवन विधि—१गोली सवेरे और १ गोली शाम खायें। गुण तथा उपयोग—यह चिरज प्रतिश्याय के लिए परम गुणकारी है।

हब्ब नजला—द्रव्य और निर्माण-विधि—खुरासानी अजवायन, अहिफेन, बबूल का गोंद, कतीरा, काहू के बीज लुफाह की जड़, मुलैठी का सत, गेहूँ का का सत(निशास्ता) केसर—प्रत्येक समभाग लेकर महीन पीसकर चना प्रमाण की गोलियां बना लें।

मात्रा और सेवन-विधि—प्रयोजनानुसार एक गोली जल से निगल लें।

गुण तथा उपयोग—दायमी नजला और जुकाम के लिये यह लाभकारी एवं सिद्ध-भैषज है।

हब्ब सुआल नजली—द्रव्य और निर्माण-विधि—बबूल का गोंद, कतीरा, मुलैठी का सत, शकरतीगाल, सफेद पोस्ते के दाने, मीठे बादाम का मग्ज—प्रत्येक ६ माशा, अहिफेन और केशर प्रत्येक २ माशा इनको बारीक पीसकर बिहदाने के लुआब में पीसकर गोलियां बनायें।

मात्रा तथा सेवन-विधि—१ गोली निरन्तर मुख में डाले रहें और लुआब चूसते रहें।

वक्तव्य—इनके अतिरिक्त 'बरशाशा', 'लऊक तुजुर्ब', और 'दियाकूजा' प्रभृति योग भी इस रोग में गुणकारी हैं।

कुश्तानौशादर--द्रव्य और निर्माण-विधि--नौसादर १ तोला, पिसा हुआ लवण एक पाव। नौसादर को लवण के बीच तवे पर रख दें और ऊपर प्याला औंधा कर दें। फिर तवे को चूल्हे पर रखकर दो घण्टे तक मध्यम अग्नि दें। जब शीतल हो जाय तब नौशादर को निकाल कर बारीक पीस लें।

मात्रा और सेवन विधि—२ रत्ती यह भस्म जरा-सा मक्खन मिलाकर शुष्क कास में और आर्द्र (तर) कास में बताशा में रखकर दें।

गुण तथा उपयोग—यह कास और श्वास में अतीव गुणकारी है।

कुश्ता सदूफ सुरक्कब—द्रव्य और निर्माण-विधि—मुक्ताशुक्ति (सदफ सादिक) २ तोला, वंग (कलई) ६ माशा, वंग के वारीक-वारीक टुकड़े काटकर और मोतीसीप (सदूफ) के टुकड़े करके एक मिट्टी के सकोरे में डालें और ऊपर से घीकुआर का रस इतना डालें कि चार अंगुल उनसे ऊपर रहे। फिर कपड़मिट्टी करके गढ्ढे में एक मन उपलों की अग्नि में फूंक दें। स्वांग-शीतल होने पर निकालें और पीसकर सुरक्षित रखें।

मात्रा और सेवन-विधि—आधी रत्ती से ३ रत्ती तक प्रयोगानुसार कफज कृच्छ्रश्वास में २ तोला मधु या २ तोला शर्बत जूफा के साथ, उष्ण श्वास में शर्बत नीलोपफर के साथ, सूजाक और वृक्क रोग में ४ तोला शर्बत बजूरी के साथ और कास में अर्क गावजबान के साथ उपयोग करें।

गुण तथा उपयोग—कफज कृच्छ्रश्वास और अन्यान्य कफज व्याधियां जैसे-कास श्वास आदि में गुणकारी है। यह अश्मरी को तोड़ता है और वृक्क एवं बस्तिगत रोगों में लाभ पहुँचाता है।

कैरुती—द्रव्य और निर्माण विधि—मोम १ तोला, रोगन बनफशा और रोगन कद्दू प्रत्येक १॥ तोला में पिघलाकर काहू का रस और हरे धनियां का रस प्रत्येक १ तोला मिलाकर वक्ष (सीना) पर मालिश करें।

पथ्यापथ्य—हरीरे, यवमण्ड (अशिजो) और अन्यान्य तरी उत्पन्न करने वाले पथ्य—आहार सेवन करें। रूक्ष पदार्थ बिलकुल न खाएं।

गुण तथा उपयोग—शुष्क कास में सीने को तर रखने के लिए यह गुणकारी है।

खमीरे खशखाश-द्रव्य और निर्माण-विधि—पोस्ते की डोंडी (कोकनार) १०० नग को २ सेर जल में भिगोएं। सवेरे यथाविधि क्वाथ करके १ सेर चीनी के साथ खमीरा की चाशनी करें।

मात्रा तथा सेवन विधि—७ माशा खमीरा अर्क गावजवां १२ तोला या अन्य उपयुक्त अनुपान के साथ सेवन करें।

गुण तथा उपयोग—यह कास और उष्ण प्रतिश्याय के लिए गुणकारी है। फुफ्फुस से रक्त आने को रोकता है संताप शमन करता है, प्रतिश्याय जन्य शिरःशूल को लाभ पहुँचाता है और अति रजस्राव को बन्द कर देता है।

दियाकूजा—द्रव्य और निर्माण विधि—समूचा पोस्ते की डोंडी (कोकनार मुसल्लम) २० नग, खतमी-बीज, कतीरा, बबूल का गोंद, खीरा

ककड़ी के बीज, विहदाना-प्रत्येक १ तोला ५ माशा, छिली हुई मुलैठी और ईसबगोल प्रत्येक ३ तोला, चीनी १ पाव। पोस्ते की डोंडी, मुलैठी, विहदाना और खतमी के बीजों को रात्रि में तिगुने उष्ण जल में भिगोकर क्वाथ करें। जब आधा जल रह जाय तब उतार छानकर उसमें चीनी मिलाकर चाशनी करें। पीछे उसमें कतीरा और बबूल का गोंद पीसकर मिला दें।

मात्रा और सेवन-विधि—एक या दो तोला मुख में रखकर चूसें।

गुण तथा उपयोग—यह कास और नजला के लिये गुणकारी है।

लऊक बादाम (जदीद)—द्रव्य और निर्माण विधि—छिलका उतारी हुई मीठे बादाम की गिरी, मीठे कद्दू के बीज की गिरी प्रत्येक ३५ माशा, बबूल का गोंद कतीरा, निशास्ता (गेहूँ का सत), मुलैठी का सत प्रत्येक ७० माशा, चीनी ७० माशा। सबको कूट पीसकर मीठे बादाम के तैल में स्नेहाक्त करके यथावश्यक गुलाब पुष्प-अर्क मिलाकर अवलेह (लऊक) बनालें।

मात्रा और सेवन-विधि—४ से ६ माशा तक यह अवलेह प्रातः-सायं चटाएँ।

गुण तथा उपयोग—यह शुष्क कास तथा कण्ठ और स्वरयन्त्र प्रदाह को दूर करने के लिये उत्कृष्ट एवं गुण-दायक औषधि है।

लऊक बीहदाना (जदीद)—द्रव्य और निर्माण विधि-वीहदाना, ईसबगोल, खतमी बीज प्रत्येक ५ तोला का लुआब निकालकर मीठे अनार के रस, ककड़ी का स्वरस, लौका का रस, पौड़ा हुआ कुलफा पत्र स्वरस-प्रत्येक २० तोला में समाविष्ट करें और छानकर आधा सेर चीनी मिलाकर चाशनी करें। चाशनी के बाद बबूल गोंद, कतीरा, छिली हुई मीठे बादाम की गिरि, सफेद पोस्ते के दाने प्रत्येक २ तोला, मुलैठी का सत, शकरतीगाल प्रत्येक ६ माशा, बारीक पीसकर मिलालें।

मात्रा और सेवन विधि—६ माशा से १ तोला तक एक दिन में कई बार चटाएँ।

गुण तथा उपयोग—यह शुष्क कास एवं उरःक्षत में परम गुणकारी है।

लऊक सपिस्तां—द्रव्य और निर्माण ... ५० नग, उन्नाव १० नग, पोस्ते की डोंडी २ ... मुलेठी १ तोला सफेद खतमी बीज, खीरा ककड़ी के प्रत्येक ४ माशा, बीहदाना ३ माशा। इन सबको २ ... जल में क्वाथ करें और आधा सेर चीनी में ... तैयार करें। चाशनी के अन्त में निस्तुषीकृत जौ का ... छिलका उतारी हुई बादाम की गिरी का शीरा, ... दाने का शीरा प्रत्येक १ तोला मिलायें। चाशनी तैया... जाने के बाद मुलेठी का सत, कतीरा और बबूल का ... प्रत्येक ३ माशा पीसकर मिलायें।

मात्रा और सेवन विधि—७ माशा या १ ... प्रातः और सायंकाल चाट लिया करें।

गुण तथा उपयोग—यह नजला, कास और ... के लिए परम गुणकारी है तथा श्लेष्मा को नष्ट करत...

लऊक सुआल—द्रव्य और निर्माण विधि—... के बीज और मीठे बादाम की गिरी प्रत्येक ३ तोला ... कर १२ तोला मधु में मिलावें।

मात्रा और सेवन विधि—२ तोला अवलेह सबेरे ... तोला गावजबानार्क के साथ लें।

गुण तथा उपयोग—यह कफज कृच्छ्रश्वास के ... गुणकारी है एवं शुष्क व आर्द्र उभय प्रकार के ... के लिए लाभकारी है।

शर्बत उन्नाव—द्रव्य और निर्माण विधि ... उन्नाव विलायती १॥ सेर, मिश्री ३॥ सेर इनका ... विधि शर्बत प्रस्तुत करें।

उपयोग और सेवन विधि—४ तोला शर्बत (शार्क... १० तोला अर्कशाहतरा या अर्कगावजबान के स... सेवन करें।

गुण तथा उपयोग—यह रक्त प्रसादक है। रक्तप्रको... को शमन करता और मसूरिका में लाभकारी है।

शर्बत खशखाश—द्रव्य और निर्माण विधि ... की डोडी (कोकनार) १॥ सेर रात को अठगुने ... भिगोयें और सवेरे क्वाथ करें। जब चौथाई जल रह जाय तब १॥ सेर चीनी मिलाकर शर्बत (शार्कर) चाशनी करें।

मात्रा और सेवन विधि—१ तोला शार्कर ...

ान जदीद ६ तोला के साथ सेवन करें।

गुण तथा उपयोग—यह उष्ण नजला (पित्तज प्रति-ाय) को दूर करता है और कास में लाभकारी है।

शर्बत जूफा जदीद—द्रव्य और निर्माण विधि—नाब ६० नग, लिसोड़ा १०० नग, सफेद अन्जीर ४८ , बनफशापुष्प २८ माशा, खतमी बीज, खुब्बाजी बीज येक ३५ माशा, हंसराज (परसियावशां) २४॥ माशा, ली हुई मुलहठी, जूफा शुष्क प्रत्येक ४ तोला ८ माशा। सबको जल में क्वाथ कर छान लें और काढ़े में आधा चीनी मिलाकर शर्बत कर चाशनी बना लें।

मात्रा और सेवन विधि—१ से २ तोला तक यह कर अर्क या औषधियों के क्वाथ या फाण्ट में मिलाकर लायें या यूंही थोड़ा-थोड़ा चटायें।

गुण तथा उपयोग—यह वक्ष को गाढ़े दोषों से शुद्ध ता है, कास के लिए परम गुणकारी है और श्वास के ए भी उपकारक है।

शर्बत बनफ्सा—द्रव्य और निर्माण विधि—बन-ा पुष्प ३ तोला रात को जल में भिगो दें। सवेरे ाल कर छान लें और १॥ सेर चीनी मिलाकर शनी करें।

मात्रा और सेवन विधि—४ तोला यह शार्कर १-२ ला गावजबान अर्क के साथ सेवन करें।

गुण तथा उपयोग—यह प्रतिश्याय (नजला व जुकाम) स और ज्वर में गुणकारी है तथा शिरःशूल और कर्ण-ा में भी उपकारी है।

हब्ब सुआल खासुलखास—द्रव्य निर्माण और धि—अन्तर्धूमदग्ध मन्दार पुष्प, अन्तर्धूम दग्ध कदली स, शकरतीगाल प्रत्येक २ माशा मुलेठी का सत ४ ा, काकड़ासिंगी, शिलारस प्रत्येक १ माशा, बंशलोचन माशा, काली मिर्च २ माशा। इन सबको पीस ड़ छान चूर्ण कर बंगला पान के फाड़े हुए स्वरस में घण्टे घोट खरल कर चना प्रमाण की वटिकायें बना-छाया में सुखा लें।

मात्रा और सेवन विधि—१-१ गोली दिन में कई र मुख में डालकर चूसते रहें।

गुण तथा उपयोग—यह कफज कास के लिए उत्तम रसायन है। श्लेष्मा उत्सर्ग करती है और कास को जड़ से खो देती है।

अक्सीर जोकन्नफस—द्रव्य और निर्माण विधि—तीक्ष्ण तम्बाकू ५ तोला, अहिफेन १ तोला, सफेद संखिया २ माशा, अर्कक्षीर १० तोला। इन सबको खूब भली-भांति खरल करें। फिर २ तोला एलुआ डालकर खुरासानी अजवायन का चूर्ण २ तोला और धतूरे के बीज २ तोला मिलाकर पुनः खरल करें। जब शुष्क हो जाए तो सुरक्षित रख लें। ४ रत्ती उक्त औषधि में ३ से ५ तोला तक बादाम का तेल डालकर खूब भली-भांति खरल करें और १६ मात्रायें बना लें।

मात्रा और सेवन विधि—१ या २ मात्रा प्रतिदिन उपयोग करें।

गुण तथा उपयोग-यह कृच्छ्रश्वास और श्वास (दमा) के लिये परम गुणकारी है।

रोगन लोबान खास—द्रव्य और निर्माण विधि—कोडिया लोबान ५ तोला, दालचीनी, लौंग, जायफल, जावित्री, अजवायन प्रत्येक ३ माशा। इन सबको यवकुट करके आकाश यन्त्र से तेल निकालें। प्याले में दो प्रकार का तेल मालूम होगा। ऊपर वाला तेल पतला होगा और नीचे का गाढ़ा। दोनों को अलग-अलग रखो।

मात्रा और सेवन विधि—ऊपर वाला तेल बाह्य रूप से फुरेरी से कनफटी और मस्तक पर लगाने के काम आता है। नीचे वाला गाढ़ा तेल लोबान का तेल है। इसे एक सींक पान आदि पर लगाकर खिलावें।

गुण तथा उपयोग—पतला तेल शिरःशूल आदि में मस्तक पर लगाने से अति शीघ्र लाभ होता है। नीचे वाला तेल उपयुक्त अनुपान के साथ कफज रोग, नजला, श्वास और नपुंसकता तथा आमवात में परम गुणकारी है।

हब्ब जोकुन्नफस—द्रव्य और निर्माण विधि—बबूल का गोंद, कतीरा, केसर, मुलैठी का सत (विलायती) शकरतीगाल प्रत्येक १३ माशा, शुद्ध अहिफेन ३ माशा, दालचीनी, जावित्री, काला और सफेद पोस्ता के दाने, मीठे बादाम की गिरी, अम्बर अशहब, तिकत जदवार, छिले हुये बाकला के बीज, मुलेठी, बोल (मुरमकी), शिलारस, गावजबान के बीज, जहरमोहरा खताई, नीली

भाई के वंशलोचन, शुद्ध कस्तूरी, रक्त प्रवाल मूल; प्रवाल शाखा, हरयशव, माणिक (याकूत रुममनी), जरावन्द मुदर छज, रूममीस्तङ्गी, छोटी इलायची के बीज, गावजवान पुष्प प्रत्येक १ माशा, मुक्तापिष्टी (मारवारीद महलूल), काकड़ा सिंगी प्रत्येक २ माशा। इन सबको पीसकर गावजवान का लुआब मिलाकर चना प्रमाण की वटिकायें बनालें।

मात्रा और सेवन विधि—१-१ गोली सुबह-शाम दोपहर और रात को सोते समय मुख में डालकर लुआव चूंसे।

गुण तथा उपयोग—यह कृच्छ्रश्वास के लिये परम गुणकारी एवं परीक्षित है और उत्तमांग को बल प्रदान करती है। यह श्वास अर्थात् दमा को जड़ों से खो देती है।

जौहर लोबान—इसीको लोबान सत्व भी कहते हैं, लोबान का छोटा-छोटा टुकड़े करके यथाविधि जौहर उड़ावें।

मात्रा—४ चावल पान में रखकर खायें।

गुण—कफ का श्राव करता है, वाजीकर भी है।

सुफा वटी—गोंद बबूल, रुबूलसूस, खशखाश बीज, निशास्ता, अहिफेन १-१ तोला, सब औषध को खरल कर बीहदाना के स्वरस में चने के समान वटी करें, १ व २ वटी मुख में रखकर चूसें।

गुण—शुष्क तथा प्रतिश्याय जनित खांसी और गले की खराश में लाभप्रद है।

(२) गोंद कीकर, रबुलसूस, गोंद कतीरा, बीहदाना बीज, मगज, बादाम, मगज पिस्ता, मगज खशखश सफेद, शकरतेगाल १-१ माशे, सबको पोस्त डोंडा के क्वाथ में खरलकर चने के समान वटी करें। १-१ वटी मुंह में रखकर चूसें।

गुण—कास में लाभप्रद है।

हब्ब शहका—यवक्षार ६ माशे, काली मिरच १०½ माशे, पिप्पली २१ माशे, अनारदाना ४२ माशे, गुड़ ८४ माशे, सब औषधि को कूट पीसकर गुड़ में मिलाकर चने समान वटी करें।

मात्रा—आवश्यकतानुसार २ वटी प्रातः, २ सायं के समय प्रयोग करें।

गुण—कास तथा काली खांसी में उत्तम है।

हब्ब गुल पिस्ता—पिस्ता पुष्प १ तोला, बहेड़ा २ तोले दोनों को कूट छानकर अद्रक रस में खरल कर मूंग समान वटी करें। १ से २ वटी मुंह में रखकर चूसें।

गुण—कफज कास में उत्तम है। छाती से कफ को निकालती है।

हब्ब लवल खशखश—केसर २¼ माशे, पोस्त बेख लफाह (लफाह को इंगलिश में बेलाडोना कहते हैं)। उसकी जड़ की छाल) ४½ माशे यदि वह न मिले तो भांग पत्र डालें। अजवायन खुरासानी, रूमीमस्तङ्गी, कहरुवा, गोंद कतीरा, निशास्ता, गोंद कीकर, काहुबीज, गाऊजवान पुष्प, खशखश बीज, मगज तुख्म खयारैनै, अहिफेन, प्रत्येक ६ माशे, रबूलसूस १० माशे, गिल अरमनी १॥ तोले, रेवन्द चीनी ७ माशे सबको कूट छानकर चूर्ण करें और पोस्त डोंडा के क्वाथ में खरल कर मिरच समान वटी करें।

मात्रा—जीर्ण प्रतिश्याय में १ गोली अर्क गाऊजवान के साथ और इमसाक (स्तम्भन) के लिये एक वटी रोगी को दूध के साथ दें।

गुण—नजला (जीर्ण प्रतिश्याय), गले की खराश, खांसी के लिये अत्यन्त लाभप्रद है। स्तम्भक है।

हब्ब लुआब बहीदाना—मगज बहीदाना, मगज तुखम कद्दू, मगज तुखम खयारैना २-२ माशे, केशर १ माशा, गोंद कीकर निशास्ता, गोंद कतीरा ३-३ माशे, मगज बादाम, द्राक्षा, खशखश सफेद ४-४ माशे, मिश्री ७ माशे, रबूलसूस २ माशे, कूट-छानकर बहीदाना के लुआब में चने समान वटी करें। १ या २ वटी मुंह में रखकर चूसें।

गुण—यह वटी सिल की खांसी में लाभप्रद है।

हब्ब लबान या हब्ब कुन्देर—कुन्दर, बाफला का आटा, बहिदाना मगज प्रत्येक ७ माशे, रबूलसूस, कतीरा पुष्प, तुरंजबील ५-५ माशे, मुनक्का ४ माशे, अनीसून, सौंफ, मगज बादाम कड़वे, खांड २-२ माशे सब औषध को कूटकर इसबगोल के रस में चने समान वटी करें।

आवश्यकतानुसार १-१ गोली मुंह में रखकर चूसें।

गुण—जिस कास में वमन होता है। उसमें अत्यन्त उपयोगी है।

हब्ब मगज बादाम—मगज बादाम मधुर, (छिले

हुए) मगज बादाम कद्दु (छिले हुए तथा भुने हुए) अलसी बीज २-२ तोले, अहिफेन, आलूबुखारा का गोंद या गोंद कीकर, ईरसा रबूलसूस १-१ तोला, मिश्री २ तोले सब औषध को कूट पीस कर सौंफ पत्र स्वरस में खरल कर चने समान वटी करें।

मात्रा और प्रयोग विधि—२ वटी अर्क गाऊजवान १२ तोले, शरबत खशखाश २ तोले के साथ प्रयोग करें। खांसी के समय १ वटी मुंह में रखकर चूसें।

गुण—यह वटी फुफ्फुस व्रण, जीर्णकास, स्वर भेद में लाभप्रद है। कफ का निष्कासन करती है।

हुब्ब सुआल (कास वटी)—रबूलसूस, कालीमिर्च, कालीजीरी, हींग, बादाम की गिरी प्रत्येक २ तोले। १ माशे कूट छानकर मधु में मिलाकर वटी करें, मुख में रखें।

गुण—तीव्र कास तथा सांस फूलने में लाभप्रद है।

(२) सौभाग्य भुना हुआ, मुसब्बर समभाग लेकर दोनों के समभाग गुड़ मिलाकर वटी बनावें, खांसी के समय १ वटी खालें। प्लीहावृद्धि में एक मास प्रतिदिन भोजनोपरान्त खावें।

गुण—कास, श्वास, कोष्ठबद्धता तथा प्लीहा में उपयोगी है।

हुब्ब अलाई—जराबन्द गोल, अहिफेन प्रत्येक ४॥ माशे, कुन्दर शुद्ध मुरमकी, बतम की गोंद प्रत्येक १३॥ माशे कूट-छानकर वटी करें।

मात्रा–४ रत्ती से २ माशे तक योग्य अनुपान से दें।

गुण—कफज कास तथा श्वास में उत्तम है।

शर्बत अहजाज—उन्नाव विलायती २० दाना, सपस्तान (लसूड़े) ६० दाना, गोंद कतीरा, गोंद कीकर प्रत्येक १०॥ माशा, विहिदाना १॥ तोला मधुयष्टि छिली हुई, खवाजी बीज, नीलोफर पुष्प, वनफशा पुष्प प्रत्येक २ तोला, अडूसा पत्र आधा सेर, गोंद के सिवाय सब को आठ गुने जल में भिगोकर प्रातः क्वाथ करें। तीसरा भाग रहने पर त्रिगुण खांड़ डालकर पाक करें। पाक सिद्धि पर गोंद को खरल करके डालें।

मात्रा—२ तोला अर्क गाऊजवान के साथ प्रयोग करें।

शर्बत जूफा—१ पाव जूफा लेकर पकडीतों से साफ करके आठ गुने पानी में उबालें। तिहाई भाग रहने पर शेष जल से दुगनी खांड़ और समभाग शहद मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ से ४ तोला।

गुण—कास श्वास में अत्यन्त उत्तम है।

शर्बत जूफा मुरकब—अञ्जीर १० नग, खतमी बीज, मधुयष्टी, ईरसा प्रत्येक १०॥ माशा, मेंथी १४ माशा, सौंफ, करफस बीज प्रत्येक १॥ तोला, परसाशों १ तोला ४ माशा, जूफा शुष्क २ तोला, द्राक्षा बीजरहित ४ तोले सब औषधियों का यथाविधि क्वाथ करें। तिहाई रहने पर दुगनी खांड़ और १ भाग गुलकन्द मिलाकर पाक करें। पाक सिद्धि होने पर छानकर बोतलों में भरें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—कफज कास में उत्तम है और श्वास में कफ का स्राव करता है।

शर्बत सद्र गाऊजवान पुष्प २॥ तोला. गाऊजवान-अलसी बीज, अपक्व आब्रेशम कतरा हुआ, परसाशों, मधुयष्टि अजवायन देशी, सौंफ प्रत्येक १। तोला, उन्नाव ३॥ तोला पोस्तडोडा. खतमी बीज प्रत्येक । तोला लसूड़े ३। तोला, विहिदाना · तोला आठ गुना जल में क्वाथ करें। तिहाई भाग रहने पर छानकर त्रिगुण खांड़ मिलाकर पाक करें।

मात्रा –२ तोला।

गुण–कास श्वास, रक्तपित्त, प्रतिश्याय में उत्तम है।

बासा शर्बत-अडूसा पत्र ११ तोला ८ माशा, द्राक्षा बीज रहित ८ तोला ६ माशा, मधुयष्टि, जूफात्र, पोदीना, परसाशों प्रत्येक ३५ माशा, मगज बादाम, मगज चलगोजा, मेंथी सौंफ, सौंफ रूमी प्रत्येक १७॥ माशा, मस्तगी, दालचीनी, सोंठ प्रत्येक ७ माशा, उन्नाव, लसूड़े प्रत्येक १०० नग, अञ्जीर सफेद २० नग सबको १२ सेर पानी में १ दिन रात्रि भिगोवें। प्रातः मृदु अग्नि पर इतना पकावें कि आधा रह जाए। फिर साफ करके २॥ सेर खांड़ मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२॥ तोला से ५ तोला।

गुण—कफ के कारण यदि कास श्वास हो तो गुण-

कारी है।

शर्बत ईसबगोल—ईसबगोल २ तोला ८ माशा को आधा सेर जल में फेंटकर इसका स्वरस निकालें और ३ पाव कूजे की मिश्री डालकर नरम आंच पर पाक करें, यदि जल के स्थान पर अर्क गुलाब, अर्क वेदमशुक में ईसबगोल का रस निकालें तो अधिक लाभप्रद है।

मात्रा—४ तोला।

गुण—वात, पित्त, कास तथा छाती की खुश्की में लाभप्रद है।

शर्बत उन्नाब—उन्नाब आधा सेर लेकर २ सेर पानी में क्वाथ करें। तिहाई भाग रहने पर छानकर २ सेर खाड़ मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ से ४ तोला।

गुण—खांसी, वक्ष पीड़ा, रक्तदोष, शीतला में बहुत लाभप्रद है।

शरबत फरियाद रस—गाऊजवान, सन्दल सफेद, परसाशो, ऊदसलीब, खशखाश बीज सफेद २-२ तोला, मधुयष्टि छिली हुई, साफ खतमी बीज, गुलाब पुष्प १-१ तोला, द्राक्षा बीज रहित २५ नग, पोस्त डोढ़ा ५ नग, सब औषध को आठ गुणा जल में भिगोकर क्वाथ करें। तिहाई भाग रहने पर मल छानकर त्रिगुण खांड मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ तोला, खांसी और नजला में उपयोगी है।

कुरस असकील—जंगली प्याज पर गन्धक का आटा लपेट कर गरम भूभल में रखें। पक जाने पर आटा उतारकर भीतरी नरम भाग निकाल लें और इसके सम-भाग मटर का आटा मिलाकर पीसलें और थोड़ी मात्रा में शराब मिलाकर गुलाब तेल के संयोग से कस बनावें। दो मास के पश्चात् प्रयोग करें, परन्तु चार मास के बाद प्रयोग न करें।

गुण—जलोदर, श्वास तथा विषों को नष्ट करता है।

लऊक नजली आब तरबूज वाला—खशखाश बीज, गोंद कीकर, कतीरा, निशास्ता प्रत्येक १४ माशा, मगज कद्दू, मगज खयारैन, खुरफा बीज, काहू बीज १॥ तोला, मगज बादाम मधुर ३ तोला, रोगन बादाम ६ तोला, तुरंजबीज १४ तोला, तरबूज १० तोला, मगज कद्दू से मगज बादाम तक जिस कदर औषध है इनमें जल डाल-कर घोटकर इनका शीरा निकालें और तुरंजबीन पीसकर के छानलें। फिर तरबूज जल इसमें मिलाकर पाक करें और खशखाश बीज से निशास्ता तक की औषध का बारीक चूर्ण और बादाम तेल मिलाकर लहूक तैयार करें।

मात्रा—५-५ माशा दिन में कई बार चाटें।

गुण—यक्ष्मा, रक्तपित्त तथा वातज कास में उत्तम है।

लऊक आबने शकर वाला—लुआब इसबगोल, लुआब बिहिदाना, लुआब खतमी बीज, अनार रस मधुर, अम्ल अनार रस, खयार जल, कद्दू जल, खुरफा पत्र जल, गन्ने का ताजा स्वरस प्रत्येक ६-६ तोला, गोंद कीकर, गोंद कतीरा, मगज बादाम मधुर, आक शकर, खशखाश बीज प्रत्येक ६॥ तोला, खांड आधा सेर, शुष्क औषध को कूट छानकर लुआबों तथा जलों में खांड मिलाकर पाक करके औषधि चूर्ण को मिलादें और लहूक तैयार करें।

मात्रा—७ माशा, अर्क गाऊजवान में मिलाकर।

गुण—यक्ष्मा, रक्तपित्त तथा शुष्क कास में उप-योगी है।

लऊक खशखाश—मुलैठी १॥ तोला, खतमी बीज, बिहिदाना प्रत्येक १ तोला को १ सेर जल में भिगोवें, प्रातः इतना उबालें कि आधा भाग रह जाए। इसको छानकर खांड आधा सेर मिलाकर पाक करें, तत्पश्चात मगज बिहिदाना, गोंद कीकर, कतीरा सफेद, खशखाश बीज श्वेत और कृष्ण प्रत्येक १-१ तोला बारीक पीसकर मिलावें। दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा चाटें।

गुण—खांसी, रक्तपित्त, ज्वर, जीर्ण ज्वर में उत्तम है।

लऊक कतान—लुआब आध सेर में खांड, मधु उत्तम प्रत्येक आध सेर मिलाकर पाक करें।

मात्रा—१ तोला अर्क गाऊजवान के साथ प्रयोग करें।

गुण—कफज कास तथा श्वास में उत्तम है।

(२) अलसी बीज भुने हुए, मधुर बादाम छिले हुये १-१ तोला बारीक पीसकर ४ तोला मधु में मिलाकर रखें। दिन में थोड़ा-थोड़ा कई बार चाटें।

गुण—उपरोक्त।

लऊक मुतहद्दिल—मगज बादाम मधुर, मगज

तुखम कद्दू मधुर, गोंद कीकर प्रत्येक १०॥ माशा, कतीरा, शिस्ता, रबुलसूस प्रत्येक १॥ तोला सबको कूटकर छानकर खांड ६ तोला का पाककर औषधि चूर्ण डालकर लहूँ तैयार करें।

मात्रा—१ तोला अर्क गाऊजवान के साथ।

गुण—प्रतिश्याय कास पित्तज कास में उत्तम है।

लऊक मसीह—खतमी बीज, गाऊजवान, खशखाश बीज १-१ तोला, लसूड़ २ तोला, बीहदाना, मधुयष्टि प्रत्येक ६ माशा इनको त्रिगुण जल में उबालें। जब आधा भाग रह जाये तो छानकर १॥ सेर खांड मिलाकर पाक करें। पाक सिद्ध होने पर रबुलसूस, गोंद कीकर, गोंद कतीरा प्रत्येक ६ माशा का चूर्ण करके मिलावें।

मात्रा—२ तोला आवश्यकतानुसार चटावें।

गुण—प्रतिश्याय तथा प्रतिश्याय जनित कास में उत्तम है।

लऊक बादाम—मगज बादाम में छिलका रहित, मगज कद्दू मधुर १-१ तोला ५॥ माशा, गोंद कीकर, गोंद कतीरा, निशास्ता, रबुलसूस प्रत्येक २ तोला ११ माशा, खांड सफेद ५ तोला १० माशा सबको कूट छानकर बादाम तैल मधुर से मिश्रित करें और अर्क गुलाब में गूंदकर लहूँक बनावें। कुछ योगों में मगज बिहीदाना १ तोला ५॥ माशे भी डाला हुआ है।

गुण—स्वरयन्त्र के खरखरेपन और कास में उत्तम है।

लऊक जूफा—जूफा शुष्क, सोसन जड़ आसमानी रङ्ग की प्रत्येक ७० माशे लेकर १॥ सेर जल में क्वाथ करें। आधा भाग रहने पर आध सेर खांड मिलाकर पाक करें। यदि सोसन जड़ न हो तो उसके स्थान पर कलौंजी डालें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—जीर्ण कास तथा सांस फूलने में उत्तम है।

लऊक सनोबर—मैंथी को जल में भिगोकर छीलकर डालें और कूटकर शीरा निकालें। अब अंगूर का शीरा व मधु द्विगुण मिलाकर उबालें। गाढ़ा होने पर मैंथी के सम भाग मगज चलगोजा (छिला हुआ) का चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह पाक करें।

मात्रा—३ तोला।

गुण—पुरानी कास, श्वास, स्वर भेद में उपयोगी है।

मुरब्बा बादाम—ताजा बादाम छीलकर मधु में २-४ उबाल दें। ३-४ दिन बाद पश्चात् ताजा मधु आवश्यकतानुसार डालकर जोश देकर मरतबान में रख दें।

मात्रा—१ तोला।

गुण—खांसी और सीना की घरघराहट में लाभप्रद है।

माजून सुहाल—मगज चलगोजा १०॥ माशा, मगज पिस्ता १७॥ माशा, मगज बादाम ३५ माशा, खांड ८ तोला १ माशा कूट छानकर यथा विधि माजून तैयार करें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला।

गुण—कफज कास में उत्तम है।

माजून जराबन्द-गोंद कीकर १०॥ माशा, जराबन्द गोल कीजीरी, मटर का आटा, मिरच काली, श्वेत खुरफा बीज, मगज बादाम कटु छिलके रहित, उटंगन बीज प्रत्येक १७॥ माशा, परसाशो, रबुलसूस, जूफा शुष्क प्रत्येक ३५ माशा कूट छानकर मधु में मिलाकर यथाविधि माजून तैयार करें।

मात्रा—१०॥ माशा जूफा के क्वाथ से।

गुण—कास श्वास में उत्तम है।

हब्ब सुहाल बलगामी—बांसापत्र, कंडयारी पंचांग २-२ सेर लेकर १० सेर जल में क्वाथ करें, २ सेर शेष रहने पर मल छानकर १ सेर मधु मिलाकर पाक करें। पाक सिद्ध होने पर बहेड़ा, पिप्पली, मधुयष्टि, खशखश बीज, बनफसा पुष्प प्रत्येक ४ तोला बारीक पीसकर मिला दें और खरल कर चने समान वटी करें।

मात्रा—१ से ४ वटी।

गुण—कास श्वास में उपयोगी योग है।

शरबत नजली—गावजवान, गावजवान पुष्प, अलसी बीज, मधुयिष्ट, परसाशो (हंसराज) शिरस बीज प्रत्येक ५-५ तोला, आबरेशम ३ तोला, जूफा शुष्क ५ तोला, उन्नाव १० तोला, खांड २ सेर यथा विधि शर्बत तैयार करें। (नोट—अलसी बीज ७ तोला है)

मात्रा—५ से १० तोला।

गुण–कास, श्वास, जीर्ण प्रतिश्याय में उत्तम है, क्षय में भी उपयोगी है।

लऊक सदर—गोंद कतीरा, निशास्ता, गोंद कीकर, खुलसूस, खशखाश बीज २०-२० तोला, विहीदाना १६ तोला, गाजवान पत्र, अजयवान खुरासानी ४-४ तोला, मगज वादाम मधुर, मगज कद्दू, मधुयष्टि १६-१६ तोला, परसाशों १२ तोला, सरतान जला हुआ १२ तोला, खांड ६ सेर, मधु २ सेर, क्वाथ वाली (विहिदाना, गावजवान, मुलैठी, परसाशों), औषधियों का क्वाथ करके उसमें खांड तथा मधु का पाक करें। पाक सिद्धि पर वाकी औषधि का चूर्ण मिला कर अवलेह तैयार करें।

मात्रा—६ माशा से १ तोला।

गुण—प्रत्येक प्रकार की कास तथा श्वास की महौषध है, क्षय कास में उत्तम है।

सफूफ दवाय दमा—काला लवण, लवपुरी लवण, साभर लवण, अजवायन, अजवायन खुरासानी, करफ्स बीज गुल तंबाकू (हुक्के में से निकालकर) ३-३ तोला के वारीक चूर्ण को आक दूध १ पाव में मिला कर कबूतर के उदर को मल आदि से शुद्ध कर इसमें भरकर कपरोटी कर आंच दे दें। भस्म तैयार हो जायेगी।

मात्रा -१ रत्ती। गुण–श्वास में गुणप्रद है।

हब्ब खास—अन्तधूर्म मन्दार पुष्प, अन्तधूर्म दग्ध कदली पुष्प, नवसादर, लोवानसत्व, शक्कर तैगाल ३-३ तोला, वंशलोचन, काकड़ासिगी, वहेड़ा, मिरच, मुलैठी का का सत्व १-१ तोला, सवको वारीक पीस कर बहेड़ा के क्वाथ से ७ भावना देकर चने समान वटी करें।

मात्रा १ से २ वटी। गुण–कफज कास के लिए रसायन है, श्लेष्म का उत्सर्ग करती है, कफ कृच्छ्र श्वास के लिये वहुत ही गुणकारी है।

अकसीर जोकुन्नफस—तीक्ष्ण तमाकू ५ तोला, अहिफेन १ तोला, श्वेत संखिया २ माशा, अर्क क्षीर १० तोला इन सबको खूब भली भांति खरल करें। फिर २ तोले एलुआ, खुरासानी अजवायन २ तोले और धतूरे बीज २ तोला मिलाकर पुनः खरल करें। शुष्क होने पर सुरक्षित रखें।

मात्रा–४ रत्ती औषधि लेकर ४ तोला वादाम रोगन मिला और उसकी १६ मात्रा बनावें। १ या दो मात्रा प्रातः सायं प्रयोग करें।

गुण—यह कृच्छ्रश्वास और कफज श्वास में परम लाभकारी है।

एलोपैथिक—

तमक श्वास को अस्थमा के नाम से कहा जाता है। इस अवस्था में विना श्रम श्वास फूलता है और वेग के रूप में दम चढ़ता है।

इस रोग का कारण क्या है, इस विषय में विचार करें तो वहुत से कारण दृष्टिगोचर होते हैं। यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होता है। पैतृक प्रवृति का प्रभाव पड़ता है। यह रोग प्रायः शीत एवं आर्द्र जलवायु वाले स्थानों में अधिक पाया जाता है। प्रायः शीतकाल में अधिक होता है। प्रायः यह रोग स्वतंत्र ही मिलता है, कभी कभी दूसरे रोगों के साथ भी होता है।

इस रोग की उत्पत्ति सुषम्नाशीर्ष में स्थित श्वास केन्द्र की विकृति से होती है। जिसके कारण सामान्य उत्तेजना से ही प्राणदा नाड़ी की शाखायें अत्यधिक क्रियाशील होकर श्वास नलिकाओं का स्तम्भ कर देती हैं। इसके साथ ही साथ अनूर्जता (एलर्जी) भी पाई जाती है। जिसके कारण श्वास नलिकाओं को श्लेष्मिक कला में रक्ताधिक्यजन्य शोथ होता है, शोथ के कारण श्लैष्मिक स्राव अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है। आवेग के समय पर उक्त दोनों विकार श्वासनलिकाओं का शोथ एवं स्तम्भ उत्पन्न कर देते है। श्वास नलिकाएें एवं श्वास केशिकायें संकीर्ण हो जाती हैं। इससे अवोश्वास साधारण कठिनाई से आता है। वायु कोषों में वायु देर तक भरा रहता है जिससे वे प्रसारित हो जाते हैं। कुछ समय वाद श्वास नलिकाओं में से श्लैष्मिक स्राव निकलना आरम्भ हो जाता है और पेशियों का स्तम्भ दूर होकर वेग मिट जाता है।

इस रोग के उत्पादक एवं उत्तेजक कारण निम्न हो सकते हैं।

(१) श्वास मार्ग में धूल, धुआं अथवा किसी रोग से क्षोभ होना।

(२) पाचन संस्थान विकारों से फुफ्फुसों पर दबाव।

(३) प्रजनन संस्थान गत विकारों में स्त्री जननांगों के विकार।

(४) चिन्ता, शोक, भय, क्रोध थकावट आदि।

(५) अनुर्जता (एलर्जी)।

इस रोग का 'स्वरूप' देखते हुए हमें इसका वेग रात्रि के अन्तिम प्रहर में अधिक मिलता है। बेचैनी, मानसिक उत्तेजना अथवा अवसाद, तथा छींक आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। रोगी को एकाएक दम घटने का अनुभव होने लगता है। वह घबराता है। श्वासकष्ट बढ़ जाता है। रोगी उकड़ू बैठकर घुटनों पर कोहनियां रख कर पूरी शक्ति के साथ श्वास ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। बहुत कष्टदायक खांसी चलती है। यही दशा आध-एक घंटा रहती है और इसके बाद कफ निकलने से वेग शांत हो जाता है। रोग के जीर्ण होने पर वक्ष का आकार बेलनाकार हो जाता है। थोड़े परिश्रम से ही श्वास फूलने लगता है।

आवेग के समय परीक्षा करने पर वक्ष भरा हुआ मिलता है। अधोश्वास के समय पर वक्ष का प्रसार बहुत थोड़ा होता है। गम्भीर श्वासकष्ट की दशा में श्वास के साथ पसलियों के बीच में उभरना बैठना दिखाई दे सकता है। वक्ष ठेपन से गम्भीर ध्वनि होती है। अनेक प्रकार के विकृत शब्द सुनाई देते हैं। नाड़ी तीव्र एवं कमजोर होती है।

एलोपैथिक चिकित्सा का वर्णन—

दौरे के समय इस रोग में भाप लेने, नाक से स्प्रे या फव्वारा लेने, मुंह से खिलाने और हाइड्रोपोर्डमिक इन्जेक्शन से दवा को पहुँचाया जाता है। एड्रीनेलीन हाइड्रो क्लोराइड २ से ५ बूंद तक १: १००० सोल्यूशन बहुत लाभ दिखा सकता है। यदि पहले पहल ही व्यवहृत हो तो इसका उपयोग वयस्क रोगी पर संभल कर करना चाहिये।

आजकल इसके कितने ही नये योग तैयार हुए हैं। पिट्यूटरी एक्सट्रैक्ट में इसको मिलाया जाता है। इफेटमिन, पिट्रेनेलीन, इन्मेलाइसिन आदि इसी तरह के योग हैं।

इसमें प्रायः ये उपचार लाभप्रद हैं।

इंजेक्शन—एड्रीनैलीन क्लोरायड, एड्रीनेलीन विद इफेड्रीन, अज्मोलाएसिन, एफटोनीन इफेड्रीन, मोर्फीन, कौरामीन इफेड्रीन, लोबालीन, इन्सुलीन ए० बी० एड्रीनैलीन इन आयल।

पेटेन्ट दवायें—हिमरायड आज्मा क्योर, हेयर्स अज्मा क्योर, स्ट्रोमोनियम सिगार, बर्मन आज्मा क्योर, सैजोडीन टेबलेटस, कोसोम (मर्क), ऐलेकिसर, इफेडीन कम्प० (पी० डी०) एस्मैसोल टेबलेटस, रिकौल्वीन, बेनेड्रील कैपसूल (पी० डी०), बेनेड्रील सीरप (पी. डी.) नियो-इपिनीन, ऐफ्रन, ऐज्जकार्ट, थोयोकर्टिण्डन, रिकलिवन, एमिड्रीन।

नियोइपिनीन का स्प्रे तुरन्त लाभ करता है।

अनुभूत नुस्खे—

१—एक्स. कुट लि. १/२ से १ ड्राम, टि. लोबीलिया ईथर १० बूंद, एक्स ग्रिण्डीलिया लि. १५ बूंद, टि. बेलाडोना ५ बूंद, अमोनिया ब्रोमाइड १० ग्रेन, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूद, एक्वा कुल १ औंस २-२ घण्टे के अन्तर पर (दौरे में)।

२—पोटास आयोडाइड ५ ग्रेन, सोडियम ब्रोमाइड १० ग्रेन, टि. लोबीलिया ईथर १० बूंद, टि. स्ट्रामोनियम ५ बूंद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूंद, एक्वा कुल १ औंस, ३-३ घण्टे पर (दौरों में)

(३) पोटास आयोडाइड २ ड्राम, लिकर आर्सीनिकेलिस १ ड्राम, विनम इपिकाक ४ ड्राम, एक्वा क्लोरोफार्म ८ औंस। ४ ड्राम १ औंस, जल में दो बार (दौरों के बीच में)।

(४) पोटेशियम आयोडाइड ५ ग्रेन, टिंचर इपिकाक १० बूंद, इथेरियल टिंचर लोबीलिया १० बूंद, सीरप टोलू ३० बूंद, ग्लिसरीन ३० बूंद, एक्वा क्लोरोफार्म ½ औंस। कुल ८ औंस दें। १ चाय चम्मच पानी में भोजन के बाद, ३ बार ¼ से ½ ग्रेन तक इफेड्रीन हाइड्रोक्लोरोड ऊपर के योग के साथ हर खुराक के साथ दे सकते हैं।

(५) एलेक्जिर एफेड्रीन कम्पा० (पी० डी०) कुल ४ औंस बना दें। एक चाय चम्मच पानी में दिन में ३ बार भोजन के बाद और सोने के समय।

(६) पोटेशियम आयोडाइड ५ ग्रेन, टिंचर बेलाडोना १० बूंद, टिंचर स्ट्रामोनियम २० बूंद, ग्लिसरीन १५ बूंद, एक्वा क्लोरोफार्म कुल ½ औंस। ८ औंस बना दें। १ चाय चम्मच भोजन के बाद दिन में ३ बार।

आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था-१—इफेड्रीन ½ ग्रेन, सोडियम फिनोबार्बीटोन ¾ ग्रेन और थियोफाईलिन सोडियम एसिटेट ३ ग्रेन कैपसूल में रखना अच्छा है।

२—मारात्मक केस में अन्तः शिरा से एमिनोफाइलिन ३¾ ग्रेन और १० मि.लि. जल या ०.२ से ०.५ ग्राम मुख द्वारा दिन में ३ बार। बेयर कं० का फोनोल उत्तम है। अल्प मात्रा में इफेड्रीन ३/२० ग्रेन, एमिनोफाइलिन २ ग्रेन और ल्यूमिन ⅛ ग्रेन। रात में १ टेबलेट १ वर्ष नियमित सेवन करने से हर प्रकार से लाभ दिखाई देता है। लीली का एमेशक एफेड्रीन ¾ ग्रेन. एमिटाल ¾ ग्रेन उत्तम है। हृतव्याधि में अति लाभदायक है।

३—मासिक ऋतु से सम्बन्धित आज्मा में फालिक्यूलर हार्मोन और कपर्स ल्यूटियमकाथ लाभदायक है।

स्टेटस एज्मेटिकस की अवस्था में—१—ऐड्रीनैलीन का १ बूंद प्रति मिनट के हिसाब से शिरा मार्ग द्वारा ½ घण्टे तक सूचीवेध करते हैं। अथवा १ मि. लि. ऐड्रीनैलीन १००० मि. लि. ग्लूकोज सैलाइन के साथ घोलकर शिरा मार्ग से प्रविष्ट करते हैं।

२—एमीनोफायलिन ०.२५ ग्राम अन्तः शिरा शनैः शनैः सूचीवेध करते हैं।

३—ईथर का १-३ औंस समान मात्रा औलिव आयल के साथ मिलाकर गुदा मार्ग से प्रविष्ट करते हैं।

आवश्यकता पड़ने पर ५० से १०० मिलीग्राम पैथीडीन हाइड्रोक्लोराइड अन्तः पेशी सूचीवेध करते हैं।

४—सोडियम फिनोबार्बिटन ३ ग्रेन की मात्रा में अन्तःपेशी सूचीवेध करते हैं।

५—पैराल्डिहाइड ७ से १० मि. लि. अन्तःपेशी अथवा ३-४ मि. लि. शिरा द्वारा धीरे-धीरे अथवा उसको १० मि. लि. नार्मल सैलाइन में मिलाकर शनैः शनैः प्रविष्ट करावें अथवा कोर्टीकोट्रोपिन जेल ६०-९० यूनिट प्रति २४ घण्टे के अन्तर पर दें।

६—निकोटिनामाइड १०० मिलीग्राम शिरामार्ग से मन्द गति से सूचीवेध करें।

७—स्ट्रोमोनिमा १५ ग्रेन, बेलाडोना १५ ग्रेन, हायोसायमीन १५ ग्रेन, पोटास सायट्रास १५ ग्रेन।

इन सबको एक में पाउडर बनाकर उसका वाष्प सूंघने से पर्याप्त लाभ होता है।

८—५० मि. लि. हाइपरटोनिक सैलाइन का शिरा द्वारा सूचीवेध करने से श्वास नलिका की श्लेष्मिक कला में शोथ कम होता है।

९—पैनिसिलीन तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन के संयुक्त मिश्रण के सूचीवेध करने से औपसर्गिक कारणों का विनाश होता है।

१०—१००% आक्सीजन अथवा ८०% आक्सीजन तथा १०% हीलियम और ५-१०% कार्बन डाइआक्साइड के मिश्रित योग को सूंघने से भी पर्याप्त लाभ होता है।

११—१० मि. लि. २% घोल का प्रोकेन ५०० मि. लि. सैलाइन के साथ शिरा द्वारा शनैः शनैः सूचीवेध से भी पर्याप्त लाभ होता है।

१२—कभी-२ श्वसन मार्ग से श्लेष्मा को निकालने के लिए भी ब्रांकोस्कोपी से भी पर्याप्त लाभ होता है।

कर्टिसोन और ए० सी० टी० एच०, दुरारोग क्रानिक केस में प्रयोग करके विशेष लाभ देखा गया है। [जै० ए० एम० ए० १६-१२-५०]। बारमर की १०० मि. ग्रा. प्रथम दो दिन प्रयोग करके बाद में २० मि. ग्रा. ६ से २१ दिनों तक चालू रखी गई थी। दैनिक मात्रा ४ भाग में अन्तःपेशी इञ्जेक्शन दिया गया था। जिन्हें पुनराक्रमण होता था उन्होंने बताया कि दमा का जोर बहुत कम रहा और फिर जारी रखने पर उपशम हुआ था। कर्टिसोन प्रथम दिन २०० मि. ग्रा. और बाद में १०० मि. ग्रा. दिया जाता है। नित्य ४ बार इसी परिमाण से इञ्जेक्शन दिया गया था। जिन्हें कार्टिसोन से भी लाभ नहीं हुआ ए० सी० टी० एच० से लाभ हुआ था। हरेक की यूसिनोफिल संख्या कम हुई थी। कार्टिसोन के आधुनिक योगों में कोरटाज्मिल गोली उत्तम कार्य करती है। इसकी १ गोली का दिन में तीन बार मुख मार्गों से सेवन करते हैं।

टेरामायसिन—जिन रोगियों को दमे के दौरों से पहले नाक प्रवाहित होती है और तब दमा शुरू होता है, उन्हें पहले ही शुरू होते ही २ कैपसूल खिलाकर बाद में

नित्य ३ वार सेवन कराने मात्र से २० रोगियों का कष्ट २४ से ४८ घण्टों के अन्दर ही मिट गया था। दमा के अन्य पेटेण्ट योगों में एज्मेकस गोली ने अद्भुत लाभ दिखाया। इसकी १ गोली दिन में दो बार ही पर्याप्त है। इसकी १ गोली कम से कम १२ घण्टे तक असर रखती है।

इन्पेक्टिव केश में-वयस्कावस्था में अर्थात् ४० के ऊपर जिन्हें बीच बीच में ठण्डक लगकर दमे का दौरा आने लगता है, पता लगने पर ज्ञात हुआ कि उन्हें एक बार भयानक ब्रांकाइटिस या न्यूमोनियां जैसा हुआ था और इसके बाद से दमे का आसार शुरू हुआ। इस तरह के केश में सल्फा श्रेणी की दवाओं का सेवन और पेन-सिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन युक्त इन्जेक्शन से लाभ हुआ था। प्रौढ़ों की इस प्रकार की बीमारी में सर्वांशतः हार्ट को कार्यकारी रखने की चेष्टा करनी चाहिए। कोरामीन हार्ट के लिए लाभकारी है।

ऐसे जीर्ण रोग में कभी-कभी आटोक्सीन चिकित्सा से बड़ा लाभ दिखाई देता है। यदि कंब्राइणड कैटेरल स्टाफ वैकिसन दिया गया तो प्रथम मात्रा क्षुद्रातिक्षुद्र होनी चाहिए अर्थात् ०.१ मि. लि. में ३ मि. लि. जल मिला देना चाहिए और इसी प्रकार १ सप्ताह के अन्तर से वृद्धि करनी चाहिए। पाश्चात देशों में आटो जमा स्टाक वैकसीन मिलाकर खूब मृदु मात्रा में देकर चिकित्सा की जाती है। ३ महीनों में लाभ दिखाई देता है।

सगर्भावस्था में यदि दमे की खांसी पैदा हो तो लगातार बढ़ती ही जाती है। शरीर में क्लोराइड(लवणजातीय द्रव्य) जम जाता है। क्रमशः पेशाब में अल्बूमिन जाता है और साथ ही शोथ दिखाई पड़ता है। लवण निषेध करके दूध चावल या रोटी को रखने से उपशम होता है। एकदम रजोनिवृतिकाल में यदि दमा पैदा हो तो निम्न-लिखित औषधि द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए—

क्लोराटीन इन्हेलेशन या एड्रिनैलिन स्प्रे अथवा ग्लूको-फेड्रिन दिया जाता है। नाक में अगटोन लगाना भी लाभकारी है।

भोजन और एहतियाती-दमे के रोगी का भोजन खूब सावधानी से होना **चाहिए।** बच्चों के दमे में डेक्सट्रोज अच्छा लाभ दिखाती है। इसका ३ चाय चम्मच लेमोनेड सन्तरे के रस में दिन में ३ बार देना चाहिए और उसमें हलकी चीनी मिला देनी चाहिए। उसी समय अम्ल रस व सिरका की खाने की चीजें भी दी जा सकती हैं। फिर भी इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि रोगी की पाचन शक्ति में कमी तो नहीं आती है। जिस तरह हो रोगी के साधारण स्वास्थ्य को कायम रखना बहुत जरूरी है।

खांसी

एलोपैथिक में कास का उत्पादक केन्द्र सुषम्ना शीर्ष में बताया है। यह केन्द्र कुछ विशेष कारणों से प्रभावित होकर कास की उत्पत्ति करता है। जो कास प्रातःकालीन होता है, उसकी उत्पत्ति का कारण श्वास नलिका या फुफ्फुस नलिकाओं में शोथ का होना है। बिस्तर पर लेटते ही आने वाली कास गल शुण्डिका अथवा स्वर यन्त्र के प्रक्षोभ के कारण होती है। दौरे के रूप में जो खांसी आती है उसका कारण स्वर यन्त्र प्रदाह, श्वास नलिका प्रदाह की चिरकारी अवस्था अथवा श्वास नलिकाओं में बैठी हुई ग्रन्थियां होती हैं। दबी हुई खांसी जिसमें रोगी खुलकर नहीं खांस सकता वह वक्ष की पीड़ा वाली होती है। प्रधान रूप से कास के दो भेद बताए गए हैं।

१. शुष्क कास।

२. सद्रव कास।

इनके कारण बताते हुये लिखा है कि शुष्क कास ग्रसनिका स्वर यन्त्र कण्ठ नलिका, फुफ्फुस नलिका और फुफ्फुसों एवं आमाशय आन्त्र तथा कान की कुछ विकृत अवस्थाओं में उत्पन्न होती है।

सद्रव कास फुफ्फुस खण्ड प्रदाह श्वास नलिका प्रदाह विवर युक्त फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा फुफ्फुस विद्रधि आदि अवस्थाओं में होती है।

कास का एक और भेद काली खांसी है। यह एक अत्यन्त संक्रामक रोग है जो छः वर्ष तक के बालकों में पाया जाता है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियां अधिक आक्रान्त होती हैं और यह शीत और बसन्त ऋतुओं में अधिक प्रसार पाता है। इस रोग का कारण एक जीवाणु है जिसे बेसिलस

परट्युसिस कहा जाता है। यह ड्रोपलेट द्वारा फैलता है। इसका चयकाल ७-१५ दिन है।

रोग का आरम्भ प्रतिश्याय से होता है। खांसी प्रारंभ से ही अधिक कष्टदायक एवं आवेग सहित होती है। प्रारम्भ में ज्वर १५ दिन तक रह सकता है। इसके वाद व्याधि के दूसरे लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इसमें खांसी का दौर होता है और हूं-हूं शब्द होता है।

इस अवस्था में खांसी के छोटे-छोटे झटके एक के वाद एक इतनी शीघ्रता से आते हैं कि वालक श्वास नहीं ले पाता। इससे उसको फुफ्फुसों में वायुहीनता हो जाती है आंख वाहर निकल आना, मुख खुला रह जाना और मुख पर लाली, पीलापन या कालापन आ जाना साधारण लक्षण है प्रायः खाया पीया पदार्थ मुख द्वारा निकल जाता हैं। जब वेग रुकता है (हूं) शब्द होता है और थोड़ा चिप चिपा कफ निकलता है। किसी कारण से आवेग आता है।

वच्चों को होने वाली यह एक कष्टदायक अवस्था है जिसमें चिकित्सा से भी कम लाभ होता है।

कास की तीव्रावस्था में रोगी को गरम कमरे में रखना चाहिए। गरम कपड़ा लपेट कर रहना चाहिये। गले और छाती में दर्द को दूर करने के लिए निम्न औषधियों का वाष्प देना चाहिए, जिसको उचित समझें।

1—Tincture Benzoin Co. 15 grain
2—Eucalyptus oil Acetate 1 Dram
3—Menthol Camphor Co. 15 Minims

इनमें से किसी भी औषध के वाष्प से श्वास नलिका की विक्षोभ शीलता और वेदना दूर हो जाती है। छाती पर सफेद तल का स्थानिक प्रयोग करना चाहिये।

कास में निम्न में से कोई मिश्रण पिलाना चाहिए—

1—Pottasium Citrate 15 grain
Liquor Ammonia Acetate 1 Dram.
Tincture Camphor Co. 15 Min.
Syrup Tolu 1 Dram.
Aqua add 1 oz.

मिला कर ऐसी तीन मात्रायें पिलानी चाहिये।

2—Pottasium Acetate 15 grain
Tr. Ipecac 10 Min.
Vin. Antimony 5 Min
Aqua add 1 oz

ऐसी तीन मात्रायें प्रत्येक दिन रात। कष्टदायक खांसी की शान्ती के लिये निम्न औषधियां हितकारक हैं—

1–Pholcodine Linctus (B. P. C.)
2–Methadone Linctus (B. P. C.)

खांसी के कफ की सफाई के लिये तथा उसे पतला करके निकालने के लिए निम्न योग लाभ करता है—

Ammonium Carbonate 5 grains
Potassium iodide 2 grains
Potassium Bicarbonate 15 grains
Spirit Chloroform 5 Min
Aqua add 1 oz.

ऐसी तीन मात्रा दिन में गरम जल के अनुपान से दें। इससे शुष्क कास साद्र हो जाती है और वलगम(कफ) सरलता से निकलता है। इसके साथ मृदु विरेचक औषध भी देवें। इसके लिये मैगनेशिया सल्फ का प्रयोग हितकारक होता है।

यदि कास पुरानी हो गई हो तो पहले तो उन कारणों को दूर करने का प्रयत्न करें जिनके कारण इस रोग की उत्पत्ति हुई हो। दूसरे श्वास नलिकाओं को वल देने वाली शक्तिदायक औषधियों जैसे विटामिन ए. विटामिन डी आदि का प्रयोग करना चाहिए। कुछ कासनाशक प्रसिद्ध योग निम्न हैं—

1. Cofcur (Unichem)
2. Nocuff (Calcutta chemicals)
3. Zip cough syrup (Smith stanisreet)
4. Glycodien terp vasaka (Alembic)
5. Benedryl expectorant (P & D)

इन योगों के साथ-साथ Tetracyclin देना भी लाभ करता है।

काली खांसी के लिये वच्चों को Whooping Cough vaccine का प्रयोग कर रोग का वचाव करते हैं। Broad Spectrum Anibioctic का प्रयोग कराया जाता है। निम्न शर्वत लाभ करते हैं—

1—Slozite Syrup
2—Perturssion Syrup.

दमा और खांसी
(Asthma & Bronchitis)

श्री डा० टी० एन० पांडेय बी० आई० एम० एस० रिसर्च यूनिट,
तिब्बिया कालेज, करोलबाग, नई दिल्ली—५

श्री पांडेय जी ने श्वास एवं कास के विषय में एलोपैथिक चिकित्सा के अनुसार यह लेख लिखा है। पाठकों के लिये लाभकारी होने से इसे अविकल रूप से प्रकाशित किया जा रहा है।

—सम्पादक

एलोपैथिक सिस्टम में दमा उस अवस्था को कहते हैं जिसमें एका-एका बाह्य श्वास में उत्तरोत्तर सीटी सी बजती, आवाज के साथ श्वास लेने में कठिनाई होती है। यह रोग श्वास नलिका के मांसपेशियों के एका-एक सिकुड़ने, श्वास नलिका धराकला के रक्त वर्ण होने तथा वहां से चिपचिपा पदार्थ अधिक मात्रा में निकलने के कारण होता है। जिसके फलस्वरूप श्वास नलिकायें पतली होकर श्वास संस्थान को पूरी तरह से नहीं खोल पातीं। विशेषकर बाह्य श्वास में बहुत ही कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। इस रोग की उत्पत्ति दो प्रकार से मानी जाती है। १—हृदय जन्य २-श्वासनलिका जन्य। यहां पर दूसरी प्रकार का वर्णन किया जा रहा है। हृदय जन्य का विवरण आगे मिलेगा।

अधिकतर यह रोग पारिवारिक देन के रूप में होता है जिसमें पुरुष ही अधिक प्रभावित होते हैं। कभी-२ छोटे बच्चों में परन्तु अधिकांशतः युवावस्था के प्रारम्भ में शुरू होती है।

दमा का कारण—१. श्वास नलिकाओं का सिकुड़ना २. श्वास नलिका धरा कला का शोथ। पारिवारिक इतिहास और स्नायुविक रोग(विशेषतः मनः संताप, क्रोध या थकावट) का इस रोग में बहुत महत्व है। 'एलर्जी' तथा कुछ बाह्य उत्तेजक पदार्थ इसके तत्कालिक कारण हो सकते हैं।

(१) एलर्जी—किसी बाहरी तत्व या 'प्रोटीन' के प्रति विशेष विरोधी क्रिया न होने को 'एलर्जी' कहते हैं। इसके अन्तर्गत कुछ निम्न तत्वों को समझा जा सकता है जैसे—

जीर्ण फुफ्फुस रोग, पंखों के छोटे-छोटे टुकड़े, बाल या कुछ जानवरों के गंध, पराग (फूलों के), फफूंदी, रुई के रेशे, अनाज की गर्द, रङ्ग रस-रसायन, फोटोग्राफी के रसायन, सैलीसिलेट, सल्फोनामाइड, पेनसिलीन, अंडा, झिंगा, कुछ मछली, मांस, मक्खन और आटा इत्यादि।

प्रायः स्थान के परिवर्तन तथा भोजन के परिवर्तन से इस रोग में लाभ होता दिखाई देता है।

(२) इरस्मित कारण—गर्द और धुआं, नेसल पालिप (मुड़े हुए नाक के सेप्टम) बढ़े हुए टांसिल्स तथा एडिनायड्स, श्वास नली तथा फुफ्फुस के रोग, अधिक भोजन, विबन्ध, जीर्णातिसार, उदर कृमि तथा स्त्रियों में गर्भाशय तथा 'ओवरी' के रोगों के कारण। वातावरण की दृष्टि से सीलन युक्त, कुहरा युक्त स्थान का भी प्रभाव इस रोग के बढ़ाने में हो सकता है। सूखे वातावरण में तथा ऊंचाई पर रहने से इस रोग में आराम मिलता है।

सम्प्राप्ति—दमा के दौरे के समय श्वास नलिकाओं की धराकला में शोथ और कठोरता आ जाती है। तथा 'ब्रांकियल' मांसपेशियों में संकोच हो जाता है। साथ ही चिपचिपे कफ की छोटी-छोटी गांठें एकत्रित हो जाती हैं। छोटी श्वास नलिकायें अधिकांशतर अवश्य ही पतली हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप अन्तः श्वास कठिन हो जाता है और बाह्य श्वास उससे भी अधिक कठिन हो जाता है। अतः वायु 'अल्वियोलाई' के अन्दर रुकती है और उससे उनमें शोथ हो जाता है अथवा वे आकार में बड़ी हो जाती हैं। इसके पश्चात् 'अल्वियोलर' स्राव निकलना प्रारम्भ होता है और मांस-पेशियां कुछ फैलती हैं और दमा का दौरा समाप्त हो जाता है। जीर्णावस्था में इयो-

सिनोफिल्स के द्वारा श्वास नली वराकला में मोटापा उत्पन्न हो जाता है तथा रक्त, थूक एवं नासिका स्राव में इयोसिनोफिल्स की अधिकता पाई जाती है।

निदानीय अवस्था में दमा का दौरा अधिकांशतः प्रातः काल में प्रारम्भ होता है या किसी बाहरी तत्व के प्रभाव के शीघ्र बाद में होता है। बेचैनी, हृदयावसाद, मानसिक उद्वेग, छींक आना, प्रतिश्याय, वायु वेग, मूत्रवेग या सोते समय में दम घुटने जैसी अवस्था का आभास पाकर चौंक-कर उठ जाना इत्यादि लक्षण इसके आने की सूचना देते हैं। श्वास कष्ट बढ़ता जाता है, रोगी चारपाई पर बैठा रहता है। सर झुकाकर कुहनी को घुटनों पर रखकर श्वास के सहायक मांसपेशियों के सहारे कठिनाई से श्वास लेता है। परन्तु श्वास की गति बढ़ती नहीं है। अधिकतर सूखी खांसी उत्पन्न होती है जो बहुत ही बेचैन कर देती है। साथ ही वक्ष में एक प्रकार से सीटी बजने की सी आवाज होती है और ओष्ठ पर नीलिमा आ जाती है। और जैसे ही कफस्राव होने लगता है दौरा समाप्त होने लगता है। बहुमूत्रता होकर रोगी को नींद आ जाती है। कभी-कभी इसका दौरा कई घण्टों या दिनों तक चलता है और रोगी बहुत ही कष्ट को प्राप्त हो जाता है यदि इसका वेग समाप्त न हो तो रोगी का अन्त हो जाता है।

रोग के लक्षण-रोगी का वक्ष पूर्ण विस्फारित रहता है तथा अन्तः श्वास लेने पर वक्ष बहुत थोड़ा ही फूलता है साथ ही ठेपन करने पर आवाज तेज सुनाई पड़ती है। अन्तः श्वास छोटी तथा कठिनाई से होती है, वाह्य श्वास लम्बी तथा सीटी की आवाज के साथ होती है। श्रवण यन्त्र से 'रांकाई व रेल्स' सुनाई पड़ती हैं। नाड़ी की गति तीव्र तथा क्षीण होती है और 'सिस्टोलिक' रक्त भार कम हो जाता है और 'जुगलर वेन्स' बड़ी हो जाती हैं। थूक परीक्षण से उसमें इयोसिनोफिल्स पाये जाते हैं। रक्त परी-क्षण से भी इमोसिनोफिल्स ३०% तक पाये जाते हैं तथा रक्त शर्करा एवं रक्त क्लोराइड की मात्रा में कमी हो जाती है।

उपद्रव—इसका दौरा एक ही समय पर प्रत्येक रात हो सकता है जो कि कई सप्ताह या महीनों तक चल सकता है। बच्चों में इसका वेग धीरे-धीरे कम होता जाता है और अन्त में समाप्त भी हो सकता है। बहुत पुराने रोगियों में फुफ्फुस की कोशिकायें फूल जाती हैं, जीर्ण कास उत्पन्न होजाता है, दक्षिण हृदय में अकर्मण्यता आ जाती है तथा जीवन का समय अल्प हो जाता है।

जीर्ण दमा—इसका दौरा वर्षों तक चलता रहता है। परिश्रम करने पर रोगी का श्वास फूलने लगता है। तथा वाह्य श्वास के समय बराबर थोड़ी सी सीटी बजने की आवाज होती रहती है। इस प्रकार के रोगी दुबले-पतले लम्बी गर्दन वाले, 'बैरेल' के आकार का वक्ष तथा कुछ आगे को झुके हुए होते हैं। उनको कास बराबर रहता है तथा नीली रक्त वाहिनियों में रक्त संचार भी सुचारू रूप से नहीं होता। बार-बार दौरे के कारण उसको मानसिक चिन्ता बनी रहती है।

दमा का निदान—(१) वाह्य तत्वों का प्रभाव पारिवारिक एवं व्यक्तिगत इतिहास के आधार पर (२) जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में इसका प्रादुर्भाव (३) बिना किसी फुफ्फुस रोग के सीटी की आवाज के साथ श्वास लेने में कठिनाई (४) जब दौरा कम होने लगे उस समय कफ युक्त कास का होना (५) रक्त तथा थूक में इयोसिनोफिल्स का उपस्थित होना। (६) एलर्जी उत्पन्न करने वाले प्रोटीन के चमड़े के नीचे सूचीवेध से 'ह्वील या इरीथ्रोमा का त्वचा के ऊपर उत्पन्न होना तथा एड्रिनलिन से तुरन्त लाभ होना इत्यादि से इस रोग का निदान किया जा सकता है।

दमा रोग के लिये परीक्षण—१. दूसरे एलर्जी के रोगी को इतिहास जैसे—शीतपित्त २. फुफ्फुस का परीक्षण दौरे के समय तथा दौरे के बीच में ३. रक्त तथा थूकपरी-क्षण इयोनोसिनोफिल्स के लिए ४. वक्ष की एक्सरे (जीर्ण रोगियों में केशिकाओं का फूलना तथा ट्रापिकल इयोसिनो-फिलिया के लक्षण भी दिखाई देते हैं।

चिकित्सा—

(१) दमा में एड्रीनलिन हाइड्रोक्लोराइड १:१००० का घोल ५ बूंद प्रत्येक २-४ घण्टे बाद त्वचा के नीचे सूचीवेध करना चाहिए। इसमें यदि १।१०० ग्रेन अट्रोपीन सल्फेट मिला लिया जाय तो और भी अच्छा है। (२) एड्रिनलिन को तैल में (२ मि.ग्रा. १ मिली० में) मिलाकर देने से इसका प्रभाव अधिक देर (८-१२ घण्टे) तक रहता है। इसका प्रयोग दौरे के बाद करना अधिक लाभप्रद है।

(३) आइसोप्रेनलिना सल्फेट जो कि एलुड्रिन, नियो-इपीनिन या नोरिसोड्रिन के नाम से ५ मि. ग्रा. की गुटिका के रूप में प्राप्त है जिह्वा के नीचे प्रत्येक घण्टे के बाद रखने से शीघ्र लाभ होता है। (४) इसके अतिरिक्त रोगी को स्वच्छ वातावरण में जहां गर्द व धुंआं न हो रखना चाहिए तथा (५) दौरे के समय २ मिनिम एड्रीनलिन सलूसन त्वचा के नीचे १०–१५ मिनट के अन्तर पर सूचीवेध करना चाहिए। (६) ५० सी० सी० १२·५% डेक्स्ट्रोज सलूसन में ०.२५ से ०.५ ग्रेन एमीनोफाइलीन मिलाकर अन्त:सिरा सूचीवेध बहुत धीरे-धीरे करने तथा इसके साथ ही अन्त: गुद 'सपोजिटरी' देने से इस अवस्था में बहुत लाभ होता है।

(७) कष्टसाध्य दमा में कार्टिको स्टेरायडस का बहुत बड़ा महत्व है। इस ग्रुप के एक्-कोलिज सालेवुल १०० मि.ग्रा. को ५% ग्लूकोज सलूसन में मिलाकर अत: सिरा सूचीवेध से विशेषलाभ होता है। परन्तु इसके द्वारा उत्पन्न उपद्रव के लिये बहुत ही ध्यानपूर्वक सतर्क रहना चाहिये।

(८) चूंकि रोगी खा-पी नहीं सकता अत: उसके लिये बहुत अधिक मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। ५०० मि ली. नार्मल सलाइन जिसमें ५% डेक्सट्रोज भी हो अन्त: सिरा सूचीवेध से ६०-७० बूंद प्रति मिनट की गति से देना चाहिये। इसके बाद अन्त: गुद ड्रिप भी दिया जा सकता है।

(९) इसके साथ ही मुख द्वारा निम्न मिक्सचर भी २ से ४ मिनट के पश्चात दिया जा सकता है।

एक्सट्रैक्ट ग्रिन्डेलिया लोबेलिया—२० बूंद, टिंकचर स्ट्रैमोनियम—१० बूंद, आयोडीन—२ ग्रेन,

(१०) और ६से८ घंटे पश्चात निम्नपाउडर भी दिया जा सकता है—इफेड्रीन एमीटाल कैंपसूल या इफेड्रीन (⅓ ग्रेन),पपावरिन (२ ग्रेन) एमीनोफाइलिन (१½ ग्रेन) और फीनोवारवीटोन ½ ग्रेन)।

(११) भीषण अनिद्रा की दशा में ०.२ ग्रेन सोनेरिल या एमिटाल की गोलियां सोते समय दी जाती हैं परन्तु यदि दशा बहुत ही बुरी हो तो ५-१० सीसी अन्त: मांस पेशी में सूचीवेध करना बहुत ही लाभकारी है।

१२. एमिल नाइट्रेट का सूंघना तथा १:१०० एड्रिनलिन क्लोराइड अथवा १% आइसोप्रेनलिन का मुंह और नाक में छिड़काव बहुत ही लाभकारी है।

१३. बेनेड्रिल या एण्टीस्टीन का कैंपसूल या गोलियां प्रत्येक ४ घण्टे पर खाने से या एन्टी-स्टीनेप्रेविन का मुंह में छिड़काव दमा के दौरे को कम कर देता है।

१४. सेडेनाल (ओरल एमाइनोफाइलिन) का भी प्रयोग तत्काल लाभ करता है।

विशेष—मारफीन का प्रयोग इस रोग में कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे श्वास नलिका का संकुचन हो कर श्वासावरोध हो सकता है।

दमे के दौरे के मध्य—त्वचा परीक्षा द्वारा रोग उत्पन्न करने वाले एलरंजन का पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए और इसको छूने, सूंघने तथा खाने से बचना चाहिये। रोगी के वातावरण का परिवर्तन करके भी देखना चाहिये। दमे के दौरे से बचने के लिये समय समय पर कोलेडिल १०० मि.ग्रा. कार्टसमिल प्रेडनीसिलोन १·५ मि.ग्रा., थियोफाइलिन ८० मि. ग्रा. इफेड्रिन हाइड्रोक्लोराइड और फीनोवारवीटाल प्रत्येक १० मि. ग्रा. का प्रयोग हितकर है। जिन कारणों से रेलफेक्स इरीटेशन होता है उसको दूर करना चाहिये जैसे—टॉसिल्स, एडिनाइड्स तथा नेज़ल पालिप का निकाला जाना अच्छा है। गर्भाशय की बीमारियों का इलाज पूर्ण रूप से होना आवश्यक है। जीर्ण श्वास के इन्फेक्शन को एण्टीवायोटिक द्वारा ठीक करना चाहिए और त्वचा के नीचे कोल्ड वैकसीन को भी उत्तरोत्तर बढ़ते हुए मात्रा में देना लाभकर सिद्ध होता है।

पथ्य—भोजन हल्का, सुपाच्य तथा थोड़ा होना चाहिये जिससे इसका दौरा न होने पावे। विशेषत: रात का भोजन बहुत ही कम होना आवश्यक है। पैराफिन इमलसन इत्यादि देकर पेट को साफ रखना चाहिए। सोडावाई कार्ब, नक्स वोमिका, जेन्सियन मिक्सचर भोजन से पहले देना चाहिए। २ से ४ औंस ग्लूकोज रोजाना देना बहुत लाभ पहुँचाता है। धूल व गर्दरहित तथा शुष्क एवं उष्ण वातावरण में रोगी को ले जाना प्राय: बहुत ही अनिवार्य है।

हृदयजन्यश्वास (Cardiac Asthma)

हृद्जन्य दमा में रात को सोते समय एकाएक श्वास में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्था में फुफ्फुस में बहुत अधिक दबाव तथा जड़ता हो जाती है जो कि कुछ समय में शोथ में परिवर्तित हो जाती है।

रोगोत्पत्ति के कारण—इस रोग में विशेषकर पुरुष ही प्रभावित होते हैं जिनकी आयु ५० से ७० वर्ष के मध्य होती है और उनको लाल रक्त वाहिनियों की भित्ती की मोटाई का रोग होता है। प्रायः कोरोनरी आर्टरी की दीवालें मोटी होकर उसके रास्ते को पतला कर देती हैं जिससे हृदय की पेशी में उत्तरोत्तर कठोरता उत्पन्न होती जाती है। इस अवस्था में रक्त भार अधिक बना रह सकता है तथा वाम वेन्ट्रिकिल बड़ा हो सकता है। परन्तु नीली रक्त वाहिनियों के रक्त परिभ्रमण में रुकावट नहीं होती। नाड़ी नियमित तथा एक के बाद एक क्षीण हो सकती है। गति भी तीव्र हो सकती है। परिश्रम से श्वास आना वह भी कभी-कभी बीच में रुक जाना, ऐसी भी स्थिति साथ में हो सकती है। माइट्रल स्टेनोसिस तथा कुछ फुफ्फुसीय शोथ इस रोग में उपद्रव स्वरूप हो सकते हैं। हृदय तथा फुफ्फुस में दबाव अधिक हो सकता है, फुफ्फुस में रक्त का भ्रमण कम हो जाता है परन्तु हृदय सामान्य मात्रा में ही रक्त को बाहर भेजता है साथ ही रोगी दिन के समय अपना काम सुचारु रूप से चला लेता है।

सम्प्राप्ति—श्वास का दौरा अधिकांशतः रात में उठता है। दिन में शरीर पर कोई गड्ढा बनने वाला शोथ साधारणतया नहीं बनता परन्तु अधिक देर तक खड़े रहने पर पैरों में थोड़ा सा शोथ दिखाई देता है। परन्तु चारपाई पर लेटे रहने से शोथ उत्पन्न करने वाला इक्सट्रा सेलुलर फ्ल्यूड रक्त में मिल जाता है और उसकी मात्रा में बढ़ोत्तरी उत्पन्न कर देता है जिसके फलस्वरूप पल्मोनरी वेनूस प्रेसर और बढ़ जाता है। नींद की अवस्था में फुफ्फुस अपना कार्य पूर्ण रूप से नहीं कर पाता है जिसके फलस्वरूप आपरेशन से भी फ्ल्यूड कम नहीं हो पाता। इन सब कारणों के एक साथ हो जाने के फलस्वरूप फुफ्फुस शोथ और कार्य क्षमता में कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त दिन में अधिक परिश्रम या अधिक भोजन व अधिक नमक का प्रयोग भी दौरे के आने में सहायक हो सकता है कोई कारण जिससे राइट वेन्ट्रीक्युलर रक्त का बहाव कुछ समय के लिये बढ़ जाय, दौरा प्रारम्भ हो जाता है।

दौरे के समय रोगी हृदय से रक्त बहाव की मात्रा में बढ़ोत्तरी के लिए तड़फता रहता है। राइट वेन्ट्रीकल अपना कार्य करता है। सिस्टेमिक प्रेसर तथा आर्टेरियल प्रेसर बढ़ा रहता है परन्तु लेफ्ट वेन्ट्रीकल के अनियमित हो जाने के कारण फुफ्फुसों में रक्त की अधिकता हो जाती है और हृदय से रक्त के बहाव की मात्रा में बढ़ोत्तरी नहीं हो पाती है। इस प्रकार से थोड़े समय के लिए राइट तथा लेफ्ट वेन्ट्रीकल में असामञ्जस्य उत्पन्न हो जाता है और फुफ्फुस कार्यक्षमता तथा उसके तन्तुओं का बढ़ना व सिकुड़ना कम हो जाता है। इसलिये फुफ्फुस जल्दी-जल्दी फूलने और सिकुड़ने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे फुफ्फुस का शोथ श्वास नलिकाओं में रेफ्लेक्स द्वारा संकोच उत्पन्न करके उनके नली को शोथ के कारण पतली कर देते हैं और दौरा प्रारम्भ हो जाता है। जिसके कारण श्वास में कठिनाई तथा सीटी बजने की आवाज आने लगती है।

निदानीय अवस्था—रोगी आराम से सामान्य अवस्था में बिस्तर पर जाता है। दम घुटने जैसा आभास मध्य रात्रि में होने से अचानक नींद खुल जाती है। उसका चेहरा पीला तथा ओष्ठ नीलिमायुक्त हो जाते हैं। पसीना अधिक आता है और बैठकर पूर्ण श्वास की कामना करता रहता है। नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है। सिस्टोलिक व डायस्टोलिक ब्लडप्रेसर बढ़ जाता है। अधिकांशतः यह दौरा १ घण्टे तक चलता है और रोगी को बहुत क्षीण कर देता है और उसके पश्चात् थक कर उसको नींद आ जाती है। परन्तु श्वासावरोध की अवधि अधिक बढ़ जाने के माने लेफ्ट वेन्ट्रीक्युलर फेल्यौर बहुत घातक प्रकार का है जिससे फुफ्फुस जल्दी से फूल जाते हैं और उनमें शोथ होकर खांसी के साथ कुछ लालिमा, झाग और कफ युक्त थूक निकलने लगता है। ब्लड-प्रेसर कम हो जाता है जो कि बहुत ही घातक अवस्था है। इससे मृत्यु भी हो सकती है।

माइट्रल स्टेनोसिस की अवस्था में किसी प्रकार का

परिश्रम तथा मानसिक उद्वेग हृदय की गति को बहुत अधिक बढ़ाकर हृदयजन्य दमा उत्पन्न कर सकता है। विशेषकर गर्भावस्था में। साधारण अवस्था में इसका दौरा रात में रोजाना हो जाता है। परन्तु घातक अवस्था में दौरे के साथ-साथ फुफ्फुसीय शोथ भी उत्पन्न हो जाता है तथा एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता रहता है।

अस्थमा के दौरे के समय दोनों प्रकार के दमा में भेद करना आसान नहीं परन्तु हृदयजन्य तथा श्वास-नलिकाजन्य दमा का भेद करना परमावश्यक है। वैसे दोनों में ही फुफ्फुस के कोषाओं का फुलाव, वाह्य श्वास क्रिया के समय कठिनाई, ब्लडप्रेसर में कमी, इयोसिनोफिल्स का बढ़ जाना तथा श्वास नलिकाओं में संकोच उत्पन्न हो जाता है। फिर भी श्वासनलिकाजन्य दमा के कुछ निम्न विशिष्ट आधार विद्यमान हैं जैसे—

१—यह कम अवस्था में होता है।

२—बहुत घातक प्रकार का श्वासावरोध।

३—पिछले कई वार के दौरे का इतिहास तथा

४—लेफ्ट वेन्ट्रीक्युलर फेल्यौर के लक्षणों का अभाव

चिकित्सा—

तत्काल लाभ के लिए रोगी को विस्तर में सीधा बैठा देना चाहिए तथा मारफीन हाइड्रोक्लोराइड $\frac{1}{3}$ ग्रे. त्वचा के नीचे या अन्तःसिरा सूचीवेध से देना चाहिए। यदि नीले रक्त की वाहिनियां अधिक फूली हुई हों तो उनसे रक्तमोक्षण करना चाहिए। एट्रोपीन $\frac{1}{60}$ ग्रे. त्वचा के नीचे सूचीवेध के द्वारा देना लाभप्रद है। कैथेटर, मास्क अथवा टेन्ट के माध्यम से आक्सीजन देने से भी बहुत सहायता मिलती है। यदि फुफ्फुस में शोथ न हो तो श्वास नलिकाओं का संकोच ०.५ ग्रे. एमाइनोफाइलीन धीरे-धीरे अन्तःसिरा वेध से देने से काफी आराम हो जाता है। कास को दूर करने के लिए कोई लेह जो कोडीन मिश्रित हो लाभकर होता है। जैसे—कैम्फोरेटेड टिंक्चर आफ ओपियम ३० बूंद, आक्सीमेल सिल्ला १२० बूंद और कोडीन $\frac{1}{3}$ ग्रे. ६० बूंद सीरप आफ टोलू के साथ। यदि १० दिन पहले तक डिजिटलिस की कोई प्रीपरेशन नहीं दी गई है तो डिजाक्सीन १.२ मि. ग्रा. या सेडीलानिड १.६ मि. ग्रा. सूचीवेध (अन्तःसिरा) द्वारा दिया जा सकता है। इसके बाद डिजिटलिस के पत्तों की गोलियां १.८ ग्रेन की मात्रा में ०.८ ग्रेन, ०.५ ग्रेन, ०.३ ग्रेन तथा ०.२ ग्रेनके हिसाब से प्रति ६ घण्टे के बाद देने से नाड़ी की गति सामान्य हो जाती है। इसके साथ-साथ ही परिश्रम को सीमित कर देना चाहिए। विना नमक का भोजन देना हितकर है। विस्तर का सिरहाना ९ इन्च ऊंचा कर देना चाहिए (ईंटें लगाकर) और साथ ही सेडीलानिड ०.२५ मि. ग्रा. की गोलियां भी देना हितकर है।

कास (BRONCHITIS)

छोटी अथवा बड़ी श्वास नलिका में शोथ उत्पन्न हो जाने की अवस्था को ब्रांकाइटिस कहते हैं। इसके साथ ही कभी-कभी ट्रैकियां में भी शोथ हो जाता है और उस अवस्था को ट्रैकियो-ब्रांकाइटिश कहते हैं। ब्रांकाइटिस एक्यूट तथा क्रानिक दो प्रकार की होती है। सर्व प्रथम एक्यूट ब्रांकाइटिस ही होती है जोकि कई वार के होने के वाद क्रानिक वन जाती है। प्रारम्भ में दोनों ही निम्न किसी एक या एक से अधिक के कारणों से होती हैं जैसे प्रतिश्याय जन्य, पूय श्राव जन्य, तन्तुओं में प्रोटीन की ग्रंथि जन्य अथवा रासायनिक व वाह्य रगड़ इत्यादि।

एक्यूट कटारल ब्रांकाइटिस—इस प्रकार की ब्रांकायटिस अधिकांशतः जाड़े तथा बरसात के मौसम में होती है। इसमें अधिक रूप से वच्चे तथा वूढ़े प्रभावित होते हैं और प्रायः पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक होती है। वृद्धावस्था में यह अधिक घातक रूप वनाती है।

रोगोत्पत्ति के कारण—वार-वार प्रतिश्याय का होना, वक्षस्थल के अङ्गों का टेढ़ापन, जीर्ण हृदय तथा वृक्क के रोग, थकान, ठंडक लगना, सीलन तथा कुहरायुक्त स्थान में निवास तथा उसके अतिरिक्त तमक श्वास, जिसमें पारिवारिक इतिहास भी मिलेगा। यह वहुत प्रकार के संक्रामक ज्वरों में भी साथ-साथ होजाती है जैसे इन्फ्लूएन्जा, आंत्रिक, मसूरिका, डिफ्थीरिया, चेचक तथा काली खांसी।

यह गले तथा 'नेजल साइनोसेस' के इन्फेक्शन में भी पाई जाती है जो कि सम्भवतः वाइरस इन्फेक्शन के कारण होता है। ऊपर लिखे कारणों के साथ निम्नलिखित कुछ

जीवाणु जो कि श्वास नलिका के इन्फेक्शन में सहायता पहुँचाते हे दिये जा रहे हैं—जैसे—नीमोकोक्काई, नीमो-वैसीलाई, स्ट्रेप्टो कोक्काई,स्टैफीलो कोक्काई. एन. कटार-लिस, एच. इन्फ्यूऐंजी। कभी-कभी वाह्य दबाव जैसे गर्द और गैस इत्यादि से भी इस रोग की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति—वड़ी तथा मध्यम लम्बाई की श्वास नलि-काओं के म्यूकस मेम्ब्रेन में दवाव और उनकी ऊपरी इपीथीलियम कहीं कहीं टूट जाती है। उसमें शोथ भी उत्पन्न हो जाता है। म्युकस मेम्ब्रेन के नीचे भी शोथ हो जाता है और श्वेत रक्त कणों का जमाव भी वहां पर हो जाता है। जिसके फलस्वरूप नलिकाओं का छिद्र छोटा हो जाता है और श्राव भी कम हो जाता है। वच्चों में यह शोथ सूक्ष्म श्वास नलिकों में भी उत्पन्न हो सकता है। इसकी दूसरी अवस्था में श्राव अधिक मात्रा में होता है। इस स्राव के साथ कुछ इपीथेलियम, ल्यूकोसाइट्स तथा लाल रक्त कण भी जाते हैं परन्तु तीसरी अवस्था में (जिसे रिजोलूसन स्टेज भी कहते हैं) स्राव गाढ़ा हो जाता है और उसका वर्ण भी पीत हो जाता है।

निदानीय अवस्था—इसका आगमन अचानक होजाता है जिसमें ज्वर तीव्र होता है (१०० या इससे अधिक), सुस्ती, हाथ-पांव व सिर में दर्द, सीने में कड़ापन तथा सीने की हड्डी के नीचे घाव सा प्रतीत होता है। कास पहले सूखा और वाद में कफ निकलने लगता है। ज्वर ३-४ दिनों में कम हो जाता है कफ अधिक दिनों तक निकलता रहता है जो धीरे-धीरे जाता है। अन्य अवस्थाओं में कास तथा उसके साथ कफ महीनों तक चलता रहता है और रोग को जीर्ण बना देता है।

प्रारम्भ में वक्ष में कुछ भारापन मालूम होता है और वक्ष की गति में कुछ कमी हो जाती है। और कभी-कभी श्वासावरोध भी हो जाता है यदि अन्य कारण भी साथ हों। श्वास के शब्दों में कई प्रकार के भिन्न-भिन्न परि-वर्तन पाये जाते है। इस रोग के अधिक दिनों तक बने रहने से लोवुलर कौलैप्स, ब्रांकोन्यूमोनियां, ब्रांको एक्टेसिस, फाईब्राइड इन्ड्यूरेसन तथा हाईपरट्राफिक इम्फीसिमा इत्यादि रोग होने लगते हैं।

निदान—ज्वर, कास, श्वास की गति, ठेपन की आवाज में वढ़ोत्तरी, लम्बी और कष्टयुक्त श्वास, थूक की अवस्था इत्यादि के आधार पर इसका निदान किया जाता है। वच्चों और वूढ़ों के अतिरिक्त यह रोग साध्य है, यदि उनमें जीर्ण, वृद्ध अथवा हृद रोग न हो।

चिकित्सा—

(रोक थाम) १—जहां गर्द अधिक उड़ता हो, दम घुटने वाला वातावरण तथा सीलन व कुहरा वाला स्थान रोगी को त्याग देना चाहिए। २. नाक-मुंह के रोगों का यदि हैं तो उचित इलाज कराना चाहिए। ३. वार-वार होने वाले कास में 'स्टाक मिक्सड कटारल वैकसीन, का सूचीवेध करना चाहिए।

(उपचार) १. रोगी को गर्म तथा हवादार स्थान में विस्तर पर रखना चाहिए।

२. रोगी को निम्न मिक्चर देना चाहिए—

पोटैसियम ऐसीटेट १५ ग्रेन, टिंचर इपीकाक १० बूंद, विन. एन्टीमनी ५ बूंद।

३. यदि ब्रांको स्पाज्म भी उपस्थित है तो रोगी को इफीड्रीन हाइड्रोक्लोराइड आधा ग्रेन ऊपर से मिला-कर दें।

४. डोवर्स पाउडर १० ग्रेन या एस्परीन ५ ग्रेन सोते समय देने से काफी आराम मालूम होता है।

५. प्रारम्भिक अवस्था में १ चम्मच इक्यूलिप्टस का तेल अथवा टिंचर आफ वेन्जाइन एक पिंट उबलते पानी में डालकर भाप लेने से काफी लाभ होता है।

६—यदि कास वहुत ही कष्टयुक्त हो तो निम्न चटनी प्रयोग करना हितकर है—

१.कैम्फोरेटेड टिंचर ओपियम ३० बूंद। २. आक्सी-मल सिल्ली १२० बूंद। ३. कोडीन $\frac{1}{2}$ ग्रेन। ४. सीरप टोलू ६० बूंद।

७. यदि न्यूमोकोकस इन्फेसन हो तो सल्फनोमाइड्स पैनीसलिन तथा ब्राडस्पेक्टम ऐन्टीवायोटिक्स का प्रयोग हितकर है जैसे सल्फाडायजीन,क्रीस्टलाइन पैनीसलिन तथा टेट्रासायकलीन इत्यादि।

८. इसके एक्यूट अवस्था के वाद निम्न मिक्सचर का देना वहुत ही लाभकारी है—

एमोनियम वाई कार्व ३ ग्रेन, सोडा वाईकार्व १५ ग्रेन,

टिंचर आफ सेनेगा २० बूंद, स्क्विल १० बूंद, सीरप टोलू ६० बूंद, कैम्फर वाटर १ औंस ।

९. इसे साथ ही निम्न लेनीमेंट को सीने पर मालिस करना बहुत अच्छा है ।

लिंट बेलाडोना ६० बूंद, गलथेरिया काजयुट आयल, ६० बूंद, मेंथाल ५ ग्रेन, कैम्फर १० ग्रेन, ओलिव आयल १ औंस में ।

१०. रोगानुसार दोनों पर शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिये आस्टोकैलसियम, विटामिन्स ए और डी (अडेक्सोलीन) तथा सी बहुत ही लाभकर है ।

बार-बार होने वाले रोगियों के लिए स्थान परिवर्तन बहुत ही सहायक होता है ।

एक्यूट फाइब्रिनस ब्राँकायटिस

ब्रांकाइटिस का यह भेद बहुत कम पाया जाता है परन्तु कभी-कभी बच्चों और बड़ों में पाया जाता है । जो कि अधिकतर पुरुषों में निमोनियां, आन्त्र ज्वर या मसूरिका के बाद मिलता है । उसमें बहुत जोर से म्युकस मैम्ब्रेन में शोथ हो जाता है और फाइब्रिन की गांठें बड़ी मध्यम और छोटी श्वास नलिकाओं में उत्पन्न हो जाती हैं तथा नीलिमा भी उत्पन्न हो जाती है जबकि ज्वर ९९ या १००° फारनहाइट से अधिक भी नहीं होता ।

इसका आगमन सुस्ती के साथ अचानक होता है । ठंडक ज्वर, कास, श्वासावरोध, वक्ष के एक पार्श्व में दर्द पाया जाता है । जैसे-जैसे कास बढ़ता है और कफ के साथ 'कास्ट्स' निकलने लगते हैं वैसे-वैसे ज्वर श्वासावरोध इत्यादि कम होते जाते हैं । अधिकतर रोगी ठीक हो जाते हैं चाहे कई दिन लगें । बहुत कम रोगी 'क्रानिक' अवस्था को जाते हैं ।

चिकित्सा—

१—सलाइन एक्सपेकोरेन्ट मिक्सचर ५ ग्रेन पोटैसियम आयडायड के साथ बहुत ही लाभ करता है ।

२—एक्यूट स्टेज में स्टीम का इनहेलेसन भी गुणकर है ।

३—ब्रांकोस्कोप के द्वारा देखकर 'कास्ट' को निकाल देना आवश्यक है ।

४—यदि लैरिंग्स में कोई **अवरोध** हो तो उसके लिए ट्रैकिया काटकर एक ट्यूब लगाना आवश्यक है ।

'क्रानिक कटारल ब्रांकायटिस'—यह एक्यूट कटारल ब्रांकाइटिस की दूसरी अवस्था होती है । वैसे स्वतः ही प्रारम्भिक भी हो सकती है जो प्रतिशाय से प्रारम्भ होती है । यह गर्मियों में स्वतः ही ठीक होने लगती है । और सर्दियों में अधिक हो जाया करती है इसीलिए इसे 'विन्टर कफ' भी कहते हैं ।

रोगोत्पत्ति के कारण—

इसमें किसी भी अवस्था के रोगी हो सकते हैं फिर भी मध्य अवस्था के पुरुष अधिक प्रभावित होते हैं । इसमें पारिवारिक इतिहास मिलता है । काम-काज माफिक न होना, सीलन, दर्द, धुआं आदि वातावरण में रहना प्रतिश्याय का होना (टांसिल तथा नेजल साइनोसिन के कारण) दमा, अधिक धूम्रपान, शराब का पीना, हृदय के रोग, जीर्ण फाइब्रामड ट्यूबर क्यूलोसिस, जीर्ण वृक्क शोथ, गठिया तथा सिफिलिस इसके मुख्य कारण हैं । वृद्धावस्था में आर्टेरियो स्क्लेरोसिस और हृदय का बढ़ना भी हो सकता है । जिस अवस्था में श्वास नलिकाओं की धराकला गलकर सूक्ष्म रोग कीटाणुओं के लिए स्थान बना देती हैं । इसमें पाए जाने वाले जीवाणु निम्न हो सकते हैं—

नीमोकोक्काई, नीमोवैसीलाई, स्ट्रैप्टोकोक्काई, स्टेफाइलोकोक्काई, एन० कटारलिस, एच० इन्फ्ल्यूरोंजी इत्यादि अकेले या किसी के साथ मिक्स स्पायरोकीट्स का महत्व इसमें बहुत कम है ।

सम्प्राप्ति—जीर्ण शोथ के कारण श्वासनलिकाओं के धराकला में मोटापा उत्पन्न हो जाता है तथा स्राव पैदा करने वाली ग्रन्थियां पहले फूलती हैं फिर छोटी हो जाती हैं और इनके ऊपर जो 'सीलियेटेड इपीथीलियल लाइनिंग' होती है वह भी नष्ट हो जाती है । बाद में पेरी ब्रांकीओलाइटिस तथा फाइब्रोसिस होकर ब्रांकीओल्स के छिद्र में पतलापन हो जाता है, वे टूट जाते हैं, रक्तस्राव होने लगता है तथा वहां पर इम्फीसिमा हो जाता है और 'ट्यूबों' में 'म्यूकस' बन जाता है । जिसके फलस्वरूप 'पल्मोनरी-हाइपरटेंसन' तथा 'राइटहार्ट' बढ़ जाता है । बहुत दिनों तक सेप्सिस की अवस्था बने रहने से स्वास्थ्य भी कमजोर हो जाता है ।

निदाननीय अवस्था—साधारण रोगी को प्रातः सूखी खांसी होती है जो कि जाड़ों में बढ़ जाती है। बिना किसी कठिनाई के सालों बीत सकते हैं विशेषतः गरमी में। परन्तु बढ़ते हुए रोग में श्वास के दौरे बढ़ते जाते हैं और थूक गाढ़ा होता चला जाता है और उसमें से बदबू भी आती है। कभी-२ रक्त भी आता है। रोग के बढ़ने से ज्वर भी उत्तरोत्तर थोड़ा-थोड़ा बढ़ता रहता है। कुछ अंश तक श्वासावरोध भी प्रारम्भ हो जाता है और कुछ नीलिमा (साइनोसिस) भी हो जाती है। कुछ रोगियों को बाह्य श्वास क्रिया के समय सीटी बजने की आवाज या प्रातःकाल में कफ का निकलना भी उपस्थित हो सकता है।

बाह्य लक्षण – धीरे-धीरे उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ इम्फेसिमा (फुफ्फुस के आल्वीयोलाई में हवा का बढ़ना), वक्ष का भरा रहना, वक्ष की गति में कमी, ठोकने पर अधिक आवाज होना। बाह्य श्वास क्रिया का बढ़ना, उसमें अवरोध तथा सीटी बजने की आवाज तथा बबलिंग रेल्स का सुनाई पड़ना जीर्ण रोगियों में श्वासावरोध व सायनोसिस के लक्षण विद्यमान होते हैं।

थूक कम और चिपचिपा होता है और इसमें छोटी-छोटी गांठें मिलती हैं। यह कभी-कभी अधिक भी हो जाता है। कभी पीला और कभी सफेद भी हो सकता है। खून की लाइनें इस पर लगी रहती हैं।

एक्सरे में ब्रांको वैसकुलर मार्किंग्स बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। जो कि पंखे की तरह हाइलस की तरफ से बाहर की ओर तक फैली हुई होती हैं और फुफ्फुस की सतह अधिक फैली हुई होती है।

इस प्रकार के रोगियों में दमा भी साथ-साथ अधिकतर होता है। अन्य उपद्रवों के साथ वृद्धावस्था में अधिक खांसने के कारण हर्निया भी हो सकता है। यह रोग बहुत धीरे-धीरे ठीक होता है। इस से फौरन मृत्यु नहीं होती परन्तु जीर्ण रोगियों को पूरा ठीक होना बहुत ही कष्टसाध्य है और जीवन इससे कम हो जाता है।

इसका निदान बार-बार कास के आने के इतिहास विशेषकर जाड़े में, फुफ्फुस में 'रांकाई और रेल्स' का उपस्थित होना तथा बढ़ते हुये 'इम्फीसिमा' से किया जा सकता है।

चिकित्सा–

इस रोग के रोगियों में साधारण चिकित्सा का बड़ा महत्व है, जीर्ण रोगी को अपने काम-काज, रहने के स्थान को विशेषकर जाड़े के महीनों में बदलकर शुष्क तथा उष्ण वातावरण में चला जाना चाहिए। खुली हवा में ठण्डक से बचकर रहना जहां पर धूल और धूंआं न हो हितकर है। सेप्टिक टांसिल्स एडियानाइड्स यदि हों तो उनको निकाल देना चाहिये। अधिक भोजन तथा तम्बाकू प्रयोग करने वालों को इसकी मात्रा घटा देनी चाहिये।

यदि खांसी में कष्ट हो रहा हो और थूक थोड़ा तथा कष्ट से निकलता हो तो निम्न सलाइन एक्सपेक्टोरेन्ट देना चाहिए—पोटेशियम बाई कार्ब १० ग्रेन, सोडियम क्लोराइड ४ ग्रेन, अमोनियम बाई कार्ब ५ ग्रेन, पोटेशियम आयडाइड ३-५ ग्रेन और स्प्रीट एमोनिया ऐरोमेट २० बूंद। गरम पानी एक कप में मिलाकर धीरे-धीरे पीना हितकर है। इसमें अधिक वेग होने पर ओपियेटेड कैम्फर का टिंचर भी थोड़ा सा मिलाया जा सकता है। जब थूक आराम से निकलने लगे तब स्क्विल, इपीकाकुआना, और सेनेगा के टिंचर भी दिये जा सकते हैं। श्वास नलिकाओं से संकोच की स्थिति में एन्टीहिस्टैमीन्स जैसे बेनेड्रिल तथा एन्टीस्पाज्मोडिक्स जैसे एड्रीनलीन, आइसोप्रेकालिन और एमाइनोफाइलिन लाभकर सिद्ध होगा। यह सब श्वास के कष्ट को कम करके थूक को निकालने में सहायता करके रोगी को आराम पहुंचाते हैं। एक्यूट रिलैप्स में एसीटीनिटी टेस्ट करके कोई उचित एन्टीबायोटिक हितकर होगा। "इस्टोपेन' ५००·००० यूनिटस या क्रिस्टोपेन ५००,००० स्ट्रेप्टोमाइसिन ०·५—१·० ग्राम तक देना चाहिये। ब्राडस्पेक्ट्रम एन्टीबायोटिक जैसे क्लोरमफेनीकाल या टेट्रासाइक्लिन १ से १·५ ग्रा॰ प्रतिदिन ७-१५ दिनों तक देना लाभकर है। इनके साथ विटामिन ए बी सी और डी भी देना आवश्यक है।

एरोसाल, एण्टी बायोटिक तथा एण्टी स्पाज्मोडिक्स देने से बार-बार का होना कम हो सकता है।

तमक श्वास की प्राकृतिक चिकित्सा

ऐसी धारणा है कि तमक श्वास बूढ़ों को ही होता है। पर यह धारणा एकदम गलत है। सच तो यह है कि क्या स्त्री, क्या बूढ़ा, क्या जवान, सभी इसके शिकार होते हैं। यहां तक कि यह रोग अल्प वयस्क बालकों को भी अपनी चपेट में लेने से नहीं चूकता।

तमक श्वास के लिए दमा बहु प्रचलित और प्रसिद्ध शब्द है। अरबी में जीकुन्नफस, बुहर और इन्नसाबुन्नफस तथा अंग्रेजी में अस्थमा या एज्मा और आम बोलचाल में तमक श्वास को सांस की तंगी, दम फूलना अथवा श्वास-कष्ट कहते हैं।

श्वास रोग कई प्रकार का होता है। जैसे—क्षुद्र-श्वास, उर्ध्वश्वास, महाश्वास, छिन्नश्वास, हिक्का, इयोसिनोफीलिया, बालश्वास तथा तमक श्वास। इन सबमें तमक श्वास रोगी को दुःख देने में सिरताज समझा जाता है। इनके अलावा हृद्पिण्ड सम्बन्धी श्वास रोग, मूत्रपिण्ड सम्बन्धी श्वास रोग (Renal Asthma), बाह्य वस्तु-जनित श्वास रोग (Hay Asthma) तथा कफविकार जनित साधारण श्वास रोग—चार और प्रकार श्वास-रोग के हैं।

तमक श्वास में वायु कुपित होकर उल्टे रूप में शिराओं में प्रविष्ट होती है और गर्दन तथा मस्तक को पकड़ कर कफ को उत्तेजित करती है। श्वास तीव्र गति से चलती है, कण्ठ में 'घुरघुर' शब्द होता है, श्वास के वेग से रोगी कभी २ मूर्च्छित हो जाता है, उकता कर सुस्त पड़ जाता है, कफ निकलते समय रोगी को घोर कष्ट का अनुभव होता है, कफ निकल जाने पर रोगी को घड़ी दो घड़ी आराम मालूम होता है, लेटने पर श्वास बहुत जोरों से उठता है, पर बैठने पर, विशेष कर उकरू बैठने पर आराम मालूम होता है, गर्म पदार्थों पर इच्छा दौड़ती है, आंखों पर सूजन आ जाती है, कपाल पर पसीना आ जाता है, मुंह सूख जाता है तथा मेघ, ठण्ड, बरसात और कफकारक पदार्थों के कारण रोग बढ़ता है।

श्वास द्वारा भीतर जाने वाली हवा बड़ी श्वास नलिका तथा श्वास नलियों में होकर फेफड़ों में पहुंचती है। पर कभी २ जब छोटी श्वास नलियों के छिद्र, उनमें श्लेष्मा भर जाने के कारण इस तरह बन्द हो जाते हैं कि उनके भीतर होकर वायु के आने जाने में कठिनाई और असुविधा होने लगती है तो श्वास नलियों की उसी असुविधाजनक अवस्था को तमक श्वास कहते हैं। संक्षेप में रोगी को श्वास लेने में कठिनाई का अनुभव होना तमक-श्वास का प्रधान लक्षण है। श्वास लेने में कठिनाई का अनुभव कास के रोगी को भी होता है, पर कास रोग तमक श्वास से भिन्न होता है। अर्थात् कास रोग और तमक श्वास दोनों अलग-अलग रोग हैं, तमक श्वास और कास रोग में यह अन्तर है कि तमक श्वास में श्वास का आक्रमण क्लोमकण्डिका (Bronchial Tube) की नाड़ियों के सिकुड़न से होता है, पर कास-रोग में श्वास-क्रिया में जो कठिनता होती है वह क्लोम कण्डिकाओं में कफ रुकने से होती है जो उनकी आच्छादनी कला में प्रदाह उत्पन्न कर देता है और शोथ भी जिससे भीतर जाने वाली वायु के मार्ग में रुकावट पैदा हो जाती है। कास में श्वास भीतर ले जाने और बाहर निकालने—दोनों में कष्ट का अनुभव होता है, जबकि तमक श्वास में मुख्य कठिनता केवल बाहर को श्वास निकालने में होती है।

शारीरिक क्रिया की दृष्टि से तमक श्वास, श्वास कृच्छ्रता की तरह वह अवस्था होती है, जिसमें प्राणवायु अधिक मात्रा में ऊर्ध्वगामी होता है, जिसकी वजह से रोगी का वक्षःस्थल चमड़े की धौंकनी के समान गति करने लगता है।

तमक श्वास का विकास एक निश्चित क्रम से होता है। आमतौर पर हल्की सी सर्दी लगने पर यह आरम्भ होता है। पहले सर्दी, उसके बाद जुकाम, तत्पश्चात् श्वास नली में प्रदाह उत्पन्न होकर अलक्षित रूप से तमकश्वास का आक्रमण होता है, जिसका भान रोगी को तब होता है, जब उसको सांस लेने की क्रिया, विशेषकर प्रश्वास में कठिनाई होने लगती है और उसके बाद तमक श्वास के तेज और दुःखदायी दौरे होने लगते हैं। तमक श्वास की

विकरालता उसके दौरे के वक्त ही भली-भांति प्रकट होती है। उस वक्त रोगी हांपने और रोग के साथ संघर्ष करता प्रतीत होता है। रोगी को अपनी छाती में एक प्रकार की घड़घड़ाहट या कृच्छ्रश्वसन का शब्द सुनाई देने लगता है। उस वक्त छाती पर भार और दबाव की प्रतीति होती हैं। रोगी सोता हो तो उठकर बैठ जाता है। रोगी का मुखमण्डल पीला या नील वर्ण का हो जाता है। कानों पर भी नीलिमा छा जाती है तथा गर्दन और कनपटियों की शिरायें रस्सी के समान ऊपर को उभर आती हैं। मुंह और देह पर ठण्डा पसीना झलकने लगता है और रोगी भय और चिन्ता से त्रस्त हो उठता है। तेज दौरे में श्वास लेने में परिश्रम करने से रोगी के समूचे देह में पसीना चुलचुला आता है और वह लाल या नीला भी पड जाता है, साथ ही हाथ पैर ठण्डे हो जाते हैं। दौरे की यह दशा कुछ छणों से लेकर आधा घण्टा या उससे भी अधिक देर तक रहती है। तत्पश्चात् क्लोम कण्डिकाओं की सिकुड़न धीरे धीरे घटने लगती है जिससे खांसना और कफ निकलना आरम्भ हो जाता है जिनकी शान्ति के बाद दारुण कष्ट से थका हुआ रोगी प्रायः सो जाता है।

तमक श्वास का दौरा किसी रोगी को जाड़ों में, किसी को बरसात में तो किसी को गर्मी में होता है। उसका दौरा रात्रि में सूर्योदय के कुछ पहले विशेष रूप से होता है। किन्तु रोग जब पुराना पड़ जाता है तब रोगी की ऐसी दशा हो जाती है कि अचानक उत्तेजना, अधिक भोजन, कब्ज, खांसी तथा हिचकी के साथ ही उसका दौरा भी शुरु हो जाता है।

बहुत सी दशाओं में रोगी की छाती के भीतर घड़-घड़ाहट का शब्द हरवक्त होता है। उस वक्त यदि छाती पर स्टेथेस्कोप-यन्त्र रखकर सुना जाय तो छाती संगीत-पेटिका जैसी प्रतीत होती है। श्वास से सम्बन्धित मांस-पेशियों पर जोर पड़ने के कारण रोगी की छाती कभी-कभी दौरे के बाद भी काफी देर तक दुखती रहती है।

तमक श्वास का दूसरा प्रधान लक्षण यह है कि उसका दौरा अकस्मात होता है। दौरा आने से पहले रोगी को थोड़ी शिरोवेदना अथवा कुछ पेट का भारीपन महसूस हो सकता है, पर इसके सिवा अन्य कोई पूर्व बोधक चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होता।

तमक श्वास का तीसरा विशेष लक्षण यह है कि उसमें श्वास लेने की कठिनाई से श्रान्ति अवश्यम्भावी नहीं होती।

तमक श्वास के अन्य सामान्य लक्षणों में हृदय का दुखना, शूल होना, अफरा होना, मल-मूत्र न उतरना, मुख में रसों का स्वाद न आना, कनपटी का दुखना तथा नाड़ी की गति बहुत धीमी और कभी-कभी वेग से भी चलना आदि मुख्य हैं।

तमक श्वास के कारण—

तमक श्वास की अवस्था में श्वास नली कमजोर और दोषयुक्त हो जाती है, और वह कमजोर तथा दोषयुक्त होती है शरीर के रक्त के दूषित होने से। क्योंकि अन्यान्य अवयवों की भांति ही श्वास नली की भी रक्त से ही पोषण और पुष्टि होती है। जब दूषित रक्त का विष सूक्ष्म श्वास नलिकाओं को क्षत-विक्षत कर देता है तो उसमें सिकुड़न पैदा हो जाती है, जिसकी वजह से आसानी से स्वाभाविक सांस लेना मुश्किल हो जाता है जो तमक श्वास की शुरूआत होती है। शरीर का रक्त कई कारणों से दूषित होता है, जिनमें कोष्ठबद्धता मुख्य है। कोष्ठ-बद्धता तमक श्वास के रोगी की तकलीफें बहुत बढ़ा देती है। शरीर के रक्त के दूषित होने से निम्नलिखित अवयव भी दुर्बल हो जाते हैं जिसका असर भी श्वास नलिकाओं पर पड़ता है फलतः तमक श्वास की विकरालता में और वृद्धि हो जाती है। इसीलिए तमक श्वास के कारणों में कोष्ठबद्धता के अलावा नीचे लिखे सात कारण मुख्य समझे जाते हैं।

१—फेफड़ों की दुर्बलता और अस्वस्थता
२—हृदय की दुर्बलता
३—यकृत की अस्वस्थता,
४—आंतों की निष्क्रियता,
५—स्नायु मण्डल की अकर्मण्यता,
६—नाकड़ा-रोग तथा
७—अधिक औषधि सेवन।

तमक श्वास में छाती के भीतर फेफड़ों की कोठरियाँ

में कफ भर जाता है । उस वक्त कोष्ठबद्धता के कारण जब दूषित हुई वायु छाती में दबाव डालती है तो कफ की अधिकता से तमक श्वास का दौरा होता है ।

तमक श्वास के रोगियों का यह भी अनुभव है कि बिल्ली के पास आने से, धूल भरी हवा में सांस लेने से,सड़े पुआल या घास की गन्ध से, मेघ छाने से, आवश्यकता से अधिक भोजन करने से तथा घोड़ा, कुत्ता अथवा पक्षी के परों की गन्ध नाक में जाने आदि से भी अक्सर तमकश्वास का दौरा हो जाया करता है ।

बच्चों में कभी-कभी मानसिक समस्यायें तमक श्वास के दौरे का कारण हो जाया करती हैं । पिता-माता या या शिक्षक का कठोर अनुशासन, पाठशाला की अन्य अप्रिय समस्यायें और अरुचिकर वातावरण तथा बच्चों में आपसी ईर्ष्या, द्वेष आदि तरह-तरह का मानसिक तनाव बच्चों में तमक श्वास के लिये क्षेत्र प्रस्तुत कर दे सकते हैं ।

तमक श्वास के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है कि तमक श्वास के प्रत्येक रोगी के शरीर की दशा सैकड़ों बार रोग के दौरों के पूर्व से ही खराब होती है । स्वस्थ मनुष्य को तमक श्वास कभी नहीं हो सकता । तमक श्वास केवल उन्हीं व्यक्तियों को होता है जो पहले से अस्वस्थ होते हैं । कोई व्यक्ति यदि प्रत्यक्ष रूप से अस्वस्थ न भी प्रतीत होता हो तो वह स्थूलकाय, अतिभोजी अथवा उचित व्यायाम न करने वाला तो अवश्य ही होता है । तात्पर्य यह कि तमक श्वास व्यक्ति की पूर्व अस्वस्थता का उग्र रूप होने के सिवा और कुछ नहीं है, अथवा तमक श्वास पूर्व मिथ्या आहार-विहार के कारण रक्त की विषाक्त दशा मात्र है । एक प्राकृतिक चिकित्सक तमक श्वास के रोगी के उसी रक्त की विषाक्त दशा को प्राकृतिक चिकित्सा के सीधे-सादे और साधारण उपचारों द्वारा दूर कर देता है और तमक-श्वास का रोग सदा के लिए चला जाता है, जबकि अन्य चिकित्सा पद्धतियों द्वारा वह दब-दबकर उभड़ता रहता है और अन्ततः असाध्य होकर दम के साथ ही जाता है ।

तमक श्वास के रोगी के रक्त में इयोसिनोफीलिया (Eosinophilia) ४ प्रतिशत से अधिक हो जाता है, इसका कारण रक्त की विषाक्तता ही होता है ।

आमाशय में कफ के बढ़ने पर उसके अधोभाग में स्थित लवणाम्ल मिश्रित पित्त की कमी हो जाती है साथ-साथ लवणाम्ल की भी । इसलिए आमाशय में लवणाम्ल (हाइड्रोक्लोरिक) एसिड की कमी को भी तमक श्वास का एक कारण माना जाता है ।

तमक श्वास के रोगियों की पाचन शक्ति निश्चित रूप से मन्द होती है, उनकी आमाशयिक अन्त:कला में शोथ हो जाता है और आमाशयिक लवणाम्ल के स्राव में कमी हो जाती है । अतः पाचक रसों की इस प्रकार अल्पता हो जाने के कारण पाचन क्रिया ठीक प्रकार से नहीं हो पाती, फलस्वरूप अम्लरस की उत्पत्ति हो जाती है जो तमक श्वास के दौरों को उत्पन्न करने में सहायक होती है ।

तमक श्वास से बचाव

गलत ढङ्ग से जीवन-यापन करने तथा दूषित वातावरण में रहने से तमक श्वास के होने की बड़ी सम्भावना रहती है । यदि कोई चाहता है कि उसे तमक श्वास से कभी दो-चार न होना पड़े तो उसे सही ढङ्ग से गहरी सांस लेना सीखना चाहिए । ताजी हवा में सांस लेना चाहिए, केवल नाक द्वारा सांस लेना चाहिए । बैठे, खड़े रहते समय तथा चलते समय अपनी रीढ़ को सीधी रखनी चाहिये, नित्य प्राणायाम करना चाहिए, तम्बाकू का सेवन कभी भूल से भी नहीं करना चाहिए, नित्य कोई व्यायाम या प्रातः भ्रमण करना चाहिये तथा भोजन हल्का, प्राकृतिक और संतुलित करना चाहिए, साथ ही कोष्ठबद्धता कभी न होने देना चाहिए ।

तमक श्वास के आरम्भ में चिकित्सा

तमक श्वास के लक्षण ज्यों ही शुरू हों, नमक, सफेद चीनी, मसाले, तली भुनी चीजें, चाय तथा नशे की चीजें बिल्कुल त्याग देनी चाहिए और ऊपर लिखे जिन-जिन कारणों से तमक श्वास के होने की सम्भावना होती है उन्हें दूर कर देना चाहिए और उसी वक्त से बिल्कुल सादा, सुपाच्य तथा सप्राण भोजन करने लग जाना चाहिए । अर्थात् अपने भोजन में ताजे फल, ताजी और हरी साग-सब्जियां, गेहूं का दलिया या चोकर दार आटे की रोटी तथा दूध व शहद आदि रखना चाहिए ।

गेहूँ का दलिया वनाने के लिए पूरे व पुष्ट गेहूँ को इस प्रकार दलें कि एक गेहूँ में लगभग ४ से ८ टुकड़े हो जायं। फिर उसे तवे पर धीमी आंच में वादामी रंग आने तक भूनें। फिर चावल की तरह पकालें। दलिया को मीठा करना हो तो पकते समय उसमें कुछ मुनक्के डाल दें।

रोज प्रातःकाल अपनी रीढ़ की हड्डी को सीधी रख कर खुली और स्वच्छ वायु में ७-८ वार गहरी सांस लेना और निकालना चाहिए। इस क्रिया के लिए किसी साफ जगह पर पाल्थी मारकर वैठना चाहिए। उसके वाद धीरे धीरे सांस खींचते हुए दोनों कंधों को आगे ले जाना चाहिए फिर सांस छोड़ते हुए दूनी देर में पहले स्थान पर हो जाना चाहिए। फिर सांस खींचते हुए दोनों कंधों को पीछे ले जाना चाहिए और उसके वाद सांस छोड़ते हुए दूनी देर में पहले स्थान पर आ जाना चाहिए। फिर सांस खींचते हुए कंधों को ऊपर उठायें और तत्पश्चात् सांस छोड़ते हुए धीरे-धीरे नीचे ले जाना चाहिए। यह एक क्रिया हुई। इस क्रिया को ७-८ वार करना चाहिए।

कुछ देर प्रातःकाल टहलना चाहिए। टहलने का भी एक ढङ्ग है। टहलने के लिए वस्ती से दूर कोई ऐसा साफ-सुथरा पथ चुनना चाहिए जो प्रकृति के साम्राज्य से होकर गुजरा हो। अर्थात् जिसके दोनों ओर पेड़-पौवे अथवा हरे-भरे खेत लहलहाते हों, चिड़िया चहचहाती हों। टहलते समय गहरी सांस लेने का अभ्यास करना जरूरी है। एक सांस में ७ कदम चलना चाहिए, उसके वाद ४ कदम तक सांस को रोक रखना चाहिए फिर ७ कदम तक सांस वाहर निकालना चाहिए। यह टहलते समय गहरी सांस लेने की विधि है। मगर आरम्भ में सांस की इस कसरत के सम्वन्ध में वड़ी सावधानी वरतनी चाहिए। गहरी सांस लेने का यह अभ्यास थका देने वाला कभी नहीं होना चाहिए। जाड़ों में जब ठण्ड बर्दाश्त के वाहर हो तो आवश्यक कपड़े पहनकर टहलना चाहिए। पर अन्य दिनों में नंगे पैर, नंगे सिर, कुर्ता व निकर पहनकर ही टहलना अधिक लाभदायक होता है।

टहलते समय इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि मेरुदण्ड सीधा रहे, छाती आगे को निकली रहे और टहलना एक दम धीरे-धीरे न होकर जरा तेजी से हो।

पेट को सदैव साफ रखना चाहिए और कब्ज कभी न होने देना चाहिए। चिन्ता, क्रोध आदि मानसिक विकारों को पास न फटकने देना चाहिए। नाश्ता करने की आदत अगर हो तो उसे त्याग देना चाहिए और उसकी जगह एक गिलास गरम जल में एक कागजी नीवू का रस निचोड़ कर पीना चाहिए। इस मिश्रण में इच्छानुसार एक से तीन छोटे चम्मच के वरावर शुद्ध शहद भी मिलाया जा सकता है। शाम को भोजन हल्का होना चाहिये और

टहलते समय की स्वाभाविक आकृति

सूर्यास्त के पूर्व ही खतम कर देना चाहिए। भोजन करते समय पानी नहीं पीना चाहिए वल्कि उसके दो घण्टे वाद थोड़ा-थोड़ा करके यथेष्ट पानी पीना चाहिए। प्रत्येक ग्रास को खूव चवाकर और उसके स्वादहीन हो जाने पर ही

निगलना चाहिए। दिन में कई बार कागजी नीबू का रस मिला जल पीना चाहिए। धुंए और गन्दी हवा से बचना चाहिए तथा प्रातःकाल रोज नियमपूर्वक कुछ देर तक हल्की धूप सेवन करना चाहिए। सिर को साये में रखकर या सिर पर पर भीगा और निचोड़ा गमछा रखकर और उसी वक्त छाती और मेरुदण्ड पर कड़ुए तेल की मालिश भी कुछ मिनटों तक करवानी चाहिए।

मालिश करना सबको नहीं आता। मालिश करने का भी वैज्ञानिक ढङ्ग होता है। मालिश करते समय यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि मालिश इस ढङ्ग से की जाय जिससे रक्त का प्रवाह हृदय की ओर ही होता रहे। उस समय हृदय से नीचे की ओर रक्त की गति को रोकना परम आवश्यक है। दूसरी बात इस सम्बन्ध में ध्यान देने की यह है कि मालिश के उपरान्त स्नान कर लेना या गीले कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछ लेना जरूरी है। सही मालिश केवल अगों को साधारण रूप से मलना ही नहीं है, अपितु मलते समय मलने की क्रिया में विविध ढंगों से गतियां उत्पन्न करनी होती हैं। देखिये नीचे के तीन चित्र—

दावना

कम्पन देना
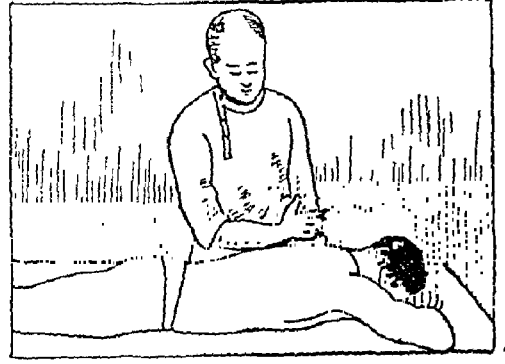
थपथपाना

साधारण उपचार के लिए प्रति रविवार को उपवास करना चाहिए। उपवास-काल में केवल पानी में कागजी नीबू का रस निचोड़ कर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दो-तीन सेर या इससे भी अधिक पीना चाहिये। इसके सिवा और कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिए। रोज सवेरे-शाम शौच से लौटने के बाद या केवल सवेरे गुनगुने पानी का एनिमा अवश्य लेना चाहिए। यदि तीन दिन का उपवास किया जाय तो चौथे दिन केवल फल का रस या तरकारी का सूप लेना चाहिये। अधिक दिनों का उपवास किसी प्राकृतिक चिकित्सक की देख रेख में करना चाहिए।

एनिमा इस तरह लेना चाहिये—

एनिमा किसी तख्त या कड़ी खाट पर, उसके पैताने को सिरहाने से ४ इञ्च ऊंचा रखकर और पैरों को उकड़ू खींचे हुए चित्त लेटकर लेना चाहिए। एनिमा के बर्तन को लेटने की जगह से ४ फीट की ऊंचाई में दीवार में एक कील गाड़कर टांगना चाहिए और उसमें बड़ों के लिए लगभग ढाई सेर गुनगुना पानी भरना चाहिये। नोजल को खोलकर थोड़ा पानी निकाल देना चाहिये। फिर गुदा में डालने वाली नली को किसी चिकनाई से चुपड़ लेना चाहिये। तब उसे गुदा मार्ग में धीरे से एक इञ्च तक प्रवेश करके भीतर पानी जाने देना चाहिए। भीतर पानी जाते समय पेड़ू को धीरे धीरे बायें से दायें को मलना चाहिये और जब सब पानी अन्दर जा चुके तो नली को निकालकर और थोड़ी देर रुककर उसी प्रकार पेड़ू को १५-२० मिनट तक दायें से बांये मलना चाहिए। फिर शौच जाना चाहिये।
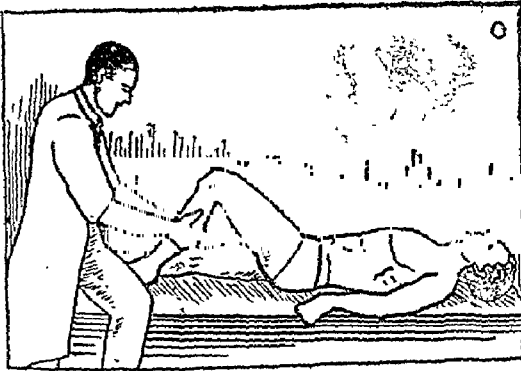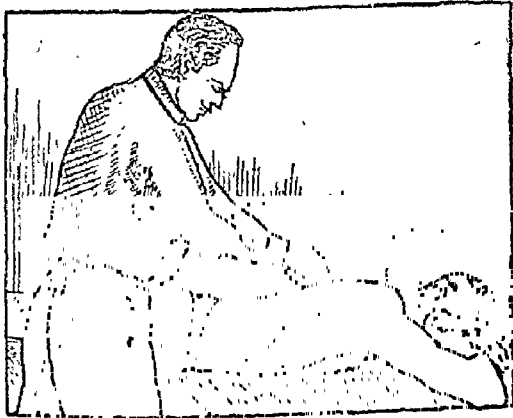
एनिमा लेना

श्वास-संस्थान में बलगम न जमने पावे इसके लिए प्रतिदिन तीसरे पहर एक घंटे के लिए छाती की गीली लपेट लगानी चाहिये।

छाती की गीली लपेट के लिए एक १२ फुट लम्बा और ६ इंच चौड़ा सूती कपड़ा लेकर ठंडे पानी में भिगोकर निचोड़ लेना चाहिये और उसे छाती पर इस प्रकार लपेटना चाहिए कि छाती, दोनों कंधों का ऊपरी भाग और छाती के पीछे का पीठ का हिस्सा ढक जाय और फिर
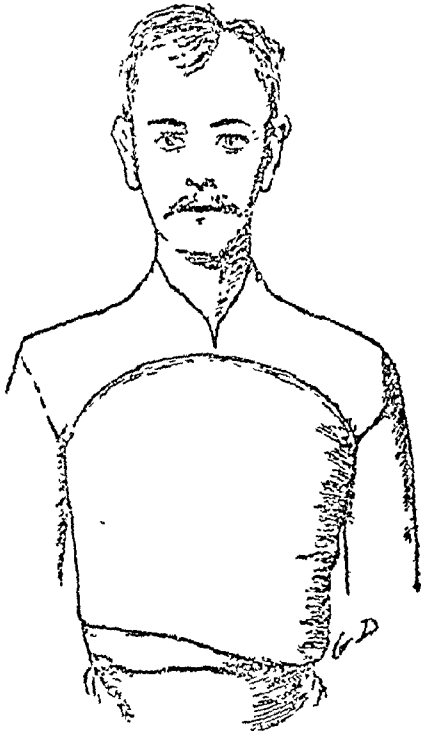
छाती की गीली लपेट

उसके ऊपर उसी नाप की एक सूखी ऊनी पट्टी इस तरह बांधनी चाहिए कि भीगी सूती पट्टी पूरी तरह से ढक जाय। देखिए चित्र—

बस इतना ही उपचार करने से आता हुआ तमक श्वास उल्टे पांव वापस चला जावेगा और व्यक्ति उसकी चपेट में आने से बच जायगा।

जीर्ण तमक-श्वास की चिकित्सा—

जीर्ण तमक-श्वास में हमारे रक्त में विद्यमान विकार प्रमुखतः फेफड़ों और श्वास-नलिका में इकट्ठे हुए रहते हैं। अतः साधारणतः यही ख्याल आता है कि इन अवयवों की चिकित्सा अविलम्ब आरम्भ कर देनी चाहिए। किन्तु यह गलत है। इसका कारण बहुत स्पष्ट है। अर्थात् तमक श्वास में फेफड़ों और श्वास नलिका को विकार के निष्कासन के लिये यों ही आवश्यकता से अधिक कार्य संभालना पड़ता है। अतः इन अङ्गों की स्थानीय चिकित्सा से इनकी क्रियाशीलता और बढ़ जाती है, जिससे उनके तन्तुओं के विनाश का खतरा उत्पन्न हो जाता है। इसलिए समझदार चिकित्सक फेफड़ों या श्वास नलिका की स्थानीय चिकित्सा को महत्व न देकर उपवास, रसाहार और फलाहार द्वारा पूरे शरीर का शोधन करते हुए रोगी को पूर्ण विश्राम देने को ही अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं और फेफड़ों अथवा श्वास-नलिका के साथ कोई सीधी छेड़छाड़ नहीं करते और जब रोग की तीव्रता कम होनें लगती है तथा जब रोगी का शरीर विकारों को निकालने में अधिक सक्षम होजाता है, दूसरे शब्दों में जब शरीर की जीवनी शक्ति बढ़ जाती है तभी स्थानीय उपचारों का प्रयोग करते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि तमक श्वास केवल फेफड़ों और श्वास-नलिका का ही रोग नहीं है, अपितु शरीर का प्रत्येक कोषाणु उससे सम्बन्धित होता है। इसलिए रोग को समूल नष्ट करने लिये सर्व प्रथम शरीर के कोष-कोष को विशुद्ध एवं विकाररहित करना जरूरी है और शरीर के कोष-कोष को विशुद्ध और विकाररहित करने के लिये उपवास से बढ़कर अन्य कोई प्रभावशाली उपाय नहीं है। अतः तमक-श्वास के उपचार के आरम्भ में रोगी को कम से कम एक सप्ताह से लेकर, रोग की प्रबलता-अप्रबलता

अनुसार, २१ दिनों या इससे भी अधिक दिनों का उपवास अवश्य करना चाहिए। इससे कम का उपवास इस रोग में प्राय: निरर्थक है। उपवास के दिनों में आंतों को पूर्णत: स्वच्छ व साफ रखने के लिए प्रतिदिन एनिमा लेते रहना चाहिए। एनिमा लगातार तीन महीनों तक लेना पड़ सकता है। रोज प्रात:काल शौच के बाद पेड़ू पर आध घन्टे तक गीली मिट्टी की पट्टी सूखे ऊनी कपड़े से ढककर रखने के बाद एनिमा लेना चाहिये।

गीली मिट्टी की पट्टी बनाने के लिए साफ मिट्टी को कूट पीसकर चलनी से छान लेना चाहिये। फिर उसमें ठंडा पानी मिला मिलाकर किसी काठ के डंडे की सहायता से गूंधे आटे की तरह बना लेना चाहिए। उसके बाद एक १०-१२ इंच लम्बा और ६-७ इंच चौड़ा मोटा कपड़ा लेकर उस पर सेर-डेढ़ सेर उस गीली मिट्टी को आध इंच की मोटाई में फैलाना चाहिए। तत्पश्चात उसे उठाकर मिट्टी की तरफ से पूरे पेड़ू पर रख कर उस पर सूखा ऊनी कपड़ा लपेट देना चाहिये। इस तरह मिट्टी त्वचा को छूती रहेगी और थोड़ी ही देर में गरम होजायगी। समय होजाने पर उसे हटाकर पेड़ू को गीले कपड़े से पोंछ कर साफ कर देना चाहिये और उस स्थान को हथेली से रगड़-रगड़कर गरम कर देना चाहिए। जब गीली मिट्टी की इस पट्टी को पेड़ू पर रखने के बाद ऊपर से इसे सूखे ऊनी कपड़े से नहीं ढकते तो उसे गीली मिट्टी की ठंडी पट्टी कहते हैं।

जितने दिनों का उपवास किया जाय उसके आधे या तिहाई दिनों तक फलों के रस या तरकारी के सूप पर रहना चाहिये। उन दिनों दिन में तीन-चार बार एक-एक पाव या इससे भी कम मात्रा में किसी रसदार फल जैसे संतरा, मुसम्मी आदि का या हरी तरकारियों जैसे टमाटर गाजर आदि का कच्चा रस लेना चाहिए। अन्य साग-सब्जियों का रस उन्हें उबालकर और उनका रस निचोड़कर 'सूप' के रूप में लेना चाहिए।

रसाहार के बाद कम से कम दो सप्ताह तक सुबह और दोपहर फल तथा शाम को बिना नमक मसाले की उबली सब्जी तथा सलाद लेना चाहिये। एक बार में एक ही प्रकार का फल लेना चाहिये। फल मौसिम के हों और विशेषत: रस वाले हों या मीठे गूदे वाले हों। एक दिन में सेर-डेढ़ सेर से अधिक फल न लेने चाहिये।

रसाहार और फलाहार के दिनों में सेर-डेढ़ सेर पानी भी रोज अवश्य पीना चाहिए। पानी में एकाध कागजी नींबू का रस भी मिला लिया जाया करे तो अधिक लाभ-कारी है।

सलाद बनाने के काम में भी कभी कभी कच्ची खाई जा सकने लायक साग-तरकारियां, जैसे खीरा, ककड़ी, टमाटर. गाजर, मूली, प्याज, पालक, धनियां की पत्ती, पातगोभी, चुकन्दर आदि आसकती हैं। इनमें से थोड़ी थोड़ी कइयों को लेकर और छोटा छोटा काटकर एक में मिला लेनी चाहिए और कागजी नीबू का रस निचोड़ कर या दही मिलाकर खाना चाहिये। सलाद को भोजन के आरम्भ में ही खाना चाहिये। एक वयस्क के लिए एक समय में पाव भर सलाद लेना काफी है।

रसाहार और फलाहार के बाद धीरे-धीरे सादे भोजन पर आजाना चाहिये। चोकरदार आटे की रोटी, गेहूँ का दलिया, छिल्के वाली गाढ़ी दाल, नये चावल का कना समेत भात, गाय का धारोष्ण दूध, मठा, दही, शुद्ध मधु, सूखे मेवे, फल ताजी और हरी साग—सब्जियों का सलाद तथा नाम मात्र का मसाला एवं नमकयुक्त उबली साग-सब्जियां आदि सादे भोजन कहलाते हैं।

भोजन में ताजे फलों और कच्चे वा रंधे हुये शाकों का आधिक्य रहना चाहिए। कार्बोज तथा स्नेह द्रव्य श्रेणी के आहारों की मात्रा जिनमें श्वेतसार, शर्करा, घी, तेल, मलाई, मांस, मछली, अण्डे, पनीर आदि सम्मिलित हैं न्यूनातिन्यून सीमा तक घटाकर रखने चाहिये। पर यदि इन्हें बिल्कुल ही त्याग दिया जाय तो स्वास्थ्य लाभ की प्रगति अधिक वेग से हो सकेगी।

यदि किसी वजह से प्रथम बार उपवास में पूर्ण सफलता प्राप्त न हो तो पूर्ण स्वास्थ्य लाभ तक समुचित आहार व्यवस्था के साथ छोटे-छोटे उपवास बार-बार करते रहना चाहिये। ३से७ दिनों के उपवास छोटे उपवास कहलाते हैं। उपवास और रसाहार के पश्चात फलाहार के दो दिन बाद से जल-नेति करना आरम्भ कर देना चाहिये।

जलनेति के लिये साफ पानी में जरासा सेंधा नमक मिलाकर उसे शरीर की गर्मी के बराबर गरम कर

लीजिये. और प्रातः काल दातून कुल्ला करने के बाद एक टोंटी लगे गिलास में इस जल को लेकर जो स्वर चलता हो उसी नासिका-रन्ध्र से सुड़किये और दूसरे को अंगुली से बंद रखिये। सुड़कने की क्रिया करने के लिये पानी से भरे गिलास को खुले नथुने के पास लाकर धीरे-धीरे सांस को खींचना चाहिये ताकि पानी सांस के साथ ऊपर चढ़कर मुंह में आजाय। फिर सांस को बंद कर देना चाहिये। और पानी को मुंह द्वारा बाहर निकाल देना चाहिए, पी न जाना चाहिये। सांस खींचते समय यह ध्यान रहना चाहिये कि सांस पर जोर न लगने पाये वरना वह पानी सिर में चढ़कर टक्कर मारेगा और बुरा प्रतीत होगा। ५-७ घूंट पानी एक नथुने से चढ़ाकर फिर दूसरे से उसी विधि से चढ़ाना और निकालना चाहिये। प्रति सप्ताह एक छटांक जल बढ़ाते हुये १ सेर तक ले जाना चाहिये।

जल-नेति

जल नेति के बाद रोगी को जल-धौति भी करनी चाहिए। इसके लिए डेढ़ सेर से दो सेर तक साधारण गरम पानी लेना चाहिए। उसमें प्रतिसेर ६ माशा नमक मिलाना चाहिए और धीरे-धीरे सब पानी पी जाना चाहिए। तत्पश्चात कुछ कदम दौड़ना चाहिए, उछलना चाहिए, तेजी से चलना चाहिए, या पेट के पानी को किसी तरह हिलाना डुलाना चाहिए। उसके बाद दोनों पैरों को मिलाकर खड़ा हो जाना चाहिए और बायें हाथ को पेट पर रखते हुए नीचे की ओर आगे झुकना चाहिए। अब दायें हाथ की दो या तीन अंगलियों को गले के अन्दर डालकर काग को गुदगुदाना चाहिए। ऐसा करने से पेट का पानी बाहर आने लगेगा और धीरे-धीरे पेट का सारा पानी पेट को धोकर पेट के कफादि के साथ बाहर निकल जायगा।

आधुनिक जल-धौति के लिए एक प्रकार का रबर ट्यूब, शीशे या रबर की कीप के साथ आता है। रोगी गर्दन को आगे जरा टेढ़ा करके बैठता है फिर ट्यूब को अपने हलक के नीचे पेट में घोंटते हुए ले जाता है। उसके बाद ट्यूब के दूसरे सिरे पर लगी हुई कीप द्वारा हल्का नमक मिला हुआ थोड़ा गुनगुना पानी रोगी के पेट में पहुंचाया जाता है। तत्पश्चात बाहरी ट्यूब के सिरे को रोगी के पेट-स्तर से नीचे ले जाकर पेट के पानी को बाहर निकाल दिया जाता है। यह क्रिया उस समय तक की जाती है जब तक कि पेट का पानी निर्मल होकर न आने लगे। अन्त में ट्यूब को दो अंगुलियों से दबाते हुए उसे धीरे से पेट में से खींच लिया जाता है।

फलाहार के बाद सादा भोजन पर आने के २ दिन बाद से जल नेती और जल धौति के साथ-साथ सूत-नेती और वस्त्र धौति का भी अभ्यास आरम्भ कर देना चाहिए।

सूत-नेति करने के लिए १ हाथ लम्बा तीस परत धागा, जो सिलाई के काम में आता है, लेना चाहिए। उसका आधा हिस्सा बट डालना चाहिए। कड़ाई से बटने पर ही वह कड़ी बनेगी। यह हिस्सा कोई ९ इन्च लम्बा होगा। इस हिस्से में गरम करके कपड़े से छना हुआ गरम मोम लगा देना चाहिए। अभ्यास के लिए नेति के चिकने भाग को ऊपर की तरफ थोड़ा मोड़ देना चाहिए। फिर जो स्वर चलता हो नाक के उसी छेद में नेति को

सूत-नेती

लेजाना चाहिये। ध्यान रहे कि उस वक्त ठुड्डी गले से लगी रहे। धीरे-धीरे सूत का भाग हलक के पास आ

जायगा। कंठ में सूत के आ जाने पर तर्जिनी और मध्यमा अंगुलियों की सहायता से उसे बाहर निकाल लेना चाहिए। फिर उसे पानी से खूब धोकर इसी तरह नाक के दूसरे छेद में डालना चाहिए और मुंह से निकालना चाहिए। देखिए चित्र—

वस्त्र-धौति करने के लिए ४ अंगुल चौड़ी और २२ फीट लम्बी बहुत महीन मलमल जैसे कपड़े की बनी धौति लेनी चाहिए और उसे अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए। अभ्यास करने से पहले उसे सादे पानी में उबाल भी लेना चाहिए। अब धौति के अगले छोर की मोटी बत्ती बनाना चाहिए और उसे गले के नीचे डाल लेना चाहिए और निगलने की क्रिया करते हुए गले के नीचे उतारना चाहिये। यदि काम न बनता दीखे और घबराहट हो तो बत्ती बनाकर उसमें थोड़ा शहद लपेट देना चाहिये। ऐसा करने से मुंह में लार काफी मात्रा में पैदा हो जाता है जिसके सहारे धौति गले के नीचे चली जाती है। अगर शहद न मिल सके तो दूध का प्रयोग भी किया जा सकता है। अभ्यास में जब सफलता मिलने लगे तब इन बाहरी चीजों का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। धौति बड़ी सावधानी से निकालनी चाहिए। उसे जल्दी से बाहर निकालना चाहिए, धीरे-धीरे नहीं। पूरी क्रिया में २० मिनट से अधिक नहीं लगना चाहिये।

धौति अक्सर बीच में ही अटक जाती है। ऐसा होने पर थोड़ी धौति और निगल लेनी चाहिए और इसके बाद उसे बाहर निकालना चाहिए। इस क्रिया को समाप्त कर लेने के बाद धौति को साफ कर धूप में सुखा लेना चाहिए और निगलने से पहले उबाल कर पुनः काम में लाना चाहिए। ऐसा न करने से बाहरी गन्दगी के कारण लाभ के बदले हानि की सम्भावना रहती है।

जब सूत-नेति और वस्त्र धौति के अभ्यास ठीक होने लगें तब रोगी जल नेति करना छोड़ सकता है। इन समस्त यौगिक क्रियाओं को प्रातःकाल दातौन करने के बाद खाली पेट करना चाहिए। जब तक रोग पूरे तौर से दूर न हो जाय तब तक ऊपर बताए गए क्रम को जारी रखना चाहिए। इन क्रियाओं को विधिवत् करने से केवल ३ महीने में तमक श्वास सदा के लिए चला जाता है। एहतियातन इन प्रयोगों को ६ मास तक चलाना चाहिए।

तमक श्वास के लिए उपर्युक्त यौगिक क्रिया प्रधान नुस्खा रामबाण है। इस नुस्खे से एक नहीं सैकड़ों तमक श्वास के रोगी रोग से मुक्त हो चुके हैं। पर जिन रोगियों से ये क्रियायें करनी न बन पड़ें उन्हें नीचे की प्रयोग विधियों को चलाकर आरोग्य लाभ करना चाहिये। मतलब यह कि चूंकि तमक श्वास का मुख्य कारण शरीर में एकत्र विजातीय द्रव्य होता है और उस विजातीय द्रव्य को शरीर से निकालकर उसे दोषमुक्त कर देना तमक-श्वास की सही चिकित्सा है, इसलिए जिस प्रकार अथवा जिस तरकीब से तमक श्वास के रोगी के शरीर से रोग का कारण वह विजातीय द्रव्य आसानी से निकाल दिया जा सके वही ढङ्ग अथवा वही तरकीब करना हमारा कर्तव्य है। इस काम के लिए प्रथम तरकीब तो उपर्युक्त यौगिक क्रिया प्रधान-चिकित्सा क्रम है तथा दूसरी आसान विधियां नीचे दी जाती हैं—

तमक श्वास रोग के उपचार के लिए दूसरा अच्छा उपाय यह है कि कब्ज दूर करने हेतु उपवास और एनिमा के साथ साथ रोगी के शरीर की त्वचा को, जिसे तीसरा फेफड़ा कहा जाता है, शीघ्रातिशीघ्र विजातीय द्रव्यों को निकालने के काम में जुटा दिया जाये, शरीर की जीवनी शक्ति को बलवती बना दिया जाय तथा शरीर में और विजातीय द्रव्य की आमद को रोक दिया जाय।

यह एक तथ्य है कि तमक श्वास के रोगियों के शरीर की त्वचा स्वस्थ नहीं होती है और पूरी तरह अपना स्वाभाविक कार्य नहीं करती। अतः बुद्धिमत्ता का काम यह होगा कि वाष्प-स्नान, पूरे शरीर की गीली लपेट, तथा कमर की गीली लपेट आदि एक या आवश्यकतानुसार अनेक प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोगों द्वारा समूची त्वचा को क्रियाशील बनाया जाय।

तमक श्वास के रोगी की आंतों को सक्रिय करने के लिए रोज रात को सोते वक्त कमर की गीली लपेट लगानी चाहिए। इस लपेट के लिए एक ७–८ फुट लम्बा और ६ इञ्च चौड़ा सूती कपड़ा लेकर और उसे ठण्डे पानी में भिगोकर निचोड़ लेना चाहिए। तत्पश्चात् उसे पेड़ू से लेकर नीचे कमर के भाग तक चारों ओर इस प्रकार

लपेटना चाहिए कि कपड़ा अच्छी तरह त्वचा को छूता रहे। उसके बाद उसके ऊपर से उतना ही लम्बा-चौड़ा एक सूखा ऊनी कपड़ा अच्छी तरह लपेट देना चाहिए और उसे सेफ्टीपिन या पतली रस्सी से इस तरह बांध देना चाहिए कि ढीला न होने पाए। यह लपेट शाम के भोजन के ढाई घण्टे बाद बांधनी चाहिए और कम से कम दो घण्टे तक या सारी रात बांधी जानी चाहिए।
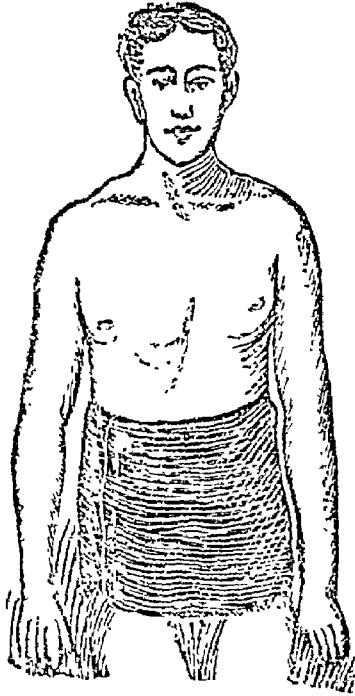
कमर की गीली लपेट

रोगी यदि दुर्बल न हो तो सप्ताह में १-२ बार उसे १० से १५ मिनट का वाष्प-स्नान भी देना चाहिए। बहुत बार तो पहले ही दफा के वाष्प स्नान से त्वचा सक्रिय हो उठती है और अच्छी तरह पसीना निकल जाता है जिससे रोगी का चौथाई रोग कम हो जाता है।

वाष्प-स्नान के लिए बेंत की बुनी बेन्च या मामूली मूंज की नंगी खाट पर नंगा होकर लेटना चाहिए और ऊपर से एक बड़ा कम्बल डाल लेना चाहिये जो समूचे शरीर को मय खाट के इस प्रकार ढक ले कि नीचे भाप का बर्तन रखने से भाप सीधे बदन पर लगे और इधर-उधर न निकल जाय। अब किसी उबलते हुए पानी के बर्तन को जिसमें से भाप निकलती हो और जिस पर ढक्कन लगा हो खाट के नीचे रखकर और ढक्कन खोलकर धीरे-धीरे समूचे शरीर पर भाप लेनी चाहिए। हो सके तो खाट के नीचे ऐसा ही तीन बर्तन रखले—एक पीठ के नीचे, एक कमर के नीचे और एक पावों के नीचे। भाप लेते समय सिर पर ठंडे जल से भीगा एक तौलिया अवश्य रख लेना चाहिए। भाप शरीर को उलट-पुलट कर लेना चाहिए ताकि शरीर की समूची त्वचा भाप के सम्पर्क में आ जाय। जब पसीना अच्छी तरह निकल आवे या जब भाप लेने का समय खतम हो जावे तो भाप के बर्तन को खाट के नीचे से हटाकर किसी भीगे तौलिये से कम्बल के अन्दर ही अन्दर पूरे शरीर को अच्छी तरह पोंछकर १० मिनट तक घर्षण कटि-स्नान ले लेना चाहिए।
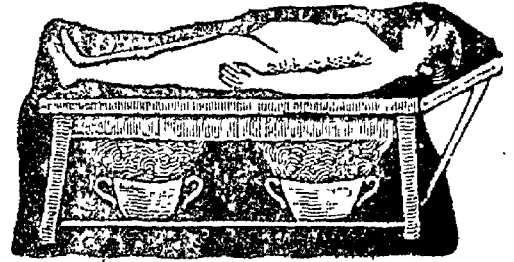
वाष्प-स्नान

कुर्सीनुमा नहाने के टब में ठण्डा पानी इतना भरना चाहिए कि उसमें नहाने के लिए बैठने पर पानी दोनों रानों और नाभि तक पहुँच जाय। शेष सारा बदन सूखा रहे। जाड़ों में टांगों और नाभि के ऊपर के हिस्से को चद्दर से ढका रखा जा सकता है। अब एक खुरदुरा खद्दर का छोटा तौलिया दाहिने हाथ में लेकर उससे पानी में डूबे पेड़ू को दायें से बायें और बायें से दायें धीरे-धीरे पर जल्दी-जल्दी मलना चाहिए। स्नान के बाद भीगे अङ्ग को सूखे कपड़े से पोंछकर कपड़े पहन लेने चाहिए और किसी
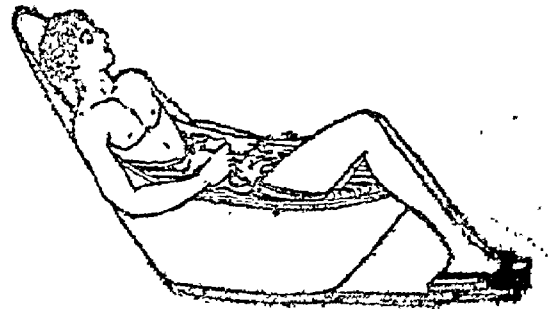
घर्षण कटि-स्नान

प्रकार बदन में पुनः गरमी लाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिए टहलना या कम्बल ओढ़कर थोड़ी देर लेटे रहना चाहिए।

रोज साधारण स्नान के प्रथम रोगी को चाहिए कि वह हल्की धूप में बैठकर सिर से आरम्भ करके पैर के तलुओं तक सारे शरीर को अपनी हथेलियों से रगड़-रगड़ कर लाल कर दें। तत्पश्चात् तुरन्त हल्के गरम जल से मल-मल कर स्नान कर डालें और भीगे बदन को पुनः उसी प्रकार रगड़कर सुखा दें।

रोज कागजी नीबू का रस मिला जल थोड़ा-थोड़ा करके प्रचुर मात्रा में पीना इस रोग में बड़ा लाभदायक होता है। इस मिश्रण में १–२ चम्मच शुद्ध मधु भी मिलाया जा सकता है। ऐसा करने से शरीर का विष मूत्र के साथ बहुत अधिक मात्रा में बाहर निकलता है जिससे रोगी को जल्दी आरोग्य की प्राप्ति होती है।

इस रोग में रोगी की श्वास नली को सबल और विकार रहित करने के लिए छाती की गीली लपेट बड़ी उपयोगी होती है। कुछ दिनों तक यह लपेट नित्य एक घंटे से तीन घंटे तक लगानी चाहिए। छाती की गीली लपेट लगाने से पहले हर बार छाती पर १५ से २० मिनट तक गरम ठण्डी सेंक देकर और अन्त में ठण्डी सेंक न देकर गरम रहते हुए छाती की गीली लपेट लगायें।

गरम ठंडी सेक के लिए पहले छाती को गरम पानी में भिगोये और निचोड़े तौलिए से ३ मिनट सेंकना चाहिये। फिर गरम पानी से भीगे तौलिए को हटाकर वहां पर तुरन्त ठंडे पानी से भीगा और निचोड़ा तौलिया एक-दो मिनट रखना चाहिए। तीन से पांच बार यह पूरी क्रिया करनी चाहिए। अन्तिम बार ठंठा तौलिया न रखकर छाती की गीली लपेट लगानी चाहिए।

गरम ठण्डी सेंक देना

तमक श्वास के निसर्गोपचार के दौरान में बीच-बीच में कितने ही अन्य उपद्रव होते रहते हैं जिनको रोग के उभाड़ कहते हैं। उनसे घबड़ाना नहीं चाहिए, अपितु आवश्यकतानुसार उन्हें सुबह-शाम तौलिया-स्नान देकर, गरम पानी का स्नान देकर सप्ताह में दो बार एप्सम साल्टबाथ कराकर, दिन में दो-एक बार घर्षण कटि-स्नान देकर, गहरी सांस की कसरत कराकर तथा सप्ताह में एक बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट आदि देकर शान्त कर देना चाहिए।

ठण्डे पानी में एक तौलिया को भिगोकर और निचोड़ कर उससे समूचे शरीर को जल्दी से रगड़-रगड़ कर पोंछ देने को तौलिया स्नान कहते हैं।

गरम पानी का स्नान देने के लिये एक बाल्टी गरम पानी में लगभग आधा किलो नमक और एक मुट्ठी खाने का सोड़ा घोलकर नहाना चाहिये। इस नहान का पानी इतना ही गरम हो जितना रोगी को सुखद जान पड़े। यह स्नान २० मिनट तक लिया जा सकता है और नहाने के बाद रोगी बिस्तर पर लेटकर पूर्ण विश्राम करता है।

एप्सम साल्टबाथ एक प्रकार का गरम नहान ही है। इसके लिये आदमी के पूरे कद के बराबर लम्बे नहाने के टब में गुनगुना पानी भरकर उसमें सेर भर के लगभग एप्सम साल्ट या साधारण नमक पीसकर मिला देना
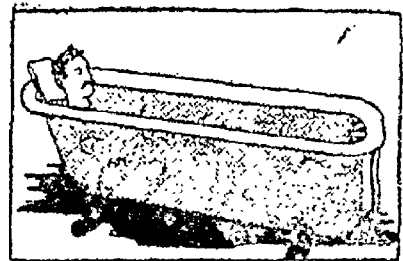
एप्सम साल्ट बाथ

चाहिये और रोगी को नंगा करके उसमें लिटा देना चाहिये सिर पानी के बाहर रहेगा और उस पर ठण्डे पानी से भीगा तौलिया रखा होगा । यदि टब का पानी ठंडा हो जाय तो उसमें ऊपर से और गरम पानी डालकर गरम कर देना चाहिये । २० मिनट बाद रोगी को टब में से निकालकर उसका बदन पोंछ देना चाहिये और कपड़ा पहना देना चाहिये ।

पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट के लिये तीन-चार कम्बलों को एक खाट पर बिछाकर उसके ऊपर ठंडे पानी में गीली की गई और खूब अच्छी तरह निचोड़ चादर तानकर फैला देनी चाहिये । उसके बाद रोगी को एक पतला भीगा गमछा पहनाकर नंगा सुला देना चाहिए। लेटने के बाद जहां तक उसकी पीठ रहे उसके ठीक नीचे उसकी बगल से लेकर पेडू की अन्तिम सीमा तक ढक जाने योग्य एक और भीगे कपड़े का टुकड़ा चादर पर बिछा देना चाहिये । चादर पर सोने से पहले रोगी के सिर, चेहरा और गर्दन को अच्छी तरह धो देना चाहिए । और एक गिलास गरम पानी पिला देना चाहिए । अब चादर पर फैलाये भीगे कपड़े के टुकड़े से रोगी की बगल से लेकर पेडू की अन्तिम सीमा तक अच्छी तरह लपेट दीजिये । उसके बाद रोगी के दोनों हाथों को बगल से सटाकर शरीर के पास पड़ी बड़ी चादर द्वारा फिर रोगी के गले तक सारे शरीर को इस प्रकार ढक देना चाहिये कि जिससे शरीर का प्रत्येक अंग ठंडी चादर के सम्पर्क में आजाय । उसके बाद एक कम्बल से रोगी को इस प्रकार ढक देना चाहिए कि कम्बल सभी ओर से चादर के ऊपर से शरीर ढक लें । इसके बाद दो या तीन और कम्बलों को रोगी के शरीर के चारों तरफ अच्छी तरह लपेट देना चाहिए । उसके बाद शीतल जल से भीगे एक गमछे को रोगी के सिर पर रखना चाहिए जिसको गरम हो जाने पर बीच बीच में ठंडा करते रहना चाहिए । इस लपेट का प्रयोग साधारणतः १ घंटे तक करना चाहिए । इस लपेट का मन्तव्य शरीर से पसीना निकालना होता है । यदि कम्बल के नीचे काफी गरम बोतलों का उपयोग किया जाय तो जाड़े के दिनों में भी रोगी के शरीर से यथेष्ट मात्रा में पसीना निकलने लगता है ।

लपेट की सम्प्राप्ति पर रोगी के शरीर पर से कम्बल आदि धीरे-धीरे हटाना चाहिये । तत्पश्चात् दुर्बल रोगी को गुनगुने पानी में और सबल रोगी को सुसम पानी में डुबोये और निचोड़े तौलिये से सारे शरीर को खूब अच्छी तरह रगड़-रगड़ कर पौंछ देना चाहिए । सबके अन्त में कम्बल लपेट कर और बिस्तर पर १ घण्टे लेटकर रोगी को अपने शरीर को गरम कर लेना चाहिए ।

तमक-श्वास के दौरे में चिकित्सा—

रोग का दौरा होने पर रोगी को चाहिये कि वह तकियों के सहारे बिस्तर पर या मेज पर हाथों को टिकाकर बैठे । पैर भूमि पर लटकते रहें । रोगी के कमरे में वायु का संचार यथेष्ट हो । किन्तु वह कमरा ठण्डा नहीं होना चाहिये । रोगी को वायु के सीधे झोकों से बचाना चाहिये और छाती एवं कंधों को गर्म वस्त्रों से ढंके रहना चाहिये ।

जब तक दौरा समाप्त न हो जाय तब तक सब प्रकार का आहार बन्द रखना चाहिये और केवल गरम जल में नीबू निचोड़ कर और उसमें १-२ चम्मच विशुद्ध मधु मिलाकर घूंटघूंट पीना चाहिए । यदि दौरा अति प्रबल हो तो रोगी के कमरे में भाप उठता हुवा तप्त जल का एक पात्र रखकर वहां की आर्द्र वायु को उष्णता-प्रदान करनी चाहिए, साथ ही रोगी की छाती की गीली लपेट लगानी चाहिए । बाहुओं पर तप्तजल की धार डालना अथवा गरम सक देना भी रोगी के कष्ट को घटाने में मदद करता है । मेरुदण्ड के ऊपरी भाग पर बारी-बारी से गरमठण्डी सेंक देना और उसके बाद उस स्थान को सूखा मर्दन करने से भी बहुत लाभ होता है । यह भी आवश्यक है कि उस समय पैरों को कुछ समय तक तप्त जल में रखा जाय और उसके बाद उनको शीतल जल में अंगोछ कर सुखा दिया जाय । दौरा होने पर भीतर के श्वास-वायु को बाहर निकालने में बड़ी कठिनता होती है । अतः इस कार्य में रोगी की सहायता करने के लिए किसी दूसरे मनुष्य को चाहिए कि वह रोगी की छाती के दोनों पार्श्वों को दबाता रहे ।

जब दौरा शान्त हो जाय तब आंतों को स्वच्छ करने के लिए एनिमा देना चाहिए । तत्पश्चात् रोगी को गरम

पानी से नहला देना चाहिए।

दौरा पड़ने पर छाती पर गरम सेंक कर देने के साथ साथ गर्दन पर बरफ की थैली रखना भी कभी-२ लाभप्रद सिद्ध होता है।

यदि बर्फ की थैली का इन्तजाम न हो सके तो खूब ठण्डे पानी से भीगी व निचोड़ी कपड़े या गीलीमिट्टी की ठण्डी पट्टी रखनी चाहिए। पर उस समय यह सावधानी बरतनी चाहिए कि छाती पर ठण्डा पानी न पड़ने पावे।

दौरे में हर १० मिनट बाद सोनहरी बोतल का सूर्य तप्त जल ढाई तोला पीना भी बड़ा लाभप्रद है। उस वक्त यदि सूखी खांसी चलती हो तो छाती पर लाल रंग की शीशी का सूर्यतप्त तेल मलना चाहिए।

जिस रंग की बोतल में सूर्य तप्त जल बनाना हो उसे खूब साफ करके उसमें साफ जल भरकर और काग लगाकर किसी लकड़ी की पट्टी पर ऐसी जगह पर रखनी चाहिए जहां १० बजे दिन से ५ बजे शाम तक धूप रहे। ५ बजे शाम को बोतल का जल उठाकर किसी लकड़ी की अलमारी में रख छोड़ें और काम में लावें। यह जल २४ घण्टे तक अपना असर करता है। बाद में दूसरा जल बना लें।

बोतल में जल की जगह तिल का तेल भरकर सूरज के सामने १० बजे दिन से ५ बजे शाम तक ४० दिन तक रोज लगातार रखने से काम लायक तेल तैयार होता है।

दौरे में कमजोर रोगी को गरम पानी के स्पंज से बड़ा लाभ होता है। स्पंज के लिए रोगी को लिटाकर उसे एक कम्बल या चादर उढ़ा देना चाहिए और गरम पानी में डुबोकर निचोड़े हुए तौलिए से उसके शरीर के अंग-अंग को बारी-बारी से पौंछना चाहिए। पहले एक पैर को ४ मिनट तक गरम पानी में भीगे और निचोड़े तौलिए से धीरे-धीरे रगड़-रगड़ कर पौंछें। फिर सूखे तौलिए से उसको सुखाकर १ मिनट हथेली से रगड़ें। फिर दूसरा पैर लें। फिर १-१ हाथ, फिर पीठ, तब छाती। सिर और मुंह को ठण्डे पानी से धोकर सूखे तौलिए से पौंछें। हाथों को ४-४ मिनट का समय दें और पीठ, पेट और छाती को ५-५ मिनट का। इस प्रकार समूचे शरीर को स्पंज करने में लगभग आधा घण्टा लगेगा। सात दिन लगातार इस प्रकार के स्पंज द्वारा तमक श्वास में अद्भुत लाभ होता है। इस प्रकार के स्पंज द्वारा समूचे शरीर की हल्की मालिश हो जाती है, शरीर का शिथिलीकरण होता है, रोम छिद्र खुल जाते हैं और त्वचा स्वस्थ और सक्रिय हो जाती है।

इस तरह १ से ३ दिनों के उपवास तथा उपर्युक्त उपचार चलाने से दौरे का संकट अवश्य टल जाता है और रोगी शान्ति लाभ करता है।

तमक-श्वास का जब-जब दौरा हो उस वक्त ऊपर के उपचारों का क्रम दोहरा कर उस पर काबू पाना चाहिए, और तज्जनित कष्टों को दूर करना चाहिए।

श्री गंगा प्रसाद गौड़ नाहर,
प्रधानाचार्य एवं प्रधान चिकित्सक
भारतीय प्राकृतिक विद्यापीठ
डायमन्ड हार्बर रोड, कलकत्ता-२७
पो० विष्णुपुर (२४ परगना) W. B,

हिक्का निदान चिकित्सा

रोग परिचय–आचार्य सुश्रुत के मत से विदाही, गुरु, विष्टम्भी, रूक्ष और अभिष्यन्दी खाद्य पदार्थों के सेवन से तथा शीतल पेयपदार्थ, स्थान, आसन का अधिक उपयोग करने से धुंआ, धूल, वायु और अग्नि के प्रयोग से व्यायाम. अधिक कार्य, भार वहन, यात्रा, मलमूत्र आदि के वेगों को धारण करना, अपतर्पण किया से, अथवा आघात, स्त्री सेवन, दोषों का पीड़ित करना, विषम भोजन, अध्यशन, एवं समशन से हिक्का नामक रोग उत्पन्न होता है। इसमें हिक् हिक् इस प्रकार का शब्द होता है अतः ध्वनि सादृश्य से इसका नाम हिक्का माना गया है। इस रोग में बार-बार आवाज के साथ उदान वायु जो कि कण्ठ प्रदेश में ही रहता है वह यकृत-प्लीहा एवं आंतों को मुख की ओर फेंकता सा मालूम पड़ता है। यह शब्द युक्त वायु शीघ्र ही प्राणों का अन्त कर सकता है। अतः इसको हिक्का कहते हैं। वायु कफ के साथ ही युक्त होकर अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गंभीरा और महती नाम से पांच प्रकार की हिक्का उत्पन्न कर देता है। इस रोग में मुख का स्वाद कषैला, बेचैनी, गले और वक्ष, स्थल में भारीपन तथा उदर में अफरा ये पूर्व रूप पाये जाते हैं।

अन्नजा हिक्का–शीघ्रता से भोजन करने, भारी पदार्थों के खाने से गाढ़ा खाद्य पदार्थ निगलने से तीक्ष्ण एवं चरपरे पदार्थों का अधिक सेवन करने से वायु प्रकुपित होकर ऊर्ध्वगति पकड़ लेता है। इसमें समान वायु और उदान वायु का सहयोग माना जाता है।

यमला हिक्का–जिस हिक्का में कुछ देर ठहर कर दो-दो वेग या वेगों का जोड़ा उत्पन्न होता रहता है, सिर और गर्दन दोनों ही कांपते या हिलते हैं उसको यमला हिक्का कहते हैं।

क्षुद्रा हिक्का–बहुत अधिक परिश्रम करने के अवसर पर हलके वेग से जो हिक्का उत्पन्न होती रहती है, उसे क्षुद्रा कहते है। इसका स्थान जन्त्रु मूलतक ही माना गया है।

गंभीरा हिक्का–यह हिक्का नाभि प्रदेश से उत्पन्न होती है। यह बहुत भयानक और घोर शब्द करने वाली होती है। उसमें कंठ, गला, जीभ और मुंह सूख जाता है। सांस उखड़ जाती है। और पार्श्वशूल भी होता है ज्वर, श्वास, तृष्णा आदि कई प्रकार के उपद्रव भी उत्पन्न होते हैं। यह गंभीरा हिक्का कष्ट साध्य मानी जाती है।

महती हिक्का–इस हिक्का में हृदय, वस्ति, सिर आदि मर्म प्रदेश पीड़ित होते हैं। इसके वेग के समय सारा शरीर खिंच जाता है। रोगी को प्यास बहुत लगती। इसमें सारा शरीर कांप जाता है।

हिक्का के असाध्य लक्षण–गंभीरा और महती नामक दोनों ही हिक्कायें प्रायः असाध्य होती हैं। इसके अतिरिक्त जिन हिक्काओं में रोगी हिचकी लेते समय सारे शरीर से खिचकर तन जाये, आंखें ऊपर को चढ़ जायें, आंखों के सामने गहरा अंधेरा छा जाये, रोगी क्षीण हो गया हो, अन्न से द्वेष करता हो और खांसी भी हो वे सभी असाध्य माने जाते हैं। परन्तु आज के युग में तो उपाय सभी के किये जाते हैं। अतः इनकी असाध्यता को ध्यान में रखकर काम करना चाहिये।

हिक्का-चिकित्सा सिद्धान्त–

(१) सर्व प्रथम हिक्का के रोगी को प्राणायाम कराना शतप्रतिशत आरोग्य कारक माना गया है। विशेषकर कुम्भक प्राणायाम हिक्का के वेग को मन्द करने और रोकने में अनिवार्य प्रभाव किया करता है। इसके अतिरिक्त, डराना, धमकाना, सताना, तंग करना, सूई चुभोना आदि तथा मन को व्याकुल करने वाले उपायों का प्रयोग करना चाहिए। इत्यादि प्रकार से सभी हिक्काओं में वायु की ऊर्ध्वगति रुक जाती है।

(२) मुलैठी का बारीक चूर्ण मधु के साथ मिलाकर अथवा पिप्पली का चूर्ण शर्करा के साथ मिलाकर अव्पीडन नामक नस्य देनी चाहिये।

(३) उष्णघृत, दुग्ध अथवा गन्ने का रस पीना लाभ कारक रहता है। ऐसे समय यदि रोगी क्षीण और बहुत दुर्बल न हो तो वमन कराना उचित रहता है।

(४) लाल चन्दन को नारी दुग्ध में घोट कर नस्य दिया जाये। अथवा सुहाते गरम घी में सैंधा नमक मिला

कर भी नस्य दिया जा सकता है। अथवा सेंधा नमक को पानी में पीसकर भी नस्य दिया जाना चाहिए।

(५) राल का धुंआं देना चाहिए। अथवा मनःशिला, गोश्रृङ्ग, गो चर्म, गौ केश आदि को घृत से चिकना करके उसका धुंआं भी दिया जा सकता है। कण्ठ और स्तनों के मध्य भाग में स्वेदन भी किया जा सकता है।

(६) सोना गेरू को शहद से चाटना चाहिए। अथवा ग्रामीण पशु जैसे बकरी, गौ आदि की अस्थि की भस्म को शहद के साथ चाटना चाहिए। सेह, मेंढ़ा, गौ आदि के रोम अन्तर्धूम विधि से भस्म करके उसको शहद से चाटना चाहिए। मोर पंख की भस्म को गूलर भस्म या लोध्र भस्म को शहद और घी के साथ चाटना चाहिए। सज्जीखार को बिजौरे नीबू के रस से चाटें। साथ में शहद भी मिलावें।

(७) घृत से स्निग्ध की हुई यवागू खावें। गरम कवल किये जायें। गरम गरम खीर भी तत्काल हिक्का को शांत कर देती है।

(८) सोंठ के क्वाथ से सिद्ध दुग्ध पीना चाहिये। शर्करा मिश्रित गरम दूध पेट भर कर पीना चाहिए। बकरी अथवा भेड़ का मूत्र नस्य के लिये प्रयुक्त करें।

(९) तेलिया कीड़ा को लशुन, बचा, हिंगु और कमल के चूर्ण में मिलाकर बकरी अथवा भेड़ के मूत्र में अनेक बार भावना देकर नस्य के लिए प्रयुक्त करें।

(१०) नागकेशर, शहद और शक्कर को ईख के रस से अथवा महुए के रस से पीवें।

(११) सेंधा नमक ८ तोला, घी १६ तोला के साथ पीने से तत्काल हिक्का शांत होती है। किन्तु शास्त्रीय मात्रा है। अतः २ तोला नमक और ४ तोला घी का प्रयोग हमने करके देखा है जो कि सही उतरता है। शेष सभी मात्रायें गलत होती हैं।

(१२) हरीतकी का चूर्ण गरम पानी से पीवें। जवाखार और शहद को गरम घी में मिलाकर पीवें। कपित्थ के स्वरस में २ तोला शहद और पीपल का चूर्ण मिलाकर पीवें। यहां पीपल ६ माशा और शहद १॥ तोला लेना सही उतरता है।

(१३) पीपल का चूर्ण, शक्कर को शहद से चाटना चाहिये। आंवला और सोंठ का चूर्ण शहद से चाटें। बेर की मज्जा, सौवीरांजन, खील शहद के साथ चाटना चाहिये।

(१४) सेंधा नमक मिलाकर कोई सा विरेचन लाभप्रद है। सुहागा चूर्ण मिश्री और घी से मिलाकर पीवें।

अनुभूत योग–

(१५) शंख भस्म, दोनों जीरे, काला नमक, भुनी हींग, काली मिर्च इन सबको सम भाग लेकर इनके बराबर जवाखार और सज्जीखार मिलाकर मिश्रित करें फिर सबके बराबर नौसादर मिलाकर सबके अठगुने नींबू के रस में घोटें। माशा प्रमाण गोली बनालें। १ गोली चूस कर दो घूंट पानी पीलें। तुरन्त हिक्का शांत होती है।

यूनानी

हिचकी–इसे फ़ुवाक नाम से भी वर्णित किया गया है यूनानी चिकित्सा के सिद्धान्तों के अनुसार हिचकी उस अवस्था में उत्पन्न होती है जिस अवस्था में फ़ुम मेदा में कोई विकृति आ जाए यदि किसी प्रकार का कोई दर्द-वेदना हो तो उस अवस्था में हिचकी आने लगती है! यूनानी पुस्तकों में जहां मेदा-जिगर की दूसरी बीमारियों को लिखा गया है-उनके साथ ही हिचकी का भी वर्णन किया गया है।

हिचकी का इलाज कारण को देखकर उसके मुताबिक ही किया जाता है। कुछ ऐसे तरीके भी लिखे गए हैं जिन से हिचकी दूर हो जाती है-जैसे एकदम कोई खौफ़नाक अथवा रञ्जीदा बात का कहना, रोगी को घूंट-घूंट कर ठंडा पानी पिलाना, छींक लाने की कोशिश करना या कुछ देर तक सांस को रुकवाना भी हिचकी को दूर करते हैं।

१. जिनको हिचकी इतनी तेज हो कि उल्टी तक हो जाती हो उनको सोंठ ३ माशा और कालीमिर्च ३ माशा पानी में उबालकर पिलाना चाहिए।

२. दुष्पाच्य खाना और अधिक खाने से यदि हिचकी उत्पन्न हुई हो तो पहले वमन कराके ऊपर से सौंफ १ तोला, गुलकन्द २ तोला, गुल १० तोला पानी में जोश देकर छानकर सिकन्जवीन २ तोला मिलाकर पिलावें। छोटी इलायची ३ माशा और पोदीना खुश्क ३ माशा की चटनी बनवाकर रोगी को चटावें। हलका भोजन दें।

३—अजीर्ण के कारण या वायु के कारण हिचकी हो तो जवारिश कमूनी ७ माशा पहले खिलावें । ऊपर से शीरा सौंफ ५ माशा, शीरा बीज कसूस ५ माशा, शीरा कालाजीरा ३ माशा, अर्क सौंफ १२ तोला में निकालकर शर्वत दीनार ४ तोला मिलाकर पिलावें । यदि रोगी को कब्ज भी हो तो जवारिश कमूनी के साथ जवारिश कमूनी मुसहिल ७ माशा दें । थोड़ी हलदी या माष के चन्द दाने चिलम में रखकर धूम्रपान करावें । वायु की अधिकता दिखाई दे तो उस अवस्था में नस्य का प्रयोग तथा मुंह पर ठंडे पानी के छींटे मारने से लाभ होता है ।

४. अगर मेदा में वलगम की अधिकता हो तो मस्तंगी १ माशा, अकरकराहा १ माशा, जवारिश जालीनूस ७ माशा में मिलाकर खिलावें । ऊपर से गावजवान २ माशा, गुल गावजवान ३ माशा, उन्नाव ५ दाना, मिश्री२ तोला, जल २० तोला में जोश देकर छानकर पिलावें ।

५. अगर रूक्षता की अधिकता के कारण हिचकी हो तो वादाम की गिरी ७ दाना, कालीमिर्च ५ दाना पानी मिलाकर चटनी की तरह पीसलें । फिर मिश्री १ तोला मिलाकर पिलावें या वादाम रोगन १ तोला, गोदुग्ध २० तोला और मिश्री २ तोला मिलाकर पिलावें ।

६. मुलहठी का छिलका उतार कर गिरी को वारीक पीसलें । उतनी ही मिश्री मिलालें । ७ माशा की मात्रा में अर्क सौंफ के अनुपान से दें ।

७. अपामार्ग के चावलों को धूम्रपान की तरह प्रयोग में लावें ।

८. मेदा की कमजोरी, सर्दी के कारण हिचकी हो तो माजून फौलादी ६ माशा, दवा उलमिस्क मोदि्दल दानों को मिलाकर चांदी के वर्क एक अदद में लपेट कर खिलावें । ऊपर से रिहा को तहलील करने के लिये यह नुस्खा वना कर पिलावें । शीरा वादयान ५ माशा, अर्क वादयान ६ तोला, अर्क उन्नाव उलसलव ६ तोला में निकाल कर खमीरा वनफशा ४ तोला मिलावें । जवारिश जालीनूस ७ माशा मिलावें । शीरा पोदीना ३ माशा और तुरन्जवीन ४तोला मिलावें इस तरह से वना नुस्खा रोगी को पिलावें ।

९. यदि सतह मेदा पर वलगम चिपका हुआ हो तो उस अवस्था में निम्नलिखित योग का प्रयोग कराया जाता है । जदवार ३ माशा को वारीक पीसकर खमीरा गावजवान १ तोला में मिलाकर चांदी का वर्क एक अदद में लपेटकर खिलावें । ऊपर गावजवान ५ माशा, गुल गावजवान ५ माशा, मुलहठी ५ माशा को पानी में जोश देकर मिश्री २ तोला मिलाकर पिलावें । वाद में शहद २ तोला को पानी में जोश देकर पिलाते हैं । गावजवान ५ माशा और शहद १ तोला खालिशाको अर्क गावजवान १२ तोला में जोश देकर पिलाते हैं ।

१०. यदि आहार के विकृत होने से हिचकी उत्पन्न हुई हो तो मस्तङ्गी १ माशा, अकरकरा १ माशा दोनों को पीसकर जवारिश कमूनी १ तोला मिलाकर खिलावें । ऊपर से शीरा वादयान ५ माशा, अर्क वादयान ६ तोला, अर्क उनवडलसलव ६ तोला में निकालकर खमीरा वनफशा ४ तोला मिलाकर पिलावें ।

इन योगों के अतिरिक्त कुछ प्रसिद्ध योग जो हिचकी में काम आते हैं नीचे दिए जा रहे हैं ।

हिचकी (हिक्का) रोग पर यूनानी के कुछ प्रयोग

दवायें अजीब—ऊद अपकव जलाकर मधु में मिलाकर रोगी को दिन में ३-४ वार चटावें ।

गुण—हिचकी में लाभप्रद है ।

शरवत अनुसून—अनीसून, जीरा, पोदीना, कुन्दर, समभाग लेकर यथा विधि क्वाथ कर शरवत तैयार करें, यदि हिचकी का कारण सर्दी हो तो सोंठ, अनीसून, करफस बीज का शरवत तैयार करें ।

मात्रा—२ तोले ।

गुण—अजीर्ण व दूषित भारी अन्न खाने से यदि हिचकी हो तो यह शरवत लाभप्रद है ।

कुरस मस्तङ्गी—ऊदखाम (अपकव), मस्तंगी प्रत्येक ७ माशा, पोस्त वोरुन पिस्ता(पिस्ता के वाहर का छिलका) १४ माशा, गुलाव पुष्प, आमला घनसत्व प्रत्येक १७॥ माशा, सवको कूट छानकर कुरस वनावें ।

मात्रा—७ माशा, शीतल जल से ।

गुण—वमन तथा हिक्का में लाभप्रद है ।

एलोपैथिक

हिचकी—हिक्का के विषय में एलोपैथिक में जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार यह कहा जा सकता है कि उदर की महा प्राचीरा पेशी के असामयिक संकोच के कारण हिक्का की उत्पत्ति होती है। साधारणतया महाप्राचीरा के संकोच के समय उपजिह्वा खुलती है। उस समय वायु फुफ्फुसों में प्रवेश कर जाती है। महाप्राचीरा के पुनः अपनी स्थिति में आ जाने पर वायु पुनः अपनी स्थिति में आ जाने पर वायु पुनः निकल जाती है। इस प्रकार श्वास प्रश्वास अवाध रूप से चलता रहता है। निम्न अवस्थाओं में महाप्राचीरा पेशी का असामयिक संकोच होता है।

(१) अन्न प्रणाली या आमाशय क्षोभ
(२) आमाशयिक विसफार
(३) आंत्रकला शोथ
(४) आध्मान
(५) आनाह
(६) अपतंत्रक
(७) मस्तिष्कावुर्द
(८) मस्तिष्का करण शोथ
(९) जीर्ण वृक्क शोथ
(१०) मूत्र विषमयता

इनमें किसी भी कारण से महाप्राचीरा पेशी का असामयिक संकोच होता है और उसे संकोच के कारण उपजिह्विका द्वार के वन्द रहने के कारण वायु मार्ग में ही हिक् शब्द के साथ हिक्का को उत्पन्न करता है।

कभी-कभी जल्दी-जल्दी या अति ठोस पदार्थों के खाने से, एक साथ अधिक अन्न खाने से अन्न प्रणाली में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। उस समय प्रतिक्रिया के कारण असमय में उपजिह्विका द्वार के वन्द रहने पर भी जब महाप्राचीरा के नियमित सामयिक संकोच के समय अन्तः श्वसन प्रारम्भ होता है, तव वायु के वीच में अवरुद्ध हो जाने से हिक्का उत्पन्न होती है।

इसकी चिकित्सा में कारण को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। पाचन संस्थान के विकार के लिये पाचक द्रव्य दें। Ammonia के सुघांने से भी महा प्राचीरा पेशी की विकृति मिट जाती है।

मस्तिष्क गत कारण हो तोPhenobarbitone १½ ग्रेन की मात्रा में प्रयोग लेवें। Neo-octinum का प्रयोग भी किया जाता है।

निम्न औषधियां इस रोग में उपयोगी वताई गई हैं—

(1) Atropine sulphate
(2) Papeverive
(8) Cheorpromazine
(4) Largetil
(5) Sparine (wyeth)
(6) Stemetil
(7) Avomine (8) Siquil

Morphine का प्रयोग सूचिवेध के रूप में करते हैं। 1/8 से 1/4 ग्रेन की मात्रा से सूचीवेध देते हैं। Chloral Hyderate का प्रयोग करते हैं। Amyl Nit. का प्रयोग किया जाता है।

रोगी को कार्वन डाइआक्साइड और आक्सीजन को मिलाकर सुघांना लाभ करता है।

होम्योपैथिक

(डा० माधव प्रसाद)

हिचकी सर्वत्र ज्ञात शब्द हिच्चकी प्रायः सभी उम्र के लोगों में पाई जाती है। घर में जब कभी किसी को हिचकी आती है या भोजन करते समय हिच्चकी होती है तो घर के वड़े लोग यह कहते हुए देखे गये हैं कि—जरा सा पानी पी लो, इस शब्द के पीछे उन लोगों का क्या अभिप्राय रहा हो, इसके वारे में तो कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु यह निश्चय है कि अगर हिच्चकी अन्ननलिका में रुकावट के कारण उत्पन्न हुई हो तो पानी पीने से अवश्य ही दूर हो जाती है।

साधारण जीवन में हम लोग न जाने क्यों हमें हिच्चकी को इतना महत्व नहीं देते और उसे सिर्फ पानी तक ही सीमित रखते हैं। वह हिच्चकी जो कि हमें मौत के द्वार तक लाकर खड़ा कर देती है तथा मरने के चन्द मिनट पहले तक नहीं छोड़ती ऐसी खतरनाक वीमारी को न जाने हमारे वुजर्गों ने पानी के साथ कैसे जोड़ दिया। सिर्फ इतना ही नहीं हिच्चकी और पानी का सम्बन्ध इतना

मजबूत और अमर कर दिया कि जान लेने वाली (मृत्यु के चन्द मिनट पूर्व होने वाली) हिच्ची में पानी देना लोग आज तक नहीं भूले।

आइये अब हम उन सभी बातों पर प्रकाश डालें जिनके कारण हिच्चकी उत्पन्न हो सकती है।

(क) किसी कार्य के कारण (Functional)—
१—हंसने के साथ या बाद During laughing.
२—खाना खाने के साथ या बाद
३—हिस्टेरिया या वायुगोला के कारण

(ख) विषतत्व के कारण (Toxic)—
१—मूत्रक्षार विकार Uremia.
२—रक्तक्षार भाव Acidosis.
३—उग्र प्रदाह Severe infection.
४—रक्त में ओक्सीजन का अभाव Anoxemia.
५—मदात्यय Alcohdism.

(ग) उदर की बीमारियां (Abdominal diseases)—
१—आन्त्रावरक झिल्ली प्रदाह Peritonitis.
२—आंत्र अवरोध Intestinal obstruction.
३—डायफ्रेगमेटिक पिल्यूरिसी Diaphragmetic pleurisy.
४—पेट की शल्य चिकित्सा के बाद After abdominal operation
५—वक्षोदर पेशी के नीचे घाव Subphrenic abscess.
६—पाकस्थली फैलाव या बड़ा करना Gastric diletetion.
७—पाकस्थली कर्कट Gastric carcinoma.
८—यकृत में घाव Liver abscess.

(घ) वक्ष या छाती की बीमारियां (Thorecic diseases)—
१—हृदय का बढ़ जाना Cardiac enlargement.
२—फेफड़ों के दरम्यानी अर्बुद Mediastinal Tumour.
३—फाईब्रस मेडीअसटीनाइटिस Fibrous mediastinitis.
४—हृदावरण प्रदाह Pericarditis.
५—बृहतधमनी अर्बुद Aostic Aneurysm.
५—अन्ननलिका में अर्बुद Oesophageal tumour.

(ङ) मस्तिष्क सम्बन्धी (Cerebral)—
१—मस्तिष्क की झिल्लियों का क्षय Tuberculus meningitis.
२—मस्तिष्क प्रदाह Encephelitis.
३—मस्तिष्क अर्बुद Brain tumour.
४—मस्तिष्क की झिल्लियों में पानी भर जाना Hydrocephelus.
५—डिसेमिनेटेड-स्क्लेरोसिस Disseminated scerosis.
६—मृगी Epilepsy.
७—मांसपेशियों का अनैच्छिक खिंचाव Chorea.
८—गतिहीनता Locomotor Atexia.
९—धमनी प्राचीर काठिन्य Arterioselerosis.

इस प्रकार अब आप देख चुके हैं कि हिच्चकी जो कि साधारध जीवन में यूंही छोड़ दी जाती है, कितनी बड़ी बड़ी बीमारियों के कारण उत्पन्न होती है। अतः यह प्रत्येक वैद्य अथवा डाक्टर का कर्तव्य है कि वह हिच्चकी के असली कारण तक पहुंच कर उसे दूर करें।

चिकित्सा

ऐलोपैथिक पद्धति से—

१—कारणों पर काबू पाने व उसे दूर करने की कोशिश करें।

२—रोगी को ठण्डा पानी पिलाइये।

३—जीभ को बाहर की ओर खींचना (Pulling out tongue.)

४—स्वांस रोकना (Holding the breath)

५—अनजाने में एकाएक रोगी को डरना Sudden fright.

६—दोनों आंखों को दबाना Compress the eye ball.

६—उल्टी कराना Induced vometing.

८—गलकोष को उत्तेजित करना Stimulates the pharynx.

९—पेट को धोना Wash the stomach.

१०—दवाइयां

(क) ओक्टीन (Octin) १०% सोल्यूशन १० से १५ बूंद पानी में मिलाकर बार-बार देवें।

(ख) सूई ओक्टीन-हाईड्रोक्लोराइड (Injection Octin hydrocloride) ½-१ सी. सी. में।

(ग) सूई ऐट्रोपिन (Injection Atropine), $\frac{1}{100}$ ग्रेन त्वचा के नीचे।

(घ) कोरामिन ड्राप (Coramin drop) ५-५ बूंदें प्रति १० मिनट में।

(ङ) पेपावेरीन (Papaverin) १½-२ ग्रेन

(च) ब्रोमाईड और टिंचर क्लोरल पानी में मिलाकर देवें।

(छ) हायोसिन-हाइड्रोब्रोमाइड Hyoscine hydrobromide) $\frac{1}{100}$ ग्रेन।

(ज) फीनो बारबीटोन (Phenobarbitone)गोली।

(झ) गैस ओषजन और कार्बन द्वि औषद ७% नाक द्वारा देना।

होम्योपैथिक पद्धति द्वारा

१. **नक्सवोमिका** (Nux vomica)—बहुत अधिक खाने पीने के कारण, दुर्गन्ध डकार के साथ हिचकी होना। पेट फूलना, ठण्डा पानी पीने से बढ़ना या एलोपैथी दवाइयां खाने के बाद होना। २X से २०० शक्ति। ३० शक्ति की प्रत्येक २-२ घण्टे में देना।

२. **अमोनियम-म्युरेटिकम**—बहुत तकलीफ देने वाली हिचकी। हिचकी के साथ कलेजे में दर्द होना। ३X शक्ति की।

३. **पल्सेटिला**-खट्टी डकार के साथ हिच्चकी आना। तली हुई चीजें अधिक मात्रा में खाने के बाद उत्पन्न हुई हिचकी के लिए। ३० शक्ति की।

४. **कार्बोवेज**—हिलने-डुलने से हिचकी बढ़ना। हिचकी के बाद आंखें उलट जाना। रोगी आंखें चढ़ाये सुस्त पड़े रहना (मौत के नजदीक का समय) ३० शक्ति।

५. **लाइकोपोडियम**—अफरा के साथ हिचकी आना पेट में बहुत वायु इकट्ठा होना। ३० शक्ति।

६. **फासफोरस**—खाने के साथ हिचकी होना। ३० शक्ति की।

७. **वेरेट्रम-एल्बम**—हिचकी के साथ पेड़ू में दर्द, पसीना निकलना, ३० शक्ति

८. **बेलाडोना**-हिचकी के साथ सारा शरीर कांपना, वमनेच्छा, रह-रह कर हिचकी होना। ३० शक्ति

९. **रैटान्हिया**—जोरों की हिचकी होना। हिचकी की आवाज काफी दूर तक सुनी जाती है। ३० शक्ति

१०. **इग्नेशिया**—पानी पीते ही या कुछ खाते ही हिचकी होना (खासकर औरतों को हिस्टेरिया वाले स्वभाव की) ३० शक्ति।

११. **ऐगनस**—हिचकी के साथ वमन और मिचली

१२. **साइक्यूटा**-जोर की आवाज के साथ बिना रुके ही, लगातार हिचकी होना। निद्रित या मूर्छित अवस्था में भी हिचकी आना। ३० शक्ति की प्रत्येक घंटे में देना। अगर रोगी मूर्छित है तो ३० शक्ति की पानी में मिलाकर १ चम्मच प्रत्येक घण्टे में देना।

१३. **स्टेफिसेग्रिया**-मचली के साथ लगातार हिचकी आना, प्यास न रहना। ३० शक्ति।

१४. **हायोसायमस-नाइजर**—किसी भी विकार में रोगी का बेहोश हो जाना और उसके साथ हिचकी आना, जिससे कि रोगी के सारे शरीर का हिल जाना। ३० शक्ति।

१५. **वाइबर्नम-प्रुनिफोलियम** न रुकने वाली हिचकी अगर किसी दूसरी दवा से फायद न हुआ हो तो इसे इस्तेमाल करें। मदर टिंक्चर ३-४ बूंदे प्रति आधे घण्टे में देवें।

१६. **एसिड हाइड्रो**—मूर्छित, घोंट्टी स्वांस के साथ हिचकी में मदर टिंक्चर ४-५ बूंदें हर ½ घण्टे में।

इनके सिवाय निम्न लिखित दवाइयां भी हिचकी में दी जाती है।

कांक्सिनेला-इण्डिका, मास्कस, रैनानक्युलस-वल्बोसस जिनसेंड ऐसिड-ऐसेटिकम, फिलिक्स मास, सिना, मेगनेशिया फास, आर्सेनिक, जिंकम।

—श्री डा० माधव प्रसाद आर. एम. पी.
साथी दवाखाना, कामठी लाइन
राजनांद गांव (म. प्र.)

राजयक्ष्मा निदान एवं चिकित्सा

यक्ष्मा

षड्रूप

भक्तद्वेष, रक्तदर्शन.
स्वरभेद
कास
श्वास
ज्वर

एकादशरूप

शिरसः परिपूर्णत्वम्
पित्तागम, भक्तद्वेष रक्तागम
ज्वर
स्वरभेद, कण्ठध्वंस
कास
अंसशूल, अंससंकोच
दाह
पार्श्वशूल
पार्श्वसंकोच
अतिसार

रोग परिचय—राजयक्ष्मा की उत्पत्ति के प्रमुख कारण चार बतलाये गये हैं। आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि—

क्षयाद् वेग प्रतीघाता-
दाघाताद् विषमाशनात्।
जायते कुपितै र्दोषैर्व्याप्ति
देहस्य देहिनः॥

अर्थात् क्षय से, वेगों को रोकने से आघात से और विषम भोजन से तीनों वातादि दोष कुपित होकर राजयक्ष्मा, शोष अथवा क्षय के नाम से प्रसिद्ध रोग को उत्पन्न कर देते हैं। चरक के मत से।

स्रोतसां सन्निरोधाच्च
रक्तादीनांच संक्षयात्।
धातूष्मापचयाद्
राजयक्ष्मा प्रवर्तते॥

अर्थात् स्रोतों में कफ प्रधान दोषों के द्वारा अवरोध उत्पन्न किया जाने से तथा रस, रक्त आदि धातुओं के क्षीण होने से और धातुओं की उष्णता का ह्रास होने से राजयक्ष्मा रोग होता है। रस आदि के सूखने के आधार पर इसी को सुश्रुत ने शोष संज्ञा देकर वर्णन किया है तथा शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक क्रियाओं का क्षय उत्पन्न होजाने से इसको क्षय भी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। पहला-त्रिरूप राजयक्ष्मा इसमें ज्वर, कास और रक्त आना पाया जाता है। दूसरा-षड्रूप राजयक्ष्मा इसमें भोजन के
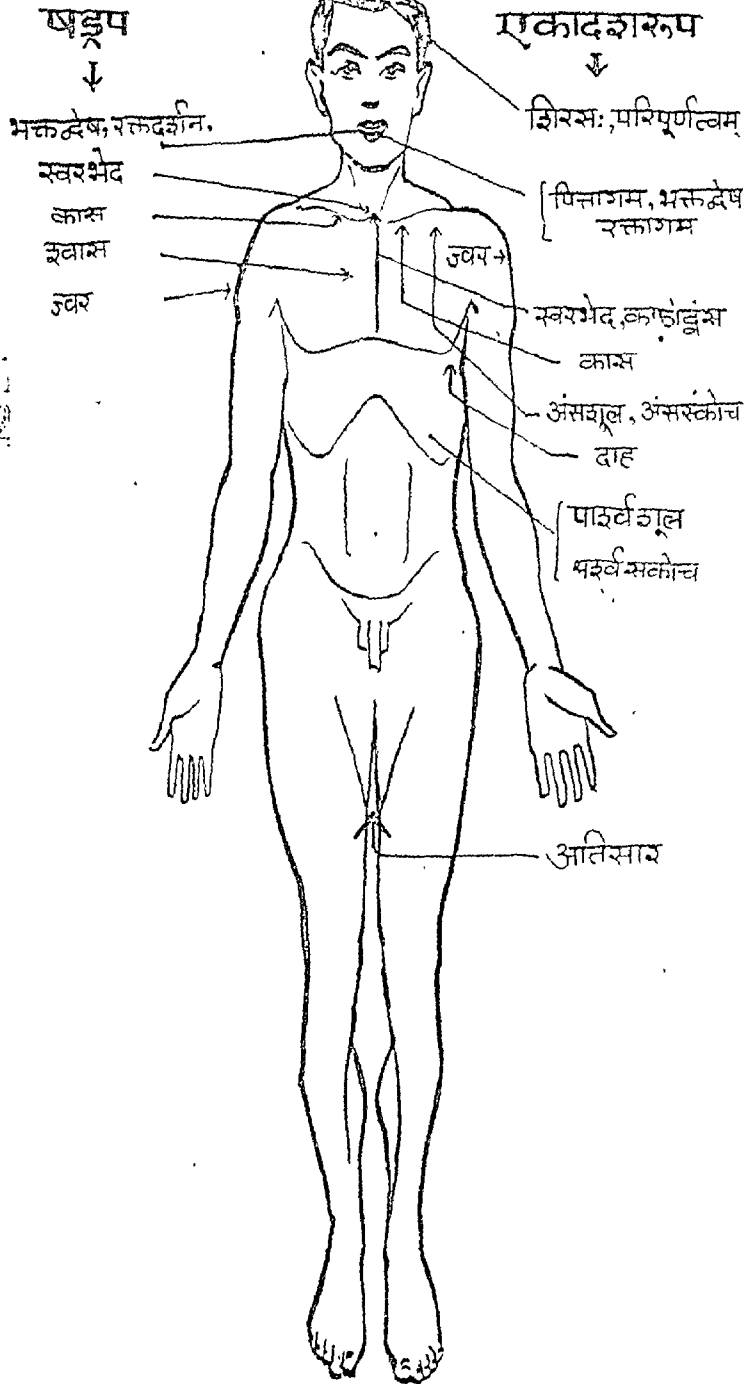
प्रति अरुचि, ज्वर, कास, सांस फूलना, रक्त आना और स्वरभेद होना पाया जाता है। तीसरा—एकादश रूप राजयक्ष्मा—इसमें वायु के कारण, स्वर भेद, शूल, कंधों और पार्श्व में संकोच, पित्त के कारण, ज्वर, दाह अतिसार और रक्त का आगमन, कफ के कारण सिर में कफ की वृद्धि से भरा हुआ जैसा अनुभव होना, भोजन के प्रति अरुचि, कास, कण्ठ का टूटना पाया जाता है।

अनुभूत चिकित्सा—

राजयक्ष्मारिपु—१ तोला सिंगरफ को पांच सेर गिलोय का स्वरस बूंद बूंद करके स्टोव पर मृत्तिका की प्याली में सुखावें। इसी प्रकार से १ तोला पत्र हरताल की डली को शरपुंखा के क्षार जल ५ सेर का चोया देवें। इसी प्रकार से सोनामाखी भस्म को भांग के ताजा स्वरस २ सेर का चोया देवें। फिर शतपुटी लोह भस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, अभ्रकसत्वभस्म, सुवर्णभस्म २-२ माशा लेवें और शुद्ध वत्सनाभ १माशा लेवें। सबको खरल में डाल कर एक रूप बनालें। फिर शुद्ध जमालगोटा, जायफल, नागकेशर, लौंग, छोटी इलायची, धतूरे के बीज इन सबको ५-५ माशा मिला दें और काली मिर्च का चूर्ण, सम्पूर्ण का तीन भाग मिला दें। और अदरख के समान प्रमाण के स्वरस में खूब घुटाई करें। १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। प्रातः सायं १ गोली नव युवकों को, वृद्धों को डेढ़ गोली, १० वर्ष से २२ वर्ष तक के बच्चों को ¾ गोली अथवा पौन गोली। १० वर्ष से नीचे के और ३ वर्ष से ऊपर के बच्चों को १ गोली का छठा भाग और ३ वर्ष से कम के बालकों को यह दवा नहीं देनी चाहिये। यह औषधि गारण्टी की है। निर्भय होकर विश्वास पूर्वक सेवन की जानी चाहिए। यह प्रयोग राजयक्ष्मा मूर्च्छा, सभी प्रकार का कास रोग, अठारह प्रकार का कुष्ठ, सन्निपात ज्वर, नया और पुराना श्वास रोग, धातु क्षय, हस्त मैथुन की सभी प्रकार की गड़बड़ियां और नपुंसकता, अधिक मैथुन की नपुंसकता और १४ वर्ष तक का ल्यूकोरिया निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। यह ध्रुव सत्य है। सामान्य शारीरिक निर्बलता एक मास में दूर होकर भारी शारीरिक पुष्टि और बल प्राप्त होता है।

यक्ष्मा के कारण

शास्त्रीय चिकित्सा

स्वेदन—१. (तिल, चावल, उड़द की यवागू) उत्कारिका (रोटी के समान बना खाद्य द्रव्य जौ आदि का) उड़द, कुलथी, जौ, पायस (खीर अथवा मावे के रूप में) द्वारा संकर स्वेद की विधि से पार्श्व कण्ठ, छाती और शिर पर स्वेद दें।

२. वातहर पत्तों से अथवा खरैटी, गिलोय, मुलहेठी इनसे सावित सुहाते गरम क्वाथ से शिर का परिषेचन करें।

३. वातनाशक द्रव्यों से सावित क्वाथों से नाड़ी स्वेद विधि द्वारा कण्ठ शिर और पार्श्वों से स्वेदन करें। वातहर औषधियां—यथा विल्व, अग्निमन्थ, काश्मरी, श्रेयसी पाटला बला, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वृहती, कण्टकारिका।

४. पञ्चमूल क्वाथ से या कांजी में घी, तेल आदि स्नेह मिलाकर नाड़ी स्वेद दें।

५. जिनके शिर, पार्श्व और कन्धों में शूल होता हो उनके लिए जीवन्ती, सोया, बला, मुलहठी इनका उपनाह लगावें।

६. शिर, पार्श्व और कन्धों में शूल हो तो सोया, मुलहठी, कूठ, तगर, चन्दन इनको घी में मिलाकर लेप करें।

७. चन्दनादि तैल अथवा सौ बार धोया घी मलना चाहिए। दूध या मुलहठी के क्वाथ का शिर पर परिषेचन हितकारी है।

८. सुशीतल वर्षा जल से अथवा चंदनादिगण के क्वाथ से परिषेचन करें। उपर्युक्त संशमनी क्रियायें हैं। इनको अवश्य करनी चाहिए।

९. यक्ष्मा के जिन रोगियों में दोष की अधिकता हो उनको प्रथम स्नेहन कराके पीछे स्नेहयुक्त वमन और विरेचन देवें। परन्तु ये वमन विरेचन ऐसे होने चाहिए जिनसे रोगी का शरीर कृश व निर्बल न हो जाये। विरेचन देने में बहुत सावधानी रखनी चाहिए। इसलिए बहुत ही विचार करके अमलतास, निशोथ आदि मृदु विरेचन देवें। जब कोष्ठ शुद्ध हो जावे तो कास, श्वास, स्वरक्षय, शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंसशूल पर निम्नलिखित योगों का प्रयोग करना चाहिए। (१) बला, शालपर्णी, पीपल, मुलहटी इनके क्वाथ में तथा सेंधा नमक के कल्क से सिद्ध घृत का नस्य देने से स्वरभंग मिटता है। (२) पुण्डरीक काष्ठ, मुलहठी, पीपल, खरेंटी और गाय का दूध इनसे साधित घृत का नस्य स्वरभेद को नष्ट करता है। (३) शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंसशूल, कास और श्वास को नष्ट करने के लिए भोजन के पश्चात् प्रायः घृत पान करें। (४) सितोपलादि लेह–मिसरी १६ भाग वंशलोचन ८ भाग, पिप्पली ४ तोला, इलायची २ भाग और दालचीनी १ भाग। ३ माशा मात्रा मधु और घृत से चाटें। श्वास, कास और कफ नष्ट होता है। अरुचि, मन्दाग्नि, पर्श्वशूल, हाथ, पैर, शरीर में जलन, ज्वर और ऊर्ध्वगामी रक्त-पित्त में लाभकारी है।

(१०) जीवन्ती, मुलहठी, मुनक्का, इन्द्र जौ, कचूर, पोहकरमूल, कटेली, गोखरू, बला, नीलकमल, भूमिआंवला त्रायमाण, दुरालभाऔर पीपल ये सब समभाग में लेकर इनके कल्क से घृत सिद्ध करें, इसमें घृत से चौगुना जल लेवें। यह घृत रोगों के समूह वाले रोगराज के ११ प्रकार के रूपों को नष्ट करता है।

११. फेफड़ों में कफ के अधिक होने से वायु इस कफ को बाहर करता है इसको कफ प्रसेक कहते हैं। इसको उष्ण और स्निग्ध चिकित्सा से शान्त करें, हृदय के लिए प्रिय वातनाशक और लघु खान पान पथ्य है।

१२. **यक्ष्मान्तक लोह**—रास्ना, तालीसपत्र, कपूर, ब्राह्मी, शिलाजीत, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, विडङ्ग, मोथा, चित्रकमूल प्रत्येक १-१ तोला, लोहभस्म १४ तोला इन्हें एकत्र मिलाकर २ रत्ती की मात्रा से मधु-घृत से सेवन करावें। यह घोर यक्ष्मा, कास, स्वरभेद, क्षय कास, उरःक्षत आदि को नष्ट करता है। बलवर्द्धक, वर्ण को निखारता है। जठराग्नि दीपक एवं पुष्टिकर है। इसको रास्नादि लोह भी कहते हैं।

१३. **मृगांको रस**—पारद १ तोला, स्वर्ण भस्म १ तोला, मुक्ता भस्म २ तोला, गन्धक २ तोला, सुहागा २ माशा इन्हें एकत्र कर काञ्जी से खरल में घुटाई कर, गोला बनाने योग्य कर गोला बनावें पश्चात् शुष्क करके मूषा में बन्द करके लवण यन्त्र से ४ प्रहर तक पाक करें।

जब स्वांग शीत हो जाये, तब औषधि निकालकर १ रत्ती मात्रा सेवन करावें यह मृगांक यक्ष्मा को नष्ट करता है। अनुपान पीपल चूर्ण २ रत्ती अथवा कालीमिर्च २ रत्ती और मधु। पथ्य—बकरी के दूध का दही, गौ का तक्र, अपथ्य-अतिक्षार, बैंगन, तेल, बिल्व, करेला, क्रोध, स्त्री, सहवास नितान्त त्याज्य है।

१४. रससिन्दूर, स्वर्णभस्म सम मात्रा में मिश्रण कर उपर्युक्त अनुपान से लेना चाहिए पथ्यापथ्य भी वही है।

१५. **राज मृगाङ्को रसः**—रस सिन्दूर ३ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, मैनसिल, हरताल गन्धक प्रत्येक २-२ तोला इन्हें एकत्र मिश्रित कर बड़ी कौड़ी के बीच में भरदें। पश्चात् बकरी के दूध से सुहागे को पीसकर कौडी का मुख बन्द करदें। तदनन्तर मृत्पात्र में कौड़ी को बन्दकर सन्धि लेप करें। शुष्क होने पर गजपुट दें और स्वांग शीत होने पर चूर्ण कर लें। मात्रा १ रत्ती अनुपान मधु तथा घृत पीपल या कालीमिर्च का चूर्ण २ रत्ती भी मिलाना चाहिए। इसके सेवन से सब प्रकार का राजयक्ष्मा दूर होता है।

१६. **महा मृगाङ्को रस**—निरुत्थ स्वर्ण भस्म १ भाग, रस सिन्दूर २ भाग, मुक्ताभस्म ३ भाग, गन्धक ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म ५ भाग, रजतभस्म ४ भाग, मूङ्गाभस्म ७ भाग, सुहागा २ भाग इन्हें एकत्र कर मातुलुङ्ग के (बिजौरा) रस से ३ दिन मर्दन कर गोलाकार करें। इस गोले को प्रचंड धूप में रखकर शुष्क करें और मूपा में बन्द कर लवण यन्त्र द्वारा ४ प्रहर तक पाक करें। पश्चात् निकालकर चूर्ण करें और हीरकभस्म १ भाग (अभाव में वैक्रान्त भस्म) मिलावें। मात्रा—१ रत्ती अनुपान—मरिच चूर्ण, घृत, पीपल चूर्ण। इस औषधि के सेवन करते हुए क्षय रोगोक्त विधि के अनुसार चलना चाहिए, बलकारक घृत आदि का सेवन एवं पारद विरोधी पदार्थों का त्याग करना चाहिए। यह रस बहु लक्षणयुक्त यक्ष्मा, ज्वर, गुल्म, विद्रधि, मन्दाग्नि, स्वरभेद, कास, अरुचि, कै, मूर्छा, भ्रम आदि आठ महारोग, पांडु कामला, चित्तरोग तथा मलबन्ध प्रभृति व्याधियों को नष्ट करता है।

(१७) **बृहत् क्षय केशरी**—अभ्रक भस्म, रससिन्दूर लौहभस्म, ताम्रभस्म, सीसकभस्म, कांस्यभस्म, मण्डूरभस्म, रौप्यमाक्षिकभस्म, वंगभस्म, खर्परभस्म, हरिताल, शंखभस्म सुहागा, स्वर्णमाक्षिक भस्म, वैक्रान्त भस्म, कान्त लौहभस्म स्वर्णभस्म, मूंगाभस्म, मुक्ताभस्म, वराटिका भस्म, हिंगुल कान्त पाषाणभस्म, गन्धक इन्हें समभाग में लेकर खरल में चित्रक एवं मदार के रस से भावना देकर ३ दिन मन्द-मन्द अग्नि पर लघुपुट करें। इस प्रकार की भावना दे देकर ३ बार पुटपाक करें। पश्चात् मातुलुङ्ग, त्रिफला, चित्रक, अम्लवेत, भृङ्गराज, कनेर, अदरख इनके रस से लघुवह्नि द्वारा भावना दें। इसके सेवन से वातरोग, पित्त रोग, कफरोग, ज्वर, सन्निपात, सर्वाङ्गवात, एकांगवात, प्रभृति रोग नष्ट होते हैं।

मात्रा—आधी रत्ती से १ रत्ती तक। अनुपान—खांड, पीपल चूर्ण, मधु तथा अदरक का रस, यह रस क्षय शोप, पाण्डु, क्रिमि, कास, श्वास, प्रमेह, मेदोरोग, महोदर, अश्मरी, शर्करा शूल, प्लीहा, गुल्म एवं हलीमक आदि रोगों को विनष्ट करता है तथा यह रस बल्य वृष्य बुद्धि वर्धक तथा रसायन है।

(१८) **बृहच्चन्द्रामृत रस**-पारद २ तो. गन्धक २ तो. अभ्रकभस्म ४ तो. कपूर आधा तो. स्वर्णभस्म १ तो, ताम्रभस्म १ तोला, लौहभस्म २ तोला, विधारा बीज, विदारीकन्द, शतावरी, तालमखाना बलामूल, कोंच के बीज, अतिबला, जावित्री, जायफल, लौंग, भांग के बीज, श्वेत राल प्रत्येक आधा तोला। इन्हें एकत्र कर मधु से मर्दन कर १२ रत्ती की वटिका बनावें।

अनुपान—पिप्पली चूर्ण तथा मधु। इसके सेवन से यक्ष्मा नष्ट होता है।

(१९) **बृहत्काञ्चनाभ्र रस**—स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, विद्रुम (प्रवाल) वैक्रान्तभस्म, रजतभस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, कस्तूरी, लौंग, जावित्री, एलुआ प्रत्येक २ तोला इन्हें घीक्वार के रस से भंगरा के रस से तथा बकरी के दूध से पृथक-पृथक ३ भावना देकर २ रत्ती की गोली बनावें। इसके सेवन से क्षय, कास, यक्ष्मा, श्वास, प्रमेह प्रभृति सम्पूर्ण लक्षण युक्त विविध रोग नष्ट होते हैं।

(२०) **द्राक्षारिष्ट**—मुनक्का, ४ सेर पाकार्थ जल

४ द्रोण, शेष क्वाथ १ द्रोण इस क्वाथ में २० सेर गुड़ को घोलकर दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, प्रियगु, कालीमिर्च, पीपल, वायविडंग, प्रत्येक १ पल का प्रक्षेप दे और घृतभाण्ड में डालकर मुख वन्द करदें, जव अरिष्ट तैयार हो जाय तव छानकर उरःक्षत, कास, श्वास, गलरोघ, क्षय आदि रोग में प्रयुक्त होता है । यह अरिष्ट वल को वढाता है तथा मल का शोधक है। मात्रा—२ तोला।

२१. अजा (वकरियां) जिस घर में रहती हों, उस घर में मेंगनी मूत्र चिरकाल तक पड़ा रहता हो उन मेंगनी और मूत्र को एकत्रित कर जितना सम्भव हो सके स्नान करने से पुरुष एक मास में राजयक्ष्मा से मुक्त हो जाता है और उन वकरियों का ही घृत दुग्ध ही सेवन करें नियम से। सुश्रुत का वचन है एक मास में ही यक्ष्मा का अन्त हो जाता है।

२२. अश्वगंधा, मिश्री, पीपल इनके चूर्ण को घृत,मधु के साथ चाटना चाहिए। मात्रा ३ से ६ माशे तक युवा एवं वृद्ध के लिये। वालक के लिये १ माशा पर्याप्त है।

२३. अश्वगन्धा १ तोला १ पाव दुग्ध में क्षीर पाक विधि से पकाकर पीने से अवयवों की पुष्टि होती है।

२४. मुनक्का, मिश्री, पीपल इनकी सममात्रा लेकर पीसलें चटनी, तिल तेल, मधु वरावर मिश्रण कर चाटने से क्षय रोग वलात् नष्ट होता है।

२५. वकरी का घी, मधु वरावर मात्रा में लेकर असगन्ध, तिल, उड़द चूर्ण इनकी चटनी वनाकर चाटने से प्राण नाशक क्षय भी नष्ट हो जाता है।

२६. असगन्ध के साथ क्षीर पाक दुग्ध को जमाकर निकाला हुआ घृत २ तोला पीकर अनुपान में उष्ण दुग्ध पीने से अङ्गों की पुष्टि चन्द्रमा के तुल्य प्राप्त होती है।

२७- पञ्चांग वांसा का और उसी के पुष्प, पञ्चांग के क्वाथ में पुष्पों की चटनी डालकर घृत सिद्ध करें। मधु युक्त घृत पीने से अत्यन्त वढ़ा हुआ यक्ष्मा कास, श्वास तथा पांडुता भी नष्ट होती है।

२८. **नित्योदय रस**—संस्कारित पारद, गन्धक शुद्ध २-२ तोला इनकी कज्जली वनाकर विल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, खम्भारी, पाढल, वला, मोथा, पुनर्नवा, आंवला, बड़ी कटेरी, वासा के पत्ते, विदारीकन्द, शतावर, इन सवके २-२ तोले रस से पृथक पृथक भावना स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक ४-४ माशे, ४ तोला कृष्णाभ्रक भस्म, २ तोला शिलाजीत, जायफल, जटामांसी तालीशपत्र, इलायची, लौंग, प्रत्येक २-२ तोला वासा के स्वरस से मर्दन करें, सुखाकर पुनः विदारीकन्द के स्वरस से मर्दन करके २ रत्ती की वटी वनाकर पीपल, शहद के अनुपान से प्रातः सायं खायें, इसके सेवन से पांचों प्रकार की खांसी वहुत शीघ्र ही नाश हो जाती है। अत्यन्त उग्र यक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, धातुगत ज्वर, विषम ज्वर, तृतीयक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, अर्श, कामला, पाण्डु, अग्निमांद्य, प्रमेह इत्यादि रोग नष्ट होते है तथा मनुष्य कामदेव हो जाता है।

२९. **रजतादि लौह**—अभ्रकभस्म, चांदीभस्म, इसके समान लौहभस्म, त्रिकटु, त्रिफला, सव वरावर लेकर घृतानुपान से चाटना चाहिए। इसके प्रातःसायं चाटने से यक्ष्मा, पाण्डु, उदर रोग, अर्श, श्वास, कास, नेत्ररोग, सम्पूर्ण पित्तरोग यथा शीघ्र नष्ट होते हैं।

३०. **क्षयशामक रस**—पारा. गन्धक, दोनों समान मात्रा में सोंठ, मिर्च, पीपल, शंखभस्म, कौड़ीभस्म, पारद से चौथाई सुहागा, सवके समान मिर्च, इसके चूर्ण की ६ माशा तक मात्रा है किन्तु १ माशे से प्रारम्भ करके ६ माशे तक घृत से चाटें। इसके खाने का क्रम इस प्रकार होना चाहिये। ५ दिन १ माशा इसी प्रकार छठे दिन से २ माशे ११ वें दिन से ३ माशे इसी प्रकार प्रति छठे दिन १-१ माशा वढ़ावें तथा एक मास के अन्त में ६ माशे हो जायेगा फिर खाना वन्द करदें। इससे एक मास में ही क्षय ठीक हो जाता है।

—वैद्य श्री वागीशदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
पुरातन रोग विशेषज्ञ धन्वन्तरि औषधालय
स्टेशन रोड, गाजियावाद (उ० प्र०)

राजयक्ष्मा की चिकित्सा शास्त्रीय

बलवान और बहुत दोषों से युक्त राजयक्ष्मा वाले रोगी को वमन, विरेचन (दस्त), नस्य, निरुहवस्ति और अनुवासनवस्ति ये पंचकर्म कराने चाहिए, परन्तु क्षीण देह वाले मनुष्य को यह पंचकर्म विष के समान आपकारी होते हैं, कारण यह कि, मनुष्यों का बल मल के आधीन है और जीवन वीर्य के आधीन है। इस कारण क्षय रोग वाले मनुष्यों के वीर्य की ओर मल की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। क्षय रोग वाले मनुष्यों के लिए शालिचावल, साठी चावल, गेहूँ, जौ और मूंग आदि अन्न, मदिरा और जंगल प्रदेश के पशु पक्षियों का मांस पथ्य (हित) है।

षडंग यूष—जौ ४ तोले, कुलथी ४ तोले और बकरे का स्निग्ध मांस १६ तोले, इन सबको अठगुने जल में पकावें जब पकते-पकते चौथा भाग जल बाकी रह जाय तब उसमें ४ तोले घी डालकर बघार देवें सेंधानमक १ तोले डालें, सुगन्ध के लिये हींग डालें तथा अनार और आमलों का रस डालें, पीपल और सोंठ का कल्क ६-६ रत्ती डालें। इस मांस रस को षडङ्ग यूष कहते हैं। यह क्षय रोग वाले मनुष्यों को पिलाना चाहिये। इसके पीने से राजयक्ष्मागत पीनस आदि समस्त विकार निवृत्त हो जाते हैं। अर्जुन की छाल, गंगेरन (गुलशकरी) और कौंच के बीज इनको दूध में पीसकर शहद घी और बूरा मिलाकर पियें तो राजयक्ष्मादि रोग और खांसी दूर होजाती है। यक्ष्मा रोगी बकरे के मांस को खायें, बकरी के दूध को पियें, सोंठ मिलाकर बकरी का घी खावें, बकरे की सेवा करें और बकरे बकरियों के रहने के स्थान में सोवें। इन उपायों के करने से क्षय रोग नष्ट होजाता है। शहद, सोनामाखी, वायविडङ्ग, शिलाजीत, लोहा, घी और हरड़ इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करने से और इस पर पथ्य भोजन करने से अत्यन्त उग्र क्षय रोग नष्ट हो जाता है। क्षय रोग वाला मनुष्य खांड और शहद मिलाकर नैंनी घी खायें और इस पर दूध युक्त भोजन करें अथवा शहद और घी को विषम भाग लेकर चाटें तो पुष्टि होती है।

सितोपलादि अवलेह—दालचीनी १ भाग, छोटी इलायची २ भाग, पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग और मिश्री १६ भाग, इन सबका चूर्ण करके शहद तथा घी के साथ क्षय रोग वाले को चटावें। खांसी, श्वास, क्षय, पार्श्वशूल, मन्दाग्नि, जिह्वा की जड़ता और अरुचि तथा हाथ, पांव और सम्पूर्ण शरीर का दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त को भी यह सितोपलादि चूर्ण दूर कर देता है। जायफल, वायविडङ्ग, चीता, तगर, तिल, तालीसपत्र, चंदन, सोंठ, लौंग, कालाजीरा, भीमसेनी कपूर, हरड़, आमले, मिर्च पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर ये प्रत्येक भाग ३-३ तोले भर लेवें, भांग २८ तोले लेवें और सबकी बराबर मिश्री लेवें, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनावें। जिस प्रकार इन्द्र का वज्र वृक्षों को नष्ट करता है उसी प्रकार यह चूर्ण क्षय, खांसी, श्वास, ग्रहणी, अरुचि, प्रतिश्याय (जुकाम) और अग्नि की मंदता को नष्ट करता है। इसको जातीयफलाद्य चूर्ण कहते हैं।

लाक्षादि तैल—बालरोगाधिकार में जो लाक्षादि तेल कहा है उस तेल को वृद्ध वैद्य के उपदेश से क्षय रोगी के शरीर पर मर्दन करें, या मालिश करें।

बांसावलेह—अडूसे का रस ६४ तोला, उत्तम सफेद खांड ३२ तोला, पीपल ८ तोला और घी ८ तोला लेवें, सबको एकत्र मिलाकर धीरे-धीरे मन्द अग्नि से पकावें, जब लेह के समान होकर शीतल हो जाय तब ३२ तोला शहद मिला देवें तो उत्तम बांसावलेह तैयार होता है। यह बांसावलेह—राजयक्ष्मा, दारुण खांसी, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, रक्तपित्त और ज्वर को दूर करता है।

रास्नादिलौहम्—रास्ना, असगन्ध, कपूर, मण्डूकपर्णी, शिलाजीत, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपरा, विडङ्ग, चीता और मोथा समभाग लेवें तथा सर्व सम लोह भस्म मिला लेवें। यह दवा खाने से यक्ष्मा, जो उपद्रवों वाला तथा वैद्यों से त्यागा हुआ हो, कास, स्वरभेद, राजयक्ष्मा, क्षत और क्षय आदि दोषों को दूर कर, बल, वर्ण तथा अग्नि और पुष्टि की वृद्धि करता है।

राजमृगांको रस—रससिंदूर ३ भाग, स्वर्ण १ भाग, रौप्य १ भाग, शिलाजीत २ भाग, गंधक २ भाग तथा

हरताल २ भाग, एकत्र खरल कर कौड़ियों के अन्दर भर देवें। बकरी के दूध में कुछ सुहागा पीसकर उससे कौड़ियों का मुख बन्द कर देवें। फिर उन कौड़ियों को हांड़ी के अन्दर रख, उसका भी मुंह बन्द कर देवें, लेप सूखने पर गजपुट में फूंक देवें। स्वांग शीतल होने पर औषधि को निकाल, चूर्ण कर लेवें। इसकी मात्रा ४ रत्ती की है। अनुपान १० पीपरों का चूर्ण और शहद या मरिचचूर्ण और घृत देवें। अथवा घृत ही देवें। इससे वातश्लेष्मज क्षय दूर होता है। नाना रोगों को दूर करने वाला यह राजमृगांक रस है।

मृगांको रस—पारा १ भाग, स्वर्ण १ भाग, मोती २ भाग, गन्धक २ भाग और सुहागा १ भाग. सबको कांजी से पीसकर गोला सा बना लेवें। सूखने पर उसे मूष के अन्दर रखकर ४ पहर तक लवण यन्त्र में पाक करें। यह मृगांक रस राजयक्ष्मा नाशक है। इसे ४ रत्ती भर मरिच चूर्ण या १० पीपरों के साथ शहत मिलाकर चाटें। इसमें हलके मांस, घी में पके व्यञ्जन जिसमें क्षार अधिक न हो तथा हींग न पड़ा हो तथा इलायची, जीरा, मरिच और जलन न करने वाले द्रव्यों से संस्कृत व्यञ्जनादि, सब पथ्य हैं। बेंगन, बेल, तैल, करेला, स्त्रीभोग तथा क्रोध करना दूर से त्याग देवें।

रत्न गर्भ पोटली रस—पाराभस्म, हीराभस्म, स्वर्ण, रौप्य, सीसा, लोह, ताम्र, मरिच, मोती, मूंगा, सोनामाखी, शंख और तूतिया, समभाग ले चीते के काढ़े से या रस से ७ दिन तक घोटें। सूखने पर चूर्ण कर उसे कौड़ियों में भर देवें। आक के दूध में कुछ सुहागा पीस, उससे कौड़ियों का मुंह बन्द कर, देवें। फिर उसे मिट्टी के भांड़े में बन्द कर गजपुट में फूंक देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल, कौड़ियों समेत चूर्णकर, संभालु के रस की सात, अदरख के रस की ७ तथा चीता के रस की इक्कीस भावनायें देवें और सुखाकर चूर्ण कर लेवें। इसकी ४ रत्ती की मात्रा पीपर, शहद या घी मरिच के साथ देवें तो निश्चय ही साध्य तथा असाध्य क्षय, आठ महारोग, कास, श्वास, अतिसार तथा अन्यान्य सब रोग नष्ट हो जायेंगे। यह रत्नगर्भ पोटली रस है।

लोकेश्वर पोटली रस—रस सिन्दूर १ भाग, स्वर्ण चतुर्थांश तथा गन्धक १ भाग, एकत्र चीते के रस से घोटकर कौड़ियों में भर, उनका मुंह सुहागे से बन्दकर देवें। एक ऐसी हांडी लेवें जिसका भीतरी भाग चूने से पुता हो उसमें कौड़ियों को रखकर, मुंह बन्दकर सुखा लेवें। फिर उसे गजपुट में अपराह्न में फूंक देवें। स्वांग शीतल होने पर निकालकर कौड़ियों के साथ चूर्ण कर लेवें। यह लोकेश्वर पोटली रस वीर्य की पुष्टि तथा वृद्धि करता है। मात्रा ४ रत्ती, पीपरा, शहद या मरिच घृत के साथ चाटें। तीन दिन में ही यह शरीर का पतलापन, अग्निमांद्य कास, पित्त और क्षय का नाश कर देता है। इसमें नमक खाना छोड़ देवें तथा घृत मिला दही खावें। इक्कीस दिन तक घी में मरिच चूर्ण मिलाकर पान करें। पथ्य इसमें मृगांक रस जैसा ही लेवें तथा चित्त होकर सोया तथा लेटा करें। जो रोगी विषम भोजन आदि से सूख गये हों, जो क्षयरोग तथा अष्ठीला से पीड़ित हों, जो पाण्डु रोग से ग्रस्त हों, जो चिन्तादि से व्याप्त हों, जो विविध ज्वर से तापित हों, जो श्रम, मद तथा उन्माद से प्रमाद ग्रस्त हों, वे सब इस लोकेश्वर पोटली रस के सेवन से निरोग होते हैं।

कनक सुन्दरो रस—पारा १ भाग, स्वर्ण चौथाई भाग, मैनसिल, गन्धक, तूतिया, सोनामाखी, हरताल, विष और सुहागा, प्रत्येक १ भाग, एकत्र साफ खरल में घोटें। फिर जयन्ती, भांगरा, पाठा, बाँसा, अगस्त, कलिहारी और चीता के रसों की अलग अलग भावनायें देवें। फिर सुखाकर अदरख के रस की सात भावनायें देवें। यह कनकसुन्दर रस है। इसकी दो या तीन रत्ती की गोली बना प्रयोग करें। मधु, पिप्पली व मरिच चूर्ण तथा घृत अनुपान देवें, तो राजयक्ष्मा शान्त होता है। सन्निपात में अदरख के रस से देवें। गुल्म तथा शूल रोगी को शुद्ध जमालगोटे के चूर्ण के साथ देवें। बलकारक, हृदय को हितकारी तथा रसायन पथ्य खावें। खटाई, नमक, हींग, छाछ, दही तथा जलन पैदा करने वाले पदार्थों को छोड़ देवें।

हेमगर्भ पोटली रस—रस सिन्दूर ३ भाग, स्वर्ण १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, गन्धक १ भाग, एकत्र चीता के रस से दो पहर घोटकर, कौड़ी के अन्दर रखें तथा उसका मुख सुहागे से बन्दकर देवें। उन कौड़ियों को हांडी के

अन्दर रख उसका मुख बन्दकर, गजपुट में फूंक देवें। स्वांग शीतल होने पर कौड़ियों समेत चूर्णकर, ४ रत्ती की मात्रा में प्रयोग करें, तो राजयक्ष्मा का नाश हो जाता है। पथ्य तथा अनुपानादि इसमें मृगाङ्क रस के ही समान हैं।

सर्वाङ्ग सुन्दरो रस—पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, सुहागा की खील २ भाग, मोती, मूंगा और शंख-भस्म आधा-आधा भाग तथा स्वर्ण १ भाग, एकत्र खरल-कर नीबू का रस देकर घोटें तथा पिण्डी सी करलें। उसे सम्पुट के अन्दर रखकर गजपुट से फूंक देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल, लोह १ भाग तथा हिंगुल आधा भाग मिला खूब खरल करें। फिर कोई शुभ दिन देखकर रस की पूजा करें, तब सेवन करें। यह सर्वाङ्ग सुन्दर रस राजयक्ष्मा का नाशक है। घोर वातपित्त ज्वर, कठिन सन्निपात, अर्श, ग्रहणी, मेह, गुल्म, भगन्दर और वात के सब रोग तथा खास कर कफ के रोगों को यह रस दूर करता है। शहद और पीपरा चूर्ण, घी और पीपरा चूर्ण, पान का पत्र, शक्कर या अदरख का रस, दोष विचार कर अनुपान देवें।

लोकेश्वरो रस—कौड़ीभस्म १ पल, पारा अर्ध पल, गन्धक अर्धपल, सुहागा की खील १ माशा एकत्र मिला जम्भीरी नीबू के रस से घोटकर गोलाकार करें तथा संपुट में रख गजपुट में फूंक देवें। यह लोकेश्वर रस तैयार हो गया। यह कुष्ठ तथा रक्त-पित्त के रोगों को बल पूर्वक जीतता है। पुष्टि, वीर्य, प्रसन्नता, तेजस्विता, क्रान्ति तथा सौन्दर्य को देने वाला अन्य कौनसा रस शुम्भु जी ने कहा है? याने अन्य नहीं, यही है। पथ्य में शाली चावल का भात, घी, दही, साग जिसमें हींग का छौंक दे खाना चाहिए। प्रतिदिन २-२ पहर के अन्तर देकर तीन बार दवा देवें। यदि तीन दिन में अरुचि तथा वमन हो तो रस लगा समझें अन्यथा आठवें दिन फिर पूर्ववत् औषधि प्रयोग करें। प्रथम तथा सातवें दिन लवे का मांस सूरन तथा मूङ्ग का यूष, दूसरे दिन उड़द, गेहूं तथा पूर्वोक्त पथ्य देवें। तीसरे दिन मत्स्य मांस तथा तेल मर्दन आदि की व्यवस्था करें। तेल, बेल, कांजी, क्रोध करना, स्त्रीसंग, दिन का सोना, रात का जागना तथा कुष्माण्ड, करेला आदि ककाराष्टक त्यागकर, हृदय को हितकारी और मधुर द्रव्यों का उपयोग करें। वायु के प्रकोप में गुनगुना दूध एवं पित्तकोप में शक्कर मिला दूध पिलावें। यदि भूख खूब बढ़ जाय तो चिरीचरे के बीज की खीर, तिल, गन्ना, केले, खजूर, मांस, दाख तथा शक्कर आदि सब पदार्थ खाने को देवें। वीर्यपात होता हो तो नारियल का पानी तथा कच्चे ताल का गूदा खाने को देवें। आनाह अरुचि, मूर्च्छा, धूमांसा डकार आना तथा विसूचिका में लघुशाली चावल का भात तथा घी ही हित है। अति-वमन हो तो गुरुच का स्वरस शहद मिलाकर रक्तपित्त हो तो वांसा का रस शहद मिलाकर पीने को देवें, अरुचि हो तो मिश्री या शहद मिलाकर अथवा भैंस का दही पान करने को देवें। प्रतिदिन भात-घी खावें तथा गुनगुना जल पीवें। दाह तथा अजीर्ण में क्रमशः गिलोय का काढ़ा तथा चूने का पानी देवें। यदि कफोल्वण हो तो अदरख, सरसों, केले का फल, तज देवें। अन्यान्य उपद्रव जो होवें तो उनकी शान्ति के लिए विचार पूर्वक औषध व्यवस्था करें। ३२वें दिन तिल तथा आवलों का उबटन कर स्नान करावें। ज्यों-ज्यों अपना बल व अग्नि का बल होता जाय उसी के अनुसार हितकारी पदार्थ सेवन करते जावें।

स्वल्प मृगांक रस—रस सिन्दूर तथा स्वर्णभस्म सम-भाग ले एकत्र घोटकर यथादोष अनुपान के साथ २ रत्ती की मात्रा में प्रयोग करें। यह स्वल्प मृगांक रस यक्ष्मा नाशक है।

काञ्चनाभ्र रस—सोनाभस्म, रससिन्दूर, मोती, लोह, अभ्रक, मूङ्गा, हरड़, चांदी, कस्तूरी और मैनसिल प्रत्येक १-१ कर्ष ले एकत्र जल से ही घोटकर २-२ रत्ती की गोलिया बनावें। अनुपान यथा दोष देवें। क्षय, कास, कफपित्त के रोग, विविध प्रमेह, त्रिदोष जनित रोग तथा कफ और वात के रोगों को तुरन्त ही नाश कर देता है। बल तथा वीर्य की वृद्धि तथा लिङ्ग की दृढ़ता करता है। नाना रोगों को दूर कर श्री तथा पुष्टि को करता है। यह गहनानन्द जी का कहा कांचनाभ्र रस है।

बृहत्काञ्चनाभ्र रस—स्वर्ण, रससिन्दूर, मोती, लोह, अभ्रक, मूङ्गा, वैक्रान्त, चांदी, ताम्र, वंग, कस्तूरी,

लवंग, जावित्री और इलायची प्रत्येक एक कर्ष, एकत्र मर्दन कर, ग्वार पाठे का रस, केशराज का रस तथा बकरी के दूध से ३-३ दिन तक भावना देवें एवं ४-४ रत्ती की गोलियां बना लेवें। यथा दोष अनुपान देवें। क्षय, कास, यक्ष्मा, श्वास व त्रिदोष कृत रोग, सर्व प्रमेह तथा अन्यान्य सब रोगों को जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करता है उसी तरह नष्ट करता है।

शिलाजत्वादि लोहम्—शिलाजीत, मुलेठी, सोंठ, मिर्च, पीपरा तथा सोनामाखी सम भाग ले तथा सर्व चूर्ण सम लौहभस्म लेवें। इन्हें एकत्र अच्छी तरह मिला उचित मात्रा में दूध के साथ खावें तो राजयक्ष्मा का शीघ्र नाश होता है।

कुमुदेश्वरो रस—स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, गन्धक, मोती, सुहागा, चांदी और सोनामाखी, समभाग ले कांजी में पीसकर गोला बनावें। उस गोले के ऊपर कपड़ मिट्टी कर सुखा फिर उस गोले को लवण-यन्त्र में रखकर एक रात पाक करें अथवा मृदुपुट में पाक करें तो कुमुदेश्वर रस तैयार हो जाता है। इसकी २ रत्ती की मात्रा घी तथा मिर्च चूर्ण में मिलाकर चाटें तो राजयक्ष्मा शान्त हो जाता है।

क्षय केशरी रस—सोंठ, मरिच, पीपरा, बहेड़ा, आंवला, इलायची, जायफल, लौंग, प्रत्येक १ भाग, लोह भस्म ४॥ भाग तथा रससिंदूर ४॥ भाग, एकत्र मर्दन कर उचित मात्रा में शहद के साथ चाटने से क्षयरोग का नाश होता है। यह क्षय केसरी रस है।

वृहच्चन्द्रामृतो रस—पारा १ तोला, गंधक १ तोला, निश्चन्द्र अभ्रक भस्म ४ तोला, कपूर आधा तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्र अच्छी तरह मारा हुआ १ तोला, लोह १ कर्ष, बिधारे के बीज, विदारी, शतावर, तालमखाने, बला, अतिबला, कौंच के बीज, जावित्री, जायफल, लौंग, भांग के बीज, सफेद राल, प्रत्येक आधा तोला प्रमाण लेवें। पहले पारा और गन्धक की कज्जली करें। फिर उसमें अभ्र भस्म तथा कपूर मिलाकर घोटें। काष्ठौषधियों का पिसा छना चूर्ण ही आध-आध तोला लेकर मिलावें। फिर शहद दे देकर खूब घोटें। जब सब एकदिल होजायें तब ४-४ रत्ती की गोलियां बना लेवें। एक गोली लेकर पीपरा चूर्ण तथा शहद के साथ चाटें तो क्षय आदि नाश होजाते हैं।

महामृगांको रस—निरुत्थ स्वर्णभस्म १ भाग, रस सिन्दूर दो भाग, मोती भस्म ३ भाग, गंधक ४ भाग, सोना माखी ५ भाग, चांदी ४ भाग, मूंगा भस्म ७ भाग, सुहागे की खील २ भाग, एकत्र बिजौरे के रस से ३ दिन तक पीसें फिर गोला सा बना लेवें। उसे धूप में सुखाकर मूप में रख, लवण यन्त्र में रखें और यन्त्र का मुख बन्द कर चूल्हे पर रख चार पहर तक पाक करें। पाक होने पर उसे निकाल चूर्ण कर लेवें तथा उसका ६४ वां भाग हीरा भस्म या उसके अभाव में १६ वां भाग वैक्रांत भस्म मिलावें। यह सिद्ध महा मृगांक रस है, श्री नन्दिनाथ जी ने इसे प्रकाश किया है। इसकी २ रत्ती की मात्रा तथा घृत या पीपरा चूर्ण के साथ खावें और क्षय रोग-कथित उपचार करें। बल्य तथा वृष्य भोजन खावें। तथा रस सेवन का जो अपथ्य ककाराष्टकादि त्याग देवें। यह नाना रूप वाले यक्ष्मा, नानाज्वर, गुल्म, विद्रधि, मन्दाग्नि, स्वर भेद, कास, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, चक्कर आना, आठों महारोग, गल रोग, पांडु, कामला, पित्त के सब रोग तथा अन्यान्य रोगों का भी नाश करता है।

क्षय केसरीरस—अभ्र, रससिन्दूर, लोह, ताम्र, सीसा, कांसी, मंडूर, रूपामाखी, मैनसिल, रांगा, जस्ता, हरताल, शंख, सुहागा, सोनामाखी, वैक्रान्त, कान्तलोह, सोना, मूंगा, मोती, कौड़ी, हिंगुल तथा कान्त पाषाण और गंधक समभाग ले खरल में डाल एकत्र चूर्ण कर लेवें। फिर चीता तथा आक के दूध से भावना दें, तीन दिन लघुपुट में पाक करें। फिर बिजौरा नींबू, त्रिफला, चीता, अमलवेत, भांगरा, कनेर और अदरख के रसों से अलग-अलग ३-३ बार भावनायें लघुपुट में लोहपात्र में रखकर देवें। यह वात, पित्त तथा कफ और सन्निपात एवं एकांग तथा सर्वांग गत वातरोगों को नष्ट करता है।

अनुपान—शक्कर, पीपराचूर्ण, मुलहठी या अदरख का रस अथवा रोगानुसार शमन औषधियों के साथ सेवन करें। यह वात, एकादश क्षय, शोष, पाण्डुरोग, क्रिमिरोग, पांच प्रकार का कास, श्वास, प्रमेह, मेदरोग, उदररोग, पथरी शर्करा, शूल, तिल्ली, गुल्म, हलीमक तथा अन्यान्य सब

व्याधियों का नाश करता तथा बल, वीर्य और स्मृति को देता है और रसायन है। यह क्षयकेसरी रस है।

क्षयारि—विधि पूर्वक शुद्धकर भस्म किया हुआ सुवर्ण १ भाग तथा मीठा विष चौथाई भाग एकत्र मिलाकर १ रत्ती की मात्रा में एक वल्ल पीपराचूर्ण तथा घृत के साथ चाटें तो राजयक्ष्मा, ज्वर, पाण्डु, अर्श, श्वास, कास, पुष्ट ग्रहणी तथा क्षत और क्षय प्रभृति रोगों को दूर करता है।

क्षय संहार—विमल याने रूपामाखी की भस्म १ भाग, त्रिकुटा प्रत्येक १ भाग तथा त्रिफला प्रत्येक १ भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर रखें अथवा घृत से मर्दन कर गोलियां बना रखें। इसके उपयुक्त मात्रा में घृत के साथ सेवन करें तो दुर्जय हृद्रोग, शोथ, पाण्डु, प्रमेह, अरुचि, शूल, ग्रहणी, गुल्म, राजयक्ष्मा, कामला तथा सब प्रकार के पित्त और वात के रोगों को नष्ट कर देता है। अन्यान्य रोगों को भी यथोपयुक्त अनुपान के साथ देने से आरोग्यता करता है। इस एक दवा के रहने पर अन्यान्य योगों की आवश्यकता नहीं, एक ही से सब रोग दूर हो जायेंगे।

रजतादि लौहम्—शुद्ध रजत भस्म १ भाग, अभ्रक भस्म १ भाग, सर्वसम याने २ भाग, त्रिकुटा चूर्ण मिलित तथा त्रिफला चूर्ण भी मिलित ही दो भाग एकत्र कर सर्वसम (६ भाग) लोहभस्म भी मिलावें और रख लेवें। इसे उपयुक्त मात्रा में घृत के साथ प्रातःकाल ही खाने को देवें तो यक्ष्मा, पाण्डु, उदर रोग, अर्श, श्वास, खांसी, सर्वविध नेत्ररोग तथा समस्त पित्त विकारों को दूर करता है।

नित्योदयो रस—शुद्ध पारा और गन्धक प्रत्येक १ शुक्ति (२ तोला) लेकर एकत्र पीसकर निश्चन्द्र कज्जली करें। फिर बेल की छाल, अरणी की छाल, स्योनाक की छाल, गम्भारी की छाल, पाढ़ल की छाल, बला, मोथा, पुनर्नवा, आमला, बड़ी कटेहली, वांसा के पत्ते, विदारीकन्द और शतावर, प्रत्येक का एक-एक कर्ष रस दे देकर पृथक पृथक मर्दन करें। फिर उसमें स्वर्णभस्म, रजतभस्म, सोनामाखी भस्म प्रत्येक १ शाण भर, कृष्णाभ्रक १ पल, शुद्ध मैनसिल अर्ध पल, जावित्री, जायफल, मांसी, तालीशपत्र और लौंग प्रत्येक अर्ध तोला लेकर मिलावें और सबको बांसे के रस से मर्दन करें और धूप में सुखा लेवें। पुनः उसी सूखी दवा को विदारीकन्द के रस मे मर्दन कर दो रत्ती की गोलियां बनावें। इसको पीपरों का चूर्ण और मधु के साथ खावें। यह नित्योदय नाम का रस श्री विष्णु भगवान का बनाया हुआ है। यह अनेक दिन का पुराना भी पञ्चविध कास, भयंकर राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, धातुगत ज्वर, विषम ज्वर, तिजारी तथा चातुर्थक ज्वर, अर्श, कामला, पांडु तथा प्रमेह को नष्ट करता है। इसके सेवन से मनुष्य सब रोगों से मुक्त होकर कामदेव के समान शरीर वाला हो जाता है।

लघु लोकनाथ रस—कौड़ियों की भस्म १ भाग, मण्डूर १ भाग, कालीमिर्च २ भाग, इन तीनों औषधियों को एकत्र करके घी में खरल कर लेवें। जब घी कड़ा हो जावे तब नागबेल के पानों के रस में खरल करके १-१ माशे की गोली बनावें। शहद के साथ अथवा मक्खन के साथ एक-एक प्रहर के अन्तर से खांय तो सामान्य क्षय रोग दूर होता है।

इलायची, अजमोद, त्रिफला, तुरटी, सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता और नीम खैरशाल बिजौरा इनसे उपजे सार, भिलावा, वायविडंग, ये सब अलग-अलग ३२ तोले लेकर १६ गुने पानी में पकावें। १६ वां भाग शेष रहने पर ६४ तोला घृत को पकावें। सिद्ध होने पर ५४ तोला वंशलोचन, १२० तोला मिश्री, १२८ तोला मधु और १२ तोला दालचीनी, इलायची, तेजपात इनका चूर्ण मिलाकर कड़छी से मिला चाटें, दूध का अनुपान। क्षय रोग को दूर करता है।

राजयक्ष्मा—क्षयरोग की शास्त्रीय-चिकित्सा

तालीसादि चूर्ण—तालीशपत्र १ भाग, कालीमिर्च २ भाग, सोंठ ३ भाग, पिप्पली ४ भाग, दालचीनी ½ भाग, छोटी इलायची ½ भाग, ३२ भाग श्वेतखांड व मिश्री। मात्रा—१-२ माशा तक। यह श्वास, कास, क्षय को नष्ट करता है।

यक्ष्मा के रोगी को मोर का मांस दें और गिद्ध, उल्लू चाषपक्षी, इनके मांस को मोर का मांस कहकर

रोगी को प्रयोग करायें। लोमड़ी, बड़े नेवले, बिल्ले का मांस तथा गीदड़, सियार के बच्चों का मांस विधिवत् बनाकर शशक के नाम से रोगी को दें। हाथी, गैंडा, घोड़ा इनके मांसों को वेशवार करके भैंसे का मांस कहकर मांस की वृद्धि के लिये रोगी को दें। मोर, तीतर, मुर्गा, हंस, शूकर, ऊंट, गवा, गौ, भैंसा इनके मांस परम हितकर है।

यक्ष्मा में मद्यपान हितकर है क्योंकि—मद्य-तीक्ष्ण उष्ण, विशद् और सूक्ष्म गुणयुक्त होती है और अतएव वह बलात् स्रोतों के मुख को खोल देती है। इनके खुल जाने से रस आदि सातों धातुयें पुष्ट होती हैं और धातुओं के पुष्ट होने से यक्ष्मा शीघ्र शान्त हो जाता है।

दशमूलादि घृत—गव्यघृत २ प्रस्थ, दशमूल क्वाथ ८ प्रस्थ, दूध २ प्रस्थ, मांस रस ८ प्रस्थ, कल्कार्थ जीव-

यक्ष्मा के कारण एवं चिकित्सा
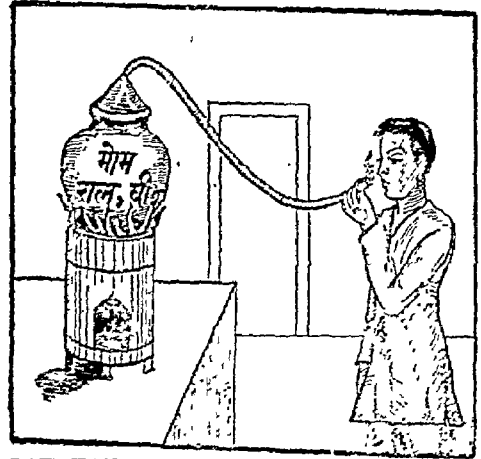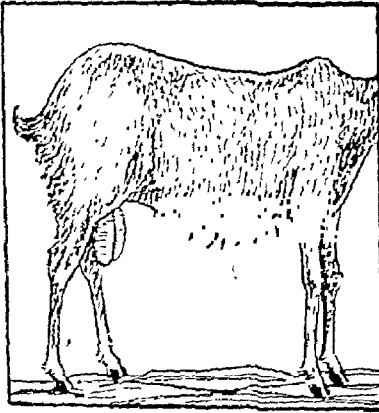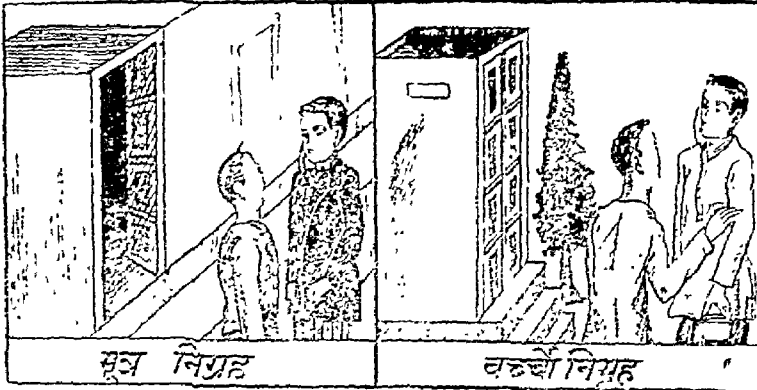
जिसे वात प्रधान यक्ष्मा हो उसे प्रसह, भूशम, आनूप, जलज और जलचर पशु पक्षियों के मांस उचित मात्रा में आहार के लिये देने चाहिए। प्रतुद, विष्किर और धन्वज पशु-पक्षियों के मांस कफ-पित्त से आक्रान्त यक्ष्मा के रोगियों को प्रयोग कराने चाहिए।

जो पुरुष नित्य वारुणी का मण्ड पीता है और बहिः परिमार्जन का सेवन करता है, वेगों को धारण नहीं करता उसे यक्ष्मा नहीं हो सकता।

नीयगण आदि मधुर द्रव्य मिलित १ शराव। यथा विधि घृत को सिद्ध करें। मात्रा—आधा तोला। यह परम शोष नाशक है।

पञ्चकोलादि घृत—गव्यघृत २ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ, कल्कार्थ-पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, यवक्षार मिलित १ शराव। यथाविधि सिद्ध यह घृत स्रोतों का शोधन करता है। मात्रा ½ तोला।

रास्नादि घृत—घी २ प्रस्थ, रास्ना, बलामूल,

गोखरू, शालपर्णी, पुनर्नवा इनका क्वाथ ८ प्रस्थ। दूध २ प्रस्थ। कल्कार्थ-जीवन्ती और पिप्पली मिलित १ शराव। यह घृत शोष को नष्ट करता है। मात्रा—¼ तोला से ½ तोला तक।

उक्त घृतों को यवागुओं के साथ मिलाकर रोगी पीवें अथवा इनमें शहद मिलाकर चाटें, अन्न के साथ मिलाकर खावें।

यक्ष्मा के रोगी को चन्दनाद्य तैल आदि की अच्छी प्रकार मालिश करके स्नेह (तैल) आदि, दूध और जल तीनों मिलाकर पूर्ण कोष्ठ में बैठाकर स्रोतों के बन्ध को खोलने के लिये और बल एवं पुष्टि के लिए अवगाहन करावें। अवगाहन के पश्चात जब कोष्ठक के मिश्रक स्नेह से बाहर आ जाए तब हाथों पर घृत-तैल आदि चुपड़कर सुख से बैठे हुए रोगी के देह को धीमे धीमे मर्दन करें।

उत्सादन योग—जीवन्ती, शतवीर्या (श्वेत दूर्वा अथवा शतावर), विकसा (मंजिष्ठा), पुनर्नवा, असगन्ध, अपामार्ग (चिरचिटा, औंगा), तर्कारी (जयन्ती), मुलहठी, बला, विदारीकन्द, सरसों, कूठ, चावल, अलसी, उड़द, तिल, किण्व (सुराबीज), इनके चूर्ण को एकत्र समपरिमाण में मिश्रित करें। इस चूर्ण से तिगुना जौ का आटा डालें। इस उत्सादन चूर्ण को दही के साथ मिलाकर और थोड़ा शहद डालकर, रोगी की देह पर उबटन मलें। यह उबटन पुष्टिवर्ण और बल को देता है।

लोह रसायन—शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक २ भाग दोनों को खरल में डालकर कज्जली करें फिर इसके समान फौलाद लोह का चूर्ण लेकर उस कज्जली में मिला एक प्रहर पर्यन्त खरल करके घीगुवार के रस में तीन दिन तक खरल करें। तत्पश्चात् उस औषध से गर्म में अत्यन्त धूंआं निकलने लगे तब उसका गोला करके तांबे के बासन में रखकर उसको धान की ढेरी में गाड़ देवें, तीन दिन के बाद अर्थात् चौथे दिन निकालकर उस गोले का चूर्णकर धूप में रखकर वन-तुलसी के रस की ३ पुट देवें। फिर सोंठ, मिर्च, पीपल इनका पृथक पृथक क्वाथ करके एक एक की तीन-तीन पुट देवें। अडूसा, गिलोय और चित्रक इन तीनों का पृथक-पृथक रस निकाल कर क्रम से तीन-तीन पुट देवें। फिर इस रसायन को लोह की कड़ाही में डालकर निम्न औषधों की पुट देवें—हरड़, बहेड़ा, आमला, निर्गुण्डी, अनार की छाल, कमलकन्द, भांगरा, पियावांसा, पलाश, केला का कन्द, विजयसार, नील पुष्पी, मुण्डी और बबूल की छाल इनका पृथक-पृथक रस निकाल क्रम-क्रम से एक-एक के रस की तीन-तीन पुट देवें, पश्चात् इस रसायन को कोल प्रमाण सहित और घी एकत्र मिला उसमें डालकर सेवन करें। यह श्वास-कास में अति उपयोगी है। राजयक्ष्मा में लाभ करता है।

राजमृगांक रस—पारे की भस्म ३ भाग, सुवर्ण की तथा अभ्रक की भस्म १-१ भाग, मनःशिला, गन्धक और हरताल ये तीनों शुद्ध की हुई दो-दो भाग लें सबको एकत्र खरलकर चूर्ण कर लेवें, फिर बड़ी-बड़ी पीली कौड़ी ले उनमें इस चूर्ण को भरके मुख को बकरी के दूध में पिसे हुए सुहागे से बन्द कर देवें, फिर उन कौड़ियों को हांडी में रख उस हांडी के मुख पर दूसरी छोटी हांडी धूप में रख के उसकी सन्धियों को कपड़मिट्टी से बन्द कर देवें। सुखाकर आरने उपलों के गजपुट से रख फूंक देवें। जब शीतल हो जावे तब उस सम्पुट से रस निकालकर रक्खें।

मात्रा—राजमृगांक रस ४ रत्ती, दस पीपल और १६ कालीमिर्च इन दोनों के चूर्ण में मिलाकर मधु से चाटने पर क्षय रोग दूर होता है।

स्वयमग्नि रस—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर दोनों की कज्जली करके फिर इसमें समान भाग फौलाद लोह का चूर्ण मिलाकर घीग्वार के रस में दो प्रहर पर्यन्त खरल करें, फिर इसका गोला बनाकर ताम्र के कटोरे में उस गोले को रख के उसके ऊपर बड़ के पत्ते ढककर ४ घड़ी पर्यन्त धूप में रख देवें। जब गोला अत्यन्त गर्म हो जावे तब उसको धान की राशि में गाड़ देवें। एक दिन रात्रि के पश्चात् उसको निकालकर कपड़े में छानलें और पानी में डालें तो यह भस्म निश्चय पानी में तैरने लगे। इस भस्म को खरल में डालकर निम्न औषधों के रस की भावना देवें—घीग्वार, भांगरा, मकोय, पियावांसा, मुण्डी, पुनर्नवा, सहदेई, गिलोय, नीली निर्गुण्डी और चित्रक इनके पृथक पृथक सात पुट देवें।

मात्रा और अनुपान—सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़-बहेड़ा-आंवला, इलायची, जायफल और लौंग इनका सम-भाग चूर्ण करें। इस चूर्ण के समान स्वयमग्नि रस लेवें। दोनों को एकत्र शहद में मिलाकर दो निष्क प्रमाण सेवन करें तो क्षय रोग नष्ट होता है।

शोष निदान एवं चिकित्सा

आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि—

अतिव्यवायिनो वाऽपिक्षीणे रेतस्यनन्तरम् ।

क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥

इसका अर्थ नीचे स्पष्ट किया जा रहा है। विशेष बात यह है कि शोष भी राजयक्ष्मा ही है, इसको क्षय भी कहते हैं। शोष को पृथक करके पढ़ने से व्यवायशोषी, जराशोषी, अध्यशोषी, व्यायाम शोषी, शोकशोषी, व्रण-शोषी और उरःक्षत पीड़ा शोषी का ग्रहण किया गया है। वस्तुतः ये हैं सभी राजयक्ष्मा के ही भेद। निदान एवं चिकित्सा स्तेकर्म के लिए इनका पृथक पाठ है। शेष व्याख्या निम्न प्रकार से है।

बहुत से रोगों का आश्रय, श्वास, कास आदि बहुत से रोगों के आगे चलने वाला त्रिदोष लक्षणों के कारण कठिनाई से जानने योग्य, परस्पर विरोधी चिकित्सा के कारण कष्ट साध्य अति बलवान रोग शोष है। रस आदि धातुओं का
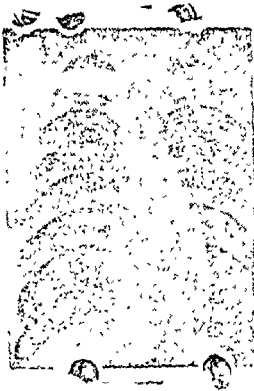
यक्ष्मा

शोषण करने से शोष कहा जाता है। क्रियाओं का क्षय करने से क्षय कहा जाता है। राजा चन्द्रमा को यह रोग हुआ था इसलिए इसको कुछ लोग राजयक्ष्मा कहते हैं। यह क्षय रोग वात आदि दोषों से पृथक् रूप भी होता है ऐसा कई कहते हैं। परन्तु शोष रोग एक ही है। क्योंकि राजयक्ष्मा रोगी में ११ लक्षण विद्यमान रहते हैं। शास्त्र की युक्ति से चिकित्सा क्रम पृथक न होने से, प्रथम प्रजापति के क्रोध से एक ही रूप में उत्पन्न होने के कारण शोष एक ही प्रकार का सन्निपातजन्य माना है। इस शोष में दोषों की अधिकता से दोषों के लक्षण प्रगट होते हैं। परन्तु शोष एक ही है। कुपित हुए दोष जब रोगी के शरीर में व्याप्त होते हैं तब धातुक्षय से, वेगों के अवरोध से, आघात से और विषमासन से क्षय रोग उत्पन्न होता है। उत्कट कफप्रधान दोष से रसवह मार्ग बन्द हो जाने से क्षय रोग उत्पन्न हो जाता है। अतिमैथुन करने वाले पुरुष में वीर्य के क्षीण हो जाने के पीछे सब धातु क्षीण हो जाती हैं तब मनुष्य सूख जाता है।

शास्त्रीय चिकित्सा—शोष रोग की चिकित्सा राजयक्ष्मा के ही समान है। अतः राजयक्ष्मा की चिकित्सा का प्रकरण भी अवश्य देखें।

विशेष प्रयोग—रस सिन्दूर १ तोला, शतपुटी लोह भस्म १ तोला, सुवर्ण भस्म १ माशा, सुवर्ण माक्षिकभस्म १ तोला, रजत भस्म ३ माशा, मुक्तापिष्टी १ माशा, गिलोय सत्व १ तोला, त्रिफला घनसत्व १ तोला, केशर ४ माशा, कस्तूरी १ माशा, अभ्रक सत्व भस्म ५ माशा, त्रिकटु का चूर्ण १ तोला, पुनर्नवा मांडूर २ तोला, शंख भस्म १ तोला इन सबको खरल में डालकर सूखा ही खूब घोटकर, भांगरा स्वरस, तुलसी स्वरस, अदरख स्वरस, बिजौरा स्वरस, वांसा स्वरस इन पांचों की अलग-अलग ३-३ दिन तक की १-१ भावना देवें। तत्पश्चात् १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। प्रातः सायं १-१ गोली मधु या घृत के साथ सेवन करने से शोष रोग चाहे वह कोई सा हो और कैसा ही क्यों न हो निश्चय ही नष्ट हो जाता है। अथवा—

पुनर्नवा मांडूर, रस सिन्दूर, वैक्रान्त भस्म इन तीनों को समान भाग लेकर प्रथम भावना असगन्ध के क्वाथ की, दूसरी भावना शतावरी के ताजे स्वरस की, तीसरी भावना विदारी कन्द के ताजे स्वरस की, चौथी भावना वज्रकन्द के रस की। पांचवीं भावना नासपाती के स्वरस की। छठी भावना बकरी के दूध की, सातवीं भावना गो दुग्ध की देकर जो शेष तैयार हो उसके समप्रमाण ताजा आम कल्क मिलादें और त्रिकटु, त्रिमद और चित्रक का कल्क भी सम्पूर्ण का बत्तीसवां भाग मिलादें और फिर समप्रमाण गोघृत में भूनकर रख लें। १ माशा से २माशा तक की मात्रा में ताजा दूध से सेवन करें। यह शोष, क्षय, उरःक्षत, व्यायाम शोष को विशेष रूप से नष्ट करता है। मैथुन से कमजोरों के लिये यह अमृत है।

उरः क्षत वर्णन

उरःक्षत का कारण–धनुष को अधिक खींचते हुए, अत्यधिक भार कोउठाते हुए, ऊंची नीची जगह से गिरने पर, अपने से अधिक बलवान से युद्ध करते हुए, दौड़ते हुए, बहुत बलवान घोड़े, बैल, भैंसे आदि रोकते हुए, बहुत भारी बोझ को फेंकते हुए। तात्पर्य यह है कि अपनी शक्ति से अत्यधिक कार्य या परिश्रम करने से वक्षस्थल में व्रण हो जाता है। इसमें अधिक स्त्री प्रसंग भी कारण है। भोजन भी अतीत काल में करने से छाती में व्रण हो जाते हैं। इसको क्षतक्षीण के नाम से पुकारते हैं।

क्षय रोगी को खून आना

उरःक्षत का लक्षण—छाती में अधिक वेदना या पीड़ा होती है, छाती फटती है, दो टुकडे होती प्रतीत होती है, जलन सी प्रतीत होती है। पार्श्व दबे से प्रतीत होने लगते हैं। अङ्ग शुष्क हो जाते हैं। अङ्ग कांपते हैं। वीर्य, बल, वर्ण (कान्ति) रुचि, भोजनेच्छा, अग्नि धीरे-२ मन्द हो जाती है। ज्वर पीड़ा, मन की दीनता, अतिसार, जठराग्नि का नाश, भोजन का न पचना, बार-२ खांसी आती है। खांसने से दूषित, काला या पीला दुर्गन्ध युक्त बंधा हुआ (गांठें सी) मात्रा में अधिक तथा रक्त मिश्रित कफ बाहर आता है। शुक्र और ओज के क्षीण होने से उरःक्षत का रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है। उरःक्षत होने पर छाती में दर्द, रक्त का वमन और कास विशेष रूप से होता है। क्षतक्षीण अर्थात् शुक्रक्षय से रक्तमिश्रित मूत्र तथा पार्श्वपीड़ा पीठ और कटि में जकड़, वेदना अथवा स्थिरता आ जाती है।

चिकित्सा–

१—जब छाती में क्षत हुआ पता लगे तब लाख को मधु मिलाकर दूध के साथ पी लेवें। इसके पचने पर दूध और शर्करा के साथ अन्न खावें।

२—रोगी को पार्श्वशूल हो और वस्तिशूल हो तथा अल्पपित्त और अल्पाग्नि हो तो लाख को सुरा के साथ पीवें। यदि रोगी को अतिसार हो तो लाख को मोथा, अतीस, पाठा और इन्द्र जौ के क्वाथ (काढ़ा) के साथ पीवें।

३—दीप्ताग्नि रोगी लाख, घी, मोम, जीवनीयगण की औषधियां, मिश्री, त्वकक्षीरी, गोधूम (गेहूँ) के आटे की लप्सी बनाकर पीवें। दूध भी अवश्य डालना चाहिए।

४—उरःक्षत रोगी-सन्धान के लिए इक्षुवालिका, विस (कमल ककड़ी भसूड़े), पीपलामूल, पद्मकेशर और चन्दन इनके द्वारा पकाये दूध में मधु मिलाकर पीवें।

५—उरःक्षत में ज्वर और दाह होने पर कच्चे जौ के चूर्ण को चौगुने दूध में पकाकर घी में मिलाकर शर्करा और मधु के साथ खावें अथवा शक्कर और मधु के साथ मिले जौ के सत्तुओं को दूध में मिलाकर खावें।

६—कास, पार्श्वशूल, पोरुओं में पीड़ा और अस्थि-शूल होने पर महुए के फूल, मुलहठी, द्राक्षा, वंशलोचन, पीपल और बला इनके चूर्ण को घी और शहद में मिला कर चाटें।

७-एलादिगुटिका-इलायची, तेजपात, दालचीनी ये प्रत्येक १ तोला, पीपल २ तोला, शर्करा, मुलहठी, खजूर, दाख प्रत्येक ४-४ तोला इन सबका चूर्ण करके मधु के साथ गोलियां बनावें। रोगी को चाहिए कि प्रतिदिन २ तोला परिमित गुटिका खायें। ये गुटिकायें वीर्य उत्पादिका हैं। कास, श्वास, ज्वर, हिचकी, वमन, मूर्छा, मद, भ्रम, रक्त

वमन, प्यास, पार्श्वशूल, अरोचक, शोष, प्लीहा, आढ्यवात, स्वरभेद, क्षत, क्षय और रक्तपित्त नष्ट करती हैं।

(९) रक्तमिश्रित थूक आने पर–शर्करा, पुनर्नवा और लाल चावलों का चूर्ण मिलाकर खावें। द्राक्षारस दूध घी, इनके साथ सिद्ध करके पीवें। अथवा महुवे के फूल, मुलहठी इनका क्वाथ, क्वाथ के तुल्य दूध इनमें चावलों का चूर्ण पकाकर पीवें।

(१०) कृश और क्षीण उरःक्षत रोगी–जौ, गेहूँ, जीवक, ऋषभक इनके चूर्ण को शर्करा के समान भाग लेकर मधु के साथ चाटें, ऊपर से गरम दूध पीवें।

(११) उरःक्षत और क्षीण शुक्रपुरुष–वट, गूलर, पीपल, पिलखन, साल, प्रियंगु, ताड़ का मस्तक, जामुन की छाल, पियाल, पद्माख, पीतशाल इनको समान भाग लेकर इनके कल्क के साथ पके दूध में से निकाले घी के साथ चावल खावें।

(१२) मुलहठी और नागवलाका क्वाथ तृतीयांश रहने पर दूध, घीके समान, कल्कार्थ क्षीर काकोली, पीपल, वंशलोचन इनके कल्क से दूध के समान घृत (१ भाग) पाक करें। इस घृत को २ तोला मात्रा में नित्य खावें। नित्य गरम करके खाने के उपरांत उष्णोदक अवश्य पीवें।

(१३) चन्द्रामृतावटी—त्रिकटु-त्रिफला, चव्य, धनियां, जीरा, सैंधव प्रत्येक १-१ तोला वकरी के दुग्ध से घोटें। शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक इनकी कज्जली ये २-२ तोला, लोह भस्म २ तोला, सुहागा ८ तोला, काली मिर्च ४ तो. इन्हें भी उसीमें मिश्रण कर ४-४ रत्ती की गोलियां वना लें। रक्त कमल का रस, नील कमल का रस, कुलथी का क्वाथ, पिप्पली चूर्ण तथा मधु एवं अदरक का रस, इत्यादि अनुपान से। रोगी प्रातः शुद्ध होकर अमृतेश्वरी का ध्यान कर वटिका का सेवन करें। इसके सेवन से सम्पूर्ण कास, रक्त निष्ठीवन, ज्वर, श्वास, तृष्णा, दाह, भ्रम, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, क्रिमि, हृद्रोग, पांडु, जीर्ण ज्वर, प्रभृति रोग नष्ट होते हैं। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करती है तथा वल वर्ण को वढ़ाती है। इस वटी के सेवनोपरान्त वांसा, गिलोय, भारंगी, मोथा, छोटी कटेली (मिलित द्रव्य २.तो.) क्वाथार्थ जल आध सेर शेष २ तोला) इनका क्वाथ पीने से रोगी को विशेष लाभ होता है।

(१४) खजूर, भार्गी, चिरौंजी, पीपल, मौहा, एला, आमला सवको समान भाग लेकर, मिश्री, मधु घृत, इन से लेहन योग्य वना कर प्रयोग करें। कास, उरःक्षत, श्वास, इत्यादि रोगों को नष्ट करता है।

(१) मञ्जिष्ठा, हरिद्रा, सौवीरांजन, चित्रक, पाठा, मूर्वा, पीपल समान भाग लेकर चूर्ण वनालें, उरःक्षत, क्षतकास, क्षय, श्वास पर मात्रावलानुसार मधु से चाटें। अथवा गन्ने के रस में पकाकर चाटने योग्य वनाकर सेवन करना चाहिए अथवा घृत के साथ खावें।

(१६) आमला चूर्ण घृत के साथ पाककर पथ्य भोजन करने वाला दूध से पियें। उरःक्षत, कास को नष्ट करता है।

(१७) गेहूँ का आटा, जौ का आटा, काकोली, ऋद्धि-वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, मधु, घृत मिलाकर दुग्ध के साथ पिलाना चाहिये। उरःक्षत, क्षय की खांसी में पिलाना चाहिये।

(१८) गुड़ का पानक वनाकर किञ्चित् गर्म करके शीत में मधु मिलाकर पियें, मात्रा में कृष्ण मिर्च मिलालें।

(१) कल्याण गुड़—३ सेर आमले का रस, २॥ सेर गुड़, पीपलामूल, चव्य, जीरा श्वेत, सौंठ, मिर्च, पीपल, गजपीपल, हाऊवेर, त्रिफला, अजवायन, अजमोद, वायविडङ्ग, सैंधव, पाठा, धनियां २-२ तोला, निशोथ ३८ तोला, निशोथ को तिल तैल में भून कर (तैल ३२ तोला) पकावें। अवलेह सदृश होने पर मृदु कोष्ठ, क्रूरकोष्ठ, मध्यकोष्ठ का विचार करके मात्रा (१ तोला सामान्य मात्रा) में खिलाना चाहिए। तेजपात, दालचीनी, एला योग्य मात्रा में यह भी मिला लें। इससे सम्पूर्ण ग्रहणी विकार, श्वास, कास, स्वरभेद, शोथ शांत होते हैं। वहुत समय का नष्ट जठराग्नि और नपुन्सकता, स्त्री रोग एवं वान्ध्य यह कल्याणगुड़ 'शास्त्रोक्त है' शांत करता है।

(२०) विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शतावर, असगन्ध, कमल चारों, सारिवा दोनों, अष्टवर्ग, गन्ने के रस एवं दुग्ध में पाक करें, दुग्ध, शर्करा, सव वस्तुओं को यथा योग्य डालकर घृत पाक करें। प्रातः पित्तज कास एवं मैथुन से उत्पन्न क्षतज कास उरःक्षत में पान करें। घृत पाक विधि से पकाना चाहिए।

(२१) लवंगादिचूर्ण—लौंग, शीतलचीनी, खस, लालचन्दन, तगर, नीलोत्पल, श्वेत जीरा, इलायची छोटी, अगर, दालचीनी, नागकेशर, पीपल, सोंठ, जटामांसी, मोथा, अनन्तमूल, जायफल, बंशलोचन, प्रत्येक का चूर्ण १ भाग, खांड ८ भाग। यह रुचिकर, तृप्तिकर, अग्निदीपक, वलवर्धक, वृष्य तथा त्रिदोष नाशक है। इसके सेवन से उरःक्षत, तमक-श्वास, गलग्रह, कास, हिक्का, अरुचि, क्षय, पीनस, ग्रहणी, अतिसार, भगन्दर, अर्बुद, प्रमेह, तथा गुल्म आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। मात्रा १ माशे से २ माशे तक।

(२२) तालीशाद्य मोदक—तालीशपत्र, मिर्च, सोंठ, पीपल, बंशलोचन क्रम से वृद्धि कर लें। दालचीनी, छोटी इलायची पृथक् पृथक् आधा भाग, खांड पीपल से अठगुनी लें। श्वास, कास, अरुचि, हृदय रोग में यह चूर्ण अग्नि को अत्यन्त दीप्त करता है। अतः अग्निदीपक है। पांडु, ग्रहणी, प्लीहा, यक्ष्मा, ज्वर, वमन, अतीसार, शूल आदि रोग नष्ट होते हैं। तथा मूढ वात का अनुलोमन करता है। इस चूर्ण को खांडके साथ मोदकवत् पाक करके गुटिकायें भी बनती हैं।

(२३) कर्पूराद्य चूर्ण—कपूर, दालचीनी, शीतलचीनी जायफल, जावित्री, प्रत्येक १ भाग, लौंग २ भाग, जटामांसी ३ भाग, काली मिर्च ४ भाग, पीपल ५ भाग, सोंठ ६ भाग सम्पूर्ण चूर्ण के समान खांड। यह चूर्ण हृद्य है। दाह, क्षय, कास, स्वरभेद, पीनस, श्वास, वमन कण्ठ रोग आदि को नष्ट करता है। औषधि द्वेषी रोगियों को अन्न के साथ मिलाकर इस चूर्ण का सेवन करना चाहिए। मात्रा १ माशा।

(२३) एलादि चूर्ण—छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग प्रत्येक १ भाग, पिण्डखजूर २ भाग, द्राक्षा, मुलहठी, खांड, पीपल प्रत्येक ४ भाग, इसे मधुके साथ मिश्रित कर उरःक्षत रोगी तथा क्षय रोगी को खिलाना चाहिए।

(२४) वासा मूल त्वक् को ८० सेर जल में पकावें। जब २० सेर क्वाथ अवशेष रहे तब उतार कर छानलें। इस क्वाथ में १० सेर खांड मिलाकर पाक करें। इसमें उपयुक्त समय पर हरड़ का चूर्ण १ आढक डालकर पाक करें। पाक के सिद्ध काल में पिप्पली चूर्ण १६ तोले, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर प्रत्येक का चूर्ण ८ तोले, इनका प्रक्षेप देकर अच्छी प्रकार मिश्रित करदें। शीतल होने पर मधु एक कुड़व (६४ तोला) मिलाकर रोगी को सेवन करावें। मात्रा—१ तोला। इसे रक्तक्षय, क्षतक्षय, रक्तपित्त, पित्त, कास, श्वास तथा यक्ष्मा में सेवन करावें।

क्षयकास के लिये चार घृत योग

१. यथा योग्य दूध में गुठली रहित आंवलों को पीस लेना चाहिए। इन आंवलों को घृत में मर्दन करके पीना चाहिए।

२. दुगुने अनार के रस में घृत से चतुर्थांश सोंठ, मिर्च, पीपल इनके कल्क से घृत पकाना चाहिए। इस घृत को उचित मात्रा में सेवन करें।

३. चतुर्गुण जल में घृत से अष्टमांश यवक्षार कल्क से घृत सिद्ध करें। इस घृत को क्षय कास को रोगी भोजन के पश्चात खायें।

४. घृत में चतुर्गुण बकरी के दुग्ध में पिप्पली और गुड़ घृत से चतुर्थांश (मिलित) मिलाकर घृत सिद्ध करें। ये चारों घृत क्षतकास, उरःक्षत रोगियों के लिये अग्निवर्धक हैं और दोष से अविरुद्ध कोष्ठ, छाती और स्रोतों को शोधन करने वाले हैं।

पिप्पल्यादि लेह—पिप्पली १ कर्ष, मुलहठी १ कर्ष, मिश्री १ कर्ष, गाय का दूध २ प्रस्थ, बकरी का दूध २ प्रस्थ, गन्ने का रस २ प्रस्थ, जौ, गेंहूं, मुनक्का इनका चूर्ण आंवले का रस तथा तेल प्रत्येक वस्तु दो पल लेकर मृदु अग्नि पर पकाना चाहिए। जिस समय वह तैयार हो जाये तब इसमें मधु और घृत मिलाना चाहिये। यह उरःक्षत नाशक है। कास, हृदय रोग, कार्श्य, वृद्ध तथा अल्प शुक्र वालों के लिए हितकारी है।

उरःक्षत कास से पीड़ित रोगियों के लिए पित्तकास की चिकित्सा करनी चाहिए। दूध, घी, मधु, इनका विशेष प्रयोग करना चाहिए। यदि दो दोषों का मिश्रण हो तो निम्नलिखित विशेष करणीय है। वातपित्त से यदि शरीर में पीड़ा हो तो आगे कहे जाने वाले घृतों से अभ्यङ्ग करना हितकारी है। यदि वायु से पीड़ा हो तो वातनाशक तेलों से अभ्यङ्ग करना चाहिए, हृदय पीड़ा और पार्श्वपीड़ा में जीवनीय नामक घृत का पान करना चाहिए।

—वैद्य श्री वागीशदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
पुरातन रोग विशेषज्ञ धन्वन्तरि औषधालय,
स्टेशन रोड, गाजियाबाद (यू० पी०)

उर:क्षत की चिकित्सा

बलादि चूर्ण—खिरैंटी, असगंध, कुम्भेर के फल, सतावर और पुनर्नवा इनको दूध में पीसकर नित्य पीने से उर:क्षत शोष नष्ट होता है।

एलादि गुटिका—इलायची ६ माशे, तेजपात ६ माशे, दालचीनी ५ माशे, पीपल २ तोले, मिश्री ४ तोले, मुलैठी ४ तोले, खजूर (छुआरे) ४ तोले और दाख ४ तोले इनको एकत्र पीसकर शहद में मिलाकर १-१ तोले की गोलियां बनावें। इनमें से १ गोली नित्य खायें तो उर:क्षत, शोष, ज्वर, खांसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, शोष, पसलियों की पीड़ा, अरुचि, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, रक्त-पित्त और स्वरभंग ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं। ये गोली कामी पुरुषों के लिए अत्यन्त हितकारी हैं और तृप्ति को करने वाली हैं।

द्राक्षादि अवलेह—उत्तम बड़ी-बड़ी काली दाख ६४ तोले, मुलहठी ३२ तोले स्वच्छ जल में पकावें। जब पकते पकते चौथा भाग क्वाथ शेष रह जाय तब उसमें मुलहठी का चूर्ण ४ तोले, पिसी हुई दाख ४ तोले, पीपल का चूर्ण ८ तोले और घी ६४ तोले भर डालकर चौगुने दूध में पकावें। जब पकते पकते केवल घी बाकी रह जाय तब उतार लें, शीतल होने पर ३२ तोले खांड मिला देवें तो द्राक्षादि घृत सिद्ध होता है। यह घृत उर:क्षत शोष, वायु, पित्त, ज्वर, श्वास, विस्फोटक, हलीमक, प्रदर और रक्तपित्त को नष्ट करता है तथा मांस और बल को बढ़ाता है।

अमृतप्राशावलेह—उत्तम गाय के घी में आमले, मजीठ और विदारीकन्द का रस इनको समान भाग मिलाकर पश्चात् जीवनीयगण की समस्त औषधि १-१ तोला, दाख, चन्दन, लालचन्दन, खस, खांड, कमल, पद्माख, महुवे के फूल, सारिवा, कुम्भेर के फल और सुगंध रोहिषतृण इनका कल्क बनाकर घी को दूध में पकावें। जब पककर शीतल हो जाय तब उसमें शहद ३२ तोले, खांड२०० तोले, दालचीनी का चूर्ण २ तोले, इलायची का चूर्ण २ तोले और कमल की केसर का चूर्ण २ तोले इनको मिला देवें तो अश्विनी कुमारों का बनाया हुआ यह 'अमृतप्राश' नाम वाला अवलेह सिद्ध होता है। जितेन्द्रिय होकर इस अवलेह का नित्य सेवन करें। इस पर दूध और मांस के साथ भोजन करें। इस प्रकार करने से उर:क्षत क्षय, रक्त-पित्त, तृषा, अरुचि, श्वास, खांसी वमन मूर्छा, मूत्रकृच्छ्र और ज्वर का नाश होता है। स्त्रियों में प्रीति उत्पन्न होती है तथा बल की वृद्धि होती है। उर:क्षत शोष वाले को जो सुख की इच्छा हो तो जो जो अन्नपान तृप्तिदायक हैं शीतल, दाहरहित हितकारक और हलके, उन सबका सेवन करें तथा शोक स्त्री प्रसंग, क्रोध और परनिन्दा, द्वेष वुद्धि आदि को त्याग देवें, उत्तम शान्ति संतोषादि विषयों का सेवन करें। ब्राह्मण, देवता और गुरुजनों की भक्ति करें तथा ब्राह्मणों से कथाओं का श्रवण करें।

अनुभूत योग—

उर:क्षतारि—शुद्ध वत्सनाभ को गोमूत्र में पीसकर लम्बा गोला बनालें, धूप में सुखालें फिर उसको बकरी के दूध में घोटकर लुगदी बनालें। उस लुगदी में १ तोला शुद्ध सिंगरफ की डली को बन्द करके खूब गोला सा बना दें। धूप में सुखा लें। फिर क्रमशः ७ कपरौटी करें। १० सेर उपलों में फूंक दें। स्वांगशीत होने पर निकालें। लुगदी सहित डली को पीस लें और उसमें से १ माशा भर लेकर ४ माशा सुवर्ण भस्म मिला दें। मात्रा १ रत्ती की। अनुपान—३ रत्ती पीपल का चूर्ण और १ तोला शुद्ध घृत। २४ घण्टों में केवल २ बार। यह गुरु परम्परा से प्राप्त अमूल्य प्रयोग है। इसका मुकाबला कोई दवाई नहीं कर सकती। यह योग उर:क्षत, राजयक्ष्मा, सभी प्रकार के ज्वर, सभी प्रकार की बवासीरें, सभी प्रकार के श्वास रोग और पुरानी से पुरानी संग्रहणी, खून की कमी, सभी खांसियां, सभी तरह की नामर्दी और मधुमेह का सही इलाज है। इस प्रयोग को पास रखने वाला कदापि असफल नहीं होता और न उसको कभी चिकित्सा में मुंह की खानी पड़ती है।

अमृतेश्वर रस—पारे की भस्म, गिलोय का सत्व और मारा हुआ लोह इनको एकत्र करके शहद और घी में मिलाकर प्रतिदिन ६ रत्ती भर चाटें। यह अमृतेश्वर रस राजयक्ष्मा रोग को शमन करता है। यह रस रसेन्द्र

चिन्तामणि में लिखा है।

राजमृगांक रस—मारा हुआ पारा ३ भाग, सोने की भस्म १ भाग, तांबे की भस्म १ भाग, मैनशिल २ भाग, गन्धक २ भाग और हरिताल २ भाग इन सबको एकत्र चूर्ण करके १ बड़ी पीली कौड़ी में भर लेवें, फिर बकरी के दूध में पिसे हुए सुहागे से कौड़ी का मुख बन्द करके उस कौड़ी को मिट्टी के पात्र में रक्खें। फिर बासन पर कपरौटी कर गजपुट में फूंक देवें, स्वांगशीतल होने पर इसको निकाल कर मिट्टी को अलग करके रस निकाल लेवें इसको 'राजमृगांक रस' कहते हैं। इस रस को प्रतिदिन ४ रत्ती भर खाने से क्षयरोग नष्ट हो जाता है। वैद्य १० कालीमिर्च, १० पीपल, शहद और घी के साथ इस रस को देवें। इस रस को सेवन करने से वायु और कफ सम्बन्धी क्षय रोग तत्काल नष्ट हो जाता है।

अग्निरस—शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग इन दोनों की एकत्र खरल में कज्जली बनावें फिर इस कज्जली की बराबर तीक्ष्ण लोहे का चूर्ण लेकर इस कज्जली में मिला देवें, फिर इसको घीक्वार के रस में दोपहर तक खरल करें। फिर इसका गोला बनाकर तांबे के पात्र में रखकर अंडी के पत्तों से ढक कर उस तांबे के पात्र को धूप में धर देवें, जब दोपहर तक गर्म हो जाय तब पीछे धानों के ढेर में गाड़ देवें, पश्चात् ८ दिन में निकालें। फिर इस गोले का चूर्ण करके कपड़े में छान लेवें तो यह चूर्ण अवश्य जल में तैरने लगेगा, तत्पश्चात् त्रिकुटा ३ भाग, त्रिफला ३ भाग, इलायची १ भाग, जायफल १ भाग और लौंग १ भाग सबको एकत्र पीसकर नवभाग रस इसमें मिला देवें तो यह 'अग्निरस' सिद्ध होता है। शहद के साथ इसमें से नित्य ४८ रत्ती भर चाटें तो खाँसी और क्षय का नाश होता है।

यूनानी—

तपेदिक—राजयक्ष्मा—उरःक्षत और शोष नामक रोगों के लिए यूनानी चिकित्सा में प्रधान रूप से 'दिक' रोग को ग्रहण किया जाता है। इसे अरबी में सिल और फारसी में तपेदिक कहते हैं। सिल का सीधा अर्थ है क्षीणता। उरःक्षत के लिए एक और रोग को भी माना जा सकता है—जिसे अरबी में नफसुद्दम कहते हैं। 'नफसुद्दम' नामक रोग का अर्थ है—फुफ्फुस तथा तत्सम्बन्धित अङ्गों से जैसे स्वरयन्त्र फुफ्फुस प्रणाली आदि से खून थूकना। इसे उरःक्षत से मिलती जुलती अवस्था कहा जा सकता है। शोष रोग को हुजाल कहा जाता है।

सिल—यूनानी में सिल के दो भेद बताए गए हैं—(क) सिल हकीकी और (ख) सिल गैर हकीकी। इसी तरह लक्षण और चिकित्सा की दृष्टि से सिल को अन्य दो भागों में बांटा जाता है—[१] तीव्र और [२] चिरज। सिल को वास्तव में तीन अवस्थाओं में वर्णित किया जाता है।

(१) प्रथमावस्था—इस अवस्था में रोगी को अति सूक्ष्म खांसी आती है—बहुत हलका ज्वर होता है। खांसी में किञ्चित पतला भाग और कफ कभी कभी निकलता है—भूख प्यास सब ठीक रहती है। इस अवस्था में चिकित्सा से लाभ हो सकता है।

(२) द्वितीयावस्था—खांसी तेज, थूक में खून मिला हुआ, हर समय ज्वर, हाथ-पांव में तपन, छाती में हलका दर्द होता है। इस अवस्था में पूय भी बनने लगती है। यदि पूय बनने लगे तो प्रतिदिन रात्रि में दो बार ठंड लगकर ज्वर होता है। इसमें शरीर में क्षीणता बढ़ती जाती है। यदि उपचार किया जाये तो रोग तो दूर नहीं किया जा सकता परन्तु रोगी को एक लम्बे समय तक जीवित रखा जा सकता है।

(३) तृतीयावस्था—इस अवस्था में प्रातःकाल सिर और सीना पर पसीना बहुत आता है। बहुत ही दुर्बलता हो जाती है। रात में नींद नहीं आती। पादशोथ एवं दुर्गन्धित मल निकलता है। थूक भी दुर्गन्धित हो जाता है। ऐसी अवस्था में रोगी के शीघ्र मरने की सम्भावना होती है।

इस रोग में चिकित्सा का पहला सिद्धांत रोगी के बल की रक्षा करना है। आहार एवं रहन-सहन उत्तम प्रकार का होना चाहिये। सफाई एवं खुली हवा बहुत आवश्यक है।

खांसी के लिए दमा खांसी के प्रकरण में दिये गए योगों में से कोई योग जो अवस्थानुसार उचित जान पड़े देना चाहिये। यदि रोगी को तीव्र ज्वर न हो तो बल

रक्षा के लिये कुश्ता तिल वुर्द की दो चावल की मात्रा को सात माशे खमीरा गावजवान अम्बरी में मिलाकर देना चाहिये। बल वृद्धि के लिये ही तिला महलूल ३ बूंद अथवा मरवारीद सय्याल ५ बूंद की मात्रा में दिया जा सकता है।

रोगी के पाचन का विशेष ध्यान रखें। यदि रोगी को अतिसार हो जाए तो उसकी चिकित्सा शीघ्रता से करें। इस हालत में अतिसार कमजोरी बढ़ा देता है। आमाशय और अन्त्र को उद्दीप्त करने के लिए सफूफ नमक एक माशा देना चाहिए।

रोगी को विश्राम कराना भी आवश्यक होता है। अधिक शीत एवं अधिक धूप का सेवन करना भी हित-कारक नहीं होता। ऐसी हालत में स्त्री-बकरी अथवा गदही का दूध पिलाना चाहिए। दूध का एक विशेष विधान है कि रोगी को सात तोला की मात्रा में आरम्भ करे तीन दिन तक बराबर,देते रहें। जब चौथा दिन हो तो एक तोला बढ़ावें और नित्य १-१ तोला बढ़ाते हुए ४१ तोला तक देवें। फिर १-१ तोला कम करते जायें और नित्य १-१ तोला कम करते हुए ७ तोला पर ला कर छोड़ दें।

नफसुद्दम—इस अवस्था में फुफ्फुस तथा तत्सम्बन्धित अङ्गों से थूक के साथ रक्त निकलता है। यह अवस्था फुफ्फुसीय रक्त स्रोतों के फट जाने के कारण उत्पन्न होती है। कुछ हृदय रोगों में भी ऐसा होता है। खांसी की उग्रता, बलपूर्वक चिल्लाने, उष्ण औषधियों का प्रयोग करने तथा ताकत से अधिक बलशाली परिश्रम करने से फुफ्फुसीय स्रोतस फट जाते हैं।

रक्त निकलना मात्र ही नफ्सुद्दम नहीं भिन्न-भिन्न स्थानों से रक्त आ सकता है। फुफ्फुसों से होने वाले रक्त-स्राव को ही 'नफ्सुद्दम' कहते हैं। रक्त आने के लक्षण भिन्न होते हैं जो यूनानी चिकित्सा में निम्न प्रकार बताये गये हैं—जो रक्त मसूढ़ों और दांतों की जड़ों से आता है वह थूक के साथ निकलता है और जो कण्ठावमन अर्थात् गलशुण्ठी या मूर्धा वा कण्ठ की सूजी हुई ग्रन्थि से आता है वह खखार के साथ आता है। कण्ठ के भीतर क्षोभ एवं सूखी खांसी आती है और दम लेने में कष्ट होता है। जो सिर से आता से वह कभी खखार के साथ आता है। किंतु इसके साथ नक्सीर के लक्षण जैसे चेहरे की सुर्खी और शिरो गौरव आदि भी पाया जाता है और रक्त निकलने के पीछे सिर में हलकापन मालूम होता है। जो रक्त स्वर-यन्त्र या फुफ्फुस प्रणाली से आता है वह भी खखार के साथ आता है किन्तु प्रमाण में कम होता है और आवेग पूर्वक आता है। जो वक्ष से आता है वह अत्यधिक खांसने से आता है। थोड़े दर्द के साथ और जमा हुआ काले रंग का होता है। सीने में तनावट और भारीपन मालूम होता है। कभी-कभी श्वास लेने में भी कष्ट होता है। जो खास फुफ्फुस से आता है वह पतला रक्त झागदार होता है और खांसी के साथ निकलता है। परन्तु इसके साथ दर्द नही होता। यदि किसी फुफ्फुसियां सिरा के फट जाने से सहसा बहुत सा रक्त निकल जाए या हृदय से रक्त निकल जाए तो कभी मूर्छा और कभी मृत्यु भी हो जाती है। जो रक्त अन्न प्रणाली, आमाशय या यकृत से आता है वह वमन के द्वारा निकलता है और उसका रंग काला-पन लिए हुए होता है। इस हालत में आमाशय के ऊपर जलन भी मालूम देती है। इन लक्षणों को देखकर रोगी की परीक्षा से रोग का निदान किया जा सकता है।

यदि रक्त फुफ्फुसों से आता हो और उसमें शोथ न हो तो सीने पर संग्राही औषधियों का लेप करना चाहिए। यदि किसी फुफ्फुसीय सिरा के फट जाने से एक साथ अधिक रक्त निकले अथवा हृदय से रक्त आया हो और मूर्छा की दशा हो तो रोगी को शीतल गृह में सुखपूर्वक चुपचाप लिटा देना चाहिये। उसका सिर ऊंचा रखें। सीने पर वर्फ रक्खें। चन्दन को अर्क गुलाब में घिसकर उसमें कपड़ा भिगोकर सीने के ऊपर रक्खें।

हलका और सुपाच्य भोजन दें। रोगी को आराम करावें। रक्तरोधक योगों का प्रयोग करावें जिनका वर्णन इसी प्रकरण में आगे किया गया है।

हुजाल—इस रोग को क्षीणता या कृशता नाम दिया जाता है। इसके उत्पादक कारण बताते हुए लिखा है कि कम खाना, अधिक परिश्रम करना, दुःख-रोग एवं चिन्ता, स्नेह का अभाव, शरीर से रक्त का निकल जाना, इन कारणों से शरीर में क्षीणता आ जाती है।

इस तरह के रोगी का शरीर कृश होता है। चेहरा सूखा हुआ और हाथ पाव दुर्बल होते हैं। दुर्बलता और कृशता उत्पन्न हो जाती है।

इस हालत में बलकारक और पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिये। ध्यान यह रहे कि पाचन से अधिक न खावें।

शरीर के बृंहण के लिए निम्न द्रव्य गुणकारी कहे गये हैं—

गाय-बकरी-भैंस का दूध, ताजा पनीर, फिरनी, दूध-चावल एवं खांड मिली(खीर), बूजीदान का हरीरा, अंगूर, केला का प्रयोग। बादाम, पिस्ता, अखरोट की गिरी, लोभिया, मेदा, मेंथी, चीनी, तिल, बबूल का गोंद, कतीरा, मुनक्का का प्रयोग भी लाभ करता है। बहमन सफेद का प्रयोग, मुर्गी और बतख का मांस खाने से भी कृशता दूर होती है।

इस अवस्था में माजून हुजाल का प्रयोग कराया जाता है। माजून गाजर का प्रयोग भी कराया जाता है। हलवा गाजर भी बलकारक होता है।

हलवा गाजर—सुर्ख रंग की गाजरें लेकर छिलका तथा भीतरी कठोर भाग निकाल देवें। कद्दूकश से बारीक कर लें। फिर दूध में इस कदर जोश दें कि गाजरें नरम हो जावें और शुष्क हो जावें। इसके पश्चात् इनको घी में भूनकर बजन करें। उससे दुगनी खांड लेकर पाक करें। पाक सिद्ध होकर गाजरें डालें। मगज चिलगोजा, मगज अखरोट, मगज बादाम मीठा, खोया, मगज फिन्दक,पिस्ता, मगज चिरौंजी आवश्यकतानुसार पीसकर घी में भूनकर मिला दें। हलवा तैयार है।

इसके साथ निम्नलिखित योगों का प्रयोग तपेदिक-नपसुद्दम में किया जा सकता है।

तपेदिक (क्षय) रोग पर यूनानी के कुछ प्रसिद्ध योग

हब्ब आहार मोलफ—मुकता, जमुरद, याकूत रमानी, जहरमोहरा खताई, कहरबा शमई लालबदखशानां, यशप सफेद कपूर उत्तम प्रत्येक ३॥ माशे अन्जवार जड, सन्दल सफेद गिल अरमानी प्रत्येक २१ माशे, रबुल सूस, गोंद कीकर, गोंद कतीरा, निशास्ता, नीलोफरपुष्प, सरतान जला हुआ, वंशलोचन, खशखाशबीज श्वेत, गावजवान पुष्प प्रत्येक ४॥ माशे, केशर ४॥ माशे, प्रथम जवाहरात को गुलाब अर्क में सुरमा की तरह बारीक खरल करें फिर बाकी औषधि का चूर्ण मिलाकर बीदाना जल से चने समान वटी करें।

मात्रा—१ वटी प्रातः सायं दूध के साथ दें।

गुण—रक्तपित्त, यक्ष्मा, अतिसार, जीर्णज्वर में उत्तम है। शरीर में बल उत्पन्न करती है। दुर्बलता को नष्ट करती है।

हब्ब मसीही—शुद्ध भल्लातक, काली मिरच, गिलोय सत्व, तबाशीर सफेद, छोटी इलायची त्वचा समेत सबको बारीक पीसकर माष समान वटी करें।

मात्रा—१-१ वटी योग्य अनुपान से दें।

गुण—यक्ष्मा में अत्यन्त उत्तम है।

अर्क हरा भरा—चन्दन सफेद, चन्दन सुरख, खस, पद्माख, नागरमोथा, गिलो सब्ज, पित्तपापड़ा, नीम छाल, नीलोफर पुष्प, कासनी बीज, सौंफ, कद्दूबीज, धनियां, नेत्रवाला १०-१० तोला, तुलसी बीज २ तोला, गन्ने की जड़, बमासा, मुण्डी ५-५ तोला, छोटी इलायची, पोस्त डोंडा २-२ तोला सबको १६ गुना जल में भिगोकर प्रातः आधा अर्क निकालें।

मात्रा—६ तोला।

गुण—यक्ष्मा, जीर्ण ज्वर, सुजाक, मूत्र जलन तथा हृदय रोगों में उत्तम है।

अर्क शेर—नीलोफर पुष्प, वेदपुष्प, कसेरू ताजा छिला हुआ प्रत्येक आध पाव, कोहुपत्र, लम्बाकद्दू प्रत्येक ४॥ तोला, खुरफा ३ तोला, गावजवान पुष्प, गुलाब पुष्प, कमल पुष्प ताजा, धनियां शुष्क, मगज मधुर कद्दू, मगज तुखम खयारैन काहुबीज प्रत्येक दो तोला। कासनीबीज, बंशलोचन सफेद १-१ तोला, चन्दन सफेद बुरादा, बुरादा, चंदन सुरख प्रत्येक ६ माशा, मधुर अनार, मधुर सेब २-२ नग, खीरा ताजा छिला हुआ वही नाशपाती १-१ नग, अर्क मकोय, अर्क नीलोफर ४-४ सेर, अर्क वेदमुश्क १ सेर औषधि को देग में भर कर अर्क डाल दें, ऊपर से बकरी का दूध १० सेर डालकर २४ घण्टे के बाद १२ सेर अर्क निकालें।

मात्रा—५ से १० तोला।

गुण—रक्त शोधक है, हृदय को बलदेता है, जीर्ण ज्वर तथा यक्ष्मा में लाभप्रद है।

कुरस सरतान कर्पूरी—कपूरकेसरी १ माशा, सन्दल सफेद, सन्दल जरद,सन्दल सुरख, प्रत्येक २ माशा काहूबीज ३ माशा गोंद कीकर, गोंद कतीरा, तबाशीर, गुलाब पुष्प प्रत्येक ४ माशा, मधुयष्टि, रबुलसूस प्रत्येक ५ माशा, निशास्ता, खुरफा काला प्रत्येक सात माशा, मगज तुख्म खरफजा, खशखाश बीज प्रत्येक ९ माशा, सरतान (केंकडा जला हुआ) १ तोला सबको कूट छान कर ईसब गोल के लुआब से टिकिया बनायें।

मात्रा—७ माशा प्रातः को अर्क गावजवान से दें।

गुण—यक्ष्मा, रक्तपित्त, खांसी तथा जीर्ण ज्वर में उत्तम है।

कुरस तवाशीर काफूरी लोलवी—मुक्ता, तवाशीर, केकड़ा जला हुआ, खशखाश बीज, काहूबीज, खुरफा बीज छिला हुआ, कतीरा १-१ तोला, कहरवा शमाई, रबुलसूस, गुलाब पुष्प की कलियां प्रत्येक ४ माशा, कर्पूर केशरी ३ माशा, केशर आबरेशम ६-६ रत्ती सबको कूटछान कर बारतंग सबज के जल से टिकिया बनावें।

मात्रा—३ माशा।

गुण—यक्ष्मा, रक्तपित्त, संग्रहणी, यकृत, अतिसार, रक्त अतिसार युक्त जीर्ण ज्वर में उत्तम है।

कुरस तबाशीर मुलयॅनः—तवाशीर सफेद २ तो., करंजबीन १॥ तोला, मगज खयारैन, मगज कद्दू मधुर, निशासताः, गोंदकीकर, गोंद कतीरा, खशखाशबीज सफेद प्रत्येक ६ माशा सबको कूट छानकर ईसबगोल के जल से कुरस बनावें।

मात्रा—७ माशा कुरस, १२ तोला अर्क गावजवान के साथ।

गुण—अजीर्ण का ज्वर, यक्ष्मा, रक्तपित्त, खांसी, तृषा, विबन्ध को नष्ट करता है। श्वास नलिका को स्निग्ध रखता है।

कुरस सरतानः—कतीरा ७ माशा, रबुलसूस १०॥ माशे, गिल अरमनी, गिल रूमी, गुलाब पुष्प, निशास्ता प्रत्येक १४ माशा, शादनज अदसेसो धुली हुई, वंशलोचन प्रत्येक १७॥ माशे, कहरुवा, मोडीयो बीज प्रत्येक २१ माशा, सरतान (केकड़े) जले हुये ३१॥ माशे, सबको कूट छानकर जल से टिकिया बनावें।

मात्रा—४॥ माशा।

गुण—यक्ष्मा, रक्तपित्त में अत्यन्त उत्तम है।

कुरस मुबारक—गुलाब पुष्प, तुरंजबीन प्रत्येक १७½ माशा, कासनी बीज १४ माशा, काहू बीज १२½ माशा, खरबूजा बीज १०½ माशा, मगज तुखम खयारैन, तवासीर प्रत्येक ८॥। माशा, मगज तुखम कद्दु मधुर ७६ माशा, रबुलसूस ४ माशा, कर्पूर १ रत्ती सब औषधियों को कूटछानकर जल से कुरस बनावें।

मात्रा—२ से ३ माशा।

गुण—यक्ष्मा, जीर्णज्वर, सन्निपात ज्वर तथा अन्य पैतिक ज्वरों और पांडु में लाभप्रद है।

कैरुती सिल—गरीलमस्क (मछली का सरेश), मगज बिनौला १-१ तोला, रासन बीज मस्तङ्गी प्रत्येक ६ माशा, नीम पत्र स्वरस, महेन्दी पत्र स्वरस प्रत्येक १० तोला, घी और बादाम तेल १½-१½ तोला,अलसी तेल १ तोला,गुलाब तेल ६ माशा, अफीम, ऊंट की हड्डी जली हुई ३½ माशा, मोम पीत २ तोला, प्रथम मोम और तेल को एक साथ पिघलायें। स्वरसों को डालकर जलायें, पीछे बाकी सब औषधियों का बारीक चूर्ण डालकर घोट लें, आवश्यकता पर थोड़ी कैरुती खशखाश तेल में हल कर सीना पर मालिश करें और बने परिमाण खिलायें।

गुण—सिल (रक्त-पित्त सहित यक्ष्मा) में लाभप्रद है।

मरवारीद सयाल—मरवारीद ६ माशा में नींबू रस थोड़ा २ मिलाकर खरल करें। जब मोती हल हो जायें तो अच्छी तरह से छान लें।

मात्रा—५ बूंद, अर्क गुलाब १ तोला में मिलाकर प्रयोग करें।

गुण—हृदय तथा मस्तिष्क को बल देता है, शारीरिक क्षीणता को नष्ट करता है, मोतीझरा ज्वर में उपयोगी है।

लऊक नजली आब तरबज वाला—खशखाश बीज, गोंद कीकर, कतीरा, निशास्ता प्रत्येक १४ माशा, मगज कद्दू, खयारैन, खुरफा बीज, काहू बीज प्रत्येक १½ तोला मधुर बादाम मगज ३ तोला, रोगन बादाम ६ तोला,

तुरंजवीन १४ तोला, तरबूज जल १० तोला मगज कद्दू से मगज बादाम तक जिस कदर औषध हैं इनमें जल डालकर इनका शीरा निकालें और तुरंजवीन हल करके छान लें, फिर तरबूज जल इसमें मिलाकर पाक करें और खशखश बीज से निशास्ता तक की औषधि का बारीक चूर्ण और बादाम तेल मिलाकर लहूक तैयार करें।

मात्रा—५-५ माशा दिन में कई बार चाटें।

गुण—यक्ष्मा रक्त-पित्त तथा वातज कास में उत्तम है।

लहूक आवनेशकर वाला—लुआव ईसबगोल, लुआब बहीदाना, लुआव बीज, अनार रस मधुर, अम्ल अनार रस, खयार जल, कद्दू जल, खुरफा पत्र जल, गन्ने का स्वरस प्रत्येक ६-६ तोला, गोंद कीकर, गोंद कतीरा, मगज बादाम मधुर, आक शकर, खशखाश, बीज प्रत्येक ६½ तोला, खांड आधा सेर, शुष्क औषध चूर्ण को मिला दें और लहूक तैयार करें।

मात्रा—७ माशा, अर्क गाऊजवान में मिलाकर।

गुण—यक्ष्मा, रक्त-पित्त तथा शुष्क कास में उपयोगी है।

लहूक तबाशीर—गोंद कीकर, निशास्ता, खशखाश बीज श्वेत प्रत्येक ७० माशा, मगज तुखम कद्दू मधुर, मगज, खयारैन प्रत्येक ३५ माशा वंशलोचन १४ माशा, खवाजी बीज, खतमी बीज प्रत्येक १०½ माशा सबको बारीक करके आवश्यकता अनुसार मधु और बादाम तेल मिश्रित कर लहूक बनावें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—फुफ्फुस तथा सीने में व्रण ज्वर तथा शुष्कता के लिए उत्तम है।

(२) वंशलोचन १४ माशा, मगज तुखम ककड़ी, मगज चलगोजा, गोंद कीकर, बड़ी इलायची प्रत्येक २४½ माशा, निशास्ता, कतीरा प्रत्येक ७ माशा, खांड १७½ माशा सबको कूट छानकर बादाम तेल में मिश्रित कर मधु का पाक कर करके लहूक तैयार कर लें।

मात्रा—१ से २ तोला।

गुण—पित्त की उग्रता को कम करता है, सिल, फुफ्फुस के व्रण तथा पित्तज कास में लाभकारी है।

हब्ब मुफैदी—बकरी का दूध १½ सेर, शुद्ध वत्सनाभ ९ माशा; दक्षिणी मिर्च ९ माशा एक बारीक कपड़े में वत्सनाभ तथा मिर्च चूर्ण को डालकर दूध में लटका कर दूध का खोया बनावें और ज्वार समान वटी करें।

मात्रा—४ वटी प्रातः ४ सायं काल को बकरी अथवा गधी के दूध से प्रयोग करें।

गुण—यक्ष्मा में अत्यन्त उत्तम है, कास तथा ज्वर को नष्ट करती है।

सरतानो—द्रव्य तथा निर्माण विधि—कीकर गोंद, कतीरा गोंद श्वेत, गुलाव पुष्प, वंशलोचन प्रत्येक ४ माशा, मष्युष्टि ५ माशा, निशास्ता, कुलफा प्रत्येक ७ माशा, रक्त चन्दन, श्वेत चन्दन २-२ माशा, काहू बीज ३ माशा, रबुलसूस ५ माशा, कपूर केसरी ९ माशा, मधुर कद्दू बीज गिरी, खशखाश बीज श्वेत, खयारैन बीज गिरी, खरबूजा बीज गिरी प्रत्येक ९ माशा, जलाया हुआ केकड़ा ९ तोला इन सबको कूट छानकर ईसबगोल के जलीय रस की सहायता से टिकियां ८-८ रत्ती मात्रा की बनावें।

मात्रा—६ माशा अर्क गाऊजवान के अनुपान से प्रयोग करें।

गुण—राजयक्ष्मा, कास, उरःक्षत तथा हृदय के रोगों में अतीव प्रभावशाली औषधि है।

यक्ष्माहर औषधि—द्रव्य तथा निर्माण विधि—गिलोय सत्व, जहर-मोहरा, अन्तधूर्म दग्ध केकड़ा, वंशलोचन, संगजराहत (दुग्ध पाषाण), गोंद कतीरा, गोंद कीकर, सफेद कत्था, गिल अरमानी, मधुर बादाम गिरी, दमुलखवायन, रबुलसूस १-१ तोला, प्रवाल भस्म, मुक्ताशुक्ति भस्म, जहर मोहरा, अभ्रक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म ६-६ माशा, यशद भस्म ९ माशा, कपूर केसूरी २ माशा सबको कूटपीस कर बिहिदाना के लुआब में १-१रत्ती की वटी करें।

मात्रा तथा अनुपान—१ वटी ८ तोला अर्क हराभरा के साथ छागी दूध वा गर्दभी दूध १५ तोले के साथ प्रयोग करें।

गुण—उरःक्षत, यक्ष्मा, रक्तपित्त, जीर्ण ज्वर में अत्यन्त उत्तम योग हैं, सिद्ध प्रभावशाली महौषधि है।

अर्क तपेदिक खासुलखास—द्रव्य और निर्माण विधि—बेदसादा (वेतस) के पत्र १ सेर, छिली हुई मुलेठी पाव भर। दोनों को पुटपाक कृत कद्दू (कद्दू मुरब्बी)

का रस, पुटपाक कृत तरबूज का रस, पुटपाक कृत खीरे का रस प्रत्येक २ सेर ताजा कसेरू का रस, हरे पालक के पत्ते का रस प्रत्येक १ सेर में तर करके सवेरे विलायती मुलेठी का रस, असली गुडूची का सत्व देशी प्रत्येक १ तोला, नीचे के मुंह में रखकर यथाविधि अर्क खींचें।

मात्रा और अनुपान—६ तोला अर्क २ तोला शर्बत उन्नव में मिलाकर प्रतिदिन पिलायें।

गुण तथा उपयोग—यह अर्क राजयक्ष्मा और उरःक्षत के लिए अतीव गुणकारी है। केवल ज्वरांश हो या उरःक्षत के साथ ज्वर हो तो, इन दोनों दशाओं में यह गुणकारी है।

अर्क वेदसादा (जदीद)—द्रव्य और निर्माण विधि—वेदसादा (वेतस) के पत्र १ सेर रात को जल में भिगोकर सवेरे १० बोतल अर्क खींचें। फिर इस अर्क में उतना वेदसादा (वेतस) के पत्र भिगोकर दोवारा १० बोतल अर्क प्रस्तुत करें।

मात्रा और अनुपान—यह अर्क प्रातःकाल २ तोला शर्बत उन्नाव में मिलाकर पिलावें।

गुण तथा उपयोग—हृदयगत ऊष्मा, विद्वेष (वहशत) और दिल की धड़कन को दूर करता है। ऊष्ण व्याधियों में भी उपकारक है। राजयक्ष्मा में विशेष रूप से लाभ पहुँचाता है। साधारण अर्क की अपेक्षा यह अर्क अत्याधिक गुण कारक है।

कुर्स सरतान—द्रव्य और निर्माण विधि—अन्तर्धूम में जलाया हुआ केकड़ा २½ तोला, वंशलोचन, कहरवा, पोस्त खशखाश (पोस्त की डोडी) कपूर, संगजराहत, गिल अरमनी प्रत्येक १ तोला। गुलाव के फूल, मुलेठी का सत्त, कतीरा, वबूल का गोंद, कुलफे के बीज (भुना हुआ) प्रत्येक ६ माशा, अहिफेन १ माशा, सबको कूटछान कर बीहीदाना के लुआब से टिकिया बनाय।

मात्रा तथा अनुपान—४ माशा की मात्रा में यह औषध १४ तोला अर्क ग़ावजवान के साथ उपयोग करें।

गुण तथा उपयोग—यह राजयक्ष्मा, उरःक्षत और रक्तष्ठीवन में लाभकारी है और कासघ्न भी है।

कुर्स सिल—द्रव्य और निर्माण विधि—शुद्ध कपूर, वबूल का गोंद, गेहूँ का सत (निशास्ता गुंदम), गुडूची सत्व और शकरतीगाल प्रत्येक समभाग लेकर महीन चूर्ण बनाकर गावजवान के पत्र के लुआव से टिकिया बनायें।

मात्रा और अनुपान—२ टिकिया प्रतिदिन सवेरे रोगी को सेवन करायें।

गुण तथा उपयोग—उरःक्षत के लिए असीम गुणकारी है।

कुशता अकीक—द्रव्य और निर्माण विधि—रक्त अकीक २ तोला को १½ पाव बवूल के पत्तों की लुगदी में रख कर ऊपर से कपड़ मिट्टी करके १० सेर उपलों की अग्नि दें।

वक्तव्य—रक्त अकीक को कीकर की पत्ती की लुगदी के स्थान में पुदीना की लुगदी में भी रख सकते हैं।

मात्रा और अनुपान—१ रत्ती से २ रत्ती तक मुफर्रेह वारिद ५ माशा या लऊक आव तुर्बुज ५ माशा के साथ सेवन करें।

गुण तथा उपयोग—यह उरःक्षत के लिए लाभकारी है और फुफ्फुसीय व्रण को भरता है तथा रक्तगम को बन्द करता है।

कुर्स तवाशीर काफूरी ललुबी सुरवकल—द्रव्य और निर्माण विधि—अनविधि मोती, वंशलोचन, केकडा, सफेद पोस्त का दाना (तुख्म खशखाश सफेद), काहू बीज छिले हुए, कुलफे के बीज और कतीरा प्रत्येक १०½ माशे, कहरुवा शमई, गुलाव के फूल प्रत्येक ६ माशा, खीरा ककड़ी के बीज की गिरी २२½ माशा, वबूल का गोंद और अन्तर्धूम दग्ध प्रवाल मूल (बसुसद सोख्ता) प्रत्येक ४½ माशा, कपूर ३½ माशा, केशर १½ माशा, कैंची से कतरा हुआ अवरेशम १½ माशा, हाईपोफास्फेट आफ लाइम ६ माशा सबको कूट-पीसकर यथा विधि टिकिया बना कर रख लें।

मात्रा और अनुपान—५ माशा सवेरे और ५ माशा शाम को उपयुक्त अनुपान से सेवन करें।

गुण तथा उपयोग—राजयक्ष्मा, उरःक्षत, दिल की धड़कन, रक्तष्ठीवन, रक्त वमन और क्षयज अतिसार प्रभृति तीव्र व्याधियों में लाभकारी औषधि है।

दवायें मस्लूल—द्रव्य और निर्माण विधि—गुडूची सत्व, वारीक पिसे हुए जहरमोहरा, अन्तर्धूम में जलाया

हुआ केकड़ा, वंशलोचन, संगजराहत(दुग्ध पाषाण)कतीरा बबूल का गोंद, सफेद कत्था, गिल मख्तूम, मग्जविहीदाना, गेहूँ का सत, (निशास्ता) सफेद खशखाश (श्वेत खश बीज) खतमी बीज, गिल अरमनी, मीठे बादाम की गिरी, दम्मुल अख्वैन (खूनखराबा) और मुलेठी का सत प्रत्येक ३½ माशा, कपूर कैसूरी (काफूर केसरी) १ माशा सबको कूट छान कर बीहीदाना के लुआब में चना प्रमाण गोलियां बनायें।

मात्रा और अनुपान—१ गोली ८ तोला अर्क हरा-भरा के साथ या छागी दुग्ध या गर्दभी क्षीर १५ तोला के साथ उपयोग करें।

गुण तथा उपयोग—उरःक्षत और फुफ्फुस रोगों में अतीव गुणकारी है।

दवायें हाबिसुद्दम—द्रव्य और निर्माण विधि—कुलफा के बीज २ तोला, नौसादर ६ माशे इनको २ मिट्टी के प्यालों में रखकर उनका मुंह मुलतानी मिट्टी से भली भांति बन्द करें और १ पहर जंगली उपलों की अग्नि दें। इसके बाद निकाल कर चूर्ण बनाकर तैयार करलें।

मात्रा और अनुपान—६ माशा चूर्ण अंजबार के शर्बत के साथ उपयोग करें।

गुण तथा उपयोग—यह रक्तष्ठीवन में लाभकारी है तथा उरःक्षत रोग, मुंह से अधिक रक्त आने को रोकती है।

दियाकूजा मरुक्कब—द्रव्य और निर्माण विधि—पोस्ते की डोडी (कोकनार) सम्पूर्ण ३० नग, बीही-दाना १३½ माशा, सफेद खतमी के बीज,छिली हुई मुलेठी, शुद्ध नहर का केकडा प्रत्येक २२½ माशा। इनको वर्षा जल या गावजवान अर्क १½ सेर में रात्रि के समय भिगो-कर रख दें और सवेरे खूब पकायें। अर्द्धावशेष रहने पर छान लें फिर ईसबगोल का लुआव और चीनी मिलाकर खमीर के समान गाढ़ी चाशनी (पाक) कर लें। चाशनी के अन्त में अकाकिया, गुडूची सत्व और वंशलोचन प्रत्येक ४½ माशा। इन सबको खरल करके थोड़ा-थोड़ा डाल कर और हिला हिला कर भली भांति मिला लें। अन्त में शीतल होने पर एक्सट्रैक्ट आफ माल्ट विद्काड लिवर आइल समभाग मिलाकर रख लें।

मात्रा और सेवन विधि—६ माशा गदही या छागी के दूध के साथ उपयोग करें। इसके बाद रोगी की सहन शक्ति का विचार करते हुए क्रमशः बढ़ाते जांय और २ तोला तक पहुंचाएं।

गुण तथा उपयोग—राजयक्ष्मा, उरःक्षत, प्रतिश्याय, (नजला व जुकाम) कास और समस्त फुफ्फुस रोगों के लिए गुणदायक है। यह हृदय और फुफ्फुस को शक्ति देता है।

माजून दिक व सिल—द्रव्य और निर्माण विधि—पोस्ते की डोडी (कोकनार) पोस्ते का दाना प्रत्येक ५ तोला, खीरा ककड़ी के बीज की गिरी, बीहीदाने का मगज (गिरी) बबूल का गोंद, कतीरा, कासनी बीज, अन्तर्धूम में जलाया हुआ केकडा, छिले हुए काहू के बीज, श्वेत चन्दन, सूखी धनियां गेहूँ का सत (निशास्ता) वंशलोचन गिल अरमानी, हंसराज (परशियावशां), मुलेठी(छिलीहुई) खरबूजे के बीज की गिरी, मुलेठी का सत, छोटी और बड़ी इलायची, तरबूज के बीज की गिरी, गावजवान पुष्प, केशर, बनफसा पुष्प और कपूर प्रत्येक २ तोला, गुलकन्द मवीज मुनक्का (बीज निकाली हुई दाख), किश-मिश प्रत्येक ५ तोला, बादाम की गिरी २० तोला, शर्बत बनफशा, शर्बत नीलोफर, मिश्री, अर्क बेदमुशक, मुक्ता, कहरुवा (तृणकान्त), और माणिक्य इनकी पिष्टियां प्रत्येक १ तोला। इनसे यथा विधि माजून तैयार करें।

मात्रा तथा अनुपान—५ माशा माजून अर्क हराभरा के साथ उपयोग करें।

गुण तथा उपयोग—राजयक्ष्मा और उरःक्षत में अतीव गुणकारी है। यह हृदय और उत्तमांगों को भी बल प्रदान करती है।

लऊक तुबुंज (लऊक नजली तुबुंज वाला)—द्रव्य और निर्माण विधि—पोस्ता के दाने(तुख्म खशखाश) बबूल का गोंद, कतीरा और गेहूँ का सत (निशास्ता) प्रत्येक १४ माशा, कद्दू की गिरी, खीरा ककड़ी की गिरी, कुलफा के बीज, काहू के बीज प्रत्येक ११॥ तोला, मीठे बादाम का मग्ज (गिरी) ३ तोला, बादाम का तेल ६ तोला, यवास शर्करा (तुरंजवीन) १४ तोला, तरबूज का रस १० तोला। कद्दू की गिरी से बादाम के मग्ज पर्यन्त

समग्र द्रव्य का शीरा (जल या अर्क में पीसकर लिया हुआ क्षीरवत् घोल) निकालें और उसमें यवास शर्करा घोलकर छानलें। फिर तरबूज का रस मिलाकर चाशनी (किवाम) बनावें। पीछे पोस्ता के दाने से गेहूँ का सत तक्र के द्रव्य और बादाम का तेल मिलाकर रखें।

मात्रा और अनुपान—५ माशा दिन में ३-४ बार चाट लिया करें।

गुण तथा उपयोग—उरःक्षत और शुष्ककास एवं नजला के लिए परम गुणकारी है।

लऊक बीहीदाना—द्रव्य और निर्माण विधि–बीही दाना इसबगोल और खतमी बीज प्रत्येक ३ तोला का लुआव निकाल कर मीठे अनार के रस,ककड़ी के रस, लौका के रस, कुलफा की पत्ती के फाड़े हुए रस–प्रत्येक २० तोला में सम्मिलित करें। फिर छानकर आध सेर चीनी मिला-कर चाशनी करें। चाशनी के अन्त में बबूल का गोंद, कतीरा, छिली हुई बादाम की गिरी, श्वेत खश बीज(तुख्म खशखाश सफेद) प्रत्येक २ तोला, मुलैठी का सत, शकरती गाल प्रत्येक ५ माशा बारीक पीसकर मिला दें।

मात्रा और अनुपान—६ माशा से लेकर १ तोला तक दिन भर में कई बार चटावें।

गुण तथा उपयोग—शुष्ककास और उरःक्षत में अति शय गुणकारी है।

सरतानी—द्रव्य और निर्माण विधि—बबूल का गोंद, मिश्री, कतीरा सफेद, गुलाब के फूल, वंशलोचन प्रत्येक ४ माशा, मुलैठी ५ माशा, गेहूँ का सत (निशास्ता) कुलफा प्रत्येक ७ माशा, रक्त चन्दन, पीत चन्दन, श्वेत चन्दन प्रत्येक २ माशा, काहू बीज ३ माशा, मुलैठी का सत ५ माशा, केसूरी के फूल (काफूर केसूरी) १ माशा, मीठे कद्दू के बीज की गिरी प्रत्येक ६ माशा जलाया हुआ केंकड़ा (सरतान सोख्ता) १ तोला। इन सबको कूट छान कर ईसबगोल के लुआब में टिकिया बनालें।

मात्रा और अनुपान—७ माशा की मात्रा में १२ तोला अर्क गावजवान के साथ सेवन करें।

गुण तथा उपयोग—यह राजयक्ष्मा, उरःक्षत और कास रोग नाशक है।

वक्तव्य—उपर्युक्त योगों के अतिरिक्त ज्वराधिकारी में दिए हुए कुर्स काफुर लुलुबी, कुर्स तवासीर मुलयियन, कुर्स तबशीर काफरी लुलुवी रईसी, शर्बत एजाज, हब्ब जवाहर काफरी, हब्ब जवाहर मुवल्लिफ, हब्ब जवाहर मोहरा प्रभृति योग भी इस रोग में उपकारी हैं।

एलोपैथिक

तपेदिक—फेफड़े का राजयक्ष्मा बेसिलस ट्यूबर क्यूलोसिस के द्वारा उत्पन्न होता है। इसका संक्रमण सीधे सम्पर्क से होता है। यह देखा गया है कि यक्ष्मा के रोगी के मुख से गिरा हुआ थूक का एक बूंद असंख्य कीटाणुओं को वायुमण्डल में फैलाता है। कुछ रोग यक्ष्मा रोग की प्रतिरोध शक्ति को कम कर देते हैं जैसे खसरा, काली खांसी। इन रोगों के पीछे यक्ष्मा रोग के उत्पन्न होने की अधिक सम्भावना होती है। कुछ व्यक्तियों में इसका प्रादुर्भाव तो हो जाता है परन्तु लक्षण प्रकट नहीं होते और ऐसे व्यक्ति रोग को फैलाने में अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। इस अवस्था में थूक परीक्षा रोग के प्रसार में रुकावट डाल सकती है। जो भी थूक परीक्षा में पीड़ित हों उन्हें अलग रखना आवश्यक होता है यह रोग युवावस्था में अधिक मिलता है।

लक्षण प्रायः शनैः शनैः पैदा होते हैं कभी-कभी सहसा भी प्रारम्भ हो जाते हैं और इसका आक्रमण सहसा हो जाता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में लक्षण स्पष्ट न होने से रोग का निदान करना कठिन होता है। रोगी को अत्यन्त निर्बलता, खांसी, मुख से रक्त आना, अग्निमांद्य, हृदय की द्रुतिगति ज्वर जो प्रातःकाल साधा-रण या उससे भी कम तथा दोपहर बाद बढ़ जाना तथा रात्रि स्वेद आदि लक्षण मिलते हैं।

रोग के प्रारम्भ में रोगी को शारीरिक थकावट होती है। रोगी के छाती के दर्शन पर श्वास गति में तेजी और सुनने पर सूक्ष्म करकराहट मिलती है। रोगी को खांसते समय ध्वनि सुनी जाए तो आर्द्र ध्वनि सुनने में आती है। सामने में वक्ष से प्रथम लक्षण अक्षकास्थि के नीचे मिलता है। सबसे बड़ी पहिचान थूक की परीक्षा पर होती है। उसमें जीवाणु की उपस्थिति होना रोग को स्पष्ट करने वाला है। क्षकिरण द्वारा वक्ष की परीक्षा करनी चाहिए।

रोग की बढ़ी हुई पिछली अवस्था में शारिरिक लक्षण

शिखर से प्रारम्भ होते हैं और पीठ पर अच्छी तरह सुने जा सकते हैं। कई बार कोई विशेष लक्षण प्रकट न होने पर केवल निर्बलता ही दिखाई देती है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि इस अवस्था में फुफ्फुस में गुहा (कैवटी) बन चुकी होती है और उसकी पहिचान करना केवल परीक्षा से सम्भव नहीं। उस अवस्था में हमें क्षकिरण परीक्षा तथा थूक की परीक्षा करनी चाहिए।

मुख से रक्त आना, निर्बलता, अग्निमान्द्य, कास एवं स्वर भङ्ग के लक्षणों को अन्य रोगों से विभेद करके इस रोग का निर्णय करना चाहिए।

इस रोग की उत्पत्ति प्रायः १६ से ३० वर्ष की आयु में अधिक मिलती है। अपूर्ण पोषण एक प्रधान कारण है। इस रोग के लगने में यह ध्यान रखना चाहिए कि गर्भवती स्त्री यक्ष्मा रोग के लिए अधिक प्रतिरोधक शक्ति रखती है। गर्भ के प्रसव के बाद इस रोग की वृद्धि प्रायः होती है। निवास स्थान की अस्वच्छता एवं दूषित वातावरण इस रोग के फैलने में अधिक सहायक है। कारखाने आदि में जहाँ धूल के कण, रुई के कण तथा अन्य उड़ने वाली चीजें श्वासपथ में प्रवेश कर जाती हैं-वे सभी रोग को बढ़ाती हैं। इस रोग का साक्षात कारण मनुष्य जाति के ट्युबरकुलर वेसिलस है। यह रोगी के थूक से निकल कर दूसरों के श्वास पथ से पहुँचता है और रोग को उत्पन्न करता है।

यह अवस्था एक चिरकालीन स्थिति है। इसमें रोग का ठीक होना अथवा बिगड़ जाना कई बातों पर निर्भर करता है। यदि रोगी रोग के आरम्भ ही चिकित्सा के लिये आ जाए और उसका निदान भी हो जाये तो रोग मिटाना आसान है अन्यथा निरंतर रोग की वृद्धि होती रहती है। शक्ति का घट जाना तथा उपद्रवों का पैदा हो जाना रोग की विकृत अवस्था के सूचक हैं।

उपद्रवों में प्लुरिसी, दूसरे शरीरांगों में राजयक्ष्मा, स्वरयन्त्र का आक्रांत होना, न्यूमोथोरेकस आदि होना इस रोग की अवस्था में प्रायः उत्पन्न हो जाते हैं।

एलोपैथिक चिकित्सा का वर्णन निम्न प्रकार है—

रोग निरोधी चिकित्सा—भारत वर्ष में रोगनिरोध की कमी के कारण आज यह रोग बड़ा ही घातक सिद्ध हुआ है। थूक द्वारा फैलाने वाले कारण को सावधानी करने से पूर्णतः रोका जा सकता है। रोगी को सावधान कर देना चाहिये कि इधर उधर न थूकें। थूकने के लिए धूल या राख से भारी ढक्कनदार एक बाल्टी होनी चाहिए जिसमें थूक संग्रह किया जाय। इस थूकयुक्त धूल या राख को सावधानी के साथ कहीं गाड़ देना चाहिए 'बी. सी. जी. वैकसीन' के टीके द्वारा १०-१४ वर्ष के बच्चों में वह क्षमता उत्पन्न की जा सकती है जिसके द्वारा वे आजीवन इस रोग से बचे रह सकते हैं। यह टीका केवल उन बच्चों को लग सकता है जिनमें 'ट्युबरकुलिन' की परीक्षा ऋणात्मक है जो थूक के सम्बन्ध में कही गयी है।

रोगी को सामर्थ्य से अधिक परिश्रम कदापि नहीं करना चाहिए। साहस का फल शत प्रतिशत घातक पाया गया है। रोगी को अपना वजन सप्ताह, दो सप्ताह या चार सप्ताह में एक बार अवश्य लेना चाहिए और अगर वजन कम हो रहा हो तो उचित परामर्श कर उसके बढ़ाने का उपाय करना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्वच्छ आहार-विहार, साफ हवादार मकान में वास, शुद्धदूध,घी एवं अन्य पौष्टिक आहार का सेवन इस रोग के लिये अत्यन्त आवश्यक है। बच्चों में होने वाले (Bovine T. B.) को दुग्ध की शातता बद्ध रखना परामावश्यक है जब तक ज्वर पूर्णतया न उतर जाय जिसकी अवधि सामान्यतः ३ माह की है। तदुपरान्त उसको उठने तथा टहलने की इजाजत दी जाय।

औषधि चिकित्सा—अब तक इस रोग की अचूक औषधि नहीं खोजी जा सकी है। आज जिन औषधियों से प्रधानतः इस रोग की चिकित्सा की जाती है उनमें स्ट्रैप्टोमायसिन, आयसोनिकोटिनक एसिड हाइड्राजाइड, पी. ए. एस. वायमोमाइसिन इथियोनामाइड कैल्शियम, क्रियोजोट, काड लिवर आयल, हाइपोफासफाइटस, सूंघने के द्रव्य इत्यादि प्रधान हैं।

(क) स्ट्रैप्टोमायसिन—यो इस औषधि का प्रभाव जीवाणु पर बिल्कुल नहीं पड़ता, परन्तु जीवाणु जन्य विष से उत्पन्न सभी लक्षणों को यह जादू की तरह कम कर देता है। इसको स्ट्रैप्टोमायसिन सल्फेट एवं हाइडहाइड्रो

स्टेपटोमाइसिन हाइड्रोक्लोराइड की १ ग्राम की अलग अलग मात्रा अथवा ५ ग्राम की मिलित मात्रा में अन्तःपेशी सूचीवेध करते हैं। रोग की उग्रावस्था में इसका ४-८ सप्ताह तक निरंतर सूचीवेध करते हैं। क्रम उग्र सावधानी रखनी चाहिए। सिर दर्द चक्कर घबराहट इत्यादि के जरा भी उत्पन्न होने पर इस औषधि को रोक देना चाहिए।

फ्लूरा पर स्ट्रैप्टोमाइसिन का लाभ—इस पर अभी हाल में काफी साहित्य प्रकाशित हुआ है। ए. पी. करने के पूर्व और अन्य केस में फ्लूरा का जुट आरोग्य होता है किन्तु इसमें काफी दिनों तक स्ट्रैप्टोमाइसिन और पेनिसिलीन नित्य दस लाख यूनिट युक्त इन्जेक्शन एक मास देकर लाभ पाया जाता है। इसके साथ ही फ्लूरा को गर्त में भी दवा देना उचित है।

स्मरण रखना चाहिए कि यह कोई धन्वन्तरि चिकित्सा नहीं है। पी. ए. एस. सेवन कराके और स्ट्रैप्टोमाइसिन के नियमित इन्जेक्शन द्वारा टी. बी कीटाणुओं के साथ युद्ध का समय मिल जाता है। ऐसे ही समय यदि रोगी को पूर्ण विश्राम पुष्टिकर खाद्य, आवहवा की सुन्दर व्यवस्था हो सके, तभी लाभ सम्भव है। अनेकों के मत से ए. पी. न करके केवल स्ट्रैप्टोमायसिन सेवन करना कदापि कर्तव्य नही है प्रत्येक सेनेटोरियम में ए. पी. इत्यादि अस्त्र चिकित्सा के साथ पी. ए. एस. का सेवन और स्ट्रैप्टोमायसिन की व्यवस्था की जाती है और इस कारण से आजकल सेनेटोरियम की रिपोर्ट में सम्पूर्ण निरामय होने वालों की संख्या अधिक देखी जाती है।

फलाफल:—इस नूतन चिकित्सा के फल से निम्नलिखित लाभ देखे जाते हैं। पहले ज्वर और खांसी कम होजाती है कफ बनता है, रोगी की भूख वढ़ती है खाने पर पाचन होता है और शरीर का वजन वढ़ता है। कफ में टी. बी. के जीवाणुओं की संख्या कम दिखायी देती है। एक्सरे चित्र में भी रस सूखकर स्थान पर टीशु मरम्मती के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं, फिर भी वड़े वड़े गड्ढे नहीं पढ़ जाते हैं। रोग एक दम चले जाते हैं।

शुद्धता के द्वारा हमेशा के लिये दूर किया जा सकता है जिसके निमित दुग्ध का सेवन अत्यन्त आवश्यक है। अन्य रोग निरोधी चिकित्सा सैनिटोरियम लाइन पर करनी चाहिए। रोगी का थूक हमेशा ग्लास के जार अथवा पीक दान में इकट्ठा करना चाहिए जिसमें २ औंस मिलिथेरेकस उपस्थित हो, यह कफ को पतलाकर टी० बी० के कीड़ों को तत्काल मार डालते हैं।

रोगहार चिकित्सा—

जब रोगी को तीव्र ज्वर, खांसी, अग्निमांद्य, वक्षशूल इत्यादि हो तो यथासम्भव उसकी चिकित्सा किसी चिकित्सालय में भर्ती करके करनी चाहिए। पूर्ण विश्राम (मानसिक तथा शारीरिक) अत्यन्त आवश्यक है। प्रधानतः ये निम्न लिखित विषय चिकित्सा के सम्बन्ध में अधिक मूल्यवान हैं। यथा—

(१) सेनीटोरियम चिकित्सा (२) चिकित्सालय या गृह में रह कर चिकित्सा (३) औषधि चिकित्सा (४) रोग की विशिष्ट चिकित्सा (५) शल्य चिकित्सा (६) लाक्षणिक चिकित्सा (७) विश्राम और परिश्रम द्वारा चिकित्सा (८) ऋतुकाल, पथ्य, स्वस्थवृत इत्यादि के नियम इन रूपों में पूर्ण विश्राम, स्वच्छ वायु तथा पौष्टिक आहार का सेवन नितान्त आवश्यक है।

(१) सेनोटोरियम चिकित्सा—प्रायः ऊंची पहाड़ियों पर ६-१२ हजार फीट ऊंचाई पर ये चिकित्सालय बनाये जाते हैं। इनके चारों ओर फल के बाग तथा पर्याप्त और स्वस्थ दूध देने वाले पशुओं का संग्रह होता है। सेनीटोरियम में इर्दगिर्द कई मील तक कोई व्यवसाई कारखाना नहीं रहता। इस सेनीटोरियम में संसार के सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त अनुभवी चिकित्सकों तथा उपलब्ध वैज्ञानिक उपकरणों का संग्रह रहता है। ये विशेष चिकित्सालय इस रोग की तीव्रावस्था के लिये उपयुक्त नहीं है परन्तु तीव्रावस्था के बाद के जीर्ण रोगियों तथा प्रारम्भिक रोगियों के लिए ये स्थान बड़े महत्वशाली हैं। यहां रहने वाले रोगी को अन्य रोगियों की अवस्था देखकर सन्तोष होता है कि केवल मैं ही इस रोग का शिकार नहीं बल्कि बहुत से हैं। वह अपने जीवन यापन तथा रोग निग्रह के उत्तमोत्तम साधान प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त अन्य चिकित्सा प्रायः वही होती है जो देश के उच्च नगरों में की जाती है परन्तु जलवायु तथा अन्य साधनों के सुलभ होने

के कारण अत्यन्त शीघ्र और अत्युत्तम आरोग्य प्राप्त होता है। कभी-कभी यह देखा गया है कि सैनीटोरियम में पूर्ण स्वस्थ प्राप्त करने के सालों बाद देश में लौटने पर भी रोगी पुनः इस रोग का शिकार हो सकता है और मृत्यु के पंजे में पड़ जाता है। फिर भी सेनीटोरियम चिकित्सा ही इस रोग की सर्वोत्तम चिकित्सा है।

(२) चिकित्सा या गृह चिकित्सा—रोग की तीव्रावस्था में या उस रोगी को जिसका रोग बिल्कुल निश्चय नहीं किया जा सकता है, इन रोगियों को चिकित्सालय में सेवाग्रहों में या घर में रखकर चिकित्सा करनी चाहिए। सैनीटोरियम से लौटने के बाद भी अगर इस प्रकार सावधानी से रोगी को १ या २ मास तक और रखा जाए तो उत्तम फल मिलता है। उग्र रोगियों को यथासम्भव इस रोग विशेष के चिकित्सालय में ही भर्ती करा देना चाहिए। उपरोक्त दोनों चिकित्साओं में रोगी को आइसोनिकोटिनिक एसिड हायड्राजायड—

परिचय—वैसे तो क्षय के रोग के कीटाणुओं का नितान्त नाश करने के लिए कतिपय औषधियों का निर्माण इसी २० वी शताब्दी में कतिपय वैज्ञानिकों ने किया, परन्तु स्ट्रैप्टोमाइसिन जैसी औषधियों द्वारा भी शरीरस्थ क्षय जीवाणुओं का मूलतः नाश नहीं हो पाया। प्रारम्भ में वैज्ञानिकों को यह पूर्णतः आशा हो गयी थी कि अब इस विश्वव्यापी संक्रमण जीवाणु का अवश्य नाश हो जायगा परन्तु गत कुछ वर्षों के अनुभवों के आधार पर यही परिणाम निकलता है कि 'स्ट्रैप्टोमाइसिन' के चिकित्सा क्रम से केवल जीवाणुओं की विपुलता ही दूर हो पाती है और क्षयोदभव वाला शारीरिक लक्षण समाप्त होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है, परन्तु समय पाकर जीवाणु पुनः सक्रिय होकर कभी कभी अपनी दूनी ताकत से संक्रमण शील हो उठते हैं।

अब 'आइसोनिकोटिनिक एसिड हायड्रायड' से भी 'स्ट्रैप्टोमाइसिन' के समान ही पूर्णतः आशा की जाती है। अपेक्षा कृत अन्यान्य औषधियों से यह सस्ती है। इसे चिकित्सा क्रम के पश्चात् कोई खास उपद्रव शरीर के किसी खास संस्थान (सिस्टम्स) पर नहीं देखे गए हैं। जिस प्रकार 'स्ट्रैप्टोमाइसिन' के सतत प्रयोग से: नाड़ी संस्थान (नर्वससिस्टम) के अष्टम नाड़ी (एर्थ क्रेनियल नर्व) पर कुप्रभाव होकर शिरःशूल चक्कर बहरापन एवं हृद्गति तीव्रता यहां तक कि मृत्यु तक होजाने के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। इस नूतनाविष्कृत औषधि 'आइसा निकोटिनक एसिड हायड्राजायड' द्वारा अभी तक कोई प्रमाणिक उदाहरण उपलब्ध नहीं हुए हैं। अभी इसका विद्वान चिकित्सकों द्वारा प्रमाणिक रूप से लिखित निघण्टुओं (मेटेरिया मेडिका) में समावेश नहीं हुआ है। ब्रिटिश फार्माकोपिया में भी अधिकाधिक योगों (आफिशियल प्रिपरेशनस) में इस औषधि की परिगणना नहीं हो पायी है। तब भी बाजार में छोटा बड़ा स्टाकिस्ट इसे बिक्री के लिए अवश्य रखता है। प्रायः सर्वसाधारण चिकित्सक गण इसकी प्रशंसा करते हुए पाये जाते हैं, परन्तु अब उच्चकोटि के क्षय चिकित्सकगण भी इस विशिष्ट औषधि की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। क्षय चिकित्सा में इसका समावेश अनिवार्य हुआ है। बिना इसके क्षय रोग का चिकित्सा क्रम अपूर्ण माना जाता है। विषालु लक्षणों की हीनता तथा अल्प मूल्य का होना इसके विशेष गुण हैं।

गुण और धर्म—वैसे तो सर्वप्रथम इस अल्प मूल्य साध्य औषधियों का आस्ट्रेलियन चिकित्सामण्डल ने सन् ११९२ में ही आविष्कार कर लिया था परन्तु इसकी उपादेयता कुछ साधारण रोगों पर और वह भी अनधिकारक योगों (नान आफिशियल प्रिपरेशनस) में ही परिगणना होती रही है। साधारणतः यह एक ज्वर शामक औषधि समझी जाती है। परन्तु सर्व प्रथम अभी अभी द्वितीय महा युद्ध के समय इस पर विशेष अनुसंधान हुआ।

एक मूषक के शरीरस्थ रक्त में क्षय जीवाणुओं का प्रवेश करके जब देखा कि वह पूर्ण क्षयसंक्रमित हो गया तब 'हायड्राजायड' का प्रयोग कर उसकी उपादेयता का बहुत ही सावधानी के साथ अध्ययन किया गया। इसके पश्चात् इसका प्रयोग खरगोश तथा बंदर पर भी मूषकवत् किया गया, वन्दर ने तो आश्चर्यजनक रूप से स्वास्थ्य लाभ किया। इसके बाद 'सी० यू० सेनेटोरियम न्यूयार्क' के अन्तर्राष्ट्रीय असाध्यक्षय रोगियों पर जिनकी कि संख्या १४५ थी प्रयोग किया गया? परिणाम केवल १ सप्ताह पश्चात ही उत्तम दिए। रोगियों का ज्वर शमन होकर

स्फूर्तिमय, भूख आदि एवं कुछ वजन भी बढ़ने लगा। फुफ्फुसों में से आने वाला कफ धीरे-धीरे कम होने लगा और खांसी एकदम कम हो गई है। कफ का पैथालाजिकल टेस्ट किया गया तो उसमें क्षयजीवाणु निगेटिव पाये गए।

इसमें कोई भी किसी भी प्रकार का सन्देह करने की आवश्यकता नहीं रह गई है कि आइसोनिकोटिनिक एसिड हाइड्राजायड एक पूर्ण वैज्ञानिक आधार पर आधारित ही नहीं अपितु यह पूर्ण वैज्ञानिक औषधि है। क्षयज ज्वर एवं क्षय के अन्यान्य भेद प्रभेद जैसे ग्रन्थिक क्षय (ग्लैण्ड्स ट्यूबुरकुलोसिस) आंत्रक्षय (इण्टेस्टाइनल ट्यूबुरकुलोसिस) एवं अस्थिक्षय (बोन ट्यूबरकुलोसिस) आदि क्षय स्थितियों पर यह औषधि अवश्य कार्य करती है। फुफ्फुसावरण शोथ (प्लुरिसी) जन्य औपद्रविक क्षय एवं कफ प्रधानज कास तथा रक्तनिष्ठीवन आदि क्षय लक्षणों पर इस औषधि का कार्य अवश्य होता है।

यदि इसका अकेले प्रयोग किया जाता तो जीवाणु ६ माह में प्रतिरोधी हो जाते हैं परन्तु स्ट्रैप्टोमायसिन आदि अन्य औषधियों के साथ-साथ इसका प्रयोग बहुत समय तक किया जाता है।

इस औषधि का वैज्ञानिक नाम 'आइसोनिकोटिनिक एसिड हायड्राजायड' है। इसका निर्माण अतीव अल्प मूल्य साध्य कोलतार नाम द्रव्य से होता है। भिन्न-भिन्न औषधि निर्माणशालाओं ने इसी मूल वैज्ञानिक नाम द्रव्य के आधार पर ही आधारित होकर इसके भिन्न-भिन्न नाम रखे हैं। रोशी एण्ड कम्पनी लि० नामक प्रसिद्ध निर्माणशाला ने इसका नाम 'रिमिफांन' और नियोलिट, मिलानो, इटली नामक औषधि निर्माणशाला में इसका नाम 'नाइडाजायड' रखा है। भारतीय प्रसिद्ध औषधि निर्माणशाला 'दि झण्डु फार्मस्यूटिकल वर्क्स लि० बम्बई' ने इसका नाम आइसोजाइड रखा है। अभी-अभी ३० मार्च सन् ५३ को बड़ौदा में केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने सारा भाई औषधि निर्माणशाला का उद्घाटन किया। यह औषधि निर्माणशाला केवल क्षय रोग की नूतन औषधि नाइड्राजायड के निर्माण के लिए ही स्थापित की गई है।

प्रयोग विधि—बाजार में 'आइसोनिकोटिनिक हायड्राजायड' की पैकिङ्ग गोली, विलियन एवं अन्तः क्षेपण (इन्जेक्शन) रूप में प्राप्त होती है। गोली प्रतिदिन २०० से ३०० मि. ग्रा. ६ सप्ताह से १½ वर्ष में देना चाहिए। १ गोली में ५० या १०० मिली ग्राम द्रव्य होता है। जो कि ५० मिली ग्राम मूल द्रव्य से युक्त होता है। ३०० मिलीग्राम औषधि रोगी को प्रतिदिन देते हुए तत्पश्चात् चिकित्सा क्रम बन्द कर देना चाहिए। कुल मात्रा एक अथवा २ या ३ विभक्त मात्राओं में दे सकते हैं।

पैरा एमीनो सैलिसिलिक एसिड—वर्णन—इसी को पी० ए० एस० या साधारणतया पास कहते हैं। यह श्वेत वर्ण का दानेदार चूर्ण होता है। प्रायः इसके सोडियम यौगिक पैरामीसन सोडियम का प्रयोग किया जाता है जो शुद्ध होने पर श्वेत, किन्तु जिसका जलीय घोल हलके पीले वर्ण का हो जाता है।

मात्रा—१२-२० ग्राम प्रतिदिन।

गुण, कर्म विवेचन—सन् १९४८ में एफ बर्नहम नामक विद्वान ने यह देखा कि बेंजोइक एवं सैलिसिलिक अम्ल क्षय जीवाणु की वृद्धि रोकने में सहायक होते हैं, किन्तु इससे पूर्व सन् १९४८ में लेहमैन नामक विद्वान ने यह सिद्ध किया कि जीवाणु समवर्त के विरोधी पदार्थ के रूप में पी० ए० एस० सर्वाधिक शक्तिशाली पदार्थों जो क्षय कीटाणु की वृद्धि को रोकता है।

इसके पश्चात् प्रयोग शालाओं में बन्दर, कुत्ता आदि जानवरों तथा क्षय के अन्य रोगियों पर इसका प्रयोग किया गया तथा क्षय रोग में इसको स्ट्रैप्टोमायसिन के समान ही लाभकर पाया गया। दोनों का मिलित प्रयोग और भी लाभकर है।

अवशोषण, वितरण एवं उत्सर्ग—पी० ए० एस० या उसका सोडियम यौगिक मुख द्वारा सेवन के शीघ्र ही पश्चात् रक्त में पहुँच जाता है। यहां तक कि ½-१ घण्टे के अन्दर ही रक्त में उसकी अधिकतम मात्रा मिलने लगती है। किन्तु उत्सर्ग भी बहुत शीघ्रता के साथ होता है जिसमें २-३ घंटे के अन्दर ही रक्तगत मात्रा समाप्त हो जाती है। किन्तु इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि शोषण एवं उत्सर्ग की यह गति भिन्न भिन्न व्यक्तियों में अथवा भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न हो सकती है।

रक्त में मिलने के पश्चात् औषधि का वितरण शरीर के लगभग सभी स्थानों तक हो जाता है, फलतः प्रमस्तिष्क मेरू द्रव, यकृत, फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, द्रव नेत्र आदि सभी में इसके अंश पाये जाने लगते हैं।

उत्सर्ग प्रधानतया मूत्र के साथ होता है। अधिकांश औषधि ६ घंटे के अन्दर अन्दर उत्सर्गिक हो जाती है अथवा २४ घंटे के अन्दर अन्दर इसके कुछ भी अंश शरीर में शेष नहीं रह जाते। बहुत ही थोड़ा अंश जो अवशोषण से बच जाता है मल के साथ उत्सर्गित होता है।

दुष्ट परिणाम – साधारणतया इसका शरीर में कुछ दुष्ट परिणाम नहीं पड़ता और औषधि का महीनों तक बिना किसी बाधा के प्रयोग किया जाता है किन्तु कभी-कभी व्यक्तिगत असह्यता के कारण कुछ व्यक्तियों में शीत-पित्त खुजली शरीर में दर्द, खांसी या ज्वर आदि लक्षण भी उत्पन्न होते देखे गए हैं। ऐसी अवस्था में औषधि का प्रारम्भ बहुत ही थोड़ी मात्रा में करना चाहिए, धीरे-धीरे मात्रा बढ़ाकर पूर्ण मात्रा दी जाने लगती है।

औषधि के दुष्ट प्रभाव के रूप में कभी-कभी क्षुधा नाश, उत्क्लेश, वमन तथा अतिसार भी उत्पन्न होते देखा गया है। इस प्रकार की अवस्था इलाज के शुरू में यह औषधि अधिक मात्रा में देने से उत्पन्न हो सकती है। लक्षण अधिक उग्र होने पर मात्रा को घटा देना चाहिए जो धीरे-धीरे बढ़ायी जा सकती है।

किन्तु मात्रा बढ़ाने के साथ ही साथ लक्षण यदि फिर तीव्र हो जाते हैं तो मात्रा हमेशा के लिए घटानी पड़ सकती है। स्पष्ट नियम तो यह है कि यदि औषधि को खाली पेट न दिया जाये भोजन के बाद ही दिया जाये तो इस प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो नहीं सकते।

कभी-कभी यद्यपि बहुत कम ऐसा भी होता है कि औषधि सेवन से मूत्र के साथ एल्बूमिन या रक्त आने लगा। ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर औषधि दिया जाना कुछ समय के लिए बन्द कर दिया जाना चाहिए तथा क्षारीय मूत्रल मिश्रण दिया जाना चाहिए। इसका विष प्रभाव विशेष रूप से यकृत पर होता है तथा यकृत शोथ हो जाता है।

इसके साथ विटामिन सी का प्रयोग भी अवश्य करना चाहिए। वस्तुतः क्षय रोग में सभी विटामिनों का प्रयोग होना चाहिए।

मात्रा तथा प्रयोग विधि – इसकी मात्रा १२-२० ग्राम प्रतिदिन है, किन्तु साधारणतया १२ ग्राम प्रतिदिन देना ही पर्याप्त होता है। यह मात्रा ६ भागों में विभाजित करके प्रातः ९ बजे से सायं ९½ बजे तक प्रति २½ घण्टे पश्चात् मुख द्वारा दी जाती है। बच्चों को उनकी आयु के अनुसार कम मात्रा दी जाती है। साधारण नियम है कि बालक के प्रति कि०ग्रा० शरीर भार के लिये ४ ग्रेन के हिसाब से मात्रा निश्चित की जाय औषधि को चूर्ण रूप में पानी या स्वादिष्ट शर्बत में मिलाकर अथवा कैपसूल में बन्द करके निगलवाया जा सकता है। प्रत्येक कैपसूल में १½ ग्राम औषधि आती है। अतः हर बार दो कैपसूल दिये जाने चाहिए। परीक्षण के लिए शिरा द्वारा भी प्रयोग किया गया। किन्तु चिकित्सा की दृष्टि से इस प्रकार देना ठीक नहीं है। नाड़ी व्रण आदि की अवस्था में औषधि का स्थानिक प्रयोग भी किया जाता है, इसके लिए २० प्रतिशत घोल, जेली अथवा क्रीम का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि साधारणतया इनका बनाया जाना सम्भव नहीं। घोल के २०% शक्ति के १०-१० मि.लि. के एम्पूल आते हैं जिनको आवश्यकतानुसार जल या समबल लवण जल मिलाकर और भी हलका किया जा सकता है।

क्षय रोग की विभिन्न अवस्थाओं में फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा के रोगी ही प्रायः देखने को मिलते हैं और इसमें पी० ए० एस० का सफलता से प्रयोग किया जाय, उतना ही अच्छा है।

प्रयोग प्रारम्भ करने के साथ ही ज्वर खांसी, रात्रि-स्वेद आदि सभी बातों में सुधार मालूम पड़ने लगता है। स्ट्रैप्टोमाइसिन की तरह इसके सेवन के समय भी इस बात को ध्यान रखना है कि क्षय चिकित्सा के सामान्य सिद्धान्त यथापूर्ण आराम, पौष्टिक भोजन, पौष्टिक औषधियां आदि भुलायी नहीं जा सकती, साथ ही ए० पी० पी० पी० थौरेकोप्लास्टी आदि किसी भी शल्यकर्म की आवश्यकता पड़े तो उसमें भी विलम्ब नहीं किया जा सकता। यह हो सकता है कि शल्य कर्म से पूर्व या बाद में भी औषधि सेवन जारी रहे।

स्ट्रैप्टोमाइसिन तथा पी. ए. एस. का साथ साथ प्रयोग भी सभव है और उसमें सबसे बड़ा लाभ यह है कि स्ट्रैप्टोमाइसिन से सह्य जीवाणूओं की उत्पत्ति नहीं होपाती। स्ट्रैपोपास, पी.ए.एस. तथा स्ट्रैप्टोमाइसिन का मिलत योग है। जिसका इन्जेक्शन द्वारा प्रयोग किया जा सकता है।

पी. ए. एस. का मुख द्वारा प्रयोग प्रशस्त है, इंजेक्शन द्वारा देने की केवल उसी समय आवश्यकता पड़ती है जब वेहोशी के कारण रोगी-मुख द्वारा ले न सकता हो ऐसा बहुत ही कम होता है। औषधि के स्थानिक प्रयोग का भी संकेत किया गया है।

क्षय-रोगी की दशा

अन्य स्थानों की क्षय विकृति—क्षयज आंत्र विकृति में चाहे वह फुफ्फुसीय यक्ष्मा के उपद्रव स्वरूप में हो जैसा कि बहुधा होता है अथवा स्वतन्त्र रूप में हो पी. ए. एस. के मुख द्वारा प्रयोग करने से अवश्य ही लाभ पहुँचता है। २-४ सप्ताह के औषधि सेवन से ही लाभ होते देखा गया है। वृक्क या मल मार्ग क्षय में भी इसका प्रयोग लाभप्रद है। इस अवस्था में पी. ए. एस. का मुख द्वारा सेवन तथा वीच वीच में स्ट्रैप्टोमाइसिन का इन्जेक्शन द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

क्षयज मस्तिष्क में ज्वर की अवस्था में भी इसका प्रयोग हितकर है, जब पी. ए. एस. का मुख द्वारा सेवन तथा स्ट्रैप्टोमाइसिन का घोल मस्तिष्क सुष्मना नलिका में भी प्रयुक्त किया जाता है। १५% शक्ति का घोल ५-१५ मि. लि. दूसरे स्थान पर दिया जा सकता है।

क्षयज फुफ्फुसावरण शोथ में भी पी. ए. एस. का स्थानिक प्रयोग किया जाता है। साधारणतया पूय निकाल देने के बाद २०% शक्ति के घोल के २० मि. लि. फुफ्फुसावरण के मध्य में सप्ताह में एक वार पहुंचा दिये जाने चाहिए। ज्वरादि की अवस्था में मुख द्वारा दिया जाना आवश्यक है। क्षय जन्य ग्रीवा की लसिका ग्रन्थियों के शोथ की अवस्था में भी पी. ए. एस. का स्थानिक प्रयोग प्रशस्त है। पूय को चीरा देकर नहीं निकाला जा सकता वल्कि चौड़े छिद्र की सुई से सिरंज द्वारा खींच लिया जाता है। पूय खींचने के वाद उसी सूई की सहायता से वहां पी. ए. एस. २०% शक्ति का घोल १-४ मि. लि. पहुँचा दिया जाता है और इस प्रकार पूय बनना वन्द हो जाने तक प्रति सप्ताह किया जाता है। ६-७ बार करने से लाभ हो जाता है। सार्वदेहिक लक्षण ज्वर आदि होने पर मुख द्वारा भी प्रयोग करें।

क्षयज नाड़ी व्रण में भी औषधि का स्थानिक प्रयोग हितकर है। नाड़ी व्रण को साफ करने के वाद २०% शक्ति का घोल उसमें पहुँचा दिया जाता है। क्षयज विकारों में २० % शक्ति का पी. ए. एस. घोल के रूप में दिन में कई वार प्रयोग किया जाता है।

क्षयज मध्यकर्ण शोथ में कान को भली प्रकार साफ करने के बाद २०% शक्ति का घोल २-५ बूंद पीड़ित कान में प्रतिदिन डालना चाहिए। लक्षणों के अनुसार मुख द्वारा प्रयोग की भी आवश्यकता पड़ती है। क्षयज नेत्र रोग में भी इसका प्रयोग लाभदायक है जबकि २ प्रतिशत का घोल है १ मि. लि. की मात्रा में नेत्र कला में इन्जेक्शन के रूप में पहुँचाया जाता है। स्थिति के अनुसार

यह मात्रा सप्ताह में एक दो बार दी जा सकती है। तथा यदि लक्षण तीव्र हों तो मुख द्वारा भी पी. ए. एस. का सेवन कराया जा सकता है।

नोट—स्ट्रैप्टोमाइसिन, पास, आइसेनिकोटिनिक एसिड का प्रयोग करते समय हमेशा किन्हीं दो का योग प्रयुक्त करना चाहिए।

(घ) वायोमाइसिन—यह औषधि वायोसिनसल्फेट के रूप में प्रचलित है जिसका निर्माण स्ट्रैप्टोमाइसेस प्यूनिकूइस द्वारा होता है। यह औषधि श्वेत तथा कुछ-कुछ हल्के पीले रंग की गंध रहित चूर्ण के रूप में होती है जो अल्कोहल में कम परन्तु जल में शीघ्र घुलनशील है। इसे सप्ताह में दो बार दो ग्राम की मात्रा में देते हैं। जिस दिन देना होता है उस दिन १ ग्राम प्रातःकाल तथा १ग्राम सायंकाल अंतःपेशी विधि से सूचीवेध करते हैं। इस प्रकार सप्ताह में दो बार देते हैं। मुख द्वारा इसका अवशोषण बहुत कम होता है। अतः मुख मार्ग से देना व्यर्थ है। इन्जेक्शन द्वारा देने पर यह शीघ्र शोषित हो जाती है तथा समस्त शरीर रक्त सेरिब्रोस्पाइनल फ्लूइड, पेरिटोनियल फ्लूइड आदि में वितरित हो जाता है। इसका लक्षणों में त्वचागत उद्भेद बहरापन, मूत्र में अल्ब्यूमिन व रक्त कण आना, वमन, अतिसार, क्षुधानाश, दुर्बलता, मांसपेशियों में संकोच आदि हैं। इनके उत्पन्न होने पर इसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिये। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि स्ट्रैप्टोमाइसिन, आई. एन. एच. एवं पास को सहन कर लेने वाले (Resistant) जीवाणुओं पर भी इसकी क्रिया होती है, इसकी विषालुता ही इसके प्रयोग में बाधक है। अतः प्रारम्भ में इसका प्रयोग कोई नहीं करता। बाद में आवश्यक होने पर इसकी शरण ली है। वहां सभी प्रकार के राजयक्ष्मा में प्रयोग की जा सकती है।

(ङ) थियासीटाजोन—आइसोनिकोटनिक एसिड हाइड्रजाइड तथा थियोसेमिकार्बाजोन का राजयक्ष्मा में प्रयोग प्रायः एक ही समय में प्रारम्भ हुआ। अनुभव देखा गया कि आई. एन. एच. जितनी निरापद औषधि है थियोसेमिकार्बाजोन उतनी ही अधिक विषालु है। अतः इसका प्रयोग बन्द कर दिया गया है। परन्तु समय बीतने के साथ यह देखा गया कि पुरानी औषधियों के प्रति क्षय के जीवाणु प्रतिरोधी (Resistant) होते चले जा रहे हैं। अतः नई औषधियों की आवश्यकता हुई। अतः थियोसेमीकार्बजोन पर पुनः विचार प्रारम्भ हुआ। अब उसमें कुछ रसायनिक परिवर्तन करके थियासीटाजोन का पुनः प्रयोग होने लगा है। जो अपने पूर्वज से कम विषालु है। इसका प्रयोग आई. एन. एच. के साथ सम्मिलित रूप में किया जाता है। आइसोजोन, यूनिथिवेन आदि नामों से बाजार में मिलती है। इसका प्रयोग सोते समय केवल एक बार किया जाता है। मात्रा ७५ से १५० मि. ग्रा. थियासिटाजोन और २०० से ३०० मि. ग्रा. आई. एन. एच. का योग है जो २ से ४ टिकियों में होता है। कम मात्रा में प्रारम्भ कर धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए। विषालु परिणाम दिखाई दे तो प्रयोग बन्द कर दें। साधारणतः ६ माह से १॥ वर्ष तक इसका प्रयोग करते हैं।

(च) इथियोनामाइड—यह मध्यम शक्ति की औषधि है। आई. एन. एच स्ट्रैप्टोमाइसिन, पास आदि के प्रति, जब रोग के जीवाणु प्रतिरोधी होजाते हैं तब उसका प्रयोग करना चाहिए। परन्तु थियोसेमिकर्बजोन तथा थियासीटोजोन जहां असफल होगई वहां इससे लाभ संदेहास्पद है।

मात्रा—इसकी १२५ मि.ग्रा की टिकिया आती है। इसका प्रयोग मुख मार्ग से होता है। ४ से ८ टिकियां प्रतिदिन देते हैं। जहां तक हो सके तो इसे अधिकतम मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। अन्य यक्ष्माहर औषधियों के समान ही जीवाणु इसके भी प्रतिरोधी अतिशीघ्र हो जाते हैं। १० वर्ष से छोटे बच्चों को शरीर भार के अनुपात में देना चाहिए। इसकी दैनिक मात्रा १० से २० मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. प्रतिदिन है। इसे क्रमशः बढ़ाकर ४० मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. तक ले जाना चाहिए। जब यह अधिक मात्रा सहन न हो तो अल्प मात्रा से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

विषालुता एवं आनुसंगिक प्रभाव – आनुसंगिक प्रभावों में मिचली, वमन, अरुचि आदि उदरागत लक्षण प्रगट होते हैं। यदि भोजन के बीच में या बाद में औषधि दी जाए और पूरी मात्रा को दिन भर में ४ भागों में बांटकर दी जाय तो प्रायः ये लक्षण उत्पन्न नहीं होते। कभी कभी

वमन रोकने वाली दवाओं का भी साथ में प्रयोग करना पड़ता है ? यदि स्थिरता पूर्वक दवा देते चले जायें तो ये लक्षण स्वयं भी कम हो जाते हे । यदि लक्षण बढ़ते जायें तो औषधि बन्द कर देनी पड सकती है।

अन्य विषालु प्रभावों में मानसिक अवसाद, अनिद्रा, तन्द्रा, सिरदर्द, रक्तप्रदर, स्तनों का बढना, बाल झडना एवं तन्त्रिका शोथ आदि हे । त्वचा पर उद्भेद, अन्य व.धिर्य, द्विदृष्टिता और कभी कभी कामला भी होते पाए गए हैं। इस अवस्था में औषधि रोक देनी चाहिए।

सह प्रयोग — इसके साथ सदैव अन्य यक्ष्माहर औषधियों का भी प्रयोग करना चाहिए।

(छ) कैल्शियम—यह जीवधारक रसायन औषधि है। शरीर के एक एक तन्तु को यह नव जीवन प्रदान करती हे। इसके बहुल से योगों में क्रूकण कोलायडल कैल्शियम, कैल्शियम सैण्डोज, केल्सीनोला इत्यादि महत्व के हे। कोलायडल कैल्शियम का मुख द्वारा प्रयोग उत्तम है। कैल्शियम सैण्डोज का सूचीवेध उत्तम हे। इसके अतिरिक्त हाइ फास्फेटयुक्त कैल्शियम के सीरप (ग्रीमॉल्ट सीरप) कैल्शियम की टिकिया, ग्रेन्यूल, चाकलेट इत्यादि भी प्रयुक्त होते है। २४ घण्टे म सूचीवेध द्वारा १ ग्राम कैल्शियम किसी भी मार्ग से पहुचा देना आवश्यक है।

कैल्शियम साल्टस—टी० बी० के नवीन, आधुनिकतम विद्वानों का कथन है कि (१) यक्ष्मा के रोगी को कैल्शियम देने की कोई वैज्ञानिक रीति नहीं है। कारण रोगी के शरीर में चूने की कमी दिखाई नहीं दी । (२) वरन् धातुगत कैल्शियम के प्रयोग से वृहद रक्त काम देखा गया। प्रोलीफुरेटिव केस में चूने की अधिकता के कारण वैद्य सहज ही टूट जाता है। (३) जितना भी कैल्शियम प्रदान किया जाय शरीर में सब निकल जाता हे। (४) टानिक या बलकारक औषधियों की कोई क्रिया होती है, यह निश्चय नहीं हो पाया।

फिर भी अभी कैल्शियम की व्यवस्था पूरे उद्यम से चल रही हे बल्कि मुफस्सिल में कम, शहर के चौदह आना चिकित्सक चला रहे हे। फिर आजकल कैल्शियम विद विटामिन डी का प्रयोग हो रहा हे। परिणाम के सम्बन्ध में कहा गया है कि (१) इससे इन्वालेण्टरी मांसपेशी कुञ्चित होती है। (२) हृतपेशी को उत्तेजित करने से हार्ट को बल प्राप्त होता है। (३) उसकी द्रुतगति में कमी आती है। (४) शारीरिक सोडियम साल्ट के नियमन के कारण अतिरिक्त भाग मूत्र यन्त्र द्वारा निकल जाता है, अतः (५) मुरल और जलन वाले रोग में कैल्शियम की शान्तिकारक शक्ति सिडेटीव की बात सभी स्वीकार करते हैं। अतः यक्ष्मा मे भी वही क्रिया पाई जाती है। भारतीय उच्च वैज्ञानिकों का कहना है कि (क) ६ सप्ताह कैल्शियम के सेवन से स्वास्थ्य मनुष्य का या टी० बी० के रोगी का किसी का भी सीरम कैल्शियम का परिणाम बिन्दु मात्र भी बढाया नहीं जा सकता। (ख) किन्तु उसी समय यदि विटामिन सी का परिमित परिमाण दिया जाय तो शरीर का सीरम कैल्शियम बढ़ता है। साधारण व्यक्ति में जितना रहना उचित है, वहीं तक रहता है, उससे अधिक न हो।

कैल्शियम ग्लूकोनेट —शरीर रक्षक तथा पौष्टिक ग्लूकोनेट के साथ श्लेषण और आक्षेप निवारक तथा हार्ट टानिक कैल्शियम के युक्त रहने से इसका प्रचलन अधिक हुआ। सेवन विधि–खाली पेट इस दवा का सेवन कराना अच्छा है। उस समय परिपाक यन्त्र में कम से कम क्षार रहता है। टेबलेट को मजे से चबाकर खाना चाहिए।

कैल्शियल लैवव्यूलेट या लेव्यूलिनेट—ग्लूकोज या श्वेतसार से ग्लूकोनेट तैयार किया जाता है और लेव्यूलेट तैयार होता है। शर्करा जातीय लेव्यूलोज से कैल्शियम ग्लूकोनेट मे प्रतिशत ९ भाग और लेव्यूलेट में १४८३ कैल्शियम है। अन्य सारे कैल्शियम साल्ट की अपेक्षा यही स्थिर है, सहज ही जल में द्रवीय और शरीर में शीघ्र शोषित होता है, शिरा मांस, यहां तक कि तालू के नीचे देने से भी क्षत होने का भय रहता है, ज्वाला यन्त्रणा भी नहीं होती। इसकी १५% की ५ मि० लि० मांस और शिरा मे १०% की १० मि० लि० प्रथम मात्रा है।

टानिक हिमात्र से और संदिग्ध मृदु केस में सैंडोज या बी. आई. का कैल्शियम अथवा कोलायडल कैल्शियम विटामिन डी० वा ग्लैक्सो का कैल्शियाई आस्ट्लिन इन्जेकशन प्रचलित चिकित्सा है।

(ज) विटामिन्स—विटामिन्स से यक्ष्मा की चिकित्सा में आश्चर्यजनक सहायता पहुँचाई है। विटामिन 'सी' से रक्तस्राव और फेफड़ों के घाव अच्छे हो जाते हैं। विटामिन बी से ज्वर इत्यादि कम होता है। विटामिन ए और डी से शरीर को रोग के प्रतिरोध करने और रोग से शरीर की रक्षा करने में बड़ी मदद मिलती है। विटामिन ई प्रजनन संस्थान के लिए शक्तिशाली वस्तु है।

(झ) क्रियाजोट—यह औषधि जीवाणु नाशक है। इसे भोजन के बाद २ बूंद काड लिवर आयल में मिलाकर पीना चाहिए। कैपसूल द्वारा भी इसका प्रयोग होता है। पेट की गड़बड़ी या रक्तवमन में इसका प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए।

(ञ) काड लीवर आयल—यह रोग की बहुत पुरानी औषधि है। इसमें विटामिन 'ए' और 'डी' पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। ऐसा विश्वास है कि यह औषधि शरीर को यक्ष्मा के जीवाणु नष्ट करने में सहायता देती है। इसे दो ड्राम भोजन के बाद नित्य लेना चाहिए। आजकल 'हैलीबट लीवर आयल' को इससे अधिक महत्व दिया जाता है।

(ट) हाइपोफासफाइट्स—यह औषधि साधारण स्वास्थ्य को बढ़ाती है और विशेषकर मस्तिष्क को बल देनी वाली है। कैल्शियम, मैग्नेशियम, सोडियम हाइपोफासफाइटस इत्यादि इसमें मुख्य हैं। इन्हें भोजन के आधा घण्टा बाद १ ड्राम की मात्रा में २४ घण्टे में २ बार लेना चाहिए।

(ठ) सूंघने के द्रव्य—सूंघने के द्रव्यों से खांसी, श्वास फूलना, सिर दर्द, जुकाम, गले की सरसराहट इत्यादि कम हो जाते हैं। इसका कुछ अंश श्वास द्वारा फेफड़ों में भी पहुँचता है और वहां भी लाभ पहुँचता है।

१—मैन्थाल ४ ग्रेन, आयल सिनेमन ३ बूंद, आयल लेमन ४ बूंद, क्रियोजोट ८ बूंद, आयल पीनी ८ बूंद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूंद मिश्रण इसे रूमाल में लगाकर सूंघना चाहिये।

२—टिंचर बेंजोइन को गर्म पानी की हांडी में डाल कर उसका भाप सूंघना चाहिये।

३—यूकेलिप्टस ३ बूंद, तारपीन ५ बूंद, कपूर २ ग्रेन, यूडीकोलन १० बूंद, आयल लेवेण्डर १० बूंद मिश्रण इसे भी रूमाल में रखकर सूंघते हैं।

(३) भोज्य पदार्थ का शोषण बढ़ाने की दृष्टि से यीष्ट माल्ट एक्सट्रैक्ट, बीर एक्सट्रैक्ट, स्टोमक एक्सट्रैक्ट, हायड्रोप्रोटीन, एमीनो एसिड इत्यादि का प्रयोग भोजन के पूर्व या पश्चात् करना चाहिए।

फलाफल—इस नूतन चिकित्सा के फल से निम्न लिखित लाभ देखे जाते हैं। पहले ज्वर और खांसी कम हो जाती है, कफ कम बनता है। रोगी को भूख बढ़ती है। खाने पर पाचन होता है और शरीर का वजन बढ़ता है। कफ में टी. बी. जीवाणु की संख्या कम दिखाई देती है। एक्सरे चित्र में भी रस सूख कर स्थान स्थान पर टीशू मरम्मती के चिन्ह दिखायी पड़ते हैं। फिर भी बड़े बड़े गड्ढे नहीं पट जाते। रोग एकदम चला गया है, ऐसे चित्र कम ही दिखायी पड़ते हैं।

शल्य चिकित्सा—फुफ्फुस के राजक्ष्मा में शल्य चिकित्सा अत्यन्त महत्वशाली है। फुफ्फुस में उत्पन्न हुए व्रणों को केवल औषधि द्वारा अच्छा कर लेना नितान्त असम्भव है। क्योंकि फुफ्फुस एक क्षण भी विश्राम नहीं करता और लगातार फैलने सिकुड़ने के कारण घाव भर कर भी फट जाता है? अतः फुफ्फुस को विश्राम देने के लिए जब तक औषधि चिकित्सा के साथ साथ शल्य चिकित्सा का योग न हो तब तक यक्ष्मा की चिकित्सा पानी पर लाठी की मार जैसा निरर्थक कार्य करती है। शल्य विज्ञान द्वारा ऐसे उपाय निकाले गये हैं जिनसे फुफ्फुस के फैलने और सिकुड़ने को कम किया जा सकता है या बिल्कुल बन्द कर दिया जा सकता है। इसमें से कुछ का वर्णन नीचे दिया जाता है।

(क) कृत्रिम वात वक्षः—कृत्रिम उपाय से छाती में हवा भराना। दोनों प्लूरा में वायु (संशोधित या नाइट्रोजन) भर देने से उसके चाप से रुग्ण फेफड़ा कोलैप्स करता है अर्थात् आकार में छोटा और हिलने डुलने में कम होता है. उस ओर की श्वास क्रिया अवरुद्ध होती है अतः इसे कोलैप्स थिरैपी कहते हैं। कृत्रिम उपाय से छाती में हवा भर देना है उसकी प्रणाली। इससे लाभ क्या होता है? (क) रुग्ण फेफड़े में चाप रहती

है। (ख) भोजन के क्षत और गर्त समूह कुंचित होते हैं— (ग) स्कार या निरामयक तंतु तेजी से तैयार होते हैं। (घ) और नये क्षत पैदा नहीं होते (ङ) क्षत शीघ्र भरते हैं और (च) रोग अधिक फैलने नहीं पाता। इस अंश का रक्त और लसीका की पूर्ति में कमी पड़ने से टाकसीमिया या जीव विष की क्रिया में कमी आती है। बहुत से रोगियों में देखा जाता है कि उनका एक फेफड़ा दूसरे के मुकाबले अधिक गल गया है या एक बिल्कुल अच्छा है और दूसरा खराब हो गया है। या केवल नीचे का अंश गल गया है या केवल ऊपर का अंश गल गया है। इन अवस्थाओं में अगर एक फेफड़ा पूर्णतः बन्द कर दिया जाता है तो दूसरे फेफड़े से अच्छी तरह शरीर का काम चल जाता है। अगर थोड़े थोड़े दोनों फेफड़े रोक दिये जाते हैं यानी उन्हें पूरा पूरा फैलने नहीं दिया जाता तो भी शरीर का काम चल जाता है। इन्हीं दो सिद्धांतों के आधार पर यह चिकित्सा की जाती है। आजकल यह चुने हुए रोगियों में शत प्रतिशत लाभ पहुँचा रही है। यह प्रयोग रोग के आरम्भ में अधिक लाभदायक है, परन्तु दोनों फेफड़ों के अधिक खराब होने पर इसका प्रयोग घातक भी होता है। जिन रोगियों में फेफड़े का घाव फुफ्फुसावरण से सट गया हो उनमें इसका प्रयोग व्यर्थ है। हृदय से संबन्धित रोगों में भी यह हानिकारक है। रक्त वमन के किसी किसी रोगी में रक्त रोकने के लिए उत्तम उपाय है। इस कार्य के लिये एक विशेष यन्त्र आता है जिसे न्यूमोथोरेकस ऐपरेटस कहते हैं। इसके द्वारा एक फुफ्फुस में एक बार १५० से ३०० मि. लि.तक शोधित वायु भर दी जाती है। दूसरे दिन फिर एक बार इसे देना चाहिये, फिर मास में ८ बार ४, ३, २, या १ बार देते रहना चाहिये और इनमें वायु की मात्रा भीतर की वायु के दबाव के अनुसार देना चाहिये जो कि शून्य प्रायः होना चाहिये। आजकल इस चिकित्सा की अल्पतम अवधि तीन वर्ष की है। इस चिकित्सा को बन्द करने के समय बहुत सावधानी रखनी चाहिये, क्योंकि एक बार रोकने के बाद पुनः इस चिकित्सा का प्रारम्भ निरर्थक होता है। दोनों फेफड़ों में हवा एक साथ दिलाते समय रोगी को एक छाती रोग विशेषज्ञ के निरीक्षण में लगातार रखना चाहिये. इस कार्य को सदा इसके विशेषज्ञ चिकित्सक द्वारा ही कराना चाहिये क्योंकि विधि की त्रुटि से लाभ के स्थान पर अधिक हानि होती पायी गयी है।

(ख) न्यूमोपेरिटोनियम—इस विधि के द्वारा उदरगुहा में वायु का प्रवेश कराया जाता है और उदरगुहा के फैलने से उसका दबाव डायफ्राम पर पड़ता है और डायफ्राम के दबने से फेफड़े दब जाते हैं। इस कार्य में सहायता करने के लिए जिस ओर अधिक वायु का दबाव अपेक्षित हो उधर की फ्रेनिक तन्त्रिका को कुचलकर उसका कार्य रोक देना चाहिए। इसका प्रयोग प्रायः उन रोगियों में होता है, जिनमें फेफड़े का पेन्दा अधिक खराब हो गया हो और वक्ष में वायु देने पर सफलता न मिली हो या वायु दी न जा सकी हो।

(ग) फ्रनिक एवल्सन-या फ्रेनिक नाड़ी का कुचलना-आजकल इस चिकित्सा का अधिक प्रचार है। इस नाड़ी को कुचल देने से फेफड़े का शिखर और पेन्दा नहीं फैलता। अतः अगर रोग केवल शिखर या पेन्दे में है तो इस शल्यकर्म से बड़ा ही उपकार होता है। साधारण आकार का विवर भी इस शल्यकर्म के बाद जल्दी भरता है। इस तन्त्रिका का कार्य फेफड़े का नियन्त्रण है। अतः जब यह कट जाती है तो फेफड़े पर से मस्तिष्क का नियन्त्रण कम हो जाता है। इसे कुचलते समय अगर इसका एक छोटा टुकड़ा काटकर निकाल दिया जाय तो वह अधिक लाभदायक होता है। कुचलने मात्र से यह दो तीन महीने के बाद फिर तन्त्रिका की क्रिया यथावत् हो जाती है।

(घ) थोरोकोप्लास्टी—जब फुफ्फुसावरण से फेफड़ा सट जाता है तो ए-पी० द्वारा सिकोड़ा नहीं जा सकता है। उस अवस्था में पसली की हड्डी का कुछ हिस्सा काट कर निकाल दिया जाता है जिससे फेफड़ा सिकुड़ जाता है और उसके फैलने और सिकुड़न की सीमा परिमित हो जाती है। इन शल्यकर्म के भेदों में समेस का शल्य-कर्म अधिक प्रचलित है।

(ङ) ए० पी० व फ्रेनिक इवालसन सामयिक कौलैप्स चिकित्सा है—ए० पी० कृत्रिम उपाय से प्लूरा में वायु भर देना है। पांच सात दिनों में इस हवा को सीरम

झिल्ली शोख लेती है। तब फिर हवा भरी जाती है। इस तरह क्रमशः अधिक हवा जाती है और तब ८-१०-१५ दिनों में बाद दिया जाता है। यदि किसी कारण से जैसे दोनों प्लूरा यदि जुट जायें या रोगी को यदि भयानक श्वास कष्ट अथवा अत्यधिक पसीना हो तो फिर ए० पी० से काम नहीं चलता तब फ्रेनिक नर्व को निष्क्रिय बना देने से उधर के डायफ्राम को निष्क्रिय और पंगु बनाकर फेफड़े का हिलना डुलना चलना बन्द कर दिया जाता है। सामयिक रूप से फ्रेनिक नर्व को निष्क्रिय बनाकर ६ माह से १ साल तक वैसे ही रखा जाता है। यह उन्हीं के लिये होता है जिन रोगियों के दोनों प्लूरा जुट गए हैं अथवा रोग तरुण और क्षय एक स्थान में आवद्ध है, अथवा भयानक हिमोप्टोसिस बन्द करने के लिये जिन्हें ए० पी० से कोई लाभ नहीं हुआ है तथा जिन रोगियों को आपरेशन सहन नहीं होता और साथ ही खांसी के मारे प्राण जाता है वहां फ्रेनिक नर्व को एकदम काट देने का परामर्श है। बाद में रोगी को बल मिलने पर तब थोराकोटमी की जाती है। इन दोनों उपायों से फुफ्फुस को चाप कर या निष्क्रिय रखकर छः महीने या एक वर्ष तक देखा जाता है। यदि इस बीच क्षत सूखकर रोग लक्षण गायब हो गये तो फिर और हवा नहीं भरी जाती नर्व संभाल लेता है फेफड़े की पूर्व क्रिया लौट आती है और रोगी पूर्ण आरोग्य कहा जाता है।

थोराकोटमी व थोरेकोप्लेस्टी कोलैप्स चिकित्सा है—आक्रान्त छाती की कई हड्डियां काटकर निकाल देने से थोरेक्स इतना छोटा हो जाता है कि उसी चाप से फेफड़े की क्रिया काफी दिनों के लिए रुक जाती है। बड़ा आपरेशन करने की आवश्यकता इसलिये होती हैं कि उसका जीवन बच जाय। किन्तु यह आपरेशन तभी हो सकता है जबकि उस रोगी का केवल एक ओर का फेफड़ा ही खराब हुआ हो, वृहद गहर गर्त, फेफड़ों की कोमल वायु कोष आदि का अस्तित्व लुप्त हो गया है। साथ ही ऐसा रोगी अस्पताल में वहां की कठिन शल्य चिकित्सा के लायक बल प्राप्त कर सकता है। उसका यदि दूसरा फेफड़ा अच्छा हो तभी यह आपरेशन किया जा सकता है और इसका फल भी अच्छा होता है। कितने ही सर्जन इस शस्त्र चिकित्सा में ऐसे दक्ष हो गये हैं कि इनके आपरेशन के फलस्वरूप कोई दुर्घटना हुई ही नहीं।

स्ट्रेप्टोमाइसिन का प्रयोग करके प्लूरा के जुटे रहने से रक्षा की बात पेरिस के डाक्टरों ने लिखी है। और हाल में ही रस जमा है ऐसे ए० पी० के केस में ६० से १०० ग्राम स्टेप्टोमाइसिन का प्रयोग देखा गया है कि रस सूख गया है और दोनों प्लूरा आपस में जुड़ने लग नहीं पाए हैं। वे लोग नित्य २ ग्राम की मात्रा में अन्तः पेशी इन्जेक्शन करते हैं। वृहद एपैक्स के जुट जाने के केसे में भी ६-८ महीनों तक ३५० से ५०० ग्राम तक इन्जेक्शन से सम्पूर्ण निरामय की रिपोर्ट पढ़ी गयी है। यहां तक कि मवादी स्राव वाले केस में भी ३०० ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसिन और नित्य १० लाख मात्रा के हिसाब से पैनिसिलिन का १ महीने तक प्रयोग करके आरोग्य किया गया है।

ए० पी० चिकित्सा में उपद्रव—प्रथमतः जो सहन नहीं कर सकते अल्प हवा के जाते न जाते शाक, पसीना आदि से मूर्छित हो जाते हैं। उनकी अवस्था देखकर ए० पी० विज्ञान के ज्ञाता अफसोस करते हैं। द्वितीयतः कई सिप्टिस के बाद ऐसे एटिसन जम गये हैं कि फिर हवा दी नहीं जा सकती। तृतीयतः जिस स्थान पर हवा भरने वाली है वहां रस ही भर गया पाश्चात्य वैज्ञानिकों की रिपोर्ट में दिखाई दिया है कि ५० से ८० केसों में प्लूरा रस का संचार होता है। यादवपुर अस्पताल के हिसाब से प्रतिशत ७.४ में इफ्रूसन हुआ था? उनमें वृहद इफ्यूशन ३६ था और प्रतिशत ४ रोगियों के अच्छे भाग में भी रस जम गया था। चतुर्थतः दवा भरने के चाप से मध्यम सटनर्म की हड्डी और छाती धक्के के कारण दूसरी ओर झूल गयी। इससे ए० पी० करने में विशेष सुविधा होती। पंचमतः जिन्हें ए० पी० करने के समय आंत्रिक क्षय के लक्षण भी प्रकट हुए वे भी चिकित्सा के अन्तर्गत ही थे।

ए० पी० चिकित्सा के इफ्यूसन का परिणाम—१३१ इफ्यूशन के अन्दर ८२ रोगियों का रस आराम पाकर आप ही सूख गया था। २५ रोगियों के दोनों प्लूरा जुट जाने से हवा भरी नहीं जा सकी है। ४१ केसों

में बार-बार एस्पिरेट करना पड़ा। मामूली इफ्यूसन के सूखने में ११ सप्ताह और वृहद जमे रस के सूखने में २३ सप्ताह लगे थे।

(च) इसके अतिरिक्त कई शल्यकर्म हैं जिनमें एक सट्रा एलूरल न्यूमोलाइसिस, एक्सट्राप्लूरल न्यूमोथोरेकस, सकशन ड्रेनेज अधिक प्रसिद्ध हैं।

५–लाक्षणिक चिकित्सा—इस रोग में कई लक्षण ऐसे हैं जिनके बढ़ने से तुरन्त मृत्यु सम्भव है। अतः इसके नियन्त्रण का उपाय आवश्यक है। इनमें रक्तष्ठीवन रात्रि, ज्वर, खांसी, पचन संस्थान की गड़बड़ी, निद्रानाश इत्यादि प्रधान हैं।

(क) रक्तष्ठीवन—जब तक कफ में मिला हुआ रक्त आता हो तब तक अधिक चिन्ता का प्रश्न नहीं, परन्तु जब पाव आध पाव रक्त एकाएक मुख से निकल पड़े तो सबसे पहले उसे रोकने का उद्योग करना चाहिए। ऐसी अवस्था में रोगी को पूर्ण विश्राम खाट पर लिटा कर देना चाहिए। लिटाने के लिए जिस ओर से रक्त आने का अनुमान हो उसी करवट सुलाना चाहिए। खांसी रोकने के लिये और नींद लाने के लिये ⅙ ग्रेन मौर्फीन को त्वचा के नीचे सूची वेध करना चाहिए। शिरा द्वारा कैल्शियम, विटामिन सी, कांगोरेड इत्यादि के सूचीवेध सद्यः लाभकारक सिद्ध होते हैं। मांसपेशी द्वारा पी० डी० कम्पनी का नियोहिमोप्लास्टिन या डूफर कम्पनी का स्टिपटोक्रोम प्रशसनीय कार्य करता है। मुख द्वारा कैल्शियम लेक्टेट, सिपटोविट, सिवीप्टोसिडे, स्ट्रिप्टोवियोन इत्यादि का गोली के रूप में व्यवहार करते हैं और सूंघने के लिए एमिल नायट्रायट का भी प्रयोग होता है। अरगट और टर्ड्रीनोलिन का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए। अगर इतने उद्योग के बाद भी रक्त बन्द न हो या फिर आ जाय तो ए० पी० (आर्टिफिशियल न्यूमोथोरेक्स) द्वारा चिकित्सा का विचार करना चाहिए। भोजन ठण्डा करके खिलाना चाहिए, ग्रीष्म ऋतु हो तो छाती पर बर्फ भी रखना चाहिए। अत्याधिक रक्तष्ठीवन की अवस्था में निम्नलिखित पाउडर के इस्तेमाल से अधिक लाभ होता है।

कलाउडेन १ गोली, सिकाविट १ गोली, रिडोकसान ५०० मिलीग्राम, स्टिपटोविट १ गोली, कैल्शियम लैक्टेट ... ग्रेन।

इस प्रकार का पाउडर प्रति ३ से ४ घण्टे के अन्तर पर मुख द्वारा सेवन कराते जाते हैं जब तक रोगी पूर्ण स्वस्थ न हो जाए। इसके साथ १० मि० लि० १०% कैल्शियम ग्लूकोनेट विद ५०० मिली ग्राम विटामिन सी के साथ शिरा द्वारा दिन में १ या २ सूचीवेध करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इसी के साथ २५%, ५० मिलीग्राम ग्लूकोज भी मिलाते हैं।

(ख) रात्रि स्वेद—जब रात्रि में रोगी को इतना पसीना आवे कि न केवल उसका कपड़ा बल्कि बिस्तर का चादर इत्यादि भी भीगने लगे तो उसे गम्भीर लक्षण समझ कर तुरन्त रोकने का उपयोग करना चाहिए। बिस्तर पर हल्की चादर हो और खिड़की खुली होनी चाहिए तथा १ गोली जिसमें २ग्रेन जिंक आक्साइड और ¼ग्रेन एक्सट्रेकेट वेलाडोना सिका को रात्रि में लें। इसके अतिरिक्त $\frac{1}{100}$ ग्रेन वेला फोलिन या एट्रोपीन का सूचीवेध अन्तः पेशी उत्तम है। फिक्रोटाकसीन सिटकिनन और एगरिसिन भी सूचीवेध द्वारा प्रयुक्त होते हैं।

(ग) ज्वर – ज्वर पर स्ट्रेप्टोमाइसिन और पी० ए० एस० के अतिरिक्त अन्य ज्वरहर औषधियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कभी स्ट्रेप्टोमाइसिन और प्रोकेन पेनिसिलिन का मिश्रित सूचीवेध भी लाभदायक है। क्षारीय औषधियां और विटामिन्स भी उत्तम सहायक हैं।

(घ) खांसी–प्रायः गले की सरसराहट और कफ फंस जाने से ही खांसी बढ़ती है। गले की सरसराहट कम करने के लिये मुलहठी का चूर्ण या अन्य शामक चूसने की गोलिया (पेनिसिलन लौजेज) लाभकारी हैं। कफ निकालने के लिए नमक का चूसना पयापत गवाये कल कार्ब के शर्बत या रोसिल भी लाभ दायक है। स्वरयन्त्र शोथ की अवस्था में रोगी को धीरे-धीरे केवल फुसफुसाना चाहिए उसके लिए धूम्रपान तथा किसी प्रकार के मादक वस्तुओं का सेवन पूर्णतया निषिद्ध है। इसमें भी स्ट्रेप्टोमाइसिन एवं आइ० एन० एच० का सेवन अत्यन्त लाभकारी है। यदि किसी चीज के घोटने में कष्ट हो तो बेन्जोकेन एवं अरथोकेन का समभाग मात्रा में प्रयोग करना श्रेयस्कर है।

(ङ) निद्रानाश—निद्रानाश की तीव्रता में निद्राकर औषधियों सैनिरील सोडियम एमिटोल, डौरिडेन, डायल,

मिडोमिल इत्यादि का प्रयोग कभी कभी करना चाहिए, अन्यथा केलिसग्लोनेट का शिरा द्वारा अन्तः क्षेपण (सूचीवेध) पर्याप्त होता है। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से ऐसे लक्षण हैं जिनकी चिकित्सा आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न रोगियों में भिन्न-भिन्न प्रकार से निर्णयकर करना चाहिए।

(६) विश्राम और परिश्रम द्वारा चिकित्सा—यक्ष्मा का रोगी प्रायः लम्बी अवधि का होता है। उसे लगातार कई मास या कई वर्ष तक खाट पर सुलाये रखने से भी अच्छा नहीं किया जा सकता और अधिक परिश्रम में भी उसका शरीर जल्दी क्षीण हो जाता है। अतः एक मध्यम मार्ग रखना चाहिये ताकि रोगी को आवश्यकतानुसार विश्राम भी मिल जाय और पड़े-पड़े उसके शरीर में जंग भी न लग जाय। तीव्र ज्वर, रक्त वमन, श्वास कष्ट अत्यन्त दौर्बल्य इत्यादि लक्षणों की उपस्थिति में पूर्ण विश्राम नितान्त आवश्यक है परन्तु जब वे लक्षण न हों तो तब क्रमशः रोगी को बहुत धीरे-धीरे खुली हवा में प्रातःकाल टहलने का अभ्यास करना चाहिए। प्रारम्भ में आधा या १ घण्टा पर्याप्त है। नित्य २ या ३ मिनट टहलने का समय बढ़ाना चाहिए और बढ़ाते बढ़ाते इसे ८ से १० घण्टे तक सुबह शाम २ बार में बांट कर टहलना चाहिए। जिन्हें टहलने का उत्तम साधन उपलब्ध न हो उन्हें किसी योग्य ज्ञाता की देखरेख में आसन और प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। इस परिश्रम को तब तक बढ़ाना चाहिए। जब तक परिश्रम के बाद भी चित प्रफुल्लित रहे। परिश्रम के बाद रंचमात्र मलीनता प्रतीत होने पर परिश्रम बढ़ाना नहीं चाहिए या आवश्यक हो तो कम कर देना चाहिए। इस विचित्र चिकित्सा से कभी कभी ऐसा आश्चर्यजनक लाभ देखा गया है कि उसकी प्रशंसा करने से ही बनता है। सभी प्रकार से उद्योग कर लेने पर भी असफल रहे रोगियों ने इस चिकित्सा के द्वारा यह आरोग्य प्राप्त किया है जिसे देखकर चिकित्सकों ने भी प्रशंसा की है।

(७) ऋतुकाल स्वस्थवृत, पथ्य इत्यादि—इस रोग के लिए सम्मशीतोषण और शुष्क जल वायु उत्तम है। पर्याप्त आक्सीजन या औसन युक्त विशुद्ध वायु में रहना आवश्यक है। इस दृष्टि से मध्यम ऊंचाई के (६ से १० हजार फीट) पर्वत का निवास बड़ा ही महत्वशाली है। गम्भीर रोगियों के लिये ऊंचाई की हल्की वायु अनुकूल नहीं पड़ती। उनके लिए समुद्र का किनारा ही अच्छा पड़ता है। समुद्र के किनारे पर हवा का दवाव अधिक होता है। और पर्याप्त ओजोन हवा में मिलती है। मोसम भी समशीतोषण रहता है। केवल हवा में कुछ नमी होती है। समुद्र की यात्रा से ऐसे रोगी को लाभ होने की आशा नहीं है बल्कि वमन, अशुद्ध वायु, भोजन, चिकित्सा की अव्यवस्था इत्यादि से हानि अधिक सम्भव है।

यक्ष्मा के रोगी जब मृदु अवस्था में हो जाते हों तो उन्हें अपने को रोगी न समझकर स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्वृत का आचरण करना चाहिए। मुख, दांत जीभ इत्यादि अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। शरीर को अच्छी तरह धोकर स्वच्छ रखना चाहिए। इधर-उधर थूकना नहीं चाहिए सम्भव हो तो थूकने के लिए फलास्क रखना चाहिए। मन को प्रसन्न रखने के लिए मनोविनोद में पर्याप्त रुचि और योग देना चाहिये यथासम्भव वीर्य और रज की रक्षा करनी चाहिये। शक्ति से कुछ कम परिश्रम करना चाहिये। भूख, नींद, मल त्याग, मूत्रत्याग, खांसी, वमन इत्यादि के वेग को रोकना नहीं चाहिये। मानसिक चिन्ता, क्रोध, शोक इत्यादि से सर्वदा दूर रहना चाहिए।

यक्ष्मा के रोगी का भोजन उसकी रुचि के अनुसार होना चाहिये। उसमें पोषक और शीघ्र पच जाने वाला, ये दो गुण नितान्त आवश्यक हैं। भोजन गरम ताजा, मक्खियों से बचाया हुआ और ऋतु के अनुरूप होना चाहिए। दूध, मक्खन,, रोटी, चावल, दाल, साग सब्जी, हरे ताजे फल, सूखे फल, मेवे अण्डा, मांसरस (चिड़िया, मृग) इत्यादि तथा अन्य देश या रीति में प्रचलित पौष्टिक सुपाच्य भोजन की व्यवस्था करनी चाहिये। गर्म मसाले अधिक खट्टा, तेल, अत्यन्त गरम भोजन, शराब, बासी सड़ा गला अचार, चाट, चटनी, मिठाई इत्यादि का सेवन नहीं करना चाहिये। आलू का सेवन किसी भी रूप में निषिद्ध है।

बाद की चिकित्सा—जब रोग का प्रसार बिल्कुल रुक जाये तब रोगी के पुनः दैनिक कार्य पर एवं अपने पूर्व व्यवसाय में भेजने की अनुमति का प्रश्न आता है। इसके लिये सब प्रकार का शारीरिक परिश्रम निषिद्ध है। रोगी घर के अन्दर का काम काज मौसम के परिवर्तन से अपने शरीर की सुरक्षा करते हुये कर सकता है।

पल्मोनरी थाइसिस और उसकी चिकित्सा के बारे में हमने ऊपर संक्षेप में लिखा है, किन्तु इसके अतिरिक्त और कई अङ्गों का भी क्षय होता है। अतः उनके बारे में भी नीचे लिख देना आवश्यक है।

उरस्तोय निदान एवं चिकित्सा

परिचय—मानव नदान के परीशिष्ट भाग में बतलाया गया है कि यह रोग ज्वर आदि रोगों में अनुबन्ध रूप से अथवा कुछ अंशों में गुप्त रोगों के कारण से, अथवा किसी प्रकार के आघात आदि के लगने से, अथवा अन्य आगन्तुक कारणों से, अथवा किसी भी प्रकार के वाह्य कारणों से प्रायः उत्पन्न हुआ करता है । इस रोग
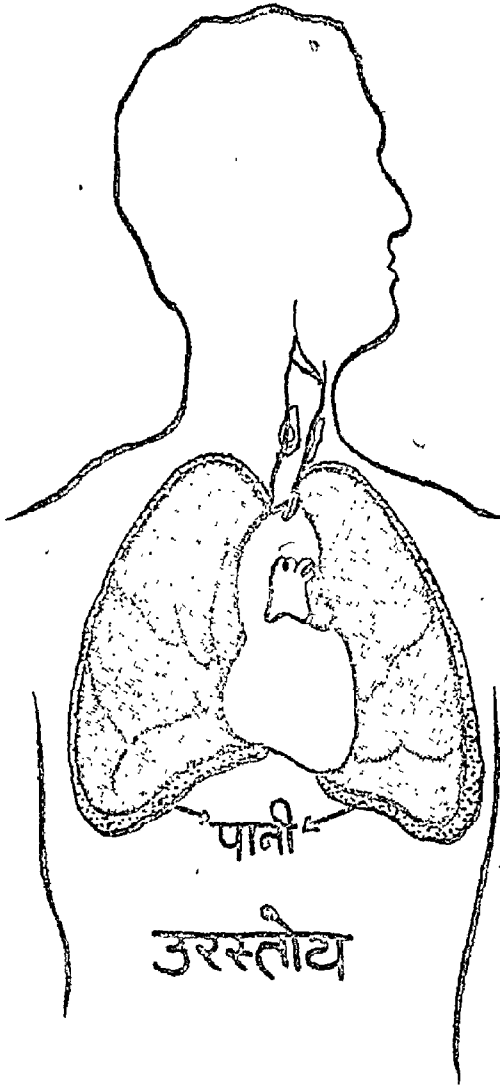
में मानव के वक्ष स्थल के किसी एक भाग में अथवा दोनों ही भागों में धीरे-धीरे पानी का संचय होता रहता रहता है। अथवा अन्य जलीय स्वरूप वाली कोई धातु भी वहां संचित हो सकती है । कालन्तर में यही पानी का संचय मानव के लिये प्राण घातक सिद्ध होता है। प्राचीनकाल के शास्त्रों में इस रोग का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । संभव है कि प्राचीन युग में यह रोग होता ही न हो, अथवा होता भी हो तो प्राण घातक न रहा होगा । अतः इस रोग पर आधुनिक चिकित्सा विदों का ही मत मान्य है । उनके अनुसार इस रोग में जलीय धातु का यह संचय फुफ्फुसावरणीय कला के मध्य में होता है, अर्थात् दोनों स्तरों के वीचके प्रदेश मेंयह पानी जमा होता रहता है । अतः श्वास लेने में रुकावट और दिक्कत मालूम होती है । कफ का पतला स्राव होता रहता है । रोगी को प्यास पर्याप्त लगती है । दोनों पैरों पर सूजन आ जाती है । मुंह और होठों पर कालापन अथवा नीलापन आ-जाता है । रोगी को मूत्र की प्रवृत्ति बहुत ही हलके तौर पर हुआ करती है । इस स्थिति में मूत्रकृच्छ्र अथवा मूत्र की कमी भी कही जा सकती है । रोगी की नाड़ी की गति अत्यन्त मन्द अर्थात गहराई में ही स्पन्दन करती सी मालूम पड़ती है, परन्तु वैसे गति बहुत तेज होती है और यह गति सदा विषम वनी रहती है । उरस्तोय का रोगी सो नहीं सकता, लेट भी नहीं सकता । क्योंकि इन दोनों ही स्थितियों में भारी कष्ट अनुभव होता है । केवल मात्र वैठे रहकर ही नाम मात्र का चैन अनुभव करता हुआ समय को विता सकता है । विशेप एलोपैथिक प्रकरण में देखिये ।

केवल अनुभूत चिकित्सा—

उरस्तोय रिपु—यह योग हमें गुरु परम्परा से प्राप्त है । हमने केवल एक ही रोगी पर इसका अनुभव किया था । रोगी को ९० प्रतिशत लाभ था । पाकिस्तान वनने के झगड़े में वह हमसे विछुड़ गया और फिर न मिल सका । प्रयोग इस प्रकार से है—

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली शतपुटी अभ्रक भस्म(यदि अभ्रकसत्व भस्मकी जाये तो विशेप लाभ होगा) शतपुटी नागभस्म, गन्धक मारित ताम्रभस्म, सिंग-

रफ, लोहभस्म शतपुटी, इन सबको समान मात्रा में लेकर खरल में एक रूप करलें। फिर थोहर का दूध, जंभीरी का रस, बांसा स्वरस, चित्रक का क्वाथ, कनेर का स्वरस दन्ती मूल का स्वरस, कालीमिर्च का क्वाथ, आक का दूध और कुचला का क्वाथ इन नौ के द्वारा पृथक-पृथक ४-४ बार भावना देकर पतली-पतली वटन जैसी टिकिया बनाकर सुखालें और एक दृढ़ सम्पुट में बन्द करके बालुका यन्त्र में तीन पहर की आंच देकर शीतल होने दें। स्वांग शीत होने पर निकालकर खरल में पीसलें और त्रिकटु या षड्षण, वच, शुद्ध वत्सनाभ, हल्दी, ४-४ माशा मिला दें और अदरख के रस की सम प्रमाण मात्रा में भावना दे डालें। इसकी मात्रा एक रत्ती की है। अनुपान मधु और अदरख रस मिलाकर चाटना चाहिए। यह उरस्तोय निश्चय ही दूर करता है। समय तीन मास से लेकर सात मास तक का लग सकता है। मूंग की दाल की खिचड़ी ही इसमें रोगी का भोजन होता है।

यूनानी

प्ल्युरिसी—इस रोग को यूनानी में 'जातुज्जनव' कहा जाता है। इस रोग में ज्वर होता है और पसलियों के नीचे चुभन होती है। बार-बार खांसी आती है। श्वास लेने में कठिनाई होती है।

इस रोग की चिकित्सा में रोगी को शीत से बचाये रखें और किसी प्रकार की चेष्टा न करने दें। पूर्ण विश्राम गर्म एवं रूक्ष वातावरण। दर्द कम करने के लिये राई का प्लास्टर करें।

इसके लिये आधे भाग पर जिस तरफ की पसलियों में विकृति हो—राल का पलस्तर या जिमाद उशक लगाना चाहिए। तेज दर्द में पोस्ते की दो डोंडी और दो तोला गुल बाबूना के काढ़े से टकोर करें।

रोगी को कब्ज की शिकायत हो तो लऊक सपिस्तां खियार शंबरी एक तोला को अर्क गावजबान १२ तोला में उबालकर गुनगुना पिलावें।

गाढ़ा और लेसदार बलगम निकलता हो तो निम्नलिखित योग दें—

"गुल बनफशा, खतमी के बीज, खुब्बाजी के बीज प्रत्येक ७ माशा, छिली हुई मुलैठी, हंसराज प्रत्येक ५ माशा, पानी काढ़ा बनाकर दो तोला शहद मिलाकर पिलावें तथा १ तोला गुलरोगन में ६ माशा सफेद मौम पिघला कर लोबान और मस्तङ्गी प्रत्येक ३ माशा का चूर्ण मिलाकर नीम गरम कर मर्दन करें।

रोगी को लाभ के लिये साबर शृङ्गभस्म २ चावल को १ तोला मधु में मिलाकर या खमीरा गावजबान जवाहर वाला ५ माशा में मिलाकर दें।

प्यास के लिये पानी की जगह अर्क मकोय और अर्क गावजबान पिलाना अच्छा रहता है।

एलोपैथिक

प्लुरिसी—फुफ्फुसावरण के शोथ युक्त होने को प्लुरिसी कहा जाता है। यह प्रायः कीटाणु उपसर्ग से होने वाला रोग है। ट्युबरकलोसीस का कीटाणु इसको उत्पन्न करता है युवाओं में अधिक उत्पन्न होता है। कीटाणु पहले नीचे के भाग में चिकते हैं वहां पर शोथ उत्पन्न करते हैं। यदि आवरण के दोनों स्तरों के मध्य में द्रव एकत्रित हो जाए तो उसे सद्रवी प्लुरिसी और यदि स्वेद-शुष्क हो तो उसे शुष्क प्लुरिसी कहा जाता है। प्रधान रूप से २ ही भेद हैं ? इनके लक्षण निम्न प्रकार से हैं—

लक्षण—सूखा प्रकार प्रारम्भिक प्रकार माना जाता है। आरम्भ में फुफ्फुस प्रदाह सदा ही शुष्क होता है, कुछ काल बाद इसमें तरल भरने लगता है। जब तरल थोड़ा व जल्दी जम जाने वाला हो तो जम कर तंतुमय फुफ्फुस आवरण प्रदाह हो जाता है। इसका समावेश शुष्क फुफ्फुस प्रदाह में होता है। इसमें बाहरी दीवाल के भीतरी भाग में चाहे सब जगह या एक जगह में सूजन पैदा होकर नसें व वाहिनियां फट जाती हैं। लसीली धातु की मात्रा थोड़ी होकर उसमें जमने की शक्ति ज्यादा होती है,अतः यह बह कर ऊपरी तह पर जम जाती है और उसमें लाल कणिकायें,सफेद कणिकायें और आवरण के कटे लच्छे फंस जाते हैं। यह तन्तुमय अवस्था होती है। इसमें ऊपर की सतह चिकनी चमकदार और रूखी होकर खरखरी होती है।

१—लसीला द्रव—प्रकार दूसरा होता है जिसमें लसीका की मात्रा बहुत ज्यादा और तन्तु की कमी होती है। यह दोनों अवस्थाओं में सम्भव है अर्थात् आरम्भ से

ही यह प्रकार हो सकता है और ऊपर शुष्क प्रकार जो बताया गया है उसके बाद में भी वह अवस्था आ सकती है। द्रव्य की मात्रा अत्यधिक होती है, पूर्व वर्णन के अनुसार स्तर अलग होते हैं।

चिकित्सा—

यह स्मरण रहे कि फुफ्फुसावरण प्रदाह विशेषकर तरलमय फुफ्फुसावरण प्रदाह प्रायः क्षय के कारण होता है। यह देखा गया है कि ऐसे रोगियों में विशेष सावधानी न बरती जाय तो कुछ काल बाद ही ६ महीने से ३ वर्ष के अन्दर अन्दर अन्दर राजयक्ष्मा हो जाता है। अतः चिकित्सक को इस बात की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है।

शुष्क तन्तुमय तथा तरलमय फुफ्फुसावरण प्रदाह में चिकित्सा के साधारण नियम एक से हैं, उनका उल्लेख नीचे किया जाता है।

रोगी को आराम से लिटाए रखें, उसे ताजी हवा और पौष्टिक आहार दें। शुष्क फुफ्फुसावरण प्रदाह में पीड़ा कम करने के लिए रुग्ण पार्श्व पर दिन में एक बार टिंचर आयोडीन लगायें। दर्द ज्यादा और असह्य हो तो उस पार्श्व पर अर्थात् रुग्ण स्थान पर ३ इन्च (१½-२ इन्च ऊपर और १½ इन्च नीचे) स्टिकिंग प्लास्टर लगायें। इससे उस पार्श्व की गति कम हो जाती है। गति करने से फुफ्फुसावरणों की दोनों तह परस्पर रगड़ खाती है जिससे पीड़ा होती है। गति कम हो जाने से या रुक जाने पर पीड़ा भी कम हो जाती है।

स्टिकिंग प्लास्टर लगाने की विधि यह है कि—१॥-२ इन्च चौड़े २-३ टुकड़े इतने लम्बे लें कि वक्षस्थल से लेकर पीछे पृष्ठवंश तक की लम्बाई से कुछ अधिक लम्बे हों ताकि आगे वक्ष के मध्य से तथा पीछे मेरुदण्ड से कुछ पार रहें। आवश्यकतानुसार ऐसी कई पट्टियां लें इन टुकड़ों को ऊपर से नीचे की ओर इस प्रकार लगायें कि नीचे के टुकड़ों का ऊपर वाला किनारा ऊपर के टुकड़े के निचले किनारे के ऊपर रहे। यह स्टिकिंग प्लास्टर १०-१३ दिन तक टिका रहना चाहिए। अन्तः प्रयोगार्थ औषधि कैल्शियम, विटामिन ए और डी प्रयोग करावें यथा कोलायडल कैल्शियम विद ओस्टेलीन और विटामिन डी के इन्जेक्शन अथवा ओस्टीयो कैल्शियम की गोलियां मुख द्वारा दें।

यदि खांसी दुखदाई हो तो शुष्क कास अधिकार में लिखे प्रयोग दें। एक और योग नीचे लिखते हैं—

एसिड हाइड्रोसायनिक २ बूंद सिरप कोडीन फास्फेट ३०, आक्सीमल सिल्ला ३०, एक का १ औंस ऐसी एक मात्रा हर ४ घण्टा बाद दिन में ३-४ बार दें।

अत्यन्त दुखदाई कास में मर्फिया ¼-⅓ या ½ ग्रेन अथवा पैथेडीन ५०-१०० मि० ग्रा० का इन्जेक्शन दें।

तरलमय फुफ्फुसावरण प्रदाह में यदि तरल थोड़ा हो तो चिकित्सा से अपने आप सूख जाता है।

जब तरल साधारण हो न अधिक हो, न कम हो अर्थात तरल का दबाव हृदय पर न पड़े, सोने बैठने में विशेष कठिनाई न हो, दम न चढ़े, वक्ष में तरल तीसरी पर्शुका से नीचे हो तो ५० मि० लि० इन्जेक्शन पिचकारी से ४०-१०० मि० लि० तक पानी निकाल दें। ऐसा करने के बाद बहुत बार शेष पानी अपने आप सूखने लग जाता है।

आरम्भिक अवस्था में लट्रा शार्ट से बहुत लाभ होता है। पानी सूख जाता है।

जब तरल अधिक हो तो ब्रीहित मुख यन्त्र द्वारा या पोटेन्स सेस्पीरेटर द्वारा निकालें।

पहली विधि—तरल निकालने के लिए सर्वोत्तम स्थान सक्थ रेखा में नवम पर्शुकान्तर अथवा कक्ष रेखा में अष्टम पर्शुकान्तर है। जहां तक हो सके रोगी को उठाकर बैठायें, जिस स्थान पर वेध करना हो उसे २% नोवोकेन इन्जेक्शन से संवेदना हरण कर लेना चाहिए।

किसी दशा में तरल एक साथ १ लिटर से अधिक न निकालना चाहिए। तरल निकालते समय रोगी को मूर्छा या चक्कर आने लगें तो तरल निकालना रोक देना चाहिए। कैनुला निकालने के अनन्तर उस स्थान पर रुई पर कलोडीन लगाकर रख दें। कई बार फुफ्फुसावरणों में बार-बार तरल पड़ जाता है और उसे बार-बार निकालना पड़ता है।

फुफ्फुसावरण में से प्रति बार तरल निकालने के बाद

उतनी ही वायु उसमें भर देना चाहिए। वायु भरने की विधि वही है जो राजयक्ष्मा की है।

आर्द्र फुफ्फुसावरण में प्रदाह में अन्तः प्रयोगार्थ औषधियां वही हैं जो शुष्क फुफ्फुसावरण प्रदाह में लिख आए हैं।

वक्तव्य—फुफ्फुसावरण प्रदाह के अतिरिक्त उन सब रोगों में भी जहां शोथ होती है, यथा हृदय रोग, वृक्क के जीर्ण शोथ तथा बेरी बेरी रोग इसमें भी फुफ्फुसावरणों में तरल भर जाता है उसको तरलमय फुफ्फुसावरण प्रदाह नहीं कहते उसे जलवक्ष कहते हैं उनमें विरल ही कभी इतना पानी भरता है कि जिससे हृदय पर दबाव पड़े बेचैनी हो या दम बढने लगे इत्यादि। अगर तरल बढ़ भी जाय तब तरल को कम करने के लिए हेतुभूत व्याधि (हृदय रोग, वृक्क रोग या बेरी बेरी) की चिकित्सा करें। कदाचित विरले रोगी में तरल बहुत अधिक हो, कष्ट का साधन हो तो उसे इसी विधि से निकाल देना चाहिए परन्तु इसे बार बार निकालना पड़ता है। ऐसे रोगी असाध्य होते हैं।

पूयमय फुफ्फुसावरण प्रदाह—ये लक्षण बहुत उग्र होते हैं। पूय स्वतः नहीं सूखती उसको निकाले बिना रोग निवृत्ति नहीं होती अपितु रोगी के जीवन का भय रहता है ऐसे रोगी को धन्वन्तरि के सुपर्द कर देना चाहिये, रोग की उग्रता के अनुसार १ या १॥ इन्च पर्शु का (पसली) का टुकड़ा निकालकर पूय निकालने का मार्ग बनाया जाता है। आपरेशन के साथ साथ पेनिसिलन का स्थानिक एवं शारीरिक प्रयोग जारी रखना पड़ता है।

आरम्भ में जब संदेह हो कि पूय है या केवल पानी है तो मोटी सूई से या ट्रोकर कैनुला द्वारा तरल को निकालकर देख लें, यदि पूय हो तो बड़ी साईज की ट्रोकार कैनुला डालकर जितनी पूय निकलती है निकलने दें पूय निकल चुकने के बाद उसी कैनुला द्वारा पेन्सिलिन का लोशन दें अन्दर प्रवेश कर दें 'यह लोशन' १ मि. लि. में १००० यूनिटस के हिसाब से हो। थोड़ी या बहुत जितनी भी पूय निकालें उसी के हिसाब से ५० मि. लि. (५०,००० यूनिटस) से १०० मि.लि.(१००,००० यूनिटस) लोशन अन्दर प्रविष्ट करें। ऐसा एक दिन छोड़ कर या हर तीसरे दिन करें। ३-४ बार ऐसा करने के आराम आ जाना चाहिए। आराम न आये तो शस्त्रकर्म करना चाहिए।

वक्तव्य—पूयोत्पादक कीटाणु से फुफ्फुसावरण में पूय उत्पन्न होते हैं। ये अनेक प्रकार के होते हैं। साधारण कीटाणुओं में पेनिसिलिन ही काम आती है। परन्तु बी० कोलाई से उत्पन्न पूय में पेनिसिलिन के प्रयोग से लाभ नहीं होता। उसकी पहचान पूय परीक्षा से होती है। मोटी पहचान यह है कि इस पूय का रंग कुछ हरियाली लिए होता है। इसके लिए तथा स्टेफिलोकोकस औरियस के लिए औरियमाइसिन १०० मिली. ग्राम. या २५० मिली ग्राम का इन्जेक्शन दें तथा इनकी स्टेराइन सैलाइन सौल्यूशन २०० मि. लि. में लीन करके ०.५ % त्रिलयन बनाकर फुफ्फुसावरणमें प्रवेश करें।

रक्त मय फुफ्फुसावरण प्रदाह में एक दो या तीन बार तरल निकालने से काम चल जाता है तरल सूख जाता है। इस रोग में प्रोकेन पेनिसिलिन फोर्टीफाइड ४ लाख का इन्जेक्शन प्रतिदिन २-३ या ४ सप्ताह तक देना चाहिए।

यह स्मरण रहे कि रक्त में या तरल में पूयकीट पहुंच कर उसे शीघ्र ही पूयमय बना देते हैं, विशेषकर रक्त में अतः तरल या रक्त निकालते समय स्वच्छता का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। यदि पूय पड़ ही जाये तो पूय मय फुफ्फुसावरण की तरह चिकित्सा करनी चाहिये।

पूयमय और रक्तमय फुफ्फुसावरण प्रदाह की शेष चिकित्सा साधारण फुफ्फुसावरण प्रदाह के समान है, विश्राम पौष्टिक आहार स्वच्छ वायु और कास निवारणार्थ तथा पौष्टिक औषधियां दें। इसमें रोगी को खूब आराम से बिस्तर पर रखना चाहिए अच्छे रोशनीदार कमरे में जहां खूब साफ हवा आती जाती हो रखना चाहिए।

आहार में हल्का पतला और पौष्टिक प्रकार का खाद्य होना चाहिए। अच्छा हो शुरू शुरू में विरेचन या जुलाब देकर पेट आमाशय साफ कर दें। रात में अगर नींद अच्छी न आती हो तो डोवर का चूर्ण दिया जाना चाहिए।

इस रोग में अनेक कारणों में द्रव या जमे हुए पतले द्रव के चूर्ण या सुखाने की जरूरत होती है। इसे अंग्रेजी

में ऐसिपरेशन कहते हैं। इस कार्य में पोटास आयोडाइड से बहुत सहायता मिलती है।

छाती के अन्दर का पानी निकालने के लिए एक विशेष प्रकार का यन्त्र मिलता है जिसे पोटेन भी कहते हैं। इससे उस मवादी द्रव को निकाल लेना चाहिए।

लेकिन इस शस्त्र कर्म में अक्सर कितने ही उपद्रव बढ़ जाते हैं जैसे दर्द खांसी बहुत अधिक मिकदार में अल्ब्युमेन या शुकलीय पदार्थ एक साथ निकल जाना, आक्षेप, मूर्च्छा, संन्यास और अन्त में मृत्यु तक हो सकती है।

आजकल द्रव के निकालने के बाद फेफड़े के आवरण में लवण के साथ पेनिसिलिन का घोल बनाकर प्रवेश कराया जाता है। मात्रा ३० हजार से ६० हजार यूनिट तक होती है। यह कुछ दिनों तक रोज या एक दिन का अन्तर देकर होता है।

मवाद सुखाने का काम इन दिनों पेनिसिलिन के भीतर प्रवेश कराने से ही हो जाता है। इससे भी बहुत लाभ होता है।

मवादी अवस्था में प्रायः तीन प्रकार से चिकित्सा होती है।

१—सुखाना और पेनिसिलिन

२—इण्टर कोस्टल ड्रेनेज और पेनिसिलिन

३—पसलियों के स्थान में पेनिसिलिन देना।

इसमें २४ हजार यूनिट की मात्रा में २० मि. लि. नार्मल सैलाइन एक-एक दिन के बाद दी जाती है। दूसरी बार ६० हजार यूनिट दिन में दो बार। तीसरे में ५० हजार यूनिट दिन में दो बार।

इसके अलावा ये नुस्खे भी लाभ दायक है।

१—टेबलेट कोडीन कंपाउन्ड बी. पी. सी २४ टिकिया, दो टिकिया जल से दिन में ३ बार।

२—ग्रा० लिकर अमोनिया एसीटेट २ ड्राम, लिकर ओपीयाई सिडेटिव १० बूंद, सैलीसीन ५ ग्रेन, पोटास नाइट्रेट २० ग्रेन, सिरप टोलू १ ड्राम, एकवा कुल १ औंस प्रति ४ घण्टे पर (दर्द और बुखार में)

३—लिनिमेण्ट एकोनाइट २ ड्राम, लिनिमेण्ट कैम्फर अमोनिया २ ड्राम, लिनिमेण्ट तारपीन २ ड्राम, छाती पर मालिशके लिए विशेष चिकित्सा न्यूमोनिया में देना चाहिए।

उरस्तोय

छाती के जितने भी मुख्य-मुख्य विकार आज उपलब्ध हैं उन सबमें उरस्तोय का रोग प्रायः विशेष कष्टकारी और मारक होता है। इसका आक्रमण बहुधा वक्ष के किसी एक पार्श्व पर होता है और अधिकतर एकाएकी होता है।

उरः+तोय=उरस्तोय अर्थात् उरमें जल, रस या तरल पदार्थ की प्रदाहिक संचिनावस्था। यही प्रदाहिक,जल-संचितावस्था हृदय की आवरक झिल्ली में भी होती है जिसे हृदयावरण शोथ या *Pericarditis* कहते हैं। परन्तु हमें यहां पर केवल फुफ्फुसावरक झिल्ली के प्रदाह से ही मतलब है। अतः इसी का जिकर किया जाता है।

सर्व प्रथम फुफ्फुस की स्थान-स्थिति और कार्य-कलापों का भी थोड़ा सा विवेचन कर देना भी आवश्यकीय प्रतीत होता है।

शरीर का बीच का भाग अर्थात् हाथ-पैर और मस्तिष्क व्यतिरिक्त जो अन्य भाग शेष रहता है उसे धड़ कहते हैं। शरीर के इसी धड़ वाले भाग में वक्षगह्वर, उदरगह्वर और वस्तिगह्वर इत्यादि अवयव स्थित हैं।

धड़ के उस भाग में जो सबसे ऊपर है और जिसे छाती का भाग कहते हैं, उसी में वक्षगह्वर स्थित है और पसलियों की अस्थियों से सुरक्षित है। सामान्य बोल चाल में इसे छाती का पिंजरा कह देते हैं।

इस पिंजरे की निर्मिति २५ अस्थियों के संयोग से हुई है। जिसमें पहिली अस्थि वक्षोस्थि है। इसे वक्ष स्तम्भास्थि भी कह सकते हैं कारण यह अस्थि वक्ष के मध्य में स्तम्भवत खड़ी है जिस पर छाती के दोनों ओर से पसलियों की १२-१२ अस्थियां आकर मिलती हैं और इस पिंजरे में महा प्राचीर-पेशी (Diaphr-gm) हृदय (Heart) और फुफ्फुस (Lungs) इत्यादि अत्यन्त नाजुक अवयव स्वाभाविक रूप में ही पूर्ण सुरक्षित हैं। महा प्राचीर

पेशी यह एक पेशी है जो छाती के उदर तक गई हुई है। फुफ्फुसों की तरह इसमें भी आंकुचन और प्रसरण क्रियायें स्वाभाविक रूप में ही श्वासोच्छ्वास के साथ ही साथ हुआ करती हैं।

यहां एक विशेष ध्यान में रखने योग्य बात भी लगे हाथों बता देना उचित ही होगा कि–फुफ्फुसों की कार्य वाहकता, सुषुम्ना-शीर्षक पर अवलम्बित है। अतः इस सुषुम्ना शीर्षक के बारे में कुछ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है–

सुषुम्ना शीर्षक (Medulla oblongata) यह मस्तिष्क के सबसे अन्तिम भाग में अर्थात मस्तिष्क के अन्त में गर्दन के ऊपर के हिस्से में स्थित है। यह शीर्षक बहुत से संस्थानों का मुख्य कार्य-केन्द्र है। इससे सम्बन्धित सभी संस्थानों को यहीं से कार्य प्रवर्तन की प्रेरणा मिलती रहती है। सभी अनैच्छिक आन्तरिक क्रियायें इसी शीर्षक की प्रेरणा से होती रहती हैं। यहीं से अनेक सन्देश-वाहक स्नायु-सूत्र शरीर के अलग अलग अवयवों में पहुंचते हैं। उन्हीं में से कुछ सूत्र फुफ्फुसों में भी पहुँच जाते हैं। इन्हीं सूत्रों की अनुज्ञाओं से प्रेरित फुफ्फुस, श्वास-प्रश्वास क्रिया में संलग्न रहता है। श्वास-प्रश्वास यह फुफ्फुस की मुख्य क्रियायें हैं। इसी सुषुम्ना शीर्षक से श्वास-प्रश्वास की गतियों का भी उद्गम होता है और यहीं से वह संचलित भी होती रहती है।

जिस प्रकार रक्त-सम्वहन-संस्थान (Cerculatory system) के द्वारा रक्तगत अशुद्ध परमाणुओं का शोधन होकर रक्त की अशुद्धता दूर होती है। उसी प्रकार इस श्वास-संस्थान (Respiratory system) के द्वारा फुफ्फुसों के अन्दर की अशुद्ध वायु का शोधन होकर शुद्ध वायु का संचार होता रहता है।

वायु में मुख्यतः तीन प्रकार के घटक पाये जाते हैं। १. आक्सीजन, २. नाईट्रोजन, ३. कार्बनडाय आक्साइड। इसके अतिरिक्त कुछ जल युक्त वाष्प का भी संमिश्रण पाया जाता है

आक्सीजन को शुद्ध वायु या प्राणवायु भी कहते हैं। श्वास-क्रिया के द्वारा अर्थात जब श्वास अन्दर खींचा जाता है तो यही प्राण वायु फुफ्फुसों में प्रवेश करती है। और फुफ्फुसों की दूषित और अशुद्ध वायु-कार्बनडाय आक्साइड वगैर प्रश्वास-क्रिया के द्वारा बाहर फेंक दी जाती है।

श्वसन-क्रिया के समय फुफ्फुस प्रस्तीर्ण होता है और महाप्राचीर पेशी आंकुचित होजाती है। इससे फेफड़ों में वायु प्रवेश करके फेफड़ों को फुला देती है। इसी क्रिया को श्वसन-क्रिया कहते हैं।

प्रश्वसन-क्रिया के समय महा प्राचीर पेशी प्रस्तीर्ण होती है और फेफड़े आकुंचित हो जाते हैं। इससे फेफड़ों की दूषित वायु बाहर निकल जाती है।

इस श्वासोच्छ्वास-क्रिया का मुख्य कार्य दूषितता से रक्त साफ करके प्राणवायु (oxygen) पहुँचा कर शरीर के रक्त को शुद्ध करना और शरीर की ऊष्मा कायम रखना है। कारण प्राणवायु ही रक्त का जीवन और रक्त शरीर का जावन है। (Oxygen is the life of blood and blood is the life of body) वस्तुतः इस श्वसन-संस्थान में श्वास-सम्बन्धी सभी अवयवों का समावेश किया गया है। यह सभी अवयव श्वास-प्रश्वास की क्रिया के क्रिया-सहायक अवयव हैं। यथा–कण्ठ, नासिका, स्वरयन्त्र (Larynx) टेंटुआ (Trachea) श्वास नली (Bronchi) फुफ्फुस (Lungs) इत्यादि इसी संस्थान के अन्तर्गत खास खास अवयव हैं।

श्वास-प्रणाली का आरम्भ कण्ठ से होकर नीचे वक्ष गह्वर तक अन्न-प्रणाली के साथ-साथ चली गई है। वक्ष-गह्वर में फेफड़ों के करीब पहुंचकर यहां इसके दो भाग हो जाते हैं। यह दोनों शाखायें दोनों फेफड़ों से जाकर जुट जाती हैं। एक शाखा दाहिने फुफ्फुस से जुट जाती है और दूसरी शाखा बायें फुफ्फुस से जाकर मिल जाती है। इन्हें नालियां इसलिए कहते हैं कि यह अन्दर से पोली हुआ करती हैं। जिनमें वायु वहन होता रहता है।

इस संस्थान का मुख्य कार्य शरीर के प्रत्येक अवयवों को प्राणवायु पहुँचाना होता है।

जिस प्रकार शरीर के आंतरिक अन्यान्य अवयवों की सुरक्षा के लिए उनके ऊपर एक प्रकार की श्लेष्मिक-कला का आवरण होता है। उसी प्रकार फुफ्फुसों के ऊपर चारों तरफ भी श्लेष्मिक-झिल्ली का एक आवरण या गिलाफ चढ़ा हुआ रहता है। यह फुफ्फुसों के चारों तरफ

उनकी सुरक्षा के लिए स्वाभाविक रूप में ही लिपटा हुआ रहता है। इसी झिल्ली के आवरण में दोनों ओर के दोनों फुफ्फुस प्रथक-प्रथक पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं।

दाहिना फुफ्फुस कुछ चौड़ा व भारी होता है परन्तु वायां फुफ्फुस कुछ लम्बोतरा व दाहिने से कुछ हलका होता है। शारीरिक-विघटनानुसार मनुष्यों के फुफ्फुस कुछ हलके भारी या छोटे वड़े भी होते हैं। फुफ्फुस स्निग्ध नरम और मृदु होते हैं। फुफ्फुसों में असंख्य वायु-कोषिकायें (Aircells) होते हैं। जिनमें वायु भरी रहती है।

वता चुके हैं कि फुफ्फुसों की सुरक्षा के लिए उनके चारों ओर लिपटा हुआ एक आवरण होता है। इस आवरण पर या फुफ्फुसों की इस सतह पर अथवा इस फुफ्फुस आवरक झिल्ली पर जब किसी वाह्याघात या चोट इत्यादि कारणों से जब छाती पर कुछ व्याघात पहुँचकर या धक्का लगकर वक्ष-पीडित होता है अथवा शीत-सर्दी या ऋतु-परिवर्तन के कारणों से उसमें कुछ विकृति आजाती है तो परिणाम स्वरूप यह झिल्ली आक्रान्तित होकर व्यथित होती है और उसमें प्रदाह या शोथ आरम्भ होजाता है। फिर धीरे-धीरे इस झिल्ली में तरल संचित होकर तीव्र प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। जिसमें अतिशय वेदना होती है। इसे ही उरस्तोय कहते हैं अर्थात फुफ्फुसावरण झिल्ली की वेदना-पूर्ण-सजल-प्रदाहिकावस्था या शोथावस्था को ही उरस्तोय कहते हैं। इसे सजल-वक्षशूल या पार्श्वशूल फुफ्फुसावरण प्रदाह वक्षावरणशोथ इत्यादि नामों से भी पहिचानते हैं। किसी किसी प्रांत में इसे कांस्य-क्रोट भी कहते हैं। महाराष्ट में ग्रामीण इसे एक कइचा के नाम से भी पहिचानते हैं। एलोपैथिक में इसे Pleurisy कहते हैं।

सम्प्राप्ति—शीत, सर्दी, ऋतु-परिवर्तन, श्रमाधिक्य या अतिभार-वहन, अथवा किसी अन्य कारण से छाती में आघात चोट या धक्का इत्यादि के लगने से या किसी अन्य कारण से वक्ष के पीडित होने से भी इसकी उत्पत्ति होती है। कभी कभी न्यूमोनिया, राजयक्ष्मा और कैंसर इत्यादि कुछ वक्ष-मंडल के अन्यान्य विशेष रोगों के कारण की इसकी उत्पत्ति हुआ करती है।

लक्षण--इस बीमारी के आरंभ में कुछ शीत-बोध होता है और जाड़ा लगकर ज्वर चढ़ जाता है। छाती में अकस्मात चमक होती है और धीरे धीरे त्रिशूल चुभने के समान वेदना वढ़ जाती है। जो बढ़ते-बढ़ते काफी बढ़ जाती है और तीव्र वेदना होने लगती है। वेदना का इतना तीव्ररूप हो जाता है कि जैसे कोई भाला मार रहा हो या छुरी से वक्ष काट रहा हो। इस प्रकार वेदना बढ़ कर असह्य रूप प्राप्त कर लेती है।

छाती के जिस पार्श्व पर इसका आक्रमण होता है उसी तरफ के स्तन के समीप यह तीव्र और असह्य पीड़ा होती है।

इसमें समज्वर के समान ज्वरावस्था होती है और प्रायः १०० से १०२ डिग्री तक ज्वर पाया जाता है। ज्वर, कास, कम्प, श्वास कष्ट और भाला या त्रिशूल मारने के समान तीव्र वेदना इत्यादि इसके प्रमुख लक्षण हैं।

शमनकाल—इसे ७ दिन तक की अवधि इसकी शमनावस्था होती है। इस अवधि में इसकी चिकित्सा भी साध्य होती है। इसके बाद फुफ्फुसों की सतह में सूजन बढ़ कर उसमें तरल वृद्धि के कारण स्रावावस्था होकर रोग दुस्साध्यावस्था को पहुँच जाता है।

प्रकार—अवस्था भेद के कारण उरस्तोय के चार प्रकार माने जाते हैं।

१—शुष्कावस्था, २—आर्द्रावस्था, ३—रक्तभरितावस्था, ४—पूयावस्था,

१. शुष्कावस्था—इस रोग की यह शमनकाल की प्रारम्भिक अवस्था होती है। इस अवस्था में शुष्क-कास, चमक और ज्वर वगैर लक्षण रहते हैं।

२. आर्द्रावस्था—इसे स्रावावस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में फुफ्फुसों की सतह में तरल संचित होवा आरंभ हो जाता है। इसमें वेदना का रूप विशेष उग्र हो जाता है। ज्वर कास कम्प इत्यादि उपद्रवों में भी रोग की वृद्धि के साथ ही उग्रता वढ़ जाती है।

३. रक्तभरितावस्था—संचित तरल में विशेष विकृति आकर फुफ्फुसों की रक्त-केशिकायें भी विकृत्त होकर उनमें विदीर्णावस्था आजाती है।

४—पूयावस्था—यह इस बीमारी की अन्तिमावस्था है। इसमें पीप उत्पन्न होकर रोग भीषण रूप से बढ़ जाता है। यह प्रायः असाध्यावस्था होती है।

परीक्षा—श्रवण नलिका (Stethiscope) इस रोग की पहिचान का प्रधान साधन है। इस रोग की तरल संचितावस्था में फुफ्फुसों से ऐसी ध्वनियां सुनाई देती हैं जैसे किसी जल से भरे हुए पात्र में कोई नली डालकर फूंक मारने से बुड-बुड की ध्वनियां निकलती हैं। तरल की संचितावस्था में उरस्तोय में यह ध्वनियां स्पष्ट सुनाई देती हैं परन्तु प्रारम्भिक-शुष्कावस्था में न्यूमोनिया के समान सीटियों की सी ध्वनियां सुनाई देती हैं।

उरस्तोय या न्यूमोनिया की साम्यावस्था और प्रभेदावस्था का कुछ परिचय—

साम्यावस्था—ज्वर, कास, हृदय, यकृत, प्लीहा व जठर इत्यादि के विकारों में तथा श्वासकष्टादि लक्षणों में प्रायः साम्यता पाई जाती है।

प्रभेदावस्था

उरस्तोय	न्यूमोनिया
१—इसमें भाला बर्छियों के मारने के समान तीव्र-शूल होता है।	१—इसमें तीव्रशूल नहीं होता और श्वास लेने में भी विशेष कष्ट प्रतीत नहीं होता है। सामान्य चमक होती है।
२—चमक बराबर समान रूप में चालू ही रहती है जो प्राणान्तिक रूप में उठा करती है।	२—खांसने पर ही कुछ चमक होती है बार-बार नहीं।
३—पीड़ित वक्ष पर तो सो ही नहीं सकता परन्तु दूसरे वक्ष पर भी सोना मुश्किल हो जाता है। प्रायः बैठकर ही रहने का प्रयत्न करता है।	३—इसमें निद्रा के समय रोगी सो सकता है लेट सकता है और पड़े-पड़े बोलता, खांसता रहता है।

कुछ सूचनायें

इस बीमारी में हमेशा उष्ण जल का ही उपयोग करावें। पीना, नहाना सभी गर्म जल से करना चाहिए। पेट साफ रखना चाहिए। कभी-२ सौम्य रेचन का भी काम पड़ जाता है। ऐसी अवस्था में Mag Sulph का भी उपयोग किया जा सकता है। इस बीमारी के बाद यक्ष्मा होने की पूरी आशंका रहती है। अतः यक्ष्मा का आक्रमण न होने पाए इसलिए इस रोग में "पूर्ण इलाज और भरपूर विश्राम" इस बात को न भूलना चाहिए।

चिकित्सा विधि

इस रोग में वेदना, चमक वगैरः कम करने के लिए औषधियां सेवन के साथ ही कुछ बाह्योपचारों का भी सहारा लेना जरूरी रहता है। आगे कुछ बाह्य प्रयोग भी दिए जाते हैं। इन प्रयोगों का वक्ष स्थल पर मर्दन-मालिश वगैरः कराकर कुछ हलका-२ उष्ण सेक भी करा दिया जाता है।

१—समय पर उपलब्ध किसी वेदना-शामक तैल या मरहम वगैरः का बाह्य प्रयोग कराकर सेक देना चाहिए। जैसे—Iodex या Liniment Terpentine का भी वक्ष पर मर्दन कराकर सेक करा दिया जाता है। टरपेन्टाईन में कोई-कोई थोड़ा कपूर और थोड़ा सेंधा नमक बारीक पीसकर मिलाते हैं और कुछ गर्म कराकर मलवा देते हैं।

२—डिशेन का चेस्ट आइल (Chest oil of Dechane) भी वक्ष विकारों में मर्दनार्थ विशेष लाभप्रद है।

३—सरसों तेल २० तोला दशमूल क्वाथ २० तोला गुग्गल और कौड़ीलोबान २-२ तोला, एरण्डमूल स्वरस २ तोले करंजे का रस, सहजने का रस और श्वेत वसु का रस प्रत्येक ५ तोला मिलाकर तेल पाक विधि से तेल तैयार करलें।

इस तेल के मलने से सभी प्रकार की वेदनाओं में बड़ा उपकार होता है।

४—निम्न "वेदना नाशक तेल" का भी मर्दनार्थ उपयोग होता है और चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है।

मर्दनार्थ वेदना नाशक तेल—२० तोला तिल तेल

लेकर किसी कलईदार पात्र में डालकर उसमें ३-३ माशे कुचिला और सिंगिया का वस्त्र पूत चूर्ण डाल दें। साथ ही १॥ माशा अफीम १ माशा केशर भी बारीक पीसकर मिला दें। इसी मिश्रण में धतूरे के पंचांग का रस, करंज पंचांग का रस और सिरस वृक्ष के पंचांग का रस अभाव में पत्तों का भी रस डाला जा सकता है। यह रस ३-३ तोला और देशी मोम ३ तोला मिलाकर मध्यमाग्नि पर तेल पाक विधि से तेल तैयार करलें और इसी वस्त्रपूत तेल में कपूर, महानारायण तेल, महा विषगर्भ तेल और लशुनादि तेल सब १-१ तोला और टरपेन्टाईन ३ तोला मिलाकर रख लेना चाहिए।

यह एक अनुपम और पूर्ण प्रभावशाली 'वेदना नाशक तेल बनकर तैयार है। सभी प्रकार की पीड़ा, चमक, ठणका और वातिक वेदनाओं पर मलते मलते ही अपना चमत्कार बताया करता है।

श्वास कुठार रस और आनन्द भैरव रस (कास) प्रत्येक ४-४ रत्ती, गिलोय का वस्त्रपूत चूर्ण १ माशा, कृष्णमरिच का वस्त्रपूत चूर्ण ६ माशे, शुद्ध स्फटिका (श्वेत) का वस्त्रपूत चूर्ण ६ माशे।

सबको भलीभांति एकत्र घोटकर सबकी १४ मात्रायें बनाकर वयस्कों को १-१ मात्रा प्रति ४-४ घंटे के अन्तर से अदरख के रस से चटा दिया करें।

इसके प्रयोग से कभी कभी रोग की वृद्धि बिल्कुल ही रुक जाती है और चमक इत्यादि वेदनायें साफ हो जाती हैं।

६. रस सिन्दूर (षड्गुण गन्धक जारित) १ रत्ती, अभ्रकभस्म (सहस्त्र पुटी) १ रत्ती, गिलोय चूर्ण (सूक्ष्म पिष्टीवत्) २ रत्ती। अदरख के स्वरस से चटाकर ऊपर से २ तोला अर्जुनारिष्ट उष्ण जल मिलाकर प्रति ६-६ घंटे से सेवन कराया करें।

७. इस बीमारी में प्रारम्भ से ही महावात रस का प्रयोग विशेष लाभकारी पाया गया है। इसकी १-१ रत्ती की मात्रा प्रति ६-६ घण्टे के अन्तर से मधु व अदरख रस से सेवन कराया करें। तैलादि का भी मर्दन कराते रहना चाहिए।

८. जब बीमारी बढ़नी आरम्भ होती है और उसमें कुछ कुछ जल संचय होने लगता है तो इस स्रावावस्था में निम्न प्रयोग अत्यन्त ही लाभप्रद है।

समीर पन्नग रस (सर्वोत्तम) की १-१ रत्ती की मात्रा में मधु व अदरख स्वरस के अनुपान के साथ दोनों समय सेवन करायें। विशेष गुणप्रद प्रयोग है-

९. रस सिन्दूर, माणिक्य रस, लघु वसन्त मालती रस, श्वास कुठार रस।

इनमें से किसी एक का नियमित सेवन कराते रहना चाहिए। अथवा

१०. उक्त सभी औषधियों का मिश्रण बनाकर रख लें और १-१ रत्ती की मात्रा में सेवन कराते रहना चाहिए। प्रायः प्रतिः ६-६ घण्टे के अन्तर से १-१ मात्रा सेवन कराया करें। बहुत ही प्रभावोत्पादक प्रयोग है।

११. यदि विशेष रूप में अतिशय जल संचय की अवस्था हो जाय तो उस समय—

पंचसूत रस की १-१ रत्ती की मात्रा देने से विशेष प्रभाव दीखता है।

११. पूय-संचितावस्था में निम्न प्रयोग का सेवन करायें। इस अवस्था में यह एक विशेष गुणकारी प्रयोग है—

अभ्रकभस्म (सहस्त्रपुटी), चन्द्रोदय रस, मौक्तिक भस्म, जस्तभस्म और सुवर्ण भस्म (पारद योग से निर्मित) सबका समान भाग में मिश्रण तैयार करके रख लेना चाहिए। १-१ रत्ती की मात्रा में तुलसी के पत्तों के रस के साथ सेवन करावें। रोगों की उग्रतानुसार तीन समय भी सेवन करा सकते हैं। बहुधा २४ घंटे में केवल दो बार देना ही ठीक रहता है।

नोट—शस्त्र क्रिया कराकर झिल्ली का संचित तरल अवश्य निकलवा दिया करें।

आगे कुछ प्रचलित एलोपैथिक औषधियों की ओर भी साधारण सा संकेत किया जाता है।

१. रोग के आक्रमण का आरम्भ होने पर शुल्फौषधियों का सेवन कराना ही प्रायः रोग को नष्ट कराने में काफी है।

Sulphathiazole. Sulphadiazine, ledermycin orisul, Elkosin, Ganttrisin इत्यादि में से किसी

एक की २-२ गोलियां प्रति ४-४ घंटे के अन्तर से दी जाती हैं। साथ ही Streptopenicillin के इञ्जेक्शनों का भी प्रयोग कराया जाता है। अथवा Procain Penicillin ४ लाख व Streptomycin sulphate ½ gm. की एक सुई प्रतिदिन एक बार इस प्रकार १० दिन तक लगाना चाहिए।

२. Neopac की १-१ गोली अथवा Isopac की ३-३ गोलियां प्रतिदिन ३ बार सेवन कराना हितकर है।

३. बीमारी अधिक बढ़ने पर Mysteclin, Resteclin, Aureomycin, Subamycin, अथवा Synermycin वगैरः औषधियों का प्रयोग कराना चाहिए। इनके ५००, १०० या २५० मि. ग्रा. के प्रति सी. सी. के हिसाब से १०-१० सी. सी. के Vials मिलते हैं अथवा Capsusles भी मिलते हैं। जिनका प्रति ६-६ घंटे पर प्रयोग कराना चाहिए।

बड़ों के लिए साधारण रूप में प्रतिदिन १ ग्राम तक २४ घण्टे में ४ मात्राओं में बांटकर देना चाहिए और बच्चों के लिए २० मि. ग्रा. प्रति किलोग्राम शरीर भार के अनुसार हर एक ६ घंटे के पश्चात देना चाहिए।

४. इस बीमारी में आधुनिक क्षय चिकित्सा के समान क्रम की भी आवश्यकता पड़ जाती है।

५. जब वेदनायें कम करने के लिए Cibalgin, Algin, Analgin या Pethidine वगैर औषधियों का भी सेवन करा दिया करें। अथवा Morphine ½ ग्रेन की एक सुई लगवा दिया करें।

६. Pleura में से तरल निकलवाना न भूलें।

७. मूत्रल औषधियों का भी उपयोग कराया जाता है। इसके लिए Hexamine Powder या Potass iodide वगैरे में से कोई एक १५-२० ग्रेन की मात्रा में लेकर उष्ण जल में घोलकर पिला देने से खुलकर मूत्र हो जाता है। अथवा Neptal या Mersilyl वगैरः की सुई लगा दिया करें।

बेंगाल केमीकल की पुनर्नवा एक्स्ट्रैक्ट भी बहुत अच्छी मूत्रल औषधि है।

—श्री डा० पी० टी० खमारोकर,
दिन्दरूड़ (बीड़) महाराष्ट्र

हृद्रोग, निदान एवं चिकित्सा

वेगाघातोष्ण रूक्षान्नैरतिमात्रोपसेविनः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्ण रसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥
दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।
कुर्वन्ति हृदये बाधां हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥

—सु० उ० अ० ४३

अर्थात्—

मल मूत्रादि के वेगों को रोकने से, उष्ण भोजन, रूक्ष भोजन का अति मात्रा में सेवन करने से विरूद्ध भोजन से अध्ययन से, अजीर्ण असात्म्य भोजनों से कुपित हुए दोष हृदय में पीड़ा उत्पन्न करते हैं। इसको हृदय रोग कहते हैं। हृदय रोग वात आदि दोषों से तीन प्रकार का और सन्निपात से ४ प्रकार का है। क्रमि जन्य हृदय रोग अलग है। वात जन्य हृदय रोग में-हृदय खींचता प्रतीत होता है। चुभने का सा दर्द होता है। मथने के समान, काटने के समान, चटकने के समान, फाड़ने के समान वेदना होती है।

पैत्तिक हृद्‌रोग में—प्यास ऊषा (प्रादेशिक दाह) चोष, हृदय में क्लम, धूमोद्वमन की प्रतीति मूर्च्छा और मुख की शुष्कता होती है। कफजन्य हृद्ररोग में भारीपन, कफ का स्राव, अरुचि, जड़ता, अग्निमांद्य, मुख में मधुरता कफ के हृदय में आवृत्त होने पर होता है। त्रिदोषजन्य हृद्‌रोग में उत्क्लेश, थूक का आना, चुभने की दर्द, शूल, जी मिचलाना, अन्धकार, अरुचि, आंखों में कालापन तथा शोष होते हैं। क्रमिजन्य हृद्‌रोग में कफज क्रमियों के समान लक्षण होते हैं।

वातज हृद्‌रोग में—रोगी को स्नेहन देकर दशमूल के क्वाथ में स्नेह (घी) और नमक मिलाकर वमन करावें। फिर शोधन होने पर पिप्पली, इलायची, वच, हींग, यवक्षार, सेंधव, सौवर्चल, सोंठ, अजवायन इनके चूर्ण को बिजौरे आदि फलों के रस, कांजी, कुलथी का यूष, दही, मद्य, आसव इनके साथ अथवा घी, तैल, मज्जा, वसा इनमें से किसी एक स्नेह के साथ पिलायें। भोजन में पुरातन शाली चावलों को घृत मिश्रित जांगली मांस रसों में की वस्ति प्रमाण के अनुसार दें। पित्त से उत्पन्न हृद्‌रोग में गम्भारी मुलैहठी, मधु, शर्करा, कमल इनके पानी से रोगी को वमन करायें। काकोल्यादि मधुर द्रव्यों से पकाया घृत पिलाऐं। पित्त ज्वर नाशक कहे कषायों का प्रयोग कराऐं हरिण आदि के मुख्य मांस रसों को मधुर द्रव्यों से तथा घी से संस्कृत करके पर्याप्त मात्रा में तृप्ती पर्यन्त वैद्य पिलायें। मुलैठी क्वाथ से सिद्ध तैल और मधु मिलाकर वस्ति देवें।

कफजन्य हृद्‌रोग में—वच, नीम के कषाय से वमन करायें। वातज हृद्‌रोग में कहा चूर्ण भोजन के साथ देवें। संशोधन में शमनीयोक्त, मदनफलादि, द्रव्य संग्रहणीयोक्त मुस्तावंद या त्रिफला को मनुष्य पीयें। काली निशोथ निशोथ कल्क मिश्रित घृत को विरेचन के लिये देवें। वस्ति को जानने वाले बला तैल से वस्ति को देवें। क्रमिजन्य हृद्‌रोगी को घृत से स्निग्ध पिशितोदन (मांस भोजन) को दही एवं तिल कल्क के साथ तीन दिन खिलायें। इसके पीछे सुगन्धित लवणयुक्त जीरा एवं शर्करा युक्त विरेचन देवें। विरेचन के पीछे कांजी से विरेचन देवें। विरेचन के पीछे कांजी में प्रचुर विडंग चूर्ण मिलाकर इसको पिलायें। इस प्रकार करने से मनुष्य के हृदयस्थ क्रमि नीचे गिर जाते हैं। इसके बाद विडंग मिश्रित जौ का अन्न उसे खाने को देवें।

अनुभूत योग-

हृद्‌रोगादि—यह गारण्टी का प्रयोग है-सुवर्णभस्म ५ ग्राम, वैक्रान्तभस्म ७ ग्राम, मुक्तापिष्टी ९ ग्राम, असगन्ध का घनसत्व १५ ग्राम, अर्जुन के ताजे फलों का घनसत्व २१ ग्राम सबको एकत्र खरल में मिश्रित करके चौगुने सेव के स्वरस की एक भावना और चौगुने ही अंगूर स्वरस की भावना देकर एक माशा प्रमाण के वटक बना लें और गौघृत में पकौड़े की भांति पकालें। छाया में खुले रख दें। तीन दिन पश्चात् प्रातः सायं एक एक वटक गोदुग्ध से सेवन करें। यह चालीस दिन में सम्पूर्ण हृदय रोगों को नष्ट करके शरीर की पुष्टि, कान्ति, बल, आयु

और आरोग्य को प्रदान करता है।

(६) **ककुभादि चूर्ण**—अर्जुन त्वक्, वच, रास्ना, बला, नागवला, (सहदेई) हरड़, कचूर, पोहकरमूल, पीपल सोंठ, इन सबको एकत्र कर प्रातः गोघृत के साथ सेवन करावें, इसके सेवन से सम्पूर्ण हृदय रोग शान्त होते हैं। सेव्य मात्रा १ माशा।

(७) **बल्लभकं घृतम्** घी २ प्रस्थ, कल्कार्थ हरड़ ५०, कालानमक २ पल, पाकार्थ जल ८ प्रस्थ इस घृत को यथा विधि सिद्ध कर सेवन कराने से हृल्लास, शूल, उदर रोग तथा वात रोग नष्ट होते हैं। सेव्य मात्रा आधा तोला।

(८) **श्वदंष्ट्रा घृत**—गोघृत २ प्रस्थ, क्वाथार्थ गोखरू, खश, मंजीठ, बला, गम्भारी की छाल, कंत्ताण, दर्भमूल, पृश्टिपर्णी, पलाश त्वक् (ढाक की छाल), ऋषभक, शालपर्णी प्रत्येक १ पल, जल ८ प्रस्थ। अवशिष्ट क्वाथ २ प्रस्थ दूध ८ प्रस्थ। कल्क द्रव्य—कौंच बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, शतावर, ऋद्धि, द्राक्षा, खांड, मुण्डी, विस मिश्रित आधा प्रस्थ ६४ तोला। इस घृत को यथा विधि सिद्ध कर पीने से वातिक तथा पैत्तिक हृद्रोग, शूल, मूत्र कृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, श्वास, कास, क्षय, प्रभृति रोग नष्ट होते हैं। यह बल और मांस वर्द्धक है। मात्रा आधा तोला।

(९) **बलाद्य घृतम्**—गव्य घृत ४ सेर क्वाथार्थ—बला, नागवला, अर्जुन मिलित ८ सेर, जल ६४ सेर शेष क्वाथ १६ सेर, कल्कार्थ मुलहठी १ सेर। इसे सिद्धकर सेवन करने से हृद्रोग, शूल, उरःक्षत, रक्तपित्त, कास (खांसी), वातरक्त प्रभृत्ति रोग नष्ट होते हैं। आधा तोला मात्रा।

(१०) **अर्जुन घृत**—अर्जुन छाल के क्वाथ तथा कल्क से यथा विधि घृत को सिद्धकर सम्पूर्ण हृद्रोगों में सेवन करना चाहिए। मात्रा—आधा तोला।

(१०) **कल्याण सुन्दर रस**—रस सिंदूर, अभ्रक-भस्म, रजत भस्म, ताम्रभस्म, सुवर्णभस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म इन्हें एकत्र खरल में मिश्रित कर चित्रक के क्वाथ से १ दिन मर्दन कर हस्त शुण्डि के रस से ७ बार भावना दें और १ रत्ती की गोली बनावें।

अनुपान—कोसा जल। इसके सेवन से उरस्तोय, हृद्रोग, वक्षोवात तथा छाती में सञ्चित रक्त प्रभृति रोगों तथा अन्य फुफ्फुस में होने वाली व्याधियां नष्ट होती हैं।

(११) **चिन्तामणि रस**—पारद, गन्धक, अभ्रक भस्म, लौहभस्म, वङ्गभस्म, शिलाजीत प्रत्येक १-१ तोला, सुवर्ण भस्म ३ माशे, रजत ६ माशे, इन्हें एकत्र कर चित्रक के क्वाथ से भांगरे के रस से तथा अर्जुन के क्वाथ से पृथक-पृथक७-७वार भावना देकर १ रत्ती की गोलियां बनावें और इन्हें छाया में सुखालें।

अनुपान—गेहूँ का क्वाथ। इनके सेवन से सम्पूर्ण हृद्रोग फुफ्फुस रोग, प्रमेह, श्वास, कास, प्रभृति रोग नष्ट होते हैं। इस रस में बल्य तथा पुष्टि करने की क्षमता है।

(१२) **हृदयार्णव रस**—पारद, ताम्रभस्म, गंधक इन्हें एक त्रिफला के क्वाथ तथा मकोय के रस में मर्दन कर १ रत्ती की वटी बनावें। इसके सेवन से सम्पूर्ण हृद्रोग नष्ट होते हैं।

(१३) **विश्वेश्वर रस**—सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, वङ्गभस्म, पारद, गंधक, वैक्रान्तभस्म, प्रत्येक १ तोला इन्हें एकत्र कर अर्जुन क्वाथ से यथा विधि भावना देकर १ रत्ती की वटिका बनावें। इसके सेवन से फुफ्फुस एवं हृद्रोग नष्ट होते हैं।

(१४) **त्रिनेत्रो रस**—पारद, गन्धक, अभ्रक, इन्हें एकत्र समभाग में मिश्रित कर अर्जुन की छाल के क्वाथ से २१ बार भावना दें और १ रत्ती की वटी बनावें। अनुपान—मधु। इसके सेवन से वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, त्रिदोषज तथा क्रिमिज हृद्रोग नष्ट होता है।

(१५) **नागार्जुनाभ्रम्**—सहस्रपुटी अभ्रक भस्म को अर्जुन के क्वाथ से ७ दिन भावना देकर १ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखालें। इसके सेवन से हृद्रोग, शूल, अर्श, हृल्लास (जी मिचलाना), छर्दि, अरुचि, अतिसार, मन्दाग्नि, रक्तपित्त, क्षतक्षय, शोथ, उदर रोग, अम्लपित्त, विषम ज्वर, प्रभृति रोग नष्ट होते हैं। यह बल-कारक, वीर्य वर्धक तथा रसायन है।

(१६) **पञ्चानल रस**—पारद, गंधक की कज्जली को आंवला, द्राक्षा, मुलहठी तथा खजूर प्रत्येक के क्वाथ से १-१ दिन मर्दन करके वटी बनावें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आंवले का चूर्ण तथा खांड। इससे हृद्रोग शान्त

होता है।

(१७) प्रभाकर वटी—स्वर्णमाक्षिक भस्म, लौह-भस्म, अभ्रकभस्म, वंशलोचन, शिलाजीत, इन्हें एकत्र सम-परिमाण में मिश्रित कर अर्जुन के क्वाथ से भावना देकर २ रत्ती की गोलियां बना छाया में सुखालें। यह वटी सम्पूर्ण हृद्रोगों को नष्ट करती है।

(१८) शङ्कर वटी—पारद ४ तोला, गन्धक ८ तोला, लोहभस्म ३ तोला, सीसक भस्म २ तोला इन्हें एकत्र कर मर्दन कर मकोय, चित्रक, अदरख, जयन्ती पत्र, अडूसा विल्व तथा अर्जुन के रस से भावना देकर २ रत्ती की वटी वनावें।

अनुपान—कोसा जल। इसके सेवन से फुफ्फुस रोग, हृद्रोग, जीर्ण ज्वर, प्रमेह, कास, श्वास, आमवात, ग्रहणी प्रभृति रोग नष्ट होते हैं। यह वल तथा पुष्टि को देने वाली है।

(१९) अर्जुनारिष्ट--अर्जुन की छाल (१० सेर) १ तुला, द्राक्षा ५ सेर, महुए के फूल २ सेर इन्हें एकत्र ८ द्रोण जल में पकावें। जब २ द्रोण अवशिष्ट रह जाए तब उतारलें और वस्त्र से छानलें। इसमें १० सेर गुड़ घोलकर २० पल (२ सेर) धाय के फूल का प्रक्षेप दें। एक मास तक इसे मृत् पात्र में वन्दकर रक्खें।

मात्रा—१¼ तोले से २½ तोले तक। इसके सेवन से हृदय और फुफ्फुस के रोग नष्ट होकर वल तथा वीर्य वढ़ता है।

(२०) पाठाद्य चूर्ण—पाढ, वच, यवक्षार, वड़ी हरड़, अम्लवेत, दुरालभा, चित्रक, त्रिकटु, त्रिफला, कचूर, पोहकरमूल, इमली छाल, अनारदाना, मातुलुङ्ग की जड़ इनके चूर्ण को एकत्रकर कोष्ण जल अथवा मद्य से सेवन करावें।

मात्रा—२ माशा। इसकेसेवन से अर्श, शूल हृद्रोग तथा गुल्म रोग नष्ट होता है।

(२१) मृङ्गशृंग भस्म को घृत के साथ मिश्रितकर पीने से हृच्छूल तथा पृष्ठशूल शीघ्र ही नष्ट होता है।

यूनानी

हृदय को अरवी भाषा में 'कल्व' कहते हैं और उसकी वीमारियों को 'अमराजुल कल्व' कहा जाता है।

यूनानी चिकित्सा में हृदय की अलग-अलग विकृतियों के अलग अलग नाम वर्णित किए गए हैं तथा उनके लिए चिकित्सा भी भिन्न-भिन्न वताई गई हैं। हम इस प्रकरण में कुछ प्रधान विकृतियों का वर्णन करने जा रहे हैं।

(१) खफखान—यह एक ऐसी विकृति है जिसमें हृदय की धड़कन जोर-२ से होने लगती है और गति तीव्र हो जाती है। यह गति इतनी तेज भी हो सकती है कि रोगी ऐसा अनुभव करने लगता है कि उसका दिल सीने से वाहर निकलने को है। इस हालत को 'कज्फुल-कल्व' कहते हैं।

इस रोग में होता यह है कि किसी आकस्मिक घटना के कारण, तेजी से चलने से, मानसिक भावों की उथल-पुथल से हृदय की गति तीव्र हो जाती है और रोगी ऐसा अनुभव करता है कि उसका हृदय डूब रहा है। कभी—२ आंखों के आगे अंधेरा भी आ जाता है। सांस फूलता है, नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है, मूत्र का रंग रक्त वर्ण का हो जाता है और मल शुष्क हो जाता है। यह रोग गर्म और सर्द भेद से दो प्रकार का होता है। उष्ण (गर्म) को फिर साजिज और माद्दी २ तरह का वताया गया है।

इसकी चिकित्सा में रोगी को पूर्ण विश्राम, खुली हवा, चिन्ता आदि से रहित रहना आवश्यक है। हलका वलकारक आहार देना चाहिए। तमाकू, चाय, कहवा आदि न दें। मैथुन का परहेज करावें।

वेगकाल में निम्न द्रव्य दिए जाते हैं—

१—मुफर्रेह वारिद या खमीरा संदल या खमीरा मरवारिद को (५ माशा–७ माशा तक) अर्क वेदमुश्क ५ तोला, अर्क केवड़ा ५ तोला और शर्वत गुड़हल २ तोला मिलाकर दें।

२—यदि ऊपर के योग से लाभ न हो तो जवाहर-मोहरा आधी से एक रत्ती की मात्रा में लें। इसे खमीरा अव्रेशम ७ माशा में मिलाकर खिलावें। ऊपर से मीठा संतरा का रस, मीठा अनार का रस, नाशपाती का रस प्रत्येक ५-५ तोला और शर्वत सन्दल २ तोला मिलाकर पिलावें।

३—चन्दन को गुलाव के अर्क में घिसकर हृदय स्थान पर लेप करें।

रोग के कारण को ढूंढ कर उसे दूर करने का उपाय करें।

गर्म के लिए ३ माशा कुर्स काफूर को २ तोला शर्बत अनार में मिलाकर दें। ऊपर से १ तोला काले कुलफा के बीज का शीरा, अर्क गुलाब ४ तोला और अर्क गावजवान ८ तोला में निकाल कर २ तोला शर्बत नीलूफर की योजना बनाकर पिलावें।

कफ के रोग में बादरंजबोया, वस्फाइज, अफ्तीमून प्रत्येक ६ माशा, अनीसून, मुलहठी, गावजवान प्रत्येक ५ माशा, मकोय, कड़के के बीज प्रत्येक ९ माशा, बरंज अकरबी ४ माशा समस्त द्रव्यों को रात में गरम पानी में भिगोवें। सबेरे पकाकर छानकर शर्बत उस्तूखुद्दूस और गुलकन्द प्रत्येक २ तोला मिलाकर पिलावें। इस योग से सप्ताह या पक्ष भर दोष पाचन करके हव्व सिब्र का सेवन करावें। इससे दोषों का शोधन हो जाता है। शोधन के उपरान्त दरुन्ज अकरबी ५ माशा, जदवार खताई ४ रत्ती बारीक पीसकर अर्क गुलाब ४ तोला और अर्क गावजबान ८ तोला के साथ खिलावें।

(२) गशी—इस हालत में अचानक हृदय की गति बन्द हो जाती है और रोगी को बेहोशी आ जाती है। यदि रोग का कारण कमजोर होता है तो गशी में कुछ कमी आ जाती है। यदि बलवान कारण हो तो रोगी की गशी बढ़ती जाती है और रोगी चैतन्यहीन हो जाता है। उस हालत को 'सकूतुल कल्ब' कहते हैं।

ऐसी हालत में रोगी को पूरे आराम से लिटावें। सिर, चेहरे, सीने पर ठण्डे पानी के छींटे लगावें। उसी समय अर्क गुलाब २ तोला, अर्क केवड़ा २ तोला और अर्क वेदमुश्क ३ तोला, कपूर ३ माशा मिलाकर शीशी में डालकर सुंघावें।

हृदय जनित मूर्छा में जहर-मोहरा, वंशलोचन, अनार दाना, सुमाक, जदवार, गुलाब का केशर, कहरुवाये शमई, हरा यशब प्रत्येक १ माशा सबको बारीक पीसकर ५ माशा खमीरा गावजवान जवाहरवाला में मिलाकर देवें और अनार तथा नाशपाती का रस प्रत्येक ६ तोला या गावजवान का लुआब ३ माशा, सौंफ का शीरा ५ माशा, ६ दाने गुठली निकली हुई मुनक्का का शीरा, अर्क गावजवान, अर्क केवड़ा, अर्क गुलाब, अर्क वेदमुशक प्रत्येक ३ तोला में निकाल कर २ तोला शर्बत सेब मिलावें और खमीरा खा कर ऊपर से पिलावें। यह प्रायः सभी प्रकार की मूर्छा और हृत्स्पन्दन में लाभकारी है।

(३) वजा उल्कल्ब—इस हालत को उर्दू में दर्द-दिल कहा जाता है। कभी-कभी यह दर्द इतना तेज होता है कि रोगी उस दर्द को सहन नहीं कर सकता और उस उसका दम बन्द होकर उस रोगी की मृत्यु हो जाती है।

यह दर्द पहले पहल अचानक होता है फिर इसके दौड़े पड़ने लगते हैं। पहले दौरे में रोगी बच जावे तो दूसरा और भी तेज आता है और तीसरा दौरा दूसरे की अपेक्षा भी तीव्र और शीघ्र होता है।

दौरे से पहले रोगी को कुछ बेचैनी रहती है, हृदय स्थल पर भारीपन और बोझ मालूम होता है। फिर वहां तीव्र शूल होता है, पसीना आता है कभी-कभी वमन भी होता है।

इसकी चिकित्सा में दौरा होते ही रोगी को शय्या पर आराम से लिटा दें। दर्द के स्थान पर गुलाब के इत्र की मालिश करें। गुल बाबूना २ तोला, और खतमी के फूल २ तोला कूटकर पोटली में बांध लेवें और हृदय के ऊपर टकोर करें। या पोस्ते की ५ डोंडी को पाव भर पानी में उबाल कर उसमें यह पोटली भिगोयें तथा इससे दर्द के स्थान पर सेक करें। थोड़ी देर टकोर करके दर्द के स्थान पर 'जिमाद जाफरान जदीद" लगा देवें। इन उपायों से प्रायः दर्द कम हो जाता है।

जिस कारण से रोग होता है इसकी जानकारी प्राप्त कर उस कारण के अनुसार उपचार करना चाहिए।

इस हालत में दवा चाहे जो दें परन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि हृदय को बल मिलता रहे। हृदय को ताकत देने के लिए दवा उलमिस्क मोतदिल जवाहर वाली ५ माशा या खमीरा गावजवान ५ माशा खिलाना लाभकारी होता है। (अंबरी जवाहरवाला)

(४) जोफुलकल्ब—दिल की कमजोरी को कहा जाता है। इस हालत में दिल की धड़कन बहुत कम हो जाती है और इससे नाड़ी की गति भी कम हो जाती है।

इसमें नाड़ी की गति एक मिनट में ४०-५० से अधिक नहीं होती है।

इस हालत में हृदय को बल देने वाला उपचार लाभ करता है—कारण को मालूम कर उसे दूर करने का निर्देश दिया गया है।

इस हालत में प्रातः रेहां के बीज १ तोला रात्री में ६ तोला अर्क गुलाब में भिगोकर आकाश के नीचे ओस में रखें और प्रातः इसमें दो तोला मिश्री मिलाकर पिलावें।

इसी तरह जवाहर मोहरा आधी रत्ती को खमीरा अब्रेशम हकीम इर्शदवाला की ५ माशा की मात्रा के साथ दें।

प्रात और सायंकाल यह नुस्खा दें। वंशलोचन, छोटी इलायची का दाना, जहरमोहरा, हरायशव प्रत्येक १ माशा, मोती २ रत्ती, फादजहर हेवानी (जान्तवाश्मरी) सबको महीन पीस कर ५ माशे दवाउल्मिस्क मोतदिल जवाहर वाली में मिलाकर देवें। ऊपर से ८ तोले अर्क गुलाव, ४ तोला अर्क अम्बर पिलावें।

(५) सुकतुल्कल्ब—इस हालत को हार्ट फैल्यौर कहा जाता है। इस हालत में सहसा असाधारण रूप से बल घट जाता है। कभी कभी मूर्च्छा भी आ जाती है।

इस अवस्था में रोग के कारण का पता लगाकर उसके अनुसार चिकित्सा करें।

(६) जगतुल्कल्व—इसे दिल का बैठ जाना भी कहा जाता है। रोगी ऐसा अनुभव करता है कि मानो उसका हृदय दबा जा रहा है। नाड़ी की गति मन्द हो जाती है और मूर्छा या भ्रम होने लगता है।

इस हालत में दिल को ताकत देने के लिए निम्न औषधियों में से किसी का प्रयोग कराया जा सकता है—

(१) दवाउलमिस्क मोतदिल जवाहरवाली
(२) तिर्यक कवीर
(३) याकूती मुफर्रेह

(७) इम्तिलाउल कल्व—इस हालत से हृदयावरण में खून भर जाता है। रोगी को श्वास कृच्छता, हृदय स्थान पर भारीपन, नाक के नथुनों का फैल जाना—मिलते हैं। नाड़ी तेज गति से चलती है।

इस हालत में सिरावेध तथा विरेचन कराना पड़ है। शमन और ठंडाई के लिए पानी आदि में कुल के बीज का शीरा निकाल कर सिकंजबीन बजूरी शर्बत उन्नाव का प्रयोग कराना चाहिए।

(८) इस्तिस्काउगिलाफेल कल्ब—इस हालत हृदयावरण में पानी भर जाता है। रोगी को ऐसा प्रती होता है कि उसका हृदय पानी में तैर रहा है।

इसमें पानी को सुखाने के लिये निम्न लिखित यो का लेप लगाना चाहिये।

"वालछड़—केशर, गुलाब का फूल और मस्तगी व बादरंजबोया के रस में पीसकर हृदयस्थल पर लेप करें आमाशय तथा आमाशयिक द्वार की शुद्धि के लिए वम करावें।

(९) सूए तनपफुस कल्ब—इस हालत में बिन किसी प्रत्यक्ष कारण के तथा पाचन शक्ति ठीक होने प भी रोगी के सामान्य शरीर एवं हृदय में कृशता, दौर्बल्य एवं अङ्गघात उत्तरोत्तर बढ़ता है। बलक्षय के कारण नाड़ी में नाना प्रकार की भिन्नतायें उत्पन्न हो जाती हैं।

रोग की हालत के मुताबिक दवा दें।

(१०) इन्किताऊगिजाएज कल्ब—इस असाधारण रोग का वर्णन हकीम इब्नसीना ने किया है। इस हालत में हृदय को आहार कम मिलने लगता है तथा कभी कभी बन्द भी हो जाता है।

इस हालत में वृक्क के विकार भी होते हैं।

इस हालत में कारणों का पता लगाकर उनको दूर करने का उपचार करें।

हृदय के रोगों में अनेक नुस्खे (योग) काम में लिए जाते हैं। हम प्रसिद्ध योग नीचे दे रहे हैं आवश्यकतानुसार किसी भी योग का प्रयोग किया जा सकता है।

हृदय रोगों पर यूनानी चिकित्सा के प्रसिद्ध योग

तरयाक—कपूर २१ माशे, कस्तूरी, केशर अम्बर अशहब प्रत्येक ४½ माशे, अगर ५ माशे, जरजीर बीज, गाजर बीज, गनदाना, बीज हब किल-किल, इन्द्र जौ मधुर, प्रत्येक ७ माशे बादाम के वृक्ष का गोंद, पहाड़ी अजमोद ६॥। माशे, कूठ, दालचीनी, बच, केशर, सुसत्यारा, अहिफेन, बालछड़,

प्रत्येक १०½ माशे, नीबू के ऊपर का छिलका, हिबजत्याना, मुरमकी, हुब्ब बलसान, बादरंज बोयापत्र, (बिल्टी लोटन पत्र) बादरंजबोया बीज, बन तुलसी बीज, नरकचूर, दरूनज अकरबी, प्रत्येक १४ माशे। तमाम औषध को कूट पीसकर त्रिगुण शहद में मिलावें।

मात्रा—४½ माशे, ६ मास के बाद इसे प्रयोगकरें।

गुण—बल्य, बाजीकरण, हृदय को भी बल देता है।

जवारीश आमला अम्बरी—आमला शुष्क साफ किया हुआ ४½ तोले, धनियां, कृष्ण खुरफ बीज १-१ माशे, वंशलोचन, ७ माशे, सन्दल सफेद, समाक जरिशक, गुलाब पुष्प, बादरंजबोया, फिस्ता के बाहर का पोस्त, प्रत्येक ४½ माशे, मुक्ता २ माशे, अम्बर अशहब, स्वर्णवर्क, चांदी वर्क प्रत्येक ६॥ माशे, खांड १ पाव प्रथम आमला को गौदुग्ध में २४ घंटे के लिए भिगोवें, फिर पानी से धोकर पीसलें, फिर खांड और मुरब्बा वही के शीरा में थोड़ा जल डालकर पाक करें और इसमें पिसा हुआ आमला शामिल करके थोड़ा जोश दें, अब मुक्ता और अम्बर को तबासीर के साथ खरल करके दूसरी औषध के चूर्ण में मिलावें, फिर इस मिलित चूर्ण में सोने के तथा चांदी के पत्र मिलाकर खूब रगड़ें, ताकि सब एक जीव हो जायें, ऐसा होने पर पाक मिला दें, तैयार है।

मात्रा—५ माशे अर्क गाऊजबान १२ तोले के साथ प्रयोग करें।

गुण—यह ज्वारश आमाशय को बल देती है, भूख बढ़ाती है, दूषित वायु को ऊपर उठने से रोकती है, भ्रम, हृदयावसाद पित्तातिसार में लाभप्रद है, हृदय, यकृत को बल देती है।

जवारीश—हरड़ का मुरब्बा ५ नग, आमला का मुरब्बा ४ नग, धनियां १ तोला, छोटी इलायची ३ माशे, बेदमुशक अर्क आवश्यकतानुसार, खांड औषध से दुगुनी। प्रथम मुरब्बों को १ दिवस रात्रि पानी में रखें, फिर मुरब्बों को धोकर गुठली निकालकर बारीक पीस लें और धनियां तथा इलायची का चूर्ण भी मिलाकर खरल करें। फिर खाण्ड का पाक कर वह सब मिला दें, तैयार है।

मात्रा—१ तोला।

गुण—हृदय बल्य, भ्रम, उन्माद हृदय क्षीणता को नष्ट करने में उपयोगी है, दूषित वायु को आमाशय से ऊपर मस्तिष्क को जाने से रोकती है।

जवारीश सन्दलीन—कस्तूरी १½ माशे, मस्तंगी, केशर प्रत्येक ३½ माशे, मुक्ता अनविधे प्रवाल, खुरफा बीज छिला हुआ और भुना हुआ धनियां, शुष्क भुना हुआ पोस्त पिस्ता (बाहर का छिलका) प्रत्येक ७ माशे, सन्दल सुरख, गुलाब में घिसा हुआ १७½ माशे, सन्दल सफेद, गुलाब अर्क में घिसा हुआ ३५ माशे, गुलाब ८ तोले ५ माशे, तरंज का पानी १४ तोले ७ माशे, खांड १ सेर। प्रथम खांड को अर्क गुलाब में हल करके पाक करें और पाक के पश्चात तरंज का पानी तथा मधु मिलाकर गाढ़ा करें अब सब औषध का बारीक चूर्ण कर पाक में मिला कर ज्वारश तैयार करें।

मात्रा—१०½ से १७½ माशे।

गुण—आमाशय, दिल, दिमाग, यकृत को बल देती है पैत्तिक अतिसार में लाभप्रद है। खफकान को दूर करती है।

जवारीश फवाका अम्बरी—अम्बल अनारस, मधुर अनार रस, अमरूद रस, अंगूर रस, जीवक काशीरा, समाक (तिण्डीक) का शीरा प्रत्येक १७ माशे, खांड आधा सेर डालकर पाक करें। और इस पाक में मस्तंगी रूमी, दालचीनी, बादरंजबोया प्रत्येक १०½ माशे, कस्तूरी अम्बर शब १॥ माशे का बारीक चूर्ण कर मिलाकर ज्वारश बनावें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक।

गुण—आमाशय दुर्बलता, हृदय दुर्बलता को नष्ट करने में अद्वितीय है।

जवारीश कमूनी अकबर—दालचीनी, बूरा अरमानी, ५-५ तोले मिरच कृष्ण, मिरच सफेद प्रत्येक ७ तोले, सुदावपत्र १५ तोले, सोंठ का मुरब्बा ४० तोले, जीरा कृष्ण शुद्ध ५० तोले, हरीतकी मुरब्बा (गुठली निकाला हुआ) ६० तोले, गुलकन्द ५०० तोले। प्रथम मुरब्बा जात तथा गुलकन्द को पानी में पीसकर पृथक रखें और मुरब्बों, गुलकन्द तथा औषध के समान भाग खांड तथा शहद लेकर पाक करें, पाक होने पर औषध चूर्ण को मिला दें यदि इसमें सोंठ हरीतकी त्रिवृत प्रत्येक

४० तोले का चूर्ण और मिला दें, तो यह जवारीश अधिक लाभप्रद होगी ।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक योग्य अनुपान से दें ।

गुण—हृदय यकृत को बल देती है, विवन्ध नाशक है ।

जवारीश कुन्दर—कुन्दर सफेद, प्रवाल की जड़ प्रत्येक १७ तोले ६ माशे, सोंठ पान की जड़ प्रत्येक १२ माशे, जायफल, लौंग प्रत्येक १२ माशे, कस्तूरी १½ माशे, सब औषध को पृथक कूटकर चूर्ण करें, त्रिगुण मधु में मिलावें ।

मात्रा—१०½ माशे ।

गुण—आमाशय की सरदी हटाती है उष्णता पैदा करती है, हृदय क्षीणता, दिल डूबना में लाभप्रद है, कफज अतिसार में भी उपयोगी है ।

हब्ब फाद जहर महदानी—फाद जहर महदानी खताई, याकूत रमानी, मुक्ता, कहरुवा, गिलअरमानी बुली हुई दरुन अकरबी, हब्ब बलसान, शकाकल मिश्री, बहमन सुरख, सफेद हब्बुलगार, वंशलोचन, दालचीनी प्रत्येक ४½ माशे, केशर २१ माशा, अम्बरशव, कस्तूरी, स्वर्ण पत्र, चांदी पत्र प्रत्येक ५ रत्ती । प्रथम जवाहरत को उत्तम खरल में खरल करें । पीछे स्वर्ण तथा चांदी पत्र को गोंद कीकर के स्वरस में हल करके कस्तूरी तथा केशर हल करलें, इसी तरह अम्बर को रोगन बलसान २१ माशा में पिघलाकर तथा बाकी औषध को कूट पीसकर एक जीव कर २ रत्ती की वटी बनावें ।

मात्रा—आवश्यकतानुसार प्रतिदिन ५ वटी अर्क गुलाव से प्रयोग करें ।

गुण—हृदय को बल देती है, विषों को नष्ट करती है । सब दोषों को नष्ट करती है ।

हब्ब यशप—यशप सबज १ तोला को ८ बार गरम करके अर्क गुलाव में बुझावें । पिस्ता का भीतरी पोस्त, नारियल दरयाई, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, जहर-मोहरा, चांदी पत्र, स्वर्ण पत्र, मुक्ता १-१ तोला सबको मिलाकर एक जीव करके अर्क गुलाब वेदमुश्क में खरल कर मूंग समान वटी करें ।

मात्रा—१ से २ वटी ।

गुण—हृदय को बल देने में बहुत ही उपयोगी है ।

हब्ब जवाहर मस्कन—याकूत सुरख, लाल बद-खशान, याकूत जरद, याकूत कवूद, अकीक, मरजान, यशप जरमरद, फैरोजा प्रत्येक ६ रत्ती, जदवार, कहरवा, शमई, मुरवारीद, नारियल दरयाई, लाजवरद धुला हुआ, फाद जहर हैवानी, कस्तूरी अम्बरशहव, केशर, चांदीपत्र, कपूर, शिलाजीत ६-६ माशे, अहिफेन ३ माशा, सोने वर्क १½ माशा, अर्क गुलाव सब जवाहरत को अर्क गुलाव में खरल करें और बाकी चूर्ण को मिलाकर माष समान वटी करें ।

मात्रा—१ से २ वटी प्रातः सायं प्रयोग करें ।

गुण—हृदय को बल देने में अत्यन्त प्रभावशाली औषध है ।

हलवा गाजर—सुरख रंग की गाजरें लेकर छिलका तथा भीतरी कठोर भाग निकाल देवें और कद्दूकश से बारीक कर लें, फिर दूध में इस कदर जोश दें कि गाजरें नरम हो जायें । इसके पश्चात इनको घी में भूनकर वजन करें, उससे दुगुनी खांड लेकर पाक करें, पाक सिद्ध होने पर गाजरें डाल दें और मगज चलगोजा, मगज अख-रोट, मगज बादाम, मधुर खेपा, मगज फिन्दक, पिस्ता, मगज चिरौंजी आवश्यकतानुसार पीसकर घी में भूनकर मिश्रित करें ।

मात्रा—३ तोला । प्रातः सायं दूध के साथ प्रयोग करें ।

गुण—बल्य, वाजीकरण, वीर्यप्रद तथा हृदय मस्तिष्क को अत्यन्त उपयोगी है ।

खमीरा आवरेशम (सादा)—आवरेशम कुतरा हुआ ४२ तोला, अगर, बालछड़, नरंज के ऊपर का छिलका, खुष्कमस्तगी, लौंग, छोटी इलायची, तेजपत्र, चन्दन सफेद प्रत्येक ५ माशा सब औषधि को आवरेशम समेत पोटली में बांध कर अर्क गाऊजवान, अर्कवेदमुश्क, अर्क गुलाव, सेब स्वरस, अनार स्वर, मेघ जाल (बारिश का स्वच्छ जल) प्रत्येक १४ तो. में रात्रि को भिगो रखें, प्रातः उबालें, जब एक तिहाई जल खुष्क हो जाये, तो छान लें और मधु उत्तम १ पाव खांड सफेद ३ पाव मिलाकर पाक करें, पाक होजाने पर इस कदर घोटें कि पाक चमकदार हो जाये अब इसमें केशर ५ माशा अर्क केवडा मिलाकर डाल दें और

बरतन को ढक रखें, जब शीतल होने लगे तो कड़ाही में डालकर यथा विधि घोटें और चांदी पत्र १-१ करके डालते जाये।

मात्रा—५ माशा, अर्क गाऊजवान १२ तोले के साथ।

गुण—यह खमीरा हृदय मस्तिष्क को बल देता है। उन्माद दिल का डूबना आदि में लाभप्रद है, चक्षु रोग में लाभप्रद है।

खमीरा आबरेशम हकीम अरशद वाला—अपक्व आबरेशम ४२ तोले (कैंची से कुतर कर भीतरी कीट निकाल लें) ऊद गरकी (अगर) बालछड़ नारंज का ऊपरी खुश्क छिलका, मस्तगी, लौंग, छोटी इलायची, तेजपत्र, चन्दन सफेद प्रत्येक पांच माशा, सब औषधि के बारीक चूर्ण को आबरेशम समेत एक पोटली में बांध लें, अर्क गाऊजवान, वेदमुशक, गुलाब, सेब स्वरस, अनार स्वरस, बही फल स्वरस प्रत्येक १४ तोला, बारिश का पानी २ सेर, अर्क खश तथा मेघ जल को मिलाकर इस मिश्रित पानी में पोटली डालकर इस कदर जोश दें कि बारश वाला २ सेर जल जाये, तो पोटली निकाल लें, अब इस क्वाथ जल में १ पाव मधु और ३ पाव खांड सफेद शामिल कर पाक करें, इस के पश्चात् अम्बरअशव स्वर्णपत्र चांदी पत्र ६-६ माशा, मुक्ता याकूत, यशप सबज, कहरुबाशमई, प्रवाल १-१ माशा, कस्तूरी केशर प्रत्येक ५ माशा खूब भली प्रकार खरल कर मिश्रित करें और इस कदर घोटें कि रंग श्वेत आ जाये। चीनी या शीशे के मरतबान में रखें।

मात्रा—३ माशे, अर्क गावजवान ७ तोले, गाजर ५ तोले के साथ प्रयोग करे।

गुण—शरीर के विशेष अङ्गों को बल देता है, दिल डूबना, उन्माद तथा वातिक रोगों में अतीव उपयोगी है पित्त जनित जीर्ण प्रतिश्याय में लाभप्रद है, यूनानी चिकित्सा की एक विशेष औषधि है।

नोट—मेघ जल न होने पर सादा जल ही प्रयोग किया जा सकता है।

खमीरा सन्दल—बुरादा चंदन सफेद ७॥ तोला, आधा सेर अर्क गुलाब में १ दिन रात्रि भिगोये रखें फिर क्वाथ कर छान लें और १ सेर खांड़ मिलाकर अग्नि पर रखें, खमीरा विधि से पाक कर पाक सिद्धि पर घोटने से घोट लें।

मात्रा—७ माशा से १ तोला तक अर्क गावजवान १२ तोला के साथ प्रयोग करें।

गुण—हृदय डूबना, हृदय की अधिक धडकन, तृषा आदि में बहुत उपयोगी है।

खमीरा मारीवरीद—बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, तोदरी सुर्ख, तोदरी सफेद, बादर गञ्ज बोया बीज १-१ तोला, बादरगंज बोया पत्र, गाऊजवान पुष्प, खुरफा बीज २-२ तोला इन सब को अर्क गुलाब, अर्क वेदमुष्क प्रत्येक १-१ सेर में रात्रि को भिगो रखें प्रातः क्वाथ करें। आधा भाग रहने पर छान लें और खांड़ २ सेर मिलाकर पाक करें। पाक सिद्धि पर घोटते समय जहर-मोहरा २ तोला मुक्ता, केशर, कस्तूरी अम्बर १-१ तोला, खरल कर शामिल करें।

मात्रा—३ माशे खमीरा अर्क गावजवान से दें।

गुण—दिल, दिमाग को बल देता है, खफकान, घबराहट को दूर करता है, मोतीझारा ज्वर में बहुत ही उपयोगी है।

खमीरा याकूत—अर्क गाऊजवान अर्क चन्दन १-१ पाव मधु सेब रस, मधुर बही रस, अमरूद रस, अर्कगुलाब अर्क वेदमुष्क प्रत्येक आधा सेर खांड सफेद १ सेर मिलाकर पाक करें और पाक सिद्धि पर याकूत रमानी ३॥ तोले, लाजवरद धुला हुआ जहरमोहरा खताई प्रत्येक १ माशा, अम्बर अशब ५ माशे खरल करके मिश्रित करें और घोटने से घोट देवें।

मात्रा—३ माशे।

गुण—यह खमीरा हृदय दुर्बलता, खफकान उन्माद में उपयोगी है।

खमीरा गाऊजवान अम्बरी जवाहर वाला—खमीरा गाऊजवान अम्बरी वर्क तिल्ला वाले में मुक्ता याकूत जमुरद जहरमोहरा प्रत्येक ४॥ माशे खरल करके मिश्रित करें।

मात्रा—५ माशे खमीरा, अर्क गाऊजवान के साथ प्रयोग करें।

गुण—बुद्धि प्रकाशक है, मस्तिष्क कार्य अधिक करने वालों के लिए अति उत्तम है। हृदय, मस्तिष्क के लिए

अति उत्तम है, उन्माद प्यास को दूर करता है, दृष्टि को भी बल देता है।

खमीरा गावजवान [सादा]—गाऊजवान ३ तोला, गाऊजवान पुष्प, धनियां, अपक्व आवरेशम कैंची से कुतरा हुआ, वहमन सुर्ख, सफेद वालगूं वहज, वन तुलसी वीज, वादरंजवोया, दरुल अकरवी, उस्तोखदूस, तोदरी सुर्ख सफेद १-१ तोला, मिश्री १ सेर, मधु उत्तम १ पाव। सब औषध को रात्रि भर २ सेर पानी में भिगोवें, प्रातः क्वाथ करें, तीसरा भाग रहने पर छान कर मधु तथा मिश्री डालकर खमीरा की विधि से पाक करें। शीतल होने पर कड़ाही में डालकर घोटने से घोटें, क्योंकि इसमें गाऊजवान का लेसदार रस होता है। इसलिए देर तक घोटने से सफेद होता है।

मात्रा—१ तोला खमीरा पर चांदी पत्र लपेट कर अर्क गाऊजवान १२ तोला के साथ व केवल जल से प्रयोग करें।

गुण—हृदय, मस्तिष्क के लिए अति उत्तम है, उन्माद प्यास को दूर करता है, दृष्टि को भी बल देता है।

दवालमस्क वारद सादा—अपक्व आवरेशम कुतरा हुआ, तबाशीर, चन्दन सफेद, गुलाव पुष्प, धनियां खुष्क, मगज कद्दू मधुर, गाऊजवान पुष्प प्रत्येक ४॥ माशा, कहरवा शमई ९ माशा, कस्तूरी १॥ माशा, चांदी पत्र ३ माशा, मधुर सेव स्वरस, अर्क केवड़ा प्रत्येक २० तोला कहरवा चांदी पत्र को पृथक खरल करें, और वाकी औषध को कूट छान कर खरल की हुई औषध मिला दें। अब अर्क स्वरस और खांड़ १॥ सेर का पाक करके चूल्हे से उतार दें और शीतल करके वाकी औषध चूर्ण को मिला कर अवलेह बना लें।

मात्रा—५ माशा अर्क गाऊजवान ७ माशा अर्क वेदमुष्क ३ तोला शर्वत अनार २ तोला के साथ प्रयोग करें।

गुण—यह औषध शरीर के अङ्गों को दृढ़ बनाती है, खफकान हृदय डूबना में लाभप्रद है, दीपन पाचक है।

दवालमस्क वारद जवाहर वाली—यदि ऊपर योग में अम्बर ४॥ माशा मुक्ता, प्रवाल, जहरमोहरा प्रत्येक ७ माशा, कस्तूरी ४॥ माशा, चांदी वर्क ६ माशे खरल करके मिश्रित कर दिया जाए तो दवाल मस्क वारद ज्वाहर वाली बन जाती है।

मात्रा तथा गुण—उपरोक्त

दवालमस्क हार सादा—कचूर दरुनज अकरवी, कहरुवा, वुसद प्रत्येक ३ तोले आवरेशम कुतरा हुआ, दोनों वहमन, वालछड़, तेजपत्र, छोटी इलायची, जोग प्रत्येक १॥ तोला, पिप्पली, सोंठ, छडीला प्रत्येक १ तोला, कस्तूरी ७ माशा औषध को कूट-छानकर त्रिगुण मधु पाक कर उसमें अच्छी तरह मिश्रित करें।

मात्रा—५ माशा अर्क गाजर, अर्क अम्बर में मीठा मिलाकर प्रयोग करें।

गुण—दिल दिमाग को बल देने वाली विशेष औषधि है, खफकान उन्माद चित्तभ्रम, अर्दित अर्धाङ्ग वातकम्प ढीलापन अपतन्त्र में लाभप्रद है, दीपक पाचक है।

दवालमस्क मुतदिल ज्वाहर वाली—यदि इसी उपरोक्त योग में चांदी पत्र १० माशा, मुक्ता, कहरुवा-शमई कस्तूरी अम्बर प्रत्येक ७ माशा, केशर ७ माशे के साथ खरल करे तो इसे दवाल मस्क मुतदिल ज्वाहर वाला कहते हैं।

मात्रा—३ से ५ माशा, अर्क गाजर, अर्क अम्बर के साथ प्रयोग करें।

गुण—यह औषधि वातज चित्त भ्रम, उन्माद के लिये उत्तम है हृदय तथा यकृत को बल देता है, दीपक पाचक है।

दवालमस्क वारद—स्वर्ण वर्क, अम्बर प्रत्येक आधा माशा, केशर-दालचीनी-छडीला-कस्तूरी १-१ माशा, अपक्व २ माशा, कहरुवा-प्रवाल-जड़-वंशलोचन, चांदीपत्र प्रत्येक तीन माशा, मुक्ता ५ माशा, गाऊजवान, गुलाव पुष्प, धनियां, खुरफा बीज प्रत्येक ६ माशा शरवत सेव, शरवत वही, शरवत मधुर-अनार १-१ तोला, अर्क गुलाब अर्क वेदमुश्क प्रत्येक ४ तोला ८ माशा, मधु उत्तम खांड औषधि से त्रिगुण। प्रथम मधुर औषधि का पाक करें पाक सिद्ध पर वाकी औषधि का चूर्ण मिला दें।

मात्रा—५ से ७ माशा।

गुण—खफकान, हृदय डूबना आदि में लाभप्रद है।

दवालमस्क सादा—वंशलोचन पुष्प, धनियां, चंदन सफेद खुरफा बीज छिला हुआ प्रत्येक १४ माशे, कहरुवा शमई मरजान (प्रवाल) मूल, अपक्व आवरेशम कुतरा

हुआ प्रत्येक ७ माशा, कस्तूरी १।। माशा, खांड सब औषधि से त्रिगुण पाक करें। पाक सिद्धि पर वाकी औषधि का चूर्ण मिला कर अवलेह बनावें।

मात्रा—५ से ६ माशा।

गुण—उपरोक्त, परन्तु कुछ न्यून।

दवालमस्क वारद अम्बरी—अपक्व आबरेशम कुतरा हुआ, तबाशीर, सफेद चन्दन, सफेद गुलाब पुष्प, धनियां खुश्क, गाऊजवान पुष्प, कस्तूरी, अम्बरशाव, प्रत्येक २१ माशा, मुक्ता, कहरुवा, शमई प्रत्येक ४।। माशा, खांड पौने उन्नीस तोले खांड का पाक कर बाकी औषधि का चूर्ण मिलाकर पाक करें।

मात्रा—४।। माशा।

गुण—उपरोक्त

दवालमस्क—मुक्ता, कहरवा शमई, प्रवाल, आबरेशम, नरकचूर, दरनज, अकरवी, केशर, बालछड़, बड़ी इलायची, लौंग, तेजपत्र, छड़ीला, जुन्द वेदस्तर, पिप्पली सौंठ, कस्तूरी मस्तंगी, दोनों बहमन, अम्बरशव, प्रत्येक २२।। माशे, यदि कुरस अम्बर हो तो अम्बर के स्थान पर कुरस अम्बर १० तोला डालें, सफेद ३७।। तोला, प्रथम खांड तथा मधु का पाक करें, बाकी औषधि का चूर्ण मिलाकर अवलेह बनावें।

मात्रा—५ माशा।

गुण—उपरोक्त।

दवालमस्क अली—पिप्पली ६ माशा, मस्तंगी ६ माशा, सोंठ, अम्बरशव १-१ तोला, कस्तूरी १।। तोला, बहमन सुरख, सफेद, बालछड, लौंग, तेजपात, छडीला, जुन्द वेदस्तर, बड़ी इलायची प्रत्येक १।। तोला, मुक्ता, कहरवा, प्रवाल की जड़, आबरेशम कुतरा हुआ, नर कचूर, दरनज अकरवी, केशर प्रत्येक २।। तोला, खांड ६३ तोला, मधु सब औषधि से दुगना, पाक करके बाकी औषधि का चूर्ण मिला तैयार करें, दो मास बाद इसमें अवलेह का चौथा भाग जदवार बनसफजी का बारीक चूर्ण करके और मिला दें।

मात्रा—५ माशा।

गुण—उपरोक्त जदवार मिलाने से विष दोषों को नष्ट करने में भी उपयोगी हो जाती है।

दवालमस्क मुतादिल—कपूर ३ रत्ती, अम्बर ७ रत्ती, कस्तूरी १।।। माशा, चांदी पत्र, केशर प्रत्येक ३½ माशा, काहूबीज ५½ माशा, प्रवाल जड़, आबरेशम कुतरा हुआ प्रत्येक ७ माशा, मुक्ता, गावजवान पुष्प, निशास्ता, खुरपत्र वीज, सन्दल सफेद प्रत्येक पौने नौ माशा, आमला तथा जरिश्क का अर्क गुलाब में स्वरस निकाला हुआ प्रत्येक २१ माशा, दालचीनी ४।। माशा, मधु औषधि के समान, खांड दुगनी, अर्क गुलाब, वेदमुश्क, गाऊजवान, प्रत्येक २८ तोले १।। माशा, प्रथम अर्कों में खांड तथा मधु मिलाकर पाक करें। पाक सिद्धि पर औषधि चूर्ण मिला अवलेह बनावें।

मात्रा—५ माशा।

गुण—उपरोक्त।

रुब्ब मधुर अनार—अनार के दानों का रस भली प्रकार निकाल कर छान लें फिर एक सेर में आधा पाव खांड मिलाकर घन पाक कर शरबत तैयार करें।

मात्रा—१ तोला रुब्ब में खांड मिलाकर योग्य अनुपान से दें।

गुण—दिल, दिमाग को बल देता है, गर्मी को नष्ट करता है, गर्भिणी के लिए लाभप्रद है।

रुब्ब अंगूर मधुर—ऊपर लिखित विधि से रुब्ब बनावें, यह दिल दिमाग को बल देता है।

मात्रा—६ माशे से १ तोला।

रुब्ब अंगूर अम्ल—विधि, गुण तथा मात्रा उपरोक्त ही है।

रुब्ब बही मधुर—बही को छील कर छोटे छोटे टुकड़े करलें, बीज निकाल लें, खूब कूटकर स्वरस निकालें, आध भाग खांड में मिलाकर घन शरबत तैयार करें।

गुण—हृदय, आमाशय, आंत्र को बल देता है, वमन और अतिसार में भी लाभप्रद है।

रुब्ब सेब—ऊपर लिखित विधि से तैयार करें।

मात्रा—६ माशा से १ तोला तक दें।

गुण—यह रुब्ब, दिल दिमाग को बल देता है।

सफूफ मरवारीद—बड़ी हरड़, गावजवान, बहमन सुरख तथा सफेद, प्रत्येक २ तोला ११ माशा, दरूनज अरबी, रेहां बीज, बादरंजबोया, गुलाब पुष्प, मस्तंगी, बालूगू बीज प्रत्येक १ तोला ५।। माशा, आबरेशम कुतरा

हुआ, हिजर अरमनी धुला हुआ १०॥ माशा, याकूत सुरख, मरजान वरमजी, मोती उत्तम, स्वर्ण पत्र दोनों प्रत्येक ४॥ माशा, सबको यथा विधि चूर्ण करें।

मात्रा—४॥ माशा।

गुण—दिल, दिमाग को वल देता है, उन्माद, हृदय डूबना में बहुत ही उपयोगी है।

दरुनज चूर्ण—दरुनज अकरवी, गावजवान प्रत्येक २१ माशा, कचूर ७ माशा, सबको कूट छानकर चूर्ण करें।

मात्रा—४॥ माशा, मधु में समभाग जल मिलाकर प्रयोग करें।

गुण—सरदी के कारण खफकान में उत्तम है।

शरबत आवरेशम—अपक्व आवरेशम कुतरा हुआ ३८ तोला, गाऊजवान पत्र, बादरंजबोया, उस्तौखदूस प्रत्येक १९ तोला, जल आठ गुना, इस जल में लौह को ७ वार गरम करके बुझायें फिर इन चारों औषध को इस जल में ५ दिन तक भिगोवें, फिर क्वाथ करें, तिहाई रहने पर छानकर त्रिगुण खांड़ मिलाकर पाक करें। पाक सिद्धि पर, फरंजमुशक बीज ३॥ तोला, सन्दल सफेद १ तोला १० माशा, ऊद हिन्दी १॥ तोला, विजौरा नीबू का छिलका, तमाल पत्र, दरुनज अकरवी प्रत्येक १३॥ माशा कूट छानकर चूर्ण कर मिलावें।

मात्रा—२ से ४ तोला, अर्क गाऊजवान में मिलाकर प्रयोग करें।

गुण—दिल, दिमाग को वल देता है, उन्माद, दिल डूबना में लाभप्रद है।

शरवत अंगूर अम्ल—अगूर स्वरस १ सेर में ३ सेर खांड मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—आमाशय, हृदय को वल देता है, पाचक है।

शरवत अंगूर मधुर—विधि मात्रा गुण उपरोक्त पित्तज ज्वर में उत्तम है।

शरवत अनन्नास—अनन्नास स्वरस १ सेर, गुलाव अर्क, वेद मुष्क अर्क प्रत्येक आधा पाव, खांड त्रिगुण, मिलाकर पाक करें, साफ करते समय नींवू कागजी का स्वरस भी अल्प मात्रा में डाल दें।

मात्रा—४ तोले।

गुण—हृदय को वल देता है, मूत्रल है।

शरवत अनार—अनार स्वरस ३० तोला में ५० तोला खांड मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—दिल, दिमाग को वल देता है, खफकान, दिल धड़कना, हृदय की पित्त तथा घवराहट दूर करता है, पित्त को खारिज करता है, वमन को रोकता है।

शरवत सेव मधुर—मधुर सेव को छिलके और बीज रहित करके इसका स्वरस निचोड़ लें, इसमें त्रिगुण खांड मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—वमन को रोकता है, आमाशय और हृदय को वल देता है, पित्तज अतिसार को नष्ट करता है।

शरवत सेव—मधुर सेव लेकर छील लें और बीज निकाल दें, इनको कूटकर आधा सेर रस निकालें, इसमें ५ सेर वर्षा जल वा सादा जल डालकर उवालें, चौथाई भाग जल जाने पर शेष जल को अग्नि पर से उतार कर छान लें, छटा भाग नारङ्गी स्वरस वा नीवू स्वरस डालें और हर आधा सेर स्वरस के पीछे अनीसून १ तोला ५॥ माशा, मस्तङ्गी रूमी १४ माशा, छोटी एला बीज, जावित्री लौंग प्रत्येक ७ माशा का वारीक चूर्ण पोटली में बांधकर जल में डाल दें और पाक होते समय पोटली को हाथ से मलते रहें ताकि इन औषधियों का गुण भी आ जाए, पाक हो जाने पर पोटली को फेंक दें।

मात्रा—२-४ तोला।

गुण—हृदय को वल देता है।

शरवत फालसा—फालसा पक्व को खूब भली प्रकार मलकर छान लें, यदि स्वरस १॥ पाव हो तो १॥ सेर खांड मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—आमाशय, हृदय को वल देता है, वमन, अतिसार और प्यास को नष्ट करता है, यकृत पित्त तथा मूत्र जलन को नष्ट करता है।

केवड़ा शरवत—अर्क केवड़ा तीव्र सुगन्धित १॥ पाव को १॥ सेर खांड मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ से ४ तोला।

गुण—हृदय को वल देता है, तृषा को शान्त करता है।

शरबत गाऊजबान—गाऊजबान १ पाव को आठ गुणा जल में भिगोकर क्वाथ करें, तीसरा भाग रहने पर छानकर अर्क गुलाब ८ तोला और २ सेर खांड मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—खफकान को नष्ट करता है, दिल को ताकत देता है।

शरबत गुड़हल—१०० गुढहल पुष्प सुर्ख की सबज पत्तियां दूर करके चीनी के वर्तन में डालें और सायं को नीबू रस २० तोला वा टाटरी १ माशा, जल १ पाव में मिलाकर डालें। जब रङ्ग कट जाए तो मलकर छान लें। अब २ सेर खांड का शर्वत तैयार करके इस शर्वत में गुड-हल का शीत कषाय डालकर बोतलों में भरें कि चौथाई बोतल खाली रहे। बोतलों का मुख बन्द करके शीतल जल में डाल दें, जब शर्वत में जोश पैदा हो जाए तो साफ करके प्रयोग में लावें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—खफकान, उन्माद, हृदय रोगों में उपयोगी है।

शरबत नारंज-आधा सेर खांड का अर्क गाऊजवान १० तोला में पाक करें, फिर नारंगी स्वरस १२ तोला डाल कर दुबारा पाक करें, पाक सिद्धि पर केशर १ माशा हल करके डाल दें।

मात्रा—२ तोला, अर्क गाऊजवान के साथ।

गुण—हृदय तथा पाचन शक्ति को बल देता है।

शरबत नीलोफर—नीलोफर पुष्प १० तोला, आठ गुण जल में रात्रि को भिगोवें, प्रातः क्वाथ करें। तीसरा भाग रहने पर छान कर त्रिगुण खांड मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—पैतिक ज्वर में लाभप्रद है, हृदय को बल देता है ज्वर तथा तृषा को शान्त करता है।

शरबत बालँगू—बालंगू ताजा १ सेर (यदि बालंगू ताजा न मिले तो शुष्क १११ तोला लें) गाऊजवान ३॥। तोला को पानी में उवाल कर छान लें। १ सेर मधु डालकर शर्वत का पाक करें। (खांड डाल करके भी बना सकते हैं)।

मात्रा—२ तोला।

गुण—गर्भाशय के सब विकारों में उत्तम है।

शरबत बादरंजबोया—बादरंज बोया घनसत्व, गाऊजवान घनसत्व समभाग लेकर शर्वत सेब डाल कर पाक करें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—दिल को बल देने में बहुत गुणकारी है।

शरबत विशेष—अम्ल अनार स्वरस, अम्ल नारंज का स्वरस, अपक्व अंगूर स्वरस, नीबू रस, आलूबखारा स्वरस, इमली स्वरस, सब समभाग लेकर और सबके समान खांड मिलाकर पाक करें।

मात्रा—२ से ४ तोला।

गुण—हृदय की पित्त को शान्त करता है, तृषा बुझाता है।

शरबत अम्बर—मधु २ सेर को २ सेर जल में उबालें, जो झाग आवें उतारते जायें, पाक सिद्धि पर अम्बर केशर प्रत्येक ४½ माशे मिला दें, तैयार है।

मात्रा—१ तोला।

गुण—आमाशय शूल को नष्ट करता है, उत्तेजक तथा बलप्रद है।

अर्क इलायची—इलायची छोटी १ पाव ८ सेर पानी में कई दिन भिगोकर प्रातः ४ सेर अर्क निकालें।

मात्रा—५ तोला।

गुण—यह अर्क हृदय को बल देता है, वमन, अति-सार तथा विसूचिका में लाभप्रद है वायु को खारिज करता है।

अर्क वेदमुश्क—वेदमुशक पत्र १ पाव ४ सेर जल में भिगोकर प्रातः को २ सेर अर्क निकालें।

मात्रा—१० तोला।

गुण—दिल दिमाग को बल देता है, तृषा तथा खफ-कान को मिटाता है।

अर्क बहार-नारंज ५ सेर, गुलाबपुष्प १ सेर, सफेद द्राक्षा, बीज रहित सब्ज द्राक्षा प्रत्येक १५ तोला ऊद, बह्-मान लाल शकाकल मिश्री १-१ तोला अम्बर पौने दो माशा अम्बर के सिवाय बाकी औषध को २५ सेर जल में एक दिवस रात्रि भिगोवें, फिर १२ सेर अर्क निकालें। अर्क निकालते समय अम्बर की-पोटली-नाली के अन्त में

बांधें।

मात्रा—६ तोला।

गुण—हृदय डूबना तथा तृषा में अत्यन्त उपयोगी है।

अर्क बेद सादा—बेद वृक्ष के पत्र १ पाव लेकर ४ सेर जल में रात्रि भर भिगोवें। प्रातः २ सेर अर्क निकालें।

मात्रा—१० तोला।

गुण—यह खफकान तथा पित्त रोगों में उपयोगी है।

अर्क ताम्बूल—पान अपक्व १०० पत्र, गुलाबपुष्प, लौंग, गाऊजवान, प्रत्येक २० तोला, चन्दन सफेद ४ तोला कस्तूरी ३ माशे, अर्क गुलाब २ बोतल, जल १४ गुणा सब को मिलाकर जल से आधा अर्क निकालें।

मात्रा—१० तोला।

गुण—हृदय के शीत रोगों में लाभप्रद है।

अर्क फोवाका—अम्ल अनार स्वरस, मधुर अनार स्वरस, वही स्वरस आध आध सेर, जरशक जल २० तोला, अंगूर स्वरस, अमरूद स्वरस आध सेर, सन्दल सफेद आध सेर सबको मिलाकर यथाविधि अर्क निकालें।

मात्रा—१० तोला।

गुण—यह अर्क आमाशय तथा हृदय को बल देता है, खफकान उन्माद तथा वात रोगों में उत्तम है।

अर्क करनफल (लवङ्गादि अर्क)—सौंफ, रूमी, अजवायन, लौंग प्रत्येक ७ माशे, कस्तूरी, केशर, बाबूना पुष्प, करफस बीज प्रत्येक ३½ माशे, दालचीनी १४ माशे, कस्तूरी केशर के सिवाय बाकी औषध को १६ गुना जल में रात्री के समय भिगोवें, प्रातः अर्क निकालें। केशर तथा कस्तूरी को अर्क निकालते समय पोटली में रखकर परिस्रावी नलकी के मुख पर बांध दें।

मात्रा—५ तोला भोजनोपरान्त प्रयोग करें।

गुण—हृदय को बल देता है, वायु नाशक है।

अर्क अम्बर—कस्तूरी ४½ माशे, अम्बर, केशर, मस्तंगी प्रत्येक ६ माशे, रोहापत्र ताजा, नागरमोथा, कुलफा, धनियां शुष्क, गाऊजवान पुष्प, अनीसून, दरुनज, पोस्त, बेरून, पिस्ता १ तोला १० माशे, नरकचूर, उदगरको कबाबा, खन्दान छड़ीला, दालचीनी, लौंग, बोजदान, गुलाब पुष्प, बालछड़, बहमन सुरख, बहमन सफेद, शकाकुल मिश्री, तमाल पत्र, बंशलोचन, इलायची छोटी, इलायची बड़ी, नारज का छिलका, अपक्व आबरेशम कुतरा हुआ, चन्दन सफेद प्रत्येक २ तोला, सेब स्वरस आध सेर, अनार स्वरस १ सेर, अर्क बेदमुश्क, अर्क गाऊजवान, अर्क बांदरजबोया प्रत्येक २॥ सेर, अर्क गुलाब ५ सेर। कूटने वाली औषध को कूटकर देग में भर कर अर्क भी शामिल करदें और एक दिन बाद अनार, सेब स्वरस डालकर अर्क निकालें, कस्तूरी आदि को पोटली में बांध कर नलकी के मुख पर बांधें ताकि अर्क की बूंदें पोटली में से गिरे, २ तिहाई भाग अर्क निकालें।

मात्र—५ से ७ तोला।

गुण—दिल दिमाग यकृत को बल देता, क्षीणता तथा गशी में लाभप्रद है।

अर्क गाजर (वृहत योग)—गाजर सुरख छीलकर तथा मध्य का सख्त भाग निकालकर ५ सेर, किशमिश, द्राक्षा प्रत्येक २॥ सेर, वही, सेब प्रत्येक आध सेर अनार स्वरस, गुलाब पुष्प, छोटी इलायची, बड़ी आबरेशम कुतरा हुआ, सन्दल सुरख, सन्दल सफेद, रेहा, पत्र धनियां शुष्क, गाऊजवान, करंजमुश्क बीज, बालंगू बीज, प्रत्येक ४ तोला बंशलोचन, गाऊजवान पुष्प, कासनी बीज, खयारैन बीज प्रत्येक दो तोला गुलाब अर्क, गाऊजवान अर्क प्रत्येक दो सेर सब औषधि को १ रात दिन २ मन जल में भिगोवें। और अर्क शामिल कर ५० बोतल अर्क निकालें। अर्क निकालते समय कस्तूरी अम्बर १-१ माशा, केशर २ तोला की पोटली नलकी के मुख में बांधें।

मात्रा—६ तोला।

गुण—दिल दिमाग को बल देता है। क्षीणता को नष्ट करता है।

अर्क मालहम—चोबचीनी २६ तोला, गाऊजवान पुष्प, बादरंजबोया, बालछड़ प्रत्येक १-१ तोला, लौंग, दालचीनी, इलायची बड़ी, जायफल, जावित्री, बादयान खताई, बहमन सफेद, उशवा मगरबी, सन्दल सफेद, सन्दल सुरख, मस्तगी, केशर कबाबचीनी, छड़ीला गुलाब कली, नरकचूर, शकाकुल बनतुलसी, बीज ऊद, हिन्दीहालो बीज प्रत्येक ३॥ तोला, बोजीदान अम्बर प्रत्येक १ तोला १० माशा, कस्तूरी १ माशा, बकरी का मांस, मुरग का मांस, कबूतर

का मांस १-१ सेर, चिडे ५९ नग, अर्क बादरजबोया, अर्क बेदमुश्क, अर्क गुलाब, अर्क गाऊजबान, अर्क बहार, नारंज जल इस कदर डालें कि अर्क समेत औषधि मात्र से १६ गुना हो, पहिले मांस की यखनी बना लें (अर्थात् मांस को पक्का कर मांस रस निकाल लें) केशर, कस्तूरी, मस्तङ्गी, अम्बर के सिवाये सब औषधि जल में २४ घण्टे तक भिगो कर आधा अर्क निकालें। केशर आदि को पोटली में डाल कर नली के मुख पर बांधें।

मात्रा—८ तोला शरबत अनार के साथ।

गुण—दिल, दिमाग तथा सारे शरीर को बल देता है।

अर्क कीकर—कीकर की छाल १० सेर, गुड ३५ सेर ३६ तोला इन दोनों को २॥ मन पानी में एक मटका में डालकर पृथ्वी में गाढ़ें जब लाहन उठ जाये तो ३० सेर अर्क निकालें। फिर इस अर्क में लौंग ६ माशा, जावित्री जायफल दालचीनी, इलायची छोटी खस १-१ तोला, चन्दन सफेद २ तोला, गुलाब पुष्प ५ तोला, दिन रात्री भिगोने के बाद दूसरे दिन २० सेर अर्क निकालें, अब इस २० सेर अर्क में उपरोक्त औषधि का चूर्ण का आधा भाग डालकर दिन रात रखकर फिर १२ सेर अर्क निकालें। यदि इत्र गुलाब ३ माशा भवका में डाल दें तो और उत्तम है।

मात्रा—५ तोला।

गुण—खफकान, हृदय धड़कन क्षीणता को दूर करता है।

अर्क आसव वारद—गुड़ ६६॥ सेर, कीकर छाल ८ सेर ३५ तोला, दोनों चीजों को एक मटके में डालकर ऊपर से इतना पानी डालें कि मटके का तीसरा भाग खाली रहे इस मटके का मुख बन्द करके घोड़े की लीद में दबा दें, उबाल खाकर बैठ जाने पर अर्क खींच लें, इस अर्क में चन्दन सफेद ७॥ तोला, नीलोफर १५ तोला, धनियां ७॥ तोला, बहेड़ा, आमला, द्राक्षा बीज रहित ३७॥ तोला, गावजबान पुष्प काहूबीज ३५ तोला, मगज तुखम कद्दू ७५ तोला, कासनी बीज अर्व कुटिल खुरफा बीज छिले हुये मगज, तुखम खयारैन प्रत्येक १० तोला, बड़ी हरड़ बेद सादा और बाहर प्रत्येक १२॥ तोला, गुलाब पुष्प प्रत्येक ११॥ सेर सब औषधि डालकर १ दिन रात भिगोवें, इसके बाद नली के मुख में अम्बर शहब १ माशा की पोटली बांधें और अर्क निकालें।

मात्रा—८ से १२ तोला।

गुण—उन्माद तथा हृदय रोगों में लाभप्रद है।

कुरस अम्बर—अम्बर शहब ३॥ तोला, मिश्री ७० तोला, अर्क गुलाब १ बोतल, अकव मिश्री और अर्क गुलाब मिलाकर साफ कर पाक करें, इसके बाद पाक में अम्बर डालकर घोटना से खूब घोटें और थोड़ा थोड़ा अर्क गुलाब डालते रहें। जब सफेद होजाये और उसका पाक टिकिया बनाने के योग्य होजाये तो टिकिया बना लें। यदि अम्बर का दसवां भाग स्वर्ण जल वा स्वर्ण वर्क और मिला दें तो और गुणप्रद होगा।

मात्रा—३ से ५ माशा।

गुण—हृदय मस्तिष्क और सब शरीर को बल देता है, रोगोपरान्त क्षीणता में बहुत लाभप्रद है।

मारवारीद सयाल—मारवारीद १ माशा में नींबू रस थोड़ा थोड़ा मिलाकर खरल करें जब मोतोहल हो जाये तो अच्छी तरह से छान लें।

मात्रा—१० बूंद अर्क गुलाब १ तोला में मिलाकर प्रयोग करें।

गुण—हृदय तथा मस्तिष्क को बल देता है। शारीरिक क्षीणता को नष्ट करता है। मोतीझारा ज्वर में उपयोगी है।

जमुरद भस्म—जमुरद १ तोला लेकर अर्क गुलाब में खरल कर टिकिया बनायें और एक प्याले में घृत कुमारी का गूदा रखकर १० सेर उपलों की आंच दें, शीतल होने पर निकाल कर बारीक पीस लें।

मात्रा—२ चावल भस्म ज्वाराश मस्तङ्गी में मिल कर प्रयोग करें।

गुण—हृदय को बल देता है, यकृत वृक्क की दुर्बलता नष्ट करता है, मूत्र की अधिकता तथा बार बार आने को रोकता है।

कुशता मरजान जवाहरवाला—मरजान १ तोला, याकूत ३ माशा, अम्बर, स्वर्ण वर्क १-१ माशा, चांदी वर्क ३ माशा, जमुरद ५ माशा सबको अर्क केवड़ा में खरल करके टिकिया बना लें, और प्यालों में रख कपरौटी करके

१० सेर उपलों की आंच दें, शीतल होने पर निकाल पीस लें।

मात्रा—२ चावल खमीरा गावजबान १ तोला के साथ।

गुण—दिमाग को बल देता है, जीर्ण प्रतिश्याय को नष्ट करता है, यकृत, हृदय की दुर्बलता को दूर करता है, प्रमेह में उत्तम है।

कुशता याकूत जवाहरवाला—याकूत सुर्ख़ ६ माशे, बुसद मरजान (प्रवाल) प्रत्येक ३ माशा, मोती १॥ माशे, सबको १ सप्ताह तक अर्क गुलाब और शराब में खरल कर कुरस बना लें और घृतकुमारी का गूदा डालकर कपरौटी कर २० सेर उपलों का आंच दें। इस तरह से १० बार खरल कर १० बार आंच दें। भस्म तैयार हो जायेगी।

मात्रा—४ चावल, खमीरा गावजबान १ तोला में।

गुण—शरीर के सब अङ्गों प्रत्यङ्गों को बल देता है, खफकान, अपस्मार, उन्माद में उत्तम है।

अकीक भस्म—५ तोला अकीक को अर्क गुलाब में ७ बार करके बुझाओ। फिर एक पाव अर्क गुलाब में खरल करें कि अर्क समाप्त हो जाये, अब इस की टिकिया बना कर कमल गट्टा की लुगदी में रखकर कपरोटी कर १० सेर उपलों की आंच दें, शीतल होने पर दुबारा खरल करके आंच दें, इस प्रकार ३ आंच दें, पीसकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—४ चावल हृदय दुर्बलता के लिए ५ माशा दवाल मस्क में मिलाकर मस्तिष्क के लिए १ तोला खमीरा गावजबान में और रक्तपित्त में शरबत अन्जबार से प्रयोग करें।

गुण—हृदय, मस्तिष्क को बल देता, यक्ष्मा रक्तपित्त में उत्तम है।

गुलकन्द सेवती—गुल सेवती १०० खांड २१ तो. सेवती पुष्प पर अर्क वेदमुश्क छिड़ककर हाथ से मलें और खांड मिलाकर ४ दिन तक छाया में रखो।

मात्रा—२ तोला गुलकन्द, १२ तोला गावजबान से लें।

गुलकन्द महतावी—चांदनी पुष्प २०० खांड २१तो. में थोड़ा अर्क गुलाब छिड़क कर खूब हल करें और रात को चन्द्रमा की चांदनी में रखें, ४ दिन के बाद प्रयोग करें

गुण—हृदय डूबना डरना, घबराहट तथा उन्माद में उपयोगी है।

मुरब्बा आमला—आमला सब्ज ताजा को पानी में उबालें, आमला के नरम होने पर थोड़ा शुष्क करके खांड के पाक में डालें। दूसरे दिन पाक को आमले समेत पकावें कि पाक ठीक हो जाये, तीसरे दिन फिर देखें कि यदि पाक पतला हो जाये तो फिर आंच पर चढ़ाकर पाक ठीक कर लें।

मात्रा—१नग मुरब्बा जल से धोकर चांदी वर्क लपेट कर खायें।

गुण—मस्तिष्क आमाशय, हृदय तथा यकृत को बल देता है। वमन अतिसार में उपयोगी है शिरोरोग में उत्तम है।

मुरब्बा अनन्नास—अनन्नास को छिलकों तथा कांटों से रहित करके गोल गोल काटें छील लें। जल में उबाल कर नरम कर लें और खांड करके पाक में डाल कर यथा विधि मुरब्बा तैयार करें।

मात्रा—१ से २ तोला।

गुण—खफकान शिरोभ्रम में उत्तम है, हृद्य है।

मुरब्बा बही—बही को छिलके से रहित करके मुरब्बा आमला की विधि अनुसार मुरब्बा तैयार करें।

मात्रा—२ तोला, प्रातः को प्रयोग करें।

गुण—हृदय, मस्तिष्क को बल देता है, संग्राही तथा पाचक है।

मुरब्बा पेठा—इसको भी छिलके तथा बीज रहित कर काटें काट कर बेलगिरी के मुरब्बे विधि अनुसार मुरब्बा बनावें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—दिल दिमाग को बल देता है।

मुरब्बा सेब—सेब का मुरब्बा भी पेठे के मुरब्बे की तरह बनावें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—दिल दिमाग को विशेषकर बल देता है।

मुरब्बा तरञ्जः—बिजौरा नीबू के छिलके जल में उबाल लें, मृदु होने पर निकालकर पानी निचोड़ दें और खांड के पाक में डाल दें।

मात्रा—२ से ४ तोला।

गुण—दिल तथा आमाशय को बल देता है। दीपक पाचक है।

मफरह् अजमः—वहमन सुरख, वहमन सफेद, बाल छड़, तज, इलायची बड़ी, इलायची छोटी, गिल अरमनी, गिल मखतूम, केशर, जदवार खताई, स्वर्ण वर्क, चांदी वर्क प्रत्येक ४ माशा, कस्तूरी ६ माशा, याकूत रहमानी, याकूत जरद यशद काफरी, कहरवा शमई, कबाब चीनी, नागकेशर, दरुनज अकरबी, तरबूज सन्दल सफेद, सन्दल रक्त धनियां, शुष्क छिला हुआ अम्बर शहद, फाद् जहर हेवानी प्रत्येक १३½ तोला, सोंठ १½ तोला, गाऊजबान २१ तोला, पोस्त, नींबू कागज २१ तोला, तबाशीर सफेद २१ तोला, अपक्व आबरेशम कुतरा हुआ २१ तोला बादरंज बोया २½ तोला, मधुर बही रस, मधुर अनार रस अर्क गुलाब, अर्क गाऊजबान, अर्क सन्दल खांड प्रत्येक पौने १८ तोला, मधु द्विगुण प्रथम जवाहरत तथा फादजहर को गुलाब में खरल करें, कस्तूरी और अम्बर केशर तथा वर्कों को तबाशीर के साथ खरल करें और बाकी सब औषध को बारीक चूर्णकर मधु और खांड के पाक में मिलाकर मफरह तैयार करें।

मात्रा—७ माशा अर्क गाजर व अर्क अम्बर के साथ व शरबत अनार २ तोले के साथ प्रयोग करें।

गुण—हृदय के सब रोगों को दूर करके हृदय को बल देता है, प्लेग तथा विसूचिका में भी उपयोगी है।

मफरह् बारदः—अम्बर शहब, स्वर्ण वर्क हल किए हुए १-१ माशा, तबाशीर चन्दन चूरा, गाऊजबान पुष्प, गुलाब पुष्प की कली, मग्ज, तुखम कद्दू मधुर तुखम खुरफा प्रत्येक ६ माशा, मोती कहर वाश्मई प्रत्येक ४½ माशा, रुब सेव मधुर बही रुब प्रत्येक ७½ तोला, अर्क गुलाब, अर्क वेदमुशक प्रत्येक ६½ तोला, खांड आध सेर खांड का अर्क में पाक करें, और बाकी औषध का बारीक चूर्ण करके पाक में मिलावें।

मात्रा—६ माशा।

गुण—उपरोक्त।

मुहरब सुसुवजीः—कचूर दरुनज अकरबी, वहमन, सुरख, वहमन सफेद, बादरंजबोया प्रत्येक ३½ तोला, फरञ्ज मुशक २१ तोला, वज १½ तोला, ऊद कुमारी १½ तोला, पोदीना शुष्क, सोया सब्ज, दालचीनी, तिल छिले हुए जायफल, चांदी पत्र, कहरवा केशर प्रत्येक ६ माशा, जावित्री, याकूत प्रत्येक ३½ माशा, सेव जल, मरज नोश जल, गाऊजबान जल प्रत्येक ६ तोला, जवाहरात अर्क और केशर को गुलाब में खूब खरल करें, बाकी औषध चूर्ण को सेव आदि के जल में एक दिन रात्री भिगोने के बाद छानकर शहद और गौ दूध मिलाकर इस कदर उबालें कि दूध जल जाए और शहद मात्र शेष रह जाए। अब बनफसा तैल १½ तोला मिलाकर इस कदर फिर उबालें। पाक सिद्धि पर जवाहरत आदि मिलाकर मुफरह तैयार करें।

मात्रा-७ माशा अर्क गाऊजबान, अर्क वेदमुशक के साथ।

गुण—हृदय बल्य खफकान, उन्माद जोदर पाण्डु तथा अजीर्ण को नष्ट करता है। रोग के बाद की क्षीणता में उत्तम है, वाजीकरण है।

मफरह् शेखलर हीसः—गुलाब पुष्प ६ तोला, गाऊजबान १६ तोला, काहू बीज, छिले हुए मग्ज तुखम खरपजा, मग्ज तुखम कद्दू, मगज तुखम खयारैन, खुरफा बीज प्रत्येक १४ माशा, सन्दल सफेद, छोटी इलायची, तबाशीर प्रत्येक ९ माशा, ऊद हिन्दी दरुनज, अकरबी, कचूर वहमन सफेद प्रत्येक ५½ माशा, मरवारीद (मुक्ता) बुसद जली हुई, कहरवा, सरतान नहरी जल हुए, आबरेशम कुतरा हुआ, सन्दल सुरख, कपूर प्रत्येक ४½ माशा, केशर ३½ माशा, अम्बर शहब ९ माशा, कस्तूरी ४ रत्ती रुब सेव, रूब बही, प्रत्येक सब औषध के समभाग लेकर यथा विधि पाक करें और बाकी औषध का बारीक चूर्ण करके मिलावें।

मात्रा—३ माशा अर्क गाऊजबान के साथ।

गुण—उष्ण प्रकृति वालों के लिए लाभप्रद है, हृदय दुर्बलता, खफकान, ज्वर, क्षीणता आदि में उपयोगी है।

मफरहे दिलकुशाः—अम्बर शहब, दरुनज, चांदी पत्र प्रत्येक २१ माशा, लाल बदखशान, ऊद कुमारी, याकूत रमानी, याकूत जरद प्रत्येक ४½ माशा, कचूर, कपूर प्रत्येक १½ माशा, कहरवा शमई, यशद शबज, लाग, कबाबचीनी, वहमन सुरख प्रत्येक ३½ माशा, वहमन

सफेद ७ माशा, दालचीनी, तमालपत्र प्रत्येक ३½ माशा, बसुद धनियां, गिल अमरानी धुली हुई, बंशलोचन ७-७ माशा, मोती, बादरञ्ज वोया, नीबू कागजी का उपर का छिलका, पोस्त, बीरून पिस्ता, चन्दल सफेद, चन्दन रक्त, वन तुलसी बीज प्रत्येक १०½ माशा, गाऊजबान पुष्प, आमला प्रत्येक १½ तोला, असारा जरिशक ३ तोले, केशर ३ रत्ती, कस्तूरी ६ रत्ती, नीबू रस ४० तोला, सेव रस १२ तोला, वहीरस६तोला, खांड औषध से त्रिगुण लेकर स्वरसों में डालकर पाक करें और औषध को कूटकर छानकर पाक में भली प्रकार मिलावें।

मात्रा—५ माशा।

गुण—उन्माद तथा हृदय रोगों में अपूर्व।

मफरह कबीर:—याकूत के टुकड़े ४½ माशा, संगय शव, अकीक प्रत्येक ३½ माशा, रीकूथन, अफतीमियन, काली मिरच, सोंठ, लौंग, मरजन जोश प्रत्येक ७ माशा, हिजर अरमनी, हिजर लाजरवरद, नरकचूर, हंमामा, हाथी दन्त चूरा, दरुनज अकरबी, बहमन सुरख, गाऊजवान प्रत्येक ४½ माशा, तमालपत्र दालचीनी सातर, आशा, जूफा, जीरा, वज, सम्भल रूमी प्रत्येक ३½ माशा, पोदीना २१ माशा, फितरासालीयून (पहाड़ी करफस), हालो, हिजरलयहूद, करफ सबीज, मुरमुकी, कुन्दर केशर, मरिच सफेद प्रत्येक २१ माशा, स्वर्ण पत्र १ माशा, चांदी पत्र २ रत्ती प्रथम ज्वाहरत को खूब खरल करके वक भी इसमें खरल करलें और बाकी औषध को कूट छानकर औषध के मान से दुगुना हरड़ का मुरब्बा का शीरा लेकर पाक करें और पाक सिद्धि से औषध चूर्ण तथा ज्वाहरात मिलाकर मुफरह तैयार करें।

मात्रा—५ माशा।

गुण—हृदय रोग, दुर्बलता, मस्तिष्क दुर्बलता, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत क्षीणता, आमवात तथा जीर्ण ज्वरों में उत्तम है।

मफरह मोसबी—जरिश्क ४४ माशा, खुरफा छिला हुआ बीज २८ माशे, तवाशीर वहमन सफेद, गुलाव पुष्प, गाऊजवान पुष्प प्रत्येक १४ माशा, याकूत सुरख, मोती कहवा शमाई, वुसद सन्दल, सफेद धनियां शुष्क प्रत्येक ७ माशा, गिल अरमनी धुली हुई ४॥ माशा, वहमन सुरख सोने के वर्क, चांदी पत्र, पोस्त बीरून, पिस्ता, अपक्व आवरेशम कुतरा हुआ, अम्बर शहब प्रत्येक ३॥ माशे, शरवत निंबू सब औषध के समभाग खांड द्विगुण सब औषध का बारीक चूर्ण करें। खांड तथा शरवत का पाक करके औषध चूर्ण मिलाकर मुफरह तैयार करें और आखिर में जवाहरात बारीक खरल करके मिलावें।

मात्रा—५ माशा अर्क गाऊजवान से।

गुण—उपरोक्त।

मुफरह मतहदिल—कस्तूरी अम्बर १-१ माशा, गुलाब पुष्प, नागरमोथा, दरूनज अकरबी, बालछड़, दालचीनी, केशर मस्तङ्गी, लौंग, जायफल, इलायची कबावचीनी, पिप्पली इलायची बड़ी, नींबू कागजी, पान जड़, ऊद हिन्दी, मोती, बुसद, कहरवा प्रत्येक ३॥ माशा, कचूर ३॥ माशा, अपकव आवरेशम कुतरा हुआ ८॥ माशा, तुलसी बीज ८॥ माशा खांड सफेद अब सब औषधि के समभाग, मधु औषधि तान सक द्विगुण, हिजरायत, कस्तूरी, केशर तथा मस्तङ्गी को पृथक पृथक खरल करें और बाकी औषधि के चूर्ण में मिला दें। अब मधु तथा खांड का पाक करके अन्त में औषधि चूर्ण मिला दें।

मात्रा—१ माशा।

गुण – हृदय को बल देता है, अतिसार तथा गर्भाशय रोगों में भी बहुत लाभप्रद है पाचक तथा उत्तेजक है।

मुफरह याकूत मुतहदिल—कस्तूरी रमानी लाल, बादरंजबोया, प्रत्येक ४॥ माशा, अम्बर शहब बड़ी इलायची, स्वर्ण वर्क, कपूर, गिल मखतूम, धनियां, लाजवरद गिल अरमनी बालछड़, नागकेशर, प्रत्येक ३॥ माशा, मोती, बुसद कहरवा शमई, केशर, गाऊजबान, मस्तङ्गी रूमी, दालचीनी, अपक्व आवरेशम कुतरा हुआ, नींबू कागजी का छिलका बहमन सफेद कचूर, छड़ीला, मगज तुखम कद्दू नख, जरिशक, खुरफा बीज, वन तुलसी बीज, तवाशीर, मगज तुखम हायात, गाऊजवान बीज, प्रत्येक ७ माशा, सन्दल सफेद, ऊद हिन्दी, दरूनज अकरबी, गुलाबी पुष्प १०॥ माशा, शरबत नींबू २५ तोला मधु, औषधि से दुगना, ज्वाहरात को पृथक खरल करें, फिर सब औषधि चूर्ण को आपस में मिलाकर एक जीव करलें, मधु तथा

खांड का पाककर के औषधि चूर्ण मिलाकर मुफरह तैयार करें।

मात्रा—१ माशा, अर्क गाऊजबान से।

गुण—उपरोक्त।

मफरीह याकूती—लाल याकूत चन्दन सफेद प्रत्येक १ माशा मोती, कहरबा, केशर प्रत्येक १३॥ माशा, ऊद कुमारी, दरूनज कुमारी, गुलाब पुष्प प्रत्येक १८ माशा, स्वर्ण वर्क, चांदी के वर्क, अम्बरशहब, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, कपूर गिल मखतम केसर पुष्प, लाजवरद धुला हुआ, गिलअरमनी, बालछड़ नाग केशर, बांदरजबोया बीज, प्रत्येक ४॥ तोला, गाऊजबान, मस्तङ्गी, दालचीनी आबरेशम कुतरा हुआ, पोस्त नींबू, वहमन, सफेद, छड़ीला, नरकचूर, मगज तुखम कद्दू, नाखूना, जरिशक, खुरफा बीज छिला हुआ, बन तुलसी, तबाशीर, काहु बीज, खयर बीज, प्रत्येक १०॥ तोला, शरबत हमाज १ सेर २५ तोला कुरस अम्बर प्रत्येक ५२॥ तोला, मधु २ सेर ५० तोला, शरबत तथा मधु का पाक करके यथा विधि मुफरह तैयार करें।

मात्रा—६ माशा।

गुण—शरीर तथा हृदय के लिये परम बलप्रद है।

मुफरह याकूती बारद—मरजान मूल, गिलारमनी कजमाजज, मोडीयो बीज, बनफशा पुष्प, गुलनार फारसी, स्वर्ण वर्क, अम्बराहब, कस्तूरी प्रत्येक ४॥ माशा, याकूत रमानी, लाल बदखशानी, यशप काफरी, जरिशक साफ, किया हुआ, चांदी पत्र, कपूर केसरी, प्रत्येक १३॥ माशा, मोती बादरंजबोया, गाऊजबान, बन तुलसी बीज, केशर, आमला, खुरफा बीज छिले हुए, दोनों बहमन, दोनों चंदन प्रत्येक २२॥ माशा, वंशलोचन ३१ माशा, काशनी ४५ माशा, अर्क कासनी ७॥ तोला, शरबत मधुर अनार, शर्बत मधुर सेब, शरबत हमाज, प्रत्येक १५ तोला, मधु साढ़े २१ तोला, खांड ४७ तोला मधुर औषधि का पाक कर बाकी औषध का बारीक चूर्ण मिलाकर यथाविधि मुफरह तैयार करें।

मात्रा—७ माशा से १ तोला।

गुण—पित्त प्रकृति वालों के लिए अत्यन्त उत्तम है।

मुफरह हार सादा—बादरंजबोया १०॥ माशा, नरकचूर, दरूनज अकरबी, गाऊजबान २१-२१ माशा सब को बारीक पीसकर आवश्यकतानुसार शरबत सेब और मधु का पाक कर मुफरह तैयार करें।

मात्रा—१ तोला।

गुण—सर्दी से उत्पन्न खपकान तथा हृदय दुर्बलता में उत्तम है।

मुफरह बारद—मोती, आबरेशम कुतरा हुआ, गाऊजबान प्रत्येक ६ माशा, गाऊजबान पुष्प, गुलाब पुष्प, धनियां शुष्क, तबाशीर, मगज कद्दू, मगज तुखम खीरा, तुखम खुरफा छिला हुआ कहरबा शमई प्रत्येक १३॥ माशा, शरबत फोवाका १० माशा, खांड सफेद अर्क गुलाब अर्क बेदमुष्क प्रत्येक ३७ तोला ६ माशा, प्रथम खांड तथा शरबत का अर्कों में पाक करें, बाकी औषधि का चूर्ण मिला कर मुफरह तैयार करें।

मात्रा—१ माशा

गुण—हृदय दुर्बलता तथा खपकान में उपयोगी है।

मुफरह आबरेशम—आबरेशम अपक्व १८ तोला १ माशा लेकर अर्क गावजबान गुलाब, बेदमुश्क प्रत्येक १५ तोला में भिगोवें और जोश देकर निचोड़ लें, अब मधुर वही जल, मधुर सेब जल प्रत्येक ७ तोला ७ माशा, खांड ८ तोला ६ माशा में मिलाकर पाक करें। पाक सिद्धि पर कस्तूरी ३॥ माशा, अम्बर ७ माशा डालकर नीचे उतार लें। शीतल होने पर कहरबा, मरजान जड़ गुलाब पुष्प चन्दन श्वेत प्रत्येक ४॥ माशा, वंशलोचन मोती प्रत्येक ५१ माशा का बारीक चूर्ण डालकर मुफरह बनावें।

मात्रा—४॥ माशा

गुण—सरदी के कारण हृदय दुर्बलता को नष्ट करता है।

मुफरह आबरेशम लोलवी—आबरेशम अपक्व १८ तोला ९ माशा लेकर स्वर्ण तथा चांदी के बुझे हुए जल में एक दिन रात भिगोवें और जोश देकर छान लें, अब गाऊजबान, बन तुलसी, गुलाब पत्र, बालछड़, छड़ीला प्रत्येक ७ माशा लेकर अर्क गुलाब में भिगोवें और जोश देकर मल छान लें, फिर इसमें आबरेशम का जल मिलाकर दुगनी खांड मिला कर पाक करें। इस पाक

में चन्दन सफेद ६ माशा, अम्बर ३॥ माशा, कस्तूरी १॥। माशा मिलाकर मुफरह तैयार करें।

मात्रा-६ माशा अर्क गुलाब, गाऊजबान के साथ

गुण—दिल यकृत तथा आमाशय को बल देता है, अतिसार बन्द करता है उन्माद, हृदय डूबना में लाभ-प्रद है।

मुफरह लोलवी—मुश्क (कस्तूरी) ३ माशा, मोती, छोटी इलायची, अम्बरशहब, कपूर प्रत्येक ६ माशा, वंश-लोचन, आबरेशम (अपक्व) कुतरा हुआ, बहमन सफेद १-१ तोला, धनियां, गाऊजबान पुष्प, गुलाबपुष्प प्रत्येक २ तोला, मगज तुखम खयारैन ५ तोला चन्दन सफेद गुलाब जल में घिसा हुआ १० तोला मधु उत्तम सब औषधि के समान खांड औषधि से दुगनी-पहिले मधुर औषधि का बारीक चूर्ण मिलावें।

मात्रा-७ माशा से ६ तोला।

गुण—उपरोक्त।

मुफरह मसीह—कस्तूरी १॥ माशा, तमाल पत्र, सोंठ, पिप्पली,लालबदखशानी, कहरवा, मरजानमूल प्रत्येक ३॥ माशा, नागर मोथा ५१ माशा, अम्बरशहब मोती ७-७ माशा, पान जड़, कबाबचीनी, लौंग, जायफल, दोनों इलायची, वन तुलसी, केशर पोस्ततरंज, इन्द्रजौ, जावित्री प्रत्येक १०॥ माशा, दोनों बहमन, बालछड़, छड़ीला प्रत्येक १४ माशा, तज, गाऊजबान, गुलाब पुष्प प्रत्येक १७॥ माशा, बादाम तेल १७ माशा, सोने के वर्क, चांदी वर्क प्रत्येक २१ माशा, भांग बारीक चूर्ण ८ तोला ६ माशा, खांड सब औषधि से त्रिगुण लेकर पाक करें और शेष औषधि का बारीक चूर्ण डालकर मुफरह तयार करें।

मात्रा—४ से ६ माशा।

गुण-दिल दिमाग को बल देता है, कमर तथा वृक्कों को बलप्रद है, दीपन पाचन है, बाजीकरण तथा स्त-म्भक है।

नोशदारु लोलवी—अम्बर, केशर, मोती, बसुद, यशद, नागरमोथा, अजखर प्रत्येक ११॥ माशा, अबरेशम (अपक्व) कुतरा हुआ, तबाशीर, तमालपत्र, बाल छड़, गिलरमनी प्रत्येक १३॥ माशा, औषध को कूट छानकर चूर्ण करें और खांड औषध से डेढ़ गुणा तथा खांड के समान भाग मधु लेकर यथाविधि पाक करें, पाक में औषध चूर्ण मिला लें।

मात्रा—५ माशा।

गुण—दीपन, पाचन, शरीर को बल देता है, हृदय को बल देता है, हृदय दुर्बलता को भी उपयोगी है।

याकूती बारद—मगज तुख्म कद्दू, मगज तरबूज खयारैन तुख्म काहू प्रत्येक १०॥ माशा, कुलफा बीज छिले हुये १६ माशा, मोती ८१ माशा, चन्दन सफेद, बालछड़, वंशलोचन छालीया, चन्दन लाल, बसुद, कहरवा प्रत्येक ८ माशा, केकड़े (सरतान) जला हुआ ८१ माशा, जमुरद सब्ज २१ माशा, आबरेशम कुतरा हुआ, बहमन सुर्ख तथा सफेद गुलगाऊजबान, गुल गुलाब की कली, शकाकुल मिश्री, इलायची, दालचीनी प्रत्येक १॥ माशा, आमला १॥ तोला, केशर, अम्बर शहब, स्वर्ण वर्क, कस्तूरी प्रत्येक १॥ माशा, वर्क चांदी ८ माशा, मिश्री १७ तोला, मधुर सेब जल, अमरूद जल, बही जल, शर्बत फोवका मधुर अर्क गुलाब, उत्तम मधु, अर्क सन्दल प्रत्येक ७ तोला, प्रथम जवाहरात को अर्कों में खरल करें फिर खांड तथा मधु का पाक करके बाकी औषधि का चूर्ण मिलावें।

मात्रा—३ माशा।

गुण—उष्ण प्रकृति वालों के लिए उत्तम है, शरीर को दृढ़ बनाती है।

माजून राजलमोम नीम—कस्तूरी २१ माशा, जायफल, कतीरा, सोसन जड़ प्रत्येक १॥ तोला, गाऊ-जबान पत्र, खसतीयलसाहलब प्रत्येक १॥। तोला, गाजर बीज, नारियल दरयाइ, दालचीनी, मगज चिलगोजा प्रत्येक ३॥ तोला, शकाकुल मिश्री ७॥ तोला सबको कूट छान लें, पोस्त, खशखाश १८॥। तोला को त्रिगुण जल में उबालें, अब इस में मधु और मधुर सेब जल प्रत्येक आधा सेर, गाजर रस तीन पाव मिलाकर पाक करें फिर औषध चूर्ण और कस्तूरी मिला लें।

मात्रा—७ माशा।

गुण—कफज श्वास, खफकान तथा पुंसक दुर्बलता को नष्ट करता है।

माजून सन्दल-सन्दल सफेद ६ तोला जल में घिस-कर रख लें, इमली का नियारा जल, अनार अम्ल का

जल १-१ पाव लेकर १॥ सेर खांड मिला कर पाक करें और चन्दन को छानकर पाक में मिला दें, फिर तवाशीर १४ माशा, ऊद, केशर प्रत्येक ३॥ माशा का वारीक चूर्ण पाक में मिलावें।

मात्रा—५ माशा, अर्क गाऊजवान से।

गुण—खफकान, उन्माद, हृदय दुर्वलता को दूर करती है।

माजून तिल्ला—अम्बर शहव, कस्तूरी, मोती, याकूत, जुमुरद प्रत्येक ४ माशा, स्वर्ण वर्क १ तोला, मधु ७ तोला, मधुर सेव रस, मधुर अनार रस, मिश्री प्रत्येक १० तोला, अर्क गुलाब १ पाव, अर्क गाऊजवान, अर्क वेद-मुश्क प्रत्येक आधा सेर, अर्कों में मिश्री तथा मधु डालकर पाक करें। पाक सिद्धि पर वाकी औषध चूर्ण मिलाकर माजून तैयार करें।

मात्रा—३ माशा।

गुण—हृदय को वल देती है, गशी तथा खफकान में उत्तम है।

स्वर्ण पत्र हल किए हुए २२॥ माशा, याकूत रमानी लाल वदखशानी मुक्ता प्रत्येक २० माशा, अम्वर शहव, फोवाका शर्वत मधुर अनार मधुर वही जल मधुर सेव जल प्रत्येक २ सेर अर्क गुलाव ३ पाव, खांड, अर्क वेदमुश्क, अर्क गुलाव, अर्क गाऊजवान (जो गुलाब और वेदमुश्क में खेंचा गया हो) प्रत्येक १-१ सेर, मधु ६ तोले ४॥ माशा प्रथम मधुर फलों का जल शर्वत खांड तथा मधु और अर्क मिलाकर पाक करें, फिर बाकी औषध चूर्ण मिलाकर माजून तैयार करें।

मात्रा—५ से ६ माशा।

गुण—हृदय रोगों में उत्तम है।

माजून माकवी व मुफरह क्लब—मुरब्बा आंवला ५ नग, मुरब्बा हरड़ ५ नग, मुरब्बा सेव, मुरब्बा वही २-२ नग, मुरब्बा अनन्नास, मुरब्बा नोशकर (गन्ने का मुरब्बा) मुरब्बा पेठा प्रत्येक आधा पाव सबको गरम पानी से धोकर पीस लें और अर्क गुलाव वेदमुश्क केवड़ा में प्रत्येक १॥ पाव में हल करके छान लें और खांड १। पाव मिलाकर पाक करें पाक सिद्धि पर कहरवा शमई, छोटी इलायची बीज, तवाशीर, केशर, प्रवाल, मरवारीद (मोती) यशद चांदी वर्क स्वर्ण वर्क प्रत्येक ६ माशा खरल करके भल प्रकार मिलावें।

मात्रा—४ से ६ माशा।

गुण—दिल दिमाग तथा यकृत को वल देती है।

माजून आबरेशम—दालचीनी, वहमन सफेद, बाल-छड़, हब्ब लुसान, ऊदसलीव, मस्तङ्गी, केशर, कुन्दर सोसन जड़, दरुनज अकरवी, नागरमोथा, वहमन सुर्ख, वज तुरकी, उस्तोखदूस कवावचीनी, तगर प्रत्येक २ माशा हरड़ कावुली, मगज नारियल प्रत्येक २० माशा, द्राक्षा बीज रहित १५ नग, पिप्पली, सोंठ, मिर्च सफेद १-१ माशा, खांड १ छटांक, मधु आधा पाव सबको कूट छान कर मधु तथा खांड के पाक में मिलाकर माजून तैयार करें।

मात्रा—७ माशा।

गुण—विस्मृती नाशक है, हृदय तथा मस्तिष्क को वलप्रद है।

हब्ब मस्कान कलव-जहरमोहरा, वंशलोचन, यशप सवज, मुक्ताशुक्ति, मरजान २-२ तोला, बुसद, नारजील दर्याई, पपीता, तुख्म रेहां, तुख्म खशखाश, मग्ज कद्दू, छोटी इलायची बीज, पोदीना शुष्क, जरिशक, मग्ज वादाम, कहरवा शमई, धनियां शुष्क, मगज तुख्म तरबूज, चांदी वर्क प्रत्येक १-१ तोला सबको कूट छान कर चने समान वटी करें।

मात्रा—१ वटी, अर्क गुलाब तथा अर्क वेदमुश्क से।

गुण—दिल दिमाग को वल देती है, अजीर्ण नाशक है, रोगों के वाद की क्षीणता को नष्ट करती है।

सफूफ मुफरह—वंशलोचन, धनिया, चन्दन सफेद, छोटी इलायची, जहरमोहरा खताई, कहरवा प्रत्येक १-१ छटांक, नारियल दर्यायी ३ तोला, अकीक भस्म २ तोला, प्रवाल भस्म १ तोला, चांदी वर्क ३ माशा सबको वारीक पीसकर चूर्ण करें और चांदी पत्र मिलावें।

मात्रा—१ से ३ माशा।

गुण—हृदय धड़कन, पित्त उग्रता, वमन, अतिसार रक्त अतिसार प्यास इत्यादि में अत्यन्त उत्तम योग है।

ज्वारस मुफरह—सोंठ ६ तोला, तालमात्र ६ माशा लौंग ६ तोला, वालछड़ १ तोला, जायफल ६ माशा,

अकरकरा ६ तोला, पान की जड़ ६ माशा, दरूनज अकरबी २ तोला, स्वर्ण वर्क २ रत्ती, चांदी वर्क १ माशा, कस्तूरी ८ रत्ती, मधु त्रिगुण, मधु का पाक करके बाकी औषध का चूर्ण मिलाकर अवलेह बनावें, अन्त में वर्क मिलावें, तैयार है।

मात्रा—६ माशा से ६ तोला।

गुण—कास, श्वास, हृदय दुर्बलता, अपस्मार, बालग्रह, शारीरिक दुर्बलता में अत्यन्त लाभप्रद योग है, रोग हर तथा शक्तिप्रद योग है।

शरबत मुफरह—धनियां, गाऊजवान पुष्प, नीलोफर पुष्प, जरिशक, गाजर बीज, फरंजमुश्क बीज, किशमिश आधा-आधा पाव, खांड ५ सेर यथाविधि शर्वत तैयार करें।

मात्रा—५ तोला।

गुण—दिल दिमाग को बल देता है, तृषा को मिटाता है, चित्त प्रसन्न रखता है।

जवाहर मोहरा—द्रव्य तथा निर्माण विधि—जहर मोहरा खताई १॥ तोले, मोती, प्रवाल मूल, कहरुवाशमई लाजवरद धुला हुआ, माणिक रक्त, माणिकसब्ज, माणिक पीत वर्ण, यशद सबज जुमुरद (पन्ना) अकीकरकत, चांदी पत्र, मस्तङ्गी रूमी प्रत्येक ७ माशा, स्वर्ण वर्क, जदवार खताई, नारजील खताई, अम्बर अशब, कस्तूरी, शुद्ध शिलाजीत प्रत्येक ३॥ माशा सब औषध को पृथक-२ अत्यन्त बारीक खरल करें, फिर मिलाकर २ सप्ताह तक अर्क गुलाब, अर्क गाऊजवान, अर्क केवड़ा, अर्क वेदमुश्क से भावना दें।

मात्रा तथा गुण—२ से ४ चावल तक, दवालमसक जवाहर वाली ५ माशे में मिलाकर दें, उत्तमांगों को तथा सब शरीर के अवयवों को शक्ति प्रदान करने के लिये एक महान सिद्ध औषधि है, हृत्कम्प अपस्मार आदि में भी प्रभावशाली है, हृदय रोग तथा शरीर बलहीनता के लिए अमृत तुल्य है।

सफूफ जवाहर—द्रव्य तथा निर्माण विधि—मुक्ता शुक्ति, जहर मोहरा खताई, प्रवाल मूल रक्त माणिक, कहरुवा, शमई, मुक्ता अकीकयमनी, हरायशद प्रत्येक १-१ तोला सबको अर्क केवड़ा, वेदमुश्क में २ सप्ताह तक खरल करें, शुष्क होने पर शीशी में सुरक्षित रखें।

मात्रा तथा अनुपान—३ से ४॥ तक खमीरा गाऊजबान व अम्बरी १ तोला में मिलाकर त्रि अर्क के साथ प्रयोग करें (त्रिअर्क-अर्क गाऊजवान वेदमुश्क केवड़ा)।

गुण—हृदय बलदायक तथा उल्लास कारक है।

दवाए खफकान—द्रव्य तथा निर्माण विधि—श्वेत चन्दन, गाऊजवान पुष्प १-१ तोला, धनियां, कहरुवा, शमई १-१ माशा, यशप, अकीक ७-७ माशा, मुक्ता, प्रवाल भस्म, वङ्ग भस्म, मुक्ता शुक्ति ३-३ माशा बारीक पीसकर त्रिअर्क से भावित कर शीशी में रख लें।

मात्रा तथा अनुपान—२-४ रत्ती दिन में २-३ बार त्रिअर्क से प्रयोग करें।

गुण—दिल की धड़कन, दिल के डूबना में अतीव गुणकारी है।

खमीरा तिल्ला—बारीक पिसे स्वर्ण वर्क १७॥ माशा, अम्बर अशब १०॥ माशा, चांदी पत्र ८ माशा मुक्ता उत्तम ८॥ माशा, माणक रूमनी, लाल बदखशानी हरा पन्ना प्रत्येक ३॥ माशा, केशर ३ माशा, छोटी इलायची बीज १ तोला, रूब्ब सेब, रूब्ब गाजर, रूब्ब नाशपाती, रूब्ब अनार प्रत्येक १० तोला, मधु उत्तम २० तोला, सबको बारीक पीस कर यथा विधि खमीरा प्रस्तुत करें।

मात्रा तथा अनुपान—३-६ माशा तक अर्क मालहम अम्बरी के साथ प्रयोग करें।

गुण तथा उपयोग—हृदय मस्तिष्क को पुष्टि तथा शक्ति देने में अद्वितीय महौषधि है।

शरबत मफरह—चन्दन लाल, चन्दन सफेद, नीलोफर पुष्प, गुलाब पुष्प, वेद मुश्क पुष्प, गाऊजवान पुष्प, फरंज मुश्क, सेवती पुष्प, छोटी इलायची, धनियां, खस प्रत्येक ६-६ तोला, खांड २ सेर शर्वत विधि से शर्वत तैयार करें।

मात्रा—२ से ४ तोला त्रिअर्क १२ तोला के साथ प्रयोग करें। (त्रिअर्क-अर्क गाऊजवान, अर्क वेदमुश्क, अर्क केवड़ा)।

गुण—हृदय बल्य तृषानाशक तथा शान्ति दायक मधुर सुगन्धित तथा गुण प्रद शर्वत है। ग्रीष्म ऋतु में अमृत तुल्य सिद्ध हुआ है।

एलोपैथिक

हृदय तीन सतह का बना हुआ है। अन्तः सतह जिसको इन्डोकार्डियम, मध्य सतह मायोकार्डियम तथा वाह्य सतह पेरी कार्डियम कहते हैं। इसमें किसी प्रकार से जैसे-रूमटिक फीवर के इन्फ्लामेसन, सिफलिस, हृदय के किसी भाग के बढ़ने तथा उसके रक्त वाहिनियों में कोई विकार इत्यादि उत्पन्न होकर हृदय के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें अधिक महत्व के इन्फ्लामेसन से उत्पन्न रोग हैं। इन्डोकार्डियम में इन्डोकार्डायटिस, मायोकार्डियम में मायोकार्डायटिस तथा पेरीकार्डियम में पेरी कार्डायटिस हो जाता है। हम नीचे इनका संक्षिप्त वर्णन तथा चिकित्सा का वर्णन करेंगे।

(१) एन्डोकार्डायटिस—यह एक्यूट, सबएक्यूट तथा क्रानिक किस्म की हो सकती है। एक्यूट इन्डोकार्डायटिस साधारण प्रकार की ६० प्रतिशत में रूमटिक फीवर के कारण होती है। तथा शेष में जीवाणुओं के कारण होती है जो एक्यूट या सबएक्यूट हो सकती है।

१—रूमेटिक इन्डोकार्डायटिस—यह अधिकांशतः बच्चों में होती है। इसमें पूरी इन्डोकार्डियम की सतह में शोथ हो जाता है विशेषतः हृदय के कपाटों (वाल्वस) में। और रूमटिक नोड्यूल्स बन जाते हैं। और वाल्वस के बन्द होने के लाइन पर वेरुकस वेजेटेल्स २ मि. मी. की लम्बाई के बन जाते हैं जो कि माइट्रल वाल्व पर अधिक होते हैं। पूरा वाल्व कड़ा हो जाता है और वाल्व का सूराख छोटा हो जाता है। इसमें ज्वर तीव्र होता है दिल में धड़कन, श्वास में कठिनाई तथा नाड़ी तेज व अनियमित होती है। माइट्रल रिगर्गिटेशन होता है तथा मरमर सुनाई पड़ता है। ई. सी. जी. करने से पी. आर. और क्यू. टी. का समय बढ़ जाता है तथा क्यू. आर. एस. एस. टी. और टी लहरें अनियमित हो जाती हैं।

चिकित्सा—

प्रारम्भ में ५-१० ग्रेन एस्प्रीन देने से काफी लाभ होता है। साथ ही कम से कम ३ मास तक उसके पूरा आराम देना आवश्यक है। यदि नाड़ी बहुत तेज नहीं है तो दो तकिये लगाये जाने चाहिए। चारपाई से घूमना-फिरना धीरे धीरे प्रारम्भ करना चाहिये। ई. एस. आर. का नार्मल होना आवश्यक है। कुछ रोगियों में डिजिटलिस बहुत लाभकर है। पेट बराबर साफ रहना चाहिए तथा गैस इत्यादि नहीं बननी चाहिए। भोजन पहिले तरल फिर धीरे धीरे डबल रोटी दूध या नरम चावल देनी चाहिए। रूमेटिक फीवर का बारबार आना रोकना आवश्यक है। इसके लिए सल्फोनामाइडस अथवा पेनीसिलिन का प्रयोग हितकर है। किसी भी एन्टीबायोटिक के देने के पहले सेंसीटिविटी टेस्ट कर लेना नितान्त आवश्यक है।

सेप्टिक या बैक्टीरिअल इन्डोकार्डायटिस—इसमें विशेष कारण जीवाणु होते हैं जो कि अधिकांशतः सेप्टीसिमिया उत्पन्न करके इस रोग को बढ़ाते हैं। ये जीवाणु एक्यूट और सब एक्यूट दो प्रकार का इन्डोकार्डायटिस किसी एक या एक से अधिक मिलकर उत्पन्न करते हैं जिसके नाम निम्न हैं—

नीमोकोक्काई, हीमोलिटिक स्ट्रेप्टो कोक्काई, स्टैफाइलो कोक्काई और कभी-कभी गोनोकोक्काई यह विशेष कर एक्यूट अवस्था में पाए जाते हैं। इसमें सिस्टोलिक मरमर पाया जाता है। हृदय की गति तीव्र होती है। ज्वर भी तीव्र होता है। स्प्लीन बढ़ जाती है। शरीर पर पिन पाइन्ट रक्तस्राव दिखाई पड़ते हैं। रक्त को निकालकर उसका कल्चर कराने से जीवाणु तथा उसकी सेंसीटीविटी का पता चल जाता है। इसमें स्पेसिफिक अथवा जिसके लिए जीवाणु सेंसीटिव है वह एण्टीबायोटिक देना हितकर होता है जैसे—पैनीसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, क्लोरम फेनीकाल या टेट्रासायक्लिन का प्रयोग किया जाता है।

सब एक्यूट बैक्ट्रियल इन्डोकार्डायटिस में ऊपर के जीवाणुओं के अतिरिक्त मेनीन्गो कोक्कस तथा इन्फ्लूएन्जा बैसीलाई भी होते हैं। जीवाणु मुंह, गले तथा दोनों से लगे होते हैं जो किसी आपरेशन के बाद अधिक हमला करते हैं। यह २०-४० वर्ष की आयु में किसी भी लिंग में हो सकते हैं। इसमें माइट्रल और एवोरेटिक वाल्व अधिक प्रभावित होते हैं। इसमें रोगी को सुस्ती तथा कमजोरी मालूम पड़ती है। भूख नहीं लगती, ज्वर २-१ डिग्री अधिक होता है। ठंडक, पसीना, सिर दर्द तथा

जोड़ों और मांसपेशियों में वेदना होती है । ज्वर भी रहता है। परन्तु कभी-कभी नहीं भी हो सकता है। श्वेत रक्त कण १२०००–१५०००/ सी० सी० तक होते हैं जिसमें पालीमार्फोन्युक्लियर अधिक होते हैं । लाल कण कम हो जाते हैं। ई० एस० आर० बढ़ जाता है ।

इसकी चिकित्सा में दांत, टांसिल्स तथा ट्रैकिया के इन्फेक्सन दूर करने चाहिए । जिसका दांत निकालना हो ५,००,००० यूनिट पेनसिलिन एक घण्टे पहले देना चाहिए तथा कई दिनों तक ३,००,००० यूनिट दोनों समय चालू रखना चाहिए। कल्चर और सेंसीटीविटी के पश्चात् पेनी-सिलिन बड़ी मात्रा में २००० ००० यूनिट्स चार बार में १½ मास तक देना चाहिए। इसके अतिरिक्त १ मिलियन प्रोकेन पेनसीलिन रोजाना दो बार अन्तः मांसपेशी सूची-वेध से देना उसी प्रकार हितकर है। इसके साथ ही स्ट्रे-प्टोमाइसिन १ ग्राम प्रतिदिन २-६ सप्ताह तक देना चाहिए। क्षमता प्राप्त रोगियों में पेनीसीलिन १० से २० मिलियन यूनिट्स, १-२ ग्राम स्ट्रेप्टो माइसिन के साथ रोजाना ४-८ सप्ताह तक देना आवश्यक है । स्टैफाइ-लोकोक्काई क्षमता प्राप्त रोगियों में इरीथ्रोमाइसिन नोवोवायोसिन लाभकर सिद्ध हो सकता है। स्वस्थ्य आदमी ६ सप्ताह बीमारी के पश्चात् दवा करने से अधि-कांशतः ठीक हो जाते हैं और यदि चिकित्सा ३ मास बाद प्रारम्भ की जाती है तो इसके ५०% ठीक हो जाते हैं। जिसका प्रमाण ज्वर का न आना, भूख का लगना स्वस्थ अनुभव करना, शरीर के भार की वृद्धि तथा रक्त के सभी पैरामीटर्स का नार्मल हो जाना है।

(२) मायोकार्डाटिस—यह दो प्रकार की होती है–१. एक्यूट सिम्पुल तथा २. सुपुरेटिव जो बहुत कम पाई जाती है। एक्यूट सिम्पुल मायोकार्डायटिस इन्फेक्सन फैलाने वाले ज्वरों के उपद्रवस्वरूप पाया जाता है। विशेषकर रूमटिक फीवर और कभी-कभी डिफ्थेरिया, इन्फ्लूएन्जा, रिकेट्स, टायफायड तथा चेचक के कारण भी हो जाता है। इसके फलस्वरूप हृदय की मांसपेशी फाइब्रोसिस या उनका डीजनरेसन हो जाता है । हृदय के चैम्बर्स कुछ बढ़ जाते हैं। हार्ट ब्लाक हो सकता है। इसके साथ ही पेरीकार्डाइटिस और इन्डोकार्डायटिस भी हो सकती है। यह कभी-कभी बिल्कुल ठीक हो जाता है जिसे रिवर्सेबुल मायोकार्डायटिस कहते हैं। परन्तु कभी-कभी फाइब्रोसिस सदा के लिए बनी रहती है। ब्लड प्रेसर कम होता है। नाड़ी क्षीण तथा तीव्रगामी होती है। सिस्टोलिक मरमर भी पाया जाता है। ई० सी० जी० लेने पर क्यू० आर० एस० चौड़ा हो जाता है। टी० चपटी या उल्टी हो जाती है। एस० टी० सेगमेंट छोटा हो सकता है।

चिकित्सा—

असली कारण का पता लगाकर उसको दूर करना तथा उसकी चिकित्सा करना नितान्त आवश्यक है। इसके साथ ही बिस्तर में पूर्ण विश्राम मिलना चाहिए और घातक रोगियों में इसकी अवधि बढ़ा देना चाहिए। आसानी से पचने वाले भोजन तथा ग्लूकोज सलूसन का अन्तसिरा सूचीवेध द्वारा देना बहुत ही लाभकर है।

(३) पेरी कार्डायटिस—यह एक्यूट और क्रानिक दो प्रकार की होती है। एक्यूट में भी दो प्रकार होते हैं– एक फाइब्रिनस या ड्राई। दूसरा सिरीफाइब्रिनस या विद इफ्यूजन। इसी प्रकार क्रानिक भी दो प्रकार का है जैसे-कान्सट्रिक्टिव तथा अधेसिव फाइब्रिनस में पेरीकार्डियम पर लालिमा हो जाती है और इसकी चमक जाती रहती है। छोटे-बड़े फाइब्रिन के बिन्दु मोनोन्युक्लियर और पाली मार्फोन्यूक्लियर के साथ दोनों पर्तों पर जमा हो जाते हैं। इससे दूसरी सतह सैंगी हो जाती है। जिसको ब्रेड और बटर पेरीकार्डियम कहते हैं। इसमें कोई पानी नहीं होता। परन्तु सिरोफाइब्रिनस में फाइब्रिन के साथ ही पानी भी सैक में इकट्ठा हो जाता है। जिसका रङ्ग पीलापन लिए हुए हरा होता है। ३० सी० सी० से १·५ लीटर की मात्रा में होता है। प्रोटीन ३% होता है तथा स्पेसिफिक ग्रेविटी १०१७ होती है।

चिकित्सा—रूमटिक फीवर वाले रोगियों में सली-सिलेट से चिकित्सा करनी चाहिए। यदि इफ्यूजन फ्लूड की मात्रा अधिक जान पड़े तो उसको एसपीरेट करके निकाल देना चाहिए। चारपाई के ऊपर रोगी को पूर्ण विश्राम देना आवश्यक है। जब तक कि नाड़ी कुछ अधिक गति नहीं दिखाती। रूमेटिक इफ्यूजन में एसपीरेशन की

आवश्यकता नहीं पड़ती। वह स्वयं अचानक सूख जाता है। पेनीसिलिन तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन का सूचीवेध भी आवश्यक है।

क्रानिक पेरीकार्डाइटिस की अवस्था में जिसके कोई विशेष लक्षण न हो उनकी चिकित्सा की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। परन्तु एसाइटिस में लक्षणों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए। कान्सट्रक्टिव किस्म की पेरीकार्डाइटिस में सावधानी से कार्डियम डीकार्टीकेशन से काफी लाभ होता है। अच्छे शल्य बिद के द्वारा किए जाने पर बहुत ही अच्छा फल मिलता है।

Circulatory Failure—सक्यूलेटरी फेल्योर ४ मुख्य कारणों से हो सकता है। वैसे तो अनेकों कारण हैं—

१. लेफ्ट वेन्ट्रीकुलर फेल्योर २. राइटवेन्ट्री कुलरफेल्योर ३. कम्बाइण्ड राइट एण्ड लेफ्ट वेन्ट्रीकुलर फेल्योर ४. पेरीफेरल सरक्यूलेटरी फेल्योर। लेफ्ट वेन्ट्रीकुलर फेल्योर हाइपरटेंशन या एओर्टिक वाल्व के बीमारियों के कारण होता है और यदि कोरोनरी की दीवारें मोटी हैं तो उनमें पूरा रक्त संचार नहीं होता। फलस्वरूप हृदय की मांसपेशी कमजोर हो जाती है और रक्त को पूरा पम्प नहीं कर पाती है। इसके साथ ही पलमोनरी हाइपरटेंशन होने से राइट वेन्ट्रीकल को अधिक कार्य करना पड़ता है और उनका प्रसार हो जाता है और अपना कार्य पूर्ण रूप से नहीं कर पाती। इन दोनों के कार्य पूरा न होने से हृदय के पम्प करने की मात्रा में कमी हो जाती है और यह कमी प्रारम्भ में आराम की अवस्था के लिए ठीक हो सकती है परन्तु जीर्ण अवस्था में आराम के समय भी उतना रक्त का बहाव कम हो सकता है कि शरीर की आवश्यकताओं को पूरा न कर सके। वेन्ट्रीकल का आउट पुट कम होने से और रक्त कम होने से शरीर के अन्य तन्तुओं में पूर्ण रक्त न पहुंचने से टीमू एनाक्जिमा हो जाता है।

चिकित्सा—

१. कन्जेस्टिव हार्ट फेल्योर के सभी रोगियों के जीवन को नियमित बनाना आवश्यक है इससे उनका जीवन समय बढ़ सकता है।

२. सभी रोगियों को ६ घंटे का बैड रेस्ट रात में और १ घंटे का दोपहर को भोजन के बाद देना आवश्यक है। भोजन रूखा, बिना नमक का, सुपाच्य होना चाहिए। गैस नहीं बननी चाहिए तथा पेट साफ रहना चाहिए।

३. प्रारम्भ में कम से कम १ सप्ताह का पूर्ण बैड रेस्ट फौरन रोगी को देना चाहिए तथा कई महीने तक भी अवस्था के अनुसार आराम करना लाभकर होगा। रोगी का सिरहाना ६-१२ इञ्च तक की ऊंचाई पर रखना लाभकर है।

४. मरक्लोरान या निमोहाइड्रिन २-४ गोली प्रतिदिन मूत्रलता देकर रोगी के शोथ का हरण करती है।

५. अधस्त्वक् इञ्जेक्शन १३०-२०० मि.ग्रा. मरकेप्टोमेरिन का (१—२ या ३ बार) प्रति सप्ताह लाभकारी है।

६. मरक्यूरियल डाइयूरेटिक, नियोफाइनिल मिलाकर १-२ सी.सी. मांसपेशी में सूचीवेध द्वारा दूसरे दिन देने से बहुत लाभ करता है।

७. क्लोट्राइड और डाईयूरिल की गोलियां (०·५ ग्रेन) १ या २ बार प्रतिदिन देना लाभकर है।

८. नैकलेक्स ५० मि. ग्रा. की गोलियां, एग्रीनाक्स या बीयोनेक्सेल्कस और फ्रोवेम की गोलियां भी प्रयोग की जा सकती हैं।

९. हाईग्रोटोन १००-२०० मि. ग्रा. सप्ताह में २ बार एल्डाक्लोन १०० मि. ग्रा. चार बार प्रतिदिन ५ दिन तक देना श्रेयकर है।

१०. डिजिटलिस ग्रुप की औषधियां भी विशेष लाभकारी है।

११. यदि फुफ्फुस शोथ हो तो मारफीन, एट्रोपीन, डिजिटलिस और एमाइनोफाइलीन का प्रयोग हितकर है।

१२. २५ प्रतिशत ग्लूकोज का इन्ट्रावेनस इञ्जेक्शन आवश्यक है।

१३. आक्सीजन भी साइनोसिस से बचने के लिये देना चाहिए।

१४. यदि मेटाबोलिक रेट बढ़ गया हो तो उसे १५ तक लाने के लिये कार्बोनाजोल देना हितकर है।

१५. यदि थ्राम्बोइम्बोलिक रोगी हो तो एण्टीकोआगूलेण्ट जैसे हिपरिन इत्यादि का प्रयोग करना

चाहिए।

१६ पेरीफेरल सरक्यूलेटरी फेल्योर में कारण की चिकित्सा करनी चाहिए और कन्जेटिव हार्ट फेल्योर के विपरीत सिर का हिस्सा नीचे रखना चाहिए। यदि शाक अधिक है तो पेट के ऊपर वाइन्टर भी लगाना चाहिए। नारएड्रीनलिन का प्रयोग भी लाभ करता है। यदि फ्लूड शरीर में कम है तो प्लाज्मा, रक्त, ग्लूकोज, सलाइन इत्यादि रोगी को देना हितकर है।

पार्श्वशूल (Angina Pectoris)

वार-वार रीट्रोस्टरनल रीजनमें दर्द उठकर हाथों की तरफ वढ़ना विशेषकर परिश्रम के पश्चात्। जिसके सीने के ऊपर दवाव का आभास जो कि आराम करने और नाइट्राइट्स के लेने से ठीक हो जाता है। यह ४० वर्ष के वाद खाते-पीते कम श्रम करने वाले पुरुषों में अधिक होताहै। ९०% कोरोनरी एथेरोमा के कारण होताहै। जिसके फलस्वरूप हार्ट की मांस-पेशियों को पूरा रक्त नहीं मिलता है। रोगी पीला पड़ता जाता है। पसीना अधिक आता है।

चिकित्सा—इसके दौरे के समय १—रोगी को पूर्ण शान्त हो जाना चाहिए।

२—ट्राईनाइट्रिन ($\frac{1}{120}$-$\frac{1}{100}$ ग्रेन) की गोली जवान के नीचे रखने से २ मिनट में लाभ हो जाता है।

३—इसके साथ जीवन को नियमित वनाना आवश्यक है। प्रारम्भिक दौरे के वाद १ मास तक वेडरेस्ट आवश्यक है। भोजन, आराम, शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम को नियमित करना आवश्यक है।

४—यदि व्लड प्रेसर अधिक हो तो लांग एक्टिग वाजो डायलेटर्स लेने चाहिए।

५—सिस्टेमिक वाजोडायलेटर्स—पेन्टा इरीथिटिल टेट्रा नाइट्रेट (पिट्रीट्रेट १० मि. ग्रा.) या इकानाइट्रेट का प्रयोग वहुत अधिक किया जाता है।

६—कोरोनरी वाजोडायलेटर्स—कोलेडिल टैवलेट्स १ या २, २ वार प्रतिदिन फेनोवार्वीटोन के साथ विसकार्डन या वेनेकार्डन २५ मि. ग्रा. ४ वार प्रतिदिन भी दिया जा सकता है परन्तु इससे वमन का भय है।

तीव्र हार्दिक अवरोध (Acute Coronary Insuffic) (iency)

इस दशा में स्टरनम के नीचे, अचानक वहुत जोरों का दर्द उठता है। क्योंकि हृदय की मांसपेशियों को पूरा रक्त(आक्सीजन)नहीं सप्लाई हो पाता है इसका दर्द एन्जाइना पेक्टोरिस से अधिक देर तक रहता है परन्तु कोरोनरी आक्लूजन सेकम देर तक। यह अवस्था अधिक श्रम, हृदय की तीव्रगति, रक्तभार, रक्तस्राव, श्वांसावरोध, एक्यूट हार्ट फेल्योरऔर पल्मोनरी इम्वोलिज्म इत्यादि में होता है। इ. सी. जी. लेने पर टी. वेव चपटी या उल्टी हो सकती है।

चिकित्सा—१—एन्जाइना पेक्टोरिस की भांति इसमें भी ट्राईनाइट्रिन की गोली जवान के नीचे रखना हितकर है।

२—यदि इससे लाभ न हो मारफीन या पेथेडीन का प्रयोग करना चाहिए।

३—रोगी को कम से कम ३ सप्ताह तक चारपाई पर आराम से रखना चाहिए।

४—और उसको एन्टीकोआगुलेन्ट जैसे हिपरिन इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए। ५० मि. ग्रा. हिपरिन अन्तः सिरा सूचीवेध से ४-६ घन्टा पश्चात् ४८ घण्टे तक। इसके वाद ३ सप्ताह तक इससे देर से देते रहना हितकर है।

Myocardial Infaction—कोरोनरी आर्ट्री की शाखाओं में अवरोध हो जाने के फलस्वरूप हृदय की मांस पेशियों को रक्त न मिलने से उनमें एक्यूट नेक्रोसिस हो जाती है जिसको मायोकार्डियल इन्फार्कसन कहते हैं। इसमें भी स्टरनम के नीचे दर्द होता है जैसे ऐन्जीना पेक्टोरिस में होता है परन्तु यह अधिक देर तक रहता है और अधिक घातक होता है। इसमें तुरन्त ही व्लडप्रेसर कम हो जाता है, ज्वर वढ़ जाता है। ल्यूकोसाइट्स भी वढ़ जाते हैं। ई. एस. आर. भी वढ़ जाता है। ई.जी.सी. में भी विशेषता आ जाती है। जैसे क्यू वेव का उदय तथा टी. वेव का उल्टा हो जाना इत्यादि। उपद्रव के रूप में कार्डियक एन्यूरिज्म हो सकता है। ५० वर्ष से ऊपर के पुरुषों में अधिक होता है। यदि आर्ट्री जिसमें व्लाक होता है वह छोटी होती है तो कोलैटेरल सरक्यूलेसन होकर रोगी जल्दी ठीक हो जाता है। अन्यथा शाक की स्थिति भी हो जाती है। साथ ही नाड़ी भी १०० या इस से ऊपर होजाती है। किसी भी एक प्रकार की अनियमितता (एरिदमियां)होसकती है। हृदयध्वनिक्षीण, माइट्रल सिस्टो-

—शेषांश पृष्ठ १८२ पर

कंठ के रोग—निदान एवं चिकित्सा

अग्नि रोहिणी—

यह रोग महान नाशकारी है। कक्ष प्रदेश (बगल) में एक गांठ निकलती है अत्यन्त दारुण, भीतर दाह करने वाली और उठती हुई लपटों वाली अग्नि के सदृश होती है अतः इसको अग्निरोहिणी कहते हैं। इसमें यदि वात की प्रधानता हो तो यह सात दिन में मार देती है, पित्त की अधिकता होने पर दश दिन में मार देती है। यदि कफ की प्रधानता हो तो १५ दिन में मार देती है। तीनों दोषों की अधिकता होने से असाध्य है। यदि चिकित्सा न की जाये तो निश्चित रूपेण असाध्य ही है।

अग्निरोहिणी की शान्ति के लिए दोषानुसार कल्पना करके लेपों का प्रयोग करें। रुधिर निकलवावें एतदर्थ जोंक उत्तम साधन है। विरेचन वमन स्वेदनादि से शरीर का संशोधन करना अतिहितकर है।

स्वानुभूत योग—जब कक्ष देश में गांठ उत्पन्न हो तो तत्काल प्रारम्भिक अवस्था में ही इस लेप को लगाना चाहिए। १ तोला मालकांगनी, रसोन के एक खण्ड को लें, (एक फांक) अफीम २ रत्ती प्रथम रसोन, मालकंगनी को पानी के साथ चटनी जैसी पीसलें फिर अफीम को पानी में घोल कर मिलादें, २ तोला तिल तैल डालकर पकायें। जब लेप करने योग्य हो गाढ़ा गाढ़ा लेप करदें। यह ५ मिनट से अधिक सहन नहीं होगा, यदि सहन करलें तो जितनी देर तक सह सकें, अन्यथा उतार कर गरम पानी से धोकर घृत लगादें। हो सकता है छाले पड़ जायें। इस अवस्था में चिन्तित नहीं होना चाहिए। एक वार के लगाने में ही उसी स्थान पर बैठ जायेगी, भयंकर रूप कदापि धारण न करेगी। आवश्यकता समझें तो छाले मिटने के बाद एक बार पुनः लगादें। उक्त प्रकार से उपचार अवश्य करें।

मल्लसिन्दूर रस—शुद्ध संखिया, रस कपूर, पारद शुद्ध, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक ५-५ तोला। बोतल में भरकर वालुका यन्त्र में पाक करें। मल्लसिन्दूर रस बन जायेगा। दोषानुसार अनुपान की कल्पना कर रोगी को दिन में १-१ रत्ती दो बार दें, तीन बार भी दिया जा सकता है। यह वैद्य की योग्यता पर निर्भर है।

कनकादि लेप—धतूरे का १ फल, आक का १ फल, ३ दाने कुचला के, ६ माशे नमक इन चारों वस्तुओं को चटनी जैसी पीस लें। तिल तैल में पाक करें लेप योग्य होने पर लेप करके एरण्ड का पत्ता रखकर रुवड़ (नामा) सहित बांध दें। सायं को बांधकर प्रातः खोल दें,प्रातः बांध कर सायं को खोल दें। अर्थात दोनों समय नया बना कर बांधना चाहिए। १ संजीवनी वटी अदरख, मधु के साथ खाने को दें, इस प्रकार दिन में ३ बार करना चाहिए।

रोहिणी

रोहिणी नामक रोग का गल रोग निदान में उल्लेख किया गया है। रोहिणी पांच प्रकार से ही होती है। गले में वृद्धि को प्राप्त हुआ वायु अथवा पित्त वृद्धि को प्राप्त हुआ, अथवा कफ वृद्धि को प्राप्त हुआ अथवा तीनों ही दोष वृद्धि को प्राप्त हुए अथवा रुधिर मांस वृद्धि को प्राप्त हुए।
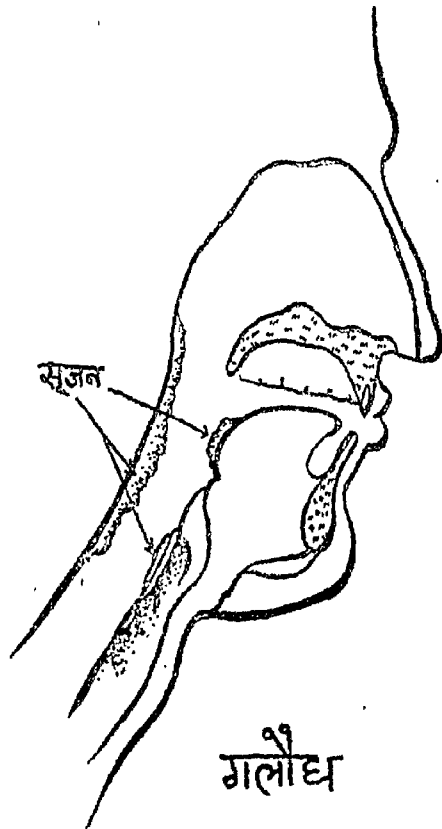
गलौघ

रुधिर को दूषित करके गले को अवरोध करने वाले अंकुरों से प्राणों को नाश करता है।

वातज रोहिणी के लक्षण—जिह्वा के चारों ओर अत्यन्त वेदना वाले और गले को रोकने वाले मांस के अंकुर उत्पन्न होते हैं और उनके साथ वात सम्बन्धी स्तब्धता उत्पन्न होती है।

पित्तज रोहिणी—गले में मांस के अंकुर तत्काल उत्पन्न हो जायें, उनमें तत्काल दाह हो, तत्काल पक जायें और तीव्र ज्वर हो जाये यह पित्त के लक्षण हैं।

कफज के लक्षण—गले की शिराओं को रोक कर गले में मांस के अंकुर उत्पन्न होते हैं। और ये मन्द मन्द पकते हैं, भारी होते हैं। स्थिर होते हैं।

सन्निपातज के लक्षण—गले में उपर्युक्त तीनों दोषों के लक्षण वाले गम्भीर पकने वाले, कठिनता से ठीक होने वाले होते हैं। त्रिदोषोत्पन्न रोहिणी कहते हैं।

फुंसियों से भरी हुई पित्त के लक्षणों वाली रोहिणी को रक्तजा रोहिणी कहते हैं।
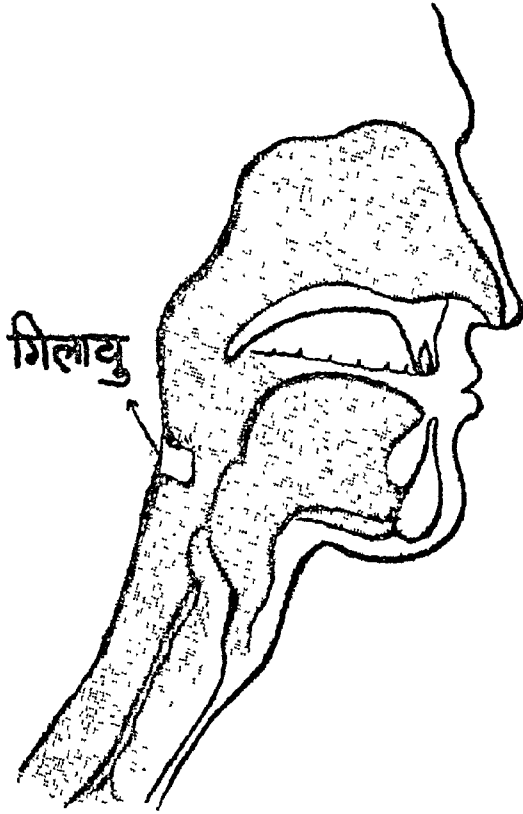
सन्निपातज रोहिणी तत्काल, कफज रोहिणी ३ दिन में, पित्तज पांच दिन में मार देती है। वातज ७ दिन में मार देती है।
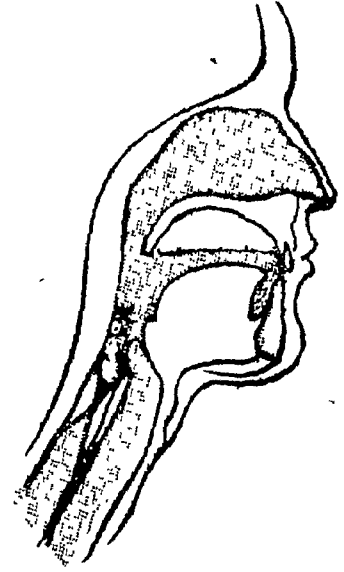
सरधन

साध्य रोहिणी की सामान्य चिकित्सा—रुधिर निकलवाना, वमन, धूम्रपान, गण्डूष, (कुल्ला) नस्यक्रिया। वातज की चिकित्सा—रुधिर निकलवाने के पश्चात-सेंधा नमक आदि लवणों से प्रतिसारण करें और सुहाते २ उष्ण स्नेहों को मुख में धारण कर कुल्ले करें। पित्तज रोहिणी रुधिर निकलवाने के पश्चात-मधु तथा मेंहदी के बीज से उस स्थान पर प्रतिसारण (मलना) करें, मुनक्का तथा फालसे का कवल धारण करें। कफज रोहिणी में घरके धुंए की रज, सोंठ, मिरच और पीपल इनके चूर्ण से प्रतिसारण करें। श्वेत अपराजिता (कोयल बूटी) वायविडङ्ग, जमालगोटा, इनके कल्क से पकाये हुये तैल में सेन्धा नमक डालकर नस्य देवें, इनका ही कवल भी धारण करें। पित्त जन्य को पित्त शामक उपायों से शांत करें।

मुनक्का, कुटकी, व्योष, दारुहल्दी की छाल, त्रिफला, नागरमोथा, पाठा रसौत, मूर्वा, तेजवल, इनको समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर चाटने से गले के रोग नष्ट होते हैं। कुटकी, अतीस, पाठा, दारुहल्दी, नागरमोथा, इन्द्र जौ इन छः द्रव्यों को गोमूत्र में डालकर पीने से गले के रोग नष्ट

होते हैं।

इस रोहिणी रोग में वमनार्थ विण्डाल का चूर्ण रोगी का बलाबल विचार कर देना चापिए। वमन के उपरांत दूध देना आवश्यक है।

कण्ठ शालूक चिकित्सा एवं लक्षण—

गले में कांटे के समान धान के अनी के समान वेदना उत्पन्न करने वाले खरखरे,कठिन बेर की गुठली के समान शस्त्रकाट्य ऐसी जो ग्रन्थि कफ के प्रकोप से होती है वह

कण्ठ शालूक

शस्त्र साध्य है। कण्ठ शालूक रोग में दुष्ट रक्त को निकाल तुण्डिकेरी के समान चिकित्सा करें। रोगी को अल्प परिमाण में स्निग्ध यवान्न का भोजन दें। शस्त्र क्रिया करने के उपरान्त पीपल, अतीस, कुठ, काली मिर्च, वच और सोंठ इनके चूर्ण को शहद में मिलाकर उससे प्रतिसारण (रगड़ें) करें तथा वच, अतीस, पाठ, रास्ना, कुटकी और नील को औटाकर इसका कवल धारण करें। यह रोग विशेषेण श्लैष्मिक प्रधान है अतः दोषानुसार चिकित्सा करना ही श्रेयस्कर है।

अधिजिह्व निदान चिकित्सा

जिह्वा के ऊपर जिह्वा की अग्र भाग के (नोक) सदृश सूजन को अधिजिह्व के नाम से विद्वाव कहते हैं। य यह सूजन पक जावे तो त्याज्य है। रक्त मिश्रित कफ के प्रकोप से यह रोग होता है। तथापि चिकित्सा करना अत्यावश्यक है। इस रोग में कफ को हरने वाली विधि करे और कफनाशक प्रतिसारण भी करे तो कफजन्य अधिजिह्व रोग नष्ट होता है। कड़वे परवल, नीम,

---

पृष्ठ १८० का शेषांश

लिक मरमर भी होता है। श्वांस की गति तीव्र तथा कष्ट के साथ हो जाती है। एस. जी. ओ. टी. ४० यूनिट्स से ८०० यूनिट्स तक हो जाता है।

चिकित्सा—(१) दर्द के लिए—१. वेडरेस्ट। २. ¼ ग्रेन मारफीन त्वचा के नीचे सूचीवेध। ३. यदि वमन हो तो पेथेडिन हाइड्रोक्लोराइड १०० मि. ग्रा. त्वचा के नीचे दिया जा सकता है।

(२) शाक की अवस्था में—१. दर्द दूर करें। २. वेड रेस्ट। ३. नारएड्रीनलिन का इंजेक्शन (जैसे लीवोफेड)। ४. आक्सीजन का वातावरण ५. ५% ग्लूकोज का अन्तः सिरा सूचीवेध। ६. रक्त, प्लाज्मा तथा हाइड्रोकार्टीसोन का ट्रान्सफ्यूजन भी काफी हितकर सिद्ध होता है।

३—कन्जस्टिव हार्ट फेल्योर में १. नमक बन्द। २. डिजाक्सीन, ३. एमाइनोफाइलीन का प्रयोग हितकर है।

४—एरिदमिया के लिए प्रोकेन एमाइड देना चाहिए।

५—एण्टी कोआगूलेन्ट के लिए १. १५० मि. ग्रा. हिपरिन तुरन्त देना चाहिए और हर ५ घण्टे पर ७५ मि. ग्रा. देते रहना चाहिए पहले २ दिनों तक। २. डेन्डीवान की गोलियां मुख के द्वारा देनी चाहिए।

६—आराम १॥ मास तक। काम-काज इसके बाद धीरे-धीरे शुरू करना चाहिए। हर प्रकार की अधिकता से बचना चाहिए।

७—भोजन पहले कुछ दिन फलों का रस तथा चीनी। एक सप्ताह बाद थोड़ा-२ बिना नमक का दलिया, दूध, डबलरोटी इत्यादि। फिर धीरे धीरे भोजन देना चाहिए। ऐसा भोजन जिससे कोलेस्ट्राल लेवेल बढ़ जाय उसको नहीं देना चाहिए। जैसे मीट या चर्बी वाले पदार्थ या डालडा इत्यादि। क्योंकि ये सेचुरेटेड पदार्थ हैं।

जामुन के, आम के और मालती के नवीन पत्ते इन पत्र पल्लवों के क्वाथ के गरारे करें। चमेली के पत्तों के काढ़े में लवण डाल कर गरारे करें। जिह्वा पर लवण मिश्रित चूर्ण से प्रतिसारण कर रक्त निकाल दें। काकोल्यादि

मधुर द्रव्यों से सिद्ध योगों द्वारा प्रतिसारण गण्डूष तथा नस्य को प्रयोग करें। रक्त निर्हरण कर बाद पिप्पल्यादि गण के चूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करें। श्वेत सरसों के क्वाथ में सेंधव नमक मिला कवल धारण करने से कफज जिह्वारोग नष्ट होता है। इस रोग में पटोलपत्र, नीम छाल, बैंगन तथा कुलथी आदि क्षार प्रधान द्रव्यों के यूष का सेवन करना चाहिए।

बलासक निदान एवं चिकित्सा—

गले के रोगप्रायः कफ के प्रकोप से ही होते हैं अतः वृद्धि को प्राप्त हुए कफ एवं वायु से गले में पीड़ा सहित और हृदय के मर्मस्थल में छेदन करने वाली व्यथा को उत्पन्न करने वाली सूजन होती है इसको बलास कहते हैं। इसकी पीड़ा मर्म को छेदन करती है अतः हृदय के मर्म को छेदन करने के कारण वेदना अत्यन्त होती है कष्ट साध्य है। यदि शीघ्रता न की जाये तो मृत्यु का हो जाना आश्चर्य नहीं है।

गले के रोगों में प्रवीण वैद्य रुधिर निकलवाकर और तीव्र नस्य आदि देने से चिकित्सा करें। कुटकी, सोंठ, मिर्च, पीपल, दारुहल्दी, तज, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, पाठा, रसौत, पुरनहार और तेजबल इनका बारीक चूर्ण कर शहद में मिलाकर उपयोग करें तो कफ जन्य समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

वलय रोग लक्षण और चिकित्सा

वलय रोग भी भयानक रोग है। प्रकोप को प्राप्त

वलय अन्न प्रणाली का शोथ

हुआ कफ अन्न की गति को रोक कर गले में लम्बी तथा ऊंची सूजन पैदा करता है इसी को वलय नाम वैद्यों ने दिया है। भावप्रकाशकार का कथन है कि यह रोग किसी प्रकार भी दूर नहीं होता। इसलिये इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। किन्तु मैं ऐसा नहीं मानता। दोषानुपेक्षणी चिकित्सा बलपूर्वक करनी चाहिए सफलता मिलती है।

स्वानुभूत प्रयोग—सामान्य चिकित्सा नस्य वमनादि के उपरांतनिम्नलिखित प्रयोग का अनुभवकरें—अनारका छिलका २ तोला, मुलहठी ६ माशे, पीपल ४ माशा, कवावचीनी (शीतलचीनी) ३ माशा, सेंधा नमक १॥ माशा, अकरकरा ४ माशा, इन सबका वारीक कपड़छन करलें, इस चूर्ण को उस सूजन पर लगावें। लगभग १० मिनट तक खूब मलें बाद काली मिर्च, सोंठ, पीपल का क्वाथ बनाकर गण्डूष धारण करें। परमेश्वर कृपा से रोग को प्रथम दिन ही लाभ होगा। ३ दिन में रोग नष्ट होजायेगा। कफ कारक खा[illegible] पान को त्याग दें। सम्पूर्ण क रोगों में रक्तमोक्षण

तीक्ष्ण नस्य आदि का प्रयोग एवं दालचीनी निम्बत्वक्, रसौत तथा इन्द्रजौ, इनका क्वाथ अथवा मधु हरीतकी क्वाथ पीना चाहिये। कुटकी, अतीस, देवदारू, पाठा, मोथा, इन्द्रजौ इनका क्वाथ करने योग्य द्रव्यों का गोमूत्र द्वारा यथाविधि क्वाथ सिद्ध कर पीने से कण्ठ रोग नष्ट होते हैं।

एकवृन्द निदान एवं चिकित्सा–

कफ और रुधिर के प्रकोप से गले में गोल, नवी हुई दाह और खुजली सहित, कुछेक पकने वाली और तीव्र ज्वर वाली जो सूजन होती है वैद्य इसको एकवृन्द कहते हैं।

एकवृन्द चिकित्सा—एक वृन्द रोग में जोंक आदि द्वारा रक्तस्राव करा प्रतिसारण, शिरो विरेक तथा कवल धारण प्रभृति द्वारा गलगत दोष का शोधन तथा वमन से देह का शोधन करना चाहिए। सेंधव से प्रतिसारण करें और सोंठ, मिर्च, पीपल इनके चूर्ण से प्रतिसारण करें।

वृन्द लक्षण एवं चिकित्सा—पित्त और रुधिर के कुपित होने से अत्यन्त ऊंची, गोल, अतिदाह वाली और तीव्र ज्वर वाली जो सूजन होती है वैद्य इसको वृन्द कहते हैं। इसमें यदि शूल हो तो वात सम्बन्धी जानना चाहिए। एक वृन्द के समान चिकित्सा करें।

शतघ्नी लक्षण एवं चिकित्सा–

वात पित्त तथा कफ से उत्पन्न होने वाली व्यथा, दाह और खुजली, आदि विकारों वाली, कठिन, मांस के अंकुरों से अत्यन्त व्याप्त और कण्ठ को रोकने वाली जो वत्ती उत्पन्न होती है उसको शतघ्नी कहते हैं। यह त्रिदोष के प्रकोप से उत्पन्न होने के कारण शतघ्नी के समान (लोहे के कांटों से ढकी हुई बड़ी भारी शिला) होती है इस कारण इसको शतघ्नी कहते हैं। यह असाध्य है। तथापि वमन विरेचन स्नेह स्वेदन नस्य इत्यादि के प्रयोगों से शोधन करके त्रिदोष नाशक कवल, गण्डूष धारण करके प्रयास अवश्य करें। किन्तु यह रोग असाध्य है किसी भी ग्रन्थ ने चिकित्सा नहीं लिखी, त्याज्य लिखा है। परन्तु किसी रोग को असाध्य कहकर छोड़ना नहीं चाहिए चिकित्सा का प्रयास अवश्य ही करना चाहिए।

गलायु लक्षण निदान एवं चिकित्सा

कफ और रुधिर के प्रकोप से गले में आमले की गुठली के समान, स्थिर, अल्प वेदना वाली और भोजन किया अन्न गले में अटका सा मालूम हो ऐसी ग्रन्थी उत्पन्न हो जाती है। इसी को गलायु कहते हैं।

चिकित्सा—यह शस्त्र साध्य है। इसमें वमन, विरेचन नस्य आदि का प्रयोग करना चाहिए। गण्डूष, कवल, धारण कराने चाहिए। सेंन्धव, तुवरी का प्रतिसारण करना अत्यन्त लाभदायक होता है। कफनाशक द्रव्यों का उपयोग हितकर है।

गल विद्रधि निदान एवं चिकित्सा

गले में हुआ शोथ सम्पूर्ण गले को घेर लेता है और जहां पर सर्व प्रकार की पीड़ा होती है वह गल विद्रधि सब दोषों से होती है। जो गल विद्रधि मर्म स्थान में न हो और पूर्ण रूपेण पक गई हो उसको चीर दें। पूय आदि के साफ हो जाने पर मधु, तैल का गण्डूष धारण करायें।
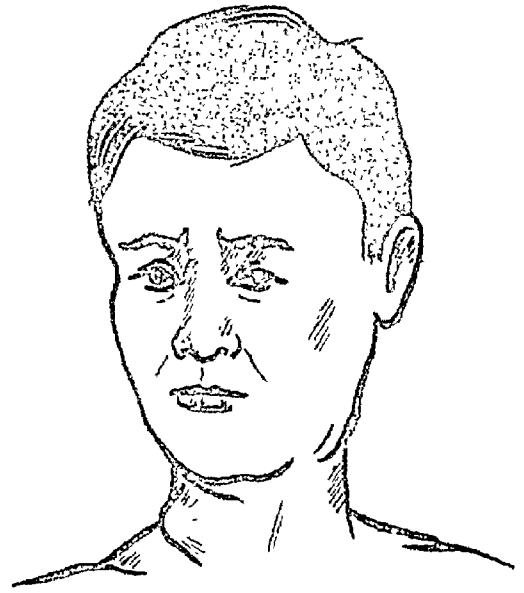
गल विद्रधि

दुग्ध, गन्ने का रस, गोमूत्र, दधि का पानी, खट्टी कांजी इनके कवल को धारण करें।

तैल, घृत का कवल धारण करें दोषों को देखकर। यह त्रिदोषज विद्रधि के समान होती है अतः इसकी चिकित्सा भी उसी प्रकार करनी चाहिए।

गीली एरण्ड की जड़ का कल्क बनाकर तेल तथा घी डालकर गरम गाढ़ा लेप करने से वात की विद्रधि ठीक होती है। जौ, गेहूँ और मूंग इनको घी में पीसकर लेप करने से नहीं पकी हुई विद्रधि क्षण मात्र में लुप्त हो जाती है।

क्षीर काकोली, खस, मुलेठी, लाल चन्दन इनको दूध में पीसकर गाढ़ा लेप करें तो पित्तजन्य विद्रधि नष्ट होती है। यदि क्षीरकाकोली न मिले तो असगन्ध ले लेनी चाहिए। सब प्रकार की विद्रधियों में जोंक लगवानी चाहिए। मृदु विरेचन और लंघन कराना उत्तम है। यदि पित्त के लक्षण दिखाई दें तो स्वेदन नहीं करना चाहिए। वात कफ की विद्रधि में स्वेदन हितकर है। श्वेत पुनर्नवा की जड़ अथवा वरुणा की जड़ इनको जल में क्वाथ बनाकर पीना चाहिए। खैर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम, कुटकी और मुलहठी इन सबको समान भाग लेवें। चार भाग निसोथ की जड़, कड़वे परवल की जड़ ४ भाग लेवें। फिर इन सब द्रव्यों तथा छिलके रहित मसूर की दाल को डालकर क्वाथ बनावें। इसको पीने से विद्रधि नष्ट होती है। सँजने की जड़ को जल में पीसकर वस्त्र में छान लें, फिर उसमें शहद मिलाकर पीना चाहिए।

गलौघ निदान एवं चिकित्सा

कफ और रुधिर के प्रकोप से गले में अन्न तथा जल को रोकने वाली उदान वायु की गति को हरने वाली और तीव्र ज्वर वाली जो बड़ी सूजन उत्पन्न होती है उसको गलौघ कहते हैं। इसकी चिकित्सा भी गलायु के तुल्य समझनी चाहिये।

स्वरघ्न निदान एवं चिकित्सा

वायु के मार्ग कफ से दुष्ट होकर अन्धकार दीखे बार-बार हांफनी आवे, गला सूख जाए, अन्नादि निगलने में असमर्थ हो और स्वर बिगड़ जाए। इसको स्वरघ्न कहते हैं। यह वायु के प्रकोप से होता है।

इसमें तीव्र नस्य का प्रयोग करें। दारुहल्दी, तज, नीम, रसौत और इन्द्र जौ इनका क्वाथ देने से अथवा हरड़ के क्वाथ में मधु डालकर पीने से गले के रोग नष्ट होते हैं। खदिरादि वटी का प्रयोग अति हितकारी है।

खदिरादि वटी—खदिरसार(कत्था) १ तुला (१०० पल), अरिमेद (विट्खदिर) की २ तुला (२०० पल) लेकर इनको धोकर कूट लेना चाहिए। फिर इसको ४ द्रोण जल में पकाना चाहिए। जब १ द्रोण शेष रह जाये तब इस कषाय को छानकर फिर धीरे-धीरे पकाना चाहिए। जब यह रस गाढ़ा हो जाये तब इसमें—चन्दन, पद्माख, खस, मजीठ, धाय, मौथा, पुण्डरीक, मुलहठी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, केशर, लाख, रसौत, जटामांसी, त्रिफला, लोध, सुगन्धवाला, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, इलायची, लज्जावन्ती, कायफल, वालवच, जवासा, अगर, पतङ्ग, गेरू, सुरमा का चूर्ण प्रत्येक १ तोला मात्रा में मिला देना चाहिए। इन गोलियों को मुख में धारण करें। इससे स्वर ठीक होता है।

दशमूल का उष्णक्वाथ गल रोगों में अत्यन्त हितकारी है, मूली और कुलथी का यूष बनाकर पीना हितकर है।

यवक्षारादि गुटी—यवक्षार, तेजवल, पाढ़, रसौत, दारुहल्दी, पिप्पली, इनके चूर्णों को एकत्र मिश्रितकर मधु के साथ मिलाकर इसकी गुटिका बनालें। इन गुटिकाओं को धारण करने से मुख के सम्पूर्ण गल रोग नष्ट होते हैं।

क्षार गुटिका—पीपल, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, तालीसपत्र, छोटी इलायची, कालीमिर्च, दालचीनी, पलाशक्षार, यवक्षार, इन सबको समान भाग ले चूर्ण बनालें द्विगुण गुड़ से पाक कर बेर के परिमाण की गुटिकायें बनावे। तदनन्तर इन गुटिकाओं को सात दिन मुष्कक्षार में रक्खें। पश्चात् निकाल सम्पूर्ण कण्ठ रोगों में धारण करें।

कुटकी, अतीस, देवदारू, पाठा, नागरमोथा, इन्द्र जौ इन क्वाथ द्रव्यों का गोमूत्र द्वारा यथाविधि क्वाथ सिद्धकर पीने से कण्ठ में हुआ स्वरघ्न रोग नष्ट होता है।

मांसतान लक्षण एवं चिकित्सा

गले में बहुत कष्ट देने वाला शोथ फैलता हुआ क्रम से(अर्थात् शीघ्रता) श्वासोच्छ्वास को रोक कर कण्ठावरोध करता है। वह मांसतान बढ़ा हुआ प्राणों को नष्ट करता है। तीनों दोषों से होता है।

इस रोग में नस्य का प्रयोग एवं वमन का प्रयोग अवश्य करें बलाबल विचार कर तीक्ष्ण नस्य और वमन का प्रयोग करें। सान्निपातिक होने से तीनों दोषों को नष्ट करने वाले रसों के द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। यह रोग प्रायः बच्चों को होता है। (डिफ्थेरिया) इसी को कहते हैं।

विदारी लक्षण एवं चिकित्सा

पित्त के प्रकोप से गले में दाह, तीव्र पीड़ा, अत्यन्त लाल और दुर्गन्धित तथा मांस को फाड़ने वाली जो सूजन उत्पन्न होती है उसको विदारी कहते हैं। मनुष्य जिस करवट से अधिक सोता है उसी पार्श्व में यह रोग उत्पन्न होता है। नस्य वमन का प्रयोग करें। पित्त शामक उपायों से शांत करें। पीपल की छाल, जामुन की छाल, गूलर की छाल, इनके कल्क को घृत मिला कर लेप करें। वड़, आम, कठूमर की छाल, लाल चन्दन इनके कल्क में घृत मिलाकर लेप करें। यदि इन योगों को बकरी के दुग्ध के साथ में पीसा जाये तो अत्युत्तम होगा। गोदुग्ध धारोष्ण पीवें, अभाव में पाक करके घृत मिलाकर पीवें। बकरी दुग्ध भी लाभकारी है।

स्वरभंग निदान एवं चिकित्सा

स्वरभंग को ही स्वरभेद भी कहा गया है। इसका वर्णन निम्न प्रकार से है—

"अत्युच्च भाषण विषाध्ययनातिगीत;
शीतादिभिः प्रकुपिताः पवनादयस्तु।
श्रोतः सुते स्वरवहेषुगताः प्रतिष्ठां हन्युः ;
स्वरं भवति चापिहि षड्विधः सः ॥

अर्थात् वायु के कारण उत्पन्न स्वर भेद में रोगी की आंख, मूत्र और मल काले हो जाते हैं। इसका स्वर फटा हुआ, धीमा गद्गद होता है। पित्तजनित स्वर भेद में रोगी को मुख, आंख, मल, मूत्र पीले होते हैं। रोगी दाह-युक्त कण्ठ से बोलता है। रोगी को बोलते समय कण्ठ में जलन होती है। कफ के कारण कठिनाई से बोलता है, निरन्तर कफ से गला रुका रहता है। रोगी दिन में धीमे और धीरे बोलता है। सन्निपात जन्य स्वर भेद में सब दोषों के लक्षण रहते हैं। वाणी अस्पष्ट रहती है, इसको असाध्य कहते हैं। क्षयजन्य स्वरभेद में वाणी में धुवां सा प्रतीत होता है, वाणी निरन्तर क्षीण होती जाती है। वाणी बन्द हो जाने पर यह असाध्य होता है। मेद के क्षय से उत्पन्न स्वर भेद में स्वर गले के अन्दर ही रहता है, बाहर नहीं आता, वाणी अस्पष्ट रहती है। देर में बोलता है, गला, ओष्ठ, तालु मेद से लिप्त रहता है। क्षीण, वृद्ध, कृश व्यक्ति में चिरकालीन स्वरभेद, सहज स्वरभेद, मेदस्विपुरुष का सन्निपातजन्य स्वर भेद ठीक नहीं होते। स्वर भेद रोगियों को स्निग्ध करके यथा-विधि से वमन विरेचन वस्ति द्वारा दोषों को बाहर करके, नस्य, अवपीडन, मुखधावन, धूम, लेह नाना प्रकार के कवलाग्रह बरते। श्वास, कास विधि में जो विधि प्रारम्भ में कही है उसे सम्पूर्ण रूप में स्वरभेद के अन्दर बरते। वातजन्य स्वर-भेद में भोजन के ऊपर घृत पीवें। कासमर्द, कटेरी, भांगरे के स्वरस, अर्तिगल (ककुम) के क्वाथ में सिद्ध किया घृत पीने से वायुजन्य स्वरभेद को नष्ट करता है।

तीन घृत—(१) यवक्षार और अजवायन से (२) चित्रक और आंवला (३) देवदारु और चित्रक इससे सिद्ध किया बकरी का घृत मधु के साथ पीवें। गुड़ से बनाया भात घी के साथ खाकर गरम पानी को अनुपान रूप में पीयें। पित्तज स्वर भेद में बिना आलस्य के दूध अनुपान से घृत पीयें। काकोली गण के चूर्ण को मधु और घृत में अच्छी प्रकार मिलाकर चाटें। शतावरी का चूर्ण या बला के चूर्ण को प्रचुर मधुर और घृत के साथ खायें। द्रव्यों को मधु और तेल से चाटें। अथवा भोजन खाकर कटु द्रव्य खायें। सन्निपातज, क्षयजन्य, स्वरभेद में असाध्य कहकर चिकित्सा करें। काकोल्यादि मधुरगण से सिद्ध किए दूध को शर्करा और मधु में मिलाकर पीवें। जिसका स्वर बोलते हुए बैठ गया हो वह इस दूध को पीवें।

यूनानी

गल शुण्डिका—कौवा गिरना—इस हालत को इस्त-खां उल्लहात कहा गया है। इस हालत में कौवा (Uvula) ढीला हो जाता है जिससे लम्बा हो जाता है और गले में ऐसी अनुभूति होती है कि कुछ पदार्थ बाहर से जाकर अटका हुआ है। इससे क्षोभ उत्पन्न होता है। क्षोभ से खांसी पैदा होती है।

ऐसी हालत में रोगी को यही सलाह दी जाती है कि

क्षोभ कारक पदार्थों का गले से सम्पर्क न होने दें। दोष बढ़े हों तो शोधन और पाचन करावें। छींक उत्पन्न करें और कौवा की जड़ में संग्राही दवाइयों को लगावें, कि कौवा अपने स्थान पर बैठ जाए।

पोस्त, अनार, माजू, गुलनार फारसी, बबूल की छाल प्रत्येक १ तोला लें, १ सेर पानी में उबालें। इस छने हुए पानी से कुल्ली करावें।

विलायती मेंहदी, गुलनार, गुलाब के फूल प्रत्येक ६ माशा के क्वाथ में ४ तोला शर्बत शहतूत मिलाकर उससे कुल्ली करानी चाहिए।

गुलाब के फूल, हरा माजू, सुपारी, गुलनार और सुमाक प्रत्येक १ माशा को महीन पीसकर मलमल के कपड़े में छानकर छोटे चम्मच में रखकर उङ्गली से या रुई के फोहे से लगावें। भुनी हुई फिटकरी ३ माशा को ६ माशा मधु में मिला कर लगावें। माजू का लेप करावें। इस अवस्था में खट्टे, तेल से बने, बादी और गरिष्ठ भोजन का परहेज करना चाहिए।

गलशुण्डी शोथ—कौवे में सूजन को वर्मुल्लहात कहते हैं। इस हालत में कौवा सूजा हुआ दिखाई पड़ता है।

इसके लिए निम्न योग अच्छा लाभ करते हैं—

(१) धनियां, मसूर (साबुत) प्रत्येक १ तोला, कासनी और काहू के बीज प्रत्येक ६ माशा, कासनी के पत्ते, हरे मकोय के पत्ते और हरे शहतूत के पत्ते प्रत्येक ५ तोला, सबको १ सेर पानी में उबाल-छान कर छने हुए पानी में शर्बत उन्नाव ५ तोला मिलाकर कुल्ली करावें।

(२) गुलाब के फूल, गुलनार, लाल चन्दन और कपूर सबको बराबर २ लेकर सबको महीन पीस कर गलशुण्डी पर लगावें।

(३) गुलनार, अकाकिया, पोस्ते का दाना और खुरासानी अजवायन बराबर-बराबर लेकर उसका काढ़ा बना कर कुल्ली करावें।

गलग्रन्थी शोथ (Tonsillitis)—यूनानी के शेख ने इस रोग को अलग नहीं माना। इसकी चिकित्सा भी गलशुन्डी शोथ के साथ बताई है।

इसमें हालत के मुताबिक इलाज करना पड़ता है। अगर कब्ज हो तो कब्ज दूर करें। स्थानिक प्रयोग में—

(१) गुलबनफशा को घी में भून कर गले पर बाहर बंधवावें।

(२) उड़द की कच्ची-पकी रोटी पर गुलरोगन लगा कर गले पर बाहर की ओर बंधवावें।

(३) १ तोला गुलबनफशा पानी में पका कर पिलावें।

अगर इन उपायों से लाभ न हो तो देखें कि किस-दोष से रोग उत्पन्न हुआ है।

अगर रक्त की खराबी से हो तो—

ठण्डाई—अर्क शाहतरा ६ तोला और अर्क मुरक्कब फसाद खून ६ तोला में ३ माशा बिहदाने का लुआब और ५ दाना उन्नाव तथा ३ माशे छिले हुए काहू के बीज का सीरा निकालकर १२ तोला शर्बत तूत स्याह मिलाकर पिलावें। साथ ही पाव भर गाय के दूध में २ तोला अमलतास का गूदा उबालकर उससे कुल्ली करावें।

इससे लाभ न हो तो जोंक (गले पर) लगाकर खून निकालना चाहिए।

यदि पित्त की खराबी से रोग हो तो—अर्क नीलोफर आधा पाव में ३ माशा बिहीदाना का लुआब और ३-३ माशा खीरा ककड़ी के बीज का तथा काले कुलफे के बीज का सीरा निकालकर २ तोला शर्बत आलू मिलाकर पिलाने से तथा आधा पाव हरे धनिये के रस में ६ माशा पीला रसौत मिलाकर कुल्ली कराने से लाभ होता है।

अगर कफ के कारण से रोग उत्पन्न हुआ हो तो—अनीसून, सौंफ, मस्तङ्गी, बालछड़ प्रत्येक ५ माशा लेकर रात में गरम पानी में भिगोदें। प्रातःमल छानकर ४ तोला गुलकन्द मिलाकर पिलावें। ७ माशा जुवारिश जालीनूस खिलाकर ऊपर से ६-६ तोला अर्क सौंफ और अर्क पान २ तोला शर्बत तूत मिलाकर पिलावें। अन्जीर विलायती ७ दाना, मूली के बीज ७ माशा उबाल छानकर कुल्ली करावें।

सौदावी विकृति में उन्नाव ७ दाना, गुलबनफशा ७ माशा, छिली हुई मुलहठी और गावजबान प्रत्येक ५ माशा सबको पानी में उबाल छानकर २ तोला मिश्री मिलाकर पिला दें। सूजन हटाने के लिए—अलसी, धनियां,

सूखा मकोय और पोस्त की डोड़ी प्रत्येक ५ माशा सबको पानी में पका छानकर ३ माशा पीला रसौत मिलाकर उससे कुल्ली करावें।

दर्दे गुलू—गले का दर्द (Sore throat) को कहा जाता है। कण्ठ में शोथ होना (Pharyngitis) इसी तरह की अवस्था है।

इस अवस्था में निम्न योग काम में लिये जाते हैं—

१. जदवार ३ माशा, रसौत ३ माशा, हरे मकोय के रस में पीसकर कंठ के ऊपर लेप करें।

२. गुल बनफ़शा २ तोला गाय के घी में भूनकर रात में गले पर बांधें।

३. **ठण्डाई**—अर्क मकोय ६ तोला, अर्क गावजबान ६ तोला, ३ माशा बिहदाना का लुआब और ७ दाने उन्नाब और ५ माशे मीठे कद्दू के बीज के मग्ज का शीरा निकालकर २ तोला शर्बत तूत स्याह मिलाकर पिलावें।

कुर्ष खास—कतीरा, निशास्ता, बबूल का गोंद, सत-मुलैठी, खीरा ककड़ी के बीज का मग्ज प्रत्येक १ तोला, सत पोदीना (मेंथोल) २ माशा मिलाकर छोटी-छोटी टिकियां बनावें। इनको मुख में रखकर चूसने से लाभ होता है।

एलोपैथिक

एडीनायड़ (Adenoids)—नेजोफैरिंग्स की लिम्फ्वायड टीसूज जिसे फैरिन्जियल टांसिल भी कहते हैं। बचपन में बढ़ी हुई होती हैं लेकिन युवावस्था में वह धीरे-धीरे सिकुड़ती जाती हैं और अन्त में समाप्त हो जाती हैं। यदि यह बहुत अधिक बढ़ी होती हैं, अधिक समय तक रहती हैं और पकी हुई होती हैं तो इन्हें 'एडिन्वायड्स' की संज्ञा दी जाती है।

रोगोत्पत्ति के कारण—सीलन युक्त वातावरण में तथा बार-बार प्रतिश्याय के होने के फलस्वरूप इनको फूला ही रहना पड़ता है। अधिकांशतः इनके साथ टांसिल्स भी पके पाए जाते हैं। यह लिम्फ्वायड टीसू का टुकड़ा ऊपर से नीचे की तरफ बढ़ता है जिसमें बहुत ज्यादा झुर्रियां बनी हुई होती हैं जिसमें 'सैप्टिक' स्राव इकठ्ठा होता है और सड़ता रहता है जिसके फलस्वरूप अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

१. निदानीय अवस्था—नासिका अवरोध-इसके कारण वायु के अन्दर जाने में कठिनाई होती है। बच्चा मुंह से सांस लेता है तथा रात को खुर्राटे मारता है। यदि वह दूध पीता है तो बहुत ही कठिनाई से दूध पी पाता है जिसके फलस्वरूप उसको पूरी ताकत नहीं मिल पाती। यदि वह बड़ा है तो भोजन को जल्दी से निगल जाता है जिससे उसके हजम होने की शक्ति क्षीण हो जाती है और भोजन का लाभ नहीं मिल पाता है। आगे चलकर नाक दब जाती है मुंह का तलवा ऊंचा हो जाता है और नीचे का जबड़ा लम्बा और पतला हो जाता है (वी शेप्ड)।

ऊपर के इन्साइजर्स बाहर की तरफ बढ़ते हैं जिसको ऊपर का ओष्ठ नहीं ढक पाता तथा वे काफी बढ़े होते हैं, वक्ष भी लम्बी और पतली होती है (एलार चेस्ट)। कभी-कभी रिकेट्स भी होता है। हड्डियां मुलायम हो जाती हैं। पीजन चेस्ट, कनेल चेण्ट और हरीसन सकलस की अवस्था पैदा हो सकती है।

२. रिकरेन्ट इन्फेक्शन—इसके फलस्वरूप बार-बार प्रतिश्याय, कास और टांसिल्स बढ़ जाते हैं। और यह इन्फेक्शन कान की तरफ बढ़कर कर्णस्राव गर्दन में सर्वाइकल ग्रन्थि का बढ़ना, आंखों में आंखों की लालिमा, पेट में भूख का कम लगना, पोषक तत्व का अभाव, लम्बाई कम होना तथा उत्तरोत्तर स्वास्थ्य ह्रास उत्पन्न करता है। इसके साथ ही दांतों में केरीज रोग भी हो सकता है।

३. रेफलेक्टस इफेक्सन—आक्सीजन की कमी, मस्तिष्क में एकाग्रता का अभाव, पढ़ाई में मन न लगना, लैरिंगस-मस-स्ट्रीडुलस, दमा, रात का कराहना तथा रात में पेशाब का हो जाना इत्यादि।

निदान—बच्चे का मुख खुला, नाक पिचकी हुई, रीढ़ की हड्डियां झुकी हुई, बड़े-बड़े ऊपर के इन्साइजर्स दांत, इसका इतिहास पोस्टिरियर रिनोस्कोपी और डिजिटल परीक्षा द्वारा इसका पक्का निदान हो जाता है।

चिकित्सा—प्रारम्भिक अवस्था में नार्मल सलाइन से नासिका धोने के साथ-साथ सुपाच्य, पुष्ट भोजन जिससे स्वास्थ्य अच्छा हो सके तथा विटामिन ए व डी का प्रयोग काफी लाभकर है। परन्तु जीर्ण अवस्था में प्रोट-

पेण्ट जैसे—रिसोर्सिन ३० ग्रेन, फीनाल ४ ग्रेन और स्प्रीट आफ पिपरमेंट १५ बूंद १ औंस ग्लिसरीन में या मैंडल्स पिगमेंट(आयोडीन) ६ ग्रेन, पोटास आयोडायड १२ ग्रेन, डिस्टिल्ड वाटर १२ बूंद, अल्कोहाल (६०%) १८ बूंद, आयल आफ मेन्थापिप ३ बूंद १ औंस ग्लिसरीन में लगाना हितकर है। रुग्णावस्था में निम्न मिक्सचर दिन में ३ बार देना बहुत ही लाभकर है।

पोटेशियम ऐसीटेट १५ ग्रेन, एमोनियम क्लोराइड १० ग्रेन, टिंचर इपीकाक तथा सिल प्रत्येक १० बूंद, सीरप टोलू ६० बूंद, क्लोरोफार्म वाटर १ औंस लें। इसके अतिरिक्त लिम्फायड टीसू को कभी-कभी काटराइज (बिजली से जलाना) भी पड़ता है।

स्थान परिवर्तन से भी इसमें काफी लाभ होता है। यदि बार-बार इसका दौरा होता है तो उस अवस्था में शल्य चिकित्सक द्वारा एडिन्वायड्स तथा टांसिल्स दोनों निकलवा देना बहुत ही हितकर है।

डिफ्थीरिया (Diphtheria)—

यह एक विशेष प्रकार का संक्रामक रोग है जो कि श्वास संस्थान के ऊपरी भाग में होता है। इस रोग में म्यूकस-मेम्ब्रेन के ऊपर एक नेक्रोटिक फाल्स मेम्ब्रेन बन जाती है जो कि बढ़ती जाती है और सूक्ष्म जीवाणु जो इन्फेक्शन की जगह पर इक्सोटाक्सिन छोड़ते हैं उससे शरीर के अन्दर बहुत कुछ अनियमितता उत्पन्न कर देते हैं।

यह रोग अधिकतर छोटे बच्चों में होता है। यह कौर्नवैक्टेरियम डिफ्थेरी या क्लेब्स लोफलर बैंसीलस के गले में पहुंचकर इन्फेक्सन पैदा करने से होता है। यह इन्फेक्शन (इन जीवाणुओं के सुषुप्त अवस्था में) जिनके गले में होते हैं उनके द्वारा चुम्बन करने, खांसने, छींकने अथवा उनका जूठा खाने-पीने, कपड़े अथवा खिलौने इत्यादि के प्रयोग से होता है। बीमारी फलाने के कारण कई प्रकार के जीवाणु माने गये हैं। यह इन्फेक्शन के २ से ४ दिनों के बाद से अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर देते हैं। उष्ण वातावरण के नगरों में जाड़े तथा बसन्त के महीनों में यह रोग विशेष रूप से होता है। गले के प्रतिश्याय और कमजोरी तथा इन्फ्लूएन्जा, काली खांसी या मसूरिका के बाद इस रोग के होने की सम्भावना अधिक होती है। एक बार इस रोग के हो जाने के पश्चात प्रतिक्षमता बढ़ जाती है दूसरी बार यह रोग नहीं होता है।

जहां पर म्युकस मेम्ब्रेन कटी हुई होती है वहीं पर ये जीवाणु अपना अड्डा बना लेते हैं। इन्फेक्शन दो प्रकार से अपना प्रभाव डालता है। एक तो वहां के म्यूकस मेम्ब्रेन के ऊपरी इपीथीलियम की कीटाणुओं में नेक्रोसिस, फाइब्रिन का इकठ्ठा होना, ल्यूकोसाइट्स तथा रक्त का मेल होकर यह रोग होता है जिसमें ये सब मिलकर एक विशेष प्रकार की मेम्ब्रेन (फाल्स) बनाते हैं जो कि बहुत जोर से चिपकी रहती है। यह अधिकतर चिकनी और भूरी सफेद होती है। कभी कभी हरापन या काला रंग लिए होती है। यह सब ऊपर ही उसी मेम्ब्रेन में होता है। साधारणतयाः यह टांसिल्स पिलर्स आफ फासेज और युवुला, साफ्ट पैलेट और फैरिक्स में होती है। इसके बाद लैरिंग्स, ट्रैकिया और श्वास नलिकाओं में भी हो सकती है। बहुत कम अवस्थाओं में यह जवान मुंह के म्युकस मेम्ब्रेन, नेसोफैरिंक्स, इपीग्लाटिस, एसाफैगस तथा घाव, नेत्र या जननेन्द्रिय में भी हो सकती है।

दूसरे डिफ्थीरिया बैसीलाई के इक्सोटाक्सिन्स रक्त में पहुंचकर ज्वर, हृदय के रोग, मानस तथा वृक्क रोग उत्पन्न करते हैं। इसके साथ ही कभी-कभी दूसरे जीवाणु भी जैसे स्ट्रैप्टो कोक्काई, स्टैफिलोकोक्काई इत्यदि भी इन्फेक्शन पैदा करते हैं और बुलनेक तथा ब्रांको न्यूमोनियां जैसी बीमारियां पैदा कर सकते हैं। चिकित्सा की दृष्टि से ये निम्न प्रकार की मानी जा सकती हैं जैसे फासियल, लैरिंजियल, नेजल तथा एटिपिकल जिसमें कंजंक्टाइवा, वल्वा, प्रेप्यूस, वजाइना, अम्ब्राइकस तथा किसी घाव का ऊपरी सतह सम्बन्वित हो सकता है।

(अ) फासियल डिफ्थीरिया—यह सबसे अधिक होती है। गले में खरास, सुस्ती भोजन में अरुचि, कभी-कभी भोजन निगलने में कठिनाई से यह प्रारम्भ होती है। ज्वर १००-१०२ डिग्री फैरनहाइट, कास के साथ में बिना कफ के तथा बहुत अधिक मुंह में देखने से फाल्स मेम्ब्रेन दिखाई देती है विशेषकर टांसिल्स पर परन्तु कभी-कभी फासेस के पिलर्स, युवुला या पिछली फैरिन्जियल

की दीवाल पर भी। प्रथम दिन नहीं भी होसकती है परन्तु दूसरे तीसरे दिन यह अधिक साफ दिखाई देती है। इसके किनारे स्पष्ट, उभरे हुए तथा जोर से चिपके हुए होते हैं। यह पहले विना रक्त स्राव हुए अलग की जा सकती है परन्तु बाद में रक्तस्राव अधिक होता है। यह मेम्ब्रेन बाद में नेक्रोटिक होकर श्वास में बदबू उत्पन्न कर देती है। एक प्रकार की निराशा, हृदय गति वृद्धि तथा अल्ब्यूमिन अधिक मात्रा में मूत्र में पाया जाता है। बच्चा पसीने से तर, बेचैन तथा रात में अनिन्द्रा से परेशान रहता है। गले में दर्द के कारण भोजन नहीं करने की इच्छा होती है।

रक्त परीक्षा—कम घातक अवस्था में पालीमार्फोन्यूक्लियर ल्यूकोसाइटोसिस होती है परन्तु जब टाक्सीमिया अधिक हो न्यूकोसाइटिसिस न होकर माइलोसाइट्स आजाते हैं। प्लाज्मा घट जाता है। रक्त कण की संख्या बढ़ जाती है। रोग कम या अधिक प्रभावशाली भी हो सकता है। यदि यह अधिक प्रभावशाली है तो सेप्टिक या हेमोरेजिक लक्षण युक्त हो सकती है जो बहुत ही चिन्ता की बात है और इसका अन्त बुरा हो सकता है। सेप्टिक डिफ्थीरिया में मेम्ब्रेन बिना रंग की होती है। पल्पी, इन्फ्लामेटरीइडिमा, सेलूलाइटिस, अथवा ग्रैंग्रीन तक की अवस्था पाई जाती है। हेमोरेजिक डिफ्थीरिया में फाल्स मिम्ब्रेन के किनारों पूरी ही मेम्ब्रेन से रक्तस्राव होता है। इसमें साथ ही कंजंक्टाइवा में भी रक्त पहुँच सकता है या रक्त वमन भी हो सकता है। त्वचा भी पिनप्वाइन्ट रक्तस्राव जन्य हो सकती है या कुछ कट पिट सकती है। साध्य रोगियों में दवा करने से मेम्ब्रेन धीरे धीरे टूट जाती है गला धीरे-धीरे साफ हो जाता है और रोगी धीरे धीरे ठीक होता जाता है जोकि हार्टफेल्योर तथा मस्क्युलर परलिसिस के दूसरे सप्ताह तक सम्भावना बनी रहती है। परन्तु असाध्य रोगियों में।

(१) ज्वर बढ़ता जाता है, टाक्सीमियां भी बढ़ती है और रक्त का परिभ्रमण कम हो जाता है। बच्चे की नाड़ी क्षीण, अनियमित तथा रक्त भार कम हो जाता है। बेचैनी बढ़ जाती है। श्वास जल्दी तथा कम गहराई की होती है।

(२) मेम्ब्रेन नीचे लैरिंग्स या उससे भी नीचे आकर वायु का अन्दर जाना रोक सकती है। और इन्टर कास्टल स्पेसेज अन्दर को खिचती है। प्रत्येक श्वास के अन्दर जाते समय तथा नीलिमा की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

(३) सेकेन्ड्री इन्फेक्सन के द्वारा स्रावकारी टांसिलाइटिस, गर्दन की सेलूलाइटिस या ब्रांकोन्यूमोनियां की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

(ब) लैरिंजियल डिफ्थीरिया—यह पहले के बढ़ाव के कारण अधिकतर होता है परन्तु स्वच्छन्द रूप में भी पाया जाता सकता है। इसमें हल्की खांसी, आवाज का भारीपन और श्वास लेने में कठिनाई (श्वास मस्तिष्क के संकोच के कारण) बेचैनी, नीलिमा तथा श्वासावरोध की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। यह १-४ वर्ष की अवस्था वाले बच्चों में अधिक पाया जाता है और घातक अवस्था है। ठीक उपचार न होने पर १-२ दिनों में मृत्यु हो सकती है।

(स) नेजल डिफ्थीरिया—यह नजल या नेजोफैरेंजियल तथा प्रारम्भिक या सेकेन्ड्री इन्फेक्सन से हो सकता है। फाल्स मेम्ब्रेन सेप्टम या पास्टीरियर लेरिंग्स में हो सकती है और उसका कुछ अंश सामने से भी दिखाई पड़ सकता है। नाक में वायु घुसने में अवरोध हो सकता है। नासिका स्राव पतला या गाढ़ा हो सकता है।

(द) एटिपिकल वराइटीज—सेप्टिक या हैमरेजिक टाइप के अतिरिक्त कंजंक्टाइवा, त्वचाव्रण, कर्ण, नाभी तथा वल्वा, वजाइना ना प्रीप्यूस पर भी यह फाल्स मेम्ब्रेन आ सकती है।

उपद्रव—इसके कारण निम्न अवयवों के विकार उत्पन्न हो सकते हैं—

१—हृद जन्य २—मस्तिष्क जन्य ३—श्वास जन्य ४—सेप्टिक प्रासेस ५—तथा रिलैप्स

निदान—रोगी बालक होते हैं जिनको कण्ठ शोथ, ज्वर पसीना, थ्रोट स्वांव के जीवाणु परीक्षण द्वारा किया जा सकता है। यह स्वाव मेम्ब्रेन के किनारों से लिया जाता है। डिफ्थीरिया वैसीलाई तथा डिफ्थेरायड जीवाणु की भिन्नता को समझना आवश्यक है। एक बच्चा जिसे प्रतिश्याय, हल्की आवाज, कास और भोजन नली में अवरोध हो उसके गले को सावधानी से देखना चाहिए। और अन्य रोगों से इसकी भिन्नता समझनी चाहिए।

चिकित्सा—[रोकथाम] रोग से ठीक होने के बाद रोगी को कम से कम ४ सप्ताह तक अलग रखना चाहिए अथवा ३ बार थ्रोट स्वाव कल्चर निगेटिव होने तक ऐसा होना चाहिए। ६ मास के नीचे के बच्चों में इसके लिए इम्यूनिटी होती है। इसके ऊपर ८ वर्ष तक के बच्चों में होने की सम्भावना अधिक होती है। यदि ऐसे केस से किसी प्रकार का लगाव हो तो उसे डिफ्थीरिया टाक्सायड से इम्यूनाइज करना चाहिए। यों तो सभी बच्चों को इम्यूनाइज करना अच्छा है। परन्तु "सिक टेस्ट" पाजिटिव वालों को अवश्य ही इम्यूनाइज कर देना चाहिए। इसमें ०.२ सी. सी. टेस्ट टाक्सिन को त्वचा में सूचीवेध करने पर १-२ सेन्टी मीटर का ह्वील २४-२६ घण्टे में हो जाय तो उसे सिक टेस्ट पाजिटिव समझना चाहिए। ए. पी. टी. एलम प्रेसीपीटेड टाक्साइड का धीरे-धीरे शोषण होता है और बच्चों में अधिक रीएक्सन भी नहीं होता है। और इम्यूनिटी भी अधिक होती है जबकि बड़ों में यह अधिक रीएक्सन उत्पन्न करता है। [टी. ए. एफ.] टाक्सायड एन्टीटाक्सिन फ्लाक्यूल्स से कम रीएक्सन होता है तथा यह बड़ों और बड़े बच्चों दोनों को सह्य है। परन्तु प्यूरीफाइड टाक्साइड एल्यूमूनियम फास्फेट [पी० टी० ए० पी०] बच्चों और बड़ों दोनों को समान रूप से सह्य है। तुरन्त लाभ के लिए ८००० यूनिट्स ए. पी. टी. या टी. ए. एफ. देना चाहिए। ट्रीपल एन्टीजन (एच. परटूसिस २०,००० मिलियन, प्यूरीफायड डिफ्थीरिया टाक्सायड २५ एल.एम. और टिटनस टाक्सायड ०.३ एम. एल. प्रत्येक सी. सी. में) १ सी. सी. १ मास के अन्तर पर ३ मात्रा त्वचा के नीचे तक देना चाहिए। १ मात्रा (१ सी. सी. की) २ या ३ वर्ष और फिर १ मात्रा ५ वर्ष की अवस्था में देनी चाहिए।

रोग पर विजय पाने के लिए रोगी को तुरन्त आराम देना चाहिए और विशेष एन्टीटाक्सिन दिया जाना चाहिए। टाक्सिन की मात्रा रोग की जीर्णता, मेम्ब्रेन की लम्बाई-चौड़ाई के अनुसार देनी चाहिए न कि रोगी की आयु के अनुसार। रक्त में आई हुई टाक्सिन ही इसके द्वारा न्यूट्रलाइज होती है, परन्तु जो टीसू के साथ जम गई है वह नहीं। अतः जितनी जल्दी एन्टीटाक्सिन दिया जाय उतना ही हितकर है। आवश्यक मात्रा शीघ्र ही देनी चाहिए। इसके देने के पहले सेन्सीटीविटी टेस्ट कर लेना चाहिए। यदि $\frac{1}{10}$ डाइल्यूसन से २० मिनट बाद [०.२ सी. सी.] रीएक्सन हो तो १/१०० डायल्यूसन में त्वचा के नीचे बाहरी भाग में सावधानी से देना चाहिए।

मात्रायें—फासियल डिफ्थीरिया में प्रथम दिन ही मालूम हो जाने पर १०,०००–२०,००० यूनिट्स एन्टीटाक्सिक सीरम की आवश्यकता है। यदि बाद में मालूम हो तो २०,००० या उससे अधिक है। घातक रोगी में यदि लैरिंजियल डिफ्थीरिया हो तो ४०,००० यूनिट्स अन्तः मांसपेशी सूचीवेध द्वारा प्रत्येक १२ घण्टे बाद बहुत ही घातक व रक्तस्रावी में १००,००० यूनिट्स धीरे-धीरे अन्तःसिरा सूचीवेध मे तथा २०,००० यूनिट्स अन्तःसिरा सूचीवेध से दें और देर से आने वाले रोगियों में इससे भी अधिक मात्रा दी जा सकती है। और इसका लाभ ३६ घण्टे में दिखाई पड़ने लगता है। यदि कोई एलर्जी के लक्षण दिखाई दें तो कैल्शियम, एट्रोपीन, एड्रीनलिन और एन्टीहिस्टामिन्स के साथ इफीड्रिन देना चाहिए। घातक रोगियों में पेनीसिलिन या इरीथ्रोमाइसिन भी प्रयोग किया जाता है। इससे टाक्समिया कम होती है। सेकेन्ड्री इनफेक्सन के जीवाणु की रोकथाम तथा डिफ्थीरिया जीवाणु का शीघ्र विनाश होता है। टिंचर वेन्जोइन को स्टीम इन्हेलेसन लोकल चिकित्सा के रूप में लाभ करती है। यदि लैरिंजियल अवरोध है तो ट्रेकियोटामी और कम घातक अवस्था में इन्टरवेसन करना चाहिए।

सर्क्युलेटरी फेल्योर में—पूर्ण (विस्तर पर) आराम, चारपाई का पैताना ऊंचाई पर, मानसिक चिन्ता का शमन, लेप्टाजाल या कोरामीन १ सी. सी., इफेड्रीन [१|३ ग्रेन] या नारएड्रीनलिन धीरे-धीरे अन्तःसिरा वेध द्वारा हितकर है। डेक्सट्रोज ५% गुदा द्वारा यदि टाक्सिमिया या डीहाइड्रेसन अधिक हो। रेस्पीरेटरी फेल्योर में बनावटी श्वास देना आवश्यक है। उपद्रवों की लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिए। पैरालिसिस में मालिस व बिजली की सेक तथा विटामिन बी १ (५०-१०० मि. ग्रा. प्रतिदिन) हितकर है। न्यूमोनिक अवस्था सल्फाडायजीन तथा प्रोकेन पेनीसिलिन से ठीक हो जाती है। "कैरियर्स" को अलग रखें तथा उनकी पूर्ण चिकित्सा करें।

भोजन—दूध या दूध और कच्चा अण्डा चम्मच से देना हितकर है।

कण्ठ रोग

शरीर में कण्ठ की स्थिति एक विशाल पुल या सेतु के समान है। कण्ठ द्वारा ही खाद्य, चोष्य, लेह्य, पेय पदार्थ भीतर प्रवेश पाते हैं। एवं उदर से वहिर्गमन करने वाले विकृत पदार्थ, विकृत दोष आदि को भी कण्ठ के चरण स्पर्श अनिवार्य है।

निदान प्रकरण में मुख रोगों के भीतर कण्ठगत रोगों का विवरण उपलब्ध है। शास्त्रकारों ने १८ संख्यात्मक कंठ रोगों का वर्णन किया है। प्रतीत होता है कि यह विवरण कंठस्थ, श्लेष्मिक कला, स्थूल एवं सूक्ष्म ग्रन्थियां, मांस स्तर, पेशियां तथा स्नायाविक रचना एवं स्थिति के आधार पर अवलम्बित है। इनमें होने वाले रोग भी विप्रकृष्ट कारण क्रमानुसार ही होते हैं। परन्तु सन्निकृष्ट कारणों एवं आगन्तुज कारणोत्थ रोगों का विशद विवरण 'कंठ रोगों' की सूची में परिगणित नहीं। सन्निकृष्ट कारणोत्पन्न रोगों से अधिक सचेत रहने की आवश्यकता है कारण कि यह अतिशय कष्टदायक और कभी-कभी भयङ्कर भी हो जाते हैं।

सन्निकृष्ट कारणोत्थ गल रोग—अनेक रोगों और दशाओं में व्यक्त होते हैं। इनके प्रशमनार्थ भी मूल व्याधि के साथ साथ ही उपक्रम की अनिवार्य आवश्यकता होती है। जैसे प्रयाणकाल में कंठ में घुरघुर होना, न्यूमोनियां में नासा स्फूर्जन के समय निर्गलन में कष्ट, शीतला तथा रोमांतिका के समय कास, श्वास, प्रतिश्याय, पीनस, अनन्त वात, स्वरभेद, फक्क, कुकूणक, बालग्रह, मूर्च्छा, अपस्मार, अम्लपित्त, तीव्र सन्निपातिक ज्वर, वातश्लेष्मिक ज्वर, रक्तपित्त आगन्तुज आदि आदि।

कण्ठ में सन्निकृष्ट अथवा विप्रकृष्ट एवं आकस्मिक होने वाले प्रत्येक रोग के लिये विस्तृत एवं उचित तथा अनुभूत, चिकित्सा क्रम यदि एक ही पुस्तक में उपलब्ध होने की व्यवस्था हो जाने से विद्यार्थियों, स्नातकों तथा चिकित्सकों को पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सकता है।

आयुर्वेदीय गल रोगों की एलोपैथी के गल रोगों की तुलना करने में भी पर्याप्त मतभेद उपस्थित है। कोई तो टांसिलाईटस को तुण्डीकेरी कहते हैं और कई गलग्रन्थि शोष, कई कंठ शालूक कहते हैं। एवं विध डिफ्थीरिया के सम्बन्ध में भी अनेक मत सामने आरहे हैं। कई डिफ्थीरिया को कंठ रोहिणी मानते हैं और कई मांसतान मानते हैं। अपने अपने विचार के अनुसार सब ने प्रचलित एलोपैथी के कंठस्थ रोगों को आयुर्वेदोक्त नामों के साथ तुलना की है। परन्तु सत्य यह है कि तुलनात्मक निर्णय करने में अभी और गूढ़ विचार विमर्श की आवश्यकता है। इसके अनन्तर ही निर्भ्रान्ति वस्तुस्थिति सामने आने की सम्भावना है।

सामान्य तुलना—डिफ्थीरिया के आविष्कारक इस रोग में एक झिल्ली का उभार विशिष्ट लक्षण मानते हैं किन्तु कण्ठ रोहिणी में स्पष्ट निर्देश 'गलोपसंरोध करैस्तथांकुरैः' अंकुर अनेक और तीक्ष्णाग्रता की ओर निर्देश करते हैं जबकि झिल्ली उक्त लक्षण में नहीं आती। झिल्ली के लिए कला अथवा आवरण शब्द उपयुक्त प्रतीत होता है। निदान लेखकों से इतनी भूल की आशा तो नहीं की जा सकती। मांसतान डिफ्थीरिया के प्रकृत वर्णन के अधिक समीप प्रतीत होता है। लक्षणों में भी सादृश्य पाया जाता है।

टांसिलस—की तुलना कंठ शुण्ठी या तुण्डीकेरी के साथ करना एक खासा हास्यास्पद है। कारण कि उक्त दोनों रोग तालु स्थान के हैं और इनमें सशोथ उत्सेध प्रधान लक्षण हैं। जब कि टांसिलस ग्रन्थि प्रधान व्याधि है। टांसिलस का सादृश्य तो गिलायु एवं कंठ शालूक के साथ अत्यधिक समानता रखता है। एवं विध गल रोग और भी हैं जो विचार विमर्श की अपेक्षा रखते हैं गिलायु हानव्य प्रदेश के पश्चिम भाग में ग्रन्थि रूप में व्यक्त होता है।

चिकित्सा सूत्र—टांसिलस के शिकार अधिकतर बालक होते हैं एवं यह भी निश्चित है कि यह उन्हीं बच्चों को होता है जो आरम्भ से ही प्रतिश्याय, मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि से पीड़ित रहते हैं। गाढ़ा दूध, दधि, मछली अण्डे के अभ्यासी होते हैं। इनमें शस्त्र साध्यित्व की व्याप्ति तब ही चरितार्थ होती है जब वह अत्यन्त प्रौढ़ावस्था में

परिणत हों अन्था आरम्भ में ही समुचित निदान और योग्य अनुभवी चिकित्सक प्राप्त होने पर यह भेषज साध्य होते हैं। रोग वृद्धि रोकने के लिए रोगोत्पादक मूल कारण मन्दाग्नि को दूर करना होता है। बालक के मल मूत्र का परित्याग सम्यक् होता रहे। कफकारक एवं रक्तदूषक आहार विहार का परित्याग आवश्यक है।

कण्ठ रोगों में विशेषकर कण्ठशालूक और गिलायु

सेवनीय औषधियां—(१) सितोपलादि चूर्ण, स्फटिका भस्म। आयु की मात्रानुसार मधु के साथ दिन में ४ बार दिया जाना चाहिए।

(२) निम्बादि चूर्ण भावप्रकाशोक्त मात्रा आयु के अनुसार।

(३) कफकेतु रसमधु के साथ (ध्यान रहे इसमें वत्सनाभ है) मात्रा आयु के अनुसार।

(४) लक्ष्मी विलास नारदीय—गिलायु कण्ठशालूक पीनस, प्रतिश्याय, शिरोव्यथा के लिए प्रभावोत्पादक औषध है। मात्रा—१-४ रत्ती आयु के अनुसार। अनुपान—पान के पत्तों का रस और मधु।

(५) त्रिभुवनकीर्ति रस १-४ रत्ती उष्णोदक से

(६) कट्फल चूर्ण की नस्य दिन में २ वार अवश्य देनी चाहिए।

अवधूलन—शिशु अथवा बालके इस रोग को दूर करने के लिए-बड़ी इलायची, तबासीर, मुलेठी, सौभाग्य भस्म और गैरिक सबका समान भाग सूक्ष्मपिष्ट चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को आर्द्र की हुई तर्जनी या मध्यमा अंगुली के अग्र भाग पर लगाकर गलग्रन्थियों पर दिन में ३-४ बार मृदुघर्षण करने से गले की सूजन और निगलन शक्ति की व्यथा शीघ्र प्रशमित होती है।

प्रलेपन—(१) कालीजीरी, कट्फल, सोंठ समान भाग कांजी या दूध में पीसकर सुखोष्ण लेप करने से तीव्र कष्ट तुरन्त मन्द पड़ जाता है।

(२) गोमूत्रपिष्ट माण्डूर भस्म का सुखोष्ण लेप तत्काल लाभ पहुंचाता है। इससे शस्त्रकर्म की भी आवश्यकता लुप्त हो जाती है।

(३) दशांग लेप का मधु-घृतान्वित लेप करने से कंठ रोग एवं कंठ शालूक और गिलायु शीघ्र प्रशमित हो जाते है।

जलौकावचारण—जोंक लगाकर रक्त निरहरण करना आयुर्वेद का प्रभावशाली अन्वेषण है। अवस्थांतर एवं व्याधि तारतम्य के आधार पर रक्त निरहरण के और भी प्रकार हैं यथा—शृङ्गी द्वारा एवं अलाबु द्वारा तथा शिरावेध। इन चारों का प्रयोग विधान यथा स्थान देखा जा सकता है। साधारणतः सिंगी, अलावु तथा जोंक द्वारा विशिष्ट स्थानों और अवस्थाओं में रक्त मोक्षण किया जाता है। यदि इसका प्रयोग उचित और अनुभव पूर्ण हो तब विद्युत प्रभाव की तरह आश्चर्योत्पादक गुणकर होता है। उपर्युक्त तीनों विधान अधस्त्वक् तथा उसमें संलग्न मांसल प्रदेश की व्याधियों की शांति के लिए सिद्ध चिकित्सा है परन्तु जब रक्त की विकृति चरम सीमा पर हो और शिरायें अशुद्ध रक्त वहन करती हुई विकृत हो जायें तब शिरामोक्षण रामबाण उपाय सिद्ध होता है। रक्त मोक्षण का प्रकरण पढ़ने से आप अनेक रोगों में इस चिकित्सा को अमोघशक्ति सम्पन्न पायेंगे।

हा हन्त। आज आयुर्वेद की प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम में आयुर्वेद के अन्य विज्ञान यथा अरिष्ट विज्ञान, अनागत रोग प्रतिषेध, अभ्यङ्ग, स्वेद, पंचकर्मादि उपेक्षित कर दिये गये हैं उसी प्रकार रक्तमोक्षण चिकित्सा का कहीं नाम देखने को नहीं मिलता।

व्यावहारिक रूप में उक्त विज्ञान सम्पन्न चिकित्सक रुग्णजन कल्याण की अद्भुत शक्ति प्राप्त कर सकता है।

जलौकावचरण का एक अद्भुत एवं विस्मयकारक दृष्ट प्रत्यक्ष इस प्रकार है। इन पंक्तियों के लेखक को एक बार लाहौर में एक सम्पन्न परिवार के लाहौर चीफ कोर्ट के प्रतिष्ठित एडवोकेट की १०-१२ वर्षीय सुपुत्री की चिकित्सार्थ आमंत्रित किया गया। रुग्ण की परीक्षा के बाद गिलायु का निर्णय किया गया परन्तु उधर चिकित्सा के लिए एक विशिष्ट शर्त थी, वकील साहब की पुत्री की चिकित्सा लाहौर के सुप्रसिद्ध सर्जनों की सम्मतियां भी मुझे बताई गयीं। सर्जन सब एक मत थे कि लड़की की दशा ऐसी गम्भीर है कि यदि ६ घंटा के भीतर भीतर आपरेशन न किया गया तो लड़की की मृत्यु हो जाएगी।

अतः वकील साहब का कथन था कि यदि मेरी चिकित्सा से ६ घंटा के भीतर लाभ हो तब ही चिकित्सा की जानी चाहिए।

निःसंदेह लड़की का खाना पीना तो दूर श्वास प्रश्वास लेना भी कठिन होरहा था। यह शर्त सुनकर बड़ी ऊहापोह हुई परन्तु तत्काल ही जलौकोपचार का स्मरण हो आया मैंने वकील साहब से निवेदन किया कि मुझे आप केवल १ घण्टा दीजिए शेष ५ घण्टे में आपके सर्जनों पर छोड़ता हूं। इस पर वे राजी होगए क्योंकि वकील साहब आपरेशन से भयभीत से थे।

मैंने तुरन्त जोंकें मंगाने के लिए कहा। आध घण्टा में ही जोंक वाला आ गया। मैंने जोंकों का निरीक्षण किया उसकी पोटली में बंधी हुई जोंकों में से ४० जोंक अलग करके उन्हें हल्दी के पानी से स्वच्छ करके उसे कहा कि ध्यान से एक कर्ण मूल से दूसरे कर्ण मूल तक २५-३० जोंकें लगवाने के लिए कहा। १० मिनट में जोंकें ठीक क्रम से अपने स्थान पर चिपक गईं।

अधिक से अधिक २०-२५ मिनट लगे होंगे जोंकें रक्त चूस कर फूलगईं और परिपूर्ण फूली हुई जोंकें स्वतः ही संलग्न स्थान से च्युत होती गईं। सम्पूर्ण जोंकें गिरने पर दंश स्थान से प्रस्रवित रक्त को हरिद्रा और निम्बोदक से पोंछकर, स्थान को स्वच्छ करके मधु घृत द्रुत दशांग लेप की पट्टी समग्र दंश स्थानों पर बांध दी गई।

रक्त पूरित जोंकों से जब रक्त निकाला गया तो वह अत्यन्त कृष्ण वर्ण एवं मात्रा में १५-२० तोला था।

पट्टिका बांधने से प्रथम ही लड़की का तीव्र श्वास कष्ट जादू की तरह कहां चला गया यह देखकर लड़की के माता पिता और स्वजन जो शर्त बंधे उपचार के परिणाम को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे मन्त्रमुग्ध से रह गए। पट्टिका बांधने के तुरन्त बाद बालक को ऐसी निद्रा आई कि वह पूरे ६ घण्टे सोया रहा। यह है कितना निरापद और आशुफलद उपचार। इस प्रकार के अनेकों रोगियों को कण्ठ शालूक व गलौघ के कष्टों से संरक्षण दिया जा चुका है।

कण्ठ रोहिणी, गलौघ, गिलायु, तुण्डी केरी, कण्ठशुंडी, बलय आदि हठीले कण्ठ रोगों में भी जलौकावचार निश्चित और तुरन्त लाभ करता है। रुग्ण की आयु और दोषों के तारतम्यानुसार जोंकों की संख्या अनुभवी चिकित्सक को स्वयं स्थिर करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त तीव्र संधिशोथ, पाकासिमुखव्रण, भागंदरी पिटिका आदि में भी रक्तमोक्षण सिंगी, अलावु व जलौकाओं द्वारा किया जा सकता है। शिरामोक्षण के लिए प्रथम विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता अनिवार्य है। इसमें नाड़ी, शिरायें और विशिष्ट स्थानों का परिचय अवश्य ही पूर्व होना चाहिए।

डिपथीरिया—

इसके प्रति विद्वानों की धारणा कण्ठरोहिणी नाम करण के प्रति हैं। परन्तु मेरे विचार डिपथीरिया को मांसतान मानने में उत्साह प्रदान करते हैं। लाक्षणिक भिन्नता जो अति संक्षेप से ऊपर दी गई है पाठक पढ़ चुके हैं। गलोत्थ रोग प्रायः ही कफ रक्त और मांस की विकृति से ही उत्पन्न होते हैं। केवल इनमें लक्षणिक एवं स्थानिक भिन्नता ही विशेष नामकरण करने में कारण है। चिकित्सा भी प्रायः सामान्य ही है। भयंकर कष्ट दायक एवं भयावह परिणामोत्पादकावस्था में चिकित्सा में भी तारतम्य करना पड़ता है।

डिफ्थीरिया में तीव्र कष्ट प्रशमनार्थ हम रीठा फलत्वक चूर्ण ६ माशा, उष्णोदक ५ तोला में घोटकर प्रस्तुत गाठ से तरल को रुई लहीशालाका अथवा अंगुली के साथ जहां तक अंगुली जाये आध-आध घण्टे में प्रलेप को गले के भीतर संघर्षित करते हैं। प्रभु कृपा से यह अच्छा लाभ करता है तुरन्त ही रोगी अपने आपको मृत्यु मुख से दूर होता हुआ अनुभव करता है।

लशुन स्वरस एवं अनन्नास फल का रस भी साधारण अवस्था में अच्छा लाभ करता है। यह दोनों प्रलेपन और सेवन में प्रयुक्त होते हैं।

सेवनार्थ—मंजिष्ठादि तरलसार, सारिवादि आसव तथा आरोग्यवर्धिनी का प्रयोग सफल पाया गया है।

ऐसे संसर्गज रोगों के लिए पथ्यापथ्य रहन-सहन और अन्य सुखद ऊहापोह की व्यवस्था उचित रूप से स्थिर कर देनी चाहिए।

ले०— आचार्य श्री हरदयाल वैद्य वाचस्पति
आयुर्वेदाचार्य. K. R. V. M. A. S.
भू. प्रधान पंजाब राज्य बोर्ड आफ आयु. एण्ड यू.
सिसटम आफ मेडीसिन अमृतसर
सदस्य पंजाब राज्य आयु० यू० फैकल्टी

रक्त पित्त के उपद्रव
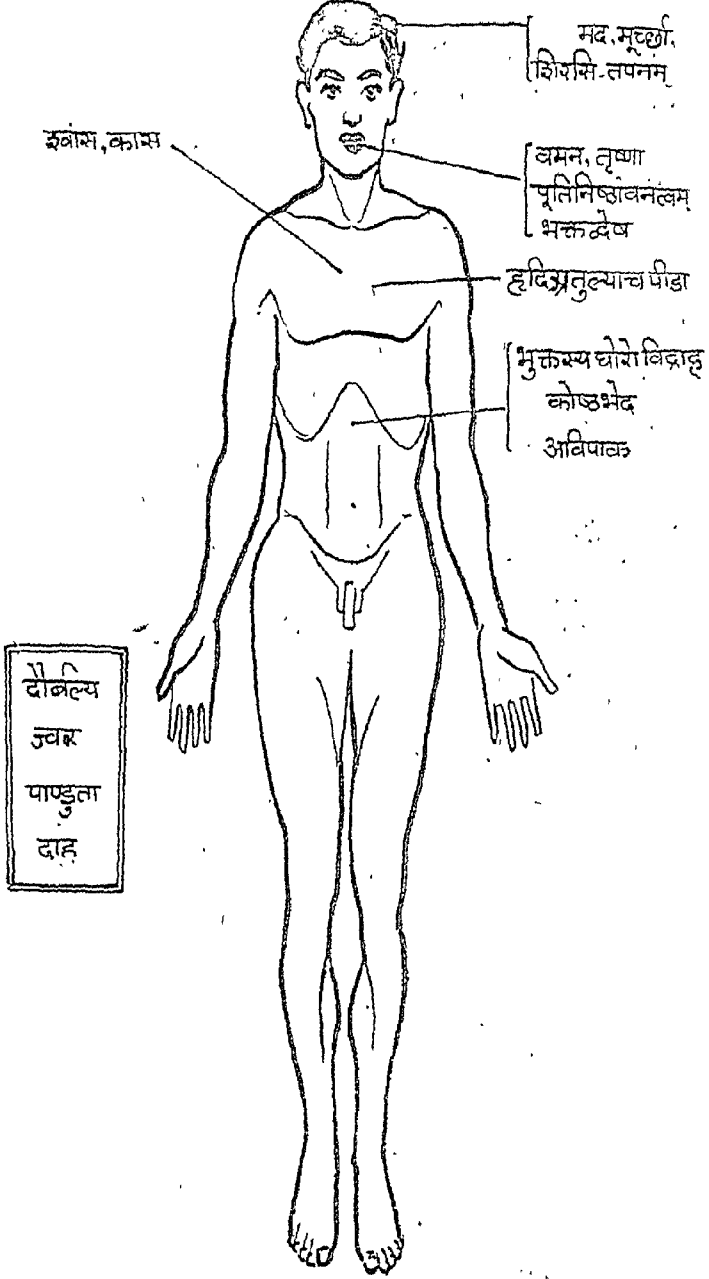
रक्तपित्त निदान एवं चिकित्सा

रक्तपित्त का परिचय—रस नामक धातु रंजक पित्त से रंजित होकर रक्त कहलाता है। इस रक्त को अपने कारणों से ही कुपित हुआ पित्त विदग्ध करके ऊपर के मार्ग नाक आदि और अधोमार्ग गुदा आदि से प्रवृत्त कर देता है तो उसको रक्तपित्त कहते हैं। इसकी दो गति हैं–ऊर्ध्वगति और अधोगति। अधिक कुपित होने पर यह सम्पूर्ण रोम कूपों से भी बह सकता है।

रक्तपित्त के कारण—क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, विरुद्ध आहार आतप, अग्नि,कटुरस, अम्लरस, लवण, क्षार, तीक्ष्ण,उष्ण, अति विदाही पदार्थों का अति सेवन करने से रस दूषित होकर पित्त को भी दूषित कर देता है, तदनन्तर विदग्ध पित्त रक्त को कुपित कर देता है। वह विदग्ध रक्त आमाशय से नाक. मुख, नेत्र, कर्ण आदि ऊर्ध्वभागों से और गुदा, लिंग, योनि आदि अधोभागों से प्रवृत्त होने लगता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि यहां पर यकृत और प्लीहा भी विदग्ध हो जाते हैं। अतः रक्त प्रवाहित होता है। ऊर्ध्व भागों से बहने वाला रक्तपित्त साध्य माना गया है। अधोभागों से बहने वाला रक्तपित्त याप्य माना गया है। दोनों भागों से बहने वाला रक्तपित्त असाध्य माना गया है।

रक्तपित्त के पूर्वरूप—रक्तपित्त के आरम्भ होने से पूर्व अङ्गों में शिथिलता, शीतलता की चाह, कण्ठ से धुंवां सा निकलना, अथवा वेदना होना, वमन होना, सांस में रक्त की गंध अथवा लोहे की सी गंध आना पाया जाता है।

रक्तपित्त के उपद्रव—इस रोग के उपद्रवों में दुर्बलता, स्वास, ज्वर, कास, वमन, मद, दाह, तन्द्रा, मूर्च्छा, अन्न का विदग्ध होना, अधैर्य, हृदय में विशेष पीड़ा होना, प्यास, गले की चुभन, सिर में सन्ताप, थूक में दुर्गन्ध होना, भोजन के प्रति अनिच्छा, अविपाक आदि माने गए हैं।

असाध्य रक्तपित्त के लक्षण—जिस रक्तपित्त रोग में मांस की धोवन के समान अथवा मांस के पके हुए पानी जैसा रक्त बहता है, जिसका रङ्ग कीचड़ घुले हुए पानी जैसा हो, चर्बी या मवाद जैसा हो, जिगर के रङ्ग जैसा हो, पके हुए जामुन के फल के समान हो, तथा जो अत्यन्त कृष्णवर्ण अत्यन्त नीला, तथा मुर्दे की सी दुर्गन्ध वाला, अथवा इन्द्र धनुष के समान रङ्ग वाला, ऐसा सभी प्रकार का रक्तपित्त असाध्य माना है।

चिकित्सा सिद्धान्त–

बलवान रोगी हो और आहार ठीक प्रकार से कर रहा हो तो ऐसे रोगी के रक्तपित्त को सर्वप्रथम स्तम्भक अर्थात् रक्त को रोकने वाली दवाई नहीं देनी चाहिए। अन्यथा ज्वर, गुल्म, पांडु, कुष्ठ, प्लीहा और ग्रहणी रोग के होने की संभावना बनी रहती है। अतः दूषित रक्तपित्त को रोकना उचित इलाज नहीं है। अतएव ऊर्ध्वभागों से बहने वाले रक्तपित्त को विरेचन कर्म के द्वारा तथा अधोभागों से बहने वाले रक्तपित्त में वमन कर्म के द्वारा चिकित्सा प्रारम्भ की जानी चाहिए। यदि रोगी क्षीण हो तथा अत्यन्त निर्बल हो तो किसी एक भाग से बहने वाले रक्तपित्त में रोकने की चिकित्सा की जा सकती है। बात यह है कि यदि रक्तपित्त के रोगी में दोषों की अधिकता हो, बल, मांस और अग्नि क्षीण न हुए हों तो उसको लंघन चिकित्सा कराना उचित है। लंघन के बाद स्वल्प चावलों की पेया देनी चाहिए। सुगन्धित और स्नेहयुक्त संस्कार किया हुआ मांस रस भी दिया जा सकता है। यूष भी दे सकते हैं। तर्पण, पाचन, अवलेह और घृत भी दिए जा सकते हैं किन्तु ये सभी रक्तपित्त नाशक द्रव्यों से सिद्ध होने चाहिये।

वमन विरेचन—द्राक्षा, मुलहठी, गम्भारी, मिश्री को समभाग लेकर क्वाथ विरेचन के लिए दिया जाए। मुलहठी का क्वाथ मधु मिलाकर वमन करावें।

पथ्य—उत्पलादिगण की औषधियों से पकाये हुए दूध का प्रयोग पित्त प्रधान रक्तपित्त में लाभप्रद होता है। वात प्रधान में जांगल मांसरस की उचित मात्रा, मटर का यूष कफ प्रधान में दे सकते हैं। इनको बासमती चावल या साठी चावल के साथ दिया जा सकता है। परवल, लिसोढा, जूही, चौलाई, बड़, चमेली की लता, इनके अंकुर

अथवा कोमल पत्ते, संभालू के कोमल पत्ते लेकर इनका साग घी में भूनकर, आंवला और अनारदाना के साथ मिलाकर सेवन करें। कबूतर (श्वेत), शंख का कीड़ा, कछुआ आदि से बने हुए मांस रसों को अथवा यवागू को पर्याप्त घृत मिलाकर भी दिया जा सकता है। काकोल्यादिगण की दवाओं के क्वाथ से सिद्ध घृत का भी सेवन किया जा सकता है।

अनुभूत चिकित्सा—

रक्तपित्तान्तक रस—शुद्ध पारद (अष्ट संस्कारित) और शुद्ध गंधक की कज्जली, प्रवालपिष्टी, त्रिवंग भस्म, सुवर्ण माक्षिक भस्म, ताम्रभस्म (गंधक से मारित लाल वर्ण की), शतपुटी लोहभस्म, षड्गुण गंधक जारित रस सिन्दूर, सुवर्णभस्म, कान्तलोह भस्म, शतपुटी अभ्रकभस्म, रजतभस्म इन सबको समान भाग लेकर खरल में पहले खूब मर्दन करके एक रस करलें। फिर गिलोय का स्वरस, वांसा स्वरस, चमेली के फूलों का रस, शतावर का ताजा स्वरस, वड़ की जटा का ताजा स्वरस, सेमल के मूसले का ताजा स्वरस, कमल के पत्रों का ताजा स्वरस,दोनों चन्दनों का क्वाथ, इन आठों को ऊपर लिखी दवाओं से तोल से दुगुना दुगुना लेकर सबकी एक साथ भावना देवें। कल्क जैसा तैयार होने पर अगस्त्य के लाल फूलों का चूर्ण, सफेद दूब का चूर्ण, भुना सुहागा, अदरख का स्वरस, धनियां, आंवला, द्राक्षा, चिरायता, इन्द्र जौ, फालसा, गोखरू, केले का कन्द, मीठा कूठ, नागरमोथा, नीलोफर, खश, कमलगट्ठा, छुहारा, मुलैठी, लोध, कमल केसर, महुआ, हाऊबेर, गंभारी के फल, सहदेवी के पत्तों का चूर्ण, इन सबको एक-एक तोला प्रमाण में मिलादें और फिर खूब घुटाई करें। वटिका बनने योग्य होने पर एक रत्ती से लेकर आठ रत्ती तक की गोलियां बनालें। छायाशुष्क करलें।

अनुपान—शक्कर, घी, मधु और दूध है अर्थात् चारों के साथ दवा देनी है। इनकी मात्रा रोगी के अनुसार स्वयं ही बना लेनी चाहिए। तीन वर्ष के बालक को प्रातः-सायं एक रत्ती वाली गोलियां। पांच वर्ष वाले को २ रत्ती वाली गोलियां, छः वर्ष वाले को ३ रत्ती वाली, सात वर्ष वाले को ४ रत्ती वाली, आठ वर्ष वाले को ५ रत्ती वाली, नौ वर्ष वाले को ६ रत्ती वाली, दस वर्ष वाले को ७ रत्ती वाली और इससे ऊपर सभी आयु वालों को ८ रत्ती की गोली सेवन करानी चाहिए। सुगमता के लिये २-२ रत्ती की गोली बनालें और यथायोग्य गोलियोंकी संख्या बनाकर देवें। बच्चों को तो आधी भी दी जा सकती है। यह रस सभी प्रकार के रक्तपित्त की रामबाण दवा है। असाध्य रक्तपित्त पर भी कण्ट्रोल कर लेती है। हमने बहुत बार परीक्षा करके सही पाया है। सम्पूर्ण उपद्रव भी इससे अतिशीघ्र नष्ट हो जाते हैं। सम्पूर्ण प्रकार के रक्त विकारों की तो यह परम औषध है। वातरक्त, खूनी बवासीर और रक्तप्रदर के रोगियों के लिए इसके मुकाबले की बिरली ही कोई दवा मिल सकेगी। इन रोगों पर इसका शतप्रतिशत सफल परीक्षण किया जा चुका है। श्वास के रोगी इसको अवश्य सेवन करें।

यदि त्रिरूप राजयक्ष्मा का रोगी अपनी खाट के साथ कुछ बकरियां बांध कर रह सके तो इस रस के प्रयोग के लिए हम चुनौती देते हैं। अस्सी दिन में राजयक्ष्मा का समूल विनाश हो जाता है। सभी उदर रोगों पर यह अच्छा लाभ करता है। पाण्डु रोग, कास और नेत्र रोगों के लिए भी यह अचूक है। प्रबल वाजीकरण है और दुर्बलों को बलवान बनाता है। थके हुए लोगों को इसके सेवन के लिए मैं परामर्श देता हूँ। ऐसे लोग यदि इसका सेवन धारोष्ण दूध से करें तो निश्चय ही पूर्ण बलवान बन सकते हैं।

रक्त पित्त का रोगी

शास्त्रीय चिकित्सा

प्यास बढ़ने पर—हाऊबेर, चन्दन, खश, मोथा, पित्तपापड़ा, इनसे क्वथित अथवा केवल औटाकर शीतल किया हुआ जल ही देवें।

लाजा के चूर्ण के साथ घी शहद मिश्रित तर्पण दिलावें, इसे ठीक समय पर देने से उर्ध्वग रक्तपित्त नष्ट होता है।

हितकर अन्न मांस शाक—शालि-साठी के चावल, नीवार, कोदों, कामनी समां तथा प्रियंगु, ये रक्तपित्तियों का भोजन, मूंग, मसूर, चना, मोंठ, अरहर रक्तपित्तियों के सूप अथवा यूष बनाने के लिए प्रशस्त होती हैं।

पारावत, कपोत, लावा, लाल बतखें, खरगोश, कपिञ्जल, एण, हरिण, कालपुच्छ, रक्तपित्त में यह सब हितकारी हैं। इनके रसों का थोड़ा खट्टा अथवा खटाईरहित घी में भूनकर सशर्करा प्रयोग करें।

परवल, नीम, बेत का कोमल अग्रभाग, पिलखुन, जल वेतस के पत्ते, चिरायता, गांडर का शाक, पुनर्नवा, कोविदार के फूल, गम्भारी तथा सेम के फूल और जो अन्नपान के विधान में रक्तपित्तनाशक (पर्पटक गुडूची कारवेल्लक आदि) शाक वर्ग है। यह सब शाकसात्म्य रक्त पित्तियों के शाक के लिए स्विन्न, घी के साथ छौंका या यूषकी तरह पकाया हुआ प्रशस्त होता है।

यवागू—कमल और कुमोदिनी के केशर, पृश्निपर्णी, प्रियंगु जल में सिद्ध करके उस रस में रक्तपित्तियों की पेया बनाई जावें।

उसी प्रकार (षडङ्ग पानीय विधान से द्रव्य १ कर्ष, जल २ प्रस्थ शेष १ प्रस्थ) चन्दन, खश, लोध्र तथा सोंठ सिद्ध रस में पेया बनावें।

चिरायता, खश, मोथा के जल साध्य रस में उपरोक्त की तरह।

धाम, धमासा, सुगन्धवाला, वेलगिरि के क्वथित रस में पेया बनावें।

मसूर की दाल तथा पृश्निपर्णी से सिद्ध पेया बनावें।

शालपर्णी और मूंग की दाल की पेया बनाई जावे।

रेणुका के स्वरस में पेया बनावें।

घी में छौंककर बला के स्वरस में पेया बनावें।

मांसरस योग—

रक्तपित्तियों के मल विष्टम्भ (कब्ज) में बथुआ के साथ खरगोश प्रशस्त है।

वातोल्वण रक्तपित्त में—गूलर के साथ तीतर पकाया हो। पिलखुन के क्वाथ में मोर। बरगद के क्वाथ में मुर्गा। कमल की जड़ (अथवा वेलगिरी) और नीलोत्पल के साथ बतख और केकड़ा दोनों के मांसरस हितकर होते हैं।

संशोधन कर्म—निशोथ, हरड़ अथवा अमलतास, की फलियों को, त्रायमाण, इन्द्रायण की जड़ अथवा आमलों को खूब शहद, शक्कर के साथ विरेचन रूप में प्रयोग करें। रक्तपित्त में इनका स्वरस विशेष रूप से प्रशस्त कहा जाता है।

मदन फल मिश्रित शहद शक्कर सहित मन्थ, मदन फल, शक्कर सहित अथवा मदनफल और जल या ईख के रस के साथ मदनफल वमनकारक है।

इन्द्र जौ, मोथा, मदनफल, शहद अधोभाग रक्तपित्त में इनके द्वारा वमन श्रेष्ठ कहा जाता है।

संशमन योग—अडूसा, मुनक्का, हरड़ का मिश्री सहित क्वाथ मधु मिलित श्वास, कास तथा रक्तपित्त नाशक है। रक्तपित्तहर अडूसे के क्वाथ में प्रियंगु, सोरठी मिट्टी, रसाञ्जन लोध्र और शहद मिलाकर पियें।

पदमाख, कमलकेशर, दूब, बथुआ, नील कमल और नागकेशर तथा लोध्र को उसी प्रकार ही (अडूसे के क्वाथ में) पियें।

पुण्डरियाकाष्ठ, मुलहठी, शहद, घोड़े की लीद के रस में अथवा जमासा और भांगरे की जड़, गाय के गोबर के रस में तण्डुलोदक के साथ मिलाकर पीना या शहद, घी मिला गाय के गोबर और घोड़े की लीद के रस को मिला कर पीना। यह पित्तनाशक होता है।

कत्था, प्रियंगु, कोविदार तथा सेमर (इन चारों के) फूलों के चूर्ण को अलग-अलग या एकत्र मधु के साथ चाटें।

सिंघाड़ो, खीलो, मोथा, खजूर दोनों भी तथा कमल केशर के चूर्णों को अलग-अलग या एक साथ शहद के साथ चाटें।

खश, पीला चन्दन, लोध पठानी, पद्माख, प्रियंगु,

कायफल, शंख, गेरु अलग-अलग चन्दन के बराबर लेकर मिश्री लेकर तण्डुलोदक में आलोडित करके पीने पर रक्त-पित्त को शान्त करता है।

चिरायता, पठानी लोध, मोथा सहित, पौण्डरीक काष्ठ, श्वेतनील कमल पुष्प, सुगन्धवाला मूल, पटोलपत्र, दुरालभा, पित्तपापड़ा, कमल की नाल, अर्जुन, गूलर, इन्द्र जौ, कुटज की त्वचा, बरगद, शालेय (जामुन या सौंफ), जवासे की जड़ की त्वचा, वंशलोचन, मजीठ, नागकेशर, चौलाई, सारिवा, मोचरस, लज्जावन्ती, उपरोक्त प्रकार से बनाकर अलग-अलग या चन्दन मिलाकर (स्वरस निकाल कर या कल्क करके या फांट बनाकर या क्वाथ करके) प्रयोगकरने से उदीर्ण रक्तपित्त को शान्त करता है।

मूंगो को खील, जौ, पिप्पली, खश, मोथा, चन्दन बला के स्वरस के कषाय में (एक रात) बसा कर प्रयोग करने से यह उदीर्ण रक्तपित्त को शान्त करता है।

वैडूर्यमणि, मोती, मणि गैरिक, मिट्टी, शंख स्वर्ण, आमलकी के बसे हुए मधूदक, शहद युक्त जल अथवा गन्ने का रस पान करने से रक्तपित्त शान्ति प्राप्त करता है।

खश, कमल, नीलकमल, चन्दन का जो (रात में जल में भीगने का) प्रसाद है और जो अग्नि में पके मिट्टी के लोंदे के जल में भिगोने का प्रसाद है (अर्थात् उशीरादि का शीतकषाय अथवा लोष्ठ के सम्पर्क का जो जल है) वह शहद मिला चीनी के साथ शीतल रक्त के अतिशय स्राव के प्रशमन के लिए देना चाहिए।

प्रियंगु, चन्दन, लोध्र, सारिवा, महुआ, मोथा, हरड़, और धाय के फूल से वासित जल, मिट्टी से वासित जल तथा मुलहठी से वासित जल के साथ शक्कर मिलाकर परम रक्तनाशक हो जाता है।

वासाघृत—वासा के शाखा सहित पत्र और जड़ के साथ पिया वांसा का यथा विधि कषाय करके और इसी के फूलों का कल्क देकर घृत पाक करें। वह शहद के साथ ही रक्तपित्त को नष्ट कर देता है।

अन्य घृत—

ढाक के पत्तों के वृन्त के स्वरस के द्वारा और उसी के कल्क से सिद्ध अथवा महुआ के वृक्ष के वन्तों के स्वरस और इन्द्र जौ के कल्क से सिद्ध अथवा उसी प्रकार लज्जा-वन्ती (या मंजीठ) नील कमल और लोध्र के स्वरस तथा कल्क से सिद्ध घृत रक्तपित्त में हितकर है।

श्वेत और नीलकमल की मृणाल और पुंकेसरी तथा ढाक के तथा प्रियंगु के तथा महुए के तथा विजयसार के क्षारों को उसी विधि से मधु-घृत मिला प्रयोग करना चाहिए।

शतावर्य्यादि घृत—शतावरी, अनार, तिन्तिडीक, काकोली, मेदा, महामेदा, मुलहठी, विदारीकन्द तथा बिजौरे नीबू की जड़ को पीसकर चतुर्गुण (पद्धति) को जानने वाला घी का पाक करें (कल्क से चतुर्गुण घृत और घृत से चतुर्गुण द्रव पड़ता है, यह नियम है)। यह घृत रक्तपित्त नाशक है। या इसके अतिरिक्त जो पांचों प्रकार के पञ्चमूलों से सिद्ध घृत होता है वह भी रक्तपित्त में लाभदायक होता है।

नीलकमल, गेरू, शंखयुक्त, चन्दन सहित मिश्री के साथ नस्य है। आम की गुठली का रस, लज्जावन्ती, धाय के फूल के साथ, लोध्र सहित मोचरस भी नस्य है। अंगूर का रस, गन्ने का रस, दूध का और दूब के रस का, इन सबका या अलग-अलग मिलाकर नस्य होता है। उपरोक्त नाक से निकलने वाले-रक्तस्राव में लाभप्रद है।

प्रलेपादि योग—

भद्र श्री (श्वेत चन्दन, लाल चन्दन और पुण्डरिया काष्ठ) कमल, नील कमल और खस, वेतस, सुगन्धवाला, कमल की डण्डी, दूर्वभेद, मुलहठी, क्षीरकाकोली, शालि और गन्ने की जड़ें, जमासे तथा गुन्द्रा की जड़, नरसल और कुश कांस दोनों की जड़, वकमकाष्ठ (कुचन्दन), सिवार, अनन्तमूल, तगर, गन्धतृण की जड़, ऋद्धि, जल, से उत्पन्न पौधों की जड़ें, फूल तथा तलैयों की मिट्टी का लेपन, गूलर, पीपल वृक्ष, महुआ, लोध इत्यादि का प्रलेप, सिद्ध घी, तेल रक्तपित्त की शान्ति करता है।

निशोथ और मलाविकानिशोथ के कषाय करके तथा कल्क करके खांड सहित लेह को विधि से साधित करें। फिर एक तोला अवलेह को चाटें। निशोथ त्रिफला माल-विका निशोथ, पीपल, खांड, शहद की गोली सन्निपात से हुआ उर्ध्व रक्तपित्त शोजा ज्वर को दूर करता है। निशोथ और मिश्री बराबर लेवें जिसमें १/४ भाग पीपल

मिलावें, यह लेह उर्ध्व रक्तपित्त को हरता है।

मैनफल के संयुक्त और मिश्री तथा शहद करके संयुक्त तर्पण वमन में देना योग्य है। मिश्री पानी शहद मैनफल को मिलाकर वमन में देने योग्य है अथवा महुआ का पानी में मैनफल को मिला देना अथवा दूध करके संयुक्त मैनफल को देना अथवा ईख के रस में मैनफल को देना, ऐसे विरेक वमन आदि करके शुद्ध किये मनुष्य के पश्चात् यह वक्ष्यमाण विधि करना योग्य है।

मुलहठी, खजूर, मुनक्का, फालसा, मिश्री पानी करके किया हुआ मन्थ अथवा पांच द्रव्यों करके किया हुआ मन्थ अथवा घृत सहित धान की खीलों करके किया हुआ मन्थ हित है। कमल, नीलकमल, कमलकेशर, पृश्नीपर्णी, प्रियंगु का योग उत्तम है। खस, सावरलोध, अदरक, पीले चन्दन नेत्रवाला, धव का फूल, बेलगिरी का गूदा, धमासा का योग भी हितकर है। चिरायता, काला वाला, नेत्रवाला, मसूर और पृश्नीपर्णी का योग भी उत्तम है।

विदारीगन्धा, मूङ्ग, खरैहटी, घृत, मटर सिद्ध करके पेय उत्तम है। शूकशिवी से उपजा अन्न और शाक रक्तपित्त में श्रेष्ठ हैं। अडूसे के रस में मुलहठी, कृष्णमार्ग लोध, रसोन, लहुसन, शहद इनका योग रक्तपित्त को शान्त करता है। वासे का रस खांड तथा शहद से मिलाकर पिलावें। इससे भी रक्तपित्त नष्ट होता है। केवल वासे का रस या वासे का क्वाथ भी रक्तपित्त को हरता है। इसलिए वासा रक्तपित्त को शीघ्र हरती है। यही वांसा रक्तपित्त की परम औषध है। परवल, मालती, नीम, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, कमल दोनों प्रकार के लोध, वांसा, चौलाई, कालीमिट्टी, वेलमोगिरी, शतावरी, सफेद सारिवा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलहठी, शहद और खांड से मिलाकर क्वाथ बनावें। इनसे रक्तपित्त दूर होता है।

अच्छी प्रकार शीतल किया और खाण्ड से युक्त, ढाक की छाल का क्वाथ रक्तपित्त को हरता है। गाय और घोड़े की लीद के रस को शहद और घृत के संग पीवें तो रक्तपित्त का नाश होता है। ग्रन्थित रक्तपित्त में परेवा-पक्षी की बीट में शहद मिलाकर चाटना हितकर है।

चन्दन, खस, नागरमोथा, धान की खील, मूंग, पीपल, यव इन सबको सायंकाल भिगोयें। अलग से खरेटी के पानी में बना हुआ क्वाथ बनाकर पीवें, यह भी रक्तपित्त को हरता है। चन्दन, कमल, काला वाला, माटी से रहित लौहे, अच्छी तरह शीतल किया मिसरी तथा शहद से मिला हुआ यह योग रक्तादि को हरता है। ईख की टोरियो को प्रथम अच्छी तरह कूटे फिर नवीन घट के जल में डालें, फिर गुप्त किया अर्थात् उसमें कोई जीव न पड़ सके वह घट एक रात्रि मात्र आकाश में स्थित करें फिर प्रभात में उस पानी को पकावें। तदनन्तर शहद, मुनक्का कमल संयुक्त कर पीने से रक्तपित्त का नाश होता है।

गोखरू और शतावरी से पकाया हुआ पानी, शालपर्णी, पृश्नीपर्णी, मूंगपर्णी, माषपर्णी से पकाया हुआ दूध, दोनों को संयुक्त कर पीने से मूत्रमार्ग में गमन करने वाला रक्तपित्त का नाश करता है। विष्ठा के मार्ग में गमन करने वाले रक्तपित्त में मोचरस से पकाया अथवा सोंठ, कमल, नेत्र वाला इनसे पकाया हुआ दूध विशेषकर हितकारी है।

मूल तथा मस्तक सहित वांसा-अडूसे को लेकर कूटें। फिर आठ गुने पानी में पकावें, जब आठवां भाग बाकी रहे तब घृत को पकावें, परन्तु पकने के समय वांसा के फूलों का कल्क मिलावें। पीछे शीतल किया और शहद से संयुक्त यह घृत रक्तपित्त को नाश करता है। कमल की नाल से उपजे हुए खार को शहद और घृत से चाटें। कमल रेणुका, मालविका, निशोथ, मुलहठी के खारों को अलग-अलग शहद और घृत से चाटें।

धान्यकादि हिम—धनियां, आमला, अडूसा, दाख और पित्त पापड़ा इन सबका हिम बनाकर, पीने से रक्तपित्त नष्ट होता है।

सुगन्ध वाला, कमल, धनियां, चन्दन, मुलहठी, गिलोय, खस और निसोत इनका क्वाथ बनाकर शहद और बूरा मिलाकर पीने से रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होता है। कमल अथवा उत्पल कमल की केसर-उग्र रक्तपित्त को नाश करता है। पिठवन और फूल प्रियंगु इनका क्वाथ बनाकर उसमें पकी हुई पेया (दूध-पानी) मिलाकर रक्तपित्त रोगी को देवें। अडूसे के पत्तों का स्वरस अथवा क्वाथ बनाकर उसमें शहद अथवा मिश्री मिलाकर पीने से दारुण रक्तपित्त भी नष्ट हो जाता है। अडूसे के पत्तों को पीसकर

पुटपाक करें, फिर उनका रस निकालकर उसमें शहद मिलाकर पीयें अथवा अडूसे के पत्तों का हिम बनाकर उसमें शहद मिलाकर पीयें तो रक्तपित्त नष्ट होता है। उत्पल, कुमुद, कमल, लाल कमोदिनी और लालकमल ये पांचों तथा मुलहठी इन सब औषधियों का समूह रक्तपित्त को दूर करता है। अडूसा, दाख और हरड़ इनके क्वाथ में मिश्री और शहद डालकर पीने से रक्तपित्त रोग नष्ट होता है।

दूर्वाद्य घृत—दूब, कमल की केसर, मजीठ, एलुआ, मिश्री, शीतलचीनी, कपूर, खस, नागरमोथा, चन्दनलाल, और पद्माख प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर कल्क बनावें। इस कल्क को चौगुने चावलों के जल में और बकरी के दूध में ६४ तोले बकरी का घृत विधिपूर्वक पकाना चाहिये। जो रुधिर की वमन होती हो तो इस घृत को पीना उत्तम है। जो नाक में से रुधिर निकलता हो तो इस घृत का नाश देना हितकारी है। जो कान में से रुधिर बहता होय तो इस घृत को नेत्रों में लगाना उत्तम है। जो लिंग में से अथवा गुदा में से रुधिर बहता हो तो इस घृत की पिचकारी लगानी सुखदायक है। अगर रोमकूपों में से रुधिर निकलता हो तो इस घृत की मालिश अत्यन्त फलदायक है। यह घृत सर्व प्रकार के रक्तपित्तों में उपयोगी है।

दाख, चन्दन, लोध और फूल प्रियंगु इन सबका चूर्ण करके शहद और अडूसे के रस के साथ सेवन करें तो ये उत्तम प्रयोग नाक में से, मुख से, गुदा से, योनि से और लिंग आदि से वेगपूर्वक गिरते हुये रुधिर को तत्काल बन्द कर देता है।

ईख के बीज का काण्ड (गन्ने की गांठ जड़ समेत), नील कमल की केसर, केला मुलैठी, पद्माख, बड़ के अंकुर अथवा कोमल पत्ते, दाख और खजूर इन सबको समान भाग लेकर हिम बनावें। इस हिम में मिश्री और शहद मिलाकर पीवें तो रक्तपित्त तत्काल नष्ट हो जाता। दाख से, फूल प्रियंगु से अथवा चिरौंजी से तथा मुलहठी से अथवा गोखरुओं से, किंवा शतावर से पकाया हुआ दूध रक्तपित्त को दूर करता है। पके गूलर के फल अथवा कुम्भेर के फल अथवा हरड़ या खजूर, किंवा दाख इनको शहद में मिलाकर चाटने से रक्तपित्त नष्ट होता है।

खण्ड कूष्माण्डावलेह—उत्तम पुराना बड़ा और मोटा पेठा लेकर छील बनाकर उसके बीज और बीजों के रहने के स्थान निकालकर फेंक देवें, फिर उसमें से १०० पल गूदा लेकर ८०० तोले जल में पकावें। जब पकते-पकते जल आधा बाकी रह जाय तब उतारकर यत्नपूर्वक शीतल करें। फिर उसमें से पेठे के टुकड़ों को निकालकर उत्तम मोटे वस्त्र में खूब खींचकर बांधें और दबाकर जल निचोड़ देवें और निचड़े हुए जल को फिर पकाने के लिए अलग रख देवें। फिर उन पेठे के टुकड़ों को धूप में सुखाकर तांबे के बासन में डालकर ६४ तोला घी मिलाकर भूनें। जब भुनते-भुनते शहद के समान हो जाय तब पूर्वोक्त पेठे के निचोड़े हुए जल में डालकर उसमें १०० पल उत्तम मिश्री डालकर अवलेह की तरह पकावें। जब अच्छे प्रकार से पक कर तैयार हो जाय तब उसमें पीपल, सोंठ, जीरा, प्रत्येक ८ तोला, धनियां, तेजपात, इलायची, कालीमिर्च, दालचीनी प्रत्येक २ तोला, इन सबका चूर्ण करके मिला देवें और ३२ तोला शहद मिला देवें, इस प्रकार खण्डकूष्माण्ड अवलेह तैयार होता है। ४ तोला दिन भर में खायें तो रक्तपित्त नष्ट होता है।

बृहत्कूष्माण्डावलेह—पुराना, कठिन, उत्तम पका हुआ बड़ा पेठा लेकर उसको छील बनाकर बीजों को और बीजों के रहने के स्थान को निकालकर फेंक देवें, फिर छोटे-छोटे टुकड़े करके उसमें से ४०० तोले लेकर ४०० तोले उत्तम गाय के दूध में धीरे-धीरे मन्द-मन्द अग्नि में पकावें। फिर उसमें उत्तम सफेद बूरा १५० पल, गाय का घी ६४ तोला, शहद ३२ तोला, नारियल की गिरी १६ तोला, चिरौंजी ८ तोला, तबासीर (बंशलोचन) ४ तोला डालकर विधिपूर्वक अवलेह के समान पकावें। जब ठीक प्रकार से पककर तैयार हो जाय तब उसको अग्नि पर से उतार लेवें, कुछ गर्म रहने पर निम्न औषधियां मिला देवें—

सौंफ १ तोला, वंशलोचन, अजवायन, गोखरू, तालमखाना, हरड़, कौंच के बीज, दालचीनी प्रत्येक २ तोला, धनियां, पीपल, नागरमोथा, असगन्ध, शतावर, कालीमूसली, गंगेरन, सुगन्धवाला, तेजपात, कचूर, जायफल, लौंग, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, सिंघाड़े, पित्तपापड़ा प्रत्येक ४ तोला, चन्दन, सोंठ, आमला, कसेरू

प्रत्येक ४ तोला, मखाने, कालीमिर्च प्रत्येक ८ तोला इन सबका चूर्ण करके मिलालें। मात्रा—४ तोला। यह भी रक्तपित्तनाशक है।

खण्ड कूष्माण्ड—उत्तम पेठे का स्वरस ४०० तोले, गाय का दूध ४०० तोला, आमलों का चूर्ण ३२ तोला सबको एकत्र मिलाकर धीरे-धीरे मन्द-मन्द अग्नि से तब तक पकावें जब तक पिण्ड न बंधे। जब पिण्ड बंध जाये तब उसमें ३२ तोले उत्तम बूरा मिला देवें। मात्रा—नित्य २ तोला। यह रक्तपित्त नष्ट करता है।

खड्खाद्य लोह—शतावर, गिलोय, अडूसा, गोरख-मुण्डी, खरैंटी, मूसली, खैर, त्रिफला, भारङ्गी और पोहे-कर मूल ये प्रत्येक औषधि २०-२० तोला लेकर १०२४ तोला जल में पकावें। जब पकते-पकते आठवां भाग काढ़ा रह जाय तब मैनसिल अथवा सोनामाखी से मारा हुआ तीक्ष्ण लोहा, ४८ तोला खांड, ६४ तोला घृत इन सबको मिलाकर तांबे के बर्तन में जिस प्रकार गुड़ का पाक बनता है उसी प्रकार इसको पकावें, शीतल होने पर ३२ तोला शहद मिला देवें। बंशलोचन, शिलाजीत, काकड़ासिंगी, पीपल, वायविडंग, सोंठ, जीरा, त्रिफला, धनियां, तेजपात, कालाजीरा, मिर्च, नागकेशर प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला लेकर सबको मिलाकर खूब हाथों से मथकर चिकने बर्तन में भरकर रख देवें। मात्रा—१ तोला गाय के दूध से। यह भी रक्तपित्त नाशक है।

शतावरी घृत—शतावर कल्क ७ तोला, दूध, गाय का घी प्रत्येक ३२ तोला, मिश्री ८ तोला लेवें। सबको विधि-पूर्वक मिलाकर यथाविधि से घृत को पकावें। जब पकते-पकते घृत मात्र बाकी रह जाये तब उतार लेवें। २ तोला मात्रा दूध से। रक्तपित्त में लाभदायक है।

अर्केश्वरो रस—मृत ताम्र, रांगा, अभ्रक तथा सोनामाखी भस्म समभाग ले गिलोय के स्वरस की इक्कीस भावना दे पुटपाक करें। इसकी ४ रत्ती की मात्रा वांसा तथा क्षीर विदारी के रस के साथ खावें तो शीघ्र दारुण रक्तपित्त शान्त हो जाय।

सुधानिधि रस—पारा, गन्धक, सोनामाखी और लोह समभाग ले मर्दनकर, लोहे के पात्र में रख कंडों की आग पर रखें और त्रिफला क्वाथ से भावना देवें। इसे रात्रि को उचित मात्रा में प्रयोग करें। रक्तपित्त शान्त होता है।

आमलाद्य लोह—आमला, पीपरा, शक्कर १-१ भाग, लोहभस्म ३ भाग एकत्र मिलाकर खावें। यह भी रक्तपित्त को हरता है।

शतमूलाद्य लोह—शतावर, चीनी, धनियां, नाग-केशर, रक्त चन्दन, सौंठ, मिर्च, पीपर, हरड़, बहेड़ा, आमला, चीता, मोथा, तिल समभाग तथा सर्वसम लोह-भस्म एकत्र कर (एक माष) खावे तो सर्व रक्तपित्त रोग दूर हो जाय।

अभ्रकभस्म, पित्तपापड़ा के रस के साथ सेवन करें। वांसा, दाख और हरड़ का काढ़ा शक्कर मिलाकर पीवें। यह रक्तपित्त रोग में उत्तम रहते हैं।

रक्तपित्तान्तको रस—अभ्रकभस्म, मुण्डलोह, तीक्ष्ण लोह, सोनामाखी, पारा, हरताल और गन्धक समभाग लेकर मुलहठी, दाख तथा गिलोय के काढ़े या रसो से एक दिन तक मर्दन करें तथा मासे भर की वटिकायें बनावें। एक मात्रा मधु तथा शक्कर के साथ खाने से दारुण रक्त पित्त नष्ट हो जाते हैं।

रसामृत रस—पारा एक भाग, गन्धक दो भाग, सोनामाखी, शिलाजीत, गुरुच, चन्दन, दाख, महुआ के फूल, धनियां, कड़ा की छाल, इन्द्रजौ, धाय के फूल, नीम पत्र और मुलहठी एक-एक भाग एकत्र शहद तथा शक्कर में घोटें तथा कर्ष भर की मात्रा में सवेरे ही उठकर धारोष्ण दूध के साथ प्रयोग करें। रक्तपित्त में लाभ-प्रद है।

शर्कराद्य लोह—शक्कर, तिल, हरड़, बहेड़ा, आमला, सौंठ, मिर्च, पीपल, विडंग, चीता और मोथा एक-एक भाग तथा सर्वसम लोह मिला उचित मात्रा में खावें तो रक्त-पित्त को नाश करता है।

समशर्कर लोह—लोह भस्म एक भाग, गोदुग्ध ४ भाग, घृत दो भाग एकत्र ताम्रपात्र में पाक करें। पाक गाढ़ा होने पर, चौथाई भाग वायविडंग का चूर्ण डालकर पाक होने पर उतार लेवें। शीतल होने पर एक भाग शक्कर तथा एक भाग शहद मिला लेवें तथा चिकने पात्र में रख लेवें। मात्रा सहनानुसार अनुपान नारियल का जल। रक्तपित्त का यह उत्तम योग है।

कपर्दक रस—रस सिन्दूर या समभाग पारा गन्धक की कज्जली लेकर एक दिन तक कपास के फूलों के रस से घोटें। फिर उसे एक बड़ी कौड़ी के भीतर पूर्ण करें। इस कौड़ी को अन्धमूषा में रख, उसे एक हांड़ी में रखें तथा हांड़ी का मुंह मुद्रित करें। फिर उसे पुट दे दें। शीतल होने पर निकालकर, उससे दुगुना मिर्च चूर्ण के साथ मर्दन कर, एक रत्ती भर घी के साथ चाटें तथा ऊपर से गूलर का रस तथा कुछ घी पीवें। यह कपर्दक रस रक्तपित्त नाशक है।

नीलोत्पलादि चूर्ण—नीलोत्पल तथा पद्म का केसर एकत्र पीसकर चावलों के धोवन के साथ मिश्री तथा शहद मिला पीवें, तो रक्तपित्त नाश हो जाय।

केवल अडूसे के क्वाथ में शहद मिलाकर पीवें तो रक्तपित्त नष्ट होता है।

आम्रादिहिम—आम की छाल, जामुन की छाल, कोह की छाल इन तीन छालों को एक पल प्रमाण लेकर करें। फिर चूर्ण ६ पल पानी किसी मिट्टी के पात्र में भर के पूर्वोक्त कटी हुई छालों के चूर्ण को उसमें भिगो देवें। रात्रि भर भीगने दें। प्रातःकाल उस पानी को छान शहद मिलाकर पीने से रक्तपित्त दूर होवे।

कामदेव घृत—असगन्ध १ तोला, गोखरु दक्षिणी ½ तोला और चीते की छाल, गिलोय, शालपर्णी, विदारी कन्द, शतावर, पुनर्नवा, पीपरामूल, सोंकभारी के फल, कमलगट्टा, उड़द ये ग्यारह औषध १०-१० पल लेकर एकत्र कूट इसमें चार द्रोण जल मिलाकर काढा करें। जब ¼ जल शेष रहे तब उतार के इसको छान लेवें। फिर जीवनीयगण की औषधि, कूठ, पद्माख, लाल चन्दन, तमालपत्र, पीपल, दाख, कौंच के बीज, नीला कमल, नाग केशर, काली सारिवा, सफेद सारिवा, बला, नागबला, यह तेईस औषधि एक-एक कर्ष लें। कल्क करके पूर्वोक्त काढ़े में मिला देवें। खांड दो पल डालें। सफेद ईख का रस और घृत में दोनों एक एक आढ़क लेके इस काढ़े में मिला देवें। फिर अग्नि पर चढ़ायें। मन्दाग्नि से घृत का पाक करें। जब सब पदार्थ जल कर घृत मात्र रहे तब उतार कर इसको छान लेवें। इसके सेवन से रक्तपित्त रोग दूर होता है।

त्रिफला के चूर्ण को शहद में मिलाकर कुल्ले करने से रक्तपित्त हटता है।

लेप—लाल चन्दन, नेत्रबाला, मुलहठी, गंगेरन की जड़, बघनखी, कमल ये ६ औषधि समान भाग ले दूध में पीस लेप करें तो रक्तपित्त संबन्धी सब रोग दूर होते हैं।

रक्त प्रदर निदान एवं चिकित्सा

रक्त प्रदर का परिचय—जिस व्याधि में योनि मार्ग से, अधिक मात्रा में रक्त निकलने लगता है उसको रक्त प्रदर, असृग्दर आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। यह रक्त का अधिक मात्रा में बहना ऋतु काल में भी हो सकता है और ऋतु काल के अतिरिक्त दिनों में भी हो सकता है। इसमें सभी लक्षण आर्त्तव रक्त के ही पाये जाते हैं।

रक्त प्रदर के कारण—विरुद्ध आहार, शराब पीना, अध्यशन, अजीर्ण, गर्भपात, मैथुन अधिक करना, सवारी पर अधिक चलना, पैदल अधिक चलना, शोक, क्रोध, लंघन आदि का अधिक करना अधिक कर्षण कर्म करने से, अधिक भार ढोने से, कोई आघात लगने से, अथवा दिन में सोने से, वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज कुल चार प्रकार का रक्तप्रदर उत्पन्न हो जाता है। प्रदर, श्वेत प्रदर, ल्यूकोरिया आदि के ये ही सभी कारण माने गए हैं।

रक्त प्रदर के उपद्रव—अधिक मात्रा में रक्त निकलने से दुर्बलता, भ्रम, मूर्छा, मद, प्यास, जलन, प्रलाप, पाण्डुता, तन्द्रा, आक्षेपक, कम्प, आदि वातरोग निद्रानाश, चिड़चिड़ापन, चित्त की अस्थिरता, कृशता आदि उपद्रव भी उत्पन्न हो जाया करते हैं। इससे असाध्य हो जाता है।

रक्त प्रदर के सामान्य लक्षण—सभी प्रकार के, सभी रक्त प्रदरों में, अंग का टूटना, वेदना समान रूप से प्राप्त होते हैं। जलीयांश की कमी, प्यास की अधिकता विशेष लक्षण हैं।

वातज रक्त प्रदर—वायु की प्रधानता से होने वाले रक्त प्रदर में स्राव में रूक्षता, अरुण वर्ण, झागदार होना,

अल्प मात्रा में रक्त आना, अधिक वेदनायें होना, और मांस की धोवन के समान आकार होता है। यह अधिक कष्टकारक भी होता है।

पित्तज रक्त प्रदर—जिस रक्त प्रदर का स्राव पीत वर्ण का, नीले, काले या गहरे रक्त वर्ण का होता हो, उष्ण भी रहता हो, दाह, चोष, ओष, आदि वेदनायें भी रहती हों तथा जो बहुत तीव्र वेग से प्रवाहित हुआ करता हो वह पैत्तिक होता है।

कफज रक्त प्रदर—जिस रक्त प्रदर में आम की बहुलता हो, पिच्छिलता हो, पांडु वर्ण और मांस के धोए हुए जल के समान स्राव वाला हो, यह कफज प्रदर होता है।

त्रिदोषज रक्त प्रदर—जिस रक्त प्रदर में स्राव मधु, घृत, हरताल, मज्जा आदि के वर्ण के समान वर्ण वाला होता है और यह सर्वथा असाध्य माना गया है।

अन्य असाध्य लक्षण—जिस रक्त प्रदर में लगातार रक्त का स्राव बहता रहता हो, दाह, तृष्णा, ज्वर से जो युक्त हो तथा जिसमें रोगिणी स्त्री का रक्त बहुत ही क्षीण हो गया हो तथा दुर्बलता भी विशेष बढ़ गई हो, वह असाध्य होता है।

विशेष वक्तव्य—रक्त प्रदर का आधुनिकी कारण जो प्रायःनिन्यानवे प्रतिशत पाया जाता है, उसके दो भाग हैं। पहला—गर्भपात करना कराना-प्रसव के अनन्तर स्वाभाविक रूप से अपरा स्वयं निकल कर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है। किन्तु गर्भपात कराने से अपरा का कुछ अंश भी अन्दर रह जाता है, वह शुद्ध नहीं हो पाता और न गर्भाशय अपनी पूर्व अवस्था में पूर्णरूप से आ ही पाता है। फलतः वह गर्भाशय मृदु तथा स्थूल बन जाता है, उसमें से रक्त का स्राव बराबर होता रहता है। इसी का परिणाम श्वेत प्रदर भी होता है। शराब पीकर अधिक मात्रा में मैथुन करने से भी श्वेत प्रदर हो सकता है। इसमें सफेद स्राव बहता है। शारीरिक तथा मानसिक दुर्बलता बहुत ही बढ़ जाती है। सिर चकराने लगता है। कटिशूल, टांगों में घुटने से नीचे के प्रदेश में फटने जैसा या फटने जैसा दर्द होने लगता और बेचैनी विशेष होती है। कोई सा भी प्रदर हो उसकी उत्पत्ति में मानसिक उत्तेजनायें दिल का डूबे रहना, अत्यधिक मैथुन, अधिक गर्म पानी में स्नान, अधिक साहस या भावावेश में आजाना आजकल विशेष रूप से सामने है। मानसिक मैथुनेच्छा भी इसका एक प्रमुख कारण है। संकीर्ण वातावरण में रहने से भी इसका प्रादुर्भाव होता देखा गया है।

रक्त प्रदर का चिकित्सा सिद्धान्त—वातज रक्तप्रदर में वातानुबंधि रक्तार्श अथवा वातज रक्तपित्त की भांति चिकित्सा की जानी चाहिए। अथवा रक्तातिसार की भांति भी चिकित्सा काम दे सकती है। इसी प्रकार से पित्तज रक्तप्रदर में पित्त प्रधान रक्तपित्त, पित्त प्रधान रक्तार्श तथा पित्त प्रधान रक्तातिसार की भांति चिकित्सा की जानी चाहिए। कफज रक्तप्रदर में कफ प्रधान रक्तपित्त कफ प्रधान रक्तार्श एवं कफ प्रधान रक्तातिसार कीभांति चिकित्सा की जानी चाहिए। गर्भाशय की शुद्धि के लिए उत्तरबस्ति का भी प्रयोग किया जा सकता है। वैसे तो रक्त प्रदर की चिकित्सा का सिद्धांत रक्तपित्त के ही समान माना गया है।

रक्तप्रदर के लिए विशेष योग—

प्रदरान्तक लोह—हरताल, लोह, ताम्र, बंग, अभ्रक, पीली कौड़ी, इन सबकी समान मात्रा में भस्म ले लें। फिर त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक मूल, वायविडङ्ग, पांचों नमक, चव्य, पीपल, शंख भस्म, वच, हाऊबेर, कूठ, कचूर, पाठा, देवदारु, छोटी इलायची और विधारा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र सम्मिश्रण करलें। फिर आंवले के स्वरस की एक समान भाग में भावना देकर १-१ माशा की गोलियां बनालें। फिर शक्कर, मधु और घृत में मिलाकर सेवन करें। इससे श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर, पीला प्रदर और नीला प्रदर, योनि शूल आदि सभी नष्ट होते हैं। यह रक्तप्रदर के लिए सर्वश्रेष्ठ है।

अनुभूत योग—

प्रदरारि रिपु—(विशेष सम्पादक का)-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक दोनों को समान भाग लेकर सुन्दर कज्जली बनालें। नाग भस्म, वंग भस्म, रजत भस्म, खर्पर भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, कहरवा शमीम पिष्टी, स्वर्णगैरिक, भुना सुहागा, अकीक पिष्टी, राल, मोचरस, वशद

भस्म और शंख भस्म इनका १-१ तोला लेकर खरल में मिलाकर सूखा ही मर्दन कर लें, फिर एक भावना अनार के रस की और एक भावना आंवले के स्वरस की देकर धूप में सुखा लें। फिर पाषाण भेद, त्रिकटु त्रिफला, वायविडङ्ग, चव्य, पीपल, वच, हाऊवेर, कूठ मीठा, लघु एला, आंवला, कुड़े की छाल, हल्दी, दारूहल्दी, मुलैठी, वेलगिरी, धायके फूल, अतीस, इन सबको १-१ तोला लेकर कूट-पीस कर मिला दें। फिर कालीमिर्च और पठानी लोघ के समान क्वाथ की तीन भावनायें दे डालें। तदनन्तर घी-कुंवार का गूदा सब औषधियों के बराबर मिलाकर, कुल प्रयोग का चौथाई मंजीठ का घन, लाजवन्ती का सत्व और नागरमोथा घन मिलाकर खूब घुटाई करें। गोलियां बनने योग्य होने पर १-१ माशा की गोलियां बनालें और सुखाकर पुनः कूट कर समभाग गोदुग्ध मिला कर मर्दन करें और अन्त में १-१ माशा की गोलियां बना लें। तेज धूप में सुखालें। १-१ गोली प्रातः सायं गाय के दूध से सेवन करें। इससे सफेद प्रदर, रक्तप्रदर, नीले रंग का प्रदर और पीले रंग का प्रदर तत्काल नष्ट होता है। यह ध्रुव सत्य है। हाथ कंगन को आरसी क्या, सेवन करके स्वयं ही देख लें। इसके अतिरिक्त कटिशूल, जानुशूल जंघा शूल, पाद शूल, उरुशूल कुक्षिशूल, सम्पूर्ण शरीर का शूल, पुरुषों के गुप्त रोग, योनि शूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पांडु, श्वास, कास और मूत्रसम्बन्धी विकारों पर अचूक काम करता है नेत्र और दांतों को लाभ पहुंचाता है। सभी प्रकार के प्रदर सम्बन्धी उपद्रव भी अवश्य नष्ट होते हैं। वन्ध्या को पुत्र की प्राप्ति होती है। अकामी को काम की तृप्ति होती है। त्रिदोषज एवं असाध्य प्रदर पर भी पर्याप्त सुदीर्घ कालीन नियंत्रण स्थापित हो जाता है। बुढ़ापे की दुर्बलता, नींद की कमी और हाथ पैरों की दुर्बलता अवश्य नष्ट हो जाती है। सम्पूर्ण चर्म विकार, रक्त विकार, रक्तपित्त और रक्त प्रधान अर्श तत्काल वशीभूत हो जाता है। यह हमारा विशेष प्रयोग है। जनता के हित के लिए हमने ज्यों का त्यों प्रदर्शित किया है।

शास्त्रीय चिकित्सा—

रक्त प्रदर—काला नमक, जीरा, मुलेठी और नील कमल (अभाव में नीलोफर) यह प्रत्येक पदार्थ १२-१२ रत्ती लेकर ४ तोले दही में पीसकर उनमें ८ माशे शहद मिलाकर पियें तो वातजन्य प्रदर शमन हो जाता है। मुलैठी १ तोला और मिश्री एक तोला इन दोनों को चावलों के धोवन में पीसकर पिये तो प्रदर नष्ट हो जाता है। कंघी की जड़ का चूर्ण करके मिश्री और शहद में मिलाकर खायें तो प्रदर नष्ट हो जाता है। पवित्र स्थान में स्थित व्याघ्रनखी को उत्तर दिशा से लाकर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में कमर में बांधने से प्रदर नष्ट हो जाता है। रसौत और चौलाई की जड़ को शहद में पीसकर चावलों के जल के साथ पियें तो सम्पूर्ण दोषों से उत्पन्न प्रदर अवश्य नष्ट हो जाता है। सोंठ और भारंगी को पीसकर चावलों के धोवन के साथ पीने से प्रदर और श्वास नष्ट हो जाता है।

अशोकवृक्ष की छाल ४ तोले लेकर अठगुने जल में पकावें। जब पकते पकते जल ३२ तोले रहे तब उसमें ३२ तोले दूध डालकर पकावें। पकते पकते जब केवल दूध ही बाकी रह जाय तब उस दूध को अच्छे प्रकार से शीतल करके उसमें से सोलह तोले दूध लेकर प्रातःकाल पीवें। जो जठराग्नि बलहीन होय तो थोड़ा दूध पीयें, इस प्रकार इस दूध को पीने से तीव्र प्रदर शांत हो जाता है। पृथ्वी में से डाब की जड़ को उखाड़ कर चावलों के जल में पीस कर तीन दिन तक पियें तो स्त्री प्रदर से मुक्त हो जाती है। गूलर के फलों के रस में शहद मिलाकर पीने से और उस पर मिश्री मिला दूध भात का पथ्य करें तो प्रदर नष्ट हो जाता है। तोम्बी के फल का चूर्ण करके उसमें खांड डालकर शहद में लड्डू बनाकर खायें तो प्रदर शांत हो जाता है। दारुहल्दी, रसौत, चिरायता, अडूसा, नागरमोथा, वेलगिरी, शहद, लालचन्दन, और आक के फूल इनका क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पियें तो वेदनायुक्त लाल तथा सफेद प्रदर नष्ट हो जाता है। इसको 'दार्व्यादि क्वाथ' कहते हैं।

रक्तपित्ताधिकार में जो खंडकूष्मांड नामक अवलेह कहा है उसको सेवन करने से भी प्रदर दूर होजाता है।

प्रदरान्तक लोह—लोह भस्म, ताम्रभस्म, हरताल, वङ्ग, अभ्रक, कौड़ी भस्म, सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, वहेड़ा, आमला, चीता, विडङ्ग, पांचों नमक, चाभ, पिप्पली, शंख भस्म, वच, हपुषा, कूठ, कचूर, पाठा, देवदारु, इला-

इची, विधारा, सम भाग ले चूर्ण कर पानी से पीस वटिका बना लें। उपयुक्त मात्रा में शक्कर, घी और शहद में मिलाकर खावें। यह रक्त, श्वेत, पीला, नीला आदि कठिन प्रदर रोगों को कुक्षिशूल, कटिशूल, हर प्रकार के योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पांडु, कठिन श्वास और कास को नाश कर आयु और पुष्टि को करता तथा रज और वर्ण को प्रसन्न करता है।

प्रदरान्तको रस—पारा, गन्धक, चांदी, खपरिया, कौड़ी भस्म, प्रत्येक एक शाण लेवें। लोह भस्म ३ तोले लें। पहले पारे-गन्धक की कज्जली कर, फिर अन्यान्य द्रव्य मिला घीग्वार के रस से एक दिन मर्दन करें और (मटर समान) गोलियां बना लें। इसे सेवन करने से निःसन्देह असाध्य प्रदर भी दूर हो जाता है।

मधुकादि चूर्ण—मुलेठी का चूर्ण, हल्दी का चूर्ण समभाग मिलाकर एक तोला लें। उसके साथ उपयुक्त मात्रा में बङ्गभस्म मिला आक के पत्तों के रस में मिला कर प्रतिदिन सबेरे खाया करें तो प्रदर को भी नष्ट कर देता है।

पुष्करलेह—शोधित रसाञ्जन, बंशलोचन, कांकड़ासींगी, चीता, मुलेठी, धनियां, तालीस पत्र, खैर, सफेद जीरा, काला जीरा, निशोथ, बला, दन्ती, सोंठ, मरिच, पीपर, शिलाजीत, प्रत्येक द्रव्य आधा पल प्रमाण लें, शहद ४ पल, आमला ४ पल, जावित्री, लौंग, काकोली, दाख, तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, खजूर प्रत्येक एक कर्ष ग्रहण करें। सब दवाओं को यथावत् चूर्ण कर मिलावें और शेष में शहद को अच्छी तरह मिला देवें। फिर चिकने वर्तन में रख लेवें। यह लेह श्री देने वाला, सर्व दोषवाला, दो दोष वाला पुराना आदि सब प्रदर, रक्तपित्त, कास, श्वास, अम्लपित्त, क्षयरोग आदि सर्व रोग का नाश कर वल, वर्ण तथा अग्नि को बढ़ाता है। यह पुष्करलेह सब रोगों में काम में लावें।

धात्र्यादि चूर्ण—आंमला, हरड़, रसौत, समभाग चूर्ण कर पानी के साथ पीवें तो अति रक्तस्राव भी उसी तरह बन्द हो जाता है जैसे बांध से पानी का वेग।

नवीन रक्त-प्रदर में प्रयोग रक्तपित्त तथा रक्तातिसार में कही हुई सब चिकित्सा करें।

चौलाई की जड़ को पीस कल्क करके उसमें शहद और रसौत मिलाय चावलों के धोवन से पीवें तो स्त्रियों का रक्तप्रदर नष्ट होवे (इस रोग में स्त्री की योनि से लाल-लाल पानी गिरा करता है)।

सभी प्रकार के प्रदरों के लिए पुष्यानुग चूर्ण, मुद्गाद्य घृत, शीत कल्याणक घृत, शतावरी घृत विशेष उपयोगी हैं। ये प्रयोग चक्रदत्त से लिये गये हैं।

रक्तमेह निदान एवं चिकित्सा

रक्तमेह का परिचय-आयुर्वेद में रक्तमेह का पाठ पैत्तिक प्रमेहों के ही अन्तर्गत आया है। वाग्भट निदान स्थान अध्याय १० में कहा है कि 'विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभे रक्तमेहतः', अर्थात रक्तमेह में रोगी दुर्गन्धपूर्ण, उष्ण लवणयुक्त और लाल रंग का पेशाव किया करता है। इसको आजकल हीमेच्यूरिया कहते हैं। क्योंकि इसमें मूत्र में रक्त कणों की उपस्थिति प्राप्त होती है। यह कष्टसाध्य माना गया है। जब इसमें ज्वर, दाह, प्यास, खम्ल डकार, मूर्च्छा, अतिसार, तोद, वस्ति और लिंग में होने लगे तो यह असाध्य भी हो जाता है। विशेषकर पित्तप्रकृति वाले का यह याप्य या असाध्य रहता है।

चिकित्सा—

क्वाथ—पारिजात, अरणी, नीम, चित्रक की जड़, कत्था, अगर और पाढल का क्वाथ प्रातःकाल सेवन किया जाए अथवा—

पठानी लोध, बड़ी हरड़ का छिलका, कायफल, नागर मोथा का क्वाथ पीवें। अथवा—छुहारा, खम्भारी, तेन्दू की गुठली और गिलोय का काढ़ा रक्तमेह को नष्ट करता है। अथवा—लोध्र, अर्जुन, खस, लाल चन्दन इनका क्वाथ मधु डालकर पीवें। अथवा—आंवला, अर्जुन की छाल, नीम की छाल, कुरैया की छाल का क्वाथ पीवें। अथवा—नीलोफर, इलायची, तिनिश और अर्जुन की

छाल का क्वाथ पीवें। अथवा—दारुहल्दी, मुलैठी, त्रिफला, चित्रक की छाल इन सबको समान मात्रा में लेकर क्वाथ बनाकर पीवें। अथवा—कुटज, विजयसार, दारुहल्दी, नागरमोथा और त्रिफला का क्वाथ पीना चाहिए। अथवा त्रिफला चूर्ण, लोहभस्म, शिलाजीत और हरड़ का चूर्ण इनको सबमें अथवा एक-एक को मधु के साथ सेवन करें। अथवा मधु और गिलोय का स्वरस पीना चाहिए।

न्यग्रोधाद्य चूर्ण—बड़, गूलर, पीपल, सोना पाठा, अमलतास, विजयसार, आम, जामुन, कैथ, चिरौंजी, अर्जुन धव, महुआ, मुलैठी, लोध, वरुणा की छाल, नीम की छाल, परवल की पत्ती, मेषशृंगी, दन्ती, चीते की जड़, अरहर, कंजा, त्रिफला, इन्द्र जौ और भिलावा इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनालें। शहद के साथ चाटना चाहिए और त्रिफला का क्वाथ पीना चाहिए।

विडङ्गादि लौह—वायविडङ्ग, त्रिफला, नागरमोथा, छोटी इलायची, सोंठ, सफेद जीरा, काला जीरा सबको समान भाग कूट पीसकर चूर्ण बनालें। फिर वायविडङ्ग के तुल्य तोल में लोहभस्म मिला दें। मधु के साथ प्रातः-सायं सेवन करें। ऊपर से गिलोय कारस या त्रिफला क्वाथ पीना चाहिए।

त्र्यूषणादि गुग्गुल—त्रिकटु और त्रिफला का चूर्ण समान भाग लेकर इन सबके बराबर शुद्ध गूगुल मिलाकर गोखरू के काढ़े से घोटकर चार-चार रत्ती की गोलियां बनालें। यह गोलियां देश, काल, बल के अनुसार प्रयुक्त की जाती हैं। सामान्यतया दो गोली प्रातः और दो गोली सायं सेवन करें। यह गरम पानी से या गोखरू के काढ़े से सेवन करें। तथा दारुहल्दी, त्रिफला, इन्द्रायण की जड़, नागरमोथा, हल्दी इन सबको नागरमोथा के काढ़े में घोटकर कल्क बनालें और मधु मिलाकर सेवन करें। मात्रा—२ तोला तक की है। अथवा कीकर की जड़ की छाल, खदिर छाल, करंज की गिरी, नागरमोथा, दोनों हल्दी, त्रिफला इन सबका चूर्ण बनाकर गिलोय स्वरस या त्रिफला के काढ़े में घोटकर शहद मिलाकर दो तोला तक सेवन करें।

यूनानी

रक्तपित्त—यूनानी में रक्तपित्त नाम से कोई अलग रोग बताया गया हो ऐसा साहित्य में देखने को नहीं मिलता। हां इतनी बात अवश्य है कि खून की कै, थूक में खून थूकना आदि ऐसी हालतों का वर्णन मिलता है जो वास्तव में रक्तपित्त ही है।

हमने उरःक्षत के अधिकार में थूक में खून थूकने का वर्णन किया है वहीं देखना चाहिये। यहां हम बाकी हालतों के बारे में लिख रहे हैं—

कै उद्दम—खून की कै को कहते है। इस हालत में आमाशय अथवा अन्न नलिका से खून आता है। इसमें वहां की कोई रक्तवाहिनी विदीर्ण हो जाती है अथवा यकृत प्लीहा या सिरा में आघात से रक्त आमाशय में आ जाता है और वमन द्वारा बाहर निकलता है।

यह बात ध्यान रखने की है कि खून थूकने और कै में खून मे आने में यह फर्क होता है कि खून थूकने में खून की कुल्लियां आती है या थूक के साथ मिला हुआ खून आता है वह लाल रङ्ग का होता है और झागदार होता है। इसके साथ खांसी या सांस फूलने की हालत मिलती है। कै उद्दम में जो खून आता है वह काला होता है झागदार होता है। इसके साथ आहार मिला होता है। आमाशय पर बेचैनी या दर्द होता है।

इस हालत में रोगी को उपवास करना चाहिए। रक्त को रोकने वाली दवाओं का प्रयोग करावें। निम्न योग लाभ करते है—

(१) **दम्मुल अखवैन**—कुन्दरु, गिले अरमनी, गुलनार, बबूल का गोंद प्रत्येक १ माशा लें। इनको पीसकर रुब्ब बिही को १ तोला लें। सबको मिलाकर चाटना चाहिए।

(२) अकाकीया, गुलाब का जीरा, गिल अरमनी, गुलनार फारसी प्रत्येक ३ माशा, अफीम १॥ माशा, अजवायन खुरासानी, बबूल का गोंद ३-३ माशा सबको पीस कर ३ माशा ईसबगोल के लुआब में मिलाकर गूंध लें। इसकी गोली ३ माशा की मात्रा में खिलाकर १२ तोला अर्क गावजबान में शर्बत अंजवार २ तोला मिलाकर खिलावें।

(३) **बोल उद्दम**—पेशाब के साथ खून का बहना। इस हालत में कभी पेशाब से पहले कभी पेशाब के बाद

और कभी-कभी पेशाव में मिला हुआ खून आता है।

इस हालत में कुश कहरुवा ५ माशा को शर्बत अन्जवार २ तोला में मिलाकर देना चाहिए। निम्नलिखित चूर्ण का प्रयोग करावें—

"खून खरावा, गुल अरमनी, संगजराहत, गुलनार फारसी, अकाकीया, सफेद कत्था,कुन्दुर, कतीरा, वबूल का गोंद, भुनी हुई फिटकरी, भुना हुआ कुलफा के वीज प्रत्येक ३ माशा, काकनज १ तोला, मिश्री ४। तोला सबको कूट छानकर चूर्ण बनावें। इसे ३ माशा की मात्रा में दें और शर्बत अन्जवार को दो तोला लेकर पानी में मिलाकर पिलावें।

एलोपैथिक

खून थूकना (Haemoptysis)—श्वास के रास्ते में से रक्तस्राव को हिमोप्टीसिस कहते हैं इसका बोध विशेषकर फुफ्फुस से रक्तस्राव होने से होता है। खांसी में निकले रक्त की उल्टी में निकले रक्त से क्या भिन्नता है इसको जानवा आवश्यक है। जिनको निम्न कुछ बातों के आधार पर जाना जा सकता है—

१—हिमोप्टीसिस में गले में टिकलिस सेंसेसन मालूम होता है। खांसी मालूम पड़ती है और फिर रक्त निकलता है। परन्तु हिमेप्टेसिस में इपीगैस्ट्रीयम में दर्द तथा मिचली मालूम पड़ती है।

२—इसके अतिरिक्त इस अवस्था में रक्त लाल, झागदार, क्षारीय और थूक (स्पूटम) से मिला होता है परन्तु रक्त के वमन में इसका रंग गहरा भूरा अम्लीय और भोजन के कणों से युक्त होता है।

३—थूक रक्त से लालिमायुक्त हो सकता है कई दिनों तक परन्तु हिमैटेमेसिस की तरह काली (तारी) टट्टी नहीं हो सकती है।

४—पल्मोनरी ट्यूवर क्यूलोसिस ब्रॉकोएक्टेसिस, इम्फीसिमा या कन्जेस्टिव हार्टफेल्योर की स्थिति पाई जाती है परंतु डिसपेप्सिया, एसीडिटी तथा दर्द का कोई पिछला इतिहास नहीं मिलता है। हिमोप्टीसिस के साधारण कारण निम्न हो सकते हैं।

(अ) लैरिंक्स—चोट और घाव (टी. वी.), सिफलिस और मालिगनैन्सी।

(ब) ट्रैकिया बहुत कम; कोई नई ग्रोथ हो सकती है।

(स) ब्रॉकाई—ब्रॉकीएक्टेसिस, हूपिंग कफ, फारन वाडी, एन्यूरिज्म के कारण प्रेसर इरोजन या ब्रॉकोजेनिक कारसीनोमा।

(द) फुफ्फुस (लंग्स)—टी० वी०, न्यूमोनिया, इनफेक्सिन, हार्ट फेल्योर से एक्यूट कंजेक्सन, एवसिस, गैंग्रीन, इन्जरी, सिफलिस, एमीबियेसिस, लंगस तथा अन्य पैरासाइटिक इन्फेक्शन।

(य) कुछ रक्त के रोग—नवजवान में विशेष कारण टी० वी०, वड़ों में देर तक रहने के कारण ब्रॉकी एक्टेसिस वृद्ध में ब्रॉकाई की मलिगनेन्ट ग्रोथ से होता है।

निदान—इतिहास, लक्षण, रक्त का प्रकार, स्पूटम, फिजिकल साइन्स, एक्सरे, लैरिंगोस्कोपी तथा ज्वर के आधार पर किया जा सकता है।

चिकित्सा—पूर्ण आराम, वर्फ के टुकड़े चूसने को तथा फिनोवार्वीटोन १-२ ग्रेन का अधिकांशतः प्रयोग किया जाता है। इससे इक्साइटमेंट दूर हो जाता है। परन्तु मारफीन का प्रयोग करने से खांसी कम होकर रक्त शरीर के अन्य किसी भाग में जमा होकर हानि पहुंचा सकता है। कफ लिक्टस का प्रयोग हितकर है। यह इरीटेटिंग कफ को कम करता है और परेशानी को दूर करता है। यह लिक्टूस निम्न प्रकार का है—

१—कैम्फोरेटेड टिंचर आफ ओपियम ३० बूंद। १—आक्सीमल सिल्ली १२० बूंद। ३—कोडीन या आयोडिन १/३ ग्रेन। ४—सीरप टोलू ६० बूंद।

यदि हीमोप्टीसिस में स्पूटम के साथ एक पतली सी लकीर बनती है तो कोई विशेष चीज की आवश्यकता नहीं है। यदि अधिक मात्रा में हीमोस्टेटिक्स का प्रयोग होता रहता है। विटामिन 'के' का प्रयोग कैपीलिन के रूप में या सिनकाविट १० मि. ग्रा. मुंह से अथवा अन्तः मांस पेशी वेध से देने से लाभकारी है। यदि वहुत अधिक खून जाता हो तो ब्लड ट्रांसफ्यूजन आवश्यक है और रोगी को रोग की तरफ ही करवट लिटाना चाहिये। आर्टीफीसियल नीमोथोरैक्स से भी रक्तस्राव वंद हो जाता है। इसी बीच में हिमोप्टीसिस के कारण का पता लगाकर उसकी उचित चिकित्सा करनी चाहिए।

Haemate men's

अवक रक्त वमन से गैस्ट्रोडयूओडिनल अल्सर का आभास होता है। बहुत कम अवस्था में एसोफैंजियल अल्सर, लीवर की सीरोसिस, स्प्लीनिक एनीमियां, गैसट्रिक कार्सीनोमा इत्यादि भी हो सकते हैं।

१—पेट से-गैसट्रिक अल्सर और कैन्सर—कैन्सर की अपेक्षा अल्सर में ब्लीडिंग अधिक होती है। पहले में रक्त का रंग कम बदला होता है पर कभी कभी काफी गहरा होता है। परन्तु कैंसर में काफी गहरा होता और लगातार बना रहता है।

कोरोसिव या इरीटैन्ट प्वाइजनिंग—स्ट्रांग एसिड एवं अलकली तथा आरसनिक कभी कभी एस्परीन भी इसका कारण हो सकता है।

गैस्ट्राइटिस रक्त कंजेस्टेड तथा कटे-फटे म्युकस मेम्ब्रेन से आता है।

चोट, धक्का, घूसा, तथा छुरा इत्यादि के इपी गैस-ट्रियम पर लगने से गैसट्रिक आरटेरिओल के फटने से रक्त आजाता है।

२. ड्योडिनिल अल्सर—रक्तस्राव पाइलोरस के पीछे के भाग में होने के कारण हिमेन्टेसिस कम होती है परंतु मेलिना अधिक होता है।

३. पोर्टल हाइपरटेंसन—जब गैस्ट्रिक और एसीफेंजि-यल वेन्स के वेरीकोसिटी के कारण वे एसोफेंजियल के तरफ फटकर रक्तस्राव करती है तथा डी कम्पेनसेटेड माइट्रल डिजीज में भी यह दशा होती है।

४. सिसटेमिक डिजीजेज से-कुछ तीव्र ज्वरों की अवस्था में जैसे चेचक हिपेटिक, नेक्रोसिस, लेप्टोस्पीइरा इन्फेक्सन तथा पीत ज्वर। वैसकूलर अवस्था हाईपरटेंसन, जीर्ण नेफ्राइटिस, एथेरोमा. आफ गैस्ट्रीब्लड वेसेल्स।

सिसटेमिक डिजीजेज जैसे काला ज्वर, स्करवी, पर-प्यूरा एनिमियां, ल्यूकीमियां, हिमोफीलिया।

५. पेट में बाहर से लाया गया रक्त—१. स्वलेड ब्लड २, लीवर के एरीबिक एबसेस का फटना इत्यादि कारण से रक्त व पस का पेट में आकर वमन के रूप में निकलता है।

चिकित्सा-पूर्ण आराम फौरन एक छोटा सा बरफ का बैग इपीगैस्ट्रियम पर रखना और मारफीन सल्फेट ¼ ग्रेन का सूचीवेध आवश्यक है।

रक्तस्राव की मात्रा। उसके लक्षणों को जैसे सिंकिंग पेलार, साफ्ट क्विक पल्स, लो ब्लड प्रेसर, हिमोग्लोबीन की कमी के आधार पर ब्लडग्रुप का पता लगाकर उसको ब्लड ट्रांस फ्यूजन करना चाहिए। इरीथ्रोसाइट वाल्यूम तथा प्लाजमा वाल्यूम का पता करके जब तक हिमोग्लोबीन ४०% रहे रेक्टल ग्लूकोज देते रहना चाहिए परन्तु इससे कम होने पर ड्रिप द्वारा ब्लड देना हितकर है। गैस्ट्रो-ड्योडिनल अल्सर ठंडे दूध के ड्रिप से भी ठीक किये गये हैं। रक्ताभाव की पूर्ति के लिये लौह तथा अन्य रक्तवर्धक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

नासागत रक्त-पित्त (Epistaxis)

नाक सामने व नीचे सेप्टम तथा वेस्टीव्यूल के पास एक छोटे स्थान से जिसे लिटिल्स एरिया कहते हैं वहां से रक्तस्राव की अवस्था को इपीसटैक्सि कहते हैं। कभी कभी रक्त नाक से निकल कर गले में चला जाता है और खां-खने पर बाहर आता है जिससे हिमोप्टेसिस का भ्रम हो सकता है।

स्थानीय कारण—(अ) चोट—किसी बाहरी चोट से खोपड़ी के आधार का अस्थिभंग।

(ब) न्यूग्रोथ—पानीपस, एन्जीओमा और मलीगनेन्ट खोपड़ी के आधार का अस्थि भंग डिजीज।

(स) घाव—सिफीलिटिक, ट्यूबरक्यूलस या लेप्रस।

(द) डिफ्थीरिया का तीव्र प्रसार, इन्फ्लूएन्जा इत्यादि।

जनरल कारण—(अ) हाई ब्लडप्रेसर, सेरेब्रल कंजे-सन, वेनस कंजेसन, माइट्रल फेल्योर, पर्वत व जहाज पर चढ़ना। (ब) कालाजार, परप्यूरा, परनीसियस एनिमियां, ल्यूकीमियां तथा हिमेफीमिया, स्कर्वी, सिरोसिस आफ लीवर एक्यूट और रिलैप्सिंग फीवर्स (स) हेरीडेटरी हेम-रेजिक।

डिस्ट्राफी—डायलेटेड वेन्यूल्स चेहरे के ऊपर नाक तथा मुंह पर कभी कभी अंगुलि के अग्रभाग पर भी।

अवस्था के अनुसार साधारण कारण-(अ) पास्ट-

मिडिल लाइफ—हाईब्लडप्रेसर तथा एपोप्लेक्सी से पहले।

(ब) मिडिल लाइफ—न्यूग्रोथ (स) यंग एडल्टसहेरीडिटरी टेलेंजिक्टोसिस (द) चाइल्डहूडइन्जरी, पालीपस, फारेन बाड़ी, नजल डिफ्थीरिया, ज्वरावस्था, कंजेनीटल सिफलिस तथा काला ज्वर।

चिकित्सा—रक्तस्राव का बिन्दु सामने ही स्थित है अतः थोड़ा सा रुई का प्लग लगाकर ऊपर से दबाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। यदि वार वार हो तो एड्रीनलिन क्लोराइड सलूसन का काटन प्लग लगाना हितकर है। अथवा गलवैनोकाटरी से उस प्वाइन्ट को टच कर देना चाहिये। रोगी को सीधा बैठाकर उसका मुंह कुछ आगे को झुका रखते हैं जिससे रक्त श्वास नली में न जाय। प्राइमरी कारण का पता लगाकर उसकी उचित चिकित्सा करनी चाहिए।

रक्तमूत्रता (Haematuria)

मूत्र में रक्त आने की अवस्था को हीमेच्यूरिया कहते हैं। यह स्थान भेद से चार प्रकार की होती है। जैसे—१. वृक्क हीमेच्यूरिया २. मूत्राशय हीमेच्यूरिया ३. मूत्रमार्ग हीमेच्यूरिया ४. मूत्रमार्गातिरिक्त हीमेच्यूरिया।

१. किडनी हीमेच्यूरिया—इस अवस्था में रक्त मूत्र से फौरन ही मिला होता है।

कारण—(अ) कलकुलस (आकज्लेट या यूरेट) एक्यूट नेफ्राइटिस, पाइलो नेफ्राइटिस, ट्यूबर कुलोसिस अथवा वैसीलरी इन्फेक्शन, पाली सिस्टिक रोग, कैंसर, एंजीओमा, फाइलेरिएसिस, इनफार्कट, इन्जरी (ब) सिस्टेमिक कारण—कंजेस्टिव हार्ट फेल्योर, इसेन्सियल हाइपरटेंसन अथवा क्रानिक नेफ्राइटिस (स) हमरेजिक डीजीजेज—परप्यूरा, हीमोफीलिया, स्कर्वी, ल्यूकोरिया, हमरेजिक स्माल पाक्स (द) अधिक मात्रा में सल्फाड्रग्स देने से कभी-कभी। (न) कभी-कभी अज्ञात कारण से जो एक तरफ की होती है जिसमें हीमेंजिओमा या वेरीकोज रिनल वेन्स भी हो सकती है।

२. मूत्राशय से रक्तश्राव—यदि रक्तमूत्र से मिला हुआ है और वार-वार पेशाव करने की इच्छा हो तो इसे मूत्राशय से समझें। इसका कारण अर्बुद,अश्मरी, टी०वी० तीव्र मूत्राशय शोथ और पौरुष ग्रन्थि के अर्बुद से वेनस स्टेसिस तथा चोट।

३. मूत्रमार्ग से रक्तश्राव—यदि रक्त मूत्र के प्रथम भाग में मिला है तो इसे मूत्रमार्गीय समझें। इसका कारण यूरेथ्राइटिस, कलकुलस, प्रासटेट के वरिक्स का फटना, प्रासटेट की मलीगनेन्सी तथा इन्जरी।

४. मूत्रमार्गातिरिक्त रक्तश्राव—इसमें रक्त मूत्रमार्ग के बाहर से आता है जैसे किसी फोड़े का प्रास्टेट में फूटना इत्यादि। किसी मलिगवेन्ट ग्रोथ का बढ़ना जैसे गर्भाशय; उण्डुक इत्यादि, बहुत ही कम अवस्था में छुद्र आन्त्र का क्षयज व्रण इत्यादि।

यदि रक्तस्राव अधिक है तो कारण अर्बुद हो सकता है। साथ ही ट्रोमा कलकुलस, हाइपरटेंशन या टी० वी० की भी अवस्था हो सकती है। यदि बराबर तथा कम रक्त आ रहा है तो तीव्र वृक्क शोथ या मेलिगनेन्ट डिजीज हो सकती है।

मूत्र का रङ्ग—रक्त की मात्रा के अनुसार विभिन्न प्रकार का हो सकता है। यदि रक्त की मात्रा अधिक है तो यह गहरा लाल या काला हो सकता है। यदि कम है तो हल्के रंग का या धुआं जैसा हो सकता है। सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की सहायता से लाल रक्त कण देखे जा सकते हैं।

निदान—इतिहास, मूत्र परीक्षा, अवस्था, लिंग, लक्षण स्थानिक परीक्षण, सिस्टोस्कोपी, पाइलोग्राफी, कथेटराइजेसन तथा जनरल इक्जामिनेशन करके तब निदान किया जा सकता है।

चिकित्सा—रोगी को तुरन्त पूर्ण आराम देकर, किस कारण से रक्तस्राव हो रहा है उसे दूर करना ही अति आवश्यक है। यदि कैपीलरी में से थोड़ा-थोड़ा रक्तश्राव हो रहा हो तो ऐसी अवस्था में सलाइन डाईयूरैटिक मिक्सचर बहुत ही सहायक है।

मस्तिष्कगत रक्तश्राव (Cerebral Haemorrhage)

सेरेब्रल हेमोरिज ब्रेन सब्सटेंस या एक वेन्ट्रिकल में किसी एक आर्टेरी या कैपीलरीज या एक एन्यूरिज्म और अधिकतर एक कार्टिकल वेन या वेनस साइनस के फटने के कारण होता है।

कारण तथा सम्प्राप्ति की दृष्टि से—यह प्राइमरी या सेकेण्डरी हेमोरेज हो सकता है। प्राइमरी हेमोरेज में ४० वर्ष से ऊपर की अवस्था में हाईब्लड प्रेसर, हेड इन्जरी, सेरेब्रल ग्लायोमा, पाली साइथीमिया

तथा एक्यूट ल्यूकीमिया तथा सेकेन्ड्री अवस्था में थ्राम्बोसिस या किसी अवेरेंट वेसल एन्यूरिज्म का ब्रेन सब्स्टेंस में फटने के कारण हो सकता है। यह रक्तस्राव अधिकतर इक्सटरनल कैपसूल के आस पास होता है। कभी-कभी कल कराइल रीजन और पांस के पास भी होता है। रक्तस्राव होकर मस्तिष्क के तन्तुओं को जगह जगह छेद कर रक्त बाहर निकलने का प्रयास करता है। इस प्रकार बढ़कर यह वेन्ट्रिकल में जा पहुँचता है। परन्तु सतह तक बहुत कम अवस्था में पहुँच पाता है। और अन्त में प्राणहर है। कुछ ही घंटों में या अधिक से अधिक एक-चार घण्टा में।

एन्यूरिज्म की अवस्था में रक्तस्राव बहुत थोड़ा-थोड़ा दो-एक बार हो सकता है परन्तु इसके फटने पर तुरन्त १० मिनट के अन्दर मृत्यु हो जाती है।

निदानीय अवस्था—यदि कोई बड़ी रक्तवाहिनी फट जावे तो यह अवस्था एकाएक उत्पन्न हो जाती है। पर यदि छोटी फटी है तो यह क्रिया धीरे-धीरे चलती है। इन रक्त वाहिनियों का फटना किसी शारीरिक या मानसिक थकान के बाद होता है और वमन के अतिरिक्त कोई विशेष लक्षण नहीं मालूम पड़ते। रोगी असहाय और बेहोशी की अवस्था में पड़ा होता है। श्वास अनियमित चलता है। हाथ पांव ढीले पड़ जाते हैं पैरेलिसिस हो जाती है। सभी रेफलेक्सेज समाप्त हो जाती हैं। मूत्र रुक जाता है परन्तु बिना कन्ट्रोल के मल निकल जाता है आंख टेढ़ी हो जाती हैं। प्रारम्भ में कोमा होने पर यह स्थिति बदल जाती है। प्यूपिल्स पहले छोटे-बड़े दिखाई देते हैं परन्तु बाद में खूब फैल जाते है और रोशनी का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। नाड़ी मन्द तथा पूर्ण होती है तथा ब्लड प्रेसर बढ़ जाता है परन्तु घातक अवस्था में अन्त के समय नाड़ी तेज व कमजोर तथा रक्तचाप कम हो जाता है। आकृति नीलिमायुक्त होती है, त्वचा की गर्मी कम हो जाती है तथा बदन पसीने से भीग जाता है। सेरीब्रोस्पाइनल फ्लूड में रक्त आ जाता है। और वहां पर टेंसन अधिक होता है। वेन्ट्रीकुलर तथा मेडुलरी हेमोरेज से तुरन्त मृत्यु हो जाती है। रोग की घातकता पहले बेहोशी तथा किसी स्टुमुलस के प्रति प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। दूसरे हाथ पांव के ढीलापन तथा तीसरे स्पीरेटरी फेल्योर किस(डिग्री) अवस्था में है।

रक्तस्राव किस तरफ से है इसको निम्न आधार पर किया जा सकता है—

१. स्टूमुलेसन से कितना रेस्पांस मिलता है। २. कार्नियल रेफलेक्स ३. मांसपेशी तथा टेंडन के टोमीसिटी ४. दोनों तर— के प्लान्टर तथा एवडामिनल रेफलेक्सेज हेमोप्लेजिमा तथा आंखों के डेवीमेसन से पता किया जा जा सकता है।

प्रोगनोसिस—सेरेब्रल हेमरेज का रोगी कभी रीकवर नहीं होता (ठीक नहीं होता)। यदि बड़ी वेसेल के फटने से हुआ है तो बहुत शीघ्र, यदि छोटी से हुआ है तो इसके लक्षण जल्दी जल्दी से उत्पन्न होने लगते और सबके उदय हो जाने से शीघ्र ही अन्त हो जाता है।

रक्त-प्रदर

श्री डा. वनारसीदास दीक्षित H. M. D. S.

रक्त प्रदर स्त्रियों के गर्भाशय का विलष्ट और कष्टकारी रोग है। भारत में इस रोग से प्रायः ७०% से भी अधिक महिलायें पीड़ित पाई जाती हैं। शहर व देहात सभी जगह और धनी निर्धन सभी घरों में इसने अपना विस्तार बढ़ाकर, सभी वर्ग की महिलाओं को अपना शिकार बना रखा है। अतः इसकी चिकित्सा करने से पूर्व इस रोग से सम्बन्धित स्त्री शरीर की स्थितियों और प्रवृत्तियों की कुछ परिचयात्मक उचित जानकारी और इस मौनव्रत धारी रोग की उत्पत्ति कारण व लक्षणों का भी यथोचित साधारण ज्ञान प्राप्त कर लेना एक दृष्टि से ठीक ही रहेगा। अतः इसका संक्षिप्त परिचय देना भी प्रसंगोचित ही होगा।

प्रायः देखने में आता है कि जब कन्यायें आठ दस वर्ष की आयु की होती हैं तो उनमें से अधिकांश ऐसी कन्याओं के गुह्य भाग में एक प्रकार का स्निग्ध और तरल पदार्थ की उत्पत्ति होना आरम्भ हो जाती है। जिनकी

डिम्ब ग्रन्थियां विशेष प्रवर्तनशील और संवेदनशील होती हैं। यह तरल योनोत्तेजक, कामानुभूतियों के ही कारण द्रवित हुआ करता है। इसे रतिजावेगजन्य या यौनसंवेदन जन्य प्रजनन-स्पन्द (Oestrogen) का स्राव माना जाता है।

संभवतः इन्हीं परिवर्तनों को देखकर कुछ पूर्व पुरखाओं ने "अष्ट वर्षा भवेत् गौरी" इत्यादि शब्दोच्चार किये हों। परन्तु यह उनकी विकसित अवस्था नहीं मानी जा सकती है। हां यहां से आगे के समय में धीरे-धीरे उनकी युवावस्था का आरम्भ समझना भी कुछ अनुचित न होगा।

शरीर की कुछ अन्तःस्रावी ग्रंथियां क्रियाशील होने लगती हैं। उनके स्त्री सुलभ अङ्ग प्रत्यङ्गों का वर्द्धन और विस्तृण होना आरम्भ हो जाता है। स्तन वृद्धि, श्रोणि विस्तृत, गर्भाशय विकाश, कामाद्रि या भग संधियों में केशोत्पत्ति इत्यादि चिन्हों का प्रादुर्भाव दृष्टिगत होने लगता है। साथ ही अन्यान्य लज्जा-शीलता इत्यादि स्त्री लक्षणों की अभिवृद्धि में भी स्भाविक रूप में ही परिवर्तन दीखने लगता है। परन्तु यथार्थ रूप में स्वस्थ और अविकृत कन्याओं की यौवनावस्था की अवधि १४ से १६ वर्ष तक की आयु में ही मानी जाती है। यही उनकी किशोरावस्था है और उनके परिपूर्ण यौवन की सूचना है। इस अवस्था में उनकी समस्त इन्द्रियां और अवयव परिपुष्ट हो जाते हैं। साथ ही गर्भाशय भी पुष्ट व पूर्ण विकसित हो जाता है। उनके डिम्बाशय में डिम्ब की उत्पत्ति होकर आर्तव प्रवृत्ति भी आरम्भ हो जाती है।

इस विषय को भली भांति समझने के लिये प्रथम गर्भाशय की रचना, स्थान, स्थिति, आकृति व क्रियाओं का भी सामान्य ज्ञान प्राप्त करना जरूरी ही है।

गर्भशिय को जरायु, बच्चेदानी और Uterus इत्यादि कहते हैं। गर्भाशय, योनि नलिका के अन्त में गर्भाशय मुख से संलग्न होकर वस्ति गह्वर से उदरच्छद कला (Peritonium) से सम्बन्ध है और मूत्राशय के पीछे व मलाशय के सामने अर्थात् दोनों के मध्य में लटका हुआ होता है। इसकी आकृति नाशपाती फल के सदृश्य एक चिपटे से थैले के समान है। इसकी लम्बाई लगभग ३ इञ्च है चौड़ाई करीब २ इञ्च और मोटाई १ इञ्च के प्रमाण में होती है। गर्भाशय की दीवारें श्लैष्मिक कला से बनती हैं जिनमें कुछ रसस्रावी ग्रन्थियां स्थित हैं। इसकी रचना कुछ लचकदार प्रसरणशील तन्तुओं से हुई है।

गर्भाशय के दोनों ओर दोनों पार्श्वों में १-१ नाली होती है। डिम्ब प्रणाली, बीज वाहिनी नली (Fallopian) इत्यादि भी कहते हैं। यह नालियां गर्भाशय से निकल कर कुछ ऊंची उठी हुई दोनों पार्श्वों में फैली हुई हैं और बीज ग्रन्थी ऊपर झालर की तरह लटकी हुई उन्हें आच्छादित करती हुई कुछ आगे तक निकली हुई हैं। इन नालियों के अन्त में दोनों ओर के प्रति पार्श्व में १-१ डिम्बग्रन्थी, बीज ग्रन्थी, डिम्बाशय या Ovary संलग्न होती हैं। इनकी आकृति बादाम के सदृश्य या कबूतर के अण्डे के समान होती है। इसका रङ्ग लाल होता है और इनमें बहुत सी कोषिकायें होती हैं जिनमें प्रतिमास पर्याय क्रम से एक-एक बीज, या डिम्ब (Ovum) विकसित होता है और परिपक्व होकर डिम्ब ग्रन्थी का भेदन करके बाहर निकलकर डिम्ब प्रणाली में उतर जाता है। इस क्रिया को बीजावतरण या Ovulation कहते हैं। इसी डिम्ब प्रणाली में उतरे हुए डिम्ब से शुक्रकीट (Spermatozoon) मिलकर एक हो जाता है। इसी एकीकरण को गर्भस्थिति (Pregnency) कहते हैं। इसके पश्चात् यह गर्भस्थ जीव भौतिक-सुखों की प्रेरणा से प्रेरित ६ मास और ६ दिन की अवधि की अपनी कड़ी कैद गर्भाशय के इसी बन्दी खाने में भोग-भोगकर बिताता है।

डिम्बाशय में जब डिम्ब का विकास होना आरम्भ होता है तो गर्भाशय की अन्तः कला का रक्त संचालन बढ़ जाता है और गर्भाशय के निम्न स्तर में रक्त संचित होता रहता है। इस संचय के कारण गर्भाशय की अन्तः कलायें घर्षित होती रहती हैं और इन्हीं घर्षणों के कारण श्लैष्मिक धरा कला की त्वचायें छिलकर विदीर्ण हो जाती हैं और उनमें से एक प्रकार का लाल रंग का तरल पदार्थ स्रवित होकर योनि मुख से बाहर निकलता है अर्थात् डिम्बोद्भव के कारण गर्भाशय का तलस्थ अग्रभाग और योनि स्थित झिल्लियों के भीतर फैली हुई रक्त-केशिकायें

विदीर्ण होकर उनमें से रक्तवर्णीय तरल पदार्थ का स्राव आरंभ होता है जो योनि मार्ग से बाहर निकलने लगता है। इसे ही आर्तव कहते हैं। रजः, ऋतु, पुष्प, असृक् महावारी, हैज इत्यादि नामों से भी पहिचाना जाता है। एलोपैथ वाले इसे (Menses, Menstruation, Monthly course) किंवा (Monthly period) वगैरह नामों से पहिचानते हैं। नीरोगावस्था में इस स्राव की प्रमाण राशि कम से कम ३ औंस और अधिक से अधिक ६ औंस प्रति ३-४ दिन तक हुआ करती है। शुद्ध स्राव का रंग रक्त गुंजा फल के समान या शशक रक्त के सदृश्य अथवा इन्द्र वधु के जैसा लाल रंग का होता है। इस स्राव में रक्त के अतिरिक्त गर्भाशय की और योनि पथ की सतह की श्लेष्मा (Mucous), गर्भाशय की शीर्ण कोषाएँ भी मिली रहती हैं। यह आर्तव रक्त अन्य साधारण रक्त के समान जमता भी नहीं व उसकी अपेक्षा इसका घनत्व भी अल्प होता है। इसमें खटीक, चूना या (Calcium) का प्रमाण कुछ विशेष रूप में पाया जाता है।

पूर्ण स्वस्थ व सबल कन्याओं का १४ से १६ वर्ष में ही रजः स्वला होना ठीक समझना चाहिये। मनुस्मृतिकार ने १६ वर्ष की कन्या से २५ वर्ष के नवयुवक का विवाह बन्धन का भी इसीलिये संकेत किया है। परन्तु देश काल के अनुसार इसमें अपवाद आना भी असम्भव नहीं है और आज के विकृत युग में तो यह बातें पूर्ण अपवादात्मक बन चुकी हैं।

आज की महिलाओं में यह स्राव सबमें समान रूप से होना चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं रहा किसी को कम और किसी को अधिक उम्र और प्रमाण में भी आरंभ हुआ करता है और ३-४ दिन तक स्रवित होकर फिर आगामी (Period) तक बन्द रहता है।

यह मासिक चक्र भी चान्द्रमास के अनुसार प्रति २८ दिन का होता है। तो भी कई महिलाओं को कुछ कम या अधिक दिनों में भी स्राव आरंभ हुआ करता है। प्रायः २४ दिन से ३० दिन की अवधि पर भी आगामी मासिक स्राव हुआ करता है। इस प्रकार मासिक चक्र के रूप में यह स्राव प्रतिमास प्रति महिला को हुआ ही करता है।

इस रजः स्वला होने की किशोरावस्था को उर्दू वाले शबाब आना भी कहते हैं। शबाब आने के बाद स्वाभाविक रूप में ही लड़कियों के स्वभाव, रहन, सहन, चाल चलन, व लज्जा-शीलता इत्यादि लक्षणों में भी काफी वृद्धि पायी जाती है। इसीलिये किसी ने कहा है— कुछ लड़कियाँ इस स्राव के बारे में पहिले से ही अनजान होती हैं। उनको इसके बारे में बिल्कुल पता नहीं होता। कतई अनभिज्ञ होती हैं। जब उनको यह स्राव स्रवित होना आरंभ होता है तो वह इसे देखकर हैरान हो जाता हैं। परन्तु संकोचवश किसी को कुछ कहती भी नहीं। दिल ही दिल घबराती रहती हैं। स्वास्थ्य भी ठीक दीखता है परन्तु बला समझ में नहीं आती। कुछ कहा भी न जाय चुप रहा भी न जाय ऐसी अवस्था हो जाती है। जब किसी अन्य स्त्री को समझाती हैं तो वह स्त्री इस अनजान बालिका को समझाकर उसकी घबड़ाहट को कम कर देती है। और अब यह अबोध बालिका खुद को जिन्दगी के दूसरे तवक्के में पहुंचा हुआ पाती है। यह आर्तव क्रम गर्भाशय की गर्भ ग्रहण क्षमता का द्योतक है।

इस प्रकार यह आर्तवस्राव महिलाओं में प्राकृतिक रूप में होना कोई रोग या बला नहीं समझना चाहिए। अपितु स्त्री शरीर के दूषित घटक इस प्रकार प्रभावित होकर उनके शरीर की शुद्धि ही समझनी चाहिए।

इस प्रकार इस स्राव का सिलसिला स्त्रियों के ४५ से ५० वर्ष की आयु तक चलता रहता है। इसके बाद में यह स्राव स्वयं लुप्त हो जाता है और फिर नहीं होता। इसे रजोनिवृत्ति या Menopause कहते हैं। हां कभी-२ रजोलोप होने के बाद किसी विशेष विकृति के कारण यह स्राव अचानक ही पहिले की अपेक्षा भी अधिक प्रमाण में स्रावित होकर फिर बन्द हो जाया करता है।

बता चुके हैं कि मासिक स्राव प्रतिमास केवल ३-४ दिन तक ही प्रवाहित होता है और लगभग ३।८ औंस की मात्रा में ही प्रवाहित होता है। अधिक मात्रा में या अधिक अवधि तक नहीं होता है। इस मात्रा में व अवधि में प्रवाहित होने वाले इस स्राव को कोई रोग या बला नहीं समझना चाहिए। यह स्त्री स्वास्थ्य की भरपूर निशानी है।

जब ३-४ दिन की अपेक्षा, अधिक समय तक अथवा अधिक मात्रा में यह आर्तव स्रवित होता है तो उसे रोग

समझा जाता है। जिसे अत्यार्तव अतिरज: Menorrhagia इत्यदि कहते हैं।

लज्जा सुलभ स्वभाव के कारण स्त्रियां इस स्राव-बाहुल्य का कुछ पता लगने नहीं देतीं और छिपा-छिपाकर ही रखने का प्रयत्न करती रहती हैं। वह विचारी नहीं समझतीं कि यह बीमारी एक प्रज्ज्वलित चिता है जिसमें वह स्वयं को जला रही हैं।

धीरे-धीरे रोग बढ़ता ही जाता है और प्रतिदिन उग्रता धारण करता ही रहता है। इस प्रकार स्राव के रूप, रङ्ग, गन्ध इत्यादि में भी विकृति आनी आरम्भ हो जाती है। स्राव काला, पीला, लाल, नीला और छिछड़ेदार व दुर्गन्धयुक्त होकर भयंकर रूप धारण कर लेता है। धीरे-धीरे स्राव की गति बढ़कर निरन्तर चालू रहने लगता है। इस प्रकार अविरत स्राव के कारण रोगिणी क्षीण हो जाती है और फ़िर—

मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।
हो ऐसे मर्ज पर लानत खुदा की॥

कहना न होगा कि जब यह रोग विकृतावस्था में पहुंचता है बहुधा इसकी चिकित्सा असाध्य सी हो जाती है। यदि समय पर उचित चिकित्सा प्राप्त न हुई तो रोगिणी अधिकाधिक जीर्ण होकर अस्थि-पंजर हो जाती है और अन्त में काल कवलित होने का समय आ जाता है। इसी रोग का नाम रक्त प्रदर है। इसे Metrorrhagia कहते हैं।

एलोपैथी वालों ने रक्तस्राव की भिन्न-भिन्न अवस्थायें मानी हैं। (1) Menorrhagia, (2) Metrorrhagia, (3) Polymenorrhoea,(4) Metropathia Haemorrhagica वगैरह। परन्तु आयुर्वेदिक दृष्टि से रक्तस्राव की सभी अवस्थायें एक ही प्रकार में समाविष्ट हैं। कारण सभी में रक्तस्राव होता है। अत्यार्तव, अनियमितार्तव, विकृतार्तव इत्यादि सभी में रज: विकृति होती है। कुछ विशेष कारणों के अतिरिक्त योनि-पथ से होने वाले रक्तस्राव की सभी विकृतावस्थायें इसी रक्त-प्रदर में गिनी जाती हैं।

ठीक प्रकार से समझने के लिये इसके (१) नियमित रज: बाहुल्य और (२) अनियमितार्तव इस प्रकार इसके दो भाग कर सकते हैं। नियमित रज: बाहुल्य का स्राव ऋतुचक्र के दिनों में ही कुछ अधिक प्रमाण में या अधिक अवधि तक स्रवित होता रहता है। जबकि अनियमितार्तव का कोई निश्चित समय या प्रमाण नहीं होता है। ऋतुचक्र के अतिरिक्त समय में भी अनियमित व अतिमात्रा में हुआ करता है। सब में दोष भेद के कारण भिन्न भिन्न लक्षण पाये जाते हैं। परन्तु रक्तस्राव सभी में समान रूप से होता है।

समझने की आसानी के लिये इसके तीन प्रकार भी कर लिया करते हैं। १—एक दोषी रक्तप्रदर २—द्विदोषी रक्तप्रदर ३—त्रिदोषी रक्त प्रदर।

एक दोषी रक्तप्रदर के (अ)वातज रक्तप्रदर (ब) पित्तज रक्तप्रदर (स) कफज रक्तप्रदर। इस प्रकार तीन भेद माने जाते हैं।

२—द्विदोषी रक्तप्रदर के भी (अ) वात-पित्तज रक्त प्रदर, (ब) वात-कफज रक्त प्रदर, (स) पित्त-कफज रक्त प्रदर। इस प्रकार तीन भेद माने जाते हैं।

३—त्रिदोषी रक्तप्रदर में तीन दोष अर्थात् वात, पित्त व कफ सभी प्रधान रूप में होते हैं।

१—एक दोषी रक्तप्रदरों के मुख्य-मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं—

वात रक्त प्रदर—इसमें फेन के समान, लालिमा युक्त व अल्प प्रमाण में विशेष तरल और कम्प व पीड़ा कारक रूक्ष स्राव स्रवित हुआ करता है और इन लक्षणों के साथ ही साथ वंक्षण, हृदय, पार्श्व,श्रोणि व पृष्ठ भाग में वातात्मक पीड़ायुक्त वेदना होती है। इसके स्राव का रङ्ग पलास के फूलों के समान रक्तिमायुक्त होता है।

(ब) पित्तज रक्त प्रदर—इस स्राव में भी वेदना होती है परंतु वातज रक्तप्रदर के समान विशेष कुंथन या पींजन युक्त पीड़ा नहीं होती। उष्ण प्रदाहिक वेदना और नीला, पीला, कृष्ण व रक्त वर्णीय पीड़ा युक्त स्राव बार-बार अति प्रमाण में हुआ करता है। इसमें तृषा, दाह, मोह भ्रम और ज्वर इत्यादि उपद्रव पाये जाते हैं।

(क) कफज रक्त प्रदर—जब रक्त प्रदर में कफ दोष का बाहुल्य होता है तो योनि मुख से आम रस-युक्त

पिच्छिल स्निग्ध कुछ पांडुवर्णीय कफ मिश्रित प्रगाढ़ शीतल व मांस धोवन के समान स्राव श्रवित हुआ करता है। साथ ही वमन, अरुचि, मितली, श्वास, खांसी व मर्म स्थानों में कुछ पीड़ा इत्यादि उपद्रव देखे जाते हैं।

(२) द्विदोषी रक्त प्रदर में दोषानुसार ही मिश्रित उपद्रव पाये जाते हैं।

(३) त्रिदोषी रक्तप्रदर—इस प्रदर को असाध्य माना गया है। इसके सामान्य उपद्रव इस प्रकार हैं—इस त्रिदोषी रक्त प्रदर के स्राव में मधु, घृत या मज्जा के समान द्रव बहता रहता है। इसके स्राव में मुर्दे की सी दुर्गन्ध आती है। और इसका रङ्ग हरताल के जैसे होता है।

कारण—अब इसकी उत्पत्ति के प्रायः मुख्य-मुख्य कारण इस प्रकार हैं-

यह रोग प्रायः सभी वर्ग की महिलाओं में पाया जाता है। विलास-प्रिय सुखी जीवन विताने वाली धनिक वर्ग की आराम-तलब स्त्रियां और श्रमातिरेक के कारण कृश-काय श्रमिक वर्ग की मेहनती महिलायें सभी इस मूंजी मर्ज से पीड़ित पायी जाती हैं।

१—हीन वर्ग की महिलाओं में बहुधा श्रमातिरेक, अति भार-वहन अयोग्य व अपौषक, अनियमित भोजन प्राप्ति, उपवास, लंघन, शोक, चिन्ता इत्यादि कारणों से अक्सर इसकी उत्पत्ति पायी जाती है। जबकि धनिक वर्ग की स्त्रियों में इसके कारण कुछ भिन्न भी होसकते हैं।

२—अपथ्य-आहार, विहार और मुख्यतः आज की विलास-पूर्ण पाश्चात्य सभ्यता-शैली जिसके कारण आज की धनिक नारी का जीवनस्तर कुछ ऐसा ढल गया है कि नाच, गाने, क्लब, सिनेमाओं में जाना, गंदे, भद्दे और अश्लील उपन्यास या साहित्यक वातावरण में जीवन विताना, जिनके कारण व्यभिचार, भ्रष्टाचार इत्यादि दुर्वासनाओं को उत्तेजना मिलती रहती है। फलस्वरूप रक्तप्रदर की भी विशेष अभिवृद्धि पायी जाने लगी है।

३—अति भोजन, अपथ्य-भोजन, मांस, मदिरा, चाय, काफी, गरम, खट्टे, तिक्त, कटु इत्यादि तीक्ष्ण व उत्तेजक पदार्थों का अति सेवन, अति मैथुन, अति जागरण, अति विलासता, दिवाशयन इत्यादि अनेक कारणों का होना।

४—साईकिल, घोड़े, ऊंट इत्यादि की अति सवारी, अति भाग, दौड़ व्यायाम इत्यादि कारणों का पाया जाना।

५—भय, क्रोध, शोक सन्ताप इत्यादि कुछ मानसिक उत्तेजना।

६—वृक्क विकृति, यकृत दोष, कब्ज, अजीर्ण अरुचि, अरति इत्यादि कुछ सार्वदैहिक रोगों के कारण मिलना।

७—सुजाक, उपदंश, मधुमेह, प्रजननेन्द्रिय-शोथ या प्रदाह।

८—गर्भस्राव, गर्भपात या प्रसवोत्तर रक्तस्राव होना।

९—प्रसवोपरांत अपरा का पूर्ण रूप से न निकलना और उस का कुछ अंश अन्दर ही अन्दर रुक कर गर्भाशय का पूर्व स्थिति में न आना।

१०—आर्तवोत्पादक अन्तः स्रावों का बाहुल्य होना।

११—गर्भाशय-च्युति भ्रंशता गर्भाशय का प्रदाह और गर्भाशय के कुछ अन्यान्य आंतरिक रोग।

१२—डिम्ब प्रदाह, या डिम्ब ग्रन्थी प्रदाह का होना अर्थात् स्त्री अण्ड का शोथ या डिम्बग्रन्थी का शोथ होना।

१३—जरायु की भीतरी झिल्ली का प्रदाह अर्थात गर्भाशय अन्तः कला शोथ (Endometritis) का होना।

१४—गर्भाशय में रसौली (Tumour) (विद्रधि) (Cancer) या अर्बुद, फोड़ा, फुन्सी पेश्यार्बुद इत्यादि का पाया जाना।

इत्यादि अनेक विरुद्ध कारणों से इस रोग की उत्पत्ति मानी जाती है।

कभी कभी ऐसा भी देखने में आता है कि कन्यायें वयस्क होने पर भी उन्हें मासिक-स्राव नहीं होता या होता भी है तो काफी विलंब से। यद्यपि इसके कुछ विशेष कारण ही होते हैं तो भी सामान्य रूप से इसे रोग या बीमारी ही माना जाता है।

शरीर की कुछ क्रियाशील अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों के कारण डिम्बाशय के स्रावों (सारों) या (Harmones को चालना मिलती है और वह विकसित होकर स्राव-प्रवर्तन में समर्थ होती है। परन्तु जब यह अन्तः—स्रावी ग्रंथियां अविकसित रह जाती हैं या विकृत होकर क्रियाशील नहीं होती तो इससे निम्न विकार पाये जाते हैं—

१—डिम्बाशय या गर्भाशय का ही अभाव हो जाता है।

२—डिम्बाशय या गर्भाशय का अविकसित रहना या बहुत छोटा रहना।

३—कभी कभी योनि मुख का पर्दा भी सख्त हुआ करता है।

४—कुछ रोगों के कारण भी आर्तव नहीं होता यथा रक्ताल्पता, पांडु, राजयक्ष्मा, गर्भाशय शोथ अथवा गर्भाशय की च्युति इत्यादि विकार पाये जाते हैं। इस रोग की रोगिणी की शय्या ऐसी होनी चाहिए जिसका पैताने का हिस्सा, सिरहाने के हिस्से की अपेक्षा कुछ उठावदार होना चाहिये अथवा रूग्णा के नितम्बों के नीचे तकिया (सिरहाना) रखवा देना चाहिए।

इस शय्या पर रुग्णा को आराम से लिटा देना चाहिए। उठने, बैठने इत्यादि का भी बन्धन डाल देना चाहिए।

योनि रोगों में विशेष रूप से वात प्रकोप के कारण अर्थात वायु-दुष्टि के कारण ही विकृतियां पायी जाती हैं। अपान वायु की उपस्थिति शरीर के निम्न गुह्य भाग में या वस्ति गह्वर में होती है। व्यानावृत्ति के कारण अपान वायु में दुष्टि उत्पन्न होती है और यही दुष्टि वस्तिगह्वर के योनि इत्यादि आन्तरिक अवयवों तक घुसकर वहां के समदोषों को विषम बना देती है फलस्वरूप योनि रोगों का उद्भव हो जाता है। इसलिए योनि रोगों की चिकित्सा में वातशामक चिकित्सा की प्रधानता होनी चाहिए।

चिकित्सा काल में रोगोत्पादक कारणों का परित्याग करना भी चिकित्सा के समान ही महत्व का है। विपरीत कारणों का परित्याग व अनुकूल कारणों का ग्रहण करना सर्वप्रथम चिकित्सा है।

आहार-विहार, खान-पान, भोजन, शयन सब पथ्य-रूप होना चाहिए। सामान्यतः शीतल पदार्थों को सेवन करें। शाक भाजी कद्दू, कुलफा, पालक, मेंडी, तुरई, मूंग की दाल, चावल, गेहूं, ज्वार रोटी पथ्यरूप हैं। अंगूर, मुनक्का, दूध देना ठीक है।

चिकित्सा-क्रम

चिकित्सा की दृष्टि से यहां कुछ आशुफलप्रद प्रयोग दिये जा रहे हैं। इनमें से कुछ प्रयोग संकलित होने पर भी बार-बार के खूब अनुभूत हैं।

१. अशोक वृक्ष की अन्तर्छाल, औदुम्बर वृक्ष की अन्तर्छाल व जामुन वृक्ष की अन्तर्छाल, ज्येष्ठ मधु व शुण्ठी चूर्ण सबका समभाग लेकर मिश्रण तैयार करके रखलें। इसमें से २० ग्राम मिश्रण १० ग्राम मिश्री मिलाकर १०० ग्राम जल में डालकर किसी कलई के पात्र में मन्दाग्नि पर चतुर्थांश काढ़ा बनाकर उतार छानकर कुछ मधु मिलाकर प्रातः सायं सेवन करावें।

इससे वातज रक्त प्रदर का नाश होता है।

२. क्षीरकन्द, विदारीकन्द, अरूसा, रक्तचन्दन, बेलगिरी, चिरायता, मोचरस, रसौत, दारुहल्दी।

सब समान भाग का मिश्रण बनाकर रखलें। १५-२० ग्राम मिश्रण का १०० ग्राम जल में मृत्तिका पात्र में मन्दाग्नि पर पकाकर मधु मिलाकर प्रातः सायं दूध से पिलाया करें। पित्तज रक्त प्रदरों का नाश करता है।

३. बला, निम्बत्वग, गुडुची व अशोक की अन्तर्छाल सब समान मिलाकर रख लें। इसमें से २० ग्राम को १०० ग्राम जल में मिलाकर अष्टमांश काढ़ा बनाकर मल छानकर कप भर दूध में मिलाकर पुनः पकावें और दूध मात्र शेष रहने पर प्रातः-सायं रोगिणी को पिलाया करें। कफज रक्तप्रदर नष्ट करने में समर्थ है।

४. त्रिफला, मजीठ, जटामांसी, देवदारु, वच, अरूसा, समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर रख लेना चाहिए। १ २ग्रा. चूर्ण १०० ग्राम जल में अष्टमांश काढ़ा बनाकर, शीतल कर, मल छानलें और फिर काढ़े के समान भाग दूध मिलाकर ३ ग्राम मधु मिलाकर रोगिणी को सेवन करावें। प्रातः सायं ताजा बनाकर पिलाया करें।

त्रिदोषज रक्तप्रदर पर रामबाण है।

५. ५० ग्राम अशोक की अन्तर्छाल का $\frac{3}{4}$ लिटर जल में चतुर्थांश काढ़ा बनाकर मल छानकर $\frac{1}{4}$ लिटर दूध मिलाकर पुनः पकावें। पानी जल जाने पर शीतल करके मिश्री मिलाकर रोगिणी को पिलादें। इस प्रकार कुछ दिन सेवन करावें।

लाल, पीला, सफेद, इत्यादि सभी प्रकार के रक्तप्रदर समूल नष्ट हो जाते हैं। (धन्वन्तरि)

६. पुष्यानुग चूर्ण नं० १—जटामांसी १ तोला, मोचरस १ तोला, खून खराबा १ तोला, स्वर्णगेरु १

तोला, संगजराहत भस्म ६ माशे, शुभ्राभस्म ६ माशे।

सबको घोट पीसकर रखलें - ३-३ ग्राम प्रतिदिन प्रातः सायं धारोष्ण गौदुग्ध से सेवन करावें।

७. दूब का रस ३ माशे, शुभ्राभस्म ४ रत्ती, शुण्ठी चूर्ण १ रत्ती, मरिच चूर्ण २ रत्ती।

दूध, मिश्री से सेवन करायें प्रातःसायं।

८. दूब का रस ३ माशे, प्रदरान्तक लोह १ रत्ती, स्फटिकाभस्म ५ रत्ती मिलाकर प्रातः सायं सेवन करावे।

भोजनोपरान्त जीरकाद्यारिष्ट, अशोकारिष्ट और बबूलारिष्ट १-१ तोला का मिश्रण जल मिश्रित पिलाया करें।

९. ज्येष्ट मधु चूर्ण १० ग्राम, मुक्ताशुक्ति भस्म १ ग्राम, ईसबगोल की भूसी ३० ग्राम, सर्जरस १५ ग्राम, अंजबार खताई १५ ग्राम।

सबको मिलाकर घोट पीसकर रखलें। इसमें से ३-३ ग्राम औषधि लेकर प्रातः सायं जल या दूध से सेवन करायें।

१०. मूषक विष्टा २ तोला, ज्येष्ठ मधु चूर्ण ४ तोला पुराने चमड़े की राख २ तोला, स्वर्ण गेरू ४ तोला, मिश्री १० तोला सबका चूर्ण कर ३-३ माशे चूर्ण प्रातः सायं दुध या जल से सेवन करावें।

धारा प्रवाही भयङ्कर से भयङ्कर सभी प्रकार के रक्त प्रदर प्रथम दिन से ही कम होना आरम्भ हो जाते हे। पित्तजरक्तप्रदरदोषी रक्तप्रदर सभी नष्ट होते हैं। गर्भवती को भी निरापद है। (धन्वन्तरि)

११. शुद्ध स्फटिका भस्म १ तोला, कपोत विष्टा १ तोला, कृष्ण मरिच चूर्ण १ तोला।

सभी की पिष्टी बनाकर रखलें। ३-३ ग्राम की मात्रा मे उष्णोदक से सेवन करायें। प्रातः सायं दें। तुरन्त लाभ होता है।

१२. रससिंदूर नं० १ अथवा मकरध्वज १ रत्ती, श्वेत स्फटिका फूला ५ रत्ती मिलाकर दशमूलारिष्ट के साथ प्रातः सायं दिया करें।

पथ्य मे दुध मुनक्का दिया करें। डाक्टरो से छूटे हुए निराश रोगी भी जीवन पा चुके हैं।

भोजनोत्तर—उशीरासव व अशोकारिष्ट का मिश्रण पिलाते रहना चाहिए।

१३. रजतभस्म, बंगभस्म, नागभस्म, यशद भस्म, कुक्कुटाण्डत्वग भस्म, कल्बुलहिज्र, मूषक विष्ठा।

सब समान भाग लेकर, पिष्टी बनाकर रख लेना चाहिए।

मधु-मिश्री युक्त गौदुग्ध से सेवन करावें।

१४. मरिच चूर्ण, श्वेत स्फटिका चूर्ण १-१ तोला, पुष्पानुग चूर्ण २ तोला, मधुयष्टि चूर्ण २ तोला मिलाकर रख ले।

प्रातः साय मधु-मिश्री युक्त गौदुग्ध से सेवन कराया करे।

१५. रौप्यभस्म, त्रिवङ्गभस्म, लोहभस्म १००० पुटी नागभस्म प्रत्येक १-१ ग्राम, मुक्ताभस्म या पिष्टी आधा ग्राम सबको मिलाकर रखलें। १-१ रत्ती की मात्रा में धारोष्ण दूध से सेवन करायें। प्रातः सायं दें।

१६. पुष्पधन्वा रस, कामदुधा (मौक्तिक) नागभस्म, कहरवा पिष्टी।

प्रत्येक समान मात्रा में मिलाकर रखलें। १-१ रत्ती की मात्रा में मधु से चटा दिया करें और ऊपर से अशोकारिष्ट २ तोला १ पाव दूध में मिश्री मिलाकर पिलाया करें। प्रातःसायं दें।

नोट—उपरोक्त सभी प्रयोगों के बारे में विशेष लिखना व्यर्थ है। अनेकों बार के खूब अनुभूत व सद्य फलप्रद हैं। निःसंकोच प्रयोग करें।

हाँ कभी-कभी इन्जेक्शन देना भी ठीक रहता है। कारण रोगिणी की तसल्ली होती रहती है

प्रत्येक औषधि के साथ में पेय औषधियां पिलाई जा सकती हैं।

अन्त में एलोपैथिक की कुछ प्रचलित और गुणप्रद औषधियों का संकेत कर देना अनुचित न होगा।

इस बीमारी में लोह (Iron) खटीक (Calcium) व जीवनीयगण (Vitamin) युक्त औषधियों का भरपूर उपयोग करना चाहिए।

१—Fersolate किंवा Iron की १ गोली, Celin (Vit. C) 100 mg. की १ गोली, Synkavit की

१ गोली।

तीनों की एक मात्रा बनाकर प्रतिदिन प्रत्येक भोजन से आधे घण्टे बाद दिया करें।

२—Calcium laceted की २०-३० ग्रेन की मात्रा में रोजाना २ खुराक देने से रज: वाहुल्य व अनियमित रज: स्राव इत्यादि विकार नष्ट हो जातेहैं।

३—विपुल प्रमाण में रक्तस्राव होता हो तो उस समय Thyriod (P. D.) की १ ग्रेन की १-१ गोली जल से दिया करें।

४—Kapilin (Vit. K.) या Methergin (sandoz) की १-१ गोली प्रतिदिन ३ बार शीतल जल से दिया करें।

नोट—(उक्त औषधियां इन्जेक्शन रूप में प्राप्त होती हैं)। साथ ही निम्न इन्जेक्शन का भी उपयोग करना चाहिये। इनके कारण रोग पर फौरन कन्ट्रोल हो जाता है।

बीजग्रन्थी (Ovari) की क्रियाशीलता के अभाव के कारण उनसे स्रावित होने वाले Estrogen वगैरह स्राव भी नहीं हो पाते। इसी स्राव के कारण स्तन, गर्भाशय तथा अन्य स्त्री प्रजनन अङ्गों की कार्य क्षमता उत्तेजित रहती है। इस स्राव के अभाव से गर्भाशय शोथ, योनिस्राव या रक्तस्राव तथा पीड़ायुक्त रज: वाहुल्य इत्यादि उपद्रव हो जाते हैं और प्रजननअङ्गों में कार्य क्षमता नहीं रहती।

१—यदि अनियमित या अतिरज: स्राव होता हो तो इसी Estrogen नामक Harmone का अभाव समझ कर अथवा इस Harmone की क्षीणता समझ कर Progestrone नामक इन्जेक्शन देने से उसकी पूर्ती या भर पाई हो जाती है और डिम्बाशय क्रियाशील होकर रज: स्राव भी नियमित हो जाता है। इस Progestrone का 25 mg. का १-१ इन्जेक्शन प्रति ३ दिन पर देना चाहिये अथवा 10 mg. की १ सूई प्रतिदिन भी दी जा सकती है।

२—Testosterone propionate 25 mg. का १ इन्जेक्शन प्रति तीन दिन पर दिया जा सकता है।

३—Calcium sandoz अथवा Calcium chloride 10 c. c. का १ इन्जेक्शय शिरान्तर्गत दे देना चाहिये।

४ Luto cyclin की 5 mg. की १ सुई मांसान्तर्गत लगा दिया करें।

५—Calci ostelline Vit. B12 की 3 c.c. की १ सुई मांसान्तर्गत सप्ताह में २-३ बार लगा देना ही काफी हो जाता है।

—डा० पी० टी० खमाखेकर
दिन्दरूड़ जिला बीड़ [महाराष्ट्र]

रक्तमेह

परिभाषा—पेशाब के साथ खून आना।

कारण (Causes)—(क) वृक्क के कारण (causes in the kidney)—१. वृक्क का यक्ष्मा (T. B. of kidney.) २. वृक्क में चोट लगना (Injury to the kindey ३. मूत्र पत्थरी (Calculus) ४. वृक्कशोथ (Hydronephrosis) ५. वृक्क प्रदाह (Nephritis) ६. वृक्क अर्बुद (Tumour of kidney) ७. जन्मजात वृक्क की वीमारियां (Corgenital anamalies) (अ) वहुसंख्यक जीवाणुओं की थैलियां (Polycystic kidney) (ब) गतिशील वृक्क (Mobil kidney) ८—प्रदाह (hyections) (स) वृक्क की श्लेष्मिक झिल्लियों का प्रदाह (Pyelitis.) ९—दवाइयों से उत्पन्न रक्तमेह जसे—टरपेन्टाइन, सल्फोनामाइडस, एन्टी कोएगुलेन्टस, सेलीसिलेट, फेनाल, बारवीचुरेटस, मेनडेलिक एसिड। १०—स्थाई (वृक्क की) खून की नलियों की बीमारियां (Local vascular diseases.) ११—हाइडेटिड डिसीज (Hydatid disease.)

(ख) वृक्क से मूत्राशय में मूत्र लानेवाली नली के कारण (in Ureter)—१. चोटलगना (Trauma.) २. मूत्र पत्थरी (Calculus.) ३. प्रदाह (Infection.) ४. अर्बुद (Tumour.)

(ग) मूत्राशय में (In Vesicular) (Bladder) —१. चोट लगना (Trauma) २. मूत्र पत्थरी (Calculus) ३. गुप्त रास्ता या होद (Diverticulum) ४. वाह्य पादार्थ

अन्दर जाना (Foreign Body) ५. प्रदाह (Infection) ६. अर्बुद (Tumour) ७. बिल्हारजियेसिस (Bilharziasis) ८. घाव होना (Ulceration)।

(घ) प्रास्टेस ग्रन्थि में (In Prostate gland)—१. प्रोस्टेट ग्रन्थि प्रदाह (Prostatitis) २. प्रोस्टेट ग्रन्थि का बढ़ना (Enlargment of prostate)।

(ङ) मूत्राशय नलिका में (In Urethra)—१. चोट लगना (Trauma) २. मूत्र पथरी (Calculus) ३. मूत्राशय नली का मुख छोटा होना (Pinhole meatus) ४. मूत्राशय नलिका का संकुचन (Stricture of urethra) ५. वाह्य पदार्थ अन्दर जाना (Foreign Body) ६. प्रदाह (Infection) ७. अर्बुद (Tumour) ८. स्नायु सम्बन्धी बीमारियां (Nervous)।

(च) प्रचलित शारीरिक रोग (General disease)-१. रक्तचाप का बढ़ जाना (Hypertension) २. घातक मलेरिया (Malignant Maleria) ३. लाल ज्वर (Scarlet fever) ४. छोटी माता (चेचक) (Small poxs) ५. पुराना सुजाक (Chronic Syphilis) ६. हृदय की झिल्लियों का प्रदाह (Endocarditis) ७. कलेजी की बीमारियां (Liver diseases)।

(छ) खून की बीमारियां (Blood diseases)—१. सफेद रक्त कणों का बढ़ जाना (Leukemias) २. शीताद (चमड़ी में लाल, नीले रङ्ग के दाग पड़ना (Purpura) ३. हीमोफिलिया (Heamophilia) ४. हाजकिन्स डिजीज (Hodgkins disease)।

(ज) विटामिन की कमी के कारण—विटामिन 'सी' (Vitamin) "c" की कमी के कारण बीमारी—(Scurvy) स्करव्ही।

(झ) मूत्र मार्ग के नजदीक उत्पन्न बीमारियां (Diseases invades the urinary tract)—१. उग्र आन्त्र-पुच्छ प्रदाह (Acute Appendicitis) २. उग्र लालक नलिका प्रदाह (Acute Salpingitis) ३. पुराना लालक नलिका प्रदाह (Chronic Salpingitis) ४. उग्र या पुराना गुप्त रास्ता या छेद (Acute or Chronic Diverticulitis) ५. आंतों का यक्ष्मा (T.B. of intestine) ६. स्त्री जननेन्द्रिय यक्ष्मा (Female genital) T.B. ७. पेट का अर्बुद (Abdominal tumour) ८. पेडू का अर्बुद (Pelvic tumour) ९. धमनी अर्बुद का फट जाना (perforation of Aneurysm)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पेशाब में रक्त आना का कारण सिर्फ मूत्र प्रणाली सम्बन्धी अङ्गों की बीमारियां ही नहीं बल्कि रक्त की बीमारियां, पेट की बीमारियां, स्त्री जननेन्द्रिय बीमारियां, विटामिन की कमी के साथ ही साथ कई प्रकार की दवाइयां सेवन करने से भी रक्तमेह होता है।

मूत्र परीक्षा (खून के लिए)—मूत्र लाल रङ्ग का होना या बाटल में लाल रङ्ग के मूत्र को देख लेने से ही कदाचित रक्त का होना नहीं समझना चाहिए। चूंकि कई बीमारियों के कारण, व कई दवाईयां इस्तेमाल करने से या बाटल में रङ्ग मिलाने से भी मूत्र का रङ्ग लाल हो जाता है। अतः यह जरूरी है कि पेशाब में रक्त की उपस्थिति की जांच की जावे।

मूत्र में रक्त की परीक्षा (Test for blood in Urine)—यह परीक्षा बेन्जोडीन टेस्ट (Benzedine test) के नाम से विख्यात है जो कि इस प्रकार है—

कांच की एक परीक्षा नलिका (Test tube) लेवें उसमें ३ सी. सी. ग्लेसियल ऐसेटिक ऐसिड (glacial acetic acid) में तर किया हुआ (Saturated) बेन्जेडीन शोलूशन (Benzedine solution) डालें। फिर उसमें ३ सी. सी. ३% वाला हाइड्रोजन द्वि औषद डालें और फिर उसमें कुछ बूंद मूत्र की डालें। अगर हरा रङ्ग बन जावे तो रक्त की उपस्थिति समझना चाहिये अन्यथा नहीं।

रक्तमेह के रोगी के आने पर नीचे लिखी हुई बातों को ध्यान में रखना तथा नीचे लिखे अनुसार जांच करना चाहिए। तभी आप रोग के ठीक ठीक कारण तक पहुंच कर रोगी का उचित इलाज कर सकेंगे।

१. उम्र Age—(अ) New born (१ दिन से १ माह तक के बच्चे में)—रक्त की बीमारियां, विटामिन की कमी से तथा जन्मजात बीमारियों के कारण रक्तमेह होता है।

(ब) Child एक माह से १२ वर्ष तक के बच्चों में उग्र वृक्क प्रदाह, सफेद रक्तकण बढ़ जाना मूत्र नलिका का

मुख छोटा होना उग्र प्रदाह, खून की बीमारियां, विटामिन की कमी, मूत्र पथरी ।

(स) Young Adult. १२ वर्ष से ४० वर्ष तक उम्र वालों में—मूत्र पथरी, वृक्क प्रदाह, वृक्क यक्ष्मा, मूत्र नलिका का संकुचन गनोरिया के कारण।

(द) Old age ४० वर्ष के बाद मूत्र पथरी, रक्तचाप बढ़ जाना, पोस्टेट ग्रंथि का बढ़ जाना, वृक्क अर्बुद, कर्कट

२. रोगी औरत या मर्द Sex—औरतों में अधिकतर पाए जाने वाले रोग।

(क) उम्र या पुराना लालक नलिका प्रदाह (Acute or Chronic Salpingitis.)

(ख) डिम्बाशय का अर्बुद (Tumour of overy)

(ग) योनि का कर्कट (Carcinoma of uterus.)

(घ) स्त्री जननेन्द्रिय भागों का यक्ष्मा T. B. of Female genital organs.

(ङ) ग्रीवा का कर्कट Carcinoma of Cervix.

३. रोजगार (धंधा) Occupation—रंग बनाने वाले या कपड़ा रंगने वाले (Analyldye workers) को मूत्राशय का केन्सर होता है।

४. रहने का स्थान (Geographycal distribution.) मिश्रदेश, बंगाल, उड़ीसा के निवासियों को बिलहारीजयेसिस (Bilharziasis) की बीमारी होती है।

५. चोट लगने के कारण उत्पन्न हुआ रक्तमेह।

६. दवाईयां खाने के बाद होना।

७. दर्द के साथ रक्तमेह (Pain with haematuria)

(क) मरोड़ का दर्द Colic pain–मूत्र पत्थरी में

(ख) कमर में दर्द Lumbar pain—मूत्र पथरी

(ग) सुपारी तक दर्द Pain at tip of penis–Irritation of trigon.

(घ) गुदा और लिंग या योनि के स्थान में दर्द होना Pain is perineal area—मूत्राशय या प्रोस्टेट ग्रन्थि का कर्कट।

(ङ) नाभि के नीचे दर्द Hypogastric pain–मूत्राशय प्रदाह।

(च) उग्र वेदना Severe pain—प्रदाह के कारण।

८. बिना दर्द के रक्तमेह Haematuria without pain—प्रोस्टेट ग्रन्थि का बढ़ जाना, वृक्क, मूत्राशय और और लिंग का कर्कट, वृक्क, मूत्राशय, मूत्र नलिका का अर्बुद, वृक्क का यक्ष्मा,

९. बार बार पेशाब के साथ रक्तमेह Haematuria with Friquency of micturition—प्रोस्टेट ग्रन्थि का बढ़ जाना, वृक्क श्लैष्मिक झिली प्रदाह वृक्क यक्ष्मा।

१०. रक्तमेह के साथ दूसरे लक्षण—(क) उग्र बुखार घातक मलेरिया, लाल ज्वर, छोटी माता, वृक्क प्रदाह।

(ख) शरीर के दूसरे अंगों से खून बहना–उग्रज्वर, शीताद, रक्तचाप का बढ़ जाना, हीमोफिलिया।

११. वृक्क का स्पर्शन होना Pelpable kidney–(क) एक तरफ के वृक्क का बढ़ना Unilateral enlargment वृक्क का अर्बुद,, कर्कट, प्रदाह, जन्मजात चोट लगना।

(ख) दोनों वृक्कों का बढ़ जाना Bilateral Enlarg ment, पालीसिस्टिक किडनी Polycystic kidney।

१२. वाह्य जननेन्द्रिय की जांच करना—स्थायी बीमारियों तथा मूत्र नलिका के अग्र भाग का बारीक के लिए।

१३. पेट में किसी गोले के लिये जांच करना Examination for lump in abdomen—उग्र अन्त्रपुच्छ प्रदाह, उग्र या पुराना लालक नलिका प्रदाह, स्त्री जननेन्द्रिय यक्ष्मा।

१४. पुरुष अण्ड की जांच करना Examination of Testis—अण्ड यक्ष्मा के लिए।

१५. गुदा द्वारा जांच करना Rectal Examination प्रोस्टेट ग्रन्थि का बढ़ जाना, बच्चों में मूत्राशय की पत्थरी के लिये।

१६. योनि द्वारा परीक्षा Vaginal Examination- योनि कर्कट, डिम्वाशय अर्बुद, पेडू का अर्बुद आदि के लिए।

१७. मूत्र परीक्षा–मूत्र पथरी, प्रदाह आदि के लिए

१८. खून की जांच–लाल रक्त कण, सफेद रक्तकण खून में लोह की मात्रा ब्लिडिंग टाइम, क्लोटींग टाइम प्रोथ्रोम्बीन टाइम आदि।

१६. साऊडींग आफ ब्लेडर Sounding of Bladder मूत्र पथरी के लिए।

२०. एक्सरे परीक्षा (X-ray Examination) मूत्र पथरी अर्बुद, ककंट, और प्रदाह के लिए प्लेन एक्सरे और पायलोग्राफी Pyelography।

२१. सिस्टोसकोपिक द्वारा परीक्षा Cystoscopy examination

२२. यूरेथरोस्कोपिक परीक्षा Urothroscopy

२३. रीनाल बायोप्सी Rinal Biopsy

इसमें रोग वाले स्थान का कुछ अन्श काटकर जांच की जाती है। ककंट के लिये (Cancer)

एलोपैथिक चिकित्सा—

(१) दवाइयों द्वारा इलाज (Medical) (अ) तत्काल तकलीफ दूर करना

(ब) रक्तमेह के कारण को दूर करना

(२) चीरफार द्वारा इलाज (Surgical)

(अ) तकलीफ के अनुसार इलाज

१. पूर्ण विश्राम Rest

२, नींद लाने वाली दवाइयां देना जैसे—

(अ)इन्जेक्शन मारफीन Morphin १/४ ग्रेन मांस में

(ब)इन्जेक्शन पेथेडीन Pathedine १०० मि. ग्राम मांस में।

३. खून देना bood Transfusion

४. इन्जेक्शन ग्लूकोज ५% नस में

५. „ केलस्यिम ग्लूकोनेट (Calcium Gluconate १०)—१०cc नस में

६. इन्जेक्शन क्लाऊडीन Injection Clauden

७. „ न्युहीमोप्लासटीन Neohaemoplastin

८. विटामिन 'के' गोलियां या सूई,

विटामिन C—

(ब) कारणो के अनुसार इलाज—१. रक्तमेह उत्पन्न करने वाली दवाईयों के सेवन को तुरन्त ही बन्द करना

२. मूत्र पथरी के लिये—टिक्चर बेलाडोना Belladonna टिंक्चर हायोस्यामस Hyoscyamus इन्जेक्शन एट्रोपिन Injection Atropine

३. यक्ष्मा या क्षय रोग के लिये—(अ) इन्जेक्शन स्ट्रेप्टोमाइसिन Streptomycin १ ग्राम रोज मांस में

(ब) गोली आइसोनेक्स Isonex ३०० मि. ग्रा. रोज

(स) पास P. A. S. १२ ग्राम रोज

४. प्रदाह के लिये—अ. इन्जेक्शन स्ट्रेपटोपेनेसिलिन १ ग्राम रोज

ब. इन्जेक्शन केनामाइसिन

स. इन्जेक्शन साइक्लोसेरीन

५. विटामिन की कमी के लिये—विटामिन के. सी. बी १२

६. रक्तचाप के लिए—रेसरपीन, सरपेनटीन एलडोमेट पेपावेरीन

(ब) चीरफार द्वारा इलाज—१. Nephrectomy नेफरेक्टामी, २. Suprapubic Cytsectomy सुपराप्यूबिक सिस्टेकटोमी ३. Prostectomy, प्रोस्टेस्टामी इत्यादि।

होमियोपैथिक पद्धति—

१. टेरिबिन्थिना—पेशाब में जलन, रक्तमेह, कष्ट के साथ बूंद-बूंद पेशाब निकलना, ३० शक्ति की।

२. बर्बेरिस—सब तरह की मूत्र पथरी के लिये। सुई गड़ने जैसा दर्द, मूत्राशय से शुरू होकर चारो ओर फैल जाना। ३० शक्ति।

३. केन्थरिस—सब तरह की मूत्र पथरी के लिये रोग ठण्डे पानी और शराब पीने से बढ़ता है। पर गर्म प्रयोग से घटता है। मदर टिंचर २बूंद प्रति ½ घंटा पर।

४. लाइकोपोडियम—मूत्र पत्थरी के कारण दर्द, जो कि दाहिने मसाने से शुरू होकर नीचे मूत्र द्वार तक चला जाता है। ३० शक्ति।

५. ओपियम—दाहिने मसाने पर रोग का होना, दर्द के साथ कै या वमन होना। ३० शक्ति।

६. इक्विजिटम-हाइमेल (Equisetum Hyemale) मूत्र रक्तमय, गाढ़ा, बारबार, थोड़ी थोड़ी मात्रा में होना जलन के साथ। ३ से ३० शक्ति का।

७. नक्स वोमिका—दाहिने गुर्दे से दर्द शुरू होकर कमर तक रह जाना। ३० शक्ति।

८. थूजा—मूत्र बूंद-बूंद, रक्त युक्त होना, मूत्रनली में खुजली तथा बारबार सुजाक की बीमारी

होना। ३० से २०० शक्ति।

९. क्लिमेटिस—पेशाब रुक-रुक कर निकलना जब तक रोगी पेशाब करता है तब तक जलन या दर्द रहता है। ३० शक्ति।

१०. चिमाफिला—पेशाब के साथ लसदार श्लेष्मा और पीव निकलना। मूत्र लसदार गाढ़ा बदबूदार तथा जोर देने पर मूत्र निकलना परन्तु बैठकर पेशाब करने से मूत्र का न निकलना। मदरटिंचरर से ३ x शक्ति का।

११. एपिजिया-रिपेन्स Epigea repens—मूत्र के साथ खून और श्लेष्मा निकलना, बहुत जलन होना, मूत्राशय का प्रदाह, पेशाब के बाद कष्ट होना। पेशाब में मूत्रक्षार निकलना। ३० शक्ति

१२. एनिलिनम Anilinum—मूत्रनली के किसी भी स्थान पर अर्बुद होने पर ३० शक्ति।

१३. पेरिरा-ब्राजा—पेशाब चिकना तथा रखने पर मंवी तली जमती है। दर्द के कारण रोगी घुटने से चलने लगता है। मूत्र बूंद बूंद कर निकलता है।

१४. काक्कस कैक्टाई—मूत्रपत्थरी का जोरों का दर्द, मूत्र के साथ रक्त और मूत्रक्षार निकलना दर्द मसाने से मूत्राशय तक जाना। ३० शक्ति

१५. मर्क्युरियस-कारोसाइवस—मूत्र के साथ रक्त, श्लेष्मा, पीव आना। पेशाब में कूथन और जलन। मूत्र बूंद-बूंद आकर बन्द हो जाना। ६ से २०० शक्ति की.

१६. एसिड बेन्जोइकम—बूंद बूंद पेशाब, मूत्र में से घोड़े के पेशाब की गंध आना। Q मदर टिंकचर से ६ शक्ति के

१७. कैलकेरिया-कार्बोनिकम—मूत्र पत्थरी, अर्बुद कर्कट पर इसका सेवन करना चाहिए। इसके सिवाय दूसरी दवाइयाँ जैसे—

ऐलियम-सिपा, ऐनाकार्डियम, ऐसिड-फास ऐपिस-मेलीफिका भी रक्तमेह में दी जाती हैं।

—श्री माधौप्रसाद आर. एम. पी.
साधी दवाखाना, कामठी लाईन
राजनांदगांव (म० प्र०

रक्त—पित्त

रक्त-पित्त रोग का निदान आदि आप आयुर्वेदिक चिकित्सा में पढ़ेंगे। सभी रोगों का निदान लिखने पर विशेषांक का कलेवर बहुत बढ़ जाता है। होमियोपैथिक में लक्षण समष्टी ही प्रधान है अतः हम प्रधान-प्रधान दवाइयों के लक्षणों को ही लिख रहे हैं। समलक्षण रोगों की चिकित्सा भी पृथक-पृथक न लिख कर एक ही जगह लिखेंगे।

—लेखक

हेमामेलिस Q १X, ३X, ६, ३०—इस दवा की प्रधान क्रिया शिराओं पर होती है शैरिक रक्त स्राव जो कि देखने में कुछ कालापन लिये होता है, उसके साथ ही कुचलने की तरह दर्द रहता है। यह रक्तस्राव मुंह, नाक, आंत, जरायू आदि शरीर के किसी भी द्वार से होता होवे और उपरोक्त लक्षण मौजूद होवें तो सर्वप्रथम हेमामेलिस का प्रयोग करना चाहिये।

मेरा अनुभव—

रक्तस्राव के रोगी को जहां रक्त कुछ कालापन लिये होता है और उस जगह कुचलने की तरह दर्द रोगी बताता है रक्त जम जाता हो वहां मैं हेमामेलिस Q ५-६ बूंद १ छटांक पानी में मिलाकर रोगी की गति के अनुसार १५ मिनट से १ घण्टा अन्तर पर देता हूं। रक्तस्राव कम हो जाने के बाद इसी दवा को ६ या ३० शक्ति में ३ घण्टा अन्तर से देने को कह देता हूं।

नोट—हेमामेलिस के रक्त का रङ्ग ठीक हेमामेलिस मदर टिंचर से मिलता होता है।

मिलीफोलियम Q, ६, ३०—रक्तस्राव रोकने के लिये मिलीफोलियम नामक दवा होमियोपैथों के हाथ में बहुत उपयोगी दवा है। प्रचुर मात्रा में लाल रंग का रक्त स्राव होता होवे रोगी को न दर्द होवे न ज्वर होवे उस स्थान पर इसका प्रयोग करना चाहिये।

उदाहरण—रोगी............वर्मा उम्र २५ वर्ष मुंह से अचानक रक्तस्राव आरम्भ हो गया निकट के किसी होमियोपैथ को बुलाया गया वह अचानक रोग आक्रमण का नाम सुनते ही एकोनाईट ६ शक्ति की १०-

१२ खुराक देकर आ गये और आधा घण्टा अन्तर देने को कह दिया ६ घण्टा में १२ खुराक समाप्त होने पर रोगी के अभिभावक डाक्टर साहब के पास जाकर सब हाल कहे कि अभी रक्त स्राव बन्द नहीं हुआ है। डाक्टर साहब नये ही प्रेक्टीस आरम्भ किये थे अतः दवा लेने के वहाने वह मेरे पास आये और सभी राम कहानी कह सुनाई, मैंने पूछा आपने एकोनाइट किस लक्षण पर प्रयोग किया। उत्तर मिला अचानक रोग का आक्रमण। क्या रोगी में वैचेनी थी—नहीं। क्या प्यास थी—नहीं। क्या मृत्यु भय था—नहीं। क्या ज्वर था—नहीं। तब आपने सिर्फ १ लक्षण पर एकोनाइट गलत दिये। अच्छा मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिये—

रक्त का रंग कैसा है—घोर लाल है। दर्द है—नहीं है। वमनेच्छा है—नहीं है। हिमांग अवस्था है—नहीं है। आप जाकर मिलीफोलिप १ X ५-५ बूंद प्रति ३० मिनट पर देवें रक्तस्राव कम होने पर ६ या ३० शक्ति ३ घण्टा अन्तर देवें। यही दवा दी गई रक्तस्राव बन्द हो गया।

नोट—यह दवा स्वल्प क्रियाशील है।

इपिकाक ३, ६, ३०—इस दवा में भी उज्वल लाल रङ्ग का रक्तस्राव होता है किन्तु उसके साथ वमनेच्छा रहती है। अनेक स्थानों पर वमनेच्छा के बदले श्वासकष्ट देखा जाता है। डा० व्यास इस दवा की १ से ३ शक्ति का प्रयोग करते थे।

एकालाइफा इण्डिका Q—मुंह से रक्तस्राव में यह उपयोगी है। किन्तु इस दवा का विशेष लक्षण है कि सुबह ताजा लाल रक्तस्राव होता है और शाम को काले रंग का होता है।

चायना ३०, २००—अति मात्रा में रक्तस्राव के कारण पतनावस्था कान में भां-भां आवाज होना, दुर्वलता पेट में वायु, पाचन क्रिया की दुर्वलता, रक्त पतला, वह जम जाता है।

नोट—अति रक्तस्राव के कारण होने वाली दुर्वलता के लिए चायना अति लाभदायक दवा है।

फेरम फास ३, ६—लाल रंग के रक्तस्राव में यह लाभप्रद है। फेरमफास प्राथमिक अवस्था की दवा है इस में एकोनाइट की तरह अस्थिरता, वैचेनी नहीं होती है। वायोकैमिक में रक्तस्राव के लिये फेरम फास अन्य दवा के साथ मिलाकर भी दी जाती है।

फैरम मेट ६, ३०—दुर्व्वल और रक्ताल्पता वाले रोगी के रक्तस्राव में लाभप्रद है।

कक्टस ३, ६, ३०—हार्ट में दर्द के साथ रक्तस्राव में लाभप्रद सिद्ध है।

कार्वोभेष ६, ३०—अधिक दिनों तक रोग भोगने के कारण जीवनी शक्ति का दुर्वल हो जाना, शरीर में जलन, खुली हवा की अति इच्छा, रक्तस्राव धीरे-२ होता होवे रक्त पतला और कुछ कालापन लिये होता है।

फासफोरस ६, ३०—लाल रंग का रक्तस्राव होता है रोगी छाती में जलन का अनुभव करता है। प्यास रहती है और ठण्डा पानी पीना चाहता है किन्तु पानी पेट में गर्म होते ही वमन हो जाता है।

उपरोक्त दवाइयों के अतिरिक्त रक्त प्रदर में लिखी हुई दवाइयां भी लक्षण मिलने पर व्यवहार कर सकते हैं। रोगी को पूर्ण आरोग्य करने के लिये रोगी का मानसिक और शारीरिक लक्षण समष्टी के अनुसार दीर्घ क्रियाशील एण्टीसोरिक या एण्टी साईकोटिक एवं एण्टी सिफलीटिक अथवा एण्टी ट्यूबर क्यूलोसिस दवा का प्रयोग करें। सिर्फ रक्तस्राव को रोक देने से ही आपकी चिकित्सा पूर्ण नहीं मानी जाती है। भविष्य में रक्तस्राव न होवे और रोगी सभी प्रकार से पूर्ण आरोग्य लाभ करे वही आदर्श चिकित्सा है।

अतः पाठकों से निवेदन है कि रक्तस्राव रुकने के बाद रोगी की चिकित्सा दीर्घ क्रियाशील दवा से पुरानी बीमारी के नियम से करें।

रक्त—प्रदर

परिचय—योनि मार्ग से ऋतु स्राव के अलावा जो रक्तस्राव होता है उसे रक्तप्रदर कहते हैं। अतिरज की चिकित्सा निम्न प्रकार ही समझनी चाहिए। कुछ दवाइयों के लक्षण हम रक्तपित्त को चिकित्सा में लिख आये हैं। अधोरक्तपित्त की चिकित्सा रक्तप्रदर के समान हीं समझनी चाहिए।

यहां आप यह प्रश्न करेंगे कि—अधो रक्त-पित्त, अतिरज आदि अनेकों कारणों से होने वाले रोगों की चिकित्सा एक ही प्रकार क्यों है जबकि निदान की दृष्टि से सभी रोग पृथक् २ हैं। उत्तर में निवेदन है कि रोग का नाम क्या है इस बात से हमें दरकार नहीं है हमें तो यह देखना है कि हमारे रोगी को मानसिक और शारीरिक क्या-क्या कष्ट हैं और हमारी मेटेरिया मेडिका में ऐसी कौन सी दवा है जो कि अपने परीक्षण काल में इसी प्रकार के लक्षण पैदा करने की शक्ति रखती है। लक्षणों के साहश्य से हमें वही दवा देनी होगी जिस दवा से रोगी के लक्षणों का सादृश्य होवे। हमें रोगी को आरोग्य करना है (रोगी में जो अस्वाभाविक लक्षण पैदा हो गये हैं उनको दूर करके स्वाभाविक अवस्था में लाना ही रोगी आरोग्य करना है) फिर बाल की खाल निकालने में क्यों समय नष्ट करें। रोग का नाम क्या है, इसमें कौन से कीटाणु हैं, मल, मूत्र, रक्त में क्या परिवर्तन हुआ है, इत्यादि जानकारी करके भी तो वही दवा देनी होगी जो समलक्षण सम्पन्न है। क्यों नहीं हम वह दवा पहिले ही दे देवें।

अतः प्रिय छात्रों—(जो अभी होमियोपैथिक सीख रहे हैं) आप लक्षण समष्टी संग्रह करने की ओर दवा निर्वाचन की कला को सीखें। कीटाणु खोजना हमारा कार्य नहीं है. यह फिलासफी का विषय है और यहां लिखना आवश्यक नहीं था, पर छात्रों के लाभार्थ प्रसंगवश लिख दिया है। कृपया विद्वान गुरुजन क्षमा करेंगे। अब हम अपने मूल विषय चिकित्सा पर आते हैं।

चिकित्सा—

सेवाइना ६, ३०, २००—अत्यधिक रक्तस्राव के साथ ही वेदना, इस वेदना की विशेषता यह है कि कमर से दर्द आरम्भ होकर घूमता हुआ तल पेट में आकर समाप्त होता है। रक्त कालापन लिये या लाल होता है किन्तु उसमें रक्त के थक्के मिले रहते हैं। यह दवा प्रौढ़ महिलाओं के लिये विशेष लाभप्रद है जिन्हें तीसरे मास में बार-२ गर्भस्राव हुआ होवे या उनमें गठिया वात के लक्षण हों, सन्धियों में दर्द रहता होवे, मेनोरेजिया या मेट्रोरेजिया में भी यह लाभप्रद है। चलने, फिरने या हिलने [illegible] में वृद्धि होती है। जो स्त्रियां कम उम्र में ही ऋतुमति होती हैं उनकी जरायु की बीमारियों में यह लाभप्रद है। कामोत्तेजना के साथ ऋतु के मध्यवर्ती समय में रक्तस्राव होता होवे।

ट्रिलियम् पेन्डूलाम् Q, ६—नाक, मुंह, मलद्वार, जरायू शरीर के किसी भी द्वार से रक्तस्राव क्यों न होवे यदि रक्त देखने में लाल होवे और उसके साथ ही कमर में दर्द हो तो इस दवा का प्रयोग होता है।

कल्केरिया कार्ब ३०, २००, 1 M, 10 M—यह एक दीर्घ क्रियाशील दवा है। इसका प्रयोग करते समय रोगिणी के प्रकृतिगत लक्षणों को ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिये।

जो स्त्रियां मोटी थुलथुली (मेदपूर्ण) हैं जिनके सर पर पसीना अधिक होता है। पैर ठन्डे रहते हैं इस प्रकार की रोगिणियों को रक्तप्रदर या अतिरज (रजस्राव १५ दिन पर ही आरम्भ हो जाता होवे और अति मात्रा में स्राव होवे और अधिक दिनों तक रहे) में यह दवा लाभप्रद है। डा०हैनीमेन साहब का मत है कि नियमित समय से कई दिन पूर्व रजस्राव होवे और उसमें रक्त अधिक मात्रा में आता हो तब यह दवा लाभप्रद है।

डा० गरेन्सी साहब का मत है कि—जहां रोगिणी के दोनों पैर इस प्रकार ठन्डे हों कि वह गीला मोजा पहने होवे और रक्तप्रदर हो तो कल्केरिया लाभप्रद है।

रोगी विवरण—

श्रीमती............उम्र ३५ वर्ष, रंग गोरा, शरीर मोटा थुलथुला, पैर ठण्डे, दूध से अनिच्छा, शीत कातर, दूध पीने से अनिच्छा, नमकीन, मिट्टी आदि खाने की इच्छा उपरोक्त लक्षणों के साथ रोगिणी को ३ वर्ष से रक्तप्रदर था। प्रति १०-१५ दिन पर रक्तस्राव होता और ६-७ दिन तक रहता था। एलोपैथिक चिकित्सा हुई पर स्थाई लाभ नहीं हुआ अतः होमियोपैथिक चिकित्सा के उद्देश्य से मेरे पास आए। मैं उपरोक्त लक्षणों को देखकर कल्केरिया कार्ब ०।६ शक्ति प्रति १० दिन अन्तर से ४ मात्रा देकर ४० दिन बाद रोगिणी को देखा बहुत लाभ था। कल्केरिया कार्ब ०।१० शक्ति की २ मात्रा दी गई रोगिणी ठीक थी ४ मास तक मासिक नियमित होता रहा किन्तु सर्दी, खांसी, जुकाम की प्रकृति रह गयी उसके लिये ट्यू-

थर क्यूलीनम् 10 M शक्ति की १. मात्रा देकर चिकित्सा समाप्त की।

नक्स वोमिका ३०, २००—इससे पूर्व हम मोटी थुलथुली रोगिणी के बारे में कल्केरिया कार्ब नामक दवा बता चुके हैं। किन्तु दुवली, पतली, क्रोधी, झगड़ालू, ईर्षा रखने वाली, जिनको बार-बार मल त्याग की इच्छा होती है, जो प्रायः बैठे-बैठे दिन बिताती हैं उनके रक्त-प्रदर की दवा नक्स वोमिका है। यह दवा कुचला से तैयार होती है।

सिकेली कोर ३०, २००—ऊपर हम दुवली पतली रोगिणी के लिये नक्स वोमिका बताये हैं पर यही न समझें कि दुवली रोगिणी की दवा नक्स वोमिका है और मोटी की कल्केरिया कार्ब है। यह बात नहीं नक्स के प्रकृतिगत लक्षण होने पर ही वह कार्य करेगी। यदि आप की रोगिणी दुवली पतली है पर उसमें निम्न लक्षण हैं तो आप उसे सिकेलीकोर देकर आरोग्य कर सकते हैं।

लक्षण—दुवली पतली रोगिणी है उसके शरीर को छूने पर आपको ठण्डा लगेगा पर रोगिणी भयानक जलन का अनुभव करती है। वह चाहती है कि उसे ठण्डे पानी में डाल दिया जावे या वर्फ में दवा दिया जावे (नक्स-वोमिका की रोगिणी इससे विपरीत होती है वह गर्म चाहती है) और इसके साथ ही प्रचुर मात्रा में रक्त-स्राव होवे, रक्त काला रंग का हो और पतला, उसके साथ ही पेट में दवाव की अनुभूति हो और प्रसव की तरह का दर्द होवे। जब तक दूसरे ऋतुकाल का समय नहीं होता है तब तक पानी की तरह रक्तस्राव होता है। अति रजस्राव के कारण मूर्छा का भाव भी रहता है। हिलने डोलने पर रक्तस्राव बढ़ जाता है।

थल्पसी वर्सा Q १×३×—जरायू से रक्तस्राव होता है उसका रंग काला और वह धीरे गति से होता है। रक्त में रक्त के थक्के थक्के होते हैं। रक्तस्राव ज्यादा दिनों तक चालू रहता है।

आष्टीलेगो Q ३, ६, ३०—रक्तस्राव वेदना विहीन होता है जमा हुआ बायें डिम्बकोष में स्पर्श कातरता रहती है।

वेलाडोना ३०, २००—लाल रंग का गरम ताजा रक्तस्राव जो कि प्रचुर मात्रा में होता है। चेहरा लाल रहता है।

प्लाटिना ३०, २००—प्रसव वेदना के समान वेदना के साथ काले रंग का रक्तस्राव, दुर्गन्धयुक्त होता है। योनि द्वार में खुजली और स्पर्श कातरता।

उपरोक्त दवाईयों के अलावा और भी बहुत सी दवा हैं जो कि लक्षण मिलने पर प्रयोग की जाती हैं। स्थानाभाव के कारण सभी दवाईयों का विवरण नहीं दिया गया है। विशेष जानकारी के लिये मेटेरिया मेडिका का अध्ययन करना चाहिए।

वायोकैमिक—

वायोकैमिक मतानुसार फेरमफास रक्तस्राव रोकने के लिए प्रधान दवा है। उसको लक्षणों के अनुसार कल्केरिया फास आदि दवाईयों के साथ मिलाकर या पर्याप्त क्रम से दिया जा सकता है। जीवनी शक्ति कम होने पर या रक्त विषाक्त होने पर काली फास के साथ दिया जाता है।

रक्तमेह (हीमेच्यूरिया)

निम्नलिखित दवाइयों का प्रयोग लक्षणों के अनुसार किया जाता है। मोटे अक्षरों में दी गई दवायें विशेष प्रयोजनीय हैं।

एकोनाइट, एपिस, **आर्जेन्टम नाई**, **आर्निका**, **वार्स**, अरम, वेल, वार्वे, **कैक्टस**, कल्के, कैम्फर, कैनार्स, **कैन्थारिस**, कैप्सिकम्, कार्वोभेष, कास्टीकम्, चिमाफिलम, कोलचिकोनायम्, कोपेवा, क्रोटेलस, इरिञ्जि, हैमामे, हियर, इपि, कैलिक्लो, क्रियो, लैके, लाईको, **मार्क**, मेजे, **मिलिफी**, नेट्रमम्यूर, नाईट्रकएे, **फास**, **पल्स**, **सिके**, **स्कुई**, **टेरिविन्थ**।

कोढ़-निदान एवं चिकित्सा

कुष्ठ परिचय—कुष्ठ रोग का विस्तृत विवेचन नीचे लिखा जा रहा है। विशेषता यह है कि विद्वान् ब्राह्मणों, गुरुओं और सत्पुरुषों को अपमानित, निन्दित एवं फटकारने से भी यह रोग होता है, ऐसा हमारा भी दो रोगियों पर अनुभव है। इस रोग में वात, पित्त, कफ, त्वचा, रक्त मांस और शरीरस्थ सब जलीय धातु ये सभी दूषित एवं कुपित हुआ करते हैं। कुल संख्या अठारह होती है।

मिथ्या आहार एवं आचार से, विशेष करके गुरु, विशुद्ध असात्म्य भोजन से, अजीर्ण में भोजन करने से, अहित वस्तुओं के सेवन से, स्नेहपान करके अथवा वमन कर्म करके, व्यायाम, ग्राम्य धर्म के सेवन से, अथवा बहुत करके दूध के साथ ग्राम्य अथवा आनूप मांस के सेवन से, ऊष्मा से अभितप्त होने पर स्नान करने से एकदम वमन के वेग को रोकने से वायु कुपित होकर पित्त एवं कफ को साथ लेकर, तिरछी जाने वाली शिराओं में पहुंचकर इनको दूषित करके वाह्य मार्ग को चारों ओर से घेर लेते हैं। जिस स्थान पर दोष प्रक्षिप्त होकर बाहर निकलता है, उस स्थान में मण्डल उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार से त्वचा में उत्पन्न दोष उस स्थान में बढ़कर, चिकित्सा न करने पर रोम मार्ग से अन्दर पहुंचकर धातुओं को दूषित कर देता है।

कुष्ठ के पूर्वरूप—त्वचा में कठोरता, बिना कारण के ही रोमांच होना, शरीर में कण्डु, पसीने का बहुत आना या बिल्कुल न आना, अंग प्रत्यंगों में स्पर्श ज्ञान का अभाव, क्षत, विसर्पण और रक्त का काला पड़ना, ये सब कुष्ठों के पूर्वरूप हैं। कुल मिलाकर कुष्ठ अठारह प्रकार के हैं। इनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ हैं। महाकुष्ठ यथा अरुण, उदुम्बर, ऋष्यजिह्व, कपाल, काकणिक, पुण्डरीक, दद्रु, क्षुद्रकुष्ठ यथा स्थूल अरुष्क, महाकुष्ठ, एवं कुष्ठ चर्मदल, विसर्प, परिसर्प, सिध्म, विचर्चिका, किटिभ, पामा और रकसा। सम्पूर्ण कुष्ठ वायु-पित्त-कफ एवं कृमि के कारण से उत्पन्न होते हैं। दोष की उत्कटता से यह कहा जाता है कि कुष्ठ वातजन्य है, यह पित्तजन्य इत्यादि।

इन महाकुष्ठों में वायु की प्रधानता से अरुण, पित्त की प्रधानता से ऋष्यजिह्व, उदुम्बर, कपाल और काकणक, कफ की प्रधानता से पुण्डरीक और दद्रु, इन कुष्ठों की महानता तीन कारणों से है। यथा चिकित्साकार्य के महान होने से, उत्तरोत्तर रक्तादि धातुओं में प्रविष्ट होने से एवं असाध्य होने से ये सात कुष्ठ महान हैं। इनमें अरुण कुष्ठ वायु के कारण से लाल झाईं वाला, पतला फैलने वाला तोद, भेद, स्वाप युक्त होता है। पित्त के कारण उदम्बर कुष्ठ-पके हुए गूलर के फल की आकृति एवं वर्ण वाला होता है। ऋष्यजिह्व कुष्ठ ऋष्य की जीभ के समान खर होता है। कपाल कुष्ठ कृष्णकपालिका के समान होता है। काकणक कुष्ठ—काकणान्तिका के फल के समानाकार एवं बहुत लाल एवं काला होता है। इन चारों में ओष, चोष, परिदाह और घूमायन ये लक्षण होते हैं। ये कुष्ठ शीघ्र उत्पन्न होते हैं शीघ्र पकते हैं। और शीघ्र ही फूट जाते हैं। इनमें कृमि भी जल्दी उत्पन्न होते हैं यह इन कुष्ठों का सामान्य लक्षण है। पुण्डरीक कुष्ठ पुण्डरीक के पत्र के समान होता है। दद्रु कुष्ठ अतसी के फूल के समान अथवा ताम्रवर्ण, फैलने वाली, छोटी छोटी पिड़काओं से युक्त होता है। इन दोनों पुण्डरीक और दद्रु-कुष्ठ में उत्सन्नता 'उभार' और परिमण्डलता कण्डू एवं देर में उत्पन्न होना, ये समान्य लक्षण हैं। अन्य क्षुद्रकुष्ठ-स्थूला रूक्क कुष्ठ में अरुंषि (फुन्सियां) स्थूल मूल वाली सन्धियों में उत्पन्न अतिकष्ट साध्य स्थूल एवं कठिन होती हैं। महाकुष्ठ में-त्वचा का सकोच, त्वचा का भेदन त्वचा का स्वाप एवं अङ्गसाद होता है। एककुष्ट में–जिस कुष्ठ में शरीर काला लाल हो जाता है उसे एककुष्ठ कहते हैं। चर्मदल कुष्ठ में-हाथ पांव के तलुओं में कण्डु, व्यथा, ओष और चोष की वेदना होती है।

विसर्प कुष्ठ—त्वचा, रक्त, मास को दूषित करके शीघ्र ही विसर्प रोग की भांति फैलने लगता है। इसमें मूर्च्छा, विदाह अरति (बेचैनी) तोद पाक आदि विकार होते हैं। परिसर्प कुष्ठ में शरीर के ऊपर धीरे-धीरे फैलने वाली एवं स्रावयुक्त पिडकायें निकल आती हैं। सिध्म कुष्ठ खाज युक्त, श्वेत वर्ण अपात्रि तनु प्रायः शरीर के
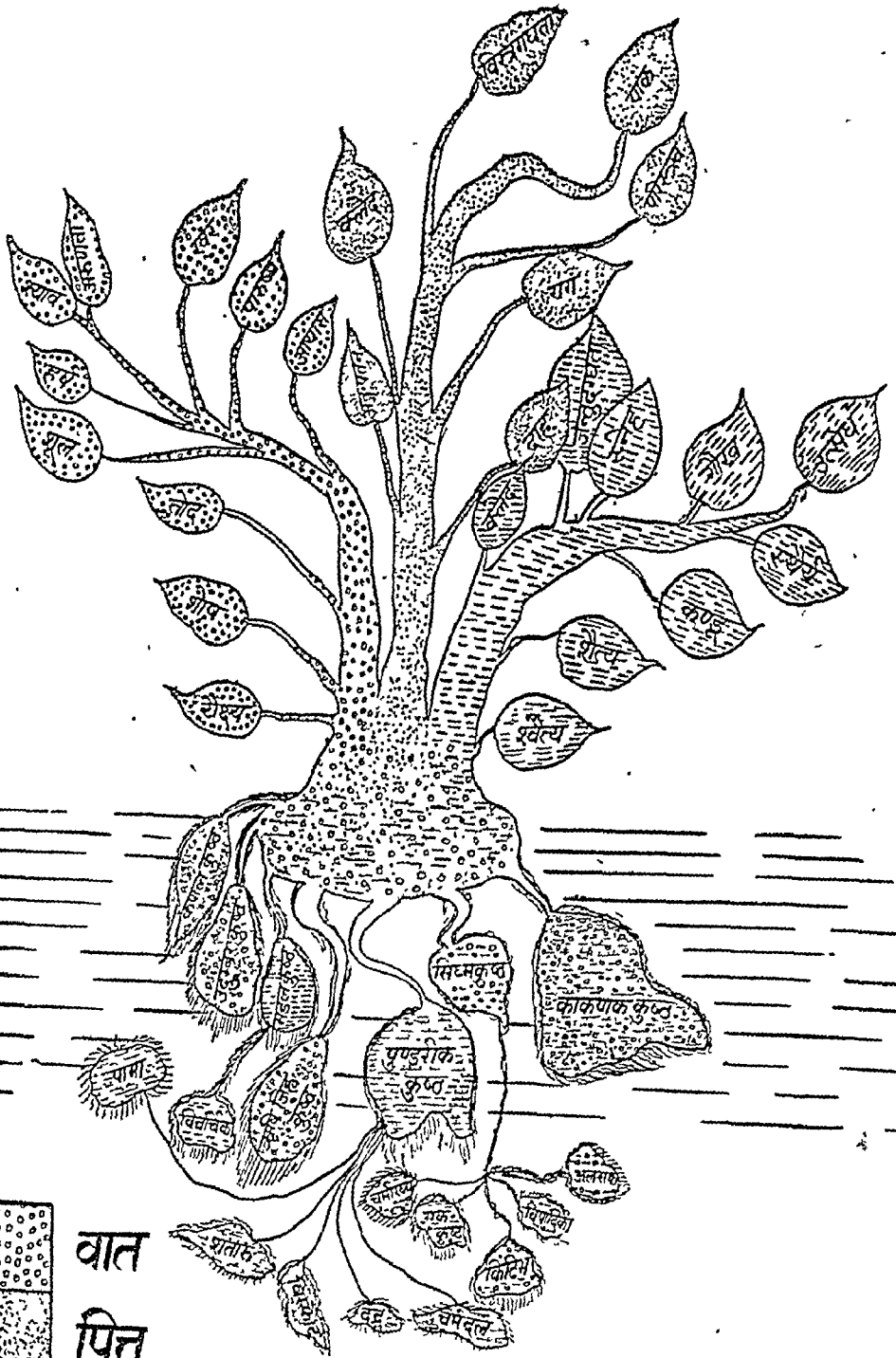
कुष्ठवृक्ष
(कुष्ठदोषनिरूपण)

ऊर्ध्वभाग में होता है। विचर्चिका रोग में हाथ पांव पर राजि उत्पन्न हो जाती है। अति कण्डू, रज एवं रूक्षता आ जाती है। जिस समय यह विचर्चिका पांव में होती है उस समय इसमें खाज, जलन और पीड़ा होती हो तो इसको विपादिका कहते हैं। किटिभ कुष्ठ स्रावयुक्त वृत्त, घन तीव्र कण्डूयुक्त, स्निग्ध कृष्ण होता है। पामा कुष्ठ में छोटी-छोटी बारीक पिड़कायें उत्पन्न होती हैं। इन पिड़काओं से स्राव बहता रहता है। इनमें खाज और जलन होती है। जिस समय यह पामा स्फिक्, पाणि और पांव में उत्पन्न हो जाये और उनमें स्फोट काले रंग के उत्पन्न हो जायें इनमें जलन और खाज हो तो इसको 'कच्छू' कहते हैं। इसका सम्पूर्ण शरीर में खाजयुक्त एवं स्राव रहित जो पिड़कायें उत्पन्न हो जाती हैं उनको एकसा कहते हैं। इन ग्यारह क्षुद्र कुष्ठों में अरक्तक, सिध्म, रकसा, महाकुष्ठ और एक कुष्ठ ये कफजन्य हैं। परिसर्प कुष्ठ वायु से उत्पन्न होता है। शेष कुष्ठ पित्त-जन्य हैं।

कुष्ठ में त्वचा का संकोच, त्वचा में स्पर्शनाश, पसीना न आना, सूजन, त्वचा का फटना, कौण्य और स्वर भंग ये वायु के कारण उत्पन्न होते हैं। पकना, फटना, अंगुलियों का गिरना, कान, नाक का नाश, आंखों में लालिमा, सत्वोत्पत्ति (कृमियों का उत्पन्न होना) ये पित्त के कारण से होता है। खाज वर्ण का नाश सूजन, श्राव और भारीपन कफ के कारण होता है। इनमें अति बल में प्रवृत्त पुण्डरीक और काकणक ये तीनों कुष्ठ असाध्य हैं। जिस प्रकार से उत्पन्न वनस्पति समय की अधिकता में मूल पकड़कर वृष्टि से बचकर भूमि के अन्दर स्थिर हो जाती है उसी प्रकार से त्वचा में उत्पन्न हुआ कुष्ठ चिकित्सा न करने पर समय की अधिकता से रक्त आदि धातुओं में फैल जाता है। त्वचागत कुष्ठ के लक्षण स्पर्शज्ञान की हानि, पसीने का थोड़ा आना, कण्डू, विवर्णता और रूक्षता होती है। कुष्ठ के रक्त में होने पर त्वचा का स्पर्श नाश, रोमांच, स्वेद का बहुत आना, कण्डू और विचूयक होती हैं। मांस में कुष्ठ होने पर बाहुल्य मुख की शुष्कता पिड़काओं का उत्पन्न होना तोद स्फोट स्थिरत्व होते हैं। मेद में कुष्ठ पहुंचने पर दुर्गन्धता उपदेह यूय कृमियों की उत्पत्ति शरीर का विदीर्ण होआ होता है। अस्थि और मज्जा में कुष्ठ होने पर नासिका नाश, आंखों में रक्तिमा, क्षत व्रणों में कृमि की उत्पत्ति तथा स्वर भङ्ग होता है।

शुक्र स्थान में कुष्ठ के पहुंचने पर कौण्य (अङ्गों में विकलता) गतिक्षय, अंगों का फूटना व्रण का फैलना तथा उपरोक्त लक्षण होते हैं। कुष्ठ दोष के कारण जिन माता पिता का शुक्र और शोणित दूषित होता है उनकी यदि सन्तान उत्पन्न होती है, तो वह भी कुष्ठ रोग से पीड़ित होती है। जितेन्द्रिय पुरुष का त्वचा रक्त और मांस में आश्रित कुष्ठ रोग साध्य है। मेद में आश्रित याप्य है। शेष स्थानों में पहुँचा असाध्य है। ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, सज्जन बध, दूसरे के धन के हरने के कारण इस पाप रोग कुष्ठ की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार कर्मजन्य कुष्ठ को कहा है। यदि कुष्ठ रोग से मनुष्य मरता है तो उत्पन्न होने पर फिर इसको कुष्ठ रोग होता है। इसलिये कुष्ठ से अधिक दुःखदायी और दूसरा रोग नहीं है। वर्णित आहार एवं आचार के नियमों का पालन करते हुए बड़ी भारी विचारणा को करने से विशेष औषधि के साथ तथा तप के सेवन से जो पुरुष कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाता है वह पुण्य गति को प्राप्त होता है। प्रसंग से, संक्रान्त व्यक्ति के शक्ति स्पर्श से, संक्रान्त व्यक्ति के निःश्वास से, संक्रान्त व्यक्ति के साथ भोजन करने से, संक्रान्त व्यक्ति के साथ सोने से, बैठने से, उसकी उपयुक्त वस्तु, माला, वस्त्र या अनुलेप को लगाने से कुष्ठ, ज्वर, शोथ, नेत्राभिष्यन्द और औपसर्गिक रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में आ जाते हैं।

विरुद्ध भोजन, अध्यशन, असात्म्य भोजन, मलमूत्र के उपस्थित वेगों को रोकने से, स्नेहनादि कार्यों को ठीक प्रकार न करने से, पापाचरण एवं पुरातन किये कर्मों के कारण त्वग् रोग होते हैं। त्वग् रोग वाला व्यक्ति मांस, वसा, दूध, दही, तेल, कुलत्थी, उड़द, सेम, ईख के बने पदार्थ, पिट्ठी से बनी वस्तुयें, खटाई, विरोधी भोजन, अध्यशन, अजीर्ण में भोजन, विदाही, अभिष्यन्दि पदार्थ, दिन में सोना और मैथुन को छोड़ देवें।

पथ्य—पुरातन शाली, सांठी, जौ, गेहूँ, कोरदूष, उद्दालक, श्यामाक आदि को, मूङ्ग, अरहर इनके यूष या दालों में नीम के पत्ते तथा भिलावा मिलाकर इनके साथ खायें। मण्डूकपर्णी, बावची, अडूसा, आक के फूलों से घी या सरसों का तेल सिद्ध करके तिक्त वर्ग के साथ सिद्ध घृत मिलाकर खायें। मांस सात्म्य वाले रोगी को मेद रहित जांगल मांस खाने को देवें। अभ्यंग के लिये वज्रक तेल, उत्सादन में आरग्वधादि कषाय, परिषेक, अवगाहन आदि कार्यों में खदिर कषाय वरते। यह आहार- आचार नियम है।

कुष्ठ रोग के पूर्वरूपों में वमन विरेचन वरतें। त्वचा के कुष्ठ होने पर शोधन आलेपन करें। रक्त में पहुंचने पर संशोधन, आलेपन, कषायपान, रक्तमोक्षण करें। मांस में पहुंचने पर शोधन, लेपन, कषायपान, रक्तमोक्षण, अरिष्ट, मन्थ, और प्राश (अवलेह) वरतें। मेद में पहुँचा कुष्ठ संशोधन आदि करने पर जितेन्द्रिय पुरुषों के साधन सम्पन्न होने पर याप्य रहता है। इसमें संशोधन और रक्तमोक्षण के उपरान्त भिलावा, शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक, गुग्गुल, अगुरु, तुवरक, खैर, असन, अपस्कृति, चिकित्सा का सेवन करें। इसमें सर्वप्रथम कुष्ठ रोगी को वमन आदि संशोधन देकर स्नेहपान विधि से चिकित्सा करें। मेषशृङ्गी गोखरू, शार्ङ्गेष्टा (काकतिक्ता या काकजङ्घा), गिलोय और दशमूल से सिद्ध घृत या तेल वातकुष्ठ रोगियों में पान और अभ्यंग के लिये वरतें। धव, अश्वकर्ण, अर्जुन, पलास, नीम, पित्तपापड़ा, मुलहठी, लोध्र, छुईमुई से सिद्ध घृत पित्त कुष्ठियों में पीने और अभ्यंग के लिये देवें। प्रियाल, शाल, अमलतास, नीम, सप्तपर्ण, चित्रक, मरिच, वच, कूठ इनसे सिद्ध किया घृत या तेल कफ कुष्ठियों के पीने और अभ्यंग के लिये वरतें। अथवा भिलावा, हरड़, विडंग से सिद्ध किया घृत कफ कुष्ठ रोगियों में वरतें। सब प्रकार के कुष्ठों में तुवरक तेल या भिलावे का तेल वरतें।

महातिक्तक घृत—सप्तपर्ण, अमलतास, अतीस, तालमखाना, कटुकी, गिलोय, त्रिफला, परवल, नीम, पापड़ा, धमासा, त्रायमाण, मुस्ता, चन्दन, पद्माख, हल्दी, पिप्पली, इन्द्रायण, मूर्वा, शतावरी, सारिवा, इन्द्रजौ, अडूसा, वच, मुलैहठी, चिरायता, बेर प्रत्येक समान भाग लेकर इनका कल्क करें। कल्क से चारगुणा घी, घी से दुगना आंवले का स्वरस, स्वरस से ४ गुणा पानी सबको एक साथ मिलाकर घृत सिद्ध करें। यह महातिक्तक नाम का घृत कुष्ठ, विषम ज्वर, रक्त-पित्त, हृदय रोग, उन्माद, अपस्मार, गुल्म, पिड़का, रक्त-प्रदर, गलगण्ड, गण्डमाला, श्लीपद, पाण्डुरोग, विसर्प, अर्श, नपुंसकता, कण्डू, पामा आदि को नष्ट करता है।

तिक्तक घृत—त्रिफला, पटोल, नीम, अडूसा, कुटकी, धमासा, त्रायमाण और पित्तपापड़ा में प्रत्येक २ पल लेकर १ द्रोण जल में डालकर क्वाथ विधि से चौथाई क्वाथ शेष रक्खें। इनमें त्रायमाण, मुस्ता, इन्द्र जौ, चंदन, चिरायता, पिप्पली प्रत्येक आधा-आधा पल लेकर पीसकर कल्क मिलायें। इसमें घी १ प्रस्थ डालकर पकायें। यह तिक्तक घृत, कुष्ठ, विषम ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी दोष, शोफ, पाण्डु रोग, विसर्प, नपुंसकता को नष्ट करता है। ऊर्ध्व जत्रुगत रोगों को नष्ट करता है।

इनमें से किसी एक घृत से स्नेहन करके स्वेदन देकर एक, दो, तीन, चार या पांच सिरा का वेधन करें। ऊंचे उठे मण्डलों में वार-वार लेखन करें। अथवा पांछना करें। समुद्र फेन, सागौन, गाजवां, कंठगूलर इनके पत्तों से रगड़ कर लाख, राल, रसौत, पनवाड़ के बीज, बावची, तेजबल, कनेर, आक, कुटज, अमलतास की मूल इनके कल्क को गोमूत्र से या गाय के पित्त से पीसकर लेप करें।

सर्जक्षार, तुत्थ कासीस, विडङ्ग, घर का धुंवासा, चित्रक, कुटकी, हल्दी सैंधव, इनके कल्क से लेप करें। इन्हीं की तिलनालों से जलाकर छै गुने पलाश क्षार में घोलकर क्षार विधि से नितार कर फिर पकावें। जराव की भांति होजाये तब उतार कर लेप करें। ज्योतिष्क फल, लाख, मरिच, पिप्पली, इमली के पत्ते इनके अलावा-हरताल, मैनसिल, आक का दूध, तिल, सुहांजना, मरिच, इनके कल्क से लेप करें। स्वजिका, कूठ, तुत्थ, कुटज, चित्रक, विडंग, मरिच, लोध, मैनसिल, इनके कल्क अथवा हरड़ लताकरंज, विडङ्ग, सरसों, सैंधव, हल्दी, बावची, रोचना इनके कल्क से लेप करें। लेपों को गोमूत्र या गाय के पित्त में पीसकर लगायें। सब प्रकार के कुष्ठों के नाश करने वाले ये सात सिद्ध लेप कहे हैं।

वायसी, कठगूलर, कुटकी प्रत्येक एक सौ पल, लोह चूर्ण २ प्रस्थ, त्रिफला ३ आढ़क, असन २ प्रस्थ मिलाकर ३ द्रोण जल पकायें, एक भाग जल जाए अर्थात दो भाग शेष रहने पर उतार कर छान लें। इसमें इन्द्र जौ त्रिकुट, दालचीनी, देवदारु, अमलतास, पारावत पदी, जमालगोटा, बावची, नागकेशर, कटेरी इनका वारीक कल्क मिलाकर अढ़ाक घृत सिद्ध करें। यह घृत कुष्ठ रोगियों में देवें। इस घृत के पीने से दोष धातुओं में स्थित तथा अभ्यंग में त्वचा में स्थित असाध्य कुष्ठ भी अच्छा होजाता है। इसका नाम नील घृत है।

महानील घृत—हरड़, वहेड़ा, आंवला की वकली, सोंठ, मरिच, पीपल, तुलसी, मेंहदी, मकोय, अमलतास, ये प्रत्येक एक सौपल, मकोय, आक, वरूण, जमालगोटा, कुटज, चित्रक, दारुहल्दी, कटेरी पृथक् दश पल लेकर इन सबको तीन द्रोण जल में क्वाथ करें। जब ७ प्रस्थ शेष रह जाए। तब छानकर इसमें गोवर का स्वरस, दही, दूध गोमूत्र, और गोघृत प्रत्येक एक अढ़ाक तथा चिरायता, त्रिकुट, चित्रक, करंज फल, नीलिनी निशोथ, वावची, पीलु नीलिका, नीम के पुष्प, इनका कल्क करके घृत को सिद्ध करलें। यह घृत खाने में कुष्ठनाशक है। और मलने से श्वित्र में त्वचा के समान रंग लाता है। यह महानीलघृत भगन्दर कृमि, अर्श को नष्ट करता है। इसके आगे दूषित रक्त के निकल जाने पर शरीर में पुनः वल आजाने से रोगी को घी से स्नेहन करके, तीक्ष्ण, वामक योगों से भली प्रकार वमन करके पीछे, विरेचन आदि से दोषों को विना आलस्य के निकालते रहें। कुष्ठ रोगी को वमन या विरेचन भली प्रकार यदि न हों तो दोषों के कुपित होकर सारे शरीर में फैल जाने पर अवश्य असाध्य हो जाता है। इसलिए इसके दोषों को सम्पूर्ण रूप में वाहर करें। कुष्ठ रोगी को १५-१५ दिन पीछे वमन और १-१ मास पीछे विरेचन देना चाहिए। वर्ष में दो वार थोड़ा थोड़ा रक्त निकलवा देना चाहिए। ३-३ दिन पीछे रोगी को नस्य देना चाहिए।

हरड़, त्रिकट, गुड़, तैल, इनको एक साथ मिलाकर चाटने से कुष्ठ रोग से मुक्त होता है। अथवा—

आंवला,हरड़,वहेड़ा, पिप्पली विडङ्ग इनको मधु और घी के साथ चाटें। हल्दी का रस १ पल मात्रा में गोमूत्र के साथ एक मास तक पीने से सर्व कुष्ठ रोग मुक्त होजाते हैं। इस प्रकार चित्रक या पिप्पली को वारीक पीसकर १ पल की मात्रा में गोमूत्र के साथ पीना चाहिए। इस प्रकार रसौत को गोमूत्र के साथ एक मास तक पीवें और रसौत का शरीर पर निरन्तर लेप करें।

रीठे की छाल, सप्तपर्ण की छाल, समान मात्रा में लाख, मुस्ता, दशमूल, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, वहेड़ा, अडूसा, देवदारु, हरड़, चित्रक, त्रिकुट, आंवला, विडङ्ग, इन सबको समभाग लेकर इनके वरावर इसमें विडङ्ग का चूर्ण मिलावें। इसमें से रोगी एक पल मात्रा को प्रतिदिन गोमूत्र से खावें। अथवा—

त्रिफला घृत में त्रिकुट मिलाकर इसको १ द्रोण भी खाने से रोगी कुष्ठ से मुक्त हो जाता है। १ द्रोण गोमूत्र में अक्षपीड़ से सिद्ध किया घृत कुष्ठ को नष्ट कर देता है। अमलतास, सप्तपर्ण, पटोल, करंज, नीम, हल्दी, दारुहल्दी, और मुष्कक (मोरवा) इनसे सिद्ध किया पुरातन घृत कुष्ठ को नष्ट करता है। पित्त की अधिकता के कारण जिसको वहुत जलन होती हो, उसके स्नान के लिए लोध, नीम, पद्माख, रक्तसार, सप्तपर्ण, वहेड़ा, कुटज, असनसार इनका षडंगोदक परिभाषा से वनाया क्वाथ स्नान में देवें। अथवा निशोथ को मधु के साथ पीयें। कुष्ठ रोगी का मांस गिरता हो तो वह नीम के क्वाथ में पुराने मूङ्ग को तेल के साथ पकाकर खायें (यहां पर नीम का क्वाथ भी षडंग परिभाषा से करें)। कुष्ठ में कृमि उत्पन्न होने पर नीम का क्वाथ अथवा आक श्वेत फूल का, सप्तपर्ण, इनका क्वाथ पीयें। कीड़ों से खाए अंगों पर कनेर की मूल, वायविडंग इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करें। इन पर गोमूत्र परिषेक करें और सव भोजनों में वायविडंग को वरतें। अथवा व्रणों पर करंज, सरसों, सुहांजने या कोशाम्र वीज का तेल लगायें। अथवा मरिच आदि कटु द्रव्य, निम्वादि, तिक्त द्रव्यों के कषाय में पाक विधि से करंज आदि के तेल सिद्ध करके लगायें। शेष सव चिकित्सा दुष्ट व्रण की भांति करनी चाहिए।

वज्रक तेल—सप्तपर्ण, करंज, आक, चमेली, कनेर, थोर, शिरीष इनके मूल, चित्रक मूल, सारिया मूल, मीठा

तेलिया, कलिहारी, वज्राख्या, कसीस, हरताल, मैनसिल, करंज के बीज, त्रिकुट, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, सरसों वायविडंग, पनवाड़ इनको गोमूत्र के साथ पीसकर इनके कल्क से गोमूत्र में तैल सिद्ध करें। यह वज्रक तेल कुष्ठ नाशक है। मलने से नाड़ी व्रण दुष्ट व्रणों को नष्ट करता है।

महावज्रक तेल—सरसों, नाटाकरंज, हल्दी, दारुहल्दी, रसौत, कुटज, पनवाड़, सप्तपर्ण, इन्द्रायण, लाख, राल, आक, सारिवा, अमलतास, थोर, शिरीष, तुवरक, कुटज, भिलावा, वच, कूठ, वायविडंग, मजीठ, कलिहारी, चित्रक, चमेली, कडुई तुम्बी, गन्धक, मूली, सैंधव, कनेर, घर का धुआंसा, मीठा तैलिया, कमीला, सिन्दूर, तेजवल, तुल्य इन सवको समान लेकर पीस लें। इससे दुगना गोमूत्र, गोमूत्र के बराबर तिल तेल, तिल तेल से ४ गुणा करंज या सरसों का तेल मिलाकर इसे सिद्ध कर लें।

यह तेल अतिशक्तिशाली महागुणकारी तेल है। इस तेल के लगाने से सर्व कुष्ठ, गण्डमाला, भगन्दर, नाड़ी व्रण सब बिना सन्देह के नष्ट हो जाते हैं। लाक्षादिगण को अथवा महावज्रक में पड़े लाक्षा सर्जरस आदि को पीसकर गोमूत्र में (तिल से ४ गुने) गाय के पित्त का प्रक्षेप देकर सिद्ध किया तिल तेल वैद्य सात दिन कड़वे तुम्बे के पात्र में रख देवें। फिर इस तेल को मात्रा में पीयें और शरीर पर मालिश करें। रोगी धूप में सोये रहें। इससे दोष सम्पूर्ण शरीर से निकल जाते हैं। दोषों के निकल जाने पर रोगी को धूप में से उठाकर खैर के क्वाथ से स्नान करायें। खैर के क्वाथ में बनाई यवागू इस रोगी को पीने के लिये दें। इस प्रकार संशोधन वर्ग तथा कुष्ठघ्न औषधियों से तेल घृत सिद्ध करें। इन औषधियों से प्रदेह और उद्वर्षण करें प्रतिदिन प्रातःकाल विरेचक औषधियों का सेवन करें जिससे ५-६ बार मल त्याग करें। अथवा ५-६, ७-८ दिन बाद विरेचन लें। जिससे दोष प्रकोप न हो। अथवा ऊंट का मूत्र पीयें, इसके पचने पर ऊंटनी के दूध का भोजन करें। इस प्रकार ६ मास करने पर कीड़े पड़ा कुष्ठ भी नष्ट हो जाता है। (मूत्र ऊंट का ही लें)।

कुष्ठ से पीड़ित मनुष्य कुष्ठ रोग को नष्ट करने के लिए खैर का स्नान, पान, भोजन आदि सब कर्मों सम्पूर्ण रूप से उपयोग करें। जिस प्रकार कि बढ़ा होने से कुष्ठ अपने तेज से रोगी को मार देता है उसी प्रकार सम्पूर्ण रूप में बरता खैर अपनी शक्ति से कुष्ठ को नष्ट कर देता है। कुष्ठ रोगी बाल और नख कटवाकर हितकारी भोजन एवं औषध का सेवन निरन्तर करके स्त्री, मांस, सुरा से अलग रहकर कुष्ठ मुक्त हो जाता है।

अनुभूत योग—

कुष्ठरिपु—शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक की कज्जली, लोहभस्म शतपुटी, शतपुटी नागभस्म, ताम्रभस्म (गंधक जारित), वंगभस्म (भांग में मारित), अभ्रक की शतपुटी भस्म अथवा अभ्रक सत्व—इन सबको एक-एक तोला प्रमाण में लेवें। फिर त्रिकटु, त्रिफला, सज्जीखार, जवाखार, पांचों नमक, छोटी इलायची, नागरमोथा, वायविडंग, आमला, पीपलामूल, चित्रकमूल छाल, तालीसपत्र, चव्य, हल्दी, काकड़ासिंगी, गजपीपल, मेढ़ासिंगी, दारुहल्दी, नागकेसर, पोहकरमूल और अजमोद ये सब दो-दो तोला ग्रहण करें। फिर सबके बराबर शुद्ध गूगुल और शिलाजीत लेकर गोघृत में घोल लेवें और ऊपर वाली सभी दवाइयों को डालकर नीम के डण्डे से चलाते जायें। जब पककर गाढ़ा हो जाय, पात्र को टेढ़ा करके रखदें। उसके नीचे अन्य पात्र रखदें। घृत धीरे-धीरे स्रवित होकर पात्र में गिरेगा। इसको तो मालिश के लिए रखलें और शेष द्रव्य में २ तोला शुद्ध सिंगरफ, २ तोला रजतभस्म, २ तोला सुवर्ण माक्षिकभस्म, तीन माशा शुद्ध वत्सनाभ तथा महुआ, मुनक्का, शतावर, लोध, कमलगट्टा, खस, कूठ मीठा, सेमल का मूसला, गंभारी के फल और सहदेवी का चूर्ण एक एक तोला और मिलादें तथा गूगुल की भांति कुटाई करके २-२ रत्ती की गोलिया बनालें। प्रतिदिन प्रातः एक गोली सौंठ और सनाय के दो तोला काढ़े से खावें। सामान्य विरेचन अवश्य होता है। सायं यह गोली बकरी या गोदुग्ध से खावें अन्य दूध से नहीं। यह कुष्ठरिपु प्रयोग बढ़ते हुए कुष्ठ को भी शमन कर देता है। सभी कुष्ठों, सभी चर्म विकारों तथा रक्तपित्त, रक्तमण्डल, प्रमेह, स्वप्नदोष, रक्तवात, आमवात को भी शीघ्र ही नष्ट करता है। सूखी खुजली, गीली खुजली, अण्डकोषों

की खुजली, सिर की सीकरी वादी, वाली बवासीर अधिक आयु के कारण दुर्बलता को यह अवश्य नष्ट करता है, हमारा तीस वर्ष का यह अनुभूत ग्रह प्रदत्त प्रयोग है। ऊपर कहे गए रोगों पर यह अचूक है। निर्भय होकर प्रयोग किया जा सकता है।

शास्त्रीय चिकित्सा

(कुष्ठ कोढ़)—वात प्रधान कुष्ठों में घृत, कफ प्रधान कुष्ठों में वमन और पित्त प्रधान कुष्ठों में आरम्भ से रक्त का मोक्षण तथा विरेचन करावें। बहुत दोष वाला कुष्ठी प्राणों को रक्षित करते हुए कई वार थोड़ा-थोड़ा संशोधित किया जाना चाहिए क्योंकि यदि अत्यधिक मात्रा में दोषों का हरण होने पर वायु कुपित होकर दुर्बल रोगी को शीघ्र नष्ट कर देता है। कोष्ठ शुद्ध होने पर, रक्त के मोक्षण होने पर स्नेह का पान होता है, क्योंकि शुद्ध कोष्ठ वाले दुर्बल कुष्ठी के शरीर में शीघ्रप्रभाव कर जाता है। हृदय में दोषों का उत्क्लेश होने पर, उर्ध्व-भागीय कुष्ठों में इन्द्रजौ, मुलहठी तथा मदनफल से पटोल सहित नीम के स्वरस से युक्त पदार्थों के द्वारा वमन करानी चाहिए। कुटजादि वामक द्रव्यों का, शीतकषाय क्वाथ अथवा शीतल पक्व रस नामक मद्य, शहद मुलहठी और वमन द्रव्य प्रयोग में लाये जा सकते हैं। कुष्ठों में विरेचन करने में निशोथ, दन्ती, हरड़, वहेड़ा, आंवला कहे जाते हैं। सौवीरक तुषोदक, आसव तथा शीघ्र अधोहर विरेचनों के आलोडन की वैद्य प्रशंसा करते हैं।

दारुहल्दी, बड़ी कटेरी, खस के साथ, पटोल, नीम, मदनफल और अमलतास इन सबका क्वाथ स्नेह मिला इन्द्र जौ तथा मोथा के कल्क से कुष्ठी का आस्थापन करना चाहिए।

विरेचन किये, निरुहण किए, अनुवासन योग्य वातोल्वण कुष्ठी को देखकर पटोलपत्र सहित, मदनफल, मुलहठी, नीम, कुटज स्नेह सिद्ध करें और उससे अनुवासन करें। सेंधानमक, दन्ती, कालीमिर्च, मरूआ, पीपल, विडंग सहित करंज बीज से निर्मित, नस्य कृमि, कुष्ठ, कफदोष नाशक होती है। आनूप तथा जलज प्राणियों के मांसों की सुखोष्ण पोटलियों द्वारा स्वेदन किये गये उत्स्विन्न या उत्सन्न फूले अथवा उभरे हुए कुष्ठ को तीक्ष्ण शस्त्र के द्वारा लेखन करें। अथवा रक्तस्राव के लिये कुष्ठ को थोड़ा प्रच्छित करके सींग या तूंबी के द्वारा रक्त का आहरण करें, रक्त निकाल दें अथवा कुष्ठ को अल्पप्रच्छान के बाद जोकों द्वारा विरेचन शुद्धि करें।

गोमूत्र से दारूहल्दी या रसौत अथवा सोंठ, मिर्च, पीपल तैल सहित हरड़ १ मास प्रयोग की हुई कुष्ठ को नाश करती है।

पटोलमूलादि क्वाथ—पटोल की जड़ तथा इन्द्रायण की जड़, हरड़, वहेड़ा, आंवला और निशोथ अलग-अलग १ पल, त्रायमाण, कुटकी अर्ध भाग (आधा-आधा पल) सोंठ चौथाई पल, साथ साथ चूर्ण की गई इन औषधियों का १ पल यथा विधान जल में पकाकर दोपहर उस क्वाथ को व्यक्ति पीयें। क्वाथ के पच जाने पर जांगल पशु-पक्षियों के मांस रस में पुराने शालियों के भात को खावें। यह सब कुष्ठ को नष्ट करता है।

मुस्तादि कुष्ठ—मोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, वहेड़ा, आंवला, मंजीठ, दारू हल्दी, पंचमूली दोनों अर्थात् दशमूल, सप्तपर्ण, नीम की छाल, इन्द्रायण सहित चित्रक, मूर्वा सब बराबर भाग के चूर्ण को ९ भाग तर्पण सत्तुओं के साथ मधु, घी मिलाकर योजना किया गया यह सिद्ध प्रायोगिक भक्ष्य कुष्ठनाशक है।

त्रिफलादि चूर्ण—हरड़, वहेड़ा, आंवला, अतीस, कुटकी, नीम, इन्द्र जौ, वचा, पटोलपत्र, पिप्पली, हल्दी, दारू हल्दी, पद्माख, मूर्वा, इन्द्रायण, चिरायता, ढाक दो पल प्रत्येक समभाग, इससे दुगना निशोथ, इसका दुगना ब्राह्मी दें। कुष्ठ में जो संज्ञानाश हो जाता है उसे दूर करने के लिये यह विशेष योग वतलाया है।

कुष्ठ में रस प्रयोग—चमेली के स्वरस के साथ मधु मिलाकर गन्धक का प्रयोग तथा स्वर्ण माक्षिक धातु गोमूत्र के साथ सत्रह कुष्ठों का घात करती है। कुष्ठ का रोगी गन्धक के योग से अथवा स्वर्ण माक्षिक योग से सर्वरोग नाशक पारद का सेवन करें। सर्व रोगघ्न हीरे को शिलाजीत सहित अथवा योगराज सहित हीरे को तथा यथावत् निगृहीत पारद को नित्य सेवन करें।

मध्वासव—८-८ पल कत्था तथा देवदारु के सार भाग को एक आढक जल में क्वाथ बनाकर चतुर्थांश शेष

शेष रहने पर उस जल से जल का ग्रहण करके जलरूप उस क्वाथ को १ प्रस्थ शहद में डालें। लौह चूर्ण ८ पल तथा त्रिफला, एला, दालचीनी, मिर्च, तेजपात, धत्तूरा इनमें से प्रत्येक कर्ष बराबर डाल दें। साथ ही मधु के बराबर खांड डालकर लोहे के पात्र में १ मास तक रखे हुए उस मध्वासव का आचारण करने से कुष्ठ-श्वित्र में शान्ति प्राप्त होती है।

कनकविन्द्वरिष्ट—कत्थे का काढ़ा १ द्रोण(द्रवद्वैगुण्य से २ द्रोण)घृत भावित पात्र में रखकर हरड़-बहेड़ा-आंवला और सौंठ, मिर्च, पीपल, विडंग, हल्दी, मोथा, अडूसा, इन्द्र जौ, दारू हल्दी, दालचीनी और गिलोय इन चूर्ण किए ६ पल द्रव्यों को यहां खदिर कषाय में छोड़ें। यह सब एक मास तक धान्यराशि में रखें। इसे प्रातःकाल युक्ति पूर्वक पीयें। महाकुष्ठ १ मास में तथा क्षुद्र कुष्ठ १ पक्ष में नष्ट होता है।

चित्रक के सहित हरड़-बहेड़ा-आंवला व गुड़ से बना हुआ त्रिफलासव सुपारी, दशमूल, दन्ती, गुग्गुल तथा मधु के योग से संयुक्त होने पर कुष्ठ रोग को नष्ट करने वाला है।

विविध लेप योग—

इलायची, कूठ कड़ुवा, दारू हल्दी, सौंफ, चित्रक, वाय विडंग, रसौत, तथा हरड़ इनका आलेपन करना इष्ट है।

चित्रकादि लेप—चित्रक, इलायची, कुन्दरू, अडूसा, निशोथ, आक, सोंठ चूर्ण करके ८ दिन गोमूत्र में घोलकर छाने गए ढाक के क्षार की भावना देनी चाहिए। धूप में तप्त हुए इसके लेप से मण्डल शीघ्र फूट जाते तथा विलीन हो जाते हैं।

मांस्यादि लेप—जटामांसी, कालीमिर्च, सैंधवलवण, हल्दी, तगर, थूहर, घर से प्राप्त धूम, मूत्र, गाय का पित्त और पलाश क्षार इनका लेप कुष्ठ नाशक होता है।

त्र्प्वादि लेप-वंगभस्म,सीसभस्म, लोहभस्म, अंजीर, चित्रक, बड़ी कटेरी इनका लेप मण्डल, कुष्ठ नाशक होता है। गोहमांस रस लवण के साथ तथा देवदारु और गोमूत्र मण्डल कुष्ठ नाशक होता है।

कदल्यादि मेदक पान—केला, ढाक, पाटला, समुद्र फल के स्वच्छ क्षारोदकों से मांसों में, चावल की पिट्ठी में तथा सुराविलन्न में जल कार्य करना चाहिए अर्थात् जैसे जल डालकर मांस, पिट्ठी किण्व आदि को औटाते हैं वैसे क्षारों के साथ इनको क्वथित करना चाहिए। उनसे ठीक से उत्पन्न मेदक का पान तथा नीचे बैठे किण्व से प्राप्त प्रलेपन तत्पश्चात् धूप सेवन प्रशस्त मण्डल कुष्ठघ्न तथा कृमिघ्न माना जाता है।

मोथा, मदनफल, हरड़-बहेड़ा-आंवला, कंजा, अमलतास, इन्द्र जौ, दारूहल्दी, सप्तपर्ण इनसे सिद्ध जल से स्नान सिद्धार्थक स्नान कहलाता है। इनका क्वाथ वमन विरेचन करने वाला तथा इनके चूर्ण का घर्षण वर्ण को बढ़ाने वाला त्वगदोष कुष्ठ को नष्ट करने वाला है। चक्रमर्द के बीज, सेंधा नमक, रसोत,कैथ और लोध पठानी, कन्नेर की जड की छाल, कुटज तथा करंज के फल, दारूहल्दी की छाल, चमेली के प्रवाल (कोमल पत्र) से युक्त लेप सिद्ध कुष्ठ नाशक होता है। कूठ, कंजे के बीज, चक्रमर्द इनका लेप कुष्ठ नाशक होता है। लोध्र, धाय के फूल, इन्द्र जौ, कटकरंज तथा मालती के फूलों का कल्क कुष्ठों में उबटन तथा लेप दोनों में प्रयुक्त होता है। सिरस की छाल, कपास के फूल, अमलतास के पत्ते और मकोय से अलग-अलग पीसकर ४ प्रकार का तैयार किया गया लेप कुष्ठ नाशक होता है।

दारूहल्दी तथा रसोत, नीम, पटोल, कत्था, अमलतास वृक्ष, कुटज वृक्ष दोनों, त्रिफला, सप्तपर्ण ये ६ कषाय योग कुष्ठ नाशक है तथा सातवां तिनिश (आवनूस) तथा आठवां कनेर का कषाय योग कुष्ठी के स्नान तथा पान में हितकर होता है।

त्रिफलादि कषाय—हरड़-बहेड़ा-आंवला, नीम, परवल, मंजीठ, कुटकी, बालवच, हल्दी इनका कषाय नित्य अभ्यास में लाने पर कफ पित्तज कुष्ठ को नष्ट कर देता है। इन्हीं द्रव्यों से सिद्ध घृत वात प्रधान कुष्ठ को हटाता है।

कत्था, विजयसार, देवदारु, नीम का भी यह कल्क कहा गया है। अर्थात् कत्था आदि द्रव्यों से सिद्ध क्वाथ कफ पित्तज कुष्ठघ्न है और इनसे सिद्ध घृत वातज कुष्ठनाशक हुआ होगा। कूठ, आक, तूतिया, कायफल, मूली

के बीज, कुटकी, इन्द्र जौ, कमल, मोथा, बड़ी कटेरी, कनेर, कसीस, चक्रमर्द, नीम, पाठा, दुरालभा, चित्रक, विडंग, कड़वी तुम्बी के बीज, कबीला, सरसों, बच, दारू हल्दी इनसे सिद्ध तेल कुष्ठनाशक है।

सफेद कनेर का रस, गोमूत्र, चित्रक और वायविडंग से सिद्ध यह तैल योग कुष्ठों में लाभ करता है। इसे श्वेत करवीराद्य तैल कहते हैं। सफेद कनेर के पत्ते, जड़ की त्वचा, इन्द्र जौ और विडंग, कूठ, आक की जड़, सरसों, संहजने की जड़ की छाल, कुटकी इनके चतुर्थांश कल्कों से तेल से चौगुना गोमूत्र देकर सिद्ध किया हुआ तेल मालिश से कुष्ठ और खुजली को नष्ट कर देता है। इसे श्वेतकरवीर पल्लवादि तेल कहते हैं।

कड़वी तुम्बी के बीज, दोनों तुत्थ, गोरोचन, हल्दी दोनों, बड़ी कटेरी के फल, अण्डी, इन्द्रायण सहित चित्रक मूर्वा, कसीस, हींग, सहजना, सोंठ, मिर्च, पीपल, देवदारु, तुम्बुरु, विडंग, लांगली, कुड़े की छाल, कुटकी इनके कल्कों से चौगुने गोमूत्र में सरसों का तेल सिद्ध करना चाहिए। यह कुष्ठ नाशक है। इसे तिक्तेक्ष्वाकु तेल कहते हैं।

कनकक्षीरी तेल—स्वर्णक्षीरी (कंकुष्ठ या सत्यानाशी), मनःशिला, जयपाल, दन्ती की जड़, चमेली, शाखमूल्ङ्गा, सरसों, लशुन, वायविडंग, कंजा की छाल, सप्तपर्ण, आक के पत्ते, आक की जड़ की छाल, नीम, चित्रक, आस्फोता (हाफर माली या अपराजिता), गुञ्जा, अरण्ड, बड़ी कटेरी, मूली, तुलसी, अर्जक के बीज, कूठ, पाठा, मोथा, तुम्बरु (धनियां), मूर्वा, बच, लालबच, चक्रमर्द, कुटज, संहजन, सोंठ, मिर्च, पीपल, भिलावे, क्षवक, हरताल, अन्वाहुली, तूतिया, कबीला, अमृतासंग (खर्पर), सोरठी मिट्टी, कसीस, दारुहल्दी की छाल, सज्जी लवण, इन सबके कल्क से कनेर की जड़ के क्वाथ में मीठा या सरसों का तैल ४ गुना गोमूत्र डालकर सिद्ध करना चाहिए। सिद्ध हुआ यह तैल कड़वी तुम्बी में स्थापित करना चाहिए। उससे मण्डली को शीघ्र भेदन करें। इसके अभ्यङ्ग से कृमि तथा कण्डू नष्ट होता है।

कूठ, तमालपत्र (तेजपत्र), कालीमिर्च, मैनसिल के साथ, कासीस सहित, तैल से युक्त को एक सप्ताह ताम्रपात्र में रखकर उससे लिप्त करके धूप में बैठने वाले का सिध्म एक सप्ताह में नष्ट हो जाता है। जीवन्ती, मजीठ, दारुहल्दी, कबीला, दूध, तूतिया यह घृत तैल पाक सिद्ध कर लेना चाहिए। सिद्ध होने पर शिलारस, मोम के साथ देना चाहिए। इसके लगाने से विपादिका शान्त हो जाती है। चर्मकुष्ठ, एक कुष्ठ, किटिभ कुष्ठ तथा अलसक कुष्ठ से शान्त होता है। किण्व, सूअर का खून, बड़ी इलायची, सैंधव लवण के लेप से मण्डल कुष्ठ नाश होता है तथा धनियां और कूठ लेप प्रयोग से भी मण्ठल कुष्ठ का नाश होता है। करंज की जड़, देवदारू, जटामांसी (वक यन्त्र में परिपक्व करे) सुरा, शहद, मूंगपर्णी, काकनासा के साथ सिद्ध मण्डल कुष्ठ नाशक लेप होता है। चित्रक, संहजन दोनों, गिलोय, ओंगा, देवदारू, कत्था तथा धव, श्यामालता दन्ती तथा द्रवन्ती (रतनजोत या जङ्गली अरण्ड), लाख, रसौत, इलायची और पुनर्नवा आदि के लेप से कुष्ठियों को लाभ होता है। दही के मण्ट से युक्त करके देना चाहिए।

एजगजादि लेप—चक्रमर्द, कूठ, सैंधानमक, कांजी, सरसों से तथा कृमिघ्नों (वायविडंग अथवा अन्य कृमिनाशक पदार्थों) से मण्डल नामधारी कृमिज कुष्ठ तथा दद्रु कुष्ठ शान्ति प्राप्त करते हैं। चक्रमर्द, राल, मूली के बीज अलग-अलग कांजी से युक्त क्रमानुसार लेप सिध्मकुष्ठों के उद्वर्तन माने गये हैं। अर्थात् उपरोक्त तीनों पदार्थों में से किसी-किसी के चूर्ण को कांजी में घोल सिध्मकुष्ठ पर लेप करके उबटन करने से लाभ होता है।

वासा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बड़ी कटेरी, सुगन्धवाला, पटोलपत्र, अनन्तमूल और कुटकी पीने, नहाने, उबटने से तथा प्रलेप से कुष्ठ रोगों में लाभ होता है। कत्था, अमलतास, अर्जुन, रुहेड़ा, लोध, कुडा, धाय, नीम, सप्तपर्ण, कन्नेर, सप्तपर्ण कन्नेर स्नान तथा पानों में सेवन से कुष्ठों में लाभ होता है। मुलहठी, लोध पठानी, पद्माख, पटोल, नीम, चन्दन इनके सुशीतल स्वरस पित्त कुष्ठियों के लिए स्नान-पान हितकर होते हैं। प्रियगु, रेणुका, इन्द्रजौ, अतीस, सुगन्धवाला, चंदनसहित कुटकी का आलेपन कुष्ठों में किया जा सकता है। दाह से जलते हुए कुष्ठों में तिक्त, पंचतिक्त, तिक्तपट्पल,

महातिक्त नामक घृतों से सौ या हजार बार धोये घृत से चन्दन, मुलहठी, पुण्डरिया काठ, नीलोफर इनसे युक्त तैलों से अभ्यंग करना अच्छा है। चर्मदल सहित क्लेद में अंग जहां प्रपदित होता है वहां दाह में विस्फोटक में शीतल प्रदेह तथा सेक, सिरावेध, विरेचन तथा तिक्त घृत प्रयोग किए जा सकते है। रक्त पित्त प्रधान कुष्ठों में कत्था से साधित घृत, नीम से साधित घृत, दारुहल्दी से साधित घृत, पटोल से साधित घृत उत्तम सिद्ध चिकित्सा होती है। हरड़, बहेड़ा, आंवला के फलों की त्वचा तथा पटोल पत्र आधे-आधे पल, शेष कुटकी, नीम, मुलहठी, त्रायमाण १-१ कर्ष दो पल मसूर की दाल का देकर एक आढक (द्रव द्वैगुण्य से दो आढक) जल में यह कषाय सिद्ध करना चाहिए। अष्टम भाग शेष रहने पर छानकर रस ग्रहण करना चाहिए। उन दूने आठ पल (अर्थात् १६ पल) कषाय में ४ पल घृत डाल पकाना चाहिए। जब तक आठ पल शेष रह जाय तब उसे कोष्ण पीना चाहिए। यह बात पैत्तिक कुष्ठ को नष्ट करता है।

तिक्त षट्पलक घृत—नीम, पटोल, दारुहल्दी, दुरालभा, कुटकी, हरड़, बहेड़ा, आमला, पित्तपापड़ा और त्रायमाण को आधा-आधा पल अलग-अलग इकट्ठा करें। एक आढक (द्रव द्वैगुण्य से २ आढक) जल में डालकर पकावें तथा अष्टमांश रहे हुए रस छानकर उसमें चन्दन, चिरायता, पिप्पली, त्रायमाण तथा मोथा, इन्द्रजौ आधा-आधा कर्षभाग को कल्क करके छोड दें। साथ ही ताजा घी ६ पल डालकर इसे सिद्ध करके पीना चाहिए। यह कुष्ठ नाशक है।

महातिक्त घृत—सप्तपर्ण, अतीस, अमलतास, कुटकी, पाठा, मोथा, खस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पटोल-पत्र, नीम, पित्तपापड़ा, धमासा, चन्दन, पिप्पली, पद्-माख, हल्दी, दारुहल्दी, वच, इन्द्रायण, शतावरी, दोनों सारिवा (अनन्तमूल तथा श्यामालता) इन्द्रजौ, वासा, मूर्वा, गिलोय, चिरायता तथा मुलहठी और त्रायमाण कल्क करें। घृत से चौथाई भाग यह कल्क डालें, आठ गुना जल तथा आंवलों का स्वरस दूना और सिद्ध होने पर इस घृत को पीवें। समय पर यथाबल पिया गया महा-तिक्तक घृत रक्तपित्त की प्रबलता से युक्त कुष्ठों को मुक्त करता है।

महाखदिर घृत—कत्था ५ तुला, शीशम का बुरादा तथा विजयसार की लकड़ी का बुरादा १-१ तुला, कंजा, नीम, वेतस, पर्पट, कुटज, अडूसा, विडंग तथा हल्दी, दारूहल्दी, अमलतास, गिलोय, हरड़-बहेड़ा-आंमला, निशोथ सप्तपर्ण ये सब आधा-आधा तुला, इनको जल के दस द्रोण (द्रव्य द्वैगुण्य से २० द्रोण) में पकाकर जब अष्ट-मांश शेष रहे तो क्वाथ को उतार लें। उसे छानकर छने हुए रस में बराबर भाग आंवला स्वरस तथा एक आढक घी का डालकर महातिक्तक घृत के पूर्वोक्त कल्क द्रव्यों को १-१ पल लेकर उससे पकावें। यह महाखदिर घृत पीने, लगाने तथा सेवन करने से सब कुष्ठों को नष्ट करता है यह परम कुष्ठ विकार नाशक योग है।

यदि गात्रों में लसीका बहती हो, यदि वे जन्तुओं द्वारा भक्षित हों तथा उनका गलना हो रहा हो तो गोमूत्र, नीम, विडंग इनसे स्नान, पान और लेपन करना चाहिये। अडूसा, कुटज, सप्तपर्ण, कन्नेर, कंजा, नीम और कत्था गोमूत्र के साथ स्नान पान और लेप में कृमिज कुष्ठ नाशक है। विडंग सहित चक्रमर्द, अमलतास की जड़, कुत्ते के दांत, गाय, घोड़ा, सूअर, ऊंट के दांत कुष्ठों के नाशक हैं।

बृहन्मञ्जिष्ठादि क्वाथ—मजीठ, नागरमोथा, कुडे की छाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भारंगी, कटेरी का पञ्चांग, वच, नीम की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पटोल पत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविडग, विजयसार, चीते की छाल, शतावर, त्रायमाण, पीपल, इन्द्रजौ, अडूसे के पत्ते, भांगरा, देवदारु, पाठा, खैरसार, लालचन्दन, निशोथ, बकायन, कंजा, अतीस, नेत्रवाला, इन्द्रायन की जड़, धमासा, सारिवा और पित्त पापड़ा इन पैंतालीस (४५) औषधों को कूट पीसकर जौकुट करके एक तोले का काढा कर उसमें पीपल का चूर्ण और गूगल मिलाकर पीवें तो अठारह प्रकार के कुष्ठ दूर होते हैं।

लघुमञ्जिष्ठादि क्वाथ—मजीठ, हरड़-बहेड़ा-आंवला, कुटकी, वच, दारुहल्दी, गिलोय और नीम की छाल ये नौ औषधों का क्वाथ करके पीवें तो कापिलक कुष्ठ दूर होता है।

पंच निम्ब चूर्ण—नीम की जड़, नीम के पत्ते, नीम के फल, नीम के फूल, नीम की छाल ये १५ पल देकर के

उनको चूर्ण करें फिर लोहे की भस्म, जंगी हरड़, पंवाड के वीज, चीते की छाल, भिलावे, वायविडंग, मिश्री, आमलक हल्दी, पीपल, कालीमिर्च, सोंठ, वावची, अमलतास का गूदा और गोखरू ये १५ औषव प्रत्येक १-१ पल लेकर इन सवका चूर्ण करें। फिर पूर्वोक्त नीम का चूर्ण और १५ औषधों का चूर्ण मिला एकत्र कर भांगरे के रस की भावना दे सुखावें फिर खैर की छाल का काढ़ा करके उसका एक पुट दें, फिर विजयसार की छाल का काढा करके एक पुट देकर सुखावें। मात्रा १ तोला इस चूर्ण को खैर की छाल के काढे से पीवें अथवा विजयसार के क्वाथ या घी या गौ के दुध से पीवें तो एक महीने में सम्पूर्ण कुष्ठ दुर होते हैं।

त्रिफलादि मोदक–हरड़-वहेड़ा-आंवला ये ८-८ पल, भिलावा ४ पल, वावची ५ पल, वायविडंग ४ पल और लोहभस्म, निशोथ, गूगल, शिलाजीत ये चार औषध १-१ पल प्रमाण लेनी चाहिए। गांठदार पुष्कर मूल, चीते की छाल दोनों आधा-आधा पल, कालीमिर्च दो शाण एवं सोंठ पीपल, नागरमोथा, दालचीनी इलायची, तमालपत्र और नागकेशर ये २-२ शाण लेवें। सबको कूट पीसकर चूर्ण करें। इस चूर्ण के समान मिश्री ले पाक करें। उसमें इस चूर्ण को डालकर सवको एक जीव करके १-१ पल के मोदक वनायें, इस मोदक के सेवन से सर्व प्रकार के कुष्ठ रोग दूर होते हैं।

सूर्यपाक सिद्ध कासीसाद्य घृत–हीरा कसीस, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, हरताल, मनःशिला, कपीला, गंधक वायविडंग, गूगल, मोम, कालीमिर्च, कूठ, सफेद सरसों, रसांजन, सिंदूर, गंधाविरोजा, लालचन्दन, खैर की छाल, नीम के पत्ते, कंजा के वीज, सारिवा, वच, मजीठ, मुलहठी, जटामांसी, सिरस की छाल, लोध, पद्माख, जंगी हरड़ और पवांड़ के वीज ये ३१ द्रव्य १-१ कर्ष लेवें। सवका चूर्णकर तीस पल घी तांवे के पात्र में डाल चूर्ण मिलावें, सात दिन तक धूप में रख देवें। फिर इस घृत को शरीर पर लगायें, इससे सर्व प्रकार के कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं।

वज्री तैल—थूहर का दूध, आक का दूध, धतूरे का रस, भैंस का गोवर का रस, ये सम्पूर्ण रस समभाग तथा तिलों का तैल सब रसों के समभाग लें। इसमें पूर्वोक्त रसों को मिला के मन्दाग्नि पर पचन करें। जब तेल मात्र रहे तब तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर औटावें, जब तेल मात्र रहे तों उतारकर छान लेवें। फिर इसमें निम्न औषध मिलावें—गंधक, चीते की छाल, मनशिल, हरताल, वाय विडंग, अतीस, शुद्ध कियासिगिया विष, कडुई तोरई, कूठ, वच, जटामांसी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दारुहल्दी, मुलहठी, सज्जी खार, जीरा, देवदारु ये १६ द्रव्य १-१ कर्ष ले सबका बारीक चूर्ण करके उस तेल में मिलाकर तेल की मालिश करें तो संपूर्ण कुष्ठ दूर होते हैं।

खदिरारिष्ट—खैर की छाल ५० पल, देवदारु ५० पल, वावची १२ पल, दारूहल्दी २० पल, हरड़, वहेड़ा, आमला ये तीनों मिलाकर २० पल, इस प्रकार सम्पूर्ण औषध लेकर कूट के उसको ८ द्रोण जल में काढ़ा करें। जब एक द्रोणमात्र जल शेष रहे तब उतार कर छान लेवें। शीत होने पर उसमें २०० पल शहद, खांड १०० पल, धाय के फूल २० पल, कंकोल, नागकेशर, जायफल, लौंग, इलायची, दालचीनी, पत्रज ये सात औषधि एक-एक पल, पीपल ४ पल इस प्रकार सबको एकत्र कर चूर्ण कर उसको पूर्वोक्त काढ़े में मिलादें। फिर सबको घी के चिकने पात्र में भर मुख पर मुद्रा दें, ३० दिन के पश्चात् निकालें, इसके सेवन से महाकुष्ठ रोग दूर होता है।

परवल, नीम, कुटकी, दारुहल्दी, पाठा, धमासा, पित्तपापड़ा, त्रायमाण ये सब ४–४ तोला लेकर ५१२ तोले पानी में पकावें। जब आठवां भाग शेष रहे तब एक-एक तोले त्रायमाण, नागरमोथा, चिरायता, इन्द्रजो, पीपल, चंदन इनको मिलावें और ४८ तोले घृत को पकावें। यह तिक्तघृत पित्तकुष्ठ को नष्ट करता है। शातला, पित्तपापड़ा, अमलतास, कुटकी, वच, त्रिफला, पद्माख, पाठा, हल्दी, दारुहल्दी, सारिवा, रक्तसारिवा, छोटीपीपल, वड़ी पीपल, नीम, चन्दन, मुलहठी, इन्द्रायण, इन्द्रयव, गिलोय, चिरायता खस, वासा, मूर्वा, शतावरी, परवल, अतीस, नागरमोथा, त्रायमाण, धमासा इनके कल्क से आठगुने पानी में और दुगुने रस में सिद्ध किया घृत सर्व प्रकार के कुष्ठ को दूर करता है।

वायविडंग, भिलावा, वावची, चीता, वाराहीकन्द, हरड़, कलिहारी, काले तिल, पीपल इनकी गूढ़ में वनाई

गोली कुष्ठ का नाश करती है। बावची॥ वायविडंग की जड़, पीपल, चीता की जड़, लौह का मैल, आमले, तिल ये सब चाटे हुए कष्ट साध्य कुष्ठों का नाश करते हैं। बावची, चीता, हल्दी, वायविडंग, देवसिरस के फल की गुठली, भिलावा, त्रिफला इनसे गुड़ में बनाई गोली अभ्यास से सब प्रकार के कुष्ठों का नाश करती है।

मिश्री॥ तैल॥ वायविडंग॥ आंवला॥ लौहे का मैल, पीपल इनको खाने वाला व्यक्ति कष्ट रूप तथा सब प्रकार के कुष्ठों को जीतता है।

कोढ़ की शास्त्रीय चिकित्सा

वात के उल्वणता वाले कुष्ठ में घृत का उपयोग करें, कफ की उल्वणता वाले कुष्ठ में वमन करावें और पित्त की उल्वणता वाले कुष्ठ में लेप करावें, सेचन कराना तथा रुधिर निकलवाना ही उत्तम है।

पथ्यादि लेप—हरड़, करंज, सरसों, हल्दी, बावची, सेंधा नमक और वायविडंग इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

सोमराज्युद्वर्त्तन—वाकुची के चूर्ण को अदरख के रस में मिलाकर शरीर पर लेप करने से उग्र और जमा हुआ कोढ़ भी नष्ट हो जाता है।

पंचनिम्बकावलेह—ब्रह्मा की कही हुई रसायन को कहता हूँ जिससे अनेक रोगों का नाश होता है। मार्कण्डेय आदि बड़े-बड़े ऋषियों ने इसी रसायन को सेवन किया था। नीम के फल, फूल, छाल, मूल और पत्ते प्रत्येक २-२ तोले लेकर बारीक चूर्ण बनाकर उस चूर्ण को भांगरे के रस में सात बार भावना देवें (फूल के समय फूल ले रखने चाहिए और फल के समय फल ले रखने चाहिए) हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल, ब्राह्मी, गोखरू, भिलावे, चीता, वायविडंग का सार, वाराहि कन्द, लोहे का चूर्ण, हल्दी, दारुहल्दी, बावची, अमलतास, मिश्री, कूट, इन्द्र जौ और पाठ ये सब समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उस चुर्ण को खैर विजयसार और नीम इनके गाढ़े क्वाथ की भावना देवें। पश्चात् भांगरे के रस की क्रमानुसार सात भावना देव। फिर इस हरड़ आदि के चूर्ण का एक भाग और पूर्वोक्त पंचनिम्ब का चूर्ण दो भाग लेकर इनको एकत्र करके सहद में अथवा पंचतिक्त नामक घृत, वा खैर में तथा विजयसार के क्वाथ में अथवा गरम जल के साथ शुभदिन में चाटें, नित्य-नित्य ४८-४८ रत्ती बढ़ाकर ४ तोले तक इस अवलेह को बढ़ाना चाहिए। प्रथम विरेचन आदि से शरीर को शुद्ध करके पश्चात् स्नेहनक्रिया से स्निग्ध करके फिर बुद्धिमान पुरुष इस अवलेह का उपयोग करें। इस अवलेह के पचने पर स्निग्ध, हलका और हितकारक अन्न भोजन करना चाहिए। इस अवलेह से विचर्चिका, औदुम्बर, पुन्डरीक, कपाल, दद्रु, किटिम, अलसक, आदि, शतारू, विस्फोटक, विसर्प, गंडमाला, कफ का प्रकोप, तीन प्रकार का श्वित्र, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जड़ता, अन्धता, नाड़ीव्रण, मस्तक की पीड़ा, सर्व प्रकार का प्रमेह, सर्व प्रकार के प्रदर, सर्व प्रकार के जंगम और स्थावर विष, ये सब नष्ट हो जाते हैं। इस अवलेह को सहद में मिलाकर चाटने से बड़े-बड़े मोटे पेट वाले मनुष्य भी सिंह के समान पतले पेट वाले हो जाते हैं। और दृढ़ संधियों वाले हो जाते हैं। इस अवलेह को सेवन करने वाले को जो सर्पादि जन्तु, कांटें तो वह सर्पादि तत्काल मर जाते हैं। इस अवलेह के उपयोग करने से बहुत काल तक जीता रहता है। रोग तथा जरा उत्पन्न नहीं होती और चद्रमा के समान शोभा बढ़ती है।

स्वायंभुव गुग्गुल—बापची २० तोले, शिलाजीत ३० तोले, गूगल ४० तोले, सोनामाखी १२ तोले, लोहे का चूर्ण, गोरखमुण्डी, नागरमोथा, वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, करंज के पत्ते, खैर, गिलोय, निशोल, जमाल गोटा, मोथा, हल्दी, कुड़े की छाल, नीम की छाल, चीता और अमलतास प्रत्येक २ तोले, इन सबको एकत्र पीसकर सहद में गोलियां बना लेवें। प्रातःकाल गोमूत्र के साथ यह गोली खायें तो कोढ़ और वातरक्त तत्काल नष्ट होता है। इस स्वयंभुव नामक गूगल से वली, पलित श्वित्र, पांडु, उदर के विषम रोग, प्रमेह और गुल्म भी नष्ट हो जाता है।

एक विंशतिक गुग्गुल—चीता, हरड़, बहेड़ा, आमला, सौंठ, मिरच, पीपल, जीरा, कलौंजी, वच, सेंधा-नमक, अतीस, कूट, चव्य, इलायची, जवासा, वायविडंग, अजमोद, नागरमोथा और देवदारु ये सब समान भाग सबकी बराबर गूगल लेवें सबको एकत्र घी में खूब कूटकर

गोलियां बना लेवें। यह गोली प्रातःकाल भोजन के वक्त अग्नि के बलानुसार खाऐं तो १८ प्रकार के कोढ़, कृमि, द्रष्ट वर्ण, संग्रहणी, अर्श के विकार, मुख की पीड़ा, गलग्रह, ग्रध्रसी, भग्न और गुल्म ये सब नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार विष्णु असुर को जीतते हैं उसी प्रकार यह गूगल ऊपर कहे रोगों को और कोठे में प्राप्त हुए रोगों को तत्काल जीतता है।

कैशोर गुग्गुल—वातरक्त के अधिकार में जो कैशोरक गूगल कहा है उसको भक्षण करने से भी कोढ़ और वातरक्त नष्ट हो जाता है।

अमृत भल्लातकावलेह—भिलावे १२८ तोले लेकर १०२४ तोले जल में पकावें, फिर उसमें १२८ तोले गिलोय को कूटकर उसी जल में डालकर पकावें। जब पकते-पकते यह जल चौथाई भाग बाकी रह जाए तब इसको उतार लेवें, इस क्वाथ को वस्त्र में छानकर उसमें ३२ तोले घी, २५६ तोले दूध, मिश्री ६४ तोले और शहद ३२ तोले डालकर एक उत्तम पात्र में मन्द-मन्द अग्नि से धीरे-धीरे पकावें जब यह पकते-पकते गाढ़ा हो जाए तब अग्नि पर से उतार कर उसमें वेलगिरि, अतीस, गिलोय, वापची, पमार, नीम, हरड़, वहेड़ा, आमला, मजीठ, सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, सेंधानमक, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, पित्तपापड़ा, तेजपत्र, सुगन्धवाला, खस, चन्दन, गोखरू के बीज, कचूर और लाल चन्दन ये प्रत्येक औषधि २–२ तोले लेकर चूर्ण पीसकर मिला देवें तो अमृत भल्लातकावलेह सिद्ध होता है। इस अवलेह को नित्य प्रातःकाल ४ तोले जल के साथ सेवन करें और पथ्य भोजन करें तो कोढ़ वातरक्त और सब प्रकार की ववासीर नष्ट हो जाती है। इस भिलावे को सेवन करने वाला मनुष्य कसरत, धूप, अग्नि, खट्टे पदार्थ, मास, दही, मैथुन, तेल की मालिश और मार्ग का चलना त्याग कर देवें।

महाभल्लातकावलेह—नीम, सफेद सारिवा, अतीस, वापची, कुटकी, त्रायमान, हरड़, वहेड़ा, आमला, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, धमासा, वच, खैर, सफेद चन्दन, पाढ, सोंठ, कचूर, भारंगी (अगर भारंगी न मिले तो कटेरी की जड़ लेवें), अडूसा, चिरायता, इन्द्र जौ, अनन्त मूल, इन्द्रायन, चुरनहार, वायविडंग, कुडे की छाल, चीता, हस्तीकंद, गिलोय, बकायन, कड़वे परवल, हल्दी, दारूहल्दी, पीपल, अमलतास, सतौना, निसोत, वेत, सफेद चौंटली के फल, मजीठ, गजपीपल, रायसन, करंज, पुनर्नवा, जमालगोटा, विजयसार, भांगरा, पियाबांसा, अंकोल और सिहोड़ा ये प्रत्येक पदार्थ अलग-अलग आठ-आठ तोले लेकर सबको १०२४ तोले जल में धीरे-धीरे मन्द-मन्द अग्नि से पकावें, जब पकते-पकते जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उसको उतार कर उत्तम वस्त्र में छान मजबूत वासन में भरकर रख देवें। फिर १००० भिलावों को छीलकर ३०७२ तोले जल में पकावें। जब पकते-२ आठवां भाग शेष रह जाय तब उस क्वाथ को वस्त्र में छानकर पहिले क्वाथ में मिला देवें, फिर इस क्वाथ में ४०० तोले गुड़ डालकर धीरे-धीरे मन्द-मन्द अग्नि से सीरे के समान पकावें, फिर इसमें १००० भिलावों की मींग डालें तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, वहेड़ा, आंवला नागरमोथा, वायविडंग, चीता, सैंधा नमक चंदन, कूठ और अजवायन प्रत्येक पदार्थ ४-४ तोले पीसकर मिला देवें। सुगन्धित करने के लिए दालचीनी, तेजपत्र, इलायची और नागकेशर प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोले डाल देवें तो ये महाभल्लातकावलेह सिद्ध होता है।

यह महादेव जी ने पूर्वकाल में प्राणियों के हित की इच्छा से कहा था। इस अवलेह को सेवन करने से श्वित्र औदुम्बर, दाद, ऋक्षजिह्वा, काकणक, पुन्डरीक, चर्मदल, गजचर्म, विस्फोट, रक्तमंडल, खुजली, कपाल कुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, ६ प्रकार की ववासीर, पांडुरोग, व्रण, कृमि, रक्त-पित्त, उदावर्त, खांसी, श्वास और भगन्दर ये सब रोग तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इस अवलेह का नित्य अभ्यास करने से सफेदवाल नष्ट होकर काले निकलते हैं और दुस्तर आमवात भी नष्ट हो जाता है। इस अवलेह को सेवन करने वाले मनुष्य को आहार-विहार और मैथुन विशेष परहेज रखने की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह अवलेह कान्ति को उत्तम करता है और जठराग्नि को दीपन करता है। इस अवलेह को सेवन करने के पश्चात् गिलोय के जल का अथवा दूध का अनुपान करें और भोजन में विशेष करके गर्म खटाई का त्याग कर देवें।

लघुमंजिष्ठादि क्वाथ—मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी, वच, देवदारु, हल्दी, कूठ, और नीम इनका क्वाथ बनाकर नित्य पीने से सर्व प्रकार के कोढ़ नष्ट हो जाते हैं। इस क्वाथ का अभ्यास करने से वात-रक्त, खुजली, पामा, रक्तमंडल, दाद, विसर्प और विस्फोट इन सबका नाश होता है।

मध्य मंजिष्ठादि क्वाथ-मजीठ, बापची, चकवड, नीम, हरड़, हल्दी, आवला, अड़ूसा, सतावर, खरैंटी, गंगेरन, मुलैंठी, गोखरू, परवल की वेल, खस, गिलोय और लाल चंदन इनका क्वाथ बनाकर पीने से कोढ़, वातरक्त, खुजली और मंडल का नाश हो जाता है।

बृहन्मञ्जिष्ठादि क्वाथ—मजीठ, कुड़े की छाल, गिलोय, नागरमोथा, वच, सोंठ, हल्दी, दारुहल्दी, कटेरी का पंचाङ्ग, नीम, परवल, कुटकी, भारंगी, वायविडंग, चित्रक, चुरनहार, देवदारु, भांगरा, पीपल, त्रायमाण, पाढ, सतावर, खैर, हरड़, वहेड़ा, आंवला, चिरायता, वकायन, विजयसार, अमलतास, फूल प्रियंगू, बावची, लाल चंदन, वरुना, जमालगोटा, सिहोड़ा, पित्त-पापड़ा, सारिवा, अतीस, धमासा, इन्द्रायन और सुगन्धवाला इनका क्वाथ बनाकर नित्य पीने से बहुत पुराने चर्म-विकार, १८ प्रकार के कोढ़, वातरक्त, सम्पूर्ण रुधिर रोग, विसर्प, त्वचा की जड़ता और नेत्र के रोग नष्ट हो जाते हैं।

लघुमरिचादि तेल—कालीमिर्च, निसोत, नागर-मोथा, हरिताल, मैनसिल, देवदारु, हल्दी, दारूहल्दी, बाल-छड़, चंदन, इन्द्रायन, कनेर, आक का दूध, और गाय के गोवर का रस ये प्रत्येक पदार्थ १-१ तोला लेवें, वत्सनाभ, विष २ तोले लेवें और सरसों का तेल ६४ तोले लेवें। इन सबको चौगुने जल में तथा दुगुने गोमूत्र में पकावें तो यह 'लघु मरिचाद्य' तेल सिद्ध होता है। इस तेल की मालिश करने से कोढ़ नष्ट हो जाता है। इस तैल के अभ्यंग से तत्काल श्वित्र कुष्ठ का रंग बदल जाता है। इसको नित्य सेवन करने से खुजली, पामा, सिध्म, विच-र्चिका, पुन्डरीक, दाद और शून्यता नष्ट होती है।

महामरिचाद्य तेल—काली मिर्च, निसोत, जमाल गोटा, आक का दूध, गोवर का रस, देवदारु, हल्दी, दारू हल्दी, बालछड़, कूठ, चंदन, इन्द्रायन, कनेर, हरताल, मैनसिल, चीता, कलिहारी, नागरमोथा, वायविडंग, चक-वड, सिरड, इन्द्र जौ, नीम, सतौना, गिलोय, थूहर श्यामाक, करंज, खैर, वाकुची, वच और मालकांगुनी प्रत्येक ४-४ तोले, वत्सनाभ ८ तोले, सरसों का तेल २५६ तोले और गोमूत्र इससे चौगुना लेवें, इन सब पदार्थ को लोहे के पात्र में अथवा मट्टी के पात्र में मन्द-मन्द अग्नि से धीरे-धीरे पकावें तो यह महामरिचाद्य तेल सिद्ध होता है। इस मुनियों के कहे हुए तेल से वैद्य कोढ़ के व्रणों पर मालिश करावें, इस तेल के अभ्यंग से पामा, विचर्चिका, दाद, कण्डू और विस्फोटक ये सब नष्ट होते हैं। तथा शरीर में वलों का पड़ना, बिना समय ही बालो का सफेद हो जाना, छाया, नीलिका, व्यंग, (झांई) ये सब नष्ट होकर सुकुमारता उत्पन्न होती है। इस तेल का स्त्रियों को जो पहली अवस्था में नास दिया जाय तो उनके वृद्ध अवस्था में भी स्तन नहीं गिरते हैं। बैल, घोड़ा और हाथी जो वायु से पीड़ित होंय तो उनको इस तेल का अभ्यंजन किया जाए तो वे पवन के वेग के समान वेग वाले हो जाते हैं।

हरिताल, सोनामाखी, मैनसिल, पारा, सुहागा, सेंधानमक, पारे से दूना गन्धक और गन्धक के बराबर शंख का चूर्ण इनको १ दिन तक नीबू के रस में खरल करके और उसमें ३ भाग वत्सनाभ मिलावें तो यह ताल-केश्वर रस सिद्ध होता है। इस रस को भैंस के घी के साथ १२ रत्ती प्रमाण खायें और इसके ऊपर शहद तथा घी के साथ १ तोला बाकुची के बीजों का चूर्ण खायें तो सर्व प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

तालकेश्वर रस—पारा, गन्धक, तांबे की भस्म, लोहे की भस्म, गूगल, चीता, शिलाजीत, कुचला, हरड़, बहेड़ा, और आमले, यह सब समान भाग लेवें, अभ्रक और करंज के बीज पारे से चौगुने लेवें इन सब पदार्थों को एकत्र करके शहद और घी में खरल करके घी के चिकने बासन में भरकर रखदें तो यह 'गलितकुष्ठारि' रस सिद्ध होता है। इस रस को नित्य १ तोलाभर खायें और इसके ऊपर लालशालि चावलों का भात, दूध और शहद इन तीनों पदार्थों का पथ्य देवें। जिसके कान, अंगुली और नाक गल गयी होवे वह मनुष्य भी इसके प्रभाव से कामदेव को समान शरीर वाला हो जाता है। इस रस को सेवन करने वाले मनुष्य को मैथुन का त्याग करना चाहिये। जो

कोढ़ दृढ़ जड़ वाला हो गया हो तो इस रस के ऊपर जल का तथा भात का पथ्य देवें।

सिध्म की चिकित्सा—कूठ, मूली के बीज, फूल-प्रियंगू, सरसों, हल्दी और नागकेसर इन छः पदार्थों का लेप करने से बहुत बहुत दिनों का भी सिध्म नष्ट हो जाता है। इस लेप को 'केशरषट्क' ऐसा कहते हैं। चिरचिटे के रस से अथवा हल्दी को मिलाकर मूली के बीजों को पीसकर लेप करने से सिध्म नष्ट हो जाता है। दारुहल्दी, मूली के बीज, हरिताल, देवदारु और नागरवेल के पान ये प्रत्येक पदार्थ १-१ तोला लेवें और शंख का चूर्ण चौबीस रत्ती प्रमाण लेवें। इस सबको एकत्रित करके जल में पीसकर लेप करने से सिध्म नष्ट हो जाता है। यह प्रलेप सिध्म नाश करने के लिये उत्तम है।

चर्मदल की चिकित्सा—आम की गुठली को तांबे के बासन में घिसकर उसमें कुछेक सैंधानमक डालकर लेप करने से चर्मदल वाले रोगियों को सुख प्राप्त होता है।

पाम की चिकित्सा—चार तोले जीरकाद्य तेल और उसमें दो तोले सिंदूर सरसों के तेल में पकावें। उस तैल को मलने से सर्वप्रकार की पामा अच्छे प्रकार से नष्ट हो जाती है।

आदित्यपाक तैल—मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आमला, लाख, कलिहारी, हल्दी और गंधक इनके कल्क से पकाया हुआ तेल (आदित्यपाक) कहा जाता है इससे पामा अच्छे प्रकार से नष्ट हो जाती है।

सैंधवादि लेप—सैंधानमक, चकवड़, सरसों और पीपल इनको आरनाल नामक कांजी में पीसकर लेप करने से छाजन और खुजली सब प्रकार की नष्ट हो जाती है।

कच्छु की चिकित्सा—

अर्क तैल—हल्दी का कल्क डालकर आक के पत्तों के रस में पकाया हुआ सरसों का तेल, पामा, कच्छू और विचर्चिका को नष्ट करता है।

कच्छराक्षस तैल—मैनसिल, हरिताल, हीराकसीस, गंधक, सैंधानमक, चोक, पाखानभेद, सोंठ, कूठ, पीपल, कलिहारी, कनेर, चकवड़, वायविडंग, चीता, जमालगोटा, और नीम के पत्ते ये प्रत्येक पदार्थ १-१ तोला लेकर इनके कल्क से १२८ तोले भर सरसों का तेल पकावें। फिर ४ तोले आक का दूध ४ तोले थूहर का दूध और २५६ तोले गोमूत्र से इसको कोमल अग्नि से धीरे-धीरे पकावें तो यह कच्छूराक्षस नामक तेल सिद्ध होता है। इस तेल की मालिश करने से असाध्य कच्छू भी नष्ट हो जाती है। हारीत मुनि का कहा हुआ यह तेल पामा, खुजली, चर्म के रोग और रुधिर के विकारों को दूर करता है।

कृतमालादिकल्क—अमलतास के पत्ते करंज के पत्ते, पमार के पत्ते सरसों, राई, हल्दी, इन्द्रजौ, मुलहठी, नागरमोथा, सोंठ, लालचंदन, आमला, अजवायन और देवदारु इनका कल्क बनाकर सरसों के तेल में पकाकर अच्छे प्रकार लगावें तो खुजली, पामा और शीतपित्त आदि रोग अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

दद्रू की चिकित्सा—कूठ, वायविडंग, पमार, हल्दी सेंधानमक और सरसों इनको नीबू के रस में पीसकर लगाने से दाद तथा कोढ़ का विनाश हो जाता है। दूब, हरड़, सेंधानमक, पमार के बीज और बावची इनको कांजी में तथा तक्र से पीसकर तीन बार लेप करने से दृढ़ मूल वाले दाद तथा कोढ़ भी नष्ट हो जाता है। मंडलिक घास, सरसों और थूहर के पत्ते इन सबको समान भाग लेवें और इनसे दुगुना चकवड़ लेवें, इन सबको अठगुनी छाछ में मिला देवें, फिर तीन दिन के बाद इनको अच्छे प्रकार से पीसकर प्रथम दाद को अरने उपले से रगड़ कर उक्त औषधी का लेप करें तो सात दिन के भीतर दाद का नाश होता है।

गलत्कुष्ठारि रस—पारा, गन्धक, ताम्र, लोह गूगल, चीता, मूल, शिलाजीत, कुचला और त्रिफला समभाग लें। इन सब के तुल्य अभ्रक भस्म तथा करञ्ज बीज की गिरी पारे से चौगुना लेवें। यथारीति सबको एकत्र खरल कर घी तथा शहद से खूब घोटें। फिर एक-एक कर्ष की गोलियां बना, चिकने बासन में रखलें। इसे सेवन करें। शालि चावल का भात, दूध और मधु पथ्य सेवन करें। इसके प्रसाद से कान, नाक, अंगुली आदि जिसके गल गए हों, ऐसा कोढ़ी भी कामदेव के समान मूर्ति वाला हो जाता है। यदि कुष्ठ बद्धमूल हो तो उपरोक्त पथ्य त्याग कर केवल जलोदन याने बिना मांड निकला भात जल सहित खावें। स्त्रीसंग हर हालत में त्याग देवें।

उदय भास्कर—गन्धक से मारी हुई ताम्रभस्म

१० भाग, मरिच का चूर्ण ५ भाग, विष २ भाग, एकत्र खरल कर सूक्ष्म चूर्ण करलें। फिर जल से पीसकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। १ गोली यथार्थ अनुपान के साथ खावें तो गलता हुआ कोढ़, फटे हुए कोढ़, विपुल मंडल, विचर्चिका, दाद, पामा आदि कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं।

तालकेश्वरो रस—आमला, सुहागा तथा हरताल प्रत्येक सम भाग लेकर आमलों के रस में मर्दन कर गोलियां बनालें। इसे उचित मात्रा में सेवन करने से सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं तथा भोजन में प्रेम होता है यानि अग्नि तेज होती है।

ब्रह्मरस—मूर्छित पारा १ भाग, गन्धक, चीता, सोमराजी, ब्रह्मयष्टी (या ढाक) बीज, प्रत्येक का चूर्ण १२ भाग। एकत्र सबको यथारीति घोटकर तीस भाग गुड़ मिलाकर पीसें और शहद में सानकर दो निष्क की गोलियां बनावें। इसकी १-१ गोली खाने से प्रसुप्ति यानी स्पर्श ज्ञानहीन कुष्ठ और मण्डल कुष्ठ नाश होते हैं। यह ब्रह्मरस ब्रह्महत्या जनित कुष्ठ को नाशता है। अनुपान पातालगरुड़ी की जड़ जल में पीसकर खावें।

चन्द्राननो रस—पारा, अभ्रक तथा चीतामूल, प्रत्येक १ भाग, गंधक ३ भाग लें घोटकर एकत्र करें और कठूमर के दूध से मर्दन कर मासे-मासे की गोलियां बनाकर कुष्ठ रोग में प्रयोग करें। पहले वमन विरेचनादि द्वारा शरीर की शुद्धि कर इसे प्रयोग करें तो सब प्रकार के कोढ़ नष्ट होते हैं। यह चन्द्रानन रसं साक्षात् श्री भैरव जी का कहा हुआ है।

कुष्ठकालानलो रस—पारा, गंधक, सुहागा, ताम्र-भस्म, लोहभस्म, पीपर समभाग ले पीसकर एकत्र करें। फिर नीम के पंचाङ्ग (पत्र, फूल, फल, छाल, जड़) के काढ़े से, त्रिफले के काढ़े से तथा अमलतास के काढ़े से पृथक-पृथक भावना दें। ४-४ रत्ती की वटिकायें बना प्रयोग करें तो सब प्रकार के कुष्ठ तथा अन्यान्य रोग समूह नष्ट हों।

वज्रवटी—शुद्ध पारा, चीतामूल, मरिच समभाग लेवें। पारे से दुगुना गंधक ले मर्दन करें। फिर सबको एकत्र कर कठूमर के दूध से एक दिन तक घोटें। फिर त्रिफला तथा त्रिकुटा के क्वाथों से घोटकर गोलियां बनावें। इस वज्रवटी को सेवन करने से पामा रोग नष्ट हो जाता है।

चन्द्रकान्ति रस—ताम्रभस्म ३ पल, पारा १ पल, गंधक २ पल, त्रिकुट, त्रिफला प्रत्येक चीज १-१ पल ले सबको पीसकर निर्गुण्डी, अदरख तथा चीतामूल प्रत्येक के रस से १ दिन मर्दन कर धूप में सुखा लेवें। फिर एक दिन धान की भूसी की आग से स्वेदन करें। फिर निकाल कर चूर्ण करें और सोमराजी के तेल से मर्दन कर तीन दिन तक भावना देवें। इसे निष्क भर की मात्रा में खावें। यह चन्द्रकान्ति रस निसन्देह कुष्ठ को नष्ट करता है। करञ्ज के बीज का तेल, चीता, गन्धक, सेंधानमक समभाग ले अनुपान करें। अथवा सोमराजी की लुगदी का अनुपान करें।

संकोच रस—ताम्र भस्म १ भाग, अभ्रक भस्म १ भाग, पारा ८ भाग लें खरल में मर्दन कर १ तोला बनावें। फिर तीनों के समान (१० भाग) गन्धक चूर्ण लें लोहे के कलछे में रख मन्दी आंच पर क्षण भर पाक करें। तब उस गोले को उसमें डालकर मन्दी-मन्दी आंच पर जब तक सारा गन्धक जीर्ण न हो जाय पाक करें। फिर निकाल कर चूर्ण कर डालें फिर गूगल, नीम का पंचाङ्ग, त्रिफला, गुर्च, विष पटोल, कत्था, अमलतास का गूदा, प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें उसमें मिलाकर मर्दन करें। इसे एक निष्क लेकर मधु के साथ खावें तो उडुम्बर कुष्ठ का नाश होता है। कुष्ठ रोग में परम दुष्प्राप्य यह संकोच नामक रस है।

अमृताँकुरलोहम्—रससिन्दूर १ पल, लोह भस्म १ पल, ताम्रभस्म १ पल, भिलावे शुद्ध १ पल, अभ्रक १ पल, गन्धक ४ पल, हरड़ चूर्ण २ कर्ष, बहेड़ा चूर्ण २ कर्ष, आमला चूर्ण ६ कर्ष ८ माशा और घृत ८ पल लेवें। फिर त्रिफले का काढ़ा ३२ पल (त्रिफला १६ पल, जल ८ पल, शेष २ प्रस्थ) लें लोहे की कढ़ाई में घी तथा रस सिन्दूर से गन्धक तक के चूर्ण को डालकर शास्त्रज्ञ वैद्य विधि पूर्वक पाक करें। इसका पाक लोह पाकवत् जानें। जब पक कर गाढ़ा हो जाय (जले नहीं), तब उतार कर हरड़-बहेड़ा तथा आमले का चूर्ण डालकर

अच्छी तरह मिला दें और रखें। फिर गुरु-देवता तथा ब्राह्मणों की पूजाकर रत्तिकादि क्रम (पहले १ रत्ती से शुरू करें, प्रतिदिन १-१ रत्ती जब तक सहा जाय बढ़ाता जाय। रोग दूर होने पर फिर उसी क्रम से घटा देवें।) यह घृत तथा शहद मिला लोह पात्र में लोह दण्ड से घोट कर खावें। यह रसायन है। अनुपान नारियल का पानी या दूध करें। यह सब प्रकार कुष्ठ हरने में श्रेष्ठ तथा बलियों का पड़ना और बालों का पकना दूर करता है, अग्नि को तेज करता, हृदय को बल देता और कांति, आयु तथा बल को बढ़ाता है। पथ्य में जंगली जीवों का तथा लवा के मांस का रस खावें। साग-भाजी खटाई और स्त्री इनको त्याग देवें। शाली चावल, सांठी चावल, घी, मूंग, शहद, गुड़, ये सब इसमें हितकर हैं।

माणिक्यो रस—हरताल १ पल. गन्धक १ पल, मैनसिल आधा पल, पारा १ कर्ष, सीसा, ताम्र, अभ्रक, लोह, प्रत्येक का भस्म १ कर्ष लेवें। पहिले कज्जली करें, फिर सबको एकत्र बड़ के दूध से घोटें। फिर नीम के काढ़े की भावना तीन दिन तक देवें। गिलोय, वाला, हिन्ताल, केवांच, नीलझिण्टी, सहंजना, मुरामांसी, जीरा, निर्गुण्डी और कनेर प्रत्येक का चूर्ण १ शाण लेकर मिलावें। फिर नीचे कपड़ मिट्टी किया हुआ मिट्टी के एक मजबूत हांडी में सब दवा को रख, मुंह बन्द कर देवें और पाक को जानने वाला वैद्य एकाग्रचित्त हो रात को नग्न और खुले बाल हों, एकान्त में नदी के किनारे पाक करें। आंच मध्यम देवें। पाक शीतल होने पर निकाल लेवें। पाक यदि ठीक हुआ हो तो दवा मानिक जैसी कांति की होगी अन्यथा पाक निष्फल है। यह दवा सब कुष्ठों को नष्ट करने वाली है। दो रत्ती घी तथा शहद के साथ लोहे के पात्र में लोहे के दण्डा से घोटकर खावें तो सब कोढ़ों को नष्ट करता तथा बल को बढ़ाता है। तालाब का शीतल जल उबाल कर ठंडा किया हुआ दूध अथवा उसी क्षण लाया गया धारोष्ण बकरी का दूध सुखदायक अनुपान करें। वातरक्त, शीतपित्त, कठिन हिक्का, सब ज्वर, वातरोग, पांडु, कामला खुजली, इन सबको दूर करता है। श्रीमान गहननाथ जी ने इसे अति यत्न पूर्वक बनाया है।

कुष्ट कुठारो रस—रससिन्दूर, गन्धक, लोह भस्म, ताम्र भस्म, गूगल, हरड़, बहेड़ा, आंमला, महानीम (बकायन) चीता, शिलाजीत, प्रत्येक १६ भाग लेकर चूर्ण करें। करञ्ज के बीज का चूर्ण चौंसठ भाग लें, सबको एकत्र करें। फिर घी शहद से मर्दन कर चिकने बर्तन में रखें। इसमें से दो निष्क भर खावें तो सब कुष्ठ दूर हो जाते हैं। यह कुष्ठकुठार रस खास कर गलत्कुष्ठ को नष्ट करता है।

तालेश्वर रस—शुद्ध सफेद चिरमिटी का चूर्ण, शङ्ख भस्म, करंजबीज का चूर्ण, हल्दी, शुद्ध भिलावे, चीता, चिरचिरा, घीग्वार, आक का दूध, पुनर्नवा का चूर्ण, गन्धक, पारा, वायविडंग तथा मरिच समभाग लें। पहले कज्जली कर लें। फिर सब चूर्ण आदि एकत्र कर सब द्रव्यों से आठ गुना गोमूत्र ले उसमें मिला पाक करें। पाक होने पर उतार लें तथा ठंडा होने पर सम भाग शहद डालकर मिला लेवें। इसे ठीक मात्रा पर खाने से विचर्चिका, खुजली तथा किटिभ कुष्ठ दूर हो जाते हैं।

राजतालेश्वर—सीसा १ शाण. गन्धक १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला, एकत्र पीसकर सबका १६ गुना गौमूत्र डालकर तांबे को कढ़ाई में धीरे धीरे पाक करें। फिर जम्भीरी नींबू का रस, घीग्वार का रस, थूहर का दूध, मानकन्द का रस तथा भांग के जल से २-२ दिन तक धूप में भावना देवें। फिर ६-६ रत्ती की गोलियां बना लेवें। १-१ गोली खावें तो अस्थिगत कुष्ठ, हाथ पैर आदि शाखाओं में स्थित कुष्ठ, नाक अंगुली आदि जिसमें टेढ़े-मेढ़े हो गये हो ऐसा कुष्ठ, स्वरभंग, क्षतक्षीण, अति विस्तृत मण्डलकुष्ठ आदि को नाश करता है। हरड़ का चूर्ण और शहद के साथ खाने से औदुम्बर कुष्ठ, त्रिफला के काढ़े के साथ खाने से कृच्छ्रसाध्य कुष्ठ, गुड़ तथा आदि के साथ खाने से हस्तिचर्म, सिध्म, विर्चिचिका, फोड़े विसर्प तथा कण्डू को कुटकी चूर्ण तथा चीनी के साथ खाने से पांडु तथा विविध प्रकार की विपादिका तथा रक्तपित्त आदि को नष्ट करता है। पथ्य में सफेद और काला जीरा, गिलोय का रस तथा घी मिला हुआ मूंग का यूष देवें। दवा खाकर रोहून के जड़ का काढ़ा पीवें तो १४ दिन में कोढ़ सूख जाता है। भूख खूब लगती है। तथा कोढ़ी

सुन्दर शरीर वाला हो जाता है। खाया हुआ भोजन शीघ्र ही हजम हो जाता है तथा रोगी सुखी हो जाता है। अरुण कुष्ठ, औदुम्बर कुष्ठ, ऋष्यजिह्वाकुष्ठ, कपाल कुष्ठ, पुण्डरीक कुष्ठ, काकण कुष्ठ, दाद, फोड़े या गांठदार कुष्ठ, महाकुष्ठ, चर्मदल कुष्ठ, विसर्प, परिसर्प, सिध्म, गम्भीर विचर्चिका, किटिभकुष्ठ, पामा, अलस तथा किलास कुष्ठ को यह दवा नष्ट करती है। कोढ़ी हमेशा मांस मछली आदि भोजन त्याग देवें।

कुष्ठहरितालेश्वर—शुद्ध हरताल बारह भाग, शुद्ध गन्धक बारह भाग, पारा सात भाग, कृष्णाभ्रक भस्म सात भाग, सबको एकत्र पीसकर अङ्कोल की जड़ का रस, थूहर का दूध, आक का दूध, कनेर का रस और काकोदुम्बरिका के रस से बारम्बार घोटें। फिर उसे दो ताम्बे की कटोरियों में बन्द कर पुटपाक विधि से ६ पहर तक पकावें। फिर शीतल होने पर निकाल लेवें। इसे पांच रत्ती लेकर कठूमर के रस के साथ खावें तो निश्चय ही अठारह प्रकार के कुष्ठ थोड़े से समय में ही नष्ट हो जाते हैं। पथ्य सेवन ठीक तरह से करें तथा सूर्य भगवान को प्रणाम पूजादि करें और इसे खाते जावें। यह रोगों के समूह को दूर करता है। कुष्ठरोग में इसे पीपरों के साथ देव।

राजराजेश्वरो रस—पारा, गन्धक, ताम्रभस्म और हरताल सम भाग लें। पारा गन्धक की कज्जली धूप में करें। फिर ताम्र और हरताल मिलाकर मर्दन करें। जब तक हरताल अदृश्य न हो जाय। फिर भांगरे का रस दे देकर एक दिन तक मर्दन करें। फिर त्रिफला, कत्था, गिलोय और बावची, प्रत्येक पारा के समान ग्रहण कर चूर्ण कर मिलावें और मर्दन करें। दो रत्ती दवा लेकर दो कर्ष शहद और घी के साथ लोहपात्र में मर्द्दन कर खावें तो दाद, कुष्ठ, किटिम और मण्डल कुष्ठ, ये सब नष्ट होते हैं। यह राजराजेश्वर रस है।

पारिभद्र रस—रससिन्दूर, आमला, नीम के फल, सम भाग लेकर चूर्ण कर खैर के काढ़े में एक दिन तक मर्दन करें। इसे निष्क भर लेकर खाने से दाद तथा कुष्ठ नाश हो जाते हैं। यह पारिभद्र रस है।

प्रलेपा—गन्धक और मूली का खार समभाग लेकर अदरख के रस में एक दिन खरल कर लेप करने से सिध्म कुष्ठ एक दिन में नष्ट होता है। काले धतूरे की जड़ और गन्धक सम भाग लेकर चूर्ण करें और जम्भीरी नींबू के रस में मर्द्दन कर लेप करें तो सिध्म नष्ट हो जाता है। चिरचिरे का पंचांग लेकर केले के रस से पीस सुखाकर पुट दे भस्म करें। इसे गोमूत्र में मिलाकर लेप करने से दाद का नाश होता है। चकवड़ के बीजों को दूध में पीसकर अरंड का तेल मिलाकर लेप करने से सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं।

लंकेश्वरो रस—रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, गन्धक, हरताल, शिलाजीत और अमलबेत समभाग लें। तीन दिन तक मर्दन करें। फिर मधु और घी से पीस कर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। इसे हमेशा खाते रहने से कुष्ठ को ऐसा मार भगाता है जैसा सिंह हाथी को। यह लंकेश्वर रस है। त्रिफला, नीम, मजीठ, बच, पाढल की जड़, कुटकी और हल्दी इनको समभाग ले काढ़ा बना अनुपान करें।

भूतभैरवो रस—शुद्ध हरताल १५ भाग, शुद्ध गंधक ६ भाग, नई इमली का फल १५ भाग, करेला १० भाग लेकर सब द्रव्यों को चूर्ण करें और सेहुंड और आक के दूधों में घोटें और ७ भावनायें दें। फिर रोहड़े की जड़ के रस दे देकर खूब खरल करें और अन्त में सुखा कर अति सूक्ष्म पीस लें। इसमें से टंक याने ४ माशा दवा लेकर कुछ कपड़े में छानकर शुद्ध किया हुआ पानी के साथ पीवें तथा कपूर डालकर पान खावें। फिर मृगनैनी रमणियों से घिरी हुई उत्तम शय्या पर सोवें। इस प्रकार कर्म करें। फिर जब शरीर को सुखी जानें तथा मुख को विरस न जानें तब बकरी का दूध अथवा मठा पीने को देवें। यह नित्य शांति देता है, सब रकम की दवा से न गया हुआ आमदोष युक्त सब कुष्ठों से भी बढ़कर कष्टदायक, नील, पीला, लाल, सफेद अधिक सूजन वाला अधिक स्थान व्यापी, क्रिमियों से पूर्ण, गंधप्रसारणी पत्र-सम गंध वाला, स्फटिक जै[illegible] रूप वाला, आदि १८ किस्म के कुष्ठों को यह नष्ट करता है। यह भूत भैरव के नाम से पृथ्वी पर मशहूर है। वातव्याधि को खासकर कफज कुष्ठों को, तेज ज्वर तथा दाह आदि को नष्ट कर शरीर को कामदेव के समान रूपवान तथा पद्म जैसा कोमल बना

देता है। पथ्य में सदा घी मिला अन्न, औटाया दूध या उसमें बने पदार्थ तथा पथ्यान्न दूध के साथ जैसा शरीर को सुखदायक हो खावें तो एक मास में ही सब प्रकार दुष्ट कुष्ठ को नाश कर शरीर को उत्तम गन्ध युक्त कर देता है।

अर्केश्वरो रस—४ पल पारा तथा १२ पल गन्धक लेकर कज्जली करें। फिर १२पल तांबे की पत्रिका ले एक हांड़ी में रख उस पर कज्जली बिछा देवें और उस पर एक सराई ढ़ांक देवें। हांड़ी के बाकी अंश राख से भरकर दवा देवें। फिर चूल्हे पर रखकर २ पहर तक नीचे आग जलावें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर चूर्ण करलें और आक के दूध से घोट घोटकर १२ वार पुट देवें। फिर त्रिफले का काढ़ा, चीते का रस तथा भांगरे के रस से १-१ भावना देवें। यह अर्केश्वर रस है। इससे रक्त-मण्डल कुष्ठ दूर होता है।

महातालेश्वरो रस—हरताल, सोनामाखी, मैन-सिल, पारा, सुहागा, सैंधा नमक, समभाग ले सबको पारा छोड़ खरल कर चूर्ण करलें। फिर पारा से दुगुना गंधक लें पारा गंधक की कज्जली करलें। गंधक से दुगुना लोह भस्म लें। फिर सबको एकत्र कर जम्भीरी नीबू के रस में मर्दन कर लघुपुट में पाक करें। स्वांगशीतल होने पर निकाल उसका (सबका) ३० वां भाग विष मिलाकर महीन पीस लें। २ माशा भर ले भैंस के घी के साथ खावें। दवा खाने के बाद १ कर्ष सोमराजी चूर्ण घी-शहद के साथ खावें। इससे सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। यह महातालेश्वर रस है।

विजयभैरवो रस—सप्त कंचुक निर्मुक्त, उर्द्ध्व-पातन यन्त्र से पातित शुद्ध पारा कुछ लेकर एक मिट्टी की मजबूत कढ़ाई में मन्त्र सहित स्थापित करें। फिर पेठे के रस से घोधित तथा तैलादि पदार्थों में ७ बार दोला यन्त्र से शोधित हरताल पारे से दुगुना लें चूर्णकर पारे के ऊपर डाल देवें। फिर नीलझिण्टी का कुछ रस उसमें डालकर चूर्ण को भिगो दें। पारा तथा हरताल दोनों का दुगुना पलाश का भस्म उस पर डाल देवें। फिर कुछ नीलझिन्टी का रस डालकर उन सबको डुबो देवें तथा ऊपर से पोस्ते दाने का और आक के रस से अच्छी तरह भरकर पाक विद वैद्य चूल्हे पर रखें और नीचे धाल लकड़ी के कोयलों की आग दें एकाग्रचित्त हो यत्नपूर्वक २४ पहर तक पाक करें। बाद आग बन्द कर शीतल होने पर दवा को निकाल शीशी में भर लें। रोगी को पहले प्रायश्चित करा तथा वमनादि कर्मपंचक से शरीर को भली प्रकार शोधकर ४ रत्ती दवा चीनी तथा हरड़ के चूर्ण के साथ खावें। प्रतिदिन १-१ रत्ती ७ दिन तक बढ़ाते जावें। ऊपर से शहद मिला जल, नारियल का पानी, मजीठ का काढ़ा अथवा सौंठ चूर्ण शहद में मिलाकर अनुपान करें। शरीर पर सुगन्धित तेल मलें व पान चवावें। हवा, आग, धूप, मछली, मांस, दही, भाजी करेला कुष्मांडादिक ककारादि, इन सबको त्याग देवें। यह वात रक्त, आमदोष-युक्त कुष्ठ, आमदोष, सब प्रकार कुष्ठ, अम्लपित्त, फोड़े, मसूरिका तथा प्रदर को नष्ट करता है। यह विजयभैरव रस है।

कुष्ठारि रस—कठूमर का चूर्ण, ब्रह्मदण्डी तथा तीनों बला (बला, अतिबला और नागबला) इनमें से प्रत्येक का समभाग मिलित चूर्ण शहद के साथ मिला कर खाने से वातरक्त नष्ट हो जाता है। इन्हें तीन टंक की मात्रा में सेवन करने से, एक मास में ही रक्त गिरता हुआ, मांस सड़ता हुआ, पीव गलकर बहता हुआ तथा कीड़े पड़ते हुए सब तरह के कुष्ठ संपूर्णतः आरोग्य हो जाते हैं।

षडाननगुटिका—विष, मरिच, सुहागा, पारा गन्धक तथा जमाल गोटा, समभाग ले यथारीति मर्दन करें, फिर सबका दुगुना गुड़ मिलाकर गोली बनालें। बलानुसार २-३ रत्ती की मात्रा खावें। यह दस्त लाती, सब विकारों का नाश करती लघुहित, दीपन, पाचन है। यह कुष्ठ, तीव्र शूल, आमाशय के रोग, पथरी इन्हें दूर करती है। जब तक थोड़ा थोड़ा ठण्डा जल पीता जावे दस्त आते रहेंगे। गर्म जल पीने से बन्द हो जायेंगे।

कुष्ठानाशन—करंज के पत्ते, हरड़, सिरस की छाल बहेड़ा और कठूमर की जड़, समभाग चूर्ण कर १ कर्ष ले गो मूत्र में घोलकर मर्थे झाग उठने पर पी जावें अथवा १ कर्ष द्राक्षा में कुछ सुहागे की खील मिलाकर खावें। इस तरह ७ सप्ताहों में सब प्रकार के कुष्ठ दूर होजाते हैं।

विजयानन्दो रस—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध हरताल चूर्ण २ भाग एकत्र मिट्टी की एक मजबूत हांड़ी में रखें। उनके ऊपर दोनों के समान ढाक की भस्म बिछा देवें। फिर हांडी के मुख को ढांककर कपड़-मिट्टी कर लें और धूप में सुखालें। फिर २४ पहर तक आग पर रख कर पाक करें। फिर शीतल होने पर निकाल कर शीशी में अति यत्नपूर्वक रखें। इसे विधि-पूर्वक सेवन करें तो पुराना श्वित्र तथा सब प्रकार के कुष्ठ सूर्य के सामने अंधेरे की तरह नाश हो जायें। श्वित्र-नाश के लिए ब्रह्मा ने इसे पुराकाल में बनाया था। यह विजयानन्द रस पृथ्वी पर अति गुप्त है।

श्वित्र दद्रु पाटल लेप—कनेर, हल्दी, धतूरा, चिरचिरा प्रत्येक का क्षार तथा सज्जीखार प्रत्येक समान भाग लेकर जल में पीसें। फिर रोगयुक्त स्थान को खुरदरे चीज से रगड़ कर इसे सलाई में लेकर लेप कर देवें। इससे श्वित्र के पटल तथा कठिन फोड़े गलकर गिर जाते हैं। लाल-लाल तिल उत्पन्न होकर काले हो जाते हैं, फिर शरीर में मिल जाते हैं और शरीर अति सुन्दर हो जाता है।

श्वित्रहरो लेप—सेंधा नमक को आक के दूध में पीसकर मण्डल स्थान को रगड़ कर लेप करें तो सफेद कुष्ठ का नाश होजाय।

मुखश्वित्रहरो लेप—यदि मुंह सफेद हो जाय तो यह इलाज करें—गन्धक, चीता, कासीस, हरताल और त्रिफला, समभाग लेकर जल में पीसकर मुख पर लेप करें तो एक दिन में मुंह की सफेदी नष्ट हो जाती है।

श्वित्रनाशनलेप द्वयम—चिरमिटी और चीता पीसकर अथवा मैनसिल और अपामार्ग का क्षार पीस कर लेप करने से श्वेत कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

रसमाणिक्य—वंशपत्र याने तबकिया हरताल को लेकर पेठे के रस में और खट्टे दही में ७-७ या ३-३ वार भावना देवें। फिर सुखाकर जौकुट करलें। फिर उसे दो सराइयोंबन्द में कर संधिस्थल पर बेर के पत्तों को पीसकर लेप कर दें। फिर सुखा कर उसे आग पर रख पाक करें। जब तक नीचे का भाग लाल अङ्गार के समान न हो जाय तब तक आग देवें। स्वांगशीतल होने पर दवा निकाल लेवें। यह मानिक की तरह कांति वाला होगा। इसकी २ रत्ती लेकर घी तथा शहद में मिलाकर खावें और भगवान की पूजा किया करें तो कुष्ठ रोग से छुटकारा हो जाता है। फटे हुए कुष्ठ, चूता हुआ कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नाड़ी व्रण, दुष्ट व्रण, उपदंश, विर्चिचिका, नाक तथा मुख के रोग, भयंकर क्षत, पुण्डरीक कुष्ठ, चर्म्मदल कुष्ठ, विस्फोट तथा मण्डल कुष्ठ, सबका नाश करता है।

सफेदकोढ़—निदान एवं चिकित्सा

रोग परिचय-आयुर्वेद के सभी शास्त्रकारों ने त्वचा, रक्त, मांस आदि सप्त धातुओं और त्रिदोष से सम्बन्ध रखकर उत्पत्ति वाले कुष्ठ कुल अठारह प्रकार के माने हैं। इनमें कापाल, औडुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरीक सिध्म और काकणक ये सात महा कुष्ठ माने गए हैं। और एक कुष्ठ, चर्मकुष्ठ, किटिम, वैपादिक अलसक, दद्रु, चर्मदल, पामा, कच्छू, विस्फोटक, शतारु ये ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ कहलाते हैं। प्रस्तुत रोग सफेद कोढ़ इनमें परिगणित नहीं किया गया। किन्तु त्वक् रोग सामान्य होने से इस श्वेत कुष्ठ को त्वक् विकारों के ही अन्तर्गत मानकर भी पृथक् से वर्णन किया क्योंकि त्वग्रोग सामान्य होते हुए भी यह रोग अपने स्वरूप, निदान, सम्प्राप्ति दोष दूष्य संग्रह आदि की दृष्टि से अपना सबसे पृथक् एक विशेष, महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आधुनिक मतवाले अधिकांश सज्जन तो इसको रोग ही नहीं मानते। कृत्रिम प्रसाधनों से अपने भोंडे कलर को परिवर्तित करने वाले भी बहुत बड़ी संख्या में इस धराधाम की कोमल भूमि कठिन पदगामी के रूप में अलंकृत कर ही रहे हैं, ऐसे एकदम यथार्थ भौतिकता वादी लोग भी इस श्वेत कुष्ठ को कोढ़ रोग न मानकर प्राकृतिक वरदान ही समझते हैं। किन्तु भारतीय आयुर्वेद सिद्धान्त सभ्यता, संस्कृति, शारीरिक स्वरूप, स्वास्थ्य और मनो विज्ञान इसका सामान्य रोग नहीं, अपितु, विशेष मनो विक्षोभ कारी रोग मानता है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्रकारों ने इसको संक्रमण होने

वाला रोग भी नहीं माना। किन्तु भारतीय आयुर्वेद शास्त्रों ने सभी प्रकार के कुष्ठों और त्वक्गत विकारों को संक्रमणशील माना है। हमारा निजी अनुभव भी इस विषय में कम नहीं है। हमने कई दर्जन ऐसे बालकों और स्त्री पुरुषों को देखा है तथा उनकी सफलता के साथ चिकित्सा भी की है कि जिन्हें पारिवारिक और सामाजिक संगति तथा सम्पर्क के कारण श्वेत कुष्ठ हुआ था। आम बोलचाल की भाषा में इसको फुलबहरी भी कहते कहते हैं। आधुनिक मतावलम्बी भी इसको ल्यूकोडरमा (Leucoderma) कहते हैं।

सफेद कोढ़
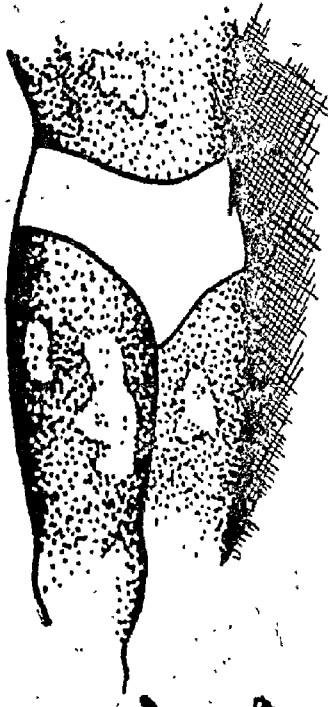
श्वेतकुष्ठ के विशेष कारण—सफेद कोढ़ को आयुर्वेद में श्वित्र, किलास, दारुण और वारुण नामों से सम्बोधित किया है। जिन कारणों से अन्य सभी कुष्ठ उत्पन्न होते हैं, उन्हीं कारणों से यह फुलबहरी भी उत्पन्न होता है। अन्य कुष्ठों में जो त्वचा, रक्त आदि आश्रय माने गये हैं, वे ही आश्रय इस श्वित्र कुष्ठ के भी हैं। इसलिये आचार्य वाग्भट के मत से श्वित्र की अन्य कुष्ठों के साथ सभी बातों में समानता है। विरुद्ध आहार, पाप कर्म, मिथ्योपचार आदि कुष्ठों के ही नहीं अपितु श्वित्र के भी प्रमुख कारण हैं। यह श्वित्र जिन कारणों से हो सकता है उनका उल्लेख इस प्रकार है—

बहुत पतले, स्निग्ध और भारी पदार्थों के सेवन करने से वमन, मल, मूत्र, वीर्य, भूख प्यास आदि के वेगों को रोकने से, अतिव्यायाम, अतिउष्णता, अतिशीत, अतिवर्षा, अतिवायु, अतिबर्फ का सेवन करने से, खूब भोजन करके व्यायाम, मैथुन, मार्ग चलना, स्नान करना, अधिक श्रम के कार्य आदि करने से, अधिक धूप, अधिक श्रम और अधिक भय का उपयोग होने से, धुंवा, धूप, धूल, गर्मी से पीड़ितों का अचानक शीतल जल का सेवन या स्नान करने से, शीतल जल आदि पेय पदार्थ पीकर तुरन्त ही ऊपर से उष्ण जल, दूध, चाय, काफी आदि तरल पदार्थों का सेवन करने से अथवा गर्म-गर्म भोजन, पेय पदार्थों का सेवन करते ही शीतल जल आदि पेय पदार्थों का सेवन करने से। भूख में पानी और प्यास में भोजन करने से, ग्रीष्म ऋतु में दिन में भोजन के तुरन्त बाद मैथुन और उसके तुरन्त बाद जल, शर्बत आदि शीतल पेय पदार्थों का सेवन करने से, मल-मूत्र के वेगों को रोके हुये ही मैथुन करने से, उपदंश रोग से, फिरंग रोग से, खुजली आदि चर्म विकारों की दवाई में कोई विषैली तथा गर्म दवा के सेवन से, रूक्ष, लघु एवं विशद गुणवाले स्थावर विषों के प्रयोग से, दूध और मूली, दूध और नमक, दूध और खटाई, दूध और कषाय रस, दूध और कड़वे द्रव्य, दूध और कढ़ी, खीर और कढ़ी, दूध और मांस, दूध और शराब, दूध और मछली, दूध और खिचड़ी, दूध और आमलेट, दूध और धूम्रपान, दूध और उड़द की दाल, दूध और राजमाष या लोबिया, दूध और मोठ, दूध के साथ शहद, घी, और केला, दूध और सन्तरा खट्टा, दूध और कछवे का अण्डा, दूध और कटहल, दूध और बड़हल, दूध और तेल के पदार्थ, दूध और लाल मिर्च वाले पदार्थ, दूध और फिटकरी वाले पदार्थ, दूध और सुहागे वाले पदार्थ, चाय और हलवा, चाय और खीर, चाय और चावल, चाय और कड़वे तथा कषैले पदार्थ, चाय और शराब, भूख और प्यास में चाय, मैथुन करके, मार्ग चल करके, गरम पानी से स्नान करके, पसीने की स्थिति में चाय पीने से, चाय पीकर फल खाने से या फल खाकर चाय पीने से, चाय, शराब और धूम्रपान को

एक ही समय में सेवन करने से, क्रोध, व्यायाम, काम, भय इनके दौरे के समय अथवा शराब पीने से, शराब पीकर मैथुन करने से, मैथुन के तुरन्त बाद सिगरेट आदि पीते हुये शीतल जल पीने से, रजस्वला नारी, कन्या, बुढ़िया, रोगिणी, अनिच्छा वाली यौन रोगों से पीड़ित नारी, अति मोटी, अति पतली, अति बलवती और अति दुर्बल नारी से मैथुन करने से, गुद मैथुन करने से, पशु योनि में मैथुन करने से यह फुलबहरी या सफेद कोढ़ अवश्य होता है। किसी भी प्रकार के वेग को रोके हुये शराब, चाय और धूम्रपान करने से, तिल, गुड़ का सेवन करते हुये पानी अधिक पीने से, दिन में सोने और रात से जागने से भी फुलवहरी रोग अवश्य होता है। अजीर्ण की स्थिति में भोजन करने से, बलपूर्वक मल मूत्र आदि के वेगों को निकालने से पंचकर्म के विगाड़ से भी यह श्वित्र रोग अवश्य होता है। नियम विरुद्ध, समय विरुद्ध, इच्छा विरुद्ध और स्वास्थ्य विरुद्ध भोजन, निद्रा, स्नान, व्यायाम आदि करने से भी यह सफेद कोढ़ अवश्य हो जाता है। तथा भोजन, नींद, व्यायाम, स्नान और अन्य श्रम आयोग, अतियोग और मिथ्या योग के दायरे में आयेंगे तो निश्चय ही श्वेत कुष्ठ को उत्पन्न करेंगे। तेल में तले पदार्थ, वनस्पति घी में तले पदार्थ, तीक्ष्ण और उष्ण एवं रूक्ष द्रव्यों के साथ जब भी सेवन किये जायेंगे तो भी श्वित्र निश्चय ही होता है। अधिक शीतल प्रदेश, अधिक उष्ण प्रदेश, अधिक जल वाले प्रदेश, अधिक वायु वाले प्रदेशों में रहना और कब्ज की शिकायत रहने से भी सफेद कोढ़ होता है। बासी खाद्य पदार्थ, बासी मांस और बासी दाल, सब्जी आदि को पुनः गर्म करके खाने से भी निश्चय सफेद कोढ़ होता है।

३—आयुर्वेद के महर्षियों के उपदेशों से स्पष्ठ है कि यह सफेद कोढ़ पाप कर्मों, पिछले जन्म के दुष्कर्मों आदि के कारण भी उत्पन्न होता है। भगवान चरक ने स्पष्ट कहा है कि—

वचांस्यतथ्यानि कृतघ्नभावो निन्दा गुरूणां गुरुधर्षणं च।
पापक्रिया पूर्वकृतं च कर्महेतुः किलासस्य विरोधीचान्नम् ॥

अर्थात् झूठ बोलने से, असत्य बातों का प्रचार करने से, कृतघ्नता करने से,गुरुओं की निन्दा करने से और उन्हें फटकारने तथा अपमानित करने से सफेद कोढ़ होता है। किसी भी प्रकार के पाप कर्म के करने से, पिछले जन्म के दुष्कर्मों से और विरोधी खाद्य पदार्थों का सेवन करने से भी यह श्वित्र रोग होता है।

सफेद कोढ़ के फैलने के कारण—कभी कभी यह रोग बड़ी तेजी से फैलता है, और कभी कभी यह शनैःशनैः फैलता है। इसके कारणों पर प्रकाश डाला जा रहा है। यह रोग उड़द की दाल, उड़द की दाल से बने अन्य खाद्य पदार्थ, मूली, नवीन अन्न, बासी भोजन, कब्ज की शिकायत, अजीर्ण, ऊर्ध्ववात, विरुद्ध भोजन, भोजन पर भोजन करते जाने से यह रोग फैलता है। स्वास्थ्य के लिए हानिकारक वस्तुओं के सेवन से भी यह रोग अवश्य फैलता है। मल-मूत्र आदि के वेगों को रोके रहने से भी यह रोग फैलता है। पेट में आंव अधिक एकत्र होने से भी यह रोग फैलता है। मांस, चर्बी वाले पदार्थ, दूध-दही, तेल की चीजें, उड़द की पिट्ठी, कुलथी, मटर, राजमाष, गुड़, गन्ने का रस, खट्टे पदार्थ, चटपटे पदार्थ, तीक्ष्ण पदार्थ, स्रोतों में रुकावट पैदा करने वाले पदार्थ, दिन में सोने से अथवा असमय में सोने से और रजःस्वला के साथ मैथुन करने, सन्ध्याकालों में मैथुन करने से, भोजन के तुरन्त बाद मैथुन करने से भी यह रोग फैलता है। तथा विश्वासघात, छल, कपट और ठगी की क्रियायें करने से भी यह रोग फैलता है। बुद्धिबल से किसी को हानि पहुँचाने वाली कोई भी योजना बनाने से भी यह रोग फैलता है। किसी का हक मारने से, झूठी गवाही देने से, माता, पिता, पुत्र, ईश्वर आदि की झूठी सौगन्ध खाने से भी यह रोग फैलता है। चाय, सिगरेट, धतूरा, चरस, गांजा आदि का सेवन करने से भी यह रोग फैलता है। बवासीर, रक्ताल्पता, पूयमेह, मधुमेह, विषैले प्रभाव और संक्रामक ज्वर से भी यह रोग बढ़ता और फैलता है। निरन्तर पर्याप्त समय तक धूप में रहने से, बर्फीले प्रदेश में रहने से, स्नान न करने से भी यह रोग बढ़ता है। निरन्तर प्रकाश रहित स्थान पर रहने से धूम्र वाले वातावरण में रहने से खटमल, पिस्सू, मच्छर आदि के काटते रहने से भी श्वित्र बढ़ता अथवा फैलता है। ऐसे वस्त्र जो पसीने को रोकते हैं और तंग हों वे भी इसके बढ़ाने में सहायक होते हैं।

नारियों में विशेष कारण—जो नारियां गर्भ पात कराती हैं अथवा गर्भपात के निमित्त से उष्ण और तीक्ष्ण औषधियां सेवन करती हैं। मासिक धर्म की अनियमितता हो, अथवा क्षीण होगया हो अथवा मासिक धर्म को सुखाने के लिये अंग्रेजी दवाइयां प्रयोग करती हों अथवा अन्य कोई औषधि सेवन करती हों तो उनको भी यह रोग हो सकता है और तुरन्त वृद्धि भी कर सकता है। मासिकश्राव के दिनों में अधिक शीतल, अधिक उष्ण संदर्भ में काम करते रहने से भी यह रोग होता है और फैलता भी है। शुद्ध वायु न मिलने से भी इसकी उत्पत्ति होती है और फैलता भी है।

सफेद कोढ़ का विशेष वर्णन—यह कुष्ठ श्राव रहित होता है। वात, पित्त और कफ तथा रक्त, मांस और मेद इन तीन धातुओं और तीन दोषों के सम्बन्ध से इसकी उत्पत्ति होती है। वायु से यह फुलवहरी रूक्ष और अरुण वर्ण लिए हुए होता है। पित्त से ताम्रवर्ण के दाग होते हैं और उनमें दाह भी होता है तथा रोम नाश करने वाला होता है। कफ से श्वेत, मोटा और भारी दाग होता या होते हैं और उसमें खुजली भी चलती है। वातज श्वित्र की जड़ रक्त में होती है और पित्तज फुलवहरी मांस में उत्पन्न होती है तथा कफज सफेद कोढ़ का मूल मेद-धातु में होता है। वातज से पित्तज और पित्तज से कफज अधिक कष्टसाध्य तथा श्रमसाध्य होता है।

व्रण आदि से उत्पन्न श्वित्र—जो सफेद कोढ़ किसी प्रकार की रगड़ लगने से होता है अथवा किसी प्रकार के व्रण के कारण से होता है वह उत्तरोत्तर धातु में पहुंचकर कष्टसाध्य होता चला जाता है। अग्निदग्ध से होने वाला सफेद दाग या किसी प्रकार के तेजाव से होने वाला सफेद दाग तीव वर्ष तक का कष्टसाध्य और इसके बाद असाध्य होता है। किन्तु त्वचा, मांस आदि को हटाकर यदि प्लास्टिक सर्जरी की जाए तो कष्टसाध्य वन जाता है।

सफेद कोढ़ पर प्राचीन और आधुनिक मत—भगवान चरक ने इनको दारुण, वारुण और श्वित्र इन तीनों नामों से स्वीकार किया है। आचार्य सुश्रुत ने भी इसको कुष्ठ ही माना है और किलास तथा श्वित्र इन दो नामों से इसका उल्लेख किया है। त्वचा मात्र से इसका सम्बन्ध माना है। किन्तु त्वचा मात्र में स्थित रहने वाला किलास और मांस आदि में पहुंचने पर भी उसको श्वित्र कहा है और कष्ट साध्य भी माना है। आधुनिक मत वाले इसको ल्यूकोडरमा कहते हैं, यह पहले कहा जा चुका है। उनके मत से श्वित्र में केवल मात्र बाह्य विकृति मात्र है वे इसमें कोई भी आन्तरिक दृष्टि नहीं मानते। मानें भी कैसे ? उनकी अपनी जितनी बुद्धि और थ्यारी है, उतना ही सोचेंगे, अधिक नहीं। यहां प्रसंग नहीं है अन्यथा मैं इन आधुनिक चिकित्सा वालों की पोल पट्टी खोलता। कल तक वे बहुत सी वातों को नहीं मानते थे और आज मजबूर होकर मानने को बाध्य हो गये हैं। हमारी चुनौती है कि आयुर्वेद जिस रोग के विषय में इन्कार करता है, उसे ये पद्धति वाले ठीक करें अन्यथा जिस रोग के विषय में ये इन्कार करते हैं, हम ठीक करने को तैयार हैं। इनके मत से त्वचा के बहिर्भागीय जिल्द में एक ऐसा तत्व रहता है कि जो चमड़ी को प्राकृतिक कलर प्रदान करता है। इस रंगने वाले तत्व को ये लोग मेलेविन (Melanin) कहते हैं। यह रंग त्वचा को गर्मी, धूप से बचाता है। यही कारण है कि उष्ण प्रदेशों के लोगों में इसकी अधिक मात्रा में उपस्थिति रहने के कारण वे काले वर्ण के होते हैं, जैसे हम भारतीय और हमारे अफ्रीकी भाई लोग। उनके मत से इस तत्व की कमी होने से ही ये सफेद कोढ़ उत्पन्न होता और फैलता है। त्वचा सफेद और खुरदरी हो जाती है। तथा कुछ अपेक्षाकृत कठोर भी हो जाती है। उन्होंने इस रोग को छूत वाला नहीं माना। क्योंकि भारतीयों के मन में सफेद गोरों से कुछ खिचाव था और वह खिचाव उनकी सफेद चमड़ी के कारण भी था। अतः ऐलोपैथी के यूरोपीय डाक्टरों ने प्रचार किया कि यह रोग घृणा का पात्र नहीं है क्योंकि छूत का नहीं है। जहां तक घृणा की वात है, हम भी उसके पक्ष में कदापि नहीं। चाहे जैसा भी रोग और रोगी हो, उससे घृणा करना और भयभीत होना मानव और मानवता का भारी अपमान है और अपनी दुर्वलता का द्योतक है। किन्तु यह छूत कर फैलता नहीं, यह हमें कोई प्रैक्टिकल में समझा दे तो हम जानें। इतना अवश्य है कि यह अन्य रोगों की भांति तीव्र संक्रा-

मक नहीं है। किन्तु स्वल्पगति से अवश्य छूत करता है और अन्य पर चला जाता है। यह हमारा ३० वर्ष का अनुभव भी है और ऋषि प्रमाण भी है। अनुकूल वातावरण में यह रोग अवश्य संक्रमण करता है, यह हम अनुभव कर चुके हैं।

साध्यासाध्य का अन्य वर्णन—जिस श्वित्र के दागों के बाल या रोम सफेद न हुए हों जो छोटे छोटे दागों के रूप में हो, जो दाग एक दूसरे से मिलते हुए न चले गये हों, नया हो, असंदिग्ध न हो तो वह साध्य होता है। अन्यथा असाध्य होता है। गुदा-योनि, हाथ और पैर के तलुवों पर उत्पन्न हुआ, होठ और अंगुलियों में पहुँचा हुआ चाहे नया ही क्यों न हो ठीक नहीं होता अर्थात् असाध्य है। किन्तु यह मत प्रायिक है। सर्वथा सिद्ध सिद्धांत नहीं है। क्योंकि प्लास्टिक सर्जरी तेजाबी दवाइयां आदि से यह नष्ट हो जाता है और प्राकृतिक रंग आजाता है। किन्तु ये सब क्रियायें अति कठिन हैं, अतः अपने आप ही असाध्य है।

श्वित्र का चिकित्सा सिद्धांत—सर्व प्रथम श्वित्रक रोगी को चाहिए कि वह मांस या मांस वाली वस्तुयें चर्बी, दूध, दही तेल, कुलथी, उड़द, मोठ, सेम की फली गन्ने का रस पिट्ठी वाले पदार्थ, अम्ल पदार्थ या इनसे बनने वाले सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों का सेवन तुरन्त बन्द करदें। विरुद्ध आहार एवं विकार अध्यशन, अजीर्ण विदाही पदार्थ अभिष्यन्दि पदार्थ, दिन में सोना, दिन में मैथुन करना, किसी भी समय में मैथुन करना, बुरे कर्म, सज्जनों से निन्दित कर्म सभ्यता एवं समाज से वर्जित कर्म अपने ही आत्म विरोधी कर्म, क्रोध, भय, इन सबका भी तुरन्त त्याग कर दें। तदनन्तर शरीर का संशोधन करें। संशोधन के लिए वमन और विरेचन कर्म का यथा योग, यथाशक्ति यथाकाल, यथावकाश और यथाविधि किया जाना चाहिए। यहाँ यह स्पष्ट कर देना नितान्त आवश्यक है कि बिना संशोधन किए इस रोग का नष्ट होना असम्भव नहीं तो कष्टतरसाध्य अवश्य होता है। यदि वस्तुतः इस रोग को दूर करना और इस रोग की औषधियों को सफल बनाना हो तो बिना तर्क वितर्क किए रोगी के शरीर का अच्छा संशोधन अवश्य होना चाहिए। यह रोग त्वचा रक्त, मांस और मेद तक अपनी सीमा रखता है, अतः चिकित्सा के सिद्धांत के अनुसार, त्वचा पर शोधन और आलेपन चिकित्सा विधान किया जाए।

रक्त पर स्थित होने के कारण, संशोधन, आलेपन कषाय पान और रक्त निर्हरण किया जाना चाहिए। चूंकि यह मांस गत भी होता है अतः संशोधन, लेपन, कषाय पान, रक्तमोक्षण अरिष्ट सेवन, मन्थ सेवन और अवलेह का प्रयोग किया जाना चाहिए। तथा यह रोग मेद धातुगत भी होता है, अतः संशोधन, आलेपन कषाय पान, रक्तमोक्षण, अरिष्ट, मन्थ अवलेह आदि का प्रयोग, औषधि सेवन तथा जितेन्द्रिय होकर शुभ एवं प्राणिमात्र के हित के कर्म करता हुआ आस्तिक भावना से जीवन की दिशा निर्माण करें और रोगनाश के लिए निरन्तर संघर्षण करता रहे तो अवश्य विजय प्राप्त होती है। निरन्तर संघर्ष परायण सात्विक जीवन वाले दृढ़ प्रतिज्ञ लोग असंभव को भी संभव बना देते हैं। अति उत्कृष्ट साधना से जब ईश्वर मिल सकता है तो शरीर से असाध्य रोग को निकाल बाहर करना कौन बड़ी बात है। रसशास्त्र के प्रयोगों के रहते हुए संसार में कोई भी रोग असाध्य नहीं है यह मेरी उत्तरदायित्व पूर्ण घोषणा है।

श्वित्र की दोषानुसारी चिकित्सा विधि—

वात प्रधान सफेद कुष्ठ में मेढ़ासिंगी, गोखरू, काकजंघा, गिलोय और दशमूल के समभाग स्वरस अथवा क्वाथ में इसका कल्क डालकर तिल का तैल सिद्ध करके पीने और मालिश के लिए प्रयत्न करना चाहिए। पित्तज श्वेत कुष्ठ में धव, अर्जुन, पलाश, नीम, पर्पटक, मधुयष्टी, लोध्र, मंजीठ इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ करलें और कल्क तैयार करलें। फिर उससे गोघृत को पाचित करके उसको पीने के लिए और त्वचा पर मालिश के लिए भी प्रयुक्त किया जाना चाहिये। कफ प्रधान श्वित्र में प्रियाल, शाल, राजवृक्ष नीम, सप्तपर्ण, चित्रक, मरिच, वच और कूठ कड़ुवा, इन सबको समभाग लेकर क्वाथ विधि से क्वाथ एवं कल्क बनाकर तिल तैल का पाचन करल और उसको पीने के लिए तथा त्वचा पर मालिश के लिए प्रयुक्त करना चाहिए। अथवा सभी प्रकार के श्वित्र में तुवरक तैल के पीने और मालिश से निश्चित लाभ होता है। भल्लातक तैल सभी प्रकार के सफेद कुष्ठों

को दूर करने के लिए गारण्टी का योग है। किन्तु इसका उपयोग बिना कुशल एवं अनुभवी चिकित्सक के करना। भारी संकट मोल लेना भी है।

श्वित्र के लिए अनुभूत शास्त्रीय प्रयोग—

आचार्य सुश्रुत ने कुछ ऐसे उत्तम प्रयोग इस श्वित्र कुष्ठ को नष्ट करने के लिए दिए हैं कि जिनका मुकाबला विश्व की कोई भी चिकित्सा अथवा औषधि नहीं कर सकती। चाहे रोगी का सम्पूर्ण शरीर शंख के समान श्वेत क्यों न होगया हो यथाविधि इनका सेवन करें तो निश्चय ही वह फिर से अपने पूर्व के वर्ण को प्राप्त कर लेता है यह हमारा विशेष अनुभव है। ये योग ग्रन्थों में लिखे हैं सभी पढ़ते भी हैं, परन्तु ध्यान देकर इनका उपयोग कोई नहीं करता और आलसियों की भांति कह देते हैं कि साहब इस रोग का कोई इलाज नहीं है। मैं इस बात का विरोधी हूँ। जनता के लाभ के लिए मैं इन योगों के नाम लिख रहा हूँ और उनकी प्रयोग विधि भी दे रहा हूँ। जैसे महातिक्तक घृत, तिक्तक घृत, महानील घृत, नीलघृत, वज्रक तैल, महा वज्रक तैल ये छः औषधियां इस रोग के लिए गारंटी की दवाइयां हैं। इनके सभी द्रव्य सुश्रुत चिकित्सा स्थान अध्याय ९ में दिए गए हैं। और इनकी निर्माण विधि भी दी हैं। हम यहां अतिविस्तार भय से नहीं दे रहे हैं।

हमारा विशेष अनुभव यह है कि यदि तिक्तकघृत अथवा महातिक्तघृत को १-१ तोला मात्रा में प्रातः सूर्योदय से पूर्व और रात्रि को सोते समय पीलिया जाए। तथा ठीक शिखर दोपहर में इसकी प्रतिलोम मालिश की जाये और खान पान जो आगे लिखा जाएगा—वह किया जाये तो ९० दिन में निम्नलिखित रोग जड़ से चले जाते हैं। रोगी का शरीर कुन्दन बन जाता है और पुनः काया कल्प हो जाता है। जिन रोगों पर हमने प्रयोग करके शतप्रतिशत इन योगों को सच्चा पाया है उनके नाम इस प्रकार हैं—

सभी प्रकार की खुजलियां, सभी प्रकार के नए व पुराने ज्वर, भयानक से भी भयानक नामर्दी (चाहे जैसी हो) रक्तपित्त, कैसा ही बवासीर का रोग, हृदय के सभी रोग, सभी प्रकार के विसर्प, पागलपन, पांडु रोग अपस्मार (चाहे जैसा हो), फीलपांव, सभी प्रकार के गुल्म, गण्डमाला, गलगण्ड, सभी प्रकार के फोड़े, गिल्टियां, फुन्सियां, नारियों का श्वेत प्रदर और रक्त प्रदर चाहे जितना पुराना हो अवश्य नष्ट होता है। ये ऋषियों के दिए हुए अमूल्य रत्न है। इनके रहते हुए हम दुःखी हैं, यह हमारा दुर्भाग्य नहीं तो क्या है ?

तिक्तक घृत आदि के विशेष योग—तिक्तकघृत अथवा महातिक्तक घृत आदि में से किसी एक के साथ सज्जीखार, लाख और हरा कासीस, मनःशिला, तुत्थ, मालकांगनी, वायविडङ्ग, कालीमिर्च, असली गोलोचन, घर का धुवां, समुद्रफेन, काकोदुम्बरि का फल, सागौन की अन्तर्मज्जा, चित्रक की जड़ की छाल, कुटकी, लाल और पीली कनेर का पंचांग, प्रपुन्नाट के बीज, आक का पंचांग, रास, रसौत बावची, अमलतास की जड़ की छाल, थूहर का सभी अङ्ग, हल्दी सैंधव लवण, पलाशक्षार, लालरत्तियां पीपल, चमेली का अङ्ग, तिल, सोभांजन, पीली बड़ी हरड़ पीली सरसों इन सबको समभाग लेकर कूट पीसकर कल्क सा बना लें और चौगुने गोमूत्र में डालकर पकावें, जब गाढ़ा हो जाए तो लोह के पात्र में रखलें। श्वेत कुष्ठ के दागों को रगड़ करके लाल बना दें और इस दवा को शनैः शनैः चुपड़ें तथा लेप करदें। केवल सात बार के लगाने मात्र से दाग काले पड़ जाते हैं और दवाई लगाना बन्द कर देने से ७ सप्ताह में अपना निजी पहले जैसा वर्ण वापिस आ जाता है। सभी चर्म विकारों पर इसका उपयोग हो सकता है।

नील घृत और महानील घृत की विशेषता—इन दोनों ही घृतों का उपयोग मुख्य रूप से श्वित्र के लिए आचार्य सुश्रुत ने किया। हमने स्वयं बनाकर इस बात को सही पाया है कि निःसन्देह ये घृत असाध्यश्वित्र को भी नष्ट कर देते हैं। क्योंकि अध्याय नौ चिकित्सा स्थान के ३३ वें श्लोक में यह गारन्टी दी है कि चाहे यह कुष्ठ असाध्य ही क्यों न हो गया हो, वह इस नील या महानील घृत के उपयोग से अवश्य नष्ट होजाता है। इतना ही नहीं लाइलाज बवासीर दोनों ही प्रकार की, सभी प्रकार के कृमि रोग भी अवश्य नष्ट होते हैं यह ध्रुव सत्य है।

श्वित्र नाशक कुछ सफल प्रलेप—(१) बर्की हर-

ताल, मनःशिला आक का दूध, काले तिल, शोभांजन का पंचांग, और कालीमिर्च, सबको समान भाग लेकर घोटकर लेप करें।

(२) सज्जीखार, तुत्थ, कूठ मीठा, चित्रक का पंचांग लोध, काले तिल और मनःशिला को घोटकर लेप करें।

(३) पीली बड़ी हरड़ का छिलका, करंज की गिरी, पीली सरसों, बावची, सेंधा नमक, हल्दी और गोलोचन को समभाग लेकर घोट कर लेप करें।

(४) सज्जीखार, तुत्थ, हरा कासीस, वायविडंग, घर का धुवां चित्रक का पंचांग, कुटकी, थूहर, हल्दी और सेंधा नमक इनको समान भाग लेकर पलाश के पानीय क्षार में प्रक्षेप देकर धीरे धीरे पकावें। जब गाढ़ा हो जाये तो उसको उतार कर रखलें और श्वेत दागों को थोड़ा रगड़ कर लेप कर दें।

(५) लाख, कूठ कडुवा, सरसों काली, गन्ध विरोजा, हल्दी, सोंठ मिर्च पीपल, पवांड़ के बीज सबको समान भाग लेकर कूटपीस लें और तक्र में घोटकर लेप करें।

(६) सेंधा नमक, पवांड के बीज, गुड, मौलसिरी, रसांजन, इन सबको समान मात्रा में लेकर कपित्थ फल के स्वरस में घोटकर लेप करें।

(७) सत्यानाशी का पंचांग, अमलतास का पंचांग, सिरस का पंचांग नीम का पंचांग, राल, इन्द्र जौ का, पंचाग, इन सब को समान भाग लेकर घोट कर लेप करें।

(८) काकोदुम्बरिका के फल पत्ते और छाल, अंजीर के भी फल, पत्ते, छाले और जड़ को समान भाग लेकर १६ गुने पानी में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर एक भाग 'बावची का चूर्ण डाल दें और गाढ़ा करके लेप करें।

(९) काले सांप की स्याही और बहेड़े का तेल दोनों को घोटकर लेप करें।

(१०) तुत्थ, हरताल वर्की, कुटकी, त्रिकटु, बांसा पंचांग, कनेर पंचांग, कूठ, बावची, भिलावा, दूधी, सरसों और थूहर को घोटकर लेप करें

विशेष अनुभूत प्रयोग-

(क) बावची का चूर्ण २० तोला, सुवर्णमाक्षिक भस्म ५ तोला, लोहभस्म ३ तोला, रसौंत ४ तोला, काले तिल १० तोला, चित्रक ५ तोला इन सबको घोट पीसकर गोमूत्र की भावना देकर सुखा लें।

मात्रा—१ माशा प्रातः, सायं और रात्रि को सेवन करें।

अनुपान—प्रातः गोमूत्र से, सायं त्रिफला क्वाथ से, रात्रि को सारिवाद्यासव से सेवन करें।

(ख) सप्तपर्ण के दुगुने स्वरस में भिगोये हुए जौ, कुटकी के दुगुने क्वाथ में उबाले हुए काले तिल, नागरमोथा के दुगुने क्वाथ में उबाले गए बासमती चावल, अतीस के दुगुने क्वाथ में उबाले गए लाल साठी चावल, नीम के तिगुने स्वरस में भिगोये हुए गेहूँ, हल्दी के दुगुने क्वाथ में भिगोये या उबाले गये कोदों, त्रिफला के चौगुने क्वाथ में पकाये गए बावची के बीज इन सबको एकत्र करके घोट पीसकर खूब बारीक पावडर सा बनालें। फिर वर्की हरताल भस्म ३०रत्ती, रस सिंदूर १८ रत्ती, काशीस भस्म ३ तोला, यशद भस्म ४ तोला, भल्लातक चूर्ण १ तोला, लाख, समुद्रफेन, राल, रसौंत, हाथी की पतली लींडरी याने मल २० तोला इन सबको मिलाकर गिलोय के स्वरस की एक भावना दे डालें और १-१ माशा की गोलियां बनालें। प्रातः, दोपहर, सायं और सोते समय रात्रि को सेवन करें। प्रातः गिलोय के रस से, दोपहर को नीम के पत्तों के रस से, सायं वांसापत्र स्वरस से और रात्रि को त्रिफला क्वाथ से।

(ग) १ सेर मूङ्ग को नीम के तिगुने पानी में पकावें फिर उन्हें नीम के ही तेल में तलें। विजयसार का घनसत्व ५ तोला, खदिर का घनसत्व १० तोला, मंजीठ का घनसत्व ७ तोला, सप्तपर्ण का घनसत्व ३ तोला, पद्माख का घनसत्व ४ तोला, बिभीतक का घनसत्व १२ तोला, कुटज का घनसत्व ६ तोला, निशोथ का घनसत्व १५ तोला, इन सबको एकत्र करके घोटकर एक रूप करलें। फिर भांगरे के २ सेर ताजे स्वरस में ३ तोला काशीस भस्म, ४ तोला लोहभस्म, ३ तोला फिटकरी, १० तोला नौसादर, २ तोला ताम्र भस्म, २ तोला यशद भस्म, कान्तलोह भस्म ४ तोला, अभ्रक सत्व भस्म ३ तोला, वायविडंग, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, तिल, अजमोद, चित्रक, भिलावा और ढाक के बीज ये सब २-२ तोला मिलाकरके मर्दन करें। १ माशा की गोलियां बनालें। केवल १ गोली प्रातः अमलतास के ताजा स्वरस सेसेवन करें।

सारा दिन विश्राम करें। केवल गोदुग्ध और लाल साठी का चावल चीनी से खावें। दिन भर धूप में पड़े रहें। बोलने आदि की सभी क्रियाओं को कम से कम करें।

(घ) भांगरा स्वरस, चित्रक स्वरस, अमलतास स्वरस, चमेली स्वरस, सत्यानाशी स्वरस, पुनर्नवा स्वरस, २०-२०तोला, त्रिफला क्वाथ, त्रिकटु क्वाथ, मंजीठ क्वाथ, बावची क्वाथ, विजयसार क्वाथ, खदिर क्वाथ, हल्दी क्वाथ ५-५ तोला, तिल, गिलोय, कुटकी, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, सनाय, पीपल वृक्ष के फल, करंज की गिरी, अर्जुन वृक्ष की छाल, अनन्तमूल, कालीमकोय, गाजवां इन १२ का चूर्ण २-२ तोला, काशीसभस्म, अभ्रकभस्म, पीतल भस्म, लोहभस्म, नौसादर और वत्सनाभ शुद्ध ६-६ माशा मिलाकर खूब घुटाई करें। ३-३ रत्ती की गोलियां बना लें। प्रातः,सायं और रात्रि को ताजा पानी से खाते रहें। नमक, तेल, उड़द की दाल, दही, दूध, पकवान और खटाई न खावें।

सफेद कोढ़ पर विशेष अनुभूत रस योग—

श्वित्रारि योग—शुद्ध पारद (अष्ट संस्कारित) और गन्धक दोनों को २-२ तोला लेकर उत्तम कज्जली बना लें। और नीम की नीचे की छाल का स्वरस १ छटांक, सत्यानाशी के पंचांग का स्वरस ३ तोला, भांगरे का स्वरस ५ तोला, मजीठ का क्वाथ आधा पाव, चमेली का पत्र स्वरस ४ तोला, खदिर छाल का क्वाथ १ पाव, विजयसार का क्वाथ ३ छटांक इन सबको मिलाकर लोहे के खरल में डालकर कज्जली को भी बीच में प्रक्षिप्त कर नीम के दृढ़ सोटे से रगड़ाई करें। जब कल्क सा बन जाये तो त्रिफला चूर्ण, भांगरा चूर्ण, भिलावा चूर्ण और कड़वी तुम्बी का चूर्ण १-१ तोला भी मिला दें। सबको एक साथ फिर उसी नीम के सोटे से घोटें। जब खूब दृढ़ कल्क बन जाए तो उसको एक ही चपटा सा वटक बना कर धूप में सुखा लें। अच्छा शुष्क हो जाने पर ढाक के ताजा १ हाथ लम्बे और १ बालिस्त चौड़े लक्कड़ को लेकर इसे एक ओर से आधे हाथ तक खोखला बनालें, किन्तु दोनों ओर की दीवारें आधा-आधा अंगुल मोटी होनी चाहिये। उसमें इस औषध के वटक को रख दें और ढाक का ही ढक्कन लगावें। ऐसा लगावें कि भीतर की ऊष्मा या वाष्प बाहर न निकलने पाये। फिर उस सारे लक्कड़ पर क्रमशः तीन बार १-१ करके कपरौटी कर दें। प्रत्येक कपरौटी सुखा लेनी चाहिये। फिर २० सेर उपलों के पुट में उसे फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर उस अधजले ढाक के लक्कड़ में से औषध का रक्त वर्ण का वटक निकाल कर खुली वायु में रखदें। भली प्रकार से शुष्क होने पर बाकुची का घनसत्व चौगुना मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें। वमन और विरेचन से शरीर शुद्ध करके १-१ गोली प्रातः, सायं और रात्रि को गिलोय के २ तोला स्वरस से सेवन करें। संयम से रहें। पथ्य भोजन करें। यह योग ६० दिन के भीतर कैसा ही भयानक श्वित्र क्यों न हो, निश्चय ही ठीक कर देता है यह ध्रुव सत्य है।

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली ४ तोला, कठगूलर, बाकुची, कड़वी तुम्बी, भांगरा, भिलावा, हराकसीस इन सबको २-२ तोला लेकर चूर्ण करके कज्जली के साथ मिश्रण करलें। फिर गिलोय के ताजा स्वरस में एक अच्छी भावना देकर गोला बनालें और गोले को चौगुने अधिक चांगेरी के दृढ़ कल्क में लपेट कर गोला बनाकर १ हाथ लम्बे और १ बालिस्त मोटे या चौड़े नीम का ही बहुत दृढ़ ढक्कन लगाकर ३ कपरौटी करके २० सेर उपलों में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर निकालें और खरल में घोटकर पीतल भस्म, अभ्रकसत्व भस्म, कान्त लोह भस्म और नौसादर ५-५ माशा मिलाकर गोमूत्र की एक भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। प्रतिदिन प्रातः सायं और रात्रि को काली मकोय के १ तोला ताजा स्वरस से सेवन करें। ६० दिन में सभी प्रकार का कुष्ठ निश्चय ही नष्ट हो जाता है। हमारा अनेक बार का अनुभव है।

श्वेत कुष्ठारि—शुद्ध पारद (अष्ट संस्कारित) शुद्ध गंधक दोनों की कज्जली ४ तोला, बाकुची चूर्ण ८ तोला, काकजंघा और बहेड़ा गिरी का चूर्ण ३-३ तोला, चिरोंजी, लोहभस्म, पीतलभस्म, काशीस भस्म, अभ्रकसत्व भस्म, त्रिफला घनसत्व, त्रिकटु घनसत्व, वंशलोचन का चूर्ण १-१ तोला मिला दें और एक भावना ताजी नीम की गिरी और स्वरस समभाग (यह भावना पृथक से होनी चाहिए)

चौथी भावना गिलोय स्वरस की लगाकर १ गोला बनालें। उस गोले पर चित्रक का कल्क २-२ इन्च मोटा चढ़ादें और धूप में सुखाकर खूब कठोर बनालें। फिर उसको एक हाथ लम्बे और एक वालिस्त चौड़े मोटे खदिर के लक्कड़ को खोखला करके उसमें रखदें और खदिर का ही मजबूत ढक्कन लगाकर सात कपरौटी १-१ करके चढ़ावें और प्रत्येक वार सुखाते रहना चाहिए। फिर सोलह सेर उपलों की पुट दे दें। स्वांग शीत होने पर ही निकालें। खरल में पीसलें और सुवर्ण माक्षिक सत्वभस्म २ तोला तथा कान्तलोह भस्म १ तोला मिलाकर कठगूलर के समभाग स्वरस में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। प्रातः, सायं और रात्रि को १-१ गोली आंवले के स्वरस के साथ सेवन करें। यह योग साठ दिन में श्वेत कुष्ठ को जड़ से निकाल बाहर कर देता है।

फिलास रिपु—शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक ४ तोला लेकर खरल में घोटकर उत्तम कज्जली बनायें। फिर काली मकोय के स्वरस की २१ भावना दे डालें। फिर कठ गूलर के स्वरस की सात भावना दे डालें। फिर त्रिफला क्वाथ की १० भावना दे डालें। फिर नीम के स्वरस की ४ भावना दे डालें। फिर गोमूत्र की ३ भावना दे डालें। फिर कीकर की छाल के ताजा स्वरस की ५ भावना दे डालें और फिर पीलु के पत्तों के स्वरस की ३ भावना देकर एक गोला बनालें। इस गोले पर भांगरे का कल्क १-१ इन्च मोटा थोपकर ढाक के या टैंड़ के पत्ते लपेटकर एक कपरौटी करके ४ सेर उपलों में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर ऊपर की अवशिष्ट दग्ध कपरोटी को दूर करके वाकी सम्पूर्ण को खरल में घोटकर रखलें। मात्रा ४ रत्ती की है।

अनुपान—गाय का दूध। नमक, तेल और लालमिर्चें इनका जोरदार परहेज है। शेष परहेज भी रखने हैं। यह वमन विरेचन करता है। रोगी की हुलिया बदल देता है। किन्तु ४० दिन में भयङ्कर से भी भयङ्कर कोढ़ ऐसा गायब होता है कि ढूंढ़ने पर उसके निशान तक नहीं मिलते। हमने इसका प्रयोग ५ व्यक्तियों पर किया और पांचों ही सफल रहे। कष्ट यही है कि रोगी इसके लिये कम ही तैयार होते हैं। अन्यथा दवाई लाजवाब है।

श्वेत कुष्ठ के लिए विशेष परहेज—मांस, शराब, मैथुन, बाल बढ़ाये रखना, नाखून बढ़ाना, दाढ़ी रखना, थकावट, दूध, दही, चर्बी, तेल, कुलफी, उड़द, सेम की फलियां, मटर, गुड़, पिट्ठी वाले द्रव्य, विरुद्ध आहार, अध्यशन, अजीर्ण, विदाही पदार्थ और अभिष्यन्दी पदार्थों का त्याग अवश्य ही कर देना चाहिए।

सेवनीय पदार्थ—वासमती चावल, लाल चावल, जौ, गेहूँ, कोदों, समा (ये धान्य पुराने हों तो ठीक हैं, अन्यथा नहीं) मूंग, मसूर और अरहर की दाल सेवन करें। टिण्डे, परवल, घिया, लौकी, पालक, चौलाई, गाजर सलाद, बथुआ, आलू, प्याज और सिंगारे की सब्जी सेवन कर सकते हैं।

सेव, नासपाती, केला, चीकू, पपीता, लीची, खरबूजा, तरबूजा, अनन्नास, मीठा आम, मीठा सन्तरा, मौसमी, आमला ये सब सेवन किये जा सकते हैं। सभी सब्जियों और दालों में नीम के पत्तों का छौंक दे देना चाहिए। यदि कोई मांसाहारी व्यक्ति है तो उसे जांगल माँस दिया जा सकता है। किन्तु चर्बी वाले मांस भूलकर भी नहीं देने। यदि खदिर का कषाय पीने और स्नान के लिये प्रयुक्त किया जाए तो शीघ्र ही लाभ होता है। पानी का सेवन बन्द कर देना चाहिए।

श्वेतकुष्ठ (ल्यूकोडर्मा)

श्री डा० बनारसीदास दीक्षित H. M. D. S.

परिचय—

ल्युकोडर्मा को प्रायः श्वेतकुष्ठ कहते हैं पर यह कुष्ठ रोग नहीं है और न ही संक्रामक है।

चिकित्सा—

आर्सेनिकम सल्फ्यूरेटस फ्लेवम् ६, ३०, २००, १०००—श्वेत दागों में इसका प्रयोग होता है। उपदंश विष का इतिहास मिलने पर यह अधिक काम करता है।

मेरा अनुभव—

मैं प्रायः उपरोक्त दवा का प्रयोग करने के साथ ही श्वित्रहर लेप गोमूत्र में लगाने को बताता हूँ। इस प्रकार

८-१० रोगियों को लाभ हुआ है।

नाइट्रिक ऐसिड ३०, २००—वंशगत या स्वोपार्जित उपदंश या पारा का इतिहास वाले रोगियों में लाभप्रद दवा है।

मौरिनम् २००, १०००—साइकोसिस दोष का इतिहास प्राप्त होने पर इसका प्रयोग करना चाहिए।

नेट्रम म्यूर २००, १०००—नेट्रमम्यूर के धातुगत और विशेष लक्षणों में यह लाभप्रद दवा है। रोगी दुबला पतला होता है। नमक खाना विशेष पसन्द करता है। धूप या आग की गर्मी सहन नहीं होती है।

आर्सेनिक एल्वम् ३० से C.M-आर्सेनिक के चरित्र-गत और विशेष लक्षणों में इसका प्रयोग करना चाहिये।

नोट—आर्सेनिक एल्वम् ३० से 1M शक्ति तक देकर मैंने एक रोगी को ठीक किया था। लगाने के लिए बाकुची तेल का प्रयोग किया गया था। रोगी के सभी लक्षणों का आर्सेनिक से पूर्ण सादृश्य था अतः बाध्य होकर आर्सेनिक का ही प्रयोग करना पड़ा और रोगी पूर्ण आरोग्य हो गया।

कोढ़

परिचय—

कुष्ठ के परिचय प्रभेद के लिये आयुर्वेदिक चिकित्सा देखें।

चिकित्सा—

एनाकार्डियम् आक्सी ३× से ३०×, Q—यह कुष्ठ में लाभप्रद है। रोग वाली जगह सुन्न हो जाती है।

हाइड्रोकोटाइल Q—पहले त्वचा पर लाल रंग का दाग होकर फूलकर बाद में घाव होना और त्वचा झड़ पड़ने की दशा में जब कि चमड़ा मोटा हो जाता है तब प्रयोग करना चाहिये। त्वचा जितनी मोटी होगी लाभ भी उतना ही अधिक होगा।

बाहरी प्रयोग—

उपरोक्त दवा का मूल अर्क २० बूंद १ औंस ग्लेस-रीन में मिलाकर ऊपर भी लगाना चाहिये।

स्कूकम चक १× ३×—इसके विचूर्ण का २-३ मास सेवन करने पर लाभ होता है।

पाइपर मेथिस्टिकम Q, ६×—प्राचीनकाल में ऋषिगण जिस सोमरस का पान करते थे यह वही है। चमड़ी में सफेद दाग पड़ कर वहां घाव होना।

होयाङ्ग नान ३× ६×—यह बदबू को दूर करता है एवं कुष्ठ रोगों में लाभ करता है।

एजाडिरेक्टा इण्डिका Q—यह दवा नीम से तैयार होती है। इसके मदर टिंचर का सेवन एवं तेल का बाहरी प्रयोग करना चाहिये।

कैलोट्रोपिस Q १× ३×—यह दवा मदार से तैयार होती है उपदंश के कारण होने वाले चर्म रोग और कुष्ठ में लाभप्रद है।

गाइनो कार्डिया ओडोरेटा Q १× ३×—यह चालमूगरा से तैयार होती है। चालमूगरा का तेल कुष्ठ रोगी के लिये खाने और लगाने की उत्तम दवा है।

सोरेलिया कोरिलिफोलिया Q—यह बाकुची है श्वेत दाग और कुष्ठ में लाभप्रद है। इसके तेल का बाहरी प्रयोग भी किया जाता है।

मस्से

परिचय—

होमियोपैथी सिद्धान्त के अनुसार यह साइकोसिस दोष के कारण ही पैदा होते हैं। होमियोपैथिक ही एक ऐसी पैथी है जिसमें मस्से को दवा खिलाकर ही ठीक किया जाता है। अतः अन्य पैथियों वाले भी जो इसकी निन्दा करते हैं वह भी मस्से में थूजा का प्रयोग करके लाभ उठाते हैं। पाठकों को याद होगा कि आपकी प्रिय पत्रिका धन्वन्तरि मासिक के जुलाई १९६७ में मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसका शीर्षक था 'एलोपैथिक में जिसकी कोई दवा नहीं वह है मस्सा' यह लेख पाठकों को बहुत पसन्द भी आया था। यहां संक्षेप में हम चिकित्सा लिख रहे हैं।

चिकित्सा-

थूजा २०० से C. M, तक—थूजा को होमियोपैथिक में मस्से की पेटेन्ट दवा मानते हैं पर यह उचित नहीं है। जहां थूजा के लक्षण होंगे वहीं यह लाभप्रद होगा - जो मस्से फूल गोभी की तरह फटे-फटे और नोंकदार होते हैं उनमें थूजा लाभप्रद है। इस दवा से हमने हजारों रोगियों को ठीक किया है।

कास्टीकम २०० से C. M. तक—जो मस्से चपटे गोल और ठोस होते हैं उनमें कास्टीकम लाभप्रद है।

नाइट्रिक एसिड २०० से C. M तक—मलद्वार के या रक्तस्रावी मस्सों में विशेष लाभप्रद है।

बाहरी प्रयोग-

बाहरी प्रयोग के लिए थूजा आइन्टमेन्ट लगाना चाहिये अथवा ८ भाग वेसलीन में १ भाग थूजा मदर टिंचर डालकर मलहम बनाकर प्रयोग करना चाहिये। बाहरी प्रयोग आवश्यक ही है ऐसी कोई खास बात नहीं है।

नीचे हम स्थान भेद से दवा को लिखते हैं—

मुंह में मस्सा—कास्टीकम, ऐसिड नाइट्रिक, थूजा।

भौं में मस्सा—कास्टीकम।

आंख की पलकों में—ऐसिड नाईट्रिक।

आंख के नीचे—सल्फर।

नाक में मस्सा—थूजा, कास्टीकम।

मुंह के कोने में मस्सा—काण्डुरैंगो।

दाढ़ी में मस्सा—लाईकोपोडियम्।

जीभ में मस्सा—आरमम्यूर।

गर्दन में मस्सा—ऐसिड नाइट्रिक।

वक्षमध्योस्थि में—ऐसिड नाईट्रिक।

बांह में—कैल्केरिया कार्ब, कास्टीकम, एसिड नाईट्र, सीपिया, सलफर।

हाथ में—कल्केरिया, लैकेसिस, लाइकोपोडियम्, ऐसिड नाईट्रिक, रसटक्स, थूजा, सल्फर।

तल हत्थी में—नेट्रमम्यूर, एनाकार्डियम।

अंगुली में—बार्बेरिस, कल्केरिया, कास्टीकम, लैकेसिस, नेट्रम म्यूर, ऐसिड नाईट्रीक, सल्फर, थूजा, सिपीया

अंगूठे में—लैकेसिस।

लिंगाग्र मुख में (छूने पर ही रक्तस्राव)—सिनाबेरि, यूकैलिप।

लिंगमुण्ड में—ऐसिड नाईट्रीक, ऐसिड फास, थूजा।

नीचे हम मस्से की प्रकृति के अनुसार दवा लिखेंगे।

पुराना मस्सा—कास्टिकम्, नेट्रमम्यूर, सल्फर।

रक्तस्रावी मस्सा—सिनाबेर, ऐसिड नाईट्रिक, सिपिया, साईलीसिया, स्टैफिसेग्रीवा, सल्फर।

जखम भरे मस्से—आर्सेनिक, कल्केरिया कार्ब, कास्टीकम, हीपर सल्फ, लाईको, नेट्रमम्यूर, एसिड नाईट्रीक, फास, थूजा।

दर्द भरे मस्से—कास्टीकम, हीपर, लाईको, ऐसिड नाईट्रिक, पेट्रोलियम, फास, सिपिया, सल्फर।

मुख चौड़ा मस्सा—लैकेसिस।

कड़ा मस्सा—एन्टिम क्रूड, कल्केरिया कार्ब, कास्टीकम, ऐसिड फ्लोर, लैकेसिस, रैनान, साई, सल्फर।

—होमियोरत्न श्री डा० बनासीदास दीक्षित
H. M. D. S.
दीक्षित फार्मेसी, रक्सोल (चम्पारन)

वातरक्त

रोग विनिश्चयकार ने वातरक्त का वर्णन वात-व्याधि के अनन्तर किया है। क्योंकि यह एक विशेष प्रकार की वात व्याधि होने से पृथक ही स्थापित की गई है। आचार्य सुश्रुत ने तो इस रोग को वात व्याधि के ही अन्तर्गत माना है । परन्तु भगवान् चरक ने वातरक्त की सम्प्राप्ति, निदान आदि में अन्तर मानते हुए और इसमें रक्त का विशेष अनुबन्ध देखकर, रोग के स्थान विशेष हाथ, पैर आदि के आधार पर और चिकित्सा में भी विशेष अन्तर होने से इसको पृथक ही एक स्वतन्त्र व्याधि के रूप में स्वीकृत किया है। वातरक्त के खुड्ड वाले भी कहा गया है। क्योंकि यह रोग विशेषतया छोटी-छोटी संधियों में ही होता है। एक नाम वातविलास भी है। क्योंकि वायु के आवृत होने से रक्त अधिक मात्रा में दूषित होकर इस रोग को जन्म देता है। प्रायः यह रोग सुकुमार प्रकृति के भरपूर सुखी प्राणियों को होता है । इस प्रकार यह वातरक्त वातव्याधि से पृथक एक रोग है क्योंकि इसमें वात और रक्त दोनों ही स्वतन्त्र रूप से समानान्तर पर दूषित एवं कुपित होते हैं।

वातरक्त के कारण—भगवान् चरक के अनुसार लवण, अम्ल, चरपरे या चटपटे, क्षारीय, स्निग्ध, उष्ण पदार्थों का अति सेवन करने से, अजीर्ण में भोजन करते रहने से, सूखे सड़े गले मांस आदि सेवन करने से विशेषकर जलीय मांस अथवा आनूप देश के मांस सेवन करने से तिल की खली, मूली, कुलथी, उड़द, सेम की फली, बड़ी मटर आदि की सब्जी का अधिक सेवन करने से मांस, ईख, दही, कांजी, सिरका, छाछ, मद्य तथा आसव अरिष्ट आदि के अधिक सेवन करने से, विरुद्ध आहार, अध्यशन, क्रोध, दिन में सोना और रात को जागना आदि कारणों से सुखी, मोटे, आराम तलब लोगों को यह वातरक्त नामक रोग उत्पन्न हो जाता है।

वातरक्त की सम्प्राप्ति—इस रोग की सम्प्राप्ति पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। क्योंकि जो सवारियां वायु की वृद्धि करके उसको कुपित होने में सहायक हैं और रक्त को अधोभाग में धकेलने में सहयोगी होती हैं प्रायः उन्हीं के उपयोग से वातरक्त होता है। प्राचीन काल में हाथी, घोड़ा, गधा, बैल, ऊंट आदि ही अधिक प्रयुक्त होते थे और इन पर बैठने वाले के ही टांग, पैर आदि नीचे को लटकते थे अतः रक्त निचुड़कर नीचे पैरों के मूल में जमा होता था, किन्तु अब यही प्रक्रिया साईकिल, मोटर साईकिल आदि आधुनिक सवारियों से भी हो रही है। हमारे पास ऐसे कई उदाहरण रहे हैं जो मोटर साईकिल, स्कूटर आदि चलाते थे और उन्हें वातरक्त रोग से व्यथित होना पड़ा। अतः ऊपर कहे अनुसार वाहनों का उपयोग करने से, विदाही खाद्य पदार्थों का अधिक और निरन्तर सेवन करते रहने से तथा भोजन का विरुद्ध पाक होने से शरीर का सम्पूर्ण रक्त विदग्ध होकर नीचे की ओर सरकता हुआ दोनों पैरों के मूल में इकट्ठा होने लगता है और उसके साथ दूषित वायु का प्रबल सम्पर्क हो जाने से यह वातरक्त रोग होता है। हमारा विशेष अनुभव है कि जो लोग किसी विशेष कारण से निरन्तर खड़े ही रहते हैं अथवा जो निरन्तर चलते ही रहते हैं, उन्हें भी यह रोग अवश्य होता है। सन् बयालीस में हमें ऐसे एक रोगी की चिकित्सा करने का मौका मिला था जो पूर्वी बंगाल की ब्रिटिश शासनकालीन घोरजेल यातना के कारण वातरक्त से पीड़ित था। वह एक विख्यात क्रान्तिकारी का सहयोगी था। उसे चौबीस दिन तक एक जेल कोठरी में खड़े-खड़े बिताने पड़े थे। इसी प्रकार से एक साधु स्वामी विज्ञान भैरव हमें मिले थे । वे रात और दिन श्मशान में मानव खोपड़ी पर दोनों पैर टेक कर खड़े रहते थे और उनके शिष्य मयूर मांस से बना कुछ विशेष पदार्थ उनको वहीं पर खड़े-खड़े को ही खिलाते थे। संयोगवश उन्हीं के एक शिष्य द्वारा मुझे उनके दर्शन हुए। वे भयंकर वातरक्त से पीड़ित थे और साधना करते करते एक दिन स्थिर न रह सके और गिर पड़े । पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात होने पर पता चला कि वे एक सौ पांच दिन से खड़े थे। अपने विशाल अनुभवी गुरुजनों के निरीक्षण में मैंने उस महान् साधक की चिकित्सा चालू की। सात मास में वे पूर्ण स्वस्थ हो सके। परहेज वे करते न थे।

उन्होंने एक विशेष मर्म आयुर्वेद का मुझे प्रसाद स्वरूप प्रदान किया था। जो कभी समय मिला तो आयुर्वेद जगत के समक्ष रखूंगा।

आधुनिक आयुर्वेद मत से—आज के चिकित्सा विज्ञान वक्ता इसको गाउट (Gout) के नाम से सम्बोधित करते हैं। उनके मत से यह रोग प्यूरिन (Purin) नाम के विशेष तत्व प्रोटीन के अङ्गी मेटावोलिज्म (Metabiism) में विकार आने से उत्पन्न होता है। इसमें रक्त में प्राप्त यूरिक एसिड बढ़ जाता है, अतः संधियों में शोथ एवं उन्हीं संधियों में सोडियम वाइयूरेट (Sodium biurate) का संचय मिलता है, इत्यादि। विशेष एलोपैथिक खण्ड में देखिएगा। यहां संकेत मात्र किया है।

वातरक्त के पूर्वरूप—भली प्रकार से रोग के प्रकाश में आने से पूर्व रोगी के शरीर पर स्वेद अधिक आता है अथवा बिल्कुल ही नहीं आता, अङ्ग-प्रत्यंगों का वर्ण कालापन लिए हुए हो जाता है। स्पर्श का ज्ञान नहीं होता। यदि कोई आघात लगे तो अपेक्षाकृत अधिक वेदना की अनुभूति होती है। संधि भागों में शिथिलता आ जाती है। आलस्य होने लगता है। शरीर सुन्न रहने लगता है। घुटनों, जांघ, ऊरु, कटि, स्कन्ध, हाथ, पैर आदि की संधियों में फुन्सियां उत्पन्न हो जाती हैं। और इनमें सुई चुभने जैसी तीव्र वेदना अनुभव होने लगती है। और इन्हीं अङ्गों में बार-२ फड़कन होती है। अथवा फटने जैसी पीड़ा अथवा सुन्न हो जाने का अनुभव होता है। खुजली भी होती है। वेदना होती और नष्ट होती रहती है। शरीर की चमड़ी का रंग भी फीका पड़ जाता है तथा त्वचा पर मण्डलोत्पत्ति भी होती है।

वातरक्त कैसे फैलता है?—आचार्य सुश्रुत ने लिखा है कि यह वातरक्त रोग पैरों के मूल से आरम्भ होता है। कभी-कभी हाथों के मूल मणिबन्ध से भी प्रारम्भ होता है। अन्त में यह चूहे के विष की भांति शनैः-शनैः सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाता है। आधुनिक मत से यह रोग पैर के अंगूठे से प्रारम्भ होकर टखने की संधियों और घुटनों की संधियों में पहुँच जाता है। इसी प्रकार से हाथों की छोटी-छोटी संधियों से यह प्रारम्भ होकर ऊपर तक की बड़ी-बड़ी संधियों तक में पहुँच जाता है। प्रत्येक संधिक्षेत्रों को बहुत ही मन्दगति से पार करता है। अतः इसका प्रसार बहुत धीरे-धीरे होता है।

चरक के मत से—भगवान चरक ने वातरक्त को उत्तान और गम्भीर २ भेदों में माना है। उत्तान वातरक्त का आश्रय त्वचा और मांस को माना है, तथा गम्भीर वातरक्त को आन्तरिक सन्धियों में व्याप्त माना है। उत्तान वातरक्त में कण्डू, दाह, पीड़ा, तोद, आकुंचन और त्वचा में रक्तिमा पाई जाती है। गम्भीर वातरक्त में शोथ, अकड़ाहट, आन्तरिक गहरी वेदना, शोथ में रक्तिमा या ताम्रवर्णता, दाह, तोद, फड़कन और पाक पाया जाता है। कभी-कभी वायु वेदना और विदाह से युक्त होकर सन्धि अस्थि, मज्जा में स्थित होकर शस्त्र के समान काटता हुआ सा चलने लगता है। भीतर से टेढ़ापन सा करता हुआ तेज रफ्तार से कभी पंगुता या टांग की खंजता को उत्पन्न कर देता है।

वातरक्त का साध्यासाध्य—जिस वातरक्त में अनिद्रा, अरुचि, सांस उखड़ना, मांस की सड़न, तेज सिर दर्द, मूर्छा, मद, शरीर का दुखना, प्यास, ज्वर, मोहपन, स्फोट होना, दाह, मर्म वेदना अथवा अकड़ाहट, अर्बुद रोग आदि उत्पन्न हो जायें तो वह असाध्य हो जाता है। अथवा जो वातरक्त घुटनों तक फट गया हो, त्वचा फट गयी हो, स्राव होता हो, प्राण, मांस आदि का क्षय भी हो रहा हो तो वह असाध्य होता है। १ वर्ष तक का वातरक्त याप्य माना जाता है। उपद्रवों से रहित वातरक्त साध्य होता है। एक दोष प्रधान हो और नवीन हो तो साध्य होता है। दो दोषों से उत्पन्न याप्य होता है। त्रिदोषज और उपद्रवयुक्त वातरक्त असाध्य माना गया है।

वातरक्त चिकित्सा सिद्धान्त—

सर्वप्रथम यदि वातरक्त उत्तान नामक हो तो लेप मालिश, परिषेक और उपनाह का प्रयोग किया जाना चाहिए। यदि वह गम्भीर नामक है तो विरेचन, आस्थापन, वस्ति तथा स्नेहपान का प्रयोग किया जावे। तथा दोनों ही प्रकार के वातरक्त में शृङ्ग सूची, अलाबू एवं जलौका के द्वारा रक्त मोक्षण किया जाना चाहिए। यदि वातरक्त किसी एक ही स्थान पर प्रसरित हो रहा हो तो उसको शिरावेध के द्वारा अथवा पछने के द्वारा रक्त

निकाल देना चाहिए। परन्तु शिथिल एवं दुर्बल रोगी का अथवा वायु की अधिकता से अत्यन्त रूक्ष रोगी का भी रक्त नहीं निकलना चाहिए। ऐसा करने से वायु और अधिक प्रकुपित हो सकता है और लूलापन या लंगड़ापन अवश्य ही कर सकता है।

लेप—गेहूँ का आटा, बकरी का दूध तथा घी अथवा बकरी के दूध से तैयार हुआ एरन्ड का कल्क अथवा शतधौत घृत या मक्खन का लेप किया जाए।

सेक—बकरी के दूध से सेक क्रिया करनी चाहिए। वात प्रधान में दशमूल से सिद्ध दूध का परिषेक तत्काल शूल का शमन करता है। यह परिषेक क्रिया गुनगुने घी से भी की जा सकती है। पित्त प्रधान वातरक्त में परवल के पत्ते, कुटकी, शतावरी, त्रिफला और गिलोय से सिद्ध किया क्वाथ पीना भी चाहिए और उससे परिषेक भी किया जाना चाहिए। तत्काल दाह शान्त होता है कफ प्रधान वात रक्त में कुटकी, गिलोय, मुलैठी और सोंठ का कल्क गर्म करके लेप किया जाये और उसी कल्क में शहद मिलाकर चाटकर ऊपर से गोमूत्र पीना चाहिए। अथवा आंवला नागरमोथा और हल्दी के क्वाथ का परिषेक करें और पीवें भी। अथवा तालमखाना और गिलोय का क्वाथ पीपल का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए।

वातरक्त पर अनुभूत शास्त्रीय रस योग—वातरक्त शोषी रस—सर्व प्रथम पत्र हरिताल को शुद्ध करलें और उससे रस माणिक्य तैयार कर लें। फिर उसको सरफोंका की २१ भावनायें दे डालें। फिर त्रिफला क्वाथ की ६ भावनायें देवें। फिर भल्लातक और वाकुची के क्वाथ की क्रमशः ३-३ भावनायें देवें। यह सब कठोर धूप में किया जाए। फिर हरताल से अर्धभाग शुद्ध पारद लेवें और उसके बराबर मात्रा में शुद्ध अभ्रक भस्म मिलाकर एक गोला सा बनाकर सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दें। अथवा काचकूपी में वालुका यन्त्र में पाचन करलें। स्वांग शीतल होने पर ही निकालें। इसकी मात्रा १ रत्ती से लेकर ३ रत्ती तक की है। साथ में ४ माशा शरपुङ्खा का चूर्ण भी खावें। इसमें नमक को एकदम बन्द करदें। यह रस वातरक्त, १८ प्रकार के कोढ़ और विशेष करके पामा, कच्छू, विचर्चिका, दाद और विस्फोटक को ३ सप्ताह में नष्ट कर देता है। अनेक बार का सुपरीक्षित प्रयोग है।

वातरक्तांतक वटी—अजमोदका सूक्ष्म चूर्ण १८ तो., शुद्ध पारद १२ माशा लेकर ओखली में डालकर दोनों को एक साथ मूसल से कूटें। जब पारद और अजमोद मिलकर एक रूप होजायें तो दोनों के समान मात्रा में पुराना गुड़ और गोघृत डालकर फिर कुटाई करें। जब सब मिलकर एक रूप हो जायें तो उसकी कुल १४ गोलियां बनालें। प्रातःकाल १ गोली खाकर ऊपर से पान चबावें। जब खूब तीव्र भूख लगे तो पर्याप्त घृत डालकर गेहूँ के बने खाद्य पदार्थ खावें। प्यास लगने पर गुनगुना पानी पीवें। इस औषधि के प्रयोग से मुंह आजाता है। अतः गन्ने चूसें। अथवा बड़ पीपल, गूलर आदि के क्वाथ से बार बार कुल्ले करते रहें। अथवा अजवायन की मलमल के कपड़े में पोटली बनाकर पानी में भिगोकर मुख में रक्खें। स्नान कर सकते हैं। यह रस कुछ कठिन अवश्य है किन्तु एक ही गोली वातरक्त को जड़ से नष्ट कर देती है। भयानक से भी भयानक वातरक्त १४ गोलियों में चला जाता है। यह ध्रुव सत्य है। हाथ कंगन को आरसी क्या? परीक्षण करके देख लें। हम ८७ रोगियों पर इसका सफल परीक्षण करके इसको शत प्रतिशत सत्य पाया है।

वातरक्तान्तक रस—शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक १-१ तोला लेकर उत्तम कज्जली बनालें। फिर इस कज्जली के साथ लोह भस्म, शुद्ध मनःशिला हरतालवर्की, अभ्रकभस्म, शिलाजीत और गूगल १-१ तोला मिलाकर खूब मर्दन करें। और श्वेत अपराजिता (कोयल) दारु हल्दी, वाकुची, चित्रकमूल, पुनर्नवा, देवदारु, त्रिफला, त्रिकटु वायविडंग इन सबका भी १-१ तोला चूर्ण बनाकर मिला दें। फिर त्रिफला क्वाथ और भांगरे के स्वरस की ३-३ भावनायें दे डालें। फिर चने के बराबर गोलियां बनालें। प्रतिदिन प्रातः और सायं १-१ गोली नीम के पत्ते, फूल और छाल को समभाग कूटकर ४ माशा चूर्ण लेकर घी के साथ मिलाकर सेवन करें। यह रस सम्पूर्ण प्रकार के वातरक्त तथा अन्य सभी वात विकारों को जड़ से नष्ट कर देता है। यह बिल्कुल सच है।

वातरक्तान्तक लोह—लोह भस्म दो भाग, शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक की कज्जली, मुक्ता भस्म सुवर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, खपरिया भस्म १-१ भाग लेवें। हरताल-

भस्म अथवा रस माणिक्य आधा भाग लेकर सबको मिला-कर मर्दन करके एक रूप करलें। फिर कुवला, मण्डूकपर्णी, द्रोणपुष्पी, इनके प्रत्येक के स्वरस से क्रमशः ३-३ भाव-नायें दे डालें। फिर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। प्रति-दिन प्रातः और सायं १-१ गोली, हरड़ का चूर्ण, दूध अथवा पानी से लेवें। यह लोह उपद्रव युक्त उभारन अथवा गंभीर वातरक्त को २१ दिन में जड़ से नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त उपदंश, भयंकर प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और समस्त कुष्ठों का एक सप्ताह से लेकर पांच सप्ताहों में सर्वदा के लिए शांत कर देता है। यह हमारा विशेष अनुभूत शास्त्रीय प्रयोग है। शरीर के रक्त को एकदम शुद्ध बनाता है। शरीर का वर्ण सुन्दर निखारता है। अपूर्व शारीरिक बल की प्राप्ति होती है। और मनुष्य की जठराग्नि बहुत ही प्रबल होजाती है। यह ध्रुव सत्य है।

हमारा गुरुप्रदत्त विशेष अनुभूत योग—वात-रक्तारि—शुद्ध पारद (अष्ट संस्कारित), शुद्ध गन्धक १-१ तोला लेकर कज्जली बनालें और उस कज्जली को लाल एरंड के पंचांग स्वरस की ७ भावना दे डालें। फिर सुवर्ण भस्म, वैक्रान्त भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म (शतपुटी), कान्तभस्म, अभ्रकसत्व भस्म (कसौंदी और अर्क दुग्धमारित) ये प्रत्येक ३ माशा लेकर उस कज्जली में मिलाकर भांगरे के स्वरस की ३ वार भावना दे डालें। फिर तालसिंदूर, हिंगुल भस्म, शिला सिन्दूर और रजत सिन्दूर में प्रत्येक ४-४ माशा मिलाकर सरफोंका के क्वाथ की ७ भावना दे डालें। फिर त्रिवङ्गभस्म, शुद्धशिलाजीत, वंशलोचन, सज्जीखार, जवाखार, पांचो नमक ये प्रत्येक ८-८ माशा मिलाकर बाकुची और भल्लातक के क्वाथ की क्रमशः ३-३ भावना दे डालें। फिर शुद्ध वत्सनाभ, त्रिकटु, चातुर्जात, त्रिफला, भारंगी, जायफल, जावित्री, कूठ, गज-पीपल, पीपलामूल, पोहकरमूल, कचूर, दोनों हल्दियां, निशोथ, रास्ना, जवांसा, जमालगोटा, वायविडंग इन सबको ६-६ माशा मिलाकर गिलोय, धतूरा, बांसा, काली मकोय, अदरख और वज्रकन्द इन ६ की क्रमशः अलग-अलग समभाग में ४-४ भावनायें दे डालें। फिर समान भाग में पान के स्वरस की १ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें या कैपसूल भरलें।

यह हमारा गारटी का योग है। प्रतिदिन प्रातः और रात को पुनर्नवा के रस, पानी या शहद से सेवन करने पर भयङ्कर से भी भयङ्कर वातरक्त, गठिया, लकवा, सभी प्रकार के शूल, सभी प्रकार के ज्वर, गले की खरास रक्त-पित्त, पांडुरोग, पुरानी संग्रहणी, पुराना प्रमेह, स्वप्न-दोष, १८ प्रकार का कुष्ठ, पुराने से भी पुराना असाध्य दमा, भगन्दर, हस्तमैथुन जन्य नपुन्सकता, लिंग की शिथिलता, कठोर न होना, टेढ़ापन, शीघ्रपतन, कब्ज, शारीरिक दुर्बलता, रक्त की कमी, बादी की बवासीर, नींद की कमी, वाणी की दुर्बलता, पोलियो, गुल्मरोग, गैस बनना, उरःक्षत, खट्टी डकारें, कड़वी डकारें, बमन होना, प्रदर, श्वेतप्रदर और कहीं की भी सूजन निश्चय ही नष्ट होती है। यह हमारा बहुत बड़े-बड़े असाध्य रोगियों पर सफलता पूर्वक अनुभूत प्रयोग है। प्रयोग बड़ा है। मेहनत का काम है। किन्तु विश्वास और भरोसे की दवा है। इसका देने वाला वैद्य और सेवन करने वाला रोगी दोनों ही प्रसन्न रहते हैं। सौ दवाइयों की एक दवा है।

शास्त्रीय चिकित्सा

वातरक्त—स्नेहन करके स्नेहयुक्त या रूक्ष, मृदु विरे-चनों से विरेचन करना चाहिए तथा बार-बार वस्तिकर्म भी प्रशस्त होता है। सेक, अभ्यंग, लेप, अन्न तथा स्नेह प्रायः करके अविदाही वातरक्त में प्रशस्त होते हैं। बाह्य वातरक्त को आलेपन, अभ्यंग, परिषेक तथा उपनाहनों से तथा विरेचन, आस्थापन वस्ति तथा स्नेहपान द्वारा गम्भीर वातरक्त की चिकित्सा करें। घृत, तैल, चर्बी, मज्जा का पीना मालिश करने तथा वस्तियों में प्रयोग करने से। सुखोष्ण उपनाहों से वात प्रधान वातरक्त को ठीक करें। विरेचन, घृतपान, दुग्धपान, परिषेक तथा वस्तियों के साथ तथा शीतल दाहशामक उपचारों से रक्तपित प्रधान वातरक्त को जीतें। कफप्रधान वातरक्त में हलकी वमन, बहुत अधिक न हो इतना स्नेहन तथा सेक, लंघन तथा सुखोष्ण लेप कफ प्रधान वातरक्त में प्रशस्त होते हैं। कफवात प्रधान वातरक्त में शीतलता लपों के कारण स्तम्भन से दाह शोथ-शूल तथा खुजली की वृद्धि होती है। रक्तपित्त प्रधान वात में उष्ण लेपों से दाह, क्लेद, दारणवत् (फटने की सी) पीड़ा होती है।

इस कारण से वैद्य दोषबल को जानकर चिकित्सा करें।

मुलहठी के साथ मुण्डी, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक सब समभाग लेकर दूध के साथ यथाविधि सिद्ध किया गया घी वातरक्त नाशक होता है।

बला, अतिबला, मेदा, कौंच के बीज, शतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना और ऋद्धि को पीसें। इस-कल्क के साथ चार गुना घी, घी से चार गुना दूध के साथ सिद्ध करें। यह घृत वातरक्त नाशक है।
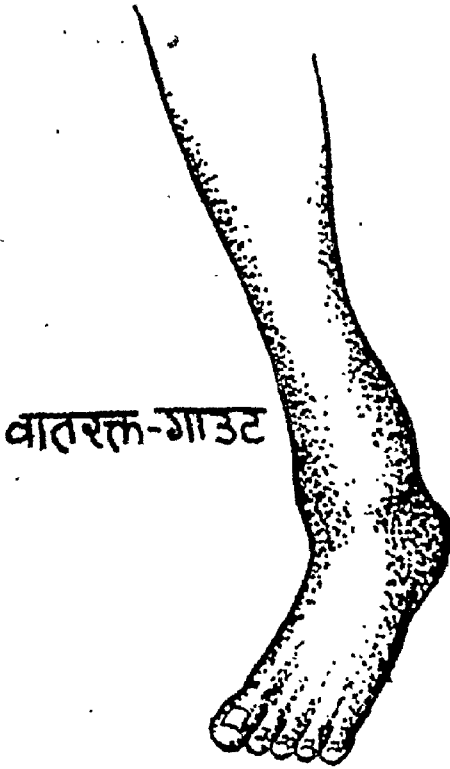
परूषक घृत—त्रायमाण, मुईं आमलकी, काकोली, क्षीरकाकोली, शतावर, कसेरू इनके कषाय से तथा इन्हीं के कल्क से समभाग फालसा, मुनक्का, गम्भारी के फलों तथा गन्ने के रस को, विदारीगन्ध स्वरस के साथ तथा चार गुना दूध से घी पकावें। यह घृत वातरक्त में हित-कारी है।

जीवनीय घृत—दोनों पंचमूल (लघु तथा वृहत्) श्वेतपुनर्नवा, एरण्डमूल, लाल पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, महामेदा, माषपर्णी, शतावरी, शंखपुष्पी, सौंफ या अधोपुष्पी, रास्ना, अतिबला, बला अलग-अलग दो-दो पल, एक द्रोण जल में पकायें। चौथाई शेष रहने पर १ आढक घी के साथ बराबर भाग दूध आमलों का स्वरस, गन्ने का रस, बकरे के मांसरस को मिलाकर दोनों मेदा, गम्भारीफल, नीलो-फर, वंशलोचन, पिप्पली, मुनक्का, कमल के बीज, पुनर्नवा, सोंठ, क्षीरकाकोली, पद्माख, दोनों कटेली, काकोली, सिंघाड़ा, कमरख, खूबानी, चिलगोजा, खजूर, अखरोट, बादाम, फिन्दक तथा पिस्तों को (सब मिलाकर घी से चौथाई) डालकर इनसे एक आढक घी सिद्ध करके उसमें शीतल होने पर (चौथाई भाग) शहद डाल दें। यह घृत वातरक्त नाशक है।

मुनक्का, मुलहठी (या महुआ) दोनों के क्वाथ से सिद्ध मिश्री युक्त घी पीनें तथा गिलोय के स्वरस में उबाला दूध पीनें।

जीवक ऋषभक दोनों, मेदा, अतिबला, शतावर, मुलहठी, मधुपर्णी (गिलोय या गम्भारी के फल) तथा दोनों काकोली, मुद्गमाषपर्णियां दोनों, दशमूल, श्वेत पुनर्नवा, बला, गिलोय, विदारीकन्द, असगन्ध के साथ पाषाण भेद इनके कषाय और कल्कों से घी-तैल तथा जो प्राप्त हो सके ऐसे जांगल प्रतुद, विष्कर पक्षियों की वसा तथा मज्जा को चार गुने दूध के साथ सिद्ध करें। यह घृत वातरक्त नाशक है।

शालपर्णी, गोखरू, बड़ी कटेली, सारिवा, शतावर, गम्भारी, कौंच के बीज, श्वेतपुनर्नवा, बला, अतिबला, इनके क्वाथ से अलग-अलग घी-तैल को चार गुने दूध के साथ मेदा, शतावर, मुलहठी, जीवक, ऋषभक के कल्क से पकाकर एक मात्रा में तीन गुना दूध और डेढ़-गुनी मिश्री डालकर कौंचि से मथकर पीयें। त्रिदोषज वातरक्त में लाभ करता है।

मीठा तैल, दूध और शक्कर खूब अच्छी तरह मिलाकर पिलावें अथवा घी-तैल मिश्री शहद मिलाकर दूध दें। एक प्रस्थ दूध को चौथाई भाग अंशुमती (शालपर्णी) के साथ दो पल मिश्री मिलाकर पीना प्रशस्त होता है, उसी प्रकार सोंठ, पिप्पली से उबाला हुआ दूध लाभदायक होता है।

खरैटी, शतावर, रास्ना, दशमूल और पीलू इनसे तथा निशोथ, एरण्डमूल, शालपर्णी से सिद्ध दूध वातरक्त की पीड़ा को नष्ट करता है। पित्त और रक्त से आवृत वात वाला रोगी, दोषों को अनुलोमन करने वाला गोमूत्र

युक्त नाराचेण या त्रिशोध चूर्ण डालकर पीवें या बहुत दोषयुक्त व्यक्ति विरेचन के लिए दूध के साथ एरण्डतैल पीवें, उसके पचजाने पर दूध भात का भोजन करें।

वातरक्त में विरेचन—

मनुष्य घी से छौंककर हरड़ का क्वाथ पीयें अथवा दूध के अनुपान से निशोथ चूर्ण द्राक्षास्वरस के साथ पीयें। गम्भारी, निशोथ, मुनक्का, त्रिफला, फालसे सहित क्वाथ कर विरेचन के लिए नमक मिलाकर पीयें। शहद मिलाकर त्रिफला के कषाय को पीयें या कफ के अधिक होने पर आमले, हल्दी, मोथा का क्वाथ पीयें। वायु को मल से आवृत जानकर स्नेहयुक्त योगों से उसको वार-बार विरेचन देवें। मल को भी घी के साथ दूध की वस्तियों से निकालें। क्योंकि वस्ति से बढ़कर वातरक्त की कोई औषधि नहीं है।

वस्तिकर्म में प्रयुक्त तैल—नस्य-अभ्यंग, परिषेकों में दाह तथा शूल की शान्ति के लिए वस्तिकर्म में निम्न तैलों का प्रयोग करें—

मधुयष्ट्यादि तैल—मुलहठी की एक तुला के चौथाई बचे क्वाथ में एक आढक तैल बराबर दूध के साथ एक-एक पल सौंफ, शतावर, मूर्वा, क्षीरविदारी, अगर, चन्दन, शालपर्णी, हंसराज, जटामांसी, दोनों मेदा, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, मुई आमलकी, ऋद्धि, पद्माख, जीवक, ऋषभक, जीवन्ती, दालचीनी, तेजपत्र, नखी, सुगन्धवाला, पुण्डरीक, मजीठ, सारिवा, इ द्रायण की जड़ धनियां या केव्टी मोथा से पकावें। यह तैल वातरक्त के लिए उत्तम है।

सुकुमार तैल—सौ पल मुलहठी, मुनक्का, खजूर, फालसे, महुआ, नीली झिण्टी, मुन्जातक (फिन्दक) एक एक प्रस्थ, गम्भारी के फल १ आढक, चार द्रोण (द्रवद्वैगुण्य से ८ द्रोण) जल में पकावें। आठवां भाग शेष रहने पर छानने पर उसमें एक आढक तैल आमले, गम्भारी, विदारीकन्द, गन्ना इनके बराबर भाग स्वरसों के साथ चार द्रोण या आठ द्रोण दूध से एक-एक पल कदम्ब, आमला, अखरोट, कमलगट्टा, कसेरू, सिंघाड़े, अदरक, सेंधानमक, पिप्पली, मिश्री तथा जीवनीयगण की दस औषधियां इनके कल्क से पकावें। तैलसिद्ध शीतल हो जाने पर एक प्रस्थ शहद मिलावें। यह योग वातरक्त नाशक है।

अमृताद्य तैल—गिलोय, मुलहठी, लघु पंचमूल, पुनर्नवा, रास्ना, एरन्डमूल, जीवनीय द्रव्य जो मिल सकें प्रत्येक १००-१०० पल, बला ५०० पल, बेर, बेल, जौ, उड़द, कुलथी १-१ आढक सूखे गम्भारी के फल १ द्रोण धोकर तथा कूटकर जल १०० द्रोण (द्रव द्वैगुण्य २०० द्रोण) में पकावें। ७ द्रोण शेष रखें। ३-३ पल चन्दन, खस, केशर, तेजपत्र, एला, अगर, कूठ, तगर, मुलहठी को तथा ८ पल मजीठ को पीसकर इनके कल्क के साथ १ द्रोण तैल ५ गुणा दूध देकर पकावें। सिद्ध हुआ यह तैल वातरक्त में लाभप्रद है।

महापद्म तैल—कमल, वेतस, मुलहठी, कालीजीरी, पद्माख, नीलोफर, दाभ, बला, चन्दन, टेसू के फूल अलग-अलग ५-५ पल, जल में उबालकर १ प्रस्थ सौवीरक (४ प्रस्थ) लोध्र, कालीयक, खस, जीवक, ऋषभक, नागकेशर, नव मल्लिका, लता कस्तूरी, तेजपत्र, कमल केशर, पद्माख, पुण्डरीक, गम्भारी, जटामांसी, मेदा, प्रियंगु, केशर कश्मीरी प्रत्येक आधा पल, मजीठ १ पल डालकर पका लें। यह तैल वातरक्त नाशक है।

खुड्डाक पद्मक तैल—पद्माख, खस, मुलहठी, हल्दी इनके क्वाथ से राल, मजीठ, क्षीर विदारी, काकोली, चन्दन इनके कल्कों को डालकर साधित तैल वातरक्त के दाह को नष्ट करता है।

यष्टि मधुक तैल—१०० पल मुलहठी से १० गुना दूध उसमें ४ द्रोण तैल और मुलहठी का पिसा हुआ कपड़छन चूर्ण १ पल से सिद्ध करना चाहिए। मुलहठी और गम्भारी के स्वरस से तेल सिद्ध करना चाहिए। यह भी वातरक्त नाशक है।

शतपाक मधुपर्णी तैल—मुलहठी का १ पल पीसकर १ प्रस्थ तैल चौगुने दूध में सिद्ध करें। उसी प्रकार १०० बार करके अर्थात् एक बार सिद्ध १ प्रस्थ तेल में पुनः १ पल मुलहठी और ४ गुणा दूध डालकर पुनः सिद्ध करें। इस प्रकार १०० बार करते जावें। यह तैल वातरक्त नाशक है।

बला तैल—खरैंटी के क्वाथ और कल्क दोनों से समभाग दूध मिलाकर इस प्रकार १०० बार या १०००

बार सिद्ध किया गया तैल वातरक्त तथा रक्त के दोषों का नाशक होता है।

गिलोय के रस और दुग्ध दोनों से अथवा अंगूर के स्वरस के साथ अथवा मुलहठी और गम्भारी के रस से सिद्ध तैल वातरक्त नाशक होता है।

कांजी १ आढक (द्रव द्विगुण्य से २ आढक) में १ प्रस्थ तैल चौथाई राल को उबालकर फिर जल में खूब मथकर रखें। यह वातरक्त में बेचैनी को दूर करता है।

पिण्ड तैल—मोम के साथ मजीठ, राल के साथ सारिवा को लेकर उनसे सिद्ध किया गया पिण्ड तैल बनता है। यह वातरक्त के शूल का नाश करता है।

दशमूल से उबाला हुआ दूध वातरक्त में उत्पन्न शूल को हरता है। चारों प्रकार के स्नेहों—घृत, तैल, वसा, मज्जा को मधुर द्रव्यों से सिद्ध करके स्तम्भ, शूल से पीड़ित को गर्म करके शीतल रूप में परिषेक करें। मुनक्का, गन्ने का रस, मद्य, दही का पानी, खट्टी कांजी को तथा तण्डुलोदक शहद तथा शर्करोदक परिषेक के लिये प्रशस्त है। चन्दन के साथ कुमोदनी, नीलोफर, श्वेत कमल आदि से मणियों से शीतल जल से दाह में प्रोक्षण तथा स्पर्श करना हितकर है। चन्द्रमा की किरण, बर्फ जल से सिञ्चित, रेशमी वस्त्र तथा कमल के पत्तों में शीतल वायु के झोकों में पुलिन शयन चन्दन से गीले स्तन और हाथ वाली प्रिय बोलने वाली नारियों के शीतल सुखदायक स्पर्श दाह, रुजा और क्लान्ति को नष्ट करते हैं। लालिमा-युक्त, शूलयुक्त, वातरक्त के दाह में रक्त का मोक्षण कर मुलहठी, पीपल के पेड़ की छाल, दुर्वा, कमल अथवा जौ के आटे से मुलहठी, दूध और घी इनसे अथवा जीवनीय द्रव्यों के घी के साथ पीसे हुए लेप से अरति और दाह नष्ट हो जाती है।

तिलादि लेप—तिल, चिरौंजी, मुलहठी, कमलनाल, कमल का कन्द तथा वेतस को बकरी के दूध से पीसकर लेप करना दाह और लालिमा युक्त वातरक्त को नष्ट करता है।

प्रपौण्डरीकादि लेप—पुण्डरीक, मजीठ, दारुहल्दी, मुलहठी, चन्दन, मिश्री, एरका नामक घास, सत्तू, मसूर, खस, पद्माख इनसे लेप करना पित्त प्रधान वातरक्त में लाभदायक है।

वात प्रधान वातरक्त में—वात नाशक द्रव्यों से साधित दूध, मूंग से बनी स्निग्ध खीरों से अथवा कूटकर पिण्डित किये तैल तिल, सरसों के पिण्डों से किया गया उपनाह शूल नाशक होता है। झिण्टी (पियावांसे) की जड़, जीवन्ती, बकरी का दूध पीसकर लेप करना या उसी प्रकार तिलों को भूनकर फिर दूध में बुझाकर लेप करना वातरक्त में हितकर है। दूध में पिसी अलसी का तथा एरण्ड के बीजों का लेप अथवा सौंफ का लेप भी लाभप्रद है।

जड़, कोमल, शाख और एरंड के साथ आनूप देश के पशु-पक्षियों का घी, तैल, वसा तथा मज्जा २-२ प्रस्थ-अलग-अलग को जीवनीय १० द्रव्य, गो दूध, बकरी का दूध, हल्दी, नीलोफर, कूठ, इलायची, सौंफ, कनेर के पत्तों और अर्जुन के फूल को अलग-अलग १ पल की मात्रा में लेकर कल्क करके उक्त स्नेहों को सिद्ध करें। फिर गर्म में ही ८ पल मोम डालकर उतार लें। यह लेप बहने वाले वातरक्त में लाभ करता है।

पद्मकादि घृत—पद्माख, दालचीनी, मुलहठी के साथ और सारिवा इनसे मधु युक्त के साथ विधान सहित सिद्ध घृत कफ प्रधान वातरक्त में परिषेक तथा अभ्यंग में प्रयुक्त किया जाता है। कफ प्रधान वातरक्त में यवक्षार, तैल, गोमूत्र तथा कटुक द्रव्यों से उबाला गया घृत परिषेक में अधिक उपयुक्त होता है।

सरसों, नीम, मदार, हींस, यवक्षार, तिलों से कैथ, दालचीनी क्षीरों से सत्तुओं से सिद्ध घी का लेप श्रेष्ठ है। वात कफ प्रधान वातरक्त में घर का धुंआ, वचा, कूठ, सोया, हल्दी, दारुहल्दी इनका प्रलेप शूलनाशक है। अम्ल द्रव्यों से पीसे गये तगर, दालचीनी, सोया, इला-यची, कूठ, मोथा, रेणुका, देवदारु तथा व्याघ्रनख परिषेक उत्तम है। कांजी से पीसे गये मीठे सहजने के बीज लेप करना हितकर होता है।

त्रिफलादिक कल्क—हरड़, बहेड़ा, आमला समभाग सोंठ, मिर्च, पीपल, तेजपत्र, इलायची, दालचीनी, वंशलो-चन, चित्रक, वच, ऋद्धि, मुई आमलकी, पथ्य पीसलें। उसे लोहे के पात्र में सवेरे के समय लीपकर दोपहर को

भक्षण करें। साथ में दही, सिरका आदि खट्टे पदार्थ क्षार तथा विरुद्ध भोजनादि छोड़ दें। सब दोषों से भी युक्त वातरक्त में शूल से दुःखी में यह योग परम हितकर है।

लाल्याद्य लौह—शुद्ध कलिहारी की जड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, दाख, गूगल समभाग लेवें तथा सर्वसम लोहभस्म लेवें। सबको एकत्र बिजौरा नीबू के रस से घोटें तथा त्रिफले के काढ़े में घोटें। फिर जंगली बेर के समान गोलियां बना लेवें। इसको शहद के साथ खाने से घुटनों तक फट गया हो या सब शरीर फट गया हो साध्य हो या असाध्य हो, सब प्रकार के वातरक्त नाश हो जाते हैं।

वातरक्तान्तक रस—गंधक, पारा, लोहभस्म, मैनसिल, हरताल, मोथा, शिलाजीत, गूगल प्रत्येक १ भाग ले यथावत् चूर्णकर मिलावें। फिर श्वेत अपराजिता, दारूहल्दी, सोमराजी, चीता, पुनर्नवा, देवदारू, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडङ्ग प्रत्येक का चूर्ण भी १-१ भाग लेकर उसमें मिलावें। फिर त्रिफला का काढ़ा और भृंगराज का रस इनसे २-३ भावनायें देवें और चने समान वटिका बना लेवें। नीम का पत्र, फूल और छाल समभाग लेकर चूर्ण करें। आधा तोला यह चूर्ण और घी के साथ वटी प्रतिदिन प्रयोग करें। इससे साध्यासाध्य सब प्रकार के वात रक्त का नाश होता है।

ताल भस्म-शुद्ध हरताल १पल तथा विष १कर्ष एकत्र सफेद अङ्कोल का रस देकर खरल करें और टिकिया बना लेवें। फिर एक हांडी में २ पल ढाक की राख रखकर उस टिकिया को रख दें और उसके ऊपर ३ पल चिरचिरे का राख देकर अच्छी तरह दाब दें, फिर हांडी का मुंह पारी से ढक कर कपड़मिट्टी से सन्धि लीप देवें। फिर चूल्हे पर रखकर एक दिन रात तक पाक करें। शीतल होने पर शुद्ध कपूर जैसी हरताल भस्म निकाल लेवें।

मात्रा—३ रत्ती भस्म अनुपान विशेष के साथ खाने से वातरक्त को नाश करता है।

महातालेश्वर रस—पूर्वोक्त विधि से बना हरताल भस्म १ भाग, गन्धक १ भाग तथा ताम्र भस्म २ भाग, एकत्र घोटकर बालुका यन्त्र में पाक करें। यह परम दुर्लभ महातालेश्वर रस है। यह वातरक्त को नाश करता है।

विश्वेश्वरी रस-पारा १० भाग, विष ५ भाग, गन्धक १० भाग, तूतिया १० भाग, ढाक के बीज ५ भाग, छोटी कटेरी, कन्नेर, धतूरा, नील, हुत्ताजोड़ी प्रत्येक की जड़ की छाल का चूर्ण १० भाग, जटामांसी और तज, कुचला तथा भिलावे भी १०-१० भाग, एकत्र पीसकर रक्खें। फिर पूजा तथा बलि आदि करने वाले वैद्य रोगी को बलानुसार दो या तीन रत्ती खाने को देवें। इससे वातरक्त नाश होता है।

दूष्य चिकित्सा—अत्यन्त वात से रूक्ष और मलीन अङ्ग होने से पहिले और मार्ग को रोक लेने के पहले ही दूषित रुधिर को थोड़ा-थोड़ा कई बार में निकाल डालें, अत्यन्त निकालने से वात भय रहता है, प्रतिसंसृष्ट भक्त मनुष्य को वमन, विरेचन, अनुवासन आदि उपचारों द्वारा शुद्ध करें। यदि प्रबल हो तो पुराना घी पिलावें अथवा बकरी के दूध में आधा तैल मिलाकर पिलावें अथवा मुलहठी और बहेड़ा डालकर सिद्ध किया हुआ दूध पिलावें अथवा शहद, मिश्री सोंठ, सिंघाड़ा और कसेरू डालकर पिलावें अथवा निसोत, रास्ना, मूसली, पृश्णपर्णी, पीलू, सतावर, गोखरू और द्विपंचमूल से सिद्ध किया हुआ घृत पिलावें।

दोनों पंचमूल का काढा कर लें। जब चौथाई रहजाय तब उसमें अठगुना दूध डालकर पका लेवें। फिर मुलहठी, मेढासिंगी, गोखरू, सरला, देवदारु, बच और रास्ना इनको डालकर तेल पका लेवें। इस तेल को उक्त दूध के साथ पान करें। सतावर, ओंगा, मुलहठी, क्षीरविदारी, खरेंटी, अतिबला और तृणपंचमूल इनसे सिद्ध किया हुआ तैल देवें। काकोल्यादिगण से सिद्ध किया हुआ तेल देवें। यह वातरक्त को नाश करता है।

जौं, मुलहठी, एरण्ड, तिल और बिसखपरा आदि से सिद्ध किये हुए जल से प्रदेह करें।

पंचपायस—जौ, गेहूं, तिल, मूंग, उड़द इनको अलग अलग महीन पीसकर काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, खरेंटी, अतिबला, कमल नाल, पृश्णपर्णी, मेढासिंगी, चिरौंजी, मिश्री, कसेरू, रास्ना और बच इनके कल्क में मिलाकर घी, तेल, चर्बी, मज्जा दूध, इनमें सिद्ध कर उपनाह के लिए देवें। वातरक्त के लिए उत्तम है।

तिल, अलसी अड़ी आदि चिकने फलों के गूदे की उत्कारिका देवें। पिसे हुए जौ, गेहूँ, तिल, मूंग, उड़द में विचित्र नामक मछली का मांस का वेशवार बनाकर देवें। पकी हुई बेलगिरी तगर देवदारू निशोथ रास्ना, रेणुका, कूठ, सोंफ, मदिरा, दही, दही का पानी, इनसे सिद्ध किया हुआ उपनाह देवें, बिजौरा, अम्ल, सैंधा नमक और घृत इनसे मिलाया हुआ सहजने की जड़ का लेप करावें अथवा तिल के कल्क का लेप करावें। ये प्रबल वातयुक्त वातरक्त की चिकित्सा है।

पित्ताधिक्य वातरक्त में दाख, अमलतास, कायफल, अर्क पुष्पी अथवा क्षीर विदारी, मुलहठी, चन्दन, खंभारी, इन सबके क्वाथ में मिश्री और शहद डालकर पीयें। सतावर, मुलहठी, परवल, त्रिफला, कुटकी इनके क्वाथ को अथवा गिलोय के क्वाथ को मिश्री और शहद डालकर प्रयोग करें।

कमलनाल, सफेद चन्दन, पद्माख इनके क्वाथ में दूध डालकर परिषेक करावें। दूध, ईख का रस, शहद, मिश्री, चावलों का जल इनके क्वाथ में अथवा दाख और ईख के क्वाथ से मिले हुए दही का तोड़, शहद, धान्याम्ल और जीवनीयगण में सिद्ध किए घी से अभ्यंग करें।

सौबार धुले हुए घी से अथवा काकोल्यादि के क्वाथ के साथ पके हुए घी से मर्दन करावें। साली चावल, नल, बेत, तालीस पत्र, सिंघाड़ा, यवबीज, हल्दी, गेरू, शैवाल, पद्माख इत्यादि को कांजी के साथ पीसकर घी मिलाकर प्रदेह करें। वाताधिक्य वातरक्त में भी यह प्रदेह कुछ गर्म करके करना चाहिए। रक्त प्रबल में बार-बार फस्त खोलकर रुधिर निकाल देवें और बहुत ही ठंडे प्रदेह करना उचित है। कफाधिक्य वातरक्त में आंवले और हल्दी के क्वाथ में शहद डालकर पिलावें अथवा त्रिफला का क्वाथ पिलावें। मुलहठी, अदरख, बेर, हरड़ और कुटकी का शहद और गोमूत्र गुड़ में हरड़ मिलाकर दें। तेल, गोमूत्र, क्षारोदक, मदिरा शुद्ध आदि कफनाशक औषधियों का परिषेक करावें अथवा उष्ण आरग्वधादि के क्वाथ से परिषेक करें। दही का तोड़, गोमूत्र, मदिरा, शुक्त, मुलहठी सारिवा, पद्माख इन सबसे सिद्ध किए हुये घी का अभ्यङ्ग करावें। तिल, सरसों, अलसी, जौ इनके आटे में लिसोढा कैथ, मीठा सहजना इन सबको खार और गोमूत्र में पीस कर प्रदेह करें।

सफेद सरसों का कल्क, तिल और असगन्ध की पिण्ठी चिरोंजी, लिसोड़ा और कैथ की छाल का कल्क, मधु सहजना और सांठ का कल्क, त्रिकुटा, कुटकी, पृष्ठपर्णी और कटेरी ये पांचों प्रदेह क्षारोदक में पीसकर कुछ गर्म करके लगाये जाते हैं। शालपर्णी, पृष्ठपर्णी दोनों कटेरी यवशुक्त मिलाकर दूध में पीस कर देवें, दो अथवा तीन दोष के मिलने पर मिली हुई चिकित्सा करें।

पिप्पलीवर्द्ध मानक—सब दोषों में गुड़ और हरड़ का सेवन करें अथवा दूध या पानी में पीसकर ५ या १० पीपलों को बढ़ाते हुये पीवें। जैसे पहले दिन पांच दूसरे दिन दस, इस तरह बढ़ाते रहें। दस दिन तक दूध और भात के पथ्य से रहें, दस दिन पीछे उसी रीति से घटाते जावें जब तक प्रथम दिन की गिनती अर्थात् पांच न आ जावें। यह योग वातरक्त को दूर करता है।

मांसपर्णी, सहदेई, चन्दन, मरोड़फली, चिरोंजी, शतावर, कसेरू, पद्माख, मुलहठी, सौंफ और कूठ इन सबको दूध में पीसकर घृतमण्ड अर्थात घी की ऊपर की स्वच्छ मलाई सी में मिलाकर लगावें।

सैरेयक, अडूसा, खरैंटी, अतिबला जीवन्ती, कालाजीरा, इन सबका कल्क बनाकर बकरी के दूध में मिलाकर लगावें। खम्भारी मुलहठी और जौ का कल्क अथवा शहद मजीठ, राल, सारिवा इनको दूध में सिद्ध करें। फिर इनके पिण्ड तैल का मर्दन करें।

सब प्रकार के वातरक्त रोगों में पुराने घी को आंवले के रस में पकाकर पान करने के लिए दें। जीवनीयगणोक्त से घी को पकाकर परिषेक करावें। काकोल्यादि के क्वाथ में सिद्ध अथवा काकोंजी के क्वाथ में सिद्ध अथवा करेले के क्वाथ में सिद्ध करके घी लगावें। परिषेक अवगाह, वस्तिकर्म और भोजन में खरैंटी का तैल देवें और पुराने शालि चावल, साठी चावल, जौ, गेहूँ को दूध, जांगल जीवों के मांस रस अथवा मूङ्ग के यूष के साथ खावें। फस्त खोलकर रुधिर निकाल देना हितकर है और दोषों की अधिकता में वमन, विरेचन, आस्थापन और अनुवासन कर्म करना अत्यन्त हितकारी है। उपनाह, परि-

वेक, प्रदेह, अभ्यंग, निर्वात घर, अनेक प्रसार के हर्षोत्पादक पदार्थ, कोमल विस्तर और तकिया सुखदाई शय्या और धीरे-धीरे हाथ पावों का दावना ये सब वातरक्त रोगों में हितकारी है। व्यायाम, मैथुन, क्रोध, उष्ण, खट्टे और नमकीन पदार्थों का भोजन, दिन में सोना, अभिष्यन्दि और भारी अन्न का सेवन ये अहितकारी हैं।

प्रथम ही सिर की शुद्धि के लिए चिकनाई से मर्दन किए हुए और पसीना दिये हुए को तीक्ष्ण अवपीडन करावें। तदनन्तर विदारीगन्धादि का क्वाथ, दूध और दही से पका हुआ निर्मल घी पिलावें और ऐसा भी उपाय कर दें जिससे वायु बहुत फैलने न पावे। फिर देवदारु आदि गणोक्त वातनाशक औषधियां प्रयोग करावें। जौ, वेर, कुलत्थी, आनूप और औदक पशुओं का मांस इन पांचों को इकट्ठा करके क्वाथ बना लेवें। फिर इसको कषाय, अम्ल और दूध के साथ मिलाकर घी, तेल, वसा, मज्जा इनके साथ पका लेवें। फिर इसमें काकोल्यादि गणोक्त मधुर द्रव्यों को डाल दें। इस घी को त्रैवृत घृत कहते हैं। यह भी वातरक्त नाशक है।

पीपलामूल, श्वेत अरंड, स्फूर्ज, अर्जक (तुलसी भेद) सातला, शंखिनी इन सबके रस से चौथाई तेल लेकर पकावें। इस तेल से परिषेक करावें।

स्निग्ध हुए वातरक्त वाले के दोष के और बल के अनुसार वायु को रक्षित करता हुआ वैद्य वारम्वार थोड़े-थोड़े रक्त को निकाले। शूल रोग चमका दाह इनमें जोंकों से रक्त को निकालें और चिमचिमाहट खाज शूल दोष इनसे अन्वित हुए रक्त को सिंगी और तुम्वी के द्वारा निकालें। देश से अन्य देश में जाने वाले रक्त को पछने करके अथवा शिरामोक्ष करके निकालें। अंग की ग्लानि में रक्त को नहीं निकालें और रूखे वात की अधिकता से संयुक्त रक्त को भी निकलना योग्य नहीं है। गम्भीर शोजा, स्तम्भ, कम्प, स्नायु रोग, शिरा रोग, ग्लानि वात से पैदा अन्य रोग इनको रक्त के क्षय से वायु करता है।

विरेचन के योग्य मनुष्य को प्रथम स्नेहित करके पीछे स्नेह संयुक्त किये विरेचन द्रव्यों से जुलाव देना योग्य है। वायु की अधिकता वाले वातरक्त में पुराने घृत का सेवन करावें।

गोरखमुण्डी, क्षीरकाकोली, खिरनी, जीवक, सरसों ये समान भाग ले इनके कल्क में और दूध में सिद्ध किया घृत वातरक्त को नाश करता है। दाख और मुलहठी के पानी में सिद्ध किए घृत को मिश्री से संयुक्त कर पीवें अथवा गिलोय के स्वरस में पकाये हुए दूध को पीवें। तेल दूध, खांड इनको मिला के सेवन करावें।

खरेंटी, शतावरी, दशमूल, पीलू इनसे और मालविका निशोत, अरंड, शालपर्णी इनसे पकाया दूध वात की पीड़ा को दूर करता है और गाय के थनों से गर्म-गर्म निकला हुआ दूध संयुक्त दूध दोषों को अनुलोमित करता है। पित्त की अधिकता वाले वात-रक्त में शतावरी, कुटकी, परवल, त्रिफला, गिलोय इनके क्वाथ को पीवें और स्वादु तिक्त द्रव्यों से सिद्ध किये दुध को अथवा घृत को पीवें।

बहुत दोषों वाला मनुष्य जुलाव के लिये अरंडी के तेल को दूध के संग पीवें पीछे जीर्ण होने पर दूध के संग चावलों का भोजन करें। हरड़ों के घृत में भूने हुए क्वाथ का पान करावें अथवा निशोथ के चूर्ण को दाख के रस के संग पान करावें और ऊपर से दूध का अनुपान करें। अथवा घृत सहित दूध की वस्तियों से रोगी के मल को निकालें क्योंकि वस्ति कर्म के समान अन्य चिकित्सा नहीं है। विशेष करके गुदा, पशली, जंघा संधि, हड्डी, पेट इनके शूलों में भी वस्ति कर्म हितकर है। कफ की अधिकता वाले वात-रक्त में नागर मोथा, दाख, हल्दी इन के क्वाथ को पीवें। शहद से मिले हुए त्रिफला के क्वाथ को पीवें अथवा सब प्रकार से गिलोय को पीवें।

त्रिफला, सोंठ, मिर्च, पीपल, तेजपात, इलायची, वंशलोचन, चीता, वच, वायविडंग, पीपलामूल, नीले वर्ण का हीराकसीस, करंजुवा का फल, दालचीनी, ऋद्धि, कलहारी, चव्य इनको समभाग ले पीसें, इनके कल्क से लोह के पात्र को लेपित कर मध्याह्न समय में इसको खावें। सब दोषों और शूल से संयुक्त वातरक्त में यह उपयोगी है। क्षीर कोलिस्तां के शाक को भोजन करने वाले मनुष्य को पान किया, कोलिस्तां का क्वाथ भी वातरक्त को दूर करता है। जैसे दया का अभ्यास क्रोध को दूर करता है वैसे ही पंचमूल के रस के संग अथवा

आंवले के रस के साथ गन्धक को सेवन करता हुआ और ब्रह्मचर्य में स्थित मनुष्य वात-रक्त को जीतता है।

२५६ तोले कांजी में चौथाई भाग तेल और राल के रस को पकावें। फिर बहुत से जल में मथित करें। यह दाह को नाशकरता है। इसी तेल में मोम, मजीठ, राल, सारिवा इनके मिलाने से पिण्ड तेल कहाता है। यह मालिश करने से वातरक्त की पीड़ा को नाश करता है। दशमूल में पकाया हुआ दूध तत्काल शूल को हरता है।

दाह में दाख, ईख का रस, मदिरा, दही का पानी, खट्टी कांजी, चावलों का पानी, शहद या खांड का शर्बत ये सब सेक के लिये श्रेष्ठ हैं। प्रिय बोलने वाली और प्रिय रूप और चन्दन से गीले हाथ और चूचियों वाली और स्पर्श में शीतल और सुख रूप स्पर्श वाली स्त्रियां दाह, शूल, ग्लानि को नाशती है। राग और शूल से संयुक्त हुए दाह में रक्त को निकालने के लिये लेप करावें, पौड़ा, मजीठ, दारुहल्दी, मुलहठी, चन्दन, मिश्री, कमल कांदा, ईख, मसूर, नागर मोथा, एरकतृण के बीज के सत्तू से किया लेप शूल, दाह इत्यादि का नाश करता है।

घृत, कुरंटा, जीवन्ती की जड़, बकरी का दूध इनका लेप हितकर है। भुने हुए दूध में प्राप्त किये तिलों को पीसकर लेप करना चाहिये। दूध के संग पिसी हुई अलसी के लेप को अथवा अरंड के फल के लेप को अधिक वात से उत्पन्न शूल में नाश करने के लिये प्रयोग करें। शहद से संयुक्त किया चुक्र सेक में और अभ्यंग में हितकारी है। कफ की अधिकता वाले वातरक्त में, घर का धुआं, वच, कूठ, शोफ, हल्दी, दारुहल्दी इनका लेप शूल को हरता है। वात-कफ की अधिकता वाले रक्त में मुलहठी और सहजने के बीजों को कांजी से संयुक्त कर लेप करें, पीछे २ घड़ी तक लेपित किये हुए मनुष्य को कांजी आदि से सेचित करें।

उत्तान संज्ञक वातरक्त को लेप अभ्यंग स्नान परिषेक करके चिकित्सा करें और गम्भीर रूप वातरक्त को जुलाब और आस्थापन वस्ति करके उपचार करें। वातकफ की अधिकता वाले उत्तान रूप वातरक्त में कुछ गर्म किये लेप आदि हितकारी हैं। पित्तरक्त की अधिकता वाले वातरक्त में शीतल रूप लेप आदि हितकारी हैं।

मुलहठी ४०० तोले ले चतुर्थांश शेष रहे ऐसा क्वाथ बनालें फिर २५६ तोले तेल, २५६ तोले दूध और ४-४ तोले वक्ष्यमाण, औषधों के कल्क, इन्हीं को मिला के पकावें। शालपर्णी, मुशली दूब, दूधी, शतावरी, चन्दन,

अगर, त्रिपादि, बालछड़, मेदा, महामेदा, मुलहठी, कांकोली, क्षीरकाकोली, सौंफ, ऋद्धि, पद्माख जीवन्ती, ऋषभक, दालचीनी, तेजपात नली नेत्रबाला, कमल, मजीठ, अनन्तमूल, इन्द्रायण, परिपलेव इनसे पकावें। चार प्रयोगों वाला यह तैल वातरक्त पित्तदाह का नाश करता है।

खरैंटी के वल्क और क्वाथों से दूध के समान तैल को पकावें, हजार बार अथवा सौ बार पकाया हुआ यह तेल वातरक्त का नाश करता है।

जिनको शाक सात्म्य है ऐसे वात रोगियों को शिरिआरी, बेत का अग्रभाग, पुनर्नवा, शतावर, बथुआ, पोई और ब्राह्मी, इनका शाक घी में तथा मांस रस में भूनकर सेवन करना चाहिए। घी, तैल, चर्बी और मज्जा इनका पान, अभ्यङ्ग, वस्तिकर्म और सुखोष्ण उपनाह इनसे वातोत्तर वातरक्त की चिकित्सा करनी चाहिए। बकरी के घी में अथवा दूध में गेहूँ के आटे को उबालकर उसका लेप करने से वातरक्त शमन होता है। तिलों को भूनकर पीस लेवें। फिर दूध में पकाकर उसका लेप करें अथवा अलसी को दूध में पीसकर उसका लेप करें। सौंफ, काशनी, मुलहठी, खरैंटी, चिरौंजी, कसेरू, विदारीकंद

और एरण्ड इनको घी में पीसकर लेप करने से वातरक्त शमन होता है। रास्ना, गिलोय, दो प्रकार की खरैंटी, जीवक, ऋषभक, दूध और घी इनको एकत्र पकावें और उसमें मोम मिलाकर उसका गाढ़ा लेप करने से वातरक्त की पीड़ा शमन होती है। अडूसा, गिलोय और अमलतास इनका क्वाथ बनाकर उसमें अण्डी का तेल डालकर पीने से सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न हुआ वातरक्त का विकार अनुक्रम से सर्व प्रकार से नष्ट हो जाता है। वाताधिक्य वातरक्त में दशमूल से पकाया हुआ दूध को पान करे और सुहाते-सुहाते गर्म घी का सेवन करें। इससे तत्काल शूल शमन होता है। कडवे परवल, कुटकी, शतावर, त्रिफला और गिलोय इनका क्वाथ बनाकर पीने से दाह युक्त वातरक्त शमन हो जाता है। निसोत, विदारीकंद और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर पान करने से वातरक्त का नाश होता है।

गिलोय कफ और वायु को हरने वाली है। कफ और मेद को सुखाने वाली है। वातरक्त को शमन करने वाली है। इसलिए गिलोय के स्वरस को, कल्क को, चूर्ण को अथवा क्वाथ को बहुत दिनों तक सेवन करें तो वातरक्त से मुक्त हो जाता है। गिलोय, सौंठ और धनियाँ प्रत्येक १ तोला इनका क्वाथ बनाकर पिलाने से वातरक्त नष्ट होता है। गूगल में गिलोय का क्वाथ बनाकर पीने से वातरक्त का नाश होता है। तीन अथवा पांच हरड़ों का चूर्ण बनाकर गुड़ में मिलाकर खायें और उसके ऊपर गिलोय का क्वाथ पियें तो घुटनों तक भेदा हुआ और स्रवता हुआ भयङ्कर वातरक्त अवश्य नष्ट हो जाता है। गूगल और गिलोय इनको दाख और बिजौरा नीबू के रस में अथवा त्रिफले के रस में बेर के बराबर गोली बनाकर उनको शहद में मिलाकर चाटने से महा घोर और सम्पूर्ण अङ्गों को तोड़ने वाला पादस्फोट रोग और वातरक्त तत्काल नष्ट हो जाता है।

अडूसा, पंचमूल, गिलोय, एरंड और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर इसमें अण्डी का तैल, हींग का चूर्ण और सेंधे नमक का चूर्ण डालकर पीने से वातरक्त नष्ट होता है। एरण्ड, अडूसा, गोखरू, गिलोय, खरैंटी इनकी जड़ का क्वाथ बनाकर पीने से बहुत दिनों का घुटनों तक पहुंचा हुआ, फटा हुआ और ऊपर को चलता हुआ उग्र वातरक्त तत्काल नष्ट हो जाता है। बर्द्धमान पिप्पली को सेवन करने से अथवा हरड़ के चूर्ण को गुड़ में मिलाकर सेवन करने से वातरक्त शांत होता है। तालमखाना तथा गिलोय इनका क्वाथ बनाकर उसमें पीपल का चूर्ण डालकर पीने से २१ दिन में वातरक्त नष्ट हो जाता है। मुलहठी, मुलहठी से दुगुना तैल और तैल से दुगुना बकरी का दूध इन सबको मिलाकर अग्नि के बलानुसार पियें तो वातरक्त नष्ट हो जाता है।

हरड़, बहेड़ा, आमला, नीम, मजीठ, वच, कुटकी, गिलोय और दारुहल्दी यह प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर उसका क्वाथ बनाकर पीवें तो वातरक्त नष्ट हो जाता है। इसको "नवकार्षिक क्वाथ" कहते हैं।

वातरक्त में विरेचन, घी तथा दुग्धपान सेवन और पंचकारी लगाना हितकारी है। रुधिर की अधिकता हो तो दूध, घी, मुलहठी का पानी और खस का पानी इनसे अथवा भेड़ के दूध से क्षण-क्षण भर सेवन करें। १०० बार अथवा १००० बार घृत को धोकर उस घी से अथवा घी और राल इनको मिलाकर लेप करने से रुधिर की अधिकता वाला वातरक्त नष्ट हो जाता है। पित्त की अधिकता में वातरक्त हो तो उसको भी शीतल पदार्थों से सेचन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त पित्त की अधिकता में कुम्भेर के फल, दाख, अमलतास, लाल चन्दन, मुलैठी और क्षीर काकोली इनका क्वाथ बनाकर उसको अच्छे प्रकार से शीतल करके उसमें खाण्ड तथा शहद डालकर पीयें। लाल, दाह और व्यथायुक्त वातरक्त हो तो रुधिर को निकालकर बाद में तिल, चिरौंजी, मुलहठी, कमल की जड़ और बेंत इनको दूध में पीसकर घी डालकर लेप करें तो दाह की पीड़ा शान्त हो जाती है। मूत्र के साथ धारोष्ण दूध में निसोत का चूर्ण डालकर पीने से पित्ताधिक्य वातरक्त नष्ट होता है। यह दोषों को अनुलोमन करने वाला है। कडवे परवल, सतावर, गिलोय और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर उसमें खाण्ड तथा शहद डालकर पीने से पित्ताधिक्य वातरक्त शमन हो जाता है।

अधिक दोष वाले व्यक्ति को रेचन (जुलाब) के लिये दूध के साथ अण्डी का तैल पीयें और जीर्ण होने पर दूध

भात का भोजन करें।

वातरक्त में कफ की अधिकता हो तो कड़वी औषधियों के द्वारा पकाये हुए घृत को पियें, बार-बार विरेचन लेवें। मृदु रीति से कुछ वमन करें स्नेहपान करें, लंघन करें और सुहाते-सुहाते गर्म पदार्थों से सेचन करें। तैल, मूत्र, मद्य और शुक्त का पानी इनका सेवन करना हितकारी है। सफेद सरसों का कल्क बनाकर उसका उत्तम रीति से गाढ़ा लेप करने से भी पीड़ा शान्त हो जाती है। पीली सरसों का कल्क करके किया हुआ लेप पीड़ा को नष्ट करता है। सहजना और वरना इनको धान्याम्ल नामक कांजी में पीसकर लेप करने से वातरक्त की पीड़ा शमन हो जाती है। असगन्ध और तिल इनका कल्क बना कर लेप करने से कफाधिक्य वातरक्त नष्ट हो जाता है। सरसों, नीम, आक, बालछड़, जवाखार और तिल इनका लेप करने से तथा सत्तू, घी, जवाखार और कैथ की छाल इनको पीसकर लेप करने से कफाधिक्य वातरक्त शमन होता है। मसूर की दाल, सहंजने के बीज इनको धान्याम्ल नामक कांजी के साथ पीसकर इसका दो घड़ी तक लेप करें फिर खट्टे पदार्थ से सेचन करें तो वायु की तथा कफ की अधिकता वाला वातरक्त शमन होता है। नागरमोथा, आंवला और हल्दी इनका क्वाथ बनाकर शहद डालकर नित्य पीने का अभ्यास करें तो केवल वातरक्त शमन होता है।

हल्दी तथा गिलोय का क्वाथ शहद डालकर पीने से कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होता है। तक्र के साथ अथवा जल के साथ हरड़ का चूर्ण सेवन किया जावें तो कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होता है। घर का धुंआं वच, कूठ, सोया हल्दी और दारुहल्दी इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करने से वाताधिक्य और कफाधिक्य वातरक्त का शूल नष्ट हो जाता है। गिलोय, कुटकी, मुलहठी और सोंठ इनका कल्क बनाकर शहद मिलाकर गो मूत्र के साथ पीने से कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होता है। आंवला, हल्दी और नागरमोथा का क्वाथ पीना परम हितकारी है।

लांगली गुटिका—कलिहारी का कंद यत्न पूर्वक लाकर और कंद की बराबर गिलोय लेवें तथा हरड़, बहेड़ा, आंवला, लोह चूर्ण, सोंठ, मिर्च, पीपल यह समान भाग मिला देवें फिर गूगल अथवा दाख के अंकुरों के रस से अथवा त्रिफला के रस से बेर के समान गोली बनावें। इन गोलियों को शहद में मिलाकर खावें तो प्रबल वातरक्त नष्ट होता है।

बलाघृत—खरैंटी, कंघी, मेदा, कोछ, सतावर, काकोली, क्षीर काकोली, रास्ना और दाख इनका कल्क डालकर चौगुने दूध में घृत को सिद्ध करें। यह घृत वातरक्त को दूर करता है।

अपरपिंड तेल—खरैंटी, पृश्निपर्णी, गंगेरन, गिलोय और शतावर इनके कल्क और क्वाथ से तैल को सिद्ध करें। इस तेल की पिचकारी लगावें तो प्रबल वातरक्त नष्ट होता है।

पारूषक घृत—त्रायमाण, आंवले, कांकोली, शतावर और कसेरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें दोनों प्रकार के फालसे, दाख, कुम्भेर के फल तथा देवदारु इनका कल्क डालकर विदारी कन्द के स्वरस से घृत को चौगुने दूध में पकावें तो पारूषक घृत सिद्ध होता है। इस घृत का उपयोग करने से वातरक्त नष्ट होता है।

अन्य घृत—सतावर का कल्क डालकर सतावर के चौगुने स्वरस में दूध के बराबर घी डालकर पकावें तो **शतावरी घृत** सिद्ध होता है। इस घृत का उपयोग करने से वातरक्त नष्ट होता है। गोरखमुण्डी, क्षीरकाकोली, वंशलोचन और जीवक यह सब औषधि समान भाग लेकर कल्क बनाकर उस कल्क को डालकर चौगुने दूध को सिद्ध करें। इसको **'ऋषभक घृत'** कहते हैं। यह घृत वातरक्त को नष्ट करता है।

गुडूची घृत—गिलोय का क्वाथ और कल्क डालकर चौगुने दूध में घी को पकाकर सेवन करें तो यह घी भी वातरक्त को दूर करता है।

द्वितीय गुडूची घृत—गिलोय का क्वाथ और सोंठ का कल्क डालकर मृदु अग्नि से पकाया हुआ घी वातरक्त को दूर करता है।

तृतीय गुडूची घृत—गिलोय के स्वरस में गिलोय के कल्क से घृत को पकाकर सेवन करें तो अत्यन्त बढ़ा हुआ वातरक्त नष्ट होता है।

चतुर्थ गुडूची घृत—गिलोय ४०० तो० लेकर १०२४

तो० जल मे क्वाथ बनावें, फिर इस क्वाथ में ३२ तो० गिलोय का कल्क डालकर चौगुने दूध में घी पकावें। यह भी वातरक्त को दूर करता है।

पंचम गुडूची घृत—गिलोय, मुलहठी, दाख, त्रिफला सोंठ, खरैटी, अडूसा, अमलतास, सफेद पुनर्नवा, देवदारू, गोखरू, कुटकी, मजीठ, पीपल, कुम्भेर के फल, रास्ना, तालमखाना, एरंड, विधारा, नागरमोथा, नीले कमल इन सबको समभाग लेकर कल्क बनावें, फिर कल्क में ६४तो० आवलों का रस मिलावें, पानी १९२ तो०, घी ६४ तो० को पकावे, उत्तम रीति से सिद्ध करने के पश्चात् भोजन में तथा पीने मे इस घृत का उपयोग करें तो अनेक दोषों से उत्पन्न हुआ वातरक्त, ऊपर को उभरा हुआ और गम्भीर वातरक्त दूर होता है। **यह अश्विनी कुमारों का बनाया हुआ घृत है।**

महागुडूची घृत—४०० तो० गिलोय को १०२४ तो. जल में पकावें। जब पकते-पकते चौथा भाग जल शेष रह जाय तब उस क्वाथ में ६४ तो० घी तथा चौगुना दूध डालकर काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, सतावरि, दारीकन्द, मुलहठी, नीले कमल, असगन्ध की जड़ पृश्निपर्णी, कुटकी, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गोखरू, कटेरी, बड़ी कटेरी, गिलोय, पीपल रास्ना, और अडूसा इन सब पदार्थों को समभाग लेकर कल्क बनाकर उसमें डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पकावें तो **महागुडूची घृत** सिद्ध होता है। यह वातरक्त नाशक होता है।

शताह्वादि तेल—सोये (सोंफ) के क्वाथ से पकाया हुआ तेल वातरक्त की पीड़ा को शमन करता है।

महापिंड तेल—सारिवा, नीम, पेठा, पोई इनके भस्म के जल से, गिलोय के क्वाथ से, गाय के दूध से, कमरख के रस से और काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, मेदा, महामेदा, सोवा, खिरनी, मजीठ, मोम, गिलोय, राल, सेंधा नमक और लाल चन्दन इनके कल्क से पकाया हुआ तेल **महापिंड तेल** कहलाता है। इसके उपयोग करने से घोर वातरक्त नष्ट हो जाता है।

मृणालाद्य मिश्रक—कमल की नाल, नील कमल, कमलकंद, सारिवा, सुगन्धवाला, नागकेशर, लाल चन्दन, चिरायता, कमलगट्टे, कसेरु, परवल, कुटकी, सारिवा (जहां एक पाठ मे एक औषधि दो बार आवे तो दो भाग, या तीन बार आये तो तीन भाग लेनी चाहिये) गोंद, पटेर, पित्तपापड़ा और अडूसा इनका कल्क डालकर तृणपंचमूल के क्वाथ में दुगुने दूध के साथ और घृत को पकावें तो **मृणालाद्य मिश्रक** सिद्ध होता है।

धत्तूराद्य तेल—धत्तूरा, चिरचिटा और मानकंद इनकी भस्म का क्वाथ बनाकर उसमे लौंग, सेंधा नमक और राल का कल्क बनाकर विधिपूर्वक तिल के तेल को इसी कल्क के साथ व्यवहार करें तो विशेष करके वातरक्त को दूर करता है।

नागबला तेल—४०० तो० उत्तम गंगेरन (गुलशकरी) लेकर १०२४ तो० जल में क्वाथ बनावें जब पकते-पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उस क्वाथ को वस्त्र में छान लेवें फिर उस क्वाथ मे तगर और मुलहठी इनका २० तो० कल्क डालकर तथा बकरी का दूध डालकर उसमें २५६ तो० तेल पकावें तो **नागबला तेल** सिद्ध होता है। **यह तेल अश्विनी कुमारों का बताया हुआ है।** इस तेल की पिचकारी लगाने से वृद्धि को प्राप्त हुआ भी वातरक्त ७ दिन में नष्ट हो जाता है। यह तेल पिया जाये तो १० दिन में वातरक्त नष्ट हो जाता है।

जीवकाद्य मिश्रक—जीवक ऋषभक, मेदा, महामेदा, सतावर, मुलहठी, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, दशमूल की दश औषधि, पुनर्नवा, खरैटी, गिलोय, विदारीकंद, असगन्ध और पाषानभेद इनका कल्क और इन्ही के क्वाथ मे चौगुने दूध के साथ जितना मिल सके उतना प्रतुद और विष्कर पक्षियों के मांस, चर्वी तथा मज्जा डालकर घी और तेल को पकावें तो यह जीवकाद्य मिश्रक सिद्ध होता है। यह मिश्रक वातरक्त और सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त भयंकर वात व्याधियों को भी दूर करता है।

पुनर्नवा गुग्गुल—पुनर्नवा की जड़ ४०० तोला, अंडी की जड़ ४०० तोला और सोंठ ६४ तोला इनको उत्तम रीति से कूठ कर १०२४ तोला जल में पकावें। जब पकते-पकते आठवां भाग जल शेष रहजाय तब उस क्वाथ को छान लेवें, फिर इस क्वाथ में ३२ तो० गूगल डालकर

पकावें। पकते समय इसमें १६ तोला अण्डी का तेल, निसोत का चूर्ण २० तोला, जमालगोटे का चूर्ण ४० तोले, गिलोय का चूर्ण १० तोला, हरड़ का चूर्ण ४ तोला, बहेड़े का चूर्ण ४ तोला, आमलों का चूर्ण ४ तोला, सोंठ, का चूर्ण ४ तोला, मिर्च का चूर्ण ४ तोला, पीपल का चूर्ण ४ तोला, चीते का चूर्ण ४ तोला, सेंधानमक का चूर्ण ४ तोला, सोनामाखी का चूर्ण १ तोला और पुनर्नवे का चूर्ण १ तोला डालकर पकावें। जब अच्छे प्रकार पक जाय तब अग्नि से उतार लेवें। शीतल होने पर इसमें से एक तोला भर नित्य खायें। यह गुग्गुल वातरक्त का शमन करता है।

शर्करासम गूगल—जवाखार, देवदारु, सेंधानमक, नागरमोथा, इलायची, वच, अजवायन, सोंठ, मिर्च, पीपल, अजमोद, हल्दी, हरड़, बहेड़ा, आमला, जीरा, कालाजीरा, वायविड़ंग और चीता इनको एकत्र बारीक पीसकर इसमें २० तोला गूगल मिलाकर और २० तोला खांड मिलावें, फिर उस गूगल को गर्म घी में मिलाकर खूब कूट तो यह **"शर्करासम गूगल"** सिद्ध होता है। **यह अश्वनीकुमारों का योग है।** यह वातरक्त में लाभदायक होता है।

अमृतागुग्गुल—गिलोय ६४ तोला, गूगल ३२ तोला, हरड़ ६४ तो., बहेड़ा ६४ तो. और आमले ६४ तो. लेवें इन सबको एकत्र करके अत्यन्त गर्म पानी में इनका क्वाथ बनावें। जब पकते-पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लेवें, फिर उसको अग्नि पर चढ़ाकर पकावें। जब गाढ़ा होने लगे तब जमालगोटा, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आंवला और दालचीनी यह प्रत्येक पदार्थ २-२ तोला लेकर निशोत का चूर्ण १ तोला लेकर मिला देवें। जब यह गूगल अच्छे प्रकार से पककर तैयार हो जाय तब उतार लेवें। मात्रा—नित्य १ तोला। वातरक्त में लाभदायक है।

द्वितीय अमृता गुग्गुलु—गिलोय ३ प्रस्थ, गूगल, हरड़, बहेड़ा, आमला, और पुनर्नवा प्रत्येक १-१ प्रस्थ, इन सब पदार्थों को एकत्र कूटकर अत्यन्त गर्म पानी में पकावें जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेप रह जाय तब उस क्वाथ को छानकर अग्नि पर चढ़ा देवें। जब यह पकते-पकते गाढ़ा होजाय तब उसमें जमाल गोटे की जड़, चीते की जड़, पीपल, सोंठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गिलोय तज और वायबिडंग यह प्रत्येक २-२ तोला और निसोत १ तोला लेवें। सबका एकत्र चूर्ण करके मिला देवें। जब गूगल अच्छे प्रकार से पक जाय तब उतार कर ढाल देवें तो यह अमृतागुग्गुल सिद्ध होता है। वातरक्त के सम्पूर्ण दोषों को नष्ट करता है।

कैशोरक गुग्गुल—उत्तम भैंस के नेत्र तथा उदर की समान ६४ तोला गूगल लेकर पानी में डाल देवें फिर उसमें ६४ तोला हरड़, बहेड़ा आंवला तथा ३२ पल गिलोय यत्नपूर्वक डालकर आग पर चढ़ा देवें। सावधान होकर जब तक आधा न जल जाय तब तक बारबार करछी से चलाते रहें फिर उसको अग्नि से उतारकर वस्त्र में से छानकर पश्चात् लोहे के बर्तन में करके अग्नि पर चढ़ावें, गाढ़े होने पर उतार लें। जब शीतल होजाय तब हरड़-बहेड़ा, आंवला का चूर्ण २-२ तोला, दन्ती (जमालगोटे की जड़) का चूर्ण २ तोला और गिलोय का चूर्ण ४ तोला मिला देवें। इसको यथायोग्य अनुपान, यूष, दूध, सुगन्धित गुलाब केवड़ा आदि के अर्क के साथ देवें। इस पर यथेच्छ आहार विहार करें। यह शरीर को बिगाड़ने वाला वातरक्त रोग को दूर करता है।

त्रिफला गूगल—त्रिफला, अतीस, देवदारु, दारुहल्दी नागरमोथा, फालसे, खैर, विजयसार, हल्दी, गिलोय, अमलतास, चिरायता, नीम, कुटकी, इन्द्रजौ और पटोल-पत्र यह सब समान भाग लेकर आठ गुने जल में पकावें। गिलोय क्वाथ के जल से आधी लेवें। पश्चात् उस जल को उत्तम मिट्टी के बासन में करके एक रात्रि तक सुवासित करें। फिर इसमें बावची मिलाकर वस्त्र में छानकर इसमें गूगल षड्गुण सात दिन तक भावना देवें, फिर शिलाजीत मिलाकर भावना देवें। शुक्तनामक कांजी ३२ तोला, सोनामाखी का चूर्ण ४ तोला, शहद और घी ८ तोला, सबको मिलाकर एक में एक कर देवें। इसको त्रिफले के क्वाथ के साथ अथवा मूंग के यूप के साथ या जांगल जीवों के मांस के रस के साथ मिलाकर खायें। जब जीर्ण होने लगे तब पुराने शालि या सांठी धान और यथारोगानुसार और प्रकृति के अनुसार रस और यूषों को सेवन करे। इससे दारुण वातरक्त नष्ट होता है।

सिंहनाद गूगल—त्रिफले के चूर्ण का क्वाथ १२ तोला, गन्धक ४ तोला, गूगल १२ तोला और अण्डी का तेल २० तोला लेवें, सबको एकत्र करके पाक को जानने वैद्य वाले लोहे के दृढ पात्र में पकावें। यह वातरक्त में लाभ करता है।

गिलोय, अंडी की जड़ और अडूसा इन तीन औषधों का काढ़ा कर उसमें अंडी का तेल मिलाकर पीवें तो सम्पूर्ण अंग में विचरने वाला वातरक्त रोग दूर होता है। मजीठ, हरड़, बहेडा, आंवला, कुटकी, बच, दारूहल्दी, गिलोय और नीम की छाल इन नौ ओषधि का क्वाथ करके पीवें तो वातरक्त दूर होवे। इसको लघुमंजिष्ठादि क्वाथ कहते हैं।

सतोना, अतीस, अमलतास का गूदा, कुटकी, पाढ, नागरमोथा, खस, हरड़ बहेड़ा, आंवला, पित्तपापड़ा, पटोलपत्र, नीम की छाल, मजीठ, पीपल, पद्माख, कचूर, सफेद चन्दन, धमासा, इन्द्रायण की जड़ हल्दी, दारूहल्दी, गिलोय, काली सारिवा, सफेदसारिवा, मूर्वा, अडूसा, शतावर, त्रायमाण,इन्द्रजौ, मुलहठी और चिरायता, ये ३२ औषधि एक-एक कर्ष लेवें, कल्क करें फिर कल्क से चौगुना घी लेकर उसमें कल्क को मिलायें और घी से दुगना आंवलों का रस एवं आठ गुना जल डालकर मन्दाग्नि पर परिपक्व करें। जब घृतमात्र शेष रह जाये तब उतारकर छान लेवें और उत्तम पात्र में भरके रख देवें। इसके सेवन से वातरक्त अवश्य दूर होता है।

मूर्वा, नीलकमल, पद्माख और सिरस का फूल ये चार औषधि सम भाग लेकर चूर्ण करें तथा सौवार धुले हुए घी में इस चूर्ण को मिलाकर लेप करें तो पित्तवातरक्त दूर होता है।

वातरक्त—गाउट

परिचय—

सन्धियों में सूजन और दर्द रहता है। इसी को साधारण भाषा में गठिया वात भी कहते हैं। विशेष लक्षण हम दवा के प्रसङ्ग में बतावेंगे।

चिकित्सा—

कौलोफाईलम् ३०, २००—होमियोपैथिक विज्ञान में एक-एक अङ्ग में होने वाले रोगों के लिये पृथक-पृथक दवा होती है। यह नियम अन्य पैथियों में नहीं है। कौलो फाईलम् नामक दवा का अधिकार भी एक खास जगह पर होता है। आप प्रश्न करेंगे कि ऐसा क्यों होता है, इसका कारण क्या है। इसके उत्तर में हमारा यह कहना होगा कि जब स्वस्थ व्यक्ति पर इसका परीक्षण किया गया था तो यह एक विशेष अंग को ही अपना क्रिया लक्ष्य बनाया था। हाथ और पैर की अंगुलियों की सन्धियों पर ही गठिया का आक्रमण होता है, वहां सूजन और दर्द रहता है। कौलोफाईलम की रोगिणी को वात के साथ ही रजःस्राव सम्बन्धी गड़बड़ी अवश्य मिलेगी। रजस्राव की गड़बड़ी के साथ ही यदि हाथ या पैर की अंगुलियों की गांठों में या अंगूठे में अथवा कलाई में वात का दर्द हो तो इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार की और भी दवा हैं जिनमें अंगूठे और कलाई की सन्धियों पर वात का आक्रमण होता है अतः संक्षेप में हम उनको भी लिख रहे हैं।

वायोला आडोरेटा में—कलाई में वात का लक्षण है पर वह खास करके दाहिने हाथ की कलाई में होता है। अंगूठे पर नहीं होता है। रूटा और स्टिक्टा में दोनों हाथों की कलाई और दोनों पैर की ऐड़ी पर वात का आक्रमण होता है। इसके सभी रोग लक्षण सर्दी और बरसात में बढ़ते हैं।

एब्रोटेनम् ३०, २००, १०००—एब्रोटेनम नामक दवा को प्रायः सुखंडी रोग में ही प्रयोग करते हैं किन्तु लक्षण सादृश्य होने पर यह वात रोग की बहुत उत्तम औषधी है। कन्धा, हाथ की कलाई, पैरों की एड़ी या शरीर के किसी भी सन्धी में वात का दर्द क्यों न होवे यदि वह पतले दस्त होने पर दर्द बढ़ जावे तो एब्रोटेनम का प्रयोग करना चाहिए। इस दवा में कब्ज और अतिसार के लक्षण पर्याय क्रम से हैं। कब्ज होते ही ज्ञात होता है कि रोगी का शरीर वात में भर जाता है एवं वह दर्द से बेचैन हो जाता है पर यदि पतले दस्त होने

लगते हैं तो वह वात के दर्द में बहुत आराम बोध करता है। ठण्डी हवा से रोग वृद्धि भी याद रखनी चाहिए।

प्रसंगवश यहां एक अति आवश्यक बात मैं छात्रों के लाभार्थ लिख रहा हूं। याद रखिये—जहां बात रोग विसदृश्य चिकित्सा के कारण या बाहरी प्रयोग की तेज दवा के प्रयोग के कारण ठीक हो जाती है (होमियोपैथिक के मतानुसार दब जाती है) तो वह हार्ट पर अपना आक्रमण करती है और उस हार्ट डिजिज (हृदय रोग) के लिये लक्षण सादृश्य होने पर सर्वप्रथम आपको एब्रोटेनम पर ध्यान देना चाहिए। एक कहावत है कि—"वात रोग सन्धियों को चाटता है और हार्ट को काटता है।" इस विषय को छात्रों को समझाने के लिये यहां महामति डा० कैन्ट साहब की चिकित्सा काल का एक उदाहरण देकर समझना उत्तम रहेगा।

उदाहरण—

एक स्त्री को श्वासकष्ट, घबराहट, ठण्डा पसीना, हृत्पिण्ड में दर्द आदि दुर्लक्षण उत्पन्न हो गये थे, उसका मृत्यु काल निकट समझकर उसके रिस्तेदार मित्र उसे घेरे बैठे थे। इसी समय डा० कैन्ट साहब को चिकित्सा के लिये बुलाया गया। डाक्टर साहब ने सभी लक्षण पूछकर भूतकाल का इतिहास पूछा, इसी समय जानने में आया कि कई महीनों पहिले इसे पैर के घुटने में वात का दर्द था, उस समय यह लकड़ी के सहारे घर से बाहर जाती थी। उस दर्द पर एक तेज मरहम की मालिश की गई और वह दर्द आरोग्य हो गया (आरोग्य नहीं, बल्कि उसका वात का दर्द बाहर से भीतर चला गया और हार्ट पर आक्रमण आरम्भ कर दिया) और उसी के बाद से यह बीमारी आरम्भ हो गई। डाक्टर ने पूर्व वात के लक्षणों के अनुसार एब्रोटेनम का प्रयोग किया और वह स्त्री आरोग्य होगई। —कैन्ट मेटेरिया से साभार।

अतः प्रिय छात्रो—मैं बराबर लेखों में लिखता हूं रोगी देखने में जल्द बाजी न करो पूर्व इतिहास की जानकारी खूब करो रोग का सूत्र अवश्य मिलेगा। एक कहावत है "डाक्टर कम बोले, सुने अधिक" खैर हम पुनः मूल विषय पर आते हैं।

आर्टिका यूरेन्स Q—गठिया वात में सन्धियों में यूरेट आफ सोड़ा पैदा हो जाता है। आर्टिका यूरेन्स Q ५ बूंद की मात्रा में पानी के साथ ३-४ घण्टों का अन्तर देकर दिन में ४-५ मात्रा सेवन करने पर पेशाब के साथ यूरिक एसिड निकल कर बीमारी जल्द आरोग्य हो जाती है। दाहिनी बांह में दर्द, हाथ घुमाने पर हाथ में दर्द होता है। दबाकर सोने पर दर्द बढ़ता है।

काल्चिकम ३०, २००, १०००—काल्चिकम का प्रधान लक्षण है भोजन की गन्ध से मिचली या वमन होना। यहां तक कि भोजन को देखने पर या भोजन के विषय में सोचने पर मिचली आने लग जाती है। यह वात रोग की बहुत ही लाभप्रद दवा है।

कलचीकम् में वात का दर्द एक सन्धि से दूसरी सन्धि में घूमता रहता है। दर्द—शाम के समय और हिलने डोलने पर बढ़ जाता है (ब्रायोनिया) रोग वाली जगह लाल सुर्ख हो जाती है। फूल जाती है किन्तु यह सूजन पकती नहीं है और नहीं इसमें पस होता है। इस दवा का बाहरी प्रयोग भी होता है।

नोट—प्रायः देखा जाता है कि वात (आर्थ्राइटिस) के रोगियों को रोग भोगते-भोगते हार्ट पर रोग का आक्रमण हो जाता है। आर्थ्राइटिस के रोगी में हार्ट का विकार कुछ न कुछ अवश्य मिलेगा। इस प्रकार के क्षेत्र के लिये होमियोपैथिक में अनेकों दवा हैं जैसे कि एब्रोटेनम, काल्चिकम, कैक्टस, लायोडम, ऐसिड लैक्टिक, गुयेकम, लैककैनाईनम आदि दवाईयों का प्रयोग करना चाहिए। उपरोक्त दवाईयां वात रोग के कारण "Valvular Heart Disease" हृत्कपाट के रोग, पेरिकार्डाइटिस (हृदावरण प्रदाह) आदि में लाभप्रद है। एक रोग का दूसरे रोग में परिवर्तन होने को अंग्रेजी में "मेटास्टैसिस" कहते हैं। खैर वात में बहुत ज्यादा होने पर इसकी २X शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। कल्चीकम में पेशाब का रङ्ग लाल होता है और वह कममात्रा में होता है। कभी-कभी पेशाब काला या भूरे रंग का भी देखा जाता है।

मेरा अनुभव—मैंने वात रोग में इसके प्रयोग से अनेक स्थान पर लाभ उठाया है।

लीडम ३०, २००, १०००—सन्धि वात के लिये लीड़म भी लाभप्रद दवा है। इसका प्रधान लक्षण है—

—शेषांश पृष्ठ २७५ पर

विद्रधि—निदान एवं चिकित्सा

विद्रधि का परिचय—

विद्रधि उस शोथ का नाम है कि जो अपनी जड़ अस्थि पर रखता है। किन्तु यह बात केवल बाह्य विद्रधि के लिये ही है। आभ्यन्तरीय विद्रधि का मूल अस्थि पर नहीं होता।

सम्प्राप्ति वर्णन—बहुत अधिक मात्रा में वातादि दोष कुपित होकर त्वचा, रक्त, मांस और मेद को दूषित करके अस्थि पर जाकर आश्रित हो जाते हैं और वहां पर धीरे-धीरे भयानक शोथ उत्पन्न कर देते हैं। जब यह शोथ महान् मूल वाला, भारी पीड़ा से युक्त, गोलाकार अथवा चपटा उत्पन्न होता है तब इसका नाम विद्रधि कहलाता है। यह वातादि भेद से ६ प्रकार का माना जाता है।
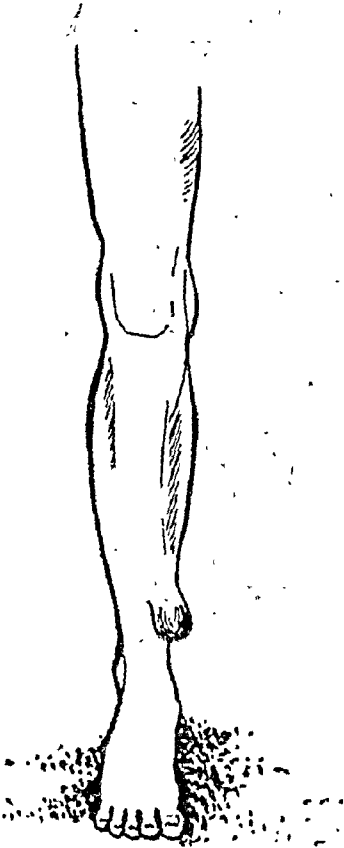
वातज विद्रधि—यह गुलाबी रंग या काले रंग का शोथ होता है। खुरदरा और भारी पीड़ा वाला, अनेक प्रकार से उभरने और पकने वाला होता है।

पित्तज विद्रधि—पके हुए गूलर फल के समान लाल व काली मिश्रित, ज्वर और दाह से युक्त, शीघ्रता से उभरने और पकने वाली होती है।

कफज विद्रधि—शराव के समान बड़ी, पीले वर्ण की शीतल, जकड़ी हुई, देर से उभरने और पकने वाली, खुजली से युक्त होती है।

स्राव—वातज विद्रधि में पतला स्राव, पित्तज में पीलास्राव और कफजन्य विद्रधि में श्वेत वर्ण का स्राव बहा करता है।
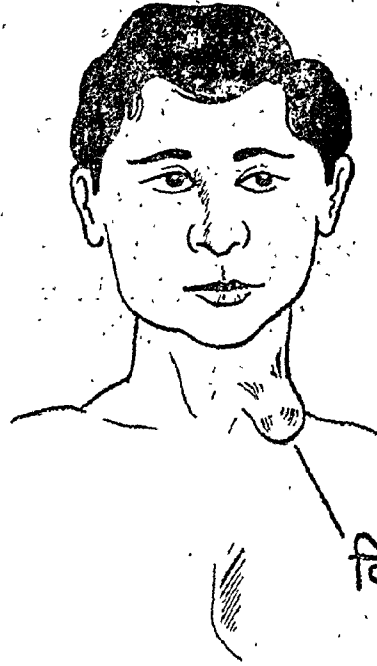
त्रिदोषज विद्रधि—अनेक वर्णो वाली, अनेक पीड़ाओं से युक्त, अनेक प्रकार के स्राव से युक्त बहुत, अधिक उभरी हुई, विषम आकार वाली बहुत फैलाव वाली, विषम रूप से पकने वाली होती है।

आगन्तुक विद्रधि—किसी भी प्रकार से आघात लगने पर, अथवा मिथ्या आहार आदि का सेवन करने से व्रण की गर्मी अर्थात् पित्त, वायु के द्वारा फैलाया जाकर रक्त और पित्त को भड़काता है। अतः रोगी को ज्वर,

प्यास और दाह हो जाता है। यह आगन्तुक विद्रधि पित्तज के समान होती है।

रक्तजन्य विद्रधि—कृष्ण वर्ण की फुन्सियों से भरी हुई स्वयं भी काले रंग की तीव्र दाह एवं भयानक वेदना से युक्त, पित्तज विद्रधि के समान होती है।

गर्म विद्रधि

आभ्यन्तर विद्रधि—गुरु, असात्म्य, विरुद्ध अन्न आदि के सेवन से, शुष्क एवं दूषित स्थान पर भोजन करने से, मैथुन, व्यायाम आदि अधिक करने से मल-मूत्र आदि के वेगों को रोकने से, विदाही आहार से दोष अलग-अलग अथवा मिलकर दूषित एवं कुपित होकर गुल्म के समान कठोर विद्रधि की उत्पत्ति होती है। यह वल्मीक की भांति ऊपर को उठी रहती है।

विद्रधि के स्थान—यह विद्रधि रोग मानवों को गुदा, वस्ति प्रदेश के मुख पर नाभि अर्थात् अन्त्रों में, उदर में, वंक्षण, वृक्क, यकृत प्लीहा, हृदय और क्लोम में उत्पन्न हुआ करती है।

स्थानभेद के विशेष लक्षण—गुदा की विद्रधि वायु का अवरोध, वस्ति की विद्रधि मूत्रोत्सर्ग में रुकावट, नाभि में उत्पन्न होने वाली हिचकी एवं अफारा, कुक्षि में होने वाली वायु का प्रकोप, वंक्षणजन्य विद्रधि, कटिग्रह, वृक्क में होने वाली पार्श्व संकोच प्लीहा में होने वाली श्वास का अवरोध, हृदय में होने वाली तीव्र वेदना, यकृत विद्रधि श्वास, तृष्णा और क्लोम में उत्पन्न होने वाली होती है।

विद्रधि रिपु पर अनुभूत योग—

यह प्रयोग शास्त्र में भी है किन्तु हमें गुरु परम्परा से प्राप्त हुआ है। इसकी महत्ता इसमें पड़ने वाले द्रव्यों

पृष्ठ २७३ का शेषांश

वात का आक्रमण नीचे से ऊपर की ओर होता है और आक्रान्त स्थान पर ठंडे प्रयोग से लाभ होता है। उपरोक्त दो लक्षण पर आप इसका प्रयोग अवश्य करें। (यदि वात का आक्रमण ऊपर से नीचे की ओर होने पर केलमिया का प्रयोग करें।)

मेडोरिनम् २००,१०००—यह दवा गनोरिया के पस् से तैयार की गई है। रोग विष से तैयार होने वाली दवा को नोसोड श्रेणी की दवा कहते है। डा० ई० वी० नैश साहब का कहना है कि—हड्डी का जखम अगर गर्मी रोग की वजह से नर्म हो तो भी सिफिलीनम् से आरोग्य होता है। इसी तरह वात रोग भी सूजाक के कारण न होने पर भी यह मेडोरिनम् से आरोग्य हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रायः वात रोग साईकोसिस विष के कारण होता है। अतः जहां साईकोसिस दोष का इतिहास प्राप्त होवे और सूर्योदय से सूर्यास्त तक रोग वृद्धि का लक्षण रहे तो मेडोरिनम का प्रयोग करना चाहिए।

मेरा अनुभव—मैं प्रायः वात के रोगी को १ खुराक मेडोरिनम उच्च शक्ति में देकर बाद में दूसरी दवा का प्रयोग करता हूं। प्रायः देखा गया है कि प्रथम मात्रा से ही लाभ आरम्भ हो जाता है या अन्य चुनी हुई दवा की क्रिया बहुत अच्छी होती है।

स्थानाभाव के कारण हम सभी दवाईयां के लक्षण यहां देने में असमर्थ हैं। अतः पाठक गण क्षमा करेंगे।

— डा० श्री बनारसीदास दीक्षित-एम.एम. डी. एस.
दीक्षित फार्मेसी, रक्सौल जि. चम्पारण (बिहार)

से ही स्पष्ट है। हमने सन् ४४ ई० से आज तक इसका प्रयोग रोगियों पर किया है। जिन-जिन रोगों को नष्ट करने की क्षमता इस प्रयोग में लिखी है वह अक्षरशः सत्य है। हम इसके लिये खुले दिल से परामर्श देते हैं कि यह योग उन सभी रोगों से पीड़ित रोगियों को अवश्य सेवन करना चाहिये कि जिनका उल्लेख इसमें हु है। यह एक सत्य प्रयोग है और परम दुर्लभ है। प्रयाग निम्न प्रकार से है—

विशेष विधि से संशोधित सिगरफ सुवर्ण माक्षिक भस्म (एरंड तेल और गन्धक योग से सिद्ध) रौप्यमाक्षिक भस्म, तुत्थ भस्म, कान्तपाषाण भस्म, वैक्रान्त भस्म, गोदन्ती भस्म, पत्र हरताल भस्म, मनः शिला भस्म, कंकुष्ठ भस्म, कासीस भस्म, स्फटिका भस्म, सुवर्ण भस्म, रजत भस्म, रीति भस्म, ताम्रभस्म (गन्धक से सिद्ध) नागभस्म (घृत कुमारी और सिगरफ से सिद्ध) शतपुटी फौलाद भस्म, शतपुटी अभ्रकसत्व भस्म (कासमर्द और अर्क दुग्ध से सिद्ध) कांस्य भस्म ये सब १-१ तोला ग्रहण करें। माणिक्य भस्म, मुक्ता भस्म, प्रवाल भस्म, पन्ना भस्म, पुखराज भस्म, हीरक भस्म, नीलम भस्म, गोमेद भस्म, इन सबको २-२ रत्ती मिला दें। फिर शुद्ध पारद (अष्ट संस्कारित) ४ तोला और शुद्ध गन्धक १६ तोला लेकर दोनों की उत्तम कज्जली तैयार करलें। फिर एक लोह पात्र को बेर के धधकते हुये कोयलों पर रख कर गर्म करें, तब उसमें कज्जली डाल दें। वड़ की ताजी लकड़ी से चलाते जायें, सही प्रकार से द्रवित हो जाने पर सम्पूर्ण भस्में भी डाल दें और उसी वड़ की लकड़ी से चलाकर एक रस कर दें। फिर अग्नि पर से उतार लें और शीतल होने दें। फिर उसे खरल में डालकर काली मिर्च का क्वाथ, अदरख का स्वरस, तुलसी का स्वरस, शंखपुष्पी का स्वरस, गिलोय का स्वरस, द्राक्षा का क्वाथ, अशोक छाल का स्वरस, आंवला स्वरस, दोनों मूसली का क्वाथ, भांग का क्वाथ, सालम मिश्री का क्वाथ, विदारीकन्द का स्वरस, मत्स्याक्षी का स्वरस, हरी दूब का स्वरस, नासपाती का स्वरस, नीमपत्र का स्वरस, चित्रक का क्वाथ इन सत्रह को ऊपर वाली औषधि के कुल वजन के बराबर अलग।अलग से लेकर मिला दें और दृढ़ मर्दन करावें। वटिका बनाने योग्य हो जाने पर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें छाया में सुखा लें। प्रतिदिन प्रातः और सायं रोगानुसारी अनुपान के साथ प्रयोग करें। पहले शरीर शुद्ध कर लेना आवश्यक है। १० दिन तक २-२ गोली, फिर १० दिन तक १-१ गोली फिर १० दिन अगले २-२ गोली इस क्रम से सेवन करें। इसके सेवन से ६ प्रकार की विद्रधि, ७ प्रकार के विद्रधि रोग, सभी प्रकार के क्षय रोग, विशेपकर पांडु रोग, संग्रहणी नई व पुरानी, ७ प्रकार के गुल्म रोग, दोनों प्रकार की ववासीर (गारंटी से) सभी प्रकार के
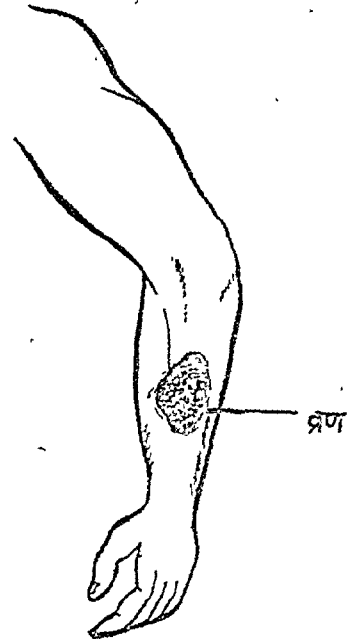
शोथ, तिल्ली' जिगर, प्रमेह, सोमरोग, ल्यूकोरिया, रक्त-प्रदर, आठों प्रकार के उदर रोग, मन्दाग्नि, कास पांचों प्रकार का, श्वांस रोग पांचों प्रकार का, शारीरिक दुर्बलता, बुढ़ापे की नपुन्सकता, हस्तमैथुन जन्य नपुन्सकता, अनुचित प्रकार के मैथुन जन्य नपुन्सकता, शीघ्र पतन, लिंग की दुवलता, खून की कमी, पुराना नजला, असमय के पके बाल, स्मरण शक्ति की दुर्बलता, बहुमूत्र, मधुमेह, आमवात, वात-रक्त, मिरगी का पुराना रोग, नींद में सोते-सोते उठकर चल देना, अधिक मोटापा या अधिक कृशता, नींद की कमी, सभी प्रकार के शिर दर्द, जल्दी थकावट हो जाना, हाथ-पैरों में पसीना आना, छींकों का रोग, तीन साल तक का पीलिया, लकवा और बालझड़ना, मुख पर की झांई, नौजवानी की फुन्सियां, दांतों के सभी

रोग॥ अनियमित मासिक धर्म, पुत्र न होना अथवा लड़कियां ही होते रहना, ब्लड प्रेसर का गिरा रहना, आंखों से कम दीखना, कानों से ऊंचा सुनना, हौसला एकदम से उभरना और २ मिनट में ही ढीला पड़ना, इन रोगों की यह रामवाण दवा है। सर्वथा अचूक है। पिछले ३० वर्षों से हमने इन ५५-५६ रोगों पर इसका प्रयोग किया है और सर्वदा ही सफल पाया है। किन्तु इसमें परहेज सख्त है। मैथुन, धूप में रहना, धूम्रपान करना, शराव, लहसुन, तेल के पदार्थ, लाल मिर्च, उड़द की दाल, कचालू, कटहल, गरम मसाले, बर्फ की चीजें,

अधिक व्यायाम, कब्ज, अधिक तरल पदार्थों का सेवन, रात्रि का जागरण, दिवास्वाप, कागजी नींबू को छोड़कर सभी खटाई, नमक का अधिक सेवन, पकवानों का अधिक सेवन इन वीस चीजों का परहेज रखना नितान्त आवश्यक है। भोजन में शुद्ध घृत, दूध, वासमती चावल, पुराने गेहूं, जौ, मूंग, मसूर, अरहर, सोया, पालक, घिया, टिण्डे, तोरी, परवल, मक्खन, मलाई, गाजर, प्याज' आलू, हराधनियां, पोदीना, खीर, वादाम का हलुआ, कलाकन्द, इमरती, पेठे की मिठाई, गुलाव जामुन, वालूशाही, घेवर, रसमलाई, सत्तू, सेव, नाशपाती, केला, चीकू, मीठा सन्तरा, मौसम्वी, अंगूर, गोमूत्र, त्रिफला, कषाय इनका सेवन बहुत ही लाभप्रद है। यह योग थोड़े से परिवर्तन से विश्वाधारा पर्पटी रस के नाम से ग्रन्थों में भी विद्यमान है। यह योग शक्ति के लिये १८ वर्ष की आयु से नीचे वालों को कदापि सेवन नहीं करना चाहिए। जो लोग शराव नहीं छोड़ सकते, उन्हें यह दवा अवश्य ही छोड़ देनी चाहिए। रात्रि की नौकरी वाले भी इसका विचार त्याग दें। क्योंकि इन पर हमारा विशेष अनुभव है, उन्हें हानि होती है।

शास्त्रीय चिकित्सा

वातविद्रधि की चिकित्सा—इसमें छारछवीले की जड़ के कल्क में घी, तैल, चर्वी मिलाकर सुहाते-सुहाते गरम से वरावर लेप करें। आनूप और औदक पशुओं का मांस काकोल्यादि द्रव्यों का जल नमक डालकर चिकनाई और खटाई के साथ सिद्ध करके उपनाहन कर्म करें। वेशवार खिचड़ी और दूध व खीर से स्वेदन करें और वार-वार फस्त भी खोलें। यदि इन उपचारों के करने पर भी विद्रधि पकने लग जाय तो उसको पकाकर शस्त्र से चीरें और सब मवाद रुधिर निकाल कर शुद्ध कर देवें। उसको पंचमूल के क्वाथ से धो डालें। फिर पांचों नमक॥ भद्रादि और महुआ डालकर तैल पकावें अथवा विरेचन कराने वाले द्रव्यों से संयुक्त निशोथ से घाव को शुद्ध करें और पृथक पर्ण्यादि से सिद्ध की हुई निशोथ लगाकर घाव को पूरित करें।

पित्तविद्रधि की चिकित्सा—इसमें शक्कर, धान की खील, मुलहठी, सारिवा, इनका लेप करें अथवा दूधी, खस, और चन्दन, इनको दूध में पीसकर लेप करें। पके हुए शीतल क्वाथ, दूध तथा इक्षुरस अथवा खाण्ड डालकर जीवनीय गणोक्त द्रव्यों के पके हुए घी से सेचन करें। निशोथ, हरड़ इनके चूर्ण में शहद मिलाकर चाटें।

पक्वपित्तविधिद्र की चिकित्सा—यदि विद्रधि पकजाय तो जोंक लगाकर रुधिर निकलवा देवें, फिर

क्षीर वृक्षों के कषाय तथा कमल के कषाय से वृण को धोकर तिल और मुलहठी को पीसकर शहद और घी मिलाकर लेप करें और ऊपर से एक पतले वस्त्र की पट्टी बाँध देवें। अथवा प्रपौण्डरीक, मजीठ, मुलहठी, खस, पद्माख और हल्दी इनको दूध में पीसकर घी डालकर अग्नि पर चढ़ा दें। फिर पकाकर व्रण के पुराने में काम में लावें। अथवा क्षीरविदारी, पृष्णपर्णी, मजीठ, लोघ, चन्दन, न्यग्रोधादि के पत्ते इनसे सिद्ध किया हुआ घी लगावें।

करंजादिघृत—करंज के पत्ते और तत्काल तोड़े हुए कच्चे फल, चमेली के पत्ते, परवल और नीम के पत्ते, दोनों हल्दी, मोम, महुआ, कुटकी, प्रियंगु, कुसा की जड़, जलवेत की छाल, मंजीठ, चन्दन खस, कमल, सारिवा, निशोथ इन सबको एक-एक कर्ष अर्थात आठ-आठ माशे लेवें और कूट पीसकर घी में पकावें। यह करंजादिघृत व्रण और विद्रधि में लाभदायक होता है।

कर्णविद्रधि की चिकित्सा—इसमें ईंट, वालू, लोहे का चुरा, गोबर, भूस की धूल और गोमूत्र इन सबको मिलाकर गर्म करलें और इसमें निरन्तर स्वेदन करते रहें। कषाय पान, वमन, आलेपन, उपनाहन से सम्पूर्ण दोषों को दूर करें तथा सिंगी लगाकर रुधिर निकलवा देवें। पक्व विद्रधि में अमलतास के काढ़े से धो डालें। हल्दी, निशोथ, सत्तू, तिल और शहद मिलाकर व्रण को चूर्ण करके अच्छी तरह से पट्टी बाँध देवें। फिर कुलत्थी, दन्ती, निशोथ, काली निशोथ, आक, लोध्र, सैंधानमक, गोमूत्र और तेल इन सबको औटा लेवें और छान लेवें और लगावें।

रक्तागन्तुविद्रधि की चिकित्सा—रक्तज और आगन्तुकविद्रधियों में पित्त विद्रधि के समान ही सब क्रिया करना उचित है। अपक्व और भीतर की ओर उठी हुई विद्रधि की ओर शान्ति के निमित्त ऊषकादि गणोक्त द्रव्यों का काढ़ा पी लेवें। अथवा पानी धान्याम्ल, मदिरा अथवा दोषगणोक्तद्रव्यों के क्वाथ के साथ शिलाजीत पीवें। भैंसा गूगुल, सोंठ, देवदारू इनका चूर्ण खाने से तथा स्नेहन, उपनाहन, और अनुलोमन कर्म भी करते रहें।

विद्रधि में सिरावेधन—कफज विद्रधि में यथोक्त अर्थात् बाईं ओर की कांख और स्तन के बीच में पार्श्व-मूल में नस का वेधन करें। किसी का मत है कि रक्तपित्त और वातजनित विद्रधि में बाहु के बीच में छेदन करना चाहिए। पक्व अथवा बाहर की ओर गांठ वाली विद्रधि को चीरकर वृण के समान चिकित्सा करें। जो ऊपर अथवा नीचे को झरती हों उनमें मैरेय, अम्ल, सुरा और आसव इनके साथ वरुणादि गण का क्वाथ अथवा संहजने का क्वाथ पीयें। संहजने की जड़ के जल में पका हुआ सरसों सहित भात जौ, वेर, कुलत्थी के यूप के साथ भोजन करें। प्रतिदिन प्रातःकाल तिल्वक घी अथवा त्रिवृतादि गण के क्वाथ में सिद्ध किया हुआ घी सेवन करना उचित है।

मज्जाजात विद्रधि—मज्जा से उत्पन्न विद्रधि असाध्य होती है। परन्तु तो भी चिकित्सा करना उचित है। इनमें स्नेहन, स्वेदन कर्म करने के अनन्तर फस्त खोलकर रुधिर निकालें और शेष सब क्रिया विद्रधि के समान करें, अगर पक जावे तो हड्डी को भी चीर देवें। जब यह शल्य रहित हो जाय तब व्रण का शोधन करें, उसको तिक्त औषधियों के क्वाथ से धोवें और तिक्त औषधियों से सिद्ध किया हुआ घृत लगावें। यदि मज्जा का बहना बन्द न हो तो संशोधन कषायों को बनावें। प्रियंगु, धाय, लोध्र, कायफल, तून और सैंधानमक, इनके साथ तेल को औटा लेवें और विद्रधि के रोपण के लिए लगावें।

सब प्रकार की कच्ची विद्रधि को शोजा की तरह चिकित्सा करें और नित्यप्रति रक्त को निकालें और पकी हुई विद्रधि की घाव की तरह चिकित्सा करें।

पंचमूलों के पानी करके धोये हुए वात की विद्रधि से उत्पन्न घाव को नमक, देवदार्वादि गण की औषधि मुलहठी, तिल से लेप करें। वैरेचनिक औषधियों से युक्त हुए त्रैवृत नामक घृत से शोधित कर पश्चात् विदारी वर्ग की औषधियों से सिद्ध किये ये त्रिवृत घृत से घाव को आरोपित करें।

दूध वाले वृक्षों के रसों से धोये हुए पित्त की अधिकता वाले विद्रधि के घाव को मुलहठी, गिलोय, तिल, मंजीठ, खस, पदमाख में सिद्ध किये घृत से लेप करें।

दूध, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, मुलहठी, दूध में सिद्ध किये घृत से लेप करें अथवा वड़ आदि वृक्षों के अंकुर, छाल, फल में सिद्ध किये घृत से लेप करें और कफ की विद्रधि के घाव को अमलतास के पानी से धोकर सत्तू, निशोत, हल्दी, तिल के लेप से और कुलथी, जमालगोटा की जड़, निशोत, मालविका निशोत, चीता, लोध्र, सैंधा-नमक, गोमूत्र से रोपण संज्ञक तेल को करें।

त्रायमाण, त्रिफला, नीम, कुटकी, मुलहठी ये सम-भाग ले निशोत और परवल की जड़ अलग-अलग ४-४ भाग लें। तुप से रहित मसूर ८ भाग इनका घी के साथ क्वाथ से विद्रधि को लाभ होता है।

१६ तोले वनफ्सा को आठ गुने पानी में पकावें, फिर त्रायमाण का रस, आमले का रस, दूध, घृत प्रत्येक १६-१६ तोला और १-१ तोला भर कुटकी, जीवन्ती, धमासा नागरमोथा, मूसली, शिवलिंगी, वनफ्सा, चन्दन, कमल इन्हीं के कल्कों को मिला पकावें। यह घृत विद्रधि के लिये लाभ करता है।

दाख, मुलहठी, खजूर, विदारीकन्द, शतावरी, फालसा, त्रिफला इनके क्वाथ में और दूध, ईख का रस, आमला का रस, हरड़ का कल्क इनसे संयुक्त किये घृत को पकावें, शीतल होने पर चौथाई भाग खांड और शहद से संयुक्त करें। यह घृत भी लाभ करता है।

सींगी आदि से अथवा फस्त को खुलाने से यथायोग्य समीप के रक्त को निकाल और कोष्ठ में स्थित और बाहर को कची और पच्यमान विद्रधि को जानकर उप-नाह स्वेद से संयुक्त करें और जिस दोष को आश्रित हो के उन्नद्ध हुई विद्रधि स्थित होगई। तब तिस के पार्श्व में पीड़न से सुप्ति में अल्परूप दाह आदि होने पर पक्व हुई विद्रधि जानें। उसको भेदित से घाव की तरह चिकित्सा करें।

पक्व हुई विद्रधि स्त्रोतों को पूर्ति कर ऊपर को तथा नीचे को प्राप्त होती है, तब पथ्य का भोजन करने वाले मनुष्य के आप ही प्रवृत्त हुए दोष की उपेक्षा करें। १० दिन अथवा १२ दिन वैद्य उपद्रवों को रक्षित करता हुवा अच्छी तरह बढ़ते हुए क्लेद में वरुणादि गण के द्रव्यों को सुखपूर्वक गर्म पानी के संग में सेवन करावें। मीठे संहजने के क्वाथ का पान करावें अथवा मीठे संह-जने से बनी हुई पेया का पान करावें और जव बेर कुलथी इनके यूषों के संग अन्न श्रेष्ठ है।

१० दिन के बाद शायती घृत से अथवा तैल्वक घृत से वस्त्र के अनुसार रोगी को शुद्ध करें, पीछे शुद्ध हुआ रोगी शहद से संयुक्त तिक्त रस का पान करें। सब अव-स्थाओं में और सब प्रकार की विद्रधि में गूगल को यथा योग्य क्वाथों के संग प्रयुक्त करें अथवा यथायोग्य क्वाथों के संग शिलाजीत का सेवन करावें।

स्तनों की विद्रधि में उपनाह को वर्जकर सम्पूर्ण घाव की क्रिया के कर्म को करें अर्थात् स्तनों की विद्रधि को फोड़ें, परन्तु दूध को वहने वाली नाड़ी और चूची के विटकनों को छोड़कर और सब प्रकार की कच्ची अवस्था में विद्रधि सम्बन्धी चूची दुहित करें।

नखी अथवा साठी ४०० तोला लेवें और अलग-अलग ४० तोला परिमाण से दशमूल दूधी, चन्दन, अरड़, शता-वरी, दोनों प्रकार की डाभ, शर, कांश, ईख की जड़ नरशल इनको ३०७२ तोला पानी में पकावें। जब आठवां भाग शेष रह जावे तब ६० तो., गुड़, ६४ तो. अरंडी का तेल, १२८ तोला घृत, १२८ तोला दूध, ८-८ तोले के पीपला, पीपलामूल, सैंधानमक, मुलहठी, मुनक्का, दाख, अजमोद, सोंठ इनको मिला घृत को पकावें, यह सिद्ध हुआ सुकुमार नाम वाला घृत उत्तम है। इससे विद्रधि नष्ट होती है।

स्नेह, जुलाब, अनुवासन इनसे जो वर्ध्मरोग शांति को नहीं प्राप्त होवे तब वस्तिकर्म कराके पश्चात् अड़संधि में स्थित हुये वर्ध्म को अग्नि से दग्ध करें। वायु के मार्ग को रोकने के लिये अंगूठे के ऊपर जो तांत के समान और स्राव से पीत हो उसको आधा चन्द्रमा के समान मुख वाली, सुई से उत्क्षेपित कर पीछे जहां रोग है उसको तिरछा छेदित कर पश्चात् दग्ध करें, पीछे दूसरी ओर को भी दग्ध करें।

सब प्रकार की विद्रधियों में जोंक लगवानी चाहिए। मृदुविरेचन देना और लंघन कराना ये उत्तम हैं। पित्त की विद्रधि को छोड़ कर बाकी सब विद्रधियों में स्वेदन करना उत्तम है।

जो विद्रधि पकी न हो तो उस पर व्रणशोथ की औषधियों से चिकित्सा करें—

लाल अंड की जड़ का कल्क बनाकर उसमें चरबी, तेल तथा घी डालकर कुछ गर्म करके उसका गाढ़ा लेप करने से वात की विद्रधि दूर हो जाती है। जौ, गेहूँ और मूंग इनको घी में पीसकर लेप करने से नहीं पकी हुई विद्रधि क्षणमात्र में लुप्त हो जाती है।

क्षीर काकोली, खस, मुलहठी और लालचन्दन इनको दूध में पीसकर गाढ़ा लेप करें तो पित्तजन्य विद्रधि नष्ट होती है। अगर क्षीरकाकोली न मिले तो उसके अभाव में असगंध लेना चाहिये।

पंचवल्कल का कल्क बनाकर उसमें घी डालकर उसका लेप करने से पित्त की विद्रधि दूर होती है।

हरड़-बहेड़ा, आंवला, इनका क्वाथ बनाकर उसमें एक तोला भर निसौत का कल्क डालकर पीने से पित्त-जन्य विद्रधि दूर हो जाती है। ईंट का चूर्ण रेता, लोहे की कीट और गाय का गोबर इनको गाय के मूत्र में पीस कर कुछ गर्म करके उसका लेप करें तो उसके स्वेदन से कफजन्य विद्रधि नष्ट होजाती है।

दशमूल के क्वाथ अथवा दशमूल के स्वरस में घी डालकर कुछ गर्म करके उसका सेवन करने से विद्रधि तथा व्रण शोथ नष्ट हो जाता है। रुधिर सम्बन्धी विद्रधि अथवा अभिघातजन्य वा घाव के होने से विद्रधि उत्पन्न हुई हो तो वैद्य उस पर पित्त सम्बन्धी, रुधिर सम्बन्धी और क्षत सम्बन्धी, विद्रधि, की समान लाल चन्दन, मंजीठ हल्दी, मुलहठी, पीला गेरू इनको दूध में पीसकर उसका लेप करें। विद्रधि को नष्ट करने वाली जो क्रिया हैं वे सब करनी चाहिए।

कालाजीरा, इन्द्रायण और कड़वी तोरई इनको एकत्र पीसकर पीने से कोठे में उत्पन्न हुई विद्रधि नष्ट हो जाती है।

सफेद पुनर्नवा की जड़ अथवा वरना की जड़ इनको पानी में औटा कर काढ़े को पीने से भीतर की विद्रधि अवश्य नष्ट हो जाती है।

खैर, हरड़, बहेड़, आंवला, नीम, कुटकी और मुलैठी इन सबको समभाग लें। ४ भाग निसोत की जड़ और कड़वे परवल की जड़ ४ भाग लेवें। फिर इन पदार्थों को तथा छिल के रहित मसूर की दाल को डालकर क्वाथ बनावें। यह क्वाथ विद्रधि को नष्ट करता है।

सहजने का क्वाथ बनाकर उसमें हींग तथा सैंधा नमक डाल विशेष करके प्रातःकाल पियें तो भीतर की विद्रधि नष्ट होती है। सहजने की जड़ को जल में धोकर जल में पीसकर वस्त्र में छान लेवें, फिर उसमें शहद मिलाकर पीने से अन्दर की विद्रधि शमन होती है।

पुनर्नवादि काढ़ा—पुनर्नवा और वरना इन दोनों द्रव्यों का क्वाथ पीने से अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है।

वरुणादि क्वाथ—वरना की छाल, शिवलिंगी (इसके स्थान पर वकपुष्प करके कमल या फूलप्रियंगु लेना चाहिए) कोमल वेलफल, ओंगा, चित्रक, छोटी अरनी, बड़ी अरनी, कड़ुवा सहजना, मीठा सहजना, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, पीले फूल का पियाबांसा, काले फूलों का पियाबांसा, मूर्वा, काकड़ासिंगी, चिरायता, मेढासिंगी, कड़ुई कन्दूरी की जड़ अथवा पत्ते कन्जा और शतावर इन २१ द्रव्यों का क्वाथ करके पीवें तो अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है।

विद्रधि (Abscess) फोड़ा

श्री डा० बनारसीदास दीक्षित

परिचय—फोड़ा साधारणतः सर्व ज्ञात रोग है। इसे सर्वसाधारण व्यक्ति भी जानते हैं।

चिकित्सा—(प्रथमावस्था)

बेलाडोना ३०,२००—यह दवा फोड़ा की प्राथमिक अवस्था की दवा है। उचित समय पर यदि इसका प्रयोग किया जावे तो रोग अंकुरावस्था में ही नष्ट हो जाता है।

लक्षण—फोड़े की प्रदाहित अवस्था जबकि आक्रान्त स्थान लाल गरम, और उस स्थान पर तेज दर्द होने साथ में ज्वर हो भी सकता है और नहीं भी।

एपिस मेल ६, ३०, २०० एपिस का स्थान बेलाडोना के बाद का है।

लक्षण—आक्रान्त स्थान पर शोथ रहता है, जलन

और डंक मारने की तरह दर्द रहता है। वेलाडोन का फोड़ा घोर लाल रंग का होता है और उस स्थान पर छूने पर गरम ज्ञात होता है । किन्तु एपिस में स्थान गुलाबी लाल रंग का होता है और शोथ में दवाने पर गढ़ा पड़ जाता है। इसकी सूजन मधु मक्खी के काटने पर दश स्थान पर होती है उसी प्रकार की होती है। दोनों ही दवाईयों में ठंड से उपशम है पर वेलाडोना का रोगी स्पर्श सहन नहीं करता है। दर्द में भी दोनों में प्रभेद है वेलाडोना में जलन के साथ दपदपाने वाला दर्द होता है पर एपिस में जलन अधिक है और दर्द डंक मारने की तरह होता है।

फेरमफास ३×६×१२× वायोकैमिक मतानुसार प्रथमावस्था की दवा फेरम फास है इसके लक्षण भी वहुत कुछ वेलार्डोना से मिलते हैं पर वेलाडोना की अपेक्षा वहुत हल्के रहते है।

द्वितीय अवस्था

हीपर सल्फ ३× ६×, ६, ३०, २००, 1M, 10M—वेलाडोना की स्टेज पार होने पर हीपर सल्फ का नम्बर आता है जब कि फोड़ा में पस पैदा होना आरम्भ हो जाता है यह पस (पीव) वहुत नीचे रहता है। हीपर सल्फ में फोड़े को फाड़ देने की वहुत बड़ी शक्ति है यह पीव को पैदा करके फोड़े को पकाकर फाड़ देती है अतः होमियोपैथिक में इसे नस्तर की छुरी कहा है। लक्षण मिलने पर यह दवा रोगी को सर्जन की छुरी से वचा देगी।

लक्षण—यह दीर्घ क्रियाशील एन्टीसोरिक दवा है। इसका सर्व प्रथम लक्षण है 'छूना और ठंडी हवा का सहन नहीं होना, पीव पैदा होने की प्रवणता, रोगी फोड़े पर जरा भी स्पर्श सहन नहीं कर सकता है जरा छूते ही वह दर्द के मारे वेहोश हो जाता है। ठन्डी दवा का भी सहन नहीं कर सकता है। हीपर सल्फ की क्रिया दो प्रकार की होती है, जहां पस पैदा होना आरम्भ हो गया हो वहां इसकी निम्न शक्ति का वार-वार प्रयोग करने पर पस पैदा होकर ऊपर आ जावेगा और फोड़ा फट जायगा। जहां पस पैदा हो चुका है और उसको सुखाना है वहां इसकी उच्च शक्ति का प्रयोग करना चाहिये।

मार्कसोल ६, ३०, २००, १०००—मार्कसोल के फोड़े में हीपर सल्फ की तरह स्पर्श से कातरता नहीं है। इसके सभी कष्ट गर्म पुल्टिस लगाने पर दर्द वढ़ जाता है एवं रात में दर्द अधिक होता है रोगी को पसीना अधिक होता है, मुंह से लार गिरना, इसकी भी निम्न शक्ति पस (पीव) पैदा करती है और फोड़े को फाड़ देती है और उच्च शक्ति के प्रयोग से पस सूख जाता है। मार्कसोल का रोगी हीपूर सल्फ की भांति शीतकातर नहीं होता है।

तृतीय अवस्था

कल्केरिया सल्फ ३०२००—जो फोड़ा फट चुका है और उसमें से गाढ़े रंग की मवाद आती हो उसके सुखाने के लिये यह दवा विशेष लाभदायक है।

साइलीसिया ३०, २००, १०००—जहां फोड़ा पक कर फूट गया होवे और वहुत दिनों तक ठीक होना नहीं चाहता उसमें से पतला पानी की तरह का पस निकलता है उसमें दुर्गन्ध होती है। साईलीसिया के प्रयोग से फोड़ा में आराम होने लगता है पीव सूख जाता है। फोड़ा होने के कारण यदि उस स्थान पर नासूर हो जाता है यह शरीर के किसी भी स्थान पर होवे उसमें यह लाभदायक है। फोड़े के आस-पास यदि वहुत से छेद होवें तो साईलीसिया का प्रयोग करना चाहिये। साईलीसिया का रोगी गर्म पुल्टिस से आराम अनुभव करता है।

लाईकोपोडियम ३०, २००—फोड़ा बड़ा हो तो छोटा लाइकोपोडियम के प्रयोग से उसमें जो पीव पैदा हो गया है उसका शोषण होकर वह आरोग्य हो जाता है पर याद रखना चाहिये कि जहां गरम पुल्टिस से या ताप से यन्त्रणा वृद्धि होती होवे वहां लाईकोपोडियम का प्रयोग करना चाहिये और जहां गरम प्रयोग से उपशम होवे वहां हीपरसल्फ का प्रयोग होता है। हीपर सल्फ भी उच्च शक्ति का देने पर पीव को सुखाता है।

आर्निका ३०,२००—गर्मी के दिनों में वच्चों के छोटे छोटे फोड़े अत्यधिक संख्या में होते हैं। उनमें दर्द रहता है वहां आर्निका का प्रयोग करना चाहिए। आर्निका काम न करने पर आर्कंरियम् लेप्पा देवें।

कल्केरिया हाइपोफास १×—वढ़े फोड़े जिनका

—शेषांस पृष्ट २८३ पर

विसर्प—निदान एवं चिकित्सा

आयुर्वेद में विसर्प रोग की उत्पत्ति में लवण, अम्ल और कटु रस प्रधान एवं उष्ण, तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन मुख्य कारण माना है। यह ७ प्रकार का होता है। यह रोग सारे शरीर में फैलने की प्रवृति वाला होता है अतः इसको विसर्प कहा जाता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज से यह ७ प्रकार का है। वातपित्तज विसर्प को आग्नेय, कफवातज विसर्प को ग्रन्थि विसर्प और पित्तकफज विसर्प को कर्दमक विसर्प कहा जाता है। विसर्प रोग मे रक्त, लसीका, त्वचा, मांस और वात, पित्त तथा कफ ये सातों मिलकर रोगकारक बनते है।

वातज विसर्प मे वातज्वर के समान कष्ट, शोथ, फड़कन, सूई चुभने जैसी वेदना, भेदन, थकावट तथा रोमहर्ष पाया जाता है। पित्तज विसर्प में तीव्र गति से विसर्प का फैलना, पित्त ज्वर के समान कष्ट और गहरा लाल वर्ण पाया जाता है। कफज विसर्प में खुजली, स्निग्धता और कफ ज्वर के समान कष्ट होता है। त्रिदोषज विसर्प मे तीनों दोषों के लक्षण समान होते हैं। वातज, पित्तज और कफज विसर्प साध्य माने गये है। त्रिदोषज और क्षतज विसर्प असाध्य ही रहते हैं। तथा पित्तज विसर्प में यदि रोगी का शरीर एकदम गहरा काला पड़ जाये तो वह भी असाध्य होता है। गर्म स्थानों पर पाये जाने वाले सभी विसर्प कष्टसाध्य होते हैं। क्षतज विसर्प में वाह्यहेतु की ही विशेषता है, शेष सभी लक्षण आदि वातज और पित्तज विसर्प के समान समझने चाहिये।

चिकित्सा सिद्धान्त—

विसर्प रोग में सामान्यतया दोषों के अनुसार वमन, विरेचन, आलेप, आसेचन, रक्तमोक्षण और जलन न करने वाले द्रव्यों से उपचार किया जाना चाहिए।

वमन—परवल के पत्ते, नीम की छाल, पीपल, मैनफल तथा इन्द्र जौ के क्वाथ से विसर्प में वमन कराना चाहिए।

विरेचन—त्रिफला क्वाथ और निशोथ का चूर्ण तथा घृत का प्रयोग किया जाना चाहिये। अथवा आमलक स्वरस को घृत में मिलाकर पिलाना चाहिये। वातजन्य विसर्प में तृणपंचमूल के अलावा किसी भी पंचमूल का लेप सेक और घृत से सेवन कराना चाहिए। पित्तज विसर्प मे कमल की डण्डी का लेप शतावर धौत मक्खन या घी में मिलाकर करना चाहिए। कफज विसर्प मे कत्था, सतौना, नागरमोथा, अडूसा, अमलतास का गूदा, देवदारु तथा केवड़िया मोथा का लेप करना चाहिए। त्रिदोषज विसर्प में नागरमोथा, नीम की छाल, परवल की पत्तियों का क्वाथ सेवन करना चाहिये।
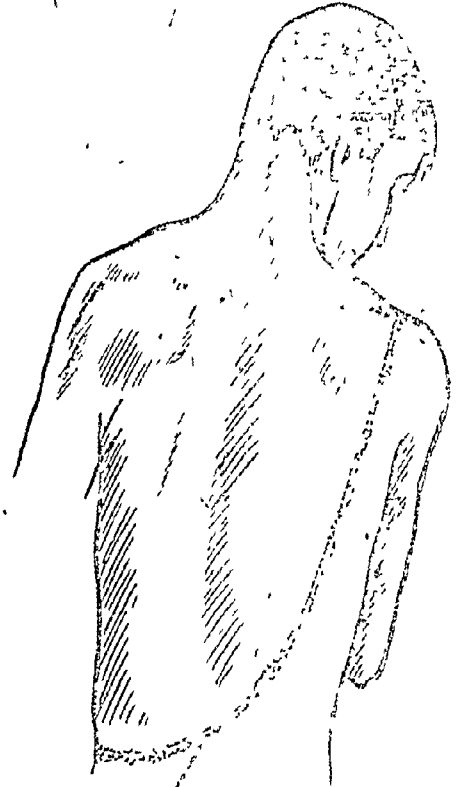
अनुभूत योग—

विसर्पविलेह—परवल के पत्ते, पद्माख, सप्तपर्ण, लोध, नीम की छाल, नाग केशर, गिलोय, कपित्थ, वांसा सिरस की छाल, त्रिफला, लिसोड़ा, हल्दी दोनों, शुद्ध तूतिया, मोम, तेजपात, लाक्षा, मीठा कूठ, तगर, वायविडंग, लघुएला, कत्था, आमला स्वरस, चिरायता, कुटकी लाल चन्दन, भारंगी, मूर्वा इन सबको समान भाग लेकर

कूटने पीसने योग्य दवाओं को पहले कूट-पीस लें। फिर सबको आमले के स्वरस में मिला दें। मोम और तूतिया बाद में भी मिला दें। फिर सबके वजन के बराबर गिलोय का क्वाथ, नीम का क्वाथ और लाल चन्दन का क्वाथ मिलाकर शनैः-शनैः लोहे की कड़ाही में पाचन करें। जब अवलेह जैसा हो जाये तो उतार कर चिकने पात्र में शीतल होने पर रख दें। प्रातः सायं २-२ माशा ताजा पानी से खावें। यह विसर्प, श्वेतकुष्ठ, कोढ़, सभी प्रकार के विष, नासूर, गलगण्डमाला, खुजली की रामबाण दवा है।

शास्त्रीय चिकित्सा—

विसर्प चरक के अनुसार-

मदनादिवमनयोग-कफ-पित्तज में-मैनफल-मुलहठी, नीम की छाल, इन्द्र जौ, समभाग इनके योग द्वारा वमन कराना चाहिए।

पटोलादि वमन योग—पटोल का नाल (कफहर). पत्र (पित्तहर), नीम की छाल, पिप्पली चूर्ण, मैनफल तथा इन्द्र जौ, इस योग को वमनार्थ प्रयोग करावें। पटोल (परवल के नाल और पत्र) तथा नीम की छाल का क्वाथ शेष द्रव्यों का प्रक्षेप देकर रोगी को पिलाने का व्यवहार है।

कषाय योग—मोथा, नीम की छाल, पटोलपत्र मिलित २ तोला, क्वाथार्थ जल ३२ तोला, अवशिष्ट क्वाथ ८ तोला।

१—लाल चन्दन, नीलोत्पल—इनका क्वाथ।

२—सारिवा (अनन्तमूल) आंवला, खस, मोथा इनका क्वाथ।

किराततिक्तादि कषाय—चिरायता, लोध, लाल चन्दन, दुरालभा (धमासा) सोंठ, कमलकेसर, नीलोत्पल, बहेड़ा, मुलहठी, नागपुष्प (नागकेसर), मिलित २ तोला, क्वाथार्थ जल ३२ तो.। अवशिष्ट क्वाथ ८ तो०, यह कषाय विसर्प की शांति के लिए उपयोगी है।

प्रपौंडरीकाद्य क्वाथ—पुण्डरीक काष्ठ, मुलहठी, कमलकेसर, नीलोत्पल, नागकेशर, लोध, इसे भी उपरोक्त विधि से प्रयोग करावें।

द्राक्षाद्यशीत कषाय—मुनक्का, पितपापड़ा, सोंठ, गिलोय, धमासा, इन्हें २ तोला प्रमाण में लेकर ६ गुना जल में भिगो दें। रातभर पड़ा रहने देने के बाद प्रातः काल छानकर तृष्णा और विसर्प की शान्ति के लिए दें।

पटोलादि शीत कषाय—पटोलपत्र, नीम की छाल दारूहल्दी, कुटकी, मुलहठी, त्रायमाण, इन्हें २ तोला, इनका शीत कषाय तैयार करलें। इसे विसर्प की शांति के लिए प्रयोग करते हैं।

पृष्ट २८१ का शेषांस

पीव बनता रहता है रोगी दुर्बल हो जाता है यहां तक कि फोड़ा हड्डी तक पहुँच जाता है किसी प्रकार भी पीव बनना नहीं रुकता है उस स्थान पर इसका प्रयोग करना चाहिये १× की शक्ति की दवा दिन में ४-५ बार देनी चाहिये जब तक लाभ न हो जावे।

माइरिस्टिका सेबिफेरा ३× - पीव होने के पूर्व दिन में ४-५ बार इसका प्रयोग करने से फोड़ा बैठ जाता है। यदि पीव हो गया हो तब इसके प्रयोग से पीव ऊपर आकर फोड़ा फट जाता है और आपरेशन की आवश्यकता नहीं रहती है।

नोट—फोड़े के ऊपर पलसेटिला Q अथवा दूर्वा(साईनोडन डेक्टीलन) Q लगाने से फोड़ा फट जाता है।

बायोकैमिक मिश्रण—मवाद पैदा होने के पूर्व—

कल्केरिया फ्लोर ३×, फेरमफास १२×, कालीम्यूर ३×, कालीफास ३×, कालीसल्फ ३× देवें। मवाद हो जाने पर—साईलीसिया ३०× रोज देवें। मवाद या घाव को सुखाने के लिये-कल्केरिया सल्फ ३× ६× या १२× का किसी एक शक्ति का प्रयोग करें यह घाव को शीघ्र ही सुखा देता है।

विरेचन योग—त्रिवृत् (निसोत)के चूर्ण को घी, दूध, उष्ण जल, अंगूरों का रस (या मुनक्के का क्वाथ) इनमें से किसी एक से आलोडित कर विसर्प के नाश के लिए रोगी को विरेचनार्थ देना चाहिए।

उदुम्बरादि प्रदेह - गूलर की छाल, मुलहठी, पद्म केशर, नीलोत्पल, नागकेशर, प्रियंगु, इनके अत्यन्त श्लक्ष्ण चूर्ण को घी में मिला रोगी को प्रदेह लगाना चाहिए।

न्यग्रोधपादाद्यलेप—वट की नवीन कोमलजटा, कदली स्तम्भ के बीच का दण्ड, विसग्रन्थि (कमलकन्द) इन्हें पीसकर शतधौत घृत के साथ मिलाकर लेप करना चाहिए।

कालीसादि प्रलेप—...ली। (कलिया की लकड़ी अथवा दारु हल्दी) मुलहठी, नागकेशर, वन्य (कैवटीमोथा), लाल चन्दन, पद्माख, तेजपत्र, खस, फलिनी (प्रियंगु) इनके चूर्ण को घी में मिलाकर प्रलेप करना चाहिए।

सारवाद्यप्रलेप—अन्नतमूल, पद्मकेशर, खस, नीलोत्पल, मंजिष्ठा, लालचन्दन लोध, हरड़ इनके चूर्ण को घी में मिला प्रलेप करना चाहिये।

नलदाद्यप्रलेप—नलद (उशीर अथवा लामज्जक) हरेणु, दूब, राल, इनके चूर्ण को घी में मिला प्रलेप करें।

प्रपौण्डरीकाद्य प्रलेप—पुण्डरी काष्ठ, मुलहठी, वला, शालूक (कमल आदि का कन्द), नीलोत्पल, वट के पत्ते, दुर्वी (दूबी), इन्हें एकत्र घी में मिला लेप करना चाहिए।

इनके अतिरिक्त—जौ का यवागू और सत्त, इनमें से किसी एक को घी में मिला प्रदेह लगाना चाहिये।

मुलहठी, वीरा (या विदारीकन्द), जौ के सत्तू इन्हें एकत्र घी में मिलाकर विसर्पाक्रान्त देश पर प्रदेह करना चाहिये।

मटर या बड़ा चना, मसूर, मूंग, श्वेतशालि, इनमें से किसी को अथवा सबको ही एकत्र मिश्रित कर घी में मिलाकर प्रदेह तैयार करना चाहिए। इन्हें विसर्पाक्रान्त देश पर लगाना चाहिए।

पद्मिनी (कमलिनी) के जड़ पर लगा शीतल कीचड़ अथवा मुक्ता (मोती), शंख, मूंगा, सीप, गेरू, इनमें से किसी एक को घी में मिला लेप करना चाहिए। ये प्रलेप विसर्प के रोगियों के लिए विशेष हितकारी है।

बरगद, गूलर, प्लक्ष (पिलखन), वेतस, पीपल, जामुन इनकी छालों के कल्कों में प्रभूत मात्रा में घृत मिलाकर शीतल प्रलेप देना चाहिए।

कफ युक्त विसर्प में—

त्रिफलादि प्रदेह—हरड़-बहेड़ा-आंवला, पद्माख, खस, समङ्गा (लज्जालु), कनेर की जड़, नड़े की जड़, अनन्ता (अनन्तमूल अथवा दुरालभा) इसमें अल्पमात्रा में घी मिला कर प्रदेह प्रस्तुत करना चाहिये।

खदिराद्यालेपन—खदिर (कत्था), सप्तपर्णी (सतिवन की छाल), मोथा, अमलतास के पत्ते, धव की छाल, कुरण्टक (पीली झिण्टी), देवदारू इनका अल्पघृत में बनाया आलेप हितकर है।

कुरण्टक के स्थान पर कुरन्नर (कैवटीमोथा) धव के स्थान पर वासा से भी एक योग है। यथा मतान्तर में—

१—अमलतास के पत्ते, लसूड़े की छाल।

२—इन्द्राणीशाक (सम्भालु के पत्ते) काकाह्वा (मकोय) शिरीष के फूल।

३—शैवाल, नड़े की जड़, वीरा (विदारीकन्द), गन्ध प्रियंगु।

४—त्रिफला (हरड़-बहेड़ा-आंवला), मुलहठी, वीरा (विदारीकन्द), शिरीष के फूल।

५—पुण्डरीक काष्ठ, ह्रीवेर (गन्धवाला) दारुहल्दी की छाल, मुलहठी, वला।

उपरोक्त ५ योगों को पृथक पृथक अथवा दो-दो को मिला अथवा सबको एकत्र ही मिलाकर प्रदेहार्थ प्रयोग करना चाहिए।

वात-रक्त-पित्त-प्रधान विसर्प में केवल शतधौत घृत चुपड़ा जा सकता है। शीतल घी के मण्ड (उपरिवन स्वच्छ द्रव भाग) दूध, मुलहठी के क्वाथ अथवा पञ्चक्षीरी वृक्षों की छाल के शीतल क्वाथ से विसर्प का बहुशः परिषेचन करना चाहिए ये पृथक-पृथक चार योग हैं।

इसके अतिरिक्त उन्हीं द्रव्यों के क्वाथों से परिषेचन भी किया जा सकता है और उन्हीं के चूर्णों का विसर्प के व्रणों पर अवचूर्णन भी किया जा सकता है।

दार्व्याद्यवचूर्णन—दारु हल्दी का छिलका, मुलहठी, लोध नागकेशर इनके श्लक्ष्ण चूर्ण का अवचूर्णन भी विसर्प के व्रण का रोपक होता है।

पटोलपत्र, नीम की छाल, हरड़, वहेड़ा, आंवला, मुलहठी, नीलोत्पल, इससे व्रणप्रक्षलानार्थ क्वाथ बनाना चाहिए। इन्हीं द्रव्यों से यथाविधि घी सिद्धकर व्रण पर लगाया जा सकता है। इन्हीं द्रव्यों का चूर्ण व्रण पर अवचूर्णनार्थ प्रयुक्त हो सकता है। इन्हीं द्रव्यों के चूर्ण में घी

मिला प्रलेप भी कर सकते हैं।

बलाद्य प्रलेप—बला, नागबला (गंगेरन), हरड़, भूर्ज ग्रन्थि (भोज पत्र के वृक्ष की गांठ), बहेड़ा, वांस के पत्ते, अरणी छाल, इनके श्लक्ष्णपिष्ट कल्क का ग्रन्थि पर लेप करें।

दन्त्यादि लेप—दन्तीमूल की छाल, चित्रकमूल की छाल, सेहुण्ड का दूध, आक (मदार) का दूध, भिलावे का बीज, हीराकसीस, इन्हें एकत्र मिश्रित करें। यह लेप शिला को भी तोड़ डालता है।

कम्पिल्लकादि तेल—कमीला, वायविडङ्ग, दारूहल्दी, करञ्जुए का फल, इनके कल्क से यथाविधि तैल पाक करें। यह ग्रन्थि व्रण को शीघ्र शान्त करता है।

भावप्रकाश के अनुसार—

खरैंट्यादि लेप—रास्ना, नील कमल, देवदारु, लाल चन्दन, मुलैठी और खरैंटी इनको घी और दूध में पीसकर लेप करने से वात का विसर्प नष्ट हो जाता है।

कसेर्वादिलेप—कसेरू, सिघाड़े, पद्माख, गुन्द्रवटेर, सिवार, कमल और कोंच इनको पीसकर घी में मिलाकर वस्त्र में रखकर शीतल लेप करने से पित्त का विसर्प नष्ट हो जाता है।

त्रिफलादिलेप—हरड़-वहेडा आंवला, पद्माख, खस, लज्जावंती, कनेर, नरसल की जड़ और लाल जवासा इनका लेप करने से कफ युक्त विसर्प को नष्ट करता है।

दशांगलेप—सिरस की छाल, मुलहठी, तगर, लाल चन्दन, इलायची, वालछड़, हल्दी, दारूहल्दी, कूठ और सुगन्धवाला इन दस द्रव्यों को पीसकर घीं में मिलाकर लेप करने से विसर्प नष्ट हो जाता है।

इनके अतिरिक्त पंचवल्कलों का अथवा चन्दन का अथवा पद्माख, खस और मुलहठी इनके जल का सेचन करने से और गाढ़ा प्रलेप करने से विसर्प नष्ट हो जाता है।

चिरायता, अड़ूसा, कुटकी, कडवे परवल, हरड-बहेडा -आंवला, लाल चन्दन और नीम इनका क्वाथ बनाकर पीने से विसर्प नष्ट हो जाता है।

कंरज तैल—कंरज, सतोना, कलिहारी, थूहर, का दूध, आक का दूध, चीता, भांगरा, हल्दी, गोमूत्र और वत्सनाभ इनसे पकाये हुए तेल की मालिश करने से विसर्प नष्ट हो जाता है।

अष्टाङ्गहृदय के अनुसार

धमासा, पित्त पापडा, गिलोय सोंठ इनका क्वाथ दें।

दारुहल्दी, परवल, कुटकी, मसूर, त्रिफला, नीम, मुलहठी, त्रायमाण, इनका क्वाथ बनाकर घृत मिलाकर प्रयोग करावें।

सौंफ, नागरमोथा, वाराहीकंद, रालवृक्ष, नीलाकुरंटा, धनियां, क्षीरकाकोली, सेगवा या कूठ, इनका लेप वात विसर्प को हितकारी है।

पित्तक विसर्प में न्यग्रोधादिगण लेप और पद्मोत्पलादिगण लेप हितकारी रहता है।

वड़ की ताजी छाल, केले के वृक्ष का आन्तरिक भाग, कमलकंद से १०० बार धोया घृत मिला लेप करना चाहिए। शीतल किया कमलिनी का कीचड़ अथवा पानी में पिसा हुआ मोती या पिसा हुआ शंख, मूंग व सीपी अथवा घृत में पिसा हुआ गेरू यह लेप में हितकर है।

त्रिफला (हरड़-वहेडा-आंवला), पद्माख, खस, मजीठ, कनेर, वड़ की जड़, धमासा, इनका लेप कफ के विसर्प को हरता है।

धाय के फूल, शातला खैर, देवदार, कुरण्टा, नागरमोथा, अमलतास का लेप भी हितकर है। अमलतास के पत्ते और लसौड़ा की छाल, इन्द्रायण, शाकवृक्ष, मकोय, सिरस के फूल इनका भी लेप लाभदायक होता है।

कमल का पानी करके और ईख के रस करके और दूध करके सेचित करें। अकेले घृत के मण्ड करके सेचित करें अथवा शीतल किये मुलहठी के पानी से सेचित करें।

ग्रन्थि विसर्प के शूल में- दशमूल में पकाये हुये गर्म तैल से सेचित करें या दशमूल में पकायें गोमूत्र करके अथवा दशमूल में पकाये पानी से भी सेचित करने पर लाभ होता है।

जमालगोटा की जड़, चीता की जड़-छाल, थोहर का दूध, आक का दूध, गुड़, भिलावा की गुठली, कसीस, इनका लेप भी लाभ दायक होता है।

मूली और कुलथियों के यूषों करके खार और अनार

से सयुक्त किये गेहूँ और जौ और शीधु शहद खाण्ड इन्हें विजौरा के रस में मिलाकर शहद से संयुक्त वारूणी मदिरा करके शहद से संयुक्त करें पीपलों के प्रयोगों करके।

दारुहल्दी, वायविडग, कपिला इनसे सिद्ध किया तैल विसर्प में बहुत लाभ करता है।

मोथा, सौंफ, देवदारू, कूठ, वाराहीकन्द, धनियां, सहजना, भद्रदार्वादि या पिप्पल्यदि उष्णगणों का परिषेक लेप और घृत बनाने के काम में लावें कंटक पंचमूल, लघु पंचमूल, बृहत्पंचमूल, और वलीपंचमूल इनका भी लेप सेक, घृत और तैल बनाकर काम में लावें।

कसेरू, सिघाड़ा, कमल, मोथा, शैवाल और कमल की जड़ की कीच इन सबको पीसकर ठंडा घी मिलालें और विसर्प के ऊपर वस्त्र लगाकर ऊपर लेप करें।

नेत्रबाला, खस की जड़, चन्दन, सुरमा, मोती, मणि, गेरू, इनको दूध के साथ महीन पीसकर ठंडे घी में मिला लें और ऊपर मे पतला-पतला लेप करें।

प्रपौण्डरीक, मुलहठी, क्षीर विदारी, मंजीठ, पद्माख, चन्दन सुगन्धि का इनका लेप भी हितकर है।

परिषेक के लिये शीतल जल, शहद मिला पानी अथवा खाण्ड मिले ईख के रस या न्यग्रोधादि वर्ग के क्वाथ से करें।

गौर्य्यादि घृत—गौरी अर्थात हल्दी, मुलहठी, कमल लोध, रास्ना, चिरौंजी, गेरू, ऋषभक, पद्माख, सारिवा, काकोली, मेदा, कमोदनी, नीलोफर, चन्दन, शहद, खाण्ड, दाख, शालिपर्णी, पृष्णपर्णी, सितावर यह सब चार-चार पल लेवें और जल मिलाकर पीस लेवें फिर न्यग्रोधादि और विदारी गन्धादि और बिल्वादिक पंचमूल इनका चौगुना क्वाथ तथा चौगुना गाय का दूध, इन सब में एक प्रस्थ घी डालकर पका लेवें, इस घी का परिषेक करने से पित्तज विसर्प नष्ट हो जाती है।

अजगन्ध, असगन्ध, निशोथ, कसौंदी, सितावर, मेढ़ासिंगी इन सबको पीसकर गोमूत्र में मिलाकर लेप करने से कफ का विसर्प नष्ट हो जाता है।

तगर, अगर, तज, चिरमिठी, रास्ना, वच, शतिशिव (सौंफ), इन्द्रपर्णी (इन्द्रवारूणी), पालिन्दी (कालवल्ली), मुञ्जात, भूकदम इन सबको पीसकर लेप करने से कफज विसर्प नष्ट हो जाता है।

शुद्ध पारा, अभ्रक भस्म, कान्तलौह भस्म, गन्धक और सोनामाखी समभाग लेकर जङ्गली ककोडे के कन्द के रस से एक दिन तक मर्दन करें। फिर उसका गोला बनाकर जङ्गली ककोड़े कन्द के पेट में रखें और कन्द के ऊपर दो अंगुली मोटी मिट्टी लीपकर सुखा लेवें। फिर उसे एक दिन तक भूधर यन्त्र में पाक करें। फिर निकाल कर उसका दसवां भाग विष मिलाकर चूर्ण करलें और रखलें। इसे पीपरों का चूर्ण और शहद के साथ माशा भर की मात्रा में खाने से दस दिन में विसर्प को नष्ट कर देता है।

होमियोपैथिक

परिचय—इस रोग का साधारण अंग्रेजी नाम 'सैण्ट एण्टोनिस फायर" है। एलोपैथिक के मतानुसार एक प्रकार के जीवाणु के द्वारा यह रोग होता है, इन जीवाणुओं का नाम Streptococcus, Pyogenes या Streptococcus erysipelatis है। यह एक स्पर्शक्रामक बीमारी है।

(स्थानाभाव के कारण निदान आदि नहीं दे रहे हैं निदान के लिये आयुर्वेदिक और एलोपैथिक चिकित्सा में पढ़ें)।

चिकित्सा—

वेलाडोना ६, ३०, २००—यह दवा आरम्भिक अवस्था में प्रयोग की जाती है। प्राथमिक अवस्था में एकोनाइट का भी प्रयोग होता है किन्तु विसर्प होने पर जब तक डाक्टर को बुलाया जाता है तब तक तो एकोनाइट के लक्षण निकल जाते हैं और उसका स्थान वेलाडोना ग्रहण कर लेता है।

लक्षण—विसर्प का स्थान प्रदाहिक लाल रङ्ग का उसमें भयङ्कर जलन रहती है, रोगी का चेहरा लाल, आंखें लाल, तेज ज्वर रहता है। नाड़ी की चाल तेज, सर में दर्द आदि लक्षणों में सर्वप्रथम इसी दवा का प्रयोग करना चाहिए।

ऐपिस मेल ३०, २००—यह दवा मधु मक्खी के डङ्क से तैयार होती है। विसर्प स्थान फूला हुआ उसमें जलन रहती है और साथ ही डङ्क मारने की तरह दर्द रहता है। रोगी ठंडे स्थान में उपशम बोध करता है और गरम से वृद्धी होती है। पेशाब की मात्रा कम हो

जाती है।

आर्सेनिक ३०, २००—विसर्प में रोगी का रक्त विषाक्त हो जाता है अतः "विषस्य विषमौषधिम्" के सिद्धान्तानुसार आर्सेनिक एल्बम लाभप्रद दवा है किंतु यह याद रखना चाहिए कि रक्त विषाक्त का नाम सुनते ही आर्सेनिक का प्रयोग करना उचित नहीं है जहां आर्सेनिक के शारीरिक और मानसिक लक्षण होंगे वहीं पर यह लाभप्रद होगी जैसे—रोगी में भयानक अस्थिरता, जलन और उस जलन का गरम प्रयोग से उपशम, बेचैनी, मृत्यु-भय रोगी की दृढ़ धारणा हो जाती है कि वह अब बचेगा नहीं, अति दुर्बलता और अवसन्नता, प्यास, रोगी बार-बार कम मात्रा में जल पीता है। दिन या रात १२ से २ बजे के बीच रोग वृद्धी होती है।

लेकेसिस ३०, २००, १०००—ऊपर हम संखिया से निर्मित दवा आर्सेनिक के बारे में संक्षेप में लिख चुके हैं जो कि रक्त की विषाक्त अवस्था में उपयोगी है। पर रक्त विषाक्त होने पर सर्प विष से निर्मित लेकेसिस भी लक्षण सादृश्य होने पर आश्चर्यजनक काम करती है। आक्रान्त स्थान नीला रङ्ग लिये हुये लाल होता है, बायें तरफ रोग का आक्रमण, भयङ्कर जलन रहती है, तेज ज्वर, मस्तिष्क आक्रान्त होने पर प्रलाप, आक्रान्त स्थान पर स्पर्श सहन नहीं होता है। गरम से रोग वृद्धी, ठण्ड से उपशम होता है।

ऐन्थ्रासिनम ३०, २००—भयङ्कर जलन, लाल और नीली आभा लिये विसर्प में यह दवा अति लाभदायक है विशेष करके जहां रक्त विषाक्त होवे। इस दवा को देते ही जलन आदि लक्षण मन्त्र शक्ति की तरह शान्त हो जाते हैं।

रसटाक्स ३०, २००—वर्षा के समय में होने वाले विसर्प की अच्छी दवा है। आक्रान्त स्थान पर आग से जलने से जैसा फफोला होता है उसी प्रकार के फफोले होते है उनमें पानी भरा रहता है। यह पानी जिस जगह लगता है उसी जगह नया झलक पैदा हो जाता है। अस्थिरता, बेचैनी रहती, ज्वर शाम को और रात में अधिक होती है। पतला मल त्याग होता है।

मार्कसोल ३०, २००—ज्वर के साथ पसीना होता है पर पसीने से ज्वर कम नहीं होता है और वृद्धी ही होती है। जीभ सफेद रहती है या मैली फूली और भीगी हुई पर प्यास का अभाव रहता है। आक्रान्त स्थान लाल रहता है। बिछावने की गरमी से रोग वृद्धी।

ऐचिनेसिया Q, ३×—रक्त विषाक्त होने पर इसका प्रयोग करना चाहिए आक्रान्त स्थान में भयङ्कर जलन रहती है।

सावधानता—ऐपिस मेल के पहिले और बाद में रसटक्स का प्रयोग करना चाहिए। यह रोग संक्रामक है अतः एक बच्चे को होने पर दूसरे बच्चों को उससे अलग रखना चाहिए।

कैलेन्डूला Q—कैलेन्डूला का बाहरी प्रयोग बहुत ही लाभदायक है।

ऐट्रोपाइन ३—डा० काफ्का बेलाडोना विफल होने पर इस दवा की व्यवस्था करते हैं।

उपरोक्त दवाइयों के अलावा—ग्रेफाइटिस, कैन्थारिस, सल्फर, युफोर बियम, आर्निका आदि का भी प्रयोग होता है।

बायोकैमिक—

फेरमफास ३×६×१२× रोग के आरम्भ या प्रदाहित अवस्था की प्रधान दवा है। चमड़े का रंग लाल, गरम, ज्वर और दर्द। इसका बाहरी प्रयोग भी होता है। यदि पित्त के लक्षण भी साथ में होवे तो नेट्रमसल्फ का प्रयोग पर्याय क्रम से करें।

नेट्रमसल्फ ३×६×१२×—विसर्प रोग में यह दवा भी लाभदायक होती है। पित्त की वमन के साथ रोग का आक्रमण होता है। वर्षा की मौसम में यह विशेष लाभदायक है।

कैलीम्यूर ३×६×—जल भरी फुन्सियां या छाले पैदा हो जाने पर यह दवा बहुत अधिक लाभप्रद है। यह प्रदाह की दूसरी अवस्था की दवा है। साथ में ज्वर रहने पर फेरमफास के साथ या पर्याय क्रम से देना चाहिए।

कैलीफास ३×६×—सड़न की तरफ झुकाव होने पर निर्वाचित दवा के साथ मिलाकर या पर्याय क्रम से इसका प्रयोग करना चाहिए।

संमिश्रण योग—फेरमफास १२× कालीम्यूर ३× नेट्रमसल्फ ३× मिलाकर ५ ग्रेन की मात्रा में आधा पाव सुषुम जल में मिलाकर ४-४ चम्मच प्रति २ घण्टा अन्तर पर रोगी को पिलाना चाहिए।

नोट—गाय का दूध इस रोग का सर्वश्रेष्ठ पथ्य है।

रक्त-संस्थान के रोगों का वर्णन एवं चिकित्सा

त्वचारक्तिमा–त्वचा का लाल होना। आयुर्वेद के मत से यह रक्तज रोग है। किन्तु स्वतन्त्र व्याधि के रूप में इसका मिलना प्रायः कम ही माना है। अधिकांश रूप में यह परतन्त्र व्याधि के रूप में मिलता है। इसको मूल रोग का उपद्रव कह सकते हैं। फिर भी इसको स्वतन्त्र और परतन्त्र इन २ भेदों में विभक्त कर लेना अच्छा है। जिससे चिकित्सा करने में सुविधा रहेगी। दूसरी बात यह है कि यह रोग शारीरिक और आगन्तुक इन दो कारणों से दो प्रकार का मान लिया जाता है। शारीरिक त्वचा-रक्तिमा का कारण वातादि दोषों के प्रकोप से उत्पन्न

विकार होता है। आगन्तुक कारणों से होने वाले त्वचा रक्तिमा में आघात, क्षत, घर्षण, पिच जाना, विषयुक्त वातस्पर्श, अति उष्णता, विषैले प्राणियों के नख, दन्त आदि का प्रहार तथा अन्य किसी प्रकार के कारण जैसे धूप, अग्नि, विद्युत आदि के तापांश से प्रभावित हुए आदि माना जाता है। अतः इसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से है—

(क) त्वचारक्तिमा–दोष प्रकोप जन्य विकारों अथवा व्याधियों में जो उपद्रव रूप में अथवा अंशांश रूप में प्राप्त होती है, उसके ज्ञान के लिये हम यहां पर कुछ व्याधियों का उल्लेख कर रहे हैं–

(१) सन्निपातज ज्वर–इस ज्वर में शरीर पर लाल रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं। इनका मूल त्वचा ही है अतः यह त्वचारक्तिमा का ही स्वरूप है, इसकी उत्पत्ति रक्त की प्रधानता के साथ पित्त और कफ का अल्प सम्बन्ध होने पर होती है। मालुकितन्त्र में इस पर स्पष्ट लेख मिलता है कि—

> वरूटीदष्टसंकाशः कण्डूमांल्लोहितोऽस्रकफपित्तात् ।
> क्षणिकोत्पादविनाशः कोठ इति निगद्यते तज्ज्ञैः ॥

अर्थात् इस सन्निपातज ज्वर में ततया के द्वारा काटने के समान चकत्ते या दौड़े पड़ जाते हैं, इन्हें कोठ भी कहते हैं। इनकी उत्पत्ति रक्त, कफ और पित्त की मिश्रित प्रतिक्रिया से होती है इसमें खुजली विशेष रूप से होती है। किन्तु यह चकत्ते के रूप में मिलने वाली त्वचा रक्तिमा अल्पकालिक होती है। स्वल्प समय में ही यह स्वयं ही नष्ट भी हो जाती है। यदि किसी विशेष अवस्था में ऐसा न भी हो पाए तो भी इसकी पृथक से चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। केवल मूल व्याधि सन्निपात ज्वर की चिकित्सा से ही इन चकत्तों का देहावसान अर्थात् लोप स्वयं ही हो जाता है। दोषों की विकल्प संप्राप्ति को दृष्टिगोचर करके औषधि प्रयोग करने से कुछ ही समय में दोषों की शक्ति का ह्रास होने लगता है और यह त्वचा रक्तिमा शान्त हो जाती है। फिर भी यदि कण्डू आदि से रोगी को अधिक कष्ट प्रतीत होता हो तो मुख्य औषधि के साथ हेतु और व्याधि के तारतम्य को संभालते हुए गुडूची सत्व और मुक्ता पिष्टी का अल्प प्रयोग वैद्य के परामर्श से किया जा सकता है। क्योंकि वस्तुतः यह त्वचा रक्तिमा कोठ रूप में प्राप्त होने वाली, सन्निपातज

ज्वरों के लक्षणों में सम्मिलित है।

त्वचा रक्तिमा-वातज उन्माद में—यह त्वचा की लाली भी दोषज एवं शारीरिक रोग के लक्षण में सम्मिलित है। इसमें सम्पूर्ण शरीर की त्वचा का वर्ण लाल गुलाबी रंग का हो जाया करता है। चूंकि यह दोषज और रोग से सम्बन्धित त्वचा रक्तिमा है, अतः दोषों के घटते ही अथवा रोग के प्रशमित होते ही स्वयं ही गायब हो जाती है। इसको भी पृथक से विकार नहीं माना जा सकता। क्योंकि इसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यहां पर केवल त्वचा की रक्तिमा के संदर्भ में जानार्थ इसका परिगणन किया जा रहा है। यद्यपि इसकी चिकित्सा की स्वतन्त्र रूप से आवश्यकता नहीं है फिर भी रोगी का मन रखने के लिये रोगानुसारी औषधियों के साथ अभ्रकभस्म, प्रवाल भस्म अथवा वैक्रान्त भस्म का उचित मात्रा में चिकित्सक की परामर्श से प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि यह वातोन्माद की त्वचा रक्तिमा रक्तज रोग नहीं है अपितु वायु के गुण धर्मानुसारी लक्षण मात्र ही त्वचा में प्रकट होकर रक्तवर्णता आती है। जैसा कि आयुर्वेद में लिखा है—

अस्थानहास स्मित नृत्यगीतवागंग विक्षेपण रोदनानि।
पारुष्य काश्यारुणवर्णताश्च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम्॥

त्वचा रक्तिमा-त्वग्गतवात रोग में—वायु के प्रकोप से त्वचा में विकार उत्पन्न होने पर प्राप्त होने वाले लक्षणों में भी कहीं-कहीं लाल चकत्ते त्वचा पर उत्पन्न हुए मिलते हैं। ये भी दोषज एवं शारीरिक हैं। वस्तुतः यह रसगत वातदोष का परिणाम होते हैं। लाल चकत्ते पड़ना वायु के गुण के कारण होता है। जैसा कि भगवान चरक ने लिखा है कि—

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते।
आतन्यते सरागा च पर्वरुक् त्वग्गतेऽनिले॥

इसकी गणना भी रोग लक्षणों में है, स्वतन्त्र व्याधि के रूप में नहीं है। इसकी चिकित्सा त्वग्गवात चिकित्सा के अनुसार ही है, भिन्न नहीं। क्योंकि त्वग्गत वात के प्रशमित होते ही त्वचा की रक्तिमा आदि बातें स्वयं ही शान्त हो जाती हैं।

त्वचारक्तिमा-वातरक्त रोग में—जब वातरक्त में रक्त की दुष्टि बहुत प्रबल हो जाती है तो वहां का शोथ पीड़ा युक्त तथा लाल वर्ण का होता है। यह त्वचा रक्तिमा रक्तज और शारीरिक है। यदि वातरक्त में पित्त का अनुबन्ध हो जाता है तो भी विकृत स्थान पर लाली हो जाया करती है। इस प्रकार से यहां पर वातरक्त में रक्त और पित्त के प्रकोप से रोग के लक्षणों में मिलने वाली लाली वस्तुतः त्वचा रक्तिमा है, किन्तु यह भी स्वतन्त्र व्याधि नहीं है। केवल दोषों के अनुबन्ध से होने वाली विकृति है। अतः रोग एवं दोषानुसारी चिकित्सा ही इसकी मूल चिकित्सा है। क्योंकि यह वातरक्त रोग के लक्षणों में है जैसा कि आयुर्वेद में कहा गया है कि—

रक्ते शोथोऽतिरुक् तोदस्ताम्रश्चिमचिमायते। तथा च
पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदः सतृट्।
स्पर्शासहत्वं रुग्राग शोथः पाको भृशोष्मता॥ च. चि. २९

त्वचारक्तिमा-पैत्तिक आमवात में—यह त्वचा-रक्तिमा भी दोषज एवं शारीरिक है। केवल पैत्तिक प्रभाव से होने वाली यह लाली भी स्वतन्त्र व्याधि न होकर रोग के लक्षण में ही प्राप्त होने वाली विकृति मात्र है। यहां पर पित्त का प्रभाव समाप्त होते ही यह लाली तथा जलन स्वयमेव शान्त हो जाती हैं। क्योंकि यह तो पित्त के अनुबन्ध से होने वाला आमवात का एक लक्षण है किन्तु इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह त्वचा की लाली नहीं है। अनुभवहीन व्यक्ति कहे तो कहे। अतः यह स्वतन्त्र व्याधि के रूप में सर्वथा ही चिकित्सा अधिकार से बाहर है। केवल रोगानुसारी चिकित्सा ही की जाए अथवा दोष संशमनी क्रिया भी लाभ करेगी। क्योंकि यह पैत्तिक है। जैसा कि आयुर्वेद में कहा है कि—

पित्तात्सदाहरागं च सशूल पवनानुगम्।
स्तिमितं गुरु कंडू च कफदुष्टं तमादिशेत्॥

त्वचा रक्तिमा—पैत्तिक एवं रक्तज गुल्म में—यह त्वचा की रक्तिमा अंगों के लाल वर्ण के रूप में होती है। पैत्तिक और रक्तज गुल्म में ही होती है। क्योंकि यह लाली पित्त और रक्त के विकार स्वरूप होती है। अतः पैत्तिक एवं रक्तज गुल्म के लक्षण के रूप में स्वीकृत है। रक्त के दूषित होने से भी यह प्रादुर्भूत होती है। अतः रक्तज है। किन्तु विकृति मात्र है, संभव व्याधि नहीं। जैसाकि आयुर्वेद में लिखा है—

आमाभिघातोरुधिरंच दुष्टं पैत्तस्यगुल्मस्य निमित्तमुक्तम्। ज्वरः पिपासा वदनांगरागः शूलं महज्जीर्यति भोजनं च॥
—च. चि. ५।

अतः यह गुल्म रोग की दोषज विकृति है, रोग एवं दोषानुसारी चिकित्सा से ही इसका प्रशमन होता है। पृथक चिकित्सा से लाभ नहीं होगा।

त्वचा रक्तिमा—वातज उदर रोग में—वातिक उदर रोग में भी प्राप्त होने वाले लक्षणों में 'श्यावारुणत्व-गादित्वमकस्मद् वृद्धिह्रासवत्' इस आयुर्वेदीय उपदेश से त्वचा की रक्तिमा मानी जाती है। किन्तु यह भी दोषज विकृति मात्र है स्वतन्त्र एवं मौलिकव्याधि नहीं। अतः इसकी चिकित्सा का प्रश्न नहीं है।

त्वचा रक्तिमा—वातिक शोथ में—आयुर्वेद में वातिक शोथ के वर्णन में 'चलस्तनुत्वक् परुषोऽरुणोसितः—इत्यादि पद में त्वचा की रक्तिमा को वातिकशोथ के लक्षणों में स्वीकार किया है। यह भी दोषज एवं शारीरिक है। रोगका लक्षण होने से इसको भी स्वतंत्र व्याधि नहीं माना गया है। अतः इसकी भी पृथक् चिकित्सा निर्देशन की आवश्यकता नहीं है।

त्वचारक्तिमा—वातजवृद्धि रोग में—आयुर्वेद में वातज अण्डकोष की वृद्धि के लक्षणों में लिखा है—'पक्वो-दुम्बर संकाश:' अर्थात् पके हुए गूलर के फल के समान लालवर्ण की वृद्धि हो जाती है। सम्पूर्ण अण्डकोष का रंग लाल दिखाई देता है। यह बाह्य रोग है और चर्म पर ही अवस्थित रहता है अतः यह त्वचा रक्तिमा भी दोषज एवं शारीरिक है। पृथक स्वतन्त्र रूप से इस व्याधि का कोई अस्तित्व न होने से चिकित्सा सूत्र की भी आवश्य-कता वही है।

त्वचारक्तिमा—वातज गलगण्ड रोग में—

"तोदान्वितः कृष्णसिरावनद्धः
श्यावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु"

अर्थात् वातिक गलगण्ड रोग में सूई चुभने के समान पीड़ा, काली शिराओं का दिखाई देना, श्याव अथवा गुलाबी रंग की सवर्णता होना पाया जाता है। वर्ण त्वचा का धर्म है, अतः त्वचा में अरुण या गुलाबी वर्ण का होना त्वचा की रक्तिमा ही है। यह दोषज एवं शारीरिक है। स्वतन्त्र रोग नहीं है।

त्वचारक्तिमा—पैत्तिक ग्रन्थिरोग में—सुश्रुत निदान अध्याय ११ में कहा है—

रक्तःसपीतोऽप्यथवाऽपित्तात् भिन्नः श्रवेदुष्णमतीवचास्रम्।

अर्थात् पित्तज ग्रन्थि में त्वचा का वर्ण लाल होता है अथवा पीला होता है। इस प्रकार से यह त्वचा रक्तिमा दोषज एवं शारीरिक है तथा रोग का लक्षण है और दोषज विकृति मात्र है। अतः स्वतन्त्र व्याधि नहीं है। दोष एवं रोगानुसारी ही चिकित्सा की भी यहां पर अपेक्षा है। स्वतन्त्र चिकित्साकी आवश्यकता नहीं है।

त्वचारक्तिमा वातज विद्रधि रोग में—यह त्वचा की लाली विद्रधि के लक्षणों का एक अंग है। शारीरिक एवं दोषज विकृति मात्र है। यह रक्तिमा त्वचा के वर्ण तक ही सीमित है। जैसाकि आयुर्वेद में लिखा है—

कृष्णोऽरुणोवाविषमोभृशमत्यर्थवेदनः।

'अर्थात् काले या लाल वर्ण की यह विद्रधि होती है। वर्ण त्वचा का धर्म है। अतः यह त्वचा की रक्तिमा लक्षण मात्र होने से स्वतन्त्र चिकित्सा योग्य नहीं है।

त्वचारक्तिमा—पित्तज विद्रधि रोग में—पित्त के प्रकोप से होने वाले विद्रधि रोग में जो लक्षण पाये जाते हैं, उनमें त्वचा का वर्ण लाल होना माना गया है। जैसे—

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान्।

अर्थात् पके हुए गूलर के फल के समान त्वचा का लाल वर्ण पैत्तिक विद्रधि में होता है। यह त्वचा रक्तिमा भी दोष विकृति एवं शारीरिक है। अतः यह स्वतन्त्र व्याधि नहीं है।

त्वचारक्तिमा—रक्तज व्रण में—आयुर्वेद में शारी-रिक व्रण के निरूपण में कहा है—'रक्तो रक्तस्रुती रक्तात्' अर्थात् रक्तज व्रण लाल रंग का होता है। इत्यादि यह त्वचा की रक्तिमा है, दोषज और शारीरिक है। अतः इसकी चिकित्सा भी व्रण की चिकित्सा ही है।

त्वचारक्तिमा—पैत्तिकभगन्दर में—पैत्तिक भग-न्दर को आयुर्वेद में उष्ट्रग्रीव नाम से भी व्यवहृत किया है। क्योंकि इस भगन्दर की सूरत ऊंट की गर्दन के समान है। यह इस प्रकार है—

प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितं
करोतिरक्तांपिडकां गुदाश्रितम् ।

अर्थात् पित्त के प्रकोपक कारणों से कुपित हुआ पित्त, गुदा के समीप लालवर्ण की पिडिका उत्पन्न कर देता है । यह लालिमा त्वचा के रूप की ही द्योतक है । अतः यह भी दोषज एवं शारीरिक है । और इसकी चिकित्सा भी वही है जो पैत्तिक भगन्दर की है । स्वतन्त्र चिकित्सा से इस पिडका का वर्ण परिवर्तित नहीं होगा ।

त्वचारक्तिमा-पुष्करिका नामक शूक दोष में—आयुर्वेद में लिंग वृद्धि के लिए जो औषधि योग वतलाये हैं, उनके गलत प्रयोग से यह पुष्करिका नामक रोग हो जाता है । जैसा कि लिखा है—

पिडका पिडिकाव्याप्ता पित्तशोणित संभवा ।
पद्मकर्णिका संस्थाना ज्ञेया पुष्करिकातुसा । १ ।

अर्थात् बहुत सी फुन्सियों से भरी हुई, पित्त और रक्त के प्रकोप से उत्पन्न होने वाली कमल के कणिकाओं के समान आकार वाली यह पिडका पुष्करिका कहलाती है । यह रक्तज त्वचा लालिमा है । क्योंकि पद्म लाल वर्ण का होता है । और उसकी कणिकायें भी लाल वर्ण की होती हैं । अत: यह त्वचा रक्तिमा है और दोषज एवं शारीरिक है । इसकी चिकित्सा दोष एवं रोग के अनुसार ही है, स्वतन्त्र चिकित्सा से कोई लाभ नहीं है ।

त्वचारक्तिमा-कापालकुष्ठ में—आयुर्वेद में उपदिष्ट सात महाकुष्ठों में एक कापालकुष्ठ का सर्व मुख्य वर्णन मिलता है । जैसे—

"कृष्णारुण कपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु"

अर्थात् काले और लाल वर्ण के घड़े के खिपड़े के समान रूक्ष, कठिन, अल्प त्वचा वाले तोद से युक्त कुष्ठ को कापालकुष्ठ कहा जाता है यह त्वचा की रक्तिमा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है । हमारा भी अनुभूत है । सन् १९४८ में एक गढ़वाली रोगी लाहौर में हमने देखा था । दो इञ्च से लेकर छः इञ्च तक के व्यास के लाल-लाल कुछ कालिमा लिए हुए लगभग ५० दाग उसके शरीर पर थे । यह दोषज एवं शारीरिक है । दोष एवं रोग चिकित्सा से ही इसमें भी लाभ हो सकता है । केवल त्वचा का वर्ण परिवर्तन असम्भव है । इसी प्रकार से त्वचा रक्तिमा औदुम्बर कुष्ठ, पुण्डरीक कुष्ठ और काकणक कुष्ठ में भी त्वचा की रक्तिमा प्रमुखरूप से रहती है । ये सभी कुष्ठ रक्तज रोग हैं । अतः इस त्वचा रक्तिमा का सीधा सम्बन्ध रक्त विकृति से है । रक्त विकृति की चिकित्सा होने पर ही इन रक्तिमाओं का विलोप हो सकता है अन्यथा नहीं । विना दोष एवं रोग के नष्ट हुए उसकी विकृति नष्ट नहीं हो सकती । हेतु व्याधि विपरीत चिकित्सा ही वास्तविक चिकित्सा है । अत: आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा विज्ञान के समान ऊपरी लीपा पोती करने से त्वचा की प्रमुखता वाले रोग नहीं जा सकते । यदि किसी विकार का सम्बन्ध केवल त्वचा तक ही सीमित हो तो भी केवल व्याधि विपरीत चिकित्सा से सफलता नहीं मिलती, जब तक कि साथ में हेतु विपरीत चिकित्सा न की जाए ।

श्वित्रकुष्ठ के नष्ट न होने का जो ढोल आधुनिक चिकित्सक पीटते हैं उसका यही कारण है "नाच न जाने आंगन टेढ़ा' वाली उक्ति चरितार्थ करते हैं । श्वित्र की श्वेतता को जन्म देने वाले दोषज तत्व जब तक रक्त और त्वचा में से पृथक नहीं कर दिये जायेंगे, श्वेतकुष्ठ (फुलवहरी) पर कोई चिकित्सा सफल नहीं हो सकती । आयुर्वेद के पारगामी दिव्यदृष्टि महर्षियों ने इस बात को बखूबी समझ लिया था । इसीलिए खदिर का अन्वेषण हुआ । मधुमेह के लिए विजयसार और शिलाजीत की खोज इसी आधार पर की गई थी । किन्तु यह भी ठीक है कि आजकल के भूमिस्थ किन्तु आकाशद्रष्टा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की मोहर उस पर लगी हुई नहीं है । इन्सुलीन पर है । इसीलिए वह अंधों में काना सरदार की भांति विश्व विजयी है ।

त्वचा रक्तिमा-विस्फोट, शतारु आदि रोगों में—आयुर्वेद ने विस्फोटक की त्वचा को पतली और रक्त वर्ण का माना है । अनुभव से भी यही देखने को मिला है । शतारु नामक कुष्ठ में भी रक्त वर्ण की त्वचा मानी गयी है इन सबको कुष्ठ माना गया है । एकादश क्षुद्र कुष्ठों में इनका परिगणन किया गया है । हेतु और व्याधि के अनुसार ही इनकी चिकित्सा का सिद्धान्त है । अन्यथा लाभ नहीं होता, यह हमारा अनुभव है ।

त्वचा की रक्तिमा-किलास कुष्ठ में—वातिक

किलास में त्वचा को रूक्ष एवं अरुण वर्ण की माना है। पित्तज किलास में भी त्वचा को कमलपत्र के समान ताम्र वर्ण का माना है जैसा कि लिखा है—

कुष्ठैकसंभवं श्वित्रंकिलासं वारुणं भवेत्।
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भव संश्रयम्॥
वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत्॥
—वा० नि० १४

अतः यहां की त्वचा रक्तिमा दोषज विकृति एवं रोग के लक्षण के अन्तर्गत होते हुए भी रक्तज है। क्योंकि अरुण और ताम्र दोनों ही प्रकार के किलास क्रमशः रक्त और मांसधातु में संश्रय रखते हैं। अतः इस त्वचा रक्तिमा को रक्तज माना जाता है। इसकी चिकित्सा भी स्वतन्त्र रूप से नहीं हो सकती। क्योंकि यहां की त्वचा रक्तिमा रोग का लक्षण होते हुए भी रोग का एक अंश भी है। अतः सम्पूर्ण रोग की चिकित्सा ही इस त्वचा रक्तिमा की भी चिकित्सा है। केवल त्वचारक्तिमा को दूर करने का कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता, यह सत्य है।

त्वचा रक्तिमा-विसर्प रोग में—आयुर्वेद की प्रणाली के अनुसार विसर्प की उत्पत्ति में रक्त भी एक कारण है। पैत्तिक विसर्प का लक्षण करते हुए आचार्य वाग्भट ने कहा है—

'पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वर लिंगोऽतिलोहितः।'
—वा० नि० १३

अर्थात् पित्तज विसर्प बहुत शीघ्र बढ़ता है। उसमें पित्त ज्वर के समान लक्षण होते हैं। यह पैत्तिक विसर्प गहरे लाल वर्ण से सम्पन्न रहता है। स्पष्ट है कि इसकी त्वचा रक्तिमा बहुत गहरे लाल रंग की होती है। यह भी दोषज एवं शारीरिक है। इसमें त्वचा, रक्त, मांस आदि सम्मिलित रहा करते हैं। अतः इसकी चिकित्सा भी स्वतन्त्र रूप से न करके रोगानुसार ही चिकित्सा करने से लाभ हो सकता है अन्यथा नहीं। क्योंकि यह भी त्वचा रक्तिमा स्वतन्त्र नहीं है अपितु विसर्प रोग का एक अंशात्मक रूप है। रोग के रहते हुए यह लालिमा दूर नहीं की जा सकती।

त्वचा रक्तिमा—पैत्तिक विस्फोट और रक्तज विस्फोट रोग में—आयुर्वेद में रक्त, पित्त और वायु के मिलन से त्वचा पर अग्नि से जलने पर उत्पन्न हुए फफोलों या छाले के समान सारे शरीर में ज्वर दाह आदि से युक्त विस्फोटों का ही यहां ग्रहण हुआ है। यह योग त्वचा, रक्त, मांस आदि के आश्रित रहता है। पैत्तिक विस्फोट के लक्षणों में कहा है—

ज्वर दाहरुजास्रावपाक तृष्णाभिरन्वितम्।
पीतलोहितवर्णं च पित्त विस्फोट लक्षणम्॥१॥

अर्थात् ज्वर, दाह, पीड़ा, स्राव, पकने के गुण वाले, प्यास से युक्त, पीले और लाल रंग के विस्फोट पित्तज हुआ करते हैं। स्पष्ट है कि इन फफोलों की त्वचा लाल वर्ण की होती है और प्रायः सभी का अनुभव भी ऐसा ही है। यह भी त्वचा रक्तिमा दोषज एवं शारीरिक है और रोगानुकूल चिकित्सा से ही दूर हो सकती है, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार से रक्तज विस्फोट के वर्णन में आयुर्वेद में लिखा है—

रक्तारक्त समुत्थाना गुञ्जा विद्रुम सन्निभाः।
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना॥ १॥

अर्थात् रक्तज विस्फोटों की उत्पत्ति रक्त से होती है और ये विस्फोट गुञ्जा अथवा मूंगा के समान लाल वर्ण वाले होते हैं। इनकी उत्पत्ति में विशेष रूप से पित्त प्रकोपक कारणों के द्वारा उत्तेजित रक्त ही प्रमुख कारण होता है। यह त्वचा रक्तिमा रक्तज रोग है और हेतु तथा व्याधि विपरीत चिकित्सा कर्म से ही दूरीकरण हो सकता है, अन्यथा नहीं। वैसे रक्तज विस्फोटों का कोई इलाज नहीं है। आयुर्वेद ने स्पष्ट लिख दिया है कि—

'न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतैरपि॥'

अर्थात् ये रक्तज विस्फोट सैकड़ों सिद्ध प्रयोगों से भी साध्य नहीं हो सकते। अतः इस त्वचा रक्तिमा की चिकित्सा का प्रश्न ही नहीं उठता।

त्वचा रक्तिमा-मसूरिका रोग में—मसूरिका रोग उद्भव त्वचा को आश्रय करके रक्त, मांस आदि को दूषित करके वात आदि दोषों के द्वारा ही होता है। यह दोषज एवं शारीरिक विकार है। अतः इसमें मिलाने वाली त्वचा की रक्तिमा भी तदनुकूल है। वातज और पित्तज एवं रक्तज मसूरिका में त्वचा का वर्ण लाल रहता है। जैसा कि आयुर्वेद में स्पष्ट किया है—

वातज–स्फोटाः श्यावारुणारूक्षास्तीव्र वेदनयाऽन्विताः ।
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिल संभवाः ॥
पित्तज–रक्ताः पीत सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः ।
भवन्त्यचिरपाकाश्च पित्तकोप समुद्भवाः ॥ १ ॥
रक्तज—रक्तजायां भवन्त्येतेविकाराः पित्तलक्षणाः ।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि वातज, पित्तज और रक्तज मसूरिका के दाने लाल वर्ण की त्वचा वाले होते हैं। अतः ये भी रोग के अनुसार ही चिकित्सा के अधिकार में आते हैं। यहां पर भी पृथक चिकित्सा कदापि सफल नहीं हो सकती। यह बात सभी आयुर्वेदज्ञ जानते ही हैं। रक्तज मसूरिका के दानों का स्पष्ट वर्णन करते हुए स्पष्ट किया गया है—

रक्तस्या लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।
साध्या नात्यर्थदुष्टाश्चभिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ।१।

अर्थात् रक्त में प्राप्त मसूरिका का वर्ण लाल होता है, यह शीघ्र ही पक भी जाती है। इसकी त्वचा पतली होती है। इत्यादि। अतः यह त्वचा की रक्तिमा स्पष्ट ही रक्तज है, अतः रक्तदोष के अनुसार ही चिकित्सा की जायेगी तो लाभ होगा अन्यथा नहीं। रक्तज मसूरिका को आयुर्वेद ने साध्य माना है।

त्वचा रक्तिमा—गर्दभिका विदारिका आदि क्षुद्ररोगों में—आचार्य सुश्रुत ने गर्दभिका और विदारिका का लक्षण निम्न प्रकार से दिया है—

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडकाचितम् ।
रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्यात् वातपित्तजाम् ॥

अर्थात् गर्दभिका नाम के रोग में, पिडकाओं से व्याप्त लाल वर्ण का गोल और उभरा हुआ पीड़ासहित मण्डल माना है। त्वचा में इसकी उपस्थिति लाल रंग की होती है। यह पित्तज रोग है। वात का पूर्ण सहयोग रहता है। अतः यह दोषज और शारीरिक विकार है। गर्दभिका की चिकित्सा ही इस रोग की त्वचा रक्तिमा को दूर कर सकती है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार से विदारिका के लक्षण में भी स्पष्ट किया गया है—

विदारिकन्दवद्वृत्ता कक्षावंक्षण सन्धिषु ।
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा................ ॥

अर्थात् विदारिका नामक क्षुद्ररोग कांख, वंक्षण प्रदेश की संधियों में विदारीकन्द के समान गोल और लाल वर्ण का रोग होता है। यह त्वचा की लालिमा त्रिदोषज विकृति है। अतः दोष एवं रोग के अनुसार ही चिकित्स्य है।

त्वचारक्तिमा—रक्तज ओष्ठ प्रकोप रोग, तालु-अर्बुद, विदारी, इन तीनों में मुख रोगों में भी त्वचा का लाल वर्ण होता है। और यह दोषज विकृति है। तथा रोग के लक्षणों में सम्मिलित है।

त्वचारक्तिमा—परिपोटक रोग, उत्पात रोग, इन दो कर्ण रोगों में भी त्वचा की रक्तिमा रहती है।

त्वचारक्तिमा—अञ्जन नामिका, क्लिष्टवर्त्म, अर्बुद, शोणितार्श, इन नेत्र रोगों में भी वातादि दोष के प्रकोप से तथा रक्त के सम्बन्ध से त्वचा की रक्तिमा हुआ करती है।

त्वचारक्तिमा—योनिकन्द रोग में—नारियों के योनिकन्द रोग में पित्त की प्रधानता होने पर उसकी त्वचा का रंग लाल होता है। यथा—

दाहरागज्वरयुतं विद्यात् पित्तात्मकं तुतम्

आगन्तुज त्वचारक्तिमा—

१—शरीर पर उथला आघात पड़ने पर जो त्वचा में लालिमा आजाती है, वह भी त्वचा रक्तिमा है। इसमें चोट लगने से रक्त उभर कर त्वचा में आजाता है और कुछ त्वचा को पार करके झलकने लगता है। अतः यह त्वचारक्तिमा आगन्तुक है। इसकी चिकित्सा आगन्तुक व्रण आदि के ही समान रूप से की जाती है।

२—त्वचारक्तिमा—सर्पदंष्ट में—आयुर्वेद के अगद-तन्त्र में सर्पदंष्ट प्रकरण में असाध्य लक्षणों का वर्णन किया गया है। वहां पर यह भी स्पष्ट किया है कि जिस सर्पदंष्ट रोग के दंश स्थान पर लालीपन लिए हुए कृष्ण-वर्ण का शोथ हो तो वह रोगी असाध्य माना जाता है। जैसे—

कृष्णःसरक्तः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वं च विवर्जनीयः।

अतः यहां पर भी त्वचा की रक्तिमा मानी गई है। किन्तु यह आगन्तुज विष के असाध्य लक्षण का एक अंश है। अतः स्वतन्त्र व्याधि नहीं है। असाध्य होने से इसकी भी चिकित्सा नहीं की जा सकती।

त्वचा रक्तिमा-लूतादंश में-लूता मकड़ी को कहते हैं। अगदतन्त्र के अन्तर्गत मकड़ी के दंश लक्षणों का निरू-

पण किया गया है। इन लक्षणों में माना गया है कि मकड़ी के दंश स्थान पर की त्वचा रक्त वर्ण की होती है। जैसा सुश्रुत में लिखा है—

महान्तोमृदवः शोफा रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा।
सामान्यं सर्वलूतानामेतदादंश लक्षणम्॥

अर्थात् बड़े-बड़े कोमल फफोलों के रूप में शोथ लाल वर्ण के कुछ श्याम वर्ण के सम्पूर्ण प्रकार की मकड़ियों के दंश लक्षणों में पाये जाते हैं। अस्तु यहां पर भी त्वचा-रक्तिमा है और यह आगन्तुक होते हुये मूल दंश का एक अंशरूप लक्षण है। इसकी चिकित्सा भी मकड़ी के दंश की चिकित्सा है, अन्य नहीं। सारांश यही है कि आयुर्वेद के रोग प्रकरणों में त्वचा रक्तिमा नामक रोग स्वतन्त्र रूप से नहीं माना जाता। कहीं यह शारीरिक दोषों के प्रकोप से उत्पन्न रोगों के लक्षणों में सम्मिलित है और कहीं वह आगन्तुक कारणों से होने वाली विभिन्न प्रकार की विकृतियों में इसके दर्शन होते हैं। यह त्वचा रक्तिमा मुख्यतः रक्त के ही कारण होती है किन्तु रोगों में वात और पित्त के गुण धर्म के कारण भी यह त्वचा रक्तिमा बन जाती है। जब यह त्वचारक्तिमा किसी रोग का अंश या लक्षण होती है तो तब इसकी चिकित्सा पृथक से न करके रोग की कीजानी चाहिये। और जब बिना किसी रोग के केवल सामान्य कारणों से दोष प्रकोप पूर्वक यह त्वचा-रक्तिमा बन गयी हो तो उस अवस्था में निम्नलिखित चिकित्सा से अवश्य लाभ होता है।

त्वचारक्तिमा चिकित्सा

आन्तरिक चिकित्सा—

(क) लाल चन्दन, तेजबाला, खश, मंजीठ, शतावरी इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। फिर उस चूर्ण का बीसवां भाग मुक्ताशुक्ति पिष्टी, सत गिलोय और कहरवा पिष्टी प्रत्येक को मिलाकर काली गाय या बकरी के ताजा दूध में (समान भाग दूध में) भावना देकर सुखा लें। फिर दूध की भावना दें। ऐसी तीन भावनायें देनी चाहिए। तदनन्तर १-१ माशा की गोलियां बना लें और छायाशुष्क कर लें। प्रातः, सायं तथा रात्रि को सोते समय शीतल दूध से, ताजा पानी से या किसी मधुर अर्क से १-१ गोली का सेवन करें।

(ख) शुद्ध एलुवा, रेवन्द चीनी, कमलगट्टा, विदारीकन्द, मंजीठ, मुलहठी इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इस चूर्ण से चौदहवां भाग वंशलोचन, मेदा, महामेदा और शुद्ध भिलावा मिलाकर समान भाग हरी दूब के स्वरस में मर्दन करके शुष्क करलें और छाया में ही सुखा लें। इस प्रकार से तीन भावनायें देनी चाहिये। फिर १-१ माशा की गोली बनाकर छाया में सुखा लेवें। प्रातः, सायं तथा रात्रि को सोने से पूर्व १-१ गोली समभाग काकड़ासिंगी, मुनक्का और बेलगिरी के शीतकषाय से सेवन करें।

(ग) त्रिफला, मुनक्का, मुलैठी, अंजीर, बादाम, गिलोय, धनियां, गुलाब के फूल, दोनों चन्दन, नीम की निम्बोली, अनार फल के ताजे दाने, पित्तपापड़ा और पटोल पत्र इन चौदह औषधियों को समान भाग लेकर यवकुट कर लें और आठ गुने अधिक पानी में सोने, चांदी, लोहे अथवा मृत्तिका पात्र में रात्रि को भिगो दें। प्रातः उस सहित सम्पूर्ण द्रव्य को मृदु अग्नि पर चढ़ाकर क्वाथ करें। जब चतुर्थांश जल शेष रह जाए तो उतार कर गरम-गरम को ही छान लें। फिर एक बड़े खरल में मूल द्रव्यों से बयालीसवां भाग जहर-मोहरा खताई पिष्टी, मुक्तापिष्टी या मुक्ताशुक्ति पिष्टी, वराटिका भस्म, स्वर्ण सिन्दूर, मकरध्वज (सिद्ध) अकीक पिष्टी मिलाकर मर्दन करें। तत्पश्चात् ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर छायाशुष्क कर लें। प्रातः, सायं और रात्रि को सोने से पूर्व १-१ गोली शीतल दूध से सेवन करें। त्वचा रक्तिमा, नेत्र रक्तिमा, तृषा, दाह, रक्तविकार, मूत्रविकार, मूत्रावरोध, रक्तपित्त, मेदोविकार और वात शमन करने में यह योग रामबाण है। पुराने प्रमेह, मधुमेह, नपुन्सकता, रूक्षता, उदर वात को नष्ट करने में अभूतपूर्व शक्ति रखता है। इसके अतिरिक्त यह योग जीवन, बृंहण, वृष्य और माताओं के दूध को बढ़ाने वाला भी है। यदि इस योग की १ मात्रा के साथ १ माशा षड्गुण बलिजारित रस सिंदूर के साथ मिलाकर १ रत्ती शुद्ध अफीम के साथ गरमागरम दूध से सेवन करके स्वस्थ व्यक्ति १ घण्टा पश्चात् रमण करे तो प्रमदा के मद को मदमस्त हाथी की भांति मसलकर रख देता है। परन्तु यह ध्यान रहे इस प्रयोग में पड़ने वाली सभी

औषधियां सही उत्तम और विधि पूर्वक बनी होनी चाहिए। घसड़-पसड़ विधि से बनी चीजें उपरोक्त गुण नहीं करेंगी यह हमारी सूचना है। योग गारण्टी का है। कोई बनाकर स्वयं सेवन करके परीक्षा फल जान सकता है। असमर्थ और अजान व्यक्ति विशेष सम्पादक से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

(घ) गोदुग्ध १ सेर, महिषदुग्ध पाव भर, अजा दुग्ध सवा सेर, अविदुग्ध (भेड़ का दूध) तीन छटांक लेकर एक उबाल देकर उतार लें। फिर इसमें शतावरी, विदारी कन्द, दोनों मूसली, कमलगट्टा, मुनक्का, बादाम, चारों मगज, छोटी इलायची, सतगिलोय, मुलैठी का सत, वैक्रांत भस्म, प्रवालपिष्टी और अकीकपिष्टी १-१ तोला मिलाकर खरल में घुटाई करें। मर्दन करके कल्क जैसा बन जाने पर १-१ माशा की गोलियां बनालें। ताजा ही उन्हें गौ के या भैंस के उत्तम घृत में तल लें और गरम गरम निकाल कर चन्दन, खसखास या बादाम, चन्दन के दो दो शर्बतों को मिलाकर उसमें उन्हें डुबो दें। एक दिन के पश्चात एक गोली और कुछ शर्बत प्रातःकाल ताजा दूध से सेवन करें। केवल प्रातःकाल का विधान है। त्वचा-रक्तिमा, दाह, रक्त का प्रकोप, रक्तपित्त, प्यास, वायु के विकार, स्वप्नदोष, अपस्मार, उन्माद, सूखीखांसी, छाती की जलन, अम्लपित्त, अरुचि, नेत्रों में जलन, मूत्र के सभी विकार, शारीरिक रूक्षता, खुजली, रक्त की कमी, स्मरण शक्ति की कमी और मन की उदासी के लिये यह रामबाण दवा है। हाथ कंगन को आरसी क्या। बनाकर सेवन करके देख लें। इसके सेवन काल में दही, मसाले, लालमिर्च, खटाई, तेल की चीजें, उड़द की दाल, मूली, खट्टे फल, कड़वे पदार्थ, नमक का अधिक सेवन, कचालू, कटहल, बैंगन, मोटाचावल, ककड़ी, शराब, मांस, तम्बाकू या सिगरेट, बीड़ी, पान, बहुत बोलना, कढ़ी, खिचड़ी, रायता, लहसुन, प्याज, जलजीरा, तिल की बनी हुई चीजें, वनास्पति घी में तयार कोई भी खाद्य पदार्थ, जलेबी इनका प्रयोग करना सर्वथा वर्जित है। रात्रि का जागरण और दिवास्वाप भी इसमें हानिकारक हैं। जो नवयुवक मानसिक और बौद्धिक दुर्बलता के कारण रमणीरमण रणांगन में पैर धरने से भी कतराते हैं उन्हें विश्वस्त होकर बड़े प्रेम से इसका सेवन करना चाहिए। कामशक्ति के दौर्बल्य को भी यह योग दूर करता है। नारियों के बहुमूत्र में भी यह रोकता है परन्तु साथ में षड्गुण बलिजारित रस सिन्दूर मिलाना भी नितान्त आवश्यक है अन्यथा कोई लाभ नहीं करेगा।

(ङ) अखरोट गिरि, अतिबला, अनन्तमूल, असगन्ध, उसबा, कूठ मीठा, करंज, गूलर के फल, चोपचीनी, जटामांसी, दारूहल्दी, देवदारु, नीम के पत्ते, ब्राह्मी, मंजीठ, वच, अडूसा का पंचाङ्ग, ताजा आंवला इन अठारह औषधियों को समान भाग लेकर यवकुट करके चौगुने पानी में उबाल कर चौथाई जल शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ को गरम गरम ही एक मिट्टी की हांडी में भर कर उसके मुख की सन्धिबन्धन करदें। अड़तालीस घण्टे बाद खोलकर उस पानी में प्रवालमूल को गरम कर के बुझाते जायें। यह क्रिया तब तक चालू रक्खें जब तक कि सम्पूर्ण प्रवालमूल सूक्ष्म पाउडर जैसा बन कर उस पानी में न मिल जाये। फिर इस पानी में ऊपर कही अठारह औषधियों के चतुर्थ भाग के समान सितोपलादि चूर्ण मिला दें और खरल में खूब घुटाई करें। जब गोली
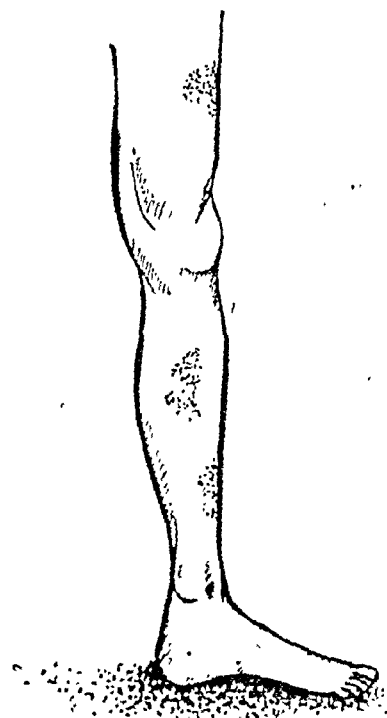
त्वचा का लाल होना

बनने योग्य हो जाये तो तीन रत्ती की गोलियां बनालें। धूप में सुखा लें। १-१ गोली प्रातः और रात्रि को सोने से पूर्व मलाई से खावें। ऊपर से एक पाव सम शीतोष्ण दूध पी लें। यह प्रयोग त्वचा की रक्तिमा, नेत्र की रक्तिमा, मूत्र की रक्तिमा, प्रदर, रक्तपित्त, मसूड़ों का पकना, फूलना, पीड़ा करना, जीभ के रोग, चर्म के सामान्य रोग, अफारा, शीतपित्त, अम्लपित्त, दाह, सिर का दर्द, पसीना अधिक आना, कब्ज, ऊर्ध्वपात, अरुचि इनके लिये विशेष रूप से लाभकारी है।

त्वचारक्तिमा चिकित्सा

बाह्य चिकित्सा—

(क) चमेली के पत्ते, गेंदे के फूल, काली मकोय के ताजे फल, हरी दूब, कबीला और हरताल को पीसकर गोमूत्र में घोटकर लेप करने से त्वचा की रक्तिमा नष्ट हो जाती है और त्वचा की सवर्णता हो जाया करती है।

(ख) पुनर्नवा का पञ्चाङ्ग, नीम का पञ्चाङ्ग, संभालू के पत्ते, नींबू के पत्ते, वड़ की छाल, ढाक के बीज इन सबको समान भाग में लेकर ताजा ताजा लेप करने से त्वचा की रक्तिमा अवश्य नष्ट हो जाती है।

(ग) फिटकरी, कबीला, केशर, हरताल और स्वर्ण गैरिक इन सबको समान भाग लेकर गूलर की छाल के चौगुने स्वरस में घोटकर चटनी सी बनाकर प्रलेप करने से त्वचा की रक्तिमा अवश्य नष्ट होकर सवर्णता आ जाती है।

(घ) सत्यानाशी का स्वरस, भांगरे का स्वरस, सिरस के पत्तों का स्वरस, पीपल की छाल का स्वरस, कीकर की छाल का स्वरस समान भाग लेकर आवश्यकतानुसार शुद्ध स्वर्ण गैरिक और कत्था मिलाकर घुटाई करें। कुछ गाढ़ा हो जाने पर पीत काशीस स्वल्प मात्रा में मिला कर रोग स्थान पर लेप कर दें। त्वचा की रक्तिमा, सूखी खुजली, दाह, कच्चा दाद, शीतपित्त, चकत्ते, मुंह की झांई, बालों की सीकरी बहुत शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। यह योग रात्रि को लगाया जाये तो विशेष लाभ करता है। अन्य सभी योग दिन में ही लगाने चाहिये रात को नहीं।

लाल चकत्ते निदान एवं चिकित्सा

परिचय—आचार्य सुश्रुत के अनुसार लाल चकत्ते जतुमणि कहलाते हैं। जसे—

"समुत्सन्न मरुजं मण्डलं कफ रक्तजम्"
सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिस्तुसः॥

अर्थात जन्म से ही उत्पन्न बिना वेदना के मण्डल को जतुमणि (लाल चकत्ते) कहते हैं। यह थोड़ा लाल-लाव लक्षण तथा कफ-रक्त जन्य होता है। जतुमणि को भली प्रकार काट कर युक्ति पूर्वक क्षार से या अग्नि से धीरे-धीरे जलावें।

मस्से—

"अवेदन स्थिरं चैव यस्मिन् गा प्रदृश्यते।
माषवत् कृष्णमुत्सन्नमनिलान्मषकं तु तत्॥"

अर्थात शरीर पर पीड़ा रहित, स्थिर, उड़द के दाने के समान काला और ऊंचा उभरा हुआ चिन्ह मस्सा कहलाता है। यह वातकफ और मेद जनित होता है।

चिकित्सा—मस्से को भली प्रकार से काटकर युक्ति पूर्वक क्षार या अग्नि से दग्ध करना चाहिए। परन्तु यह क्रिया शनैः शनैः की जाती है।
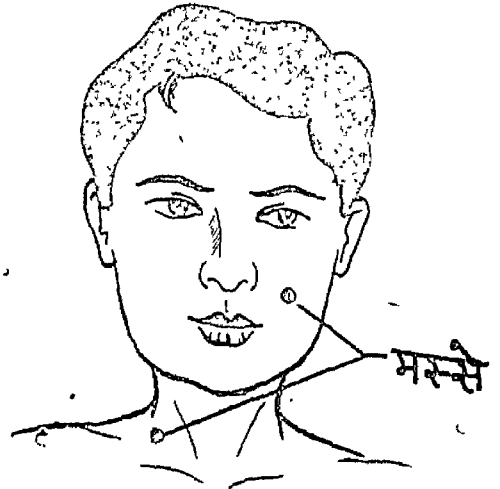
पिप्लु वर्णन—पिप्लु लाल मस्से को कहते हैं। इसकी उत्पत्ति वातपित्त रक्त और कफ के सहयोग से होती है। चिकित्सा पूर्ववत ही है।

चकत्ते

झांई या नीला दाग—

'कृष्णमेवं गुणंगात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः।

अर्थात क्रोध, परिश्रम, धूप, अधिक गर्मी, विषैले वायु आदि के कारण वायु कुपित होकर पित्त के साथ मिलकर मुख पर अथवा शरीर पर कहीं भी नीले रंग का दाग या धब्बा ला देता है, उसको झांई या नीलादाग कहते हैं।

चिकित्सा—इस नीलिका रोग में सिरा का रक्त-मोक्षण सर्वोत्तम उपाय है। यह मस्तक पर सिरावेध उचित रहता है अथवा आवश्यकतानुसार यथास्थान भी होता है। सिरावेध के बाद समुद्रफाग, नमक,कालीमिर्च का चूर्ण, सुहागा, तुत्थ इन के सूक्ष्म चूर्ण से उस स्थान को खूब रगड़ें और बड़-पीपल, गूलर, पिलखन आदि क्षीरी वृक्षों की त्वचा को गो दुग्ध में पीसकर लेप करदें। अथवा खरैटी,, कंघी, मुलैठी, हल्दी को पीसकर लेप करदें। अथवा विदारी, अगर, कालीयक तथा गैरिक को पीसकर लेप करदें। अथवा सूअर की दाढ़ को घिसकर शहद और घृत मिलाकर लेप करदें। अथवा कपित्थ और खिरनी का लेप उत्तम रहता है।

तिल का वर्णन—

कृष्णानि तिलमात्राणिनीरू जानिसमानि च'
वातपित्त कफोच्छ्रोषान्तान्विद्यात्रिलकालकात् ॥

अर्थात वात और पित्त के प्रकोप से कफ के शुष्क होजाने पर शरीर की किसी भी स्थान की त्वचा पर काले रंग के तिल के समान वेदना रहित, त्वचा के समस्थानी चिन्ह तिल काणक या तिल कहलाते हैं।
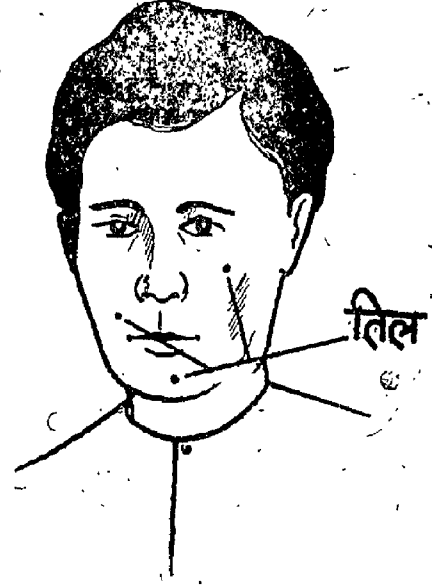
चिकित्सा—इन तिलों को युक्तिपूर्वक शस्त्र से काट कर अथवा अग्नि से जला देना चाहिए। यदि प्राकृतिक हों और मुख, हस्त, लिंग, योनि, ओष्ठ, बाहु आदि पर पुरुष और स्त्री के अनुसार हों तो प्रबल भाग्यसूचक और धन सम्पत्ति आदि के सूचक होते हैं।

लहसुन-न्यच्छ निदान एवं चिकित्सा

परिचय—

महद्वा यदिवा चाल्पं श्यावं वा यदिवाऽसितम्।
नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥

अर्थात् शरीर में बड़े या छोटे नीले या काले रंग के वेदनारहित चकत्ते को न्यच्छ या लहसुन कहते हैं। यह स्वाभाविक हो पुरुष की दांई ओर हो और स्त्री की बांई ओर हो तो, सुख, धन, सम्मान, राज्य और मकान सवारी आदि मिलने का सूचक होता है। कुछ लोग इसको ही झांई कहते हैं। आचार्य वाग्भट ने इसको लाञ्छन नाम से लिखा है। आचार्य सुश्रुत ने इसको स्वाभाविक ही माना है। इसकी उत्पत्ति रक्त वायु और पित्त के प्रभाव से होती है। ऐसा आचार्य भोज का मत है। यथा—

रक्त पित्तान्वितो वायुस्त्वक् प्रदेशाश्रितो यदा।
जनयेत्मण्डलं कृष्णं श्यावं वान्यच्छमादिशेत् ॥

न्यच्छ (लहसुन)

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा भी वही दी है कि जो पीछे नीलिका रोग की लिखी जा चुकी है। अतः इसके विषय में वहीं पर पढ़ें।

व्यङ्ग—काला दाग—आचार्य सुश्रुत के मतानुसार वर्णन—

क्रोध... ...पितो वायुः पित्तेन संयुतः।
मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः।
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगं तमादिशेत्॥

अर्थात्—क्रोध और परिश्रम अधिक करने से वायु कुपित होकर पित्त के साथ मिलकर अकस्मात्, वेदना रहित, पतला, श्याव वर्ण का(हलका कालापन और सफेदी से मिश्रित वर्ण श्याम वर्ण कहलाता है।) चकत्ता या दाग मुंह पर बन जाता है। प्रायः दोनों गालों के नोंक पर होता है। कुछ के आंखों के नीचे की चमड़ी काली सी हो जाती है। उसको भी व्यङ्ग या काला दाग कहते हैं।

चिकित्सा—इसकी भी चिकित्सा नीलिका में कही चिकित्सा है।

अनुभूत योग—स्वर्णभस्म १ रत्ती, हिंगुल की श्वेत भस्म तथा मुक्तापिष्टी १ तोला को मक्खन या मलाई से दोनों समय खावें और हल्दी, फिटकरी, सैंधा नमक, बोल, स्वर्णगैरिक, मेंहदी, हरड़पीली बड़ी का छिलका, नीम के पत्ते, रीठे की गिरी, आम की छाल और बौर, अनार के ताजे पुष्प इन सबको समान भाग लेकर विदारी कन्द के ताजे स्वरस में घोटकर मुख पर उबटन करें और रात को सोते समय प्रलेप सा करके सो जाया करें। यदि पेट साफ हो तो यह दोनों प्रयोग चालीस दिन में गारण्टी से झांई, काला दाग आदि साफ कर देते हैं। और मुख मण्डल सुन्दर कान्तियुक्त तथा भरा हुआ गोल हो जाता है। यह हमारा शत प्रतिशत अनुभूत गारण्टी का प्रयोग है।

इन्द्रलुप्त-गंज-बाल झड़ना निदान एवं चिकित्सा

परिचय—इन्द्रलुप्त—रोमकूपों में पहुंचा पित्त वायु के साथ मूर्छित होकर रोमों को गिरा देता है। इसके अनन्तर कफ रक्त से मिलकर रोमकूपों को रोक लेता है। इसलिये दूसरे नये रोमकूप उत्पन्न नहीं होते। इस रोग को इन्द्रलुप्त, खालित्य या रूह्या कहते हैं। इन्द्रलुप्त में रोगी का स्नेह और स्वेदन करके शिर में सिरामोक्षण करें। मरिच, मैनसिल, कासीस और तुत्थ का लेप करें। कुटन्नट (तगर), देवदारु इनके कल्क से लेप करना उत्तम है। अथवा गहरे रूप में पाछने लगाकर रत्ती के कल्कों से बार बार लेप करें। अथवा रोग की शान्ति के लिये रसायन विधि का पालन करें। चमेली, कनेर, चित्रक, करंज, से सिद्ध किया तेल अभ्यङ्ग को उत्तम है। सर्वथा इन्द्रलुप्त नाशक है। रक्त निकालकर नीम के पानी से परिषेक करें। घोड़े की लीद के रस में सैंधव मिलाकर उससे लेप करें। हरिताल, हल्दी, नीम और पटोल इनके कल्क से लेप करें। अथवा मुलेहठी, लीला कमल, एरण्ड और भांगरे से लेप करें, इन्द्रलुप्त नामक तेल का अभ्यङ्ग करें।

इन्द्रलुप्त-गंज रोग

इन्द्रलुप्त पर विशेष अनुभूत योग—

खुरदरे पत्तों से जगह को खूब खुरच कर लाल बना दें और फिर उस पर अतिसूक्ष्म कालीमिर्च का चूर्ण रगड़ें। एक सप्ताह में लाभ होता है। अथवा—

सुवर्ण के पतरे से जगह को खुरच कर, रत्तियों की जड़ की छाल और फलों को बड़ी कटेरी के स्वरस में घोटकर लेप करें। १ सप्ताह में रोग अवश्य नष्ट हो जाता है। अथवा—

चमेली, कनेर पीली, चित्रक की जड़ और करंज का पञ्चाङ्ग इन सबसे सिद्ध तेल की मालिश करने से ४० से ६० दिनों के भीतर इन्द्रलुप्त अवश्य नष्ट हो जाता है। अथवा—

आंवला और आम की गुठली को आम्रातक के फलों के रस से घोटकर लेप करने से ६० दिन में इन्द्रलुप्त नष्ट होता है और बाल चिकने और दृढ़ मूल वाले हो जाते हैं। अथवा—

बालों का झड़ना

इन्द्रलुप्त में सिरावेध करके शुद्ध तुत्थ, हराकासीस और मनःशिला को गिलोय में पीसकर लेप करने से चार सप्ताह में निश्चय ही लाभ होता है। अथवा—

खरमंजरी, करंज, केवड़िया, मोथा और मालती एवं रक्त कनेर से सिद्ध तेल इन्द्रलुप्त में प्रतिदिन मालिश करने से ५ सप्ताह में पूर्ण लाभ होता है।

केशरोगारि—अन्तर्धूम विधि से पाचित गजदन्त ५ तोला, रसौत ५ तोला, बड़ी कटेरी के ताजे फल १० तोला, दोनों कनेर १०-१० तोला, भांगरा स्वरस ५ सेर, त्रिफला घनसत्व डेढ़ सेर, नीलोफर का कल्क १ पाव, सारिवा का कल्क १॥ पाव, लोह चूर्ण आधा सेर, शुद्ध हराकासीस ४ तोला, लाल फिटकरी १ पाव, मेंहदी का कल्क आधा सेर, आंवले का रस ४ सेर, भेड़ का दूध ३ सेर, गोमूत्र २ सेर, मनःशिला कल्क नीम के स्वरस में पिसा हुआ आधा पाव, गन्ने का रस ४ सेर, आम की गुठली का कल्क १ सेर, नीम का स्वरस ४ सेर, मुलैठी, तिल, दोनों चन्दन, बरगद के कोंपल, इन्द्रायण, सरसों, गिलोय, सिन्दूर, शंखभस्म इन सबका कल्क १-१ छटांक लेकर सबको परस्पर मिलाकर २ सेर बहेड़ातेल भी मिला दें और मन्द-मन्द आंच से पकावें। जब चतुर्थांश शेष रहे उतार लें और गरम-गरम ही एक लोहे के घड़े में भर दें और बन्द करके गज भर गहरी भूमि में गाड़ दें। १ मास बाद ही निकालें। यह तेल शनैः-शनैः चुआ लें और बोतल में भर लें।

यदि किसी कारणवश तेल अलग न हो तो पुनः लोहे की ही कड़ाही में पकाकर तेल शेष कर लें। यह तेल ७ दिन में बाल काले कर देता है। सम्पूर्ण आयु भर बाल काले रहते हैं ऐसा गुरुमुख से सुना था। बाल झड़ना, बाल टूटना, सीकरी, बाल पकना, गंज रोग, बालों का दाद एवं खाज, छोटे बाल, मोटे बाल, रूखे बाल आदि की यह रामबाण दवा है। हम स्वयं ल[illegible] हैं। ७ दिन लगाने से १२० दिन तक बाल काले ही निकलते हैं। उसके बाद फिर लगादें तो ४ मास के लिए छुट्टी हो जाती है। प्रतिदिन लगाते रहें तो कभी भी काले बाल नहीं छूटेंगे। नीचे से भी काले ही आयेंगे, किन्तु प्रतिदिन लगाने से आदमी ऊंचा सुनने लगता है। इस दोष को दूर करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु अभी सफलता नहीं मिली है। शराब पीने वालों को यह तेल देर से प्रभाव करता है। लाल मिर्च, खटाई की अधिक मात्रा सेवन

करने वालों पर भी इस तेल का प्रभाव देर में होता है। टोपी या पगड़ी धारण करने वालों पर इस तेल का प्रभाव बहुत शीघ्र होता है।

लिंगपाक—यह रोग स्वतन्त्र रूप से नहीं हुआ करता है। उपदंश रोग में, शूक दोषों में क्षुद्र रोगों के कुछ रोग आये हैं, उनमें अथवा किसी प्रकार के आघात लगने से भी लिंगपाक हो जाता है। फिरंग रोग में विशेष रूप से लिंगपाक होता है। पूयमेह में आन्तरिक लिंगपाक होता है। अतः इस रोग का जब भी उदय हो तो उसके मूल रोग के अनुसार ही इसकी चिकित्सा की जानी चाहिए। सामान्य अवस्था में लिंगपाक के शमन के लिए निम्न-लिखित प्रयोग शत-प्रतिशत सफल है। उपदंश आदि में लाभदायक है। प्रयोग इस प्रकार है—

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की समभाग कज्जली बनालें और फिर उसको शतधौत माखन में मिलाकर रख लें। प्रातः सायं लिंग पर आवश्यकतानुसार लगावें। लिंग पाक, उपदंश आदि शान्त होते हैं। चक्रदत्त में उपदंशाधिकार में कहे गये पटोलादि क्वाथ, रसांजन लेप, भूनिम्बाद्य घृत, करंजाद्य घृत आगारधूमाद्य घृत का प्रयोग भी किया जा सकता है। तथा शूकदोषाधिकार में कहे गये चिकित्सा क्रम का उपयोग वैद्य के द्वारा ही करवाया जाये।

रक्त संस्थान के रोग

श्री डा० बनारसीदास दीक्षित H. M. D. S.

त्वचा का लाल होना

संक्षिप्त परिचय—प्रदाहिक अवस्था की प्रथम स्टेज में प्राय त्वचा का रंग लाल हो सकता है। यह रोगानुसार एकांगिक और सर्वाङ्गिक दोनों प्रकार से होते देखा गया है। जैसे-मिझल्ज (खसरा) आर्टिकेरिया (जुरपित्ती) तेज ज्वर, लाल बुखार, आदि रोगों में पूरे शरीर की त्वचा लाल हो जाती है। फोड़ा, विसर्प, जहरीले जन्तु (मधु मक्खी आदि के काटने पर) किसी एक स्थान की त्वचा लाल हो जाती है। उपरोक्त रोगों में त्वचा का लाल होना एक रोग का लक्षण मात्र है, लक्षण समष्टी के अनुसार चिकित्सा करने पर यह लक्षण भी शान्त हो जाता है। नीचे उन दवाइयों को लिख रहे हैं जिनमें त्वचा लाल होने का लक्षण है।

चिकित्सा—

वेलाडोना६,३०,२०० वेलाडोना का प्रधान लक्षण है लाल और गरम शरीर के किसी एक अंग का या सम्पूर्ण शरीर की त्वचा का रंग लाल होवे और वह स्थान गरम हो तो सर्वप्रथम वेलाडोना को याद करना चाहिए। यह प्रदाहिक अवस्था की सर्व प्रधान दवा है। लाल बुखार में तो इसका प्रतिषेधक के रूप में भी प्रयोग होता है। रोग कुछ भी होवे प्रदाह वाली जगह लाल और गरम हो तो उसकी दवा वेलाडोना है।

एकोनाईट ६,३०,२०० प्रदाह की प्रथम अवस्था में प्रायः एकोनाईट का प्रयोग होता है। इसके प्रधान लक्षण हैं- प्यास, बैचेनी, मृत्युभय, और तेजज्वर। इस स्थान पर हम इसे दूसरे स्थान पर इसीलिये लिखा है कि इसमें त्वचा का लाल रंग वेलाडोना से कम है।

फेरमफास३×६×१२× वायोकैमिक मतानुसार त्वचा का रंग लाल होने पर और प्रदाहिक अवस्था में फेरमफास का प्रयोग करना चाहिये।

ऐपिसमेल३०,२००—ऐपिस मेल त्वचा का रंग हल्का लाल (गुलाबी) होता है किन्तु इस गुलाबी रंग के साथ ही शोथ और डंक मारने की तरह दर्द होता है। उस स्थान पर ठंडे प्रयोग से आराम मालूम होता है।

नोट—होमियोपैथिक में सिर्फ त्वचा का रंग लाल होना यह एक लक्षण लेकर के कोई दवा निर्वाचित् नहीं हो सकती है। रोगी के सर्वाङ्गिक लक्षणों के अनुसार एवं रोग का कारण (सोरादिदोष) ह्रास वृद्धि आदि का ध्यान रखकर दवा चुनी जाती है अतः त्वचा का रंग लाल यह एक लक्षण मात्र समझना चाहिए।

उदाहरण—गत वर्ष एक रोगी उम्र ४० वर्ष का आया और उसके शरीर पर लाल दाग थे। उनमें दर्द जलन न होने के कारण कुष्ठ का पूर्वरूप (प्रायगिक

अवस्था) मानकर अनेक दवाइयों का प्रयोग हुआ पर लाभ नहीं हुआ। वह मेरे पास आया और मैं लक्षणों के अनुसार एनाकार्डियम h से o h तक देकर १ साल में उसे आरोग्य किया। अतः पाठकों को लक्षण समष्टी पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सिर्फ १ लक्षण का आधार मान कर दवा देना होमियोपैथिक सिद्धान्त के विपरीत है।

यूनानी

कुष्ठ—इसे अरबी में जुजाम कहा जाता है। इस रोग की उत्पत्ति में सुजाक और आतशक का विकार कारण बताया गया है। बताया गया है कि उत्ताप की अधिकता से सौदा जल कर रक्त में मिल जाता है और वह रक्त सारे शरीर में रोग को फैला देता है। इस रोग में पैतृक कारण भी महत्वपूर्ण बताया गया है। इस अवस्था में शरीर में गोल-गोल और गुलाब रंग के दाग (धब्बे) पड़ जाते हैं। शरीर का वरम कालापन लिए हुए रक्त वर्ण का हो जाता है। मूत्र का रंग भी श्याम हो जाता है। बाद में रोगी के अवयव गलने लगते हैं और घाव हो जाते हैं। अगर घाव हो जावें तो भी उन में दर्द नहीं होता।

यह रोग छूतदार रोग बताया गया है जो एक रोगी से दूसरे व्यक्ति को लगता रहता है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस रोग से पीड़ितों को अलग रक्खा जाए और उनके सम्पर्क में न आया जाए ताकि रोग से बचाव हो सके।

इस रोग की चिकित्सा में विरेचन करा के शोधन कराना प्रधान चिकित्सा कही गई है। इस के लिए निम्न लिखित दवाओं का प्रयोग बताया गया है—

शाहतरा, चिरायता, सरफोंका, मुण्डी, काली हरड़, लाल चन्दन या उशबा मगरबी प्रत्येक सात माशा, उन्नाव ५ दाना, रात में गरम पानी में भिगो कर सवेरे मल छान कर ४ तोला शर्बत उन्नाव मिलाकर पिलावें। और हिरनखुरी १ तोला, काली मिर्च ५ दाना सवेरे गरम पानी में भिगोवें और सायं काल उसका निथरा हुआ पानी लेकर पिलावें। इस तरह कम से कम इक्कीस दिन तक यह दवा इस्तेमाल करावें। इसके साथ अर्क मत्वूख हफ्त रोजा एक बोतल की सूखी दवाइयां रात में तीन सेर गरम पानी में भिगो देवें और सवेरे इतना पकावें कि उस पानी का तीन भाग जल जावे और सिर्फ तीन पाव बाकी बचे। फिर उसे छान कर एक बोतल में भर लें। रोज सवेरे आठ तोला इस अर्क की एक मात्रा रोगी को पिलावें। इस से उसे दिन में तीन चार दस्त हुआ करेंगे। यह अर्क २१ दिन ऊपर का नुसखा पिलाने के बाद एक हफ्ते तक दिया जाता है।

इतने दिन इलाज करने के बाद देखें कि शरीर में दोष तो नहीं हैं यदि कुछ शेष रहे हों तो कुछ दिन ऊपर की दवाएँ प्रयोग करने के पश्चात पुनः इस अर्क का कुछ दिन प्रयोग करा देवें। इससे शरीर का शोधन हो जाता है।

विरेचन द्वारा शुद्ध किए शरीर वाले रोगी को निम्न लिखित औषधियों का प्रयोग कराया जाता है—

रसौत दो माशा, चाकसू ३ माशा, नरकचूर १ माशा, कत्था सफेद ३ माशा, सब को रात में गरम पानी में भिगो कर सवेरे निथरा पानी लेकर पिलाना चाहिए। और सायं काल माजून उशबा १ तोला ६-६ तोला अर्क शीर मुरक्कब और अर्क माडज्जुन, चार तोला शर्बत उन्नाब मिलाकर पिलान ा चाहिए।

जिनके नाखून और उंगुलियां गलने लग गई हों उन को निम्नलिखित औषधयोग का प्रयोग कराना चाहिए—

एक काला सांप मार कर सिर पृथक कर के बिना हड्डी के मांस निकालकर उस में तीन माशा संखिया मिला कर खरल करें जिस में काला हो जाये। फिर काली मिर्च प्रमाण की गोलियां बना कर एक गोली मक्खन मिलाकर तीन दिन लगातार खिलावें। खुराक में सिर्फ जौ की रोटी के और कुछ न दें।

आलू, बैंगन, मछली, लाल मिर्च, कबाब और दूसरी गरम चीजों का परहेज जरूरी है। हलका खाना दूध धीरे-धीरे (जितना पच सके) रोग को दूर करते हैं।

श्वेत कुष्ठ—इसे फुलवहरी भी कहते हैं। यूनानी हकीम बर्स (अरबी) के नाम से पुकारते हैं। यूनानी में इसे वंशपरम्परागत बताया है। इसके उत्पादक कारणों में

मछली का प्रयोग अथवा मछली के साथ दूध का प्रयोग, दूध के साथ खट्टे पदार्थों का प्रयोग बताया गया है। यह रोग त्वचा के पोषण में विकार आने के कारण होता है।

इस रोग में शरीर पर स्थान-स्थान पर श्वेत दाग पड़ जाते हैं जो आरम्भ में छोटे-छोटे होते हैं किन्तु धीरे-धी बढ़ते-बढ़ते बड़े आकार के हो जाते हैं। जब तक दाग कहीं-कहीं छोटे-छोटे हों तो ठीक होने की आशा रहती है परन्तु जब ये बहुत बढ़ जावें तो कष्टसाध्य हो जाते हैं। यूनानी साहित्य में एक विधान और बताया गया है कि जब किसी दाग को मांस से अलग केवल त्वचा को चुटकी से उठाकर देखा जाए और एक सूई लेकर उस त्वचा को गोदा जावे तो यदि रक्त बहने लगे तो स मझना चाहिए कि रोग अभी साध्य है और यदि वहां से केवल पानी का ही स्राव हो तो रोग को असाध्य समझना चाहिए।

इस रोग की चिकित्सा में विरेचन कराया जाता है। यदि रोग हलका हो तो रसौत, चाकसु, नरकचूर तथा सफेद कत्था प्रत्येक तीन माशा सब को रात गरम पानी में भिगो कर सवेरे नियरा पानी निकालकर पिलावें। अगर दाग शरीर के थोड़े भाग पर हों तो सफूफ बर्स रात में गर्म पानी में भिगोकर सवेरे उसका जुलाल निथारकर चालीस दिन तक बराबर पिलावें और उसकी सीठी को सिरका में पीसकर लेप करें।

इसी तरह दागों पर लेप करने के लिए अंजीर ५ दाना, चकवड़ के बीज ३ माशा, बावची ३ माशा को सिरका में पीसकर काम में लिया जाता है।

रोगन बर्स को दागों पर लगाने और बताशे में रख कर खिलाने से फ़ायदा होता है। मसीकृत मयूरस्थि ३ माशा, बावची ३ माशा, हल्दी ३ माशा पीस कर एक पाव करेला के रस में घोल कर प्रतिदिन सफेद दागों पर लगाने से लाभ होता है।

विरेचन के उपरान्त फौलाद भस्म १ टिकिया को जुवारिश जालीनूस सात माशा में मिलाकर खिलावें अथवा मण्डूर भस्म १ टिकिया को दवाउलमिस्क शीतदिल जवाहर वाली ५ माशा में मिलाकर देवें।

बर्स का एक भेद और है जिसे बर्स अस्वद कहते हैं। इसमें मछली के सेहेरे की तरह त्वचा से सेहेरे निकलते है। और दाद को मलने से भसा निकलती है। और दाग का स्थान काला हो जाता है। इस की चिकित्सा जुजाम की तरह की जाती है। इस हालत में दागों पर लगाने के लिए हड़ताल, फिटकरी और गंधक को मूली के अर्क में पीसकर मलने से लाभ होता है। इसी तरह मूली के बीजों कोप्याज के रस में पीसकर मलने से लाभ होता है।

बर्स के लिए शीतल और बादी पदार्थों का परहेज करना आवश्यक है। चावल, दही, उड़द की दाल मछली आलू-अरबी, टिण्डा और कद्दू का प्रयोग न करें।

इस हालत में बेसनी रोटी अधिक घी के साथ खिलाना चाहिए। मूंग की दाल की नरम खिचड़ी का प्रयोग कराया जा सकता है। मांस खाना हों तो बकरी का भुना हुआ मांस खाया जा सकता है।

खुजली—अरबी में इसे जर्ब या हिक्का कहा जाता है। यूनानी में दो तरह की खुजली बताई गई है—खुष्क और तर। खुष्क खुजली में छोटी-छोटी लाल फुन्सियां शरीर में इधर उधर निकलती हैं और उनमें खुजली बहुत चलती है। तर खुजली में शरीर पर छोटे-छोटे दाने बन जाते हैं और उनमें बहुत जलन और दर्द होता है।

खुजली की चिकित्सा में निम्नलिखित योग का प्रयोग कराया जाता है—

शाहतरा, चिरायता, सरफोंका, मुण्डी प्रत्येक सात माशा, उन्नाव ५ दाना, काली हरड़ ७ माशा, यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो लाल सात माशा तथा यदि शीत ऋतु हो तो उस्वा मगरबी ७ माशा और मिला देना चाहिए। रात में दवाओं को गरम पानी में भिगो दें और सवेरे मल छान कर पिलावें। सवेरे के समय में नगदबावची १ तोला, काली मिर्च ५ दाना गरम पानी में भिगो दें और शाम को उसका नियरा पानी पिलावें। इनका प्रयोग १५ दिन तक करावें। फिर अर्क हफ्तरोज का विरेचन करावें। विरेचन द्वारा शोधन हो जाने पर माजून उशवा ७ माशा अथवा अतरीफल शाहतरा ७ माशा को चार तोला उन्नाव मिलाये हुए १२ तोला अर्क मुरक्कव मुसफ्फी खून के साथ प्रयोग करावें।

लगाने के लिए निम्न योग काम में लें—(१) १ तोला रोगन चमेली, ५ तोला अर्क गुलाब, १ तोला निम्बुरस मिलाकर, (२) आमलासार गन्धक, कपूर, नीलाथोथा मुर्दासिंग, और कमीला प्रत्येक ३ माशा पानी में पीसकर इक्कीस बार पानी से धोए हुए गाय के घी में मिलाकर लगावें।

दाद—अरबी में इसे 'कूबा' कहा जाता है।

यूनानी में दाद की उत्पत्ति का कारण अस्वच्छता, गीले वस्त्रों का अधिक समय तक पहले रहना, गरिष्ट भोजन करना तथा मीठे पदार्थों का अधिक सेवन करना बताया गया है।

जहां दाद होता है वहां की खाल सख्त और खुरदरी हो जाती है। उसमें खुजली होती है। दाद की जगह श्वेत या श्याम वर्ण होजाती है। कभी कभी यह दाद खुश्क नहीं रहते और गीले हो जाते हैं। छोटे छोटे दाने उत्पन्न होजाते हैं और उन दानों में से पानी सा रिसने लगता है। कभी कभी दाद का रंग लाल होता है और उस अवस्था में त्वचा शोथयुक्त हुआ करती है। त्वचा उभरी हुई दिखाई देती है।

दाद में खुजली के लिए जो रक्तशोधक शाहतरा वगैरह का काढ़ा लिखा है उसे प्रयोग कराना चाहिए। इससे भी ज्यादा शोधन आवश्यक हो तो अर्क मरवूख हफ्तरोजा को आठ तोला की मात्रा में देवें। इससे विरेचन द्वारा शरीर का शोधन हो जाता है।

लगाने के लिए रोगन दाद का प्रयोग करें। इसी तरह जिमाद दाद को नीबू के साथ मिलाकर लगावें।

अतरीफल शाहतरा को ७ माशा की मात्रा में अथवा माजून उसबा को १ तोला की मात्रा में शर्बत उन्नाव ४ तोला और अर्क मुरक्कव मुसप्फी खून १२ तोला मिलाकर पिलावें। यह योग लाभ करने वाला है।

त्वचा पर गर्मी के दाने—इस हालत को 'हसफ' और 'हसफा' कहा जाता है। यह अवस्था प्रायः गर्मियों में उत्पन्न होती है और त्वचा के उपचर्म के नीचे स्वेद का अवरोध उत्पन्न हो जाता है—इससे वहां पर छोटे छोटे बाजरे के दाने के बराबर के दाने उत्पन्न हो जाते हैं। कभी ये दाने विकीर्ण होते हैं और पहले निकले हुये दाने मुरझा जाते हैं और नए दाने निकलते रहते हैं। कभी कभी ये दाने लाल होते हैं और कभी सफेद होते हैं। कभी कभी इन दानों में सूई चुभने या कांटे चुभाने की सी वेदना होती है।

इस अवस्था में ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि रोगी सख्त गर्मी में न रहें।

सफेदचन्दन को अर्क गुलाब में घिस कर, अथवा मेंहदी के पत्र हरी कासनी के रस में गूंध कर वर्फ से ठंडे कर के शरीर पर मर्दन करें। इसी तरह गुलरोगन एक तोला, शुद्ध सिरका ८ तोला, अर्क गुलाब ५ तोला और कपूर १ माशा सबको मिलाकर शरीर पर मर्दन करें।

सवेरे निम्नलिखित योग पिलावें—

गुलनीलूफर ५ माशा, कासनी की जड़, कासनी के बीज, शाहतरा प्रत्येक ७ माशा, उन्नाव ५ दाना, आलु बुखारा ५ दाना सबको रात में गरम पानी में भिगोकर सवेरे मल छानकर ४ तोला शर्बत उन्नाव या ४ तोला शर्बत नीलोफर मिलाकर पिलावें।

शाम के समय निम्नलिखित नुस्खा दें—

बिहदाना का लुआब ३ माशा, उन्नाव ५ दाना, कद्दू के बीज का शीरा ३ माशा, १२ तोला अर्क शाहतरा में निकालकर २ तोला शर्बत नीलोफर मिला कर पिला दिया करें।

व्यङ्ग—व्यङ्ग-झाईं को यूनानी में 'कलफ' कहते हैं। ये त्वचा पर भूरे भूरे या काले रंग के (स्याही मायल) चिह्न होते हैं। यह कई धब्बे आपस में मिलकर बहुत बड़ा चिह्न बन जाता है।

इस हालत के लिए लगाने के लिए समुद्र फेन को नीबू के रस में घिसकर लगावें अथवा संतरा का छिलका २ तोला, हल्दी, सफेद चन्दन, बालछड़, नागरमोथा, छड़ीला, बादाम का मग्ज प्रत्येक ६ माशा, तिल १ तोला सबको महीन पीस कर गेहूं का आटा २ तोला मिला कर १ तोला चमेली का तैल सम्मिलित कर के पानी में घोल कर प्रतिदिन रात में मलकर सो जाना चाहिए। सवेरे नीम के साबुन से मुख को धो लेना चाहिए।

उबटन के लिए तुमुर्स, बाकला के बीज, पोस्ते का दाना, खरबूजे के बीज के मग्ज प्रत्येक छः माशा, केसर,

३ माशा, सबको महीन पीसकर उसमें से थोड़ा सा लेकर पानी मिलाकर लेप करें और दो घन्टे बाद मेंहदी और बेसन से मुंह धोकर थोड़ा सा चमेली का तैल मुंह पर मल लिया करें।

यदि दोषज विकार हो तो हब्ब इमारिज देकर विरेचन करावें। जब विरेचन द्वारा दोष का शोधन हो जावे तो रक्त के शोधन के लिए अर्क मुरक्कब मुसफ्फी खून बारह तोला में चार तोला शर्वत उन्नाव मिलाकर कुछ दिन पिलावें। और माजून उशबा १ तोला या अतरीफल शाहतरा ७ माशा रात्रि में सोते समय पावभर दूध के साथ कुछ दिन तक खिलावें।

इस रोग में गुड़-तेल- मद्य-मांस का प्रयोग वन्द कर देना चाहिए।

इन्द्र लुप्त—इस रोग को अरबी भाषा में "तसाकुतुश्शार" कहा जाता है। इसे बाल झड़ना कहा जाता है। इस अवस्था में पूरे सिर पर या कुछ भागों पर बाल झड़ जाते हैं।

इस रोग की उत्पत्ति आहार की कमी, स्रोतों का विस्फार होना तथा अधिक रूक्षता होना—से हुआ करती है।

यदि रोग आहार की कमी के कारण से उत्पन्न हुआ हो तो रोगी को उत्तम पौष्टिक आहार खाने को देना चाहिए। सिर पर रोगन बनफशा की मालिश कराई जाये और स्नान कराया जाये।

यदि स्रोतोविस्फार के कारण रोग की उत्पत्ति हुई हो तो संग्राही औषधियों का प्रयोग कराया जाना चाहिए। इस हालत में काबुली हरड़, हरा माजू, अकाकिया आदि पानी में काढ़ा करके परिषेक करावें तथा संग्राही तेल जैसे आमला तैल की सिर पर मालिश करानी चाहिए।

रूक्षताजन्य रोग में स्निग्धता के लिए अभ्यङ्ग हितकारक है। इस हालत में रोगन बाबूना का अभ्यङ्ग कराया जाता है। स्नान कराया जाता है। स्नेहयुक्त आहार दिया जाता है।

रोगी को बलकारक एवं शीघ्र पच जाने वाले आहार का प्रयोग कराया जाए। आलू, बैंगन, कचालु, गोभी, मसूर की दाल जैसे सौदावी द्रव्यों का प्रयोग नहीं कराना चाहिए।

विद्रधि—इस रोग के लिये यूनानी चिकित्सा में खुराजात दुबैलात और दमामील शब्दों का प्रयोग किया गया है।

खुराजात उस बड़े गरम शोथ को कहते हैं जो सान्द्र दोष से उत्पन्न होता है। दुबैला उस बड़े और गोल सूजन को कहा जाता है जिसका रंग त्वचा के वर्ण का हुआ करता है और जब तक उसमें पूय न पड़ जाए तब तक वेदना नहीं होती। दमामील गाय की पूंछ के आकार की लाल या पीले रंग की सूजन होती है जिसमें दोष की तीक्ष्णता के अनुसार वेदना भी होती है।

इन अवस्थाओं में सिरावेध और विरेचन कराना हितकारक होता है। निम्नलिखित स्थानिक लेप लगावें—

(१) इसबगोल की भूसी को गुलरोगन के साथ मिलाकर लगावें।

(२) खतमी के लेप से सूजन पक जाता है।

(३) अलसी का लेप किया जाता है जो पकाता है।

(४) पुदीना को जौ के आटे के साथ पानी में पकाकर लगाने से दुबैला फूट जाता है।

(५) विनौला या साबुन के लेप से दुम्मीला पक जाता है।

(६) पुलटिस—अलसी, कनौचा के बीज, इसबगोल, सन के बीज प्रत्येक १-१ तोला और गेहूं का आटा ४ तोला को दूध में पीसकर पकाकर पुल्टिस बांधने से वेदना मिटती और पाक होता है।

(७) प्रलेप—आम्बा हल्दी, साबुन, अरंड की गूदी और गूगल प्रत्येक १-१ तोला सबको सरे मकोय में पीसकर लेप करें। इससे सूजन पिघल जाती है।

(८) मलहर—नीम के पत्ते २ तोला पीसकर टिकिया बनाकर ४ तोला तिल के तेल में जलावें। इसके उपरांत १ तोला मोम उसमें पिघला कर सिंदूर, सफेदा काशगरी, सफेद राल प्रत्येक ३-३ माशा पीसकर मिलाकर मलहर बनावें।

इनके अतिरिक्त मरहम पुंब, मरहम एजान, मरहम राल, मरहम हफ्तदास और मरहम मिश्री का प्रयोग भी कराया जाता है।

विसर्प—इसे हुमरा, हुमर सुर्खबाद कहा जाता है।

यह एक गर्म और पित्त से होने वाला रोग है। इसके दो भेद होते हैं—

(क) हुमर खालिस—इसमें सिर्फ सफरा का ही कोप होता है।

(ख) हुमर गैर खालिस—इसमें सफरा के साथ खून भी खराब होता है।

शैखुर्रहस के मत से आमतौर से यूनानी हकीमों का खयाल यह है कि अगर सिर्फ सफरा से पैदा हुआ हो तो उसे हुमर कहते है और अगर केवल खून से पैदा हुआ हो तो उसे फलामूनी कहा जाता है और अगर दोनों के कोप से (संसर्गज) हो तो उसे मुरक्कब कहा जाता है।

इस रोग में रुग्ण स्थान पर लाली होती है। हलका दर्द, सूजन, दाह होता है। ज्वर एवं तृष्णा मिलते हैं। साधारणतः यह रोग कपोलों पर उत्पन्न हुआ करता है।

इसकी चिकित्सा में हुमरा खालिस में सिरावेध द्वारा पित्त का शोधन करना चाहिए। और रक्तशोधन औषध योग का प्रयोग कराना चाहिए-जैसे अर्क मुरक्कब मुसफ्फी खून १२ तोला में शर्बत उन्नाव ४ तोला मिलाकर पिलावें। विरेचन कराने या रक्तमोक्षण कराने की आवश्यकता अनुभव हो तो इन क्रियाओं का प्रयोग करावें।

यदि व्रण उत्पन्न हो जावे तो मरहम सफेदा का प्रयोग करावें। यदि केवल फुन्सियां हों तो रसौत को अर्क गुलाब में घिस कर लगावें। इस रोग में सफेद चन्दन, लाल चन्दन, गेरू और रसौत को अर्क गुलाब में मिलाकर लगाना चाहिये।

लेप का निम्न योग भी काम में लिया जाता है। लाल चन्दन ६ माशा, सुपारी ६ माशा, सफेदा काशगरी ६ माशा, गिल अरमनी ६ माशा को यथावश्यक धनिए के रस में पीसकर लेप करने से लाभ होता है।

हुमारा फलामूनी में शिरावेध नहीं कराया जाता है। सदैव शीतल द्रव्यों का लेप किया जाता है। शोथ पिघलाने वाले द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है।

कुष्ठ एवं चर्म रोगों पर कुछ प्रसिद्ध यूनानी योग

कुष्ठहर वटी—सोंठ, अयारज, फंकरा, मिरच सफेद, कुटकी काली, समभाग लेकर शराब में बहरोबा हल करके मिलावें और गोलियां बनावें।

मात्रा—३-६ माशा योग्य अनुपान से।

यह लेप भी करें, पित्तपापड़ा सुरमा, माजू, फिटकरी सुरख, मछली की हड्डी जली हुई बारीक करें और जल से टिकियां बनावें, सिरके में हलकर दागों पर लेप करें।

गुण—बरस, श्वेत कुष्ठ में लाभप्रद है।

रोगन जजाम (कुष्ठहर तैल)—महन्दी के सबज पत्र १० तोला कूटकर २० तोला तिल तेल में जला लें, फिर इन पत्तों को निकाल कर नीम पत्र की टिकिया बनाकर, इसी तरह इस तेल में जला लें, पाक सिद्धि पर उतार कर चौथा भाग चालमोगरा आयल मिला लें, आवश्यकतानुसार कुष्ठ के व्रणों पर लगावें।

गुण—खाज कुष्ठ तथा चर्म रोगों में अतीव गुणकारी है। कुष्ठनाशक है।

बर्स हर चूर्ण-(सफूफ बर्स)—चकासू, पनवाड बीज, बावची, अंजीर वृक्षकी छाल, नीम वृक्ष की भीतरी छाल प्रत्येक २ तोला मिलाकर चूर्ण करें।

मात्रा—तथा उपयोग—६ माशा चूर्ण, रात्री को जल में भिगोवें, प्रातः निथार कर छान कर पी लेवें तलस्थ फोक को दागों पर लगायें, पथ्य में बेसन रोटी (लवण बिना) घृत से खायें।

गुण—यह चूर्ण ४० दिन के प्रयोग से श्वेत कुष्ठ (बरस) को नष्ट करके त्वचा की रंगत को सुधार देता है।

कुष्ठहर चूर्ण—नीम पत्र, बकुन पत्र, सहदेवी, कंडयारी पंचांग, आमला, अम्बा, हलदी, सरफोका, बावची सब समभाग लेकर कूट छानकर चूर्ण करें। यह सब चूर्ण ३५ तोला होना चाहिये, इसके ४ भाग करें।

मात्रा तथा उपयोग—१ भाग प्रातः १ भाग सायं को प्रयोग करें, पथ्य रूप में चने की रोटी घी के साथ प्रयोग करें, लवण का सर्वथा त्याग करें।

गुण—कुष्ठ की प्रारम्भिक अवस्था में विरेचन के बाद प्रयोग करें।

कुष्ठ हर लेप—अञ्जीर जंगली की जड़, बावची, पनवाड़ बीज, नरकचूर, प्रत्येक ३ माशा, सबको निंबू रस में पीसकर लेप कर, परन्तु लेप करने से पहिले स्थान को खुरदरे कपड़े से रगड़ लें।

गुण—दाद, छीप, सफेद दाग में उत्तम है।

अतरीफल शाहतरा—शाहतरा (पित्तपापड़ा) २५ तोले, हरीतकी २० तोले, बड़ी हरड १५ तोले, बहेडा, आमला प्रत्येक १० तोले, सनाय पत्र ५ तोले गुलाब पुष्प ३ तोले, द्राक्षा (बीज रहित) २ सेर १६ तोले सब औषध को यथा विधि पीसकर छान लें। द्राक्षा को पृथक पीसें और चूर्ण मिला दें, शहद तीन गुने में मिलाकर अतरीफल बनालें।

मात्रा—रात्रि को सोते समय अर्क गावजवान १२ तोले से वा जल के साथ ७ माशे खावें वा प्रातः काल अर्क मुरकब मुसफ्फी खून (रक्त शोधक अर्क) २ तोला से प्रयोग करें।

गुण—यह अतरीफल, रक्तदुष्टि, आतशक (उपदंश) तथा उससे उत्पन्न होने वाली गरमी, शिरःशूल, शिरोभ्रम और शिर के बाल गिरने में बहुत लाभ करती है। उपदंश जनित व्रण खारिश वा अन्य त्वचा के विकारों में लाभप्रद है।

खुजली लेप—गन्धक आंवलासार, नीला थोथा, कमीला, मुरदारसंग १-१ तोला कूट छानकर रखें। प्रतिदिन १ तोले से २ तोले तक ५ तोला मक्खन में मिला कर धूप में बैठकर शरीर की मालिश करें, १ घण्टा बाद महन्दी और चने का आटा मलकर अवोष्ण जल से स्नान करें।

गुण—खुजली में उपयोगी।

तुत्थादि योग—नीला थोथा, गन्धक ६ माशा, सिंदूर १ तोला, रसकपूर ३ माशा, मुर्दासंग १ तोला, बावची २ तोला, पारद ३ माशा, नीम पत्र ढाई तोला, हरताल वर्की ३ माशा, कपूर २ तोला, मनशिल ३ माशा सबको मिलाकर बारीक पीसकर रखें। ३ माशा औषध २॥ तोला शतधौत मक्खन में मिलाकर मालिश करें, १ घण्टा बाद स्नान करें।

गुण—खारिश में अत्यन्त उत्तम है।

मरहम जिल्द—पारद, गन्धक, कमीला, बावची, मुर्दासंग, काली मिर्च, नवसादर, सुहागा, कपूर १-१ तोला नीला थोथा ६ माशा, बारीक पीस लें और २० तोला वेसलीन में मिला लें। तैयार है।

गुण—खारश के लिए विशेष योग है।

अतरीफल शाहतरा—शाहतरा (पित्तपापड़ा) २५ तोले, हरीतकी २० तोले, बड़ी हरड़ १५ तोले, बहेड़ा प्रत्येक १०तो., आमला, सनाय पत्र ५तो., गुलाबपुष्प ३तो., द्राक्षा (बीजरहित) २ सेर १६ तोले, सब औषधि को यथा विधि पीस छान लें। द्राक्षा को पृथक पीसें और चूर्ण में मिला दें, शहद तीन गुणा में मिलाकर अतरीफल बना लें।

मात्रा—रात को सोते समय अर्क गाऊजवान १२ तोला से वा जल के साथ ७ माशे खावें व प्रातःकाल अर्क मुरकब मुसफ्फी खून (रक्तशोधक अर्क) १२ तोले से प्रयोग करें।

गुण—यह अतरीफल, रक्तदुष्टि, आतशक (उपदंश) तथा उससे उत्पन्न होने वाली गर्मी, शिरःशूल, शिरोभ्रम और शिर के बाल गिरने में बहुत लाभ करती है। उपदंशजनित व्रण, खारश वा अन्य त्वचा विकारों में लाभप्रद है।

हब्ब मुसफ्फीखून (रक्तशोधन वटी)—रसौत, शुद्ध चाकसू, मुण्डी, ब्रह्मदण्डी, नीलकण्ठी, नीलोफर पुष्प, सरफोंका, चन्दन सफेद, चन्दन सुरख, पित्तपापड़ा, महन्दी पत्र, जवासा-नीम पत्र, बकायन पत्र, धनियां शुष्क, कचनार पुष्प, १-१ तोला सब औषधि को कूट कर छान जल से चने समान वटी करें।

मात्रा तथा प्रयोग विधि—२ वटी अर्क मरकब मुसफ्फी खून १२ तोले के साथ शरबत उन्नाव २ तोले मिलाकर प्रयोग करें. बालकों को आयु के अनुसार दें।

गुण—परम रक्त शोधक है, आतशक मे भी लाभप्रद है।

हब्ब करामात—कमीला, चूना, नीलाथोथा, हरड, पपड़िया कत्था, सब औषधि बारीक करके जल से वटी

करें और छाया में शुष्क करें, आवश्यकतानुसार गोघृत में हल करके फुन्सियों पर लगावें।

गुण—प्रत्येक प्रकार की फुन्सियों में उपयोगी है।

हलवा चोबचीनी—गन्दम का आटा ५ सेर, रोगन जैतून और घृत १-१ सेर छ छटांक में मिश्रित कर अग्नि पर चढ़ाकर भून लें, इसके उपरांत ४ सेर १ पाव उत्तम मधु का पाक करके भुना हुआ आटा इसमें मिला दें। फिर मग्ज चिलगोजा मगज नारीजाल प्रत्येक ८ तोला पीसकर शामल करें, इसके उपरांत चोबचीनी ३८ तोला, लौंग, छोटी इलायची, दालचीनी, कचूर, सौंफ, सौंठ, अनीसून, इन्द्र जौ, सुरंजान मधुर, पिप्पली, पान की जड़, नागर मोथा, प्रत्येक ६ तोला कूट छानकर हलवे में मिश्रित करें।

मात्रा—१ तोला खाकर १ पाव दूध पीवें।

गुण—रक्त शोधक तथा वाजीकरण है।

सूपफूलूना—हरीतकी कृष्ण १५ माशे, बादरंजबोया ७ माशा, गारीकून, अफ्तीमियु प्रत्येक ५ माशा हिंजल का भीतरी गूदा सबको कूट छानकर चूर्ण करें।

मात्रा—४॥ माशा।

गुण—वातज दोष, उपदंश रक्त दोष में उत्तम है।

सफूफ लाजवरद—लाजवरद धोया हुआ, हिंजर अरमनी प्रत्येक २ माशा, बादरंजबोया ३ माशा, कृष्ण हरीतकी, बड़ी हरड़ प्रत्येक ४ माशा, सनाय, बनफ़शा पुष्प प्रत्येक ५ माशा पित्तपापड़ा बीज ६ माशा, आकाश बेल, बसफाईज फस्तकी प्रत्येक ७ माशा सब को कूटछान कर खांड ४७ माशा मिला दें।

गुण—वात दोष, रक्त दोष, कुष्ठ, खुजली, दाद आदि में उपयोगी है।

शरबत उन्नाव—उन्नाव आधा सेर लेकर २ सेर पानी में क्वाथ करें, तिहाई भाग रहने पर छानकर २ सेर खांड मिलाकर पाक करें।

गुण—खांसी, वक्ष, पीड़ा, रक्तदोष, शीतला में बहुत लाभप्रद है।

रक्तशोधक शरबत-उन्नाव, पित्तपापड़ा, नीलोफर, आकाश बेल,कासनी, खुब्बाजी,हरड़, कृष्ण हरीतकी मुण्डी, चन्दन सफेद,बुरादा शीसम, बनफशा पुष्प१-१ तोला, आठ गुना जल में भिगोकर क्वाथ करें और तिगुना खांड मिला शरबत का पाक करें।

मात्रा—२ तोला, दूध में वा अर्क रक्त शोधक में मिलाकर प्रयोग करें।

गुण—रक्त शोधक है, फोड़े, फुन्सी को नष्ट करता है।

शरबत मुसफी-सन्दल सुरख,नीलकण्ठी, पित्तपापड़ा, सरफोंका प्रत्येक १॥ तोला, नकचूर, चोबचीनी प्रत्येक ४ माशा, उशवा, मेहन्दी पत्र, कमीला १॥-१॥ तोला, चिरायता, मुण्डी, उन्नाव, हरड़ प्रत्येक ३। तोला, सनाय, नीमपत्र,ब्रह्मदण्डी, कृष्ण हरीतकी प्रत्येक २१ तोला,शीशम बुरादा १ तोला यथाविधि क्वाथ कर छान कर खांड मिला शरबत तैयार करें। पाक सिद्धि पर पोटेशियम आयोडाईड १० तोला मिलाकर बोतलों में भरें।

मात्रा—१ चमचा (६० बूंद से १२० बूंद) दूध से।

गुण—परम रक्त शोधक है।

अर्क सदबरग—सदबरग पुष्प (गेंदे के पुष्प) १ पाव लेकर केला के स्वरस ४ सेर में रख दें प्रातः अर्क निकालें।

मात्रा—२ तोला।

गुण—पित्ती (शीतपित्त) निकलने में लाभप्रद है।

अर्क उशवा—उशवा मगरबी १५ तोले, चोबचीनी १० तोला, रात्री को ६ सेर जल में भिगोवें प्रातः अर्क निकालें।

मात्रा—१० तोला अर्क, शरबत उन्नाब में मिलाकर पीवें।

गुण—रक्त शोधक है आमवात, उपदंश तथा सुजाक में उपयोगी है।

अर्क उन्नाब—उन्नाब १ पाव लेकर ४ सेर जल में एक दिन रात्रि भिगोवें, प्रातः २ सेर अर्क निकालें।

मात्रा—१० तोला, शरबत उन्नाब २ तोला में मिला कर प्रयोग करें।

गुण—रक्त दुष्टि के लिए उत्तम है कफ को निकालता है।

अर्क कासनी—कासनी बीज १ पाव को ४ सेर जल में एक दिन भिगोवें फिर २ सेर अर्क निकालें।

मात्रा—१० तोला।

गुण—रक्त की गरमी, पित्त की उग्रता को कम करता है, शिरःशूल, तृषा तथा यकृतशोथ में उत्तम है।

अर्क चोवचीनी—दालचीनी, गुलाव पुष्प, रेहांवीज, प्रत्येक ६ तोला, वालछड़, तमालपत्र, लौंग, छोटी एलावीज, काचूर हुआ वांदरजवोया, गाऊजबान पुष्प, उपकव आवरेशम कुतरा हुआ प्रत्येक ३ तोला, वहमन लाल, वहमन सफेद, ऊद हल्दी, छड़ीला, प्रत्येक १॥ तोला केशर १० माशा, रूमी मस्तगी ७ माशा, अम्बर ३॥ माशा, कस्तूरी १॥। माशा, चोवचीनी ५७ तोला, मधुर पक्व ५० नग, अर्क गुलाव १ सेर, सेव के टुकड़े टुकड़े करें और कूटने योग्य औषधि को कूट कर देग में रखकर औषधि से १६ गुना जल डालें और अर्क निकालते समय केशर कस्तूरी, अम्बर, मस्तगी की पोटली में वांधकर नलकी के मुख पर पोटली को बांध दें, जिस कदर जल डाला गया हो उसका तीसरा भाग अर्क निकालें।

मात्रा—१० तोला।

गुण—रक्त शोधक है, फोड़े फुन्सी तथा पित्त को नष्ट करता है, शरीर को वल देता है।

अर्क मरकव मसफी खून:—नीमपत्र, नीमछाल, महा नीमछाल, महा नीमपत्र, कचनार, मौलसरी छाल, दूधी लघु, भांगरा कृष्ण, यवास पत्र तथा शाख, गूलर छाल, मेहन्दी पत्र, मुण्डी, पित्तपापड़ा, सरफोंका, धमासा, विजयसार, नीलोफर पुष्प, बुरादा चन्दन रक्त तथा सफेद गुलाव पुष्प, धनियां, कासनी वीज, कासनी जड़, मंजीठ, बेदपत्र, शीशम वृक्ष का बुरादा आध आध पाव सब औषध का अर्ध कुट्टित चूर्ण कर १६ गुना जल में २४ घण्टे भिगोकर आधा भाग अर्क निकालें।

मात्रा—१० तोला।

गुण—महान रक्त शोधक है, उपदंश में भी उत्तम है।

अर्क मत्बूख हफत रोजा:—नीम वृक्ष छाल, काचनार छाल, हिंजिल जड़, कीकर की फली, कण्टयारी, लघु पंचांग, पुराना गुड़ प्रत्येक आध पाव सबको तीन सेर जल में उवालें, १ सेर शेष रहने पर छानलें, इसकी सात मात्रा करें, इसमें से १ मात्रा प्रतिदिन प्रातः को प्रयोग करें और सायं को खिचड़ी खावें। यदि प्रवाहिका हो जाये तो अर्क पीना बन्दकर लुआव वहीदाना ३ माशा, लुआव रेशाखतमी ५ माशा, जल में निकालकर खाण्ड सफेद २ तोला मिलाकर प्रयोग करें, यदि एक दिन छोड़कर और प्रतिदिन नया अर्क निकाल कर प्रयोग करें तो प्रवाहिका नहीं होगी।

गुण—रक्त विकार फोड़े, फुन्सी, आमवात तथा उपदंश में अतीव उपयोगी है।

अर्क मालजोवन—मछेछी बूटी ४० तोला, हरड़, हरड़ काबुली, हरीतकी कृष्ण, वछेड़ा, नीमपत्र, वकायन पत्र, नीम वृक्ष छाल, मगज तुखम नीम, इमली वीज, मगज आमला, धनियां, शुष्क मौलसरी छाल, गिलोय, सवज प्रत्येक १-१ तोला, पित्तपापड़ा, चिरायता, सरफोंका, मेहन्दी पत्र, शीशम बुरादा, सन्दल सुरख, सन्दल सफेद, मकोय शुष्क, झड़वेरी जड़ छाल, पेड़ा चटाई की जड़ की छाल (यह एक प्रकार की घास है, नदी के किनारे होती है, मनुष्य जैसा कद होता है), गन्ने की जड़, चम्बेली पत्र, आवनूस का बुरादा, उन्नाव प्रत्येक ५ तोला, अमलतास गूदा आध सेर, मालजोवन ५ सेर, जल २७ सेर मिलाकर २४ घण्टे पश्चात् २० सेर अर्क निकालें।

मात्रा—६ तोला।

गुण—रक्तशोधक है, रक्त दुष्टि में उत्तम है।

अर्क मालहम चोवचीनी वाला—चोवचीनी २२ तोला, गाऊजबान पुष्प, वादरंजवोया, वालछड़ प्रत्येक २ तोला, लौंग, दालचीनी, वड़ी इलायची, जायफल, जावित्री, वादयान खताई, वहमन सुरख, वहमन सफेद, उशवा, मगरवी, चन्दन लाल, चन्दन सफेद, कवाव चीनी, छड़ीला कचूर, गुलाव पुष्प, तज, शकाकुल, करंजमुशक, हालोंवीज, उदगरकी, बोजीदान, प्रत्येक १ माशा, अम्वर, कस्तूरी केशर प्रत्येक पौने २ माशे, चिड़े ५० नग, अर्क वादरन्ज वोया, वेदमुश्क, गुलाव पुष्प, गाऊजवान, वहार प्रत्येक का ४ सेर अर्क, जल ५ सेर। प्रथम चारों मासो कोअर्क और पानी मिलाकर १६ सेर अर्क खींचे, फिर इस अर्क में ऊपरलिखित औषध चूर्ण भिगोकर दुवारा अर्क निकालें। कस्तूरी आदि की पोटली में वांधकर नलकी में मुख में वांधें।

मात्रा—५ तोला। शरवत उन्नाव १ तोला में मिलाकर प्रयोग करें।

गुण—वाजीकर, शरीर पोषक, वृक्क तथा मूत्राशय को वल देता है, आमवात उपदंश तथा रक्तदुष्टि में उपयोगी है।

माजून चोवचीनी (विशेष योग)—दोनों इलायची, पानजड़, लौंग, कवावचीनी, कस्तूरी, वोजीदान,

सोंठ, वालछड़, कचूर, तगर, साजज हिन्दी (तमाल पत्र), पिप्पली, अम्बर जदवार, खताई प्रत्येक १ माशा, दार-चीनी, सुरंजान, शकाकुल मिश्री, खसतोयालसलव, मस्तंगी रूमी, ऊद हिन्दी, इन्द्र जौ, केशर प्रत्येक १४ माशा, मगज चिरौंजी, मगज, हुव्व किलकिल, मगज, तुखम कुटछ, मगज हुवतल खिजरा प्रत्येक पौने २ तोला, मगज चिलगोजा, मगज नारियल प्रत्येक ९ माशा, चोवचीनी ५६। तोला पहिले चोवचीनी को ४ सेर जल में १ दिन खिगो रखें, फिर वारीक-वारीक टुकड़े कर इस कदर उवालें कि एक सेर पानी रह जाये, अब मधु तुरंजवीन प्रत्येक ५६ तोला पहिले चोवचीनी को ४ सेर जल में एक दिन भिगो रखें, फिर वारीक वारीक टुकड़े कर इस कदर उवालें कि एक सेर पानी रह जाये, अब मधु तुरंजवीन प्रत्येक ५६ तोल। मिलाकर पाक करें और औषध चूर्ण मिलाकर माजून तैयार करें।

मात्रा—७ माशा।

गुण—वाजीकरण, रक्तशोधक है।

माजून उशवा—उशवा, मगरवी, वसफाईज, फसतकी, अफतीमियून विलायती, गाऊजवान, कवावचीनी, दालचीनी २-२तोला, गुलाव पुष्प, चोवचीनी, दोनोंचन्दन ३-३ तोला सनाय ४ तोला, इरड़, वालछड़ १-१ तोला, हरड़ ६ माशा, वहेड़ा ७ माशा, सवको कूट छान लें, खांड श्वेत ३ पाव मधु आध सेर, यथा विधि पाककर चूर्ण मिलाकर माजून तैयार करें।

मात्रा—१ तोला।

गुण—जोड़ों की पीड़ा, आतशक, अर्श ववाशीर, खारिश तथा रक्तदोष में उत्तम है।

रक्त शोधक माजून—नीमजड़ छाल, जंगली अंजीर की जड़ की छाल, शाहतरा, चिरायता, धनियां शुष्क, हरड़, वहेड़ा, आमला, कृष्ण हरीतकी सौंफ, चित्रक, गुलाव, सनाय प्रत्येक २ तोला, सवको कूट छानकर त्रिगुण मधु के पाक में मिलाकर माजून तैयार करें।

मात्रा—७ माशा, प्रातः सायं।

गुण—परम रक्त शोधक है।

माजून महसफर—हरड़, हरड़ कावुली, वहेड़ा १-१ तोला, आमला, पित्तपापड़ा, गिलोय, जीरा सफेद प्रत्येक २ तोला, धनियां, महसफर पुष्प १-१ तोला सव औषधि का चूर्ण कर त्रिगुण मधु का पाक कर माजन तैयार करें।

मात्रा—७ माशा।

गुण—रक्त दोष को नष्ट करती है।

माजून नजाह—हरीतकी कृष्ण, वहेड़ा, आमला प्रत्येक ३॥ तोला, वसफाईज फस्तकी, अफतीमियून विलायती, उस्तोखद्दूस, त्रिवृत सफेद प्रत्येक १॥ तोला, मधु त्रिगुण, लेकर यथा विधि माजून तैयार करें।

मात्रा—५ माशा।

गुण—रक्तदोष में उपयोगी है।

माजून—मगज वादाम, मगज फिन्दक, मगज चल-गोजा, मगज अखरोट, मगज कुड, मगज पिस्ता, मगज नारियल, मगज हुव्व फिलफिल, मगज हुव्वजलम, मगज हिवतलखिजरा, चिडो के शिर का मगज, मगज खरवूजा, गाजरवीज, शलगमवीज, तुखम कोच, तुखम जरजीर, तुखम उटंगन, वादरजवोया वीज, फरंज मुशक वीज, वालगू, वीज दोनों वहमन दोनों तोदरी, शकाकुल मिश्री, सन्दल-सफेद, साहलव मिश्री, इन्द्र जौ, गोंद कीकर, मस्तगी रूमी, मायाशुत्र अहरावी, छुहारे प्रत्येक ३॥ माशा, अम्वर शहव २ माशा, आवरेशम कुतरा हुआ, दालचीनी, छोटी इलाइची, पानजड़ वोजोदान, पोदीनाशुष्क, सोंठ केशर, प्रत्येक ३ माशा, गाऊजवान गोलानी, अनीसून वीज प्रत्येक ४ माशा, खयारैन, खुरफा वीज छिला हुआ प्रत्येक ९ माशा, मधु औषधि से द्विगुण खांड, औषधि मान के समभाग। खांड तथा मधु का पाक करके औषधि चूर्ण मिलाकर माजून तैयार करें।

मात्रा—५ से ८ माशा तक।

गुण—गुणप्रद तथा प्रभावशाली योग है, पुंसक शक्तिवर्धक है।

मुसफो—पित्तपापडा, सरफोंका, उन्नाव नोकुण्ठी, ब्रह्मांडी, हरड़, कृष्ण चोवचीनी, उशवा मगरवी, चन्दन लाल, वुरादा शीशम, मेहन्दी पत्र, नीम पत्र, सनाय, ६-६ छटांक, चिरायता १२ छटांक, नरकचूर ३ छटांक, मुण्डी १ सेर, कमीला १॥ छटांक, सवको अर्ध कुट्टित कर २० सेर जल में उवालें, आधा भाग रहने पर १० सेर खांड मिलाकर शरवत का पाक करें।

मात्रा—२ से ५ तोला।

गुण—परम रक्तशोधक है, फोड़े-फुन्सी, खराश में अत्यन्त उत्तम है।

हब्ब सुरखबाद—रसौत १ माशा, सन्दल सुरख २ माशा, नरकचूर ३ माशे, अहिफेन, हल्दी, महेन्दीपत्र, १-१ माशे, मुर्दासंग, चाकसू ४-४ रत्ती, नीमपत्र, बकायनपत्र (महानिम्बपत्र)-१२-१२ पत्र सबको कूट छानकर मूंग समान वटी करें।

मात्रा—आवश्यकतानुसार १-१ वटी माता के दूध में बच्चों को दें।

गुण—बच्चों को सुरखबाद तथा रक्तपुष्टि में उत्तम है।

हब्ब कोबा-(दाद हर वटी)—पारद, गन्धक, मुरदासींग, खाँड, गोंद कीकर लेकर खरल करें, पानी में चने समान गोली बनायें। आवश्यकतानुसार १ वटी पानी वा थूक में घिसकर दाद पर लगावें।

गुण—दाद खुजली तथा चम्बल में लाभप्रद है।

हब्ब करामात—कमीला चूना, नीलाथोथा, हरड़, पपड़िया कत्था, सब औषधि बारीक करके जल से वटी कर और छाया में शुष्क करें, आवश्यकतानुसार गोघृत में हल करके फुन्सियों पर लगावें।

गुण—प्रत्येक प्रकार की फुन्सियों पर उपयोगी है।

स्वेदहर औषधि—चावल, मसूर, समाक, धनियां शुष्क, उन्नाव समभाग लेकर पानी में भिगो कर क्वाथ करें।

गुण—इसके पिलाने में स्वेद की अधिकता कम हो जाती है।

दादहर तेल—पारद, गन्धक १-१ तोला, नीलाथोथा ६ माशा, तिल तेल आधा पाव प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर नीलाथोथा मिलाकर एक जीव करें, फिर तैल मिलाकर ३-४ प्रहर अच्छी तरह खरल करें, दाद छीव पर लगावें।

गुण—दाद, छीव, चम्बल में बहुत उपयोगी है।

दादहर लेप—नारियल का ऊपर का छिलका जला हुआ, सोहागा भुना हुआ, कपूर, गन्धक, प्रत्येक समभाग लेकर नींबू स्वरस में खरल कर चूर्ण करें और नीमपत्र लेकर जल में उबाल कर छान लें, इस नीम जल से घी को १०० बार धोकर औषधि चूर्ण घी में मिलाकर लेप करें।

गुण—दाद को नष्ट करता है।

दादहर लेप—गन्धक, पारद, हरताल, नीलाथोथा, बावची १-१ तोला, कड़वा तेल ६ तोला सब को कूट छानकर तेल में हल करके मालिश करके और धूप में बैठें। तीन घण्टा बाद कड़वे तेल की खल्ली मर्दन पर उष्ण जल से स्नान करें तीन दिन ऐसा करें।

गुण—खारिश और दाद में उत्तम है।

लेप्रोसी (Leprosy)

एलोपथिक

यह एक जीर्ण संक्रामक रोग है। इसकी उत्पत्ति एक विशेष जीवाणु के संक्रमण से होती है। इसका प्रभाव त्वचा म्युकस मेम्ब्रेनस और नर्वस के ऊपर पहले पड़ता है। वैसे इसके साथ ही हड्डी और आंत विशेषकर (लीवर तथा स्प्लीन) भी प्रभावित हो सकते हैं। यह किसी भी आयु में हो सकता है परन्तु १०-३० वर्ष की अवस्था में सम्भावना अधिक रहती है। यह रोग माइक्रो वैक्टीरियम लेप्री के द्वारा पैदा होता है। पौष्टिक भोजन के अभाव में यदि इस रोग के रोगी के साथ सम्पर्क हो तो यह रोग होता है। बच्चों को रोगी बाप के साथ रहने के कारण यह रोग हो सकता है। परन्तु यह पारिवारिक रोग नहीं है। भोजन के कारण भी यह नहीं होता है परन्तु अपौष्टिक आहार तथाक्षीण करने वाली बीमारियों से इसके उत्पन्न होने में सहायता मिलती है। इसका खास स्थान त्वचा है। इसमें कोई घाव, रगड़ अथवा इसके कटने-फटने के कारण इसमें रोग उत्पादक जीवाणु को प्रवेश का स्थान मिल जाता है। इसका इन्क्यू-वेसन पीरियड कुछ महीनों से लेकर कुछ वर्षों तक हो सकता है। लेप्रा वैसीलस के बनावट व बड़ाई में बहुत ही अन्तर पाया जाता है। ये २–८ म्यू × ०·५–१ म्यू तक हो सकते हैं। बहुत से समानान्तर भुजा वाले होते हैं और उनके किनारे गोल होते हैं। परन्तु कुछ घुमावदार तथा नोंकदार किनारे के होते हैं। ये ग्राम पाजिटिव तथा कुछ एसिड फास्ट होते हैं ये २५% इन्फेक्टिव तथा ७५% नान-इन्फेक्टिव हो सकते हैं। यह बहुत ही पुरानी बीमारी है और इसका वर्णन आयुर्वेद में अच्छी प्रकार से किया गया है।

इन्टरमीडिएट (एन ? एल) ग्रुप—इसमें एन तथा एल दोनों ग्रुप के समान त्वचा पर लक्षण मिलते हैं। बी टी और एल के बीच जैसा तथा आई, एम. ए. और एल के बीच जैसा।

(१) नान-लेप्रोमेटस टाइप—इसमें त्वचा, नर्वस तथा आसपास की लिम्फ ग्लैण्ड्स ही प्रभावित होती है जो त्वचा नर्व्स इन पैचेज को जाती हैं वे साधारण से कुछ मोटी होती हैं। श्राव परीक्षा पर निगेटिव होता है अथवा इसमें लेप्रा के जीवाणु नहीं मिलते। लेप्रोमिन टेस्ट पाजि-टिव होता है जिससे पता चलता है कि रोग ठीक होने की सम्भावना है।

(२) लेप्रोमेटस टाइप–यह अधिक भयंकर होती है। त्वचा के चकत्ते विभिन्न प्रकार के होते हैं। नोड्यूल्स डिफ्यूज इन्फिल्ट्रेसन टेढ़े मेढ़े इरीथेमेटस मोटे चकत्ते या श्वेत वर्ण के चपटे चकत्ते विद्यमान होते हैं। श्राव परीक्षा पाजीटिव होते हैं। लेप्रोमिन टेस्ट निगेटिव होता है। जीर्ण रोगियों में नर्वस मोटी हो जाती हैं। संज्ञाहीनता, टेढ़ापन तथा अन्य कोई लक्षण भी विद्यमान हो सकते हैं। रोग की अवस्था के अनुसार इसको एल १, एल २ या एल ३ की संज्ञा से संबोधित किया जा सकता है।

पैथोलाजी—शरीर में घुसने पर जीवाणु त्वचा के कोरियम में घुस करके वहां पर बढ़ते हैं इनका विशेष आकर्षण अंगुलियों के नर्व ट्विग्स के ऊपर होता है। रोग यों भी ऊपर बढ़ सकता है या लसीका वाहिनियों के द्वारा भी बढ़ सकता है। जीवाणु के रक्त में पहुँचकर अन्य स्थान पर भी मेटास्टेसिस द्वारा रोग फैल सकता है और त्वचा के ऊपर प्रभाव के अनुसार तीन प्रकार के हिस्टोलाजिकल

लेप्रोलाजिस्ट्स के इण्डियन असोसियेसन ने १९५५ में निम्न वर्ग किये—

नान लिप्रेमेटिस (एन)	इण्टरमेडिएट (एन ? एल)	लेप्रेमैटस (एल)
ट्यूबर क्यूलायड (टी) मैसक्यूलो अनेस्थटिक (एम० ए०) पाली न्यूराइटिस (पी)	बारडर लाइन (बी) इण्टर मेडिएट (आई०)	लेप्रामेटस (एल)

गरिबर्तन पाए जाते हैं। १. सफ़ेद चपटा चकत्ता २. लाल गोटा चकत्ता ३. लेप्रामेटस लीजन्स।

अन्दर के अङ्गों पर प्रभाव—स्प्लीन तथा लीवर कुछ बढ़े हुये होते है और उनमें सफेद पीली रेखायें भी हो सकती हैं जिसमें लेप्रा जीवाणु दो अण्डकोष व बीजदानी में माइक्रोसिस हो गई है। लिम्फटिक ग्रन्थियां बड़ी और कड़ी हो जाती है और स्राव होना साधारणतया सम्भव है।

श्लैष्मिक कला—ये चकत्ते श्लैष्मिक कला (नाक, जिह्वा, फैरिंग्स और लैरिंग्स की) पर भी हो सकते हैं तथा 'नजल सेप्टम' छिद्रयुक्त या इसका कुछ भाग टूटा हुआ हो सकता है।

निदानीय अवस्था—क्षीण व्यक्तियों में यह रोग होता है। इस रोग के जीवाणु ६ मास से २० वर्षों के बाद तक रोग उत्पन्न कर सकते हैं। जब तक उनको रोग उत्पन्न करने के लिये उचित अवस्था नहीं मिलती चुपचाप इसकी प्रतीक्षा इतने समय तक करते रहते हैं। यह बिना ज्वर इत्यादि शारीरिक लक्षण के उत्पन्न हो जाते हैं। सबसे पहले किसी भाग में संज्ञाहीनता उत्पन्न हो सकती है। फिर चकत्तों में संज्ञाहीनता। कभी-कभी दर्द, चुभन, जलन या व्रण भी हो सकते हैं। उसके बाद इसके बढ़ने की चाल कम पड़ जाती है।

(i) नान लेप्रोमेटस टाइप—

(अ) कुछ रोगियों में १२.५० मि. मी. मैकुलर पैच से शुरू होकर बड़े से बड़े साइज का भी हो सकता है जो कि नीचे से ऊपर तक पहुंच सकता है। यह सफेद, पतला या लाल और मोटा भी हो सकता है। कभी-कभी हाथ पैर में 'बुल्ली' भी उत्पन्न हो सकती है। जो कि टूट जाती है और घाव भर जाता है परन्तु स्थान सफेद और संज्ञाहीन अवस्था में रहता है।

(ब) चकत्तों पर संज्ञाहीनता, रूक्षता, बालों का न उगना तथा एक्रोटेरिक अवस्था का पाया जाना भी इसके विशेष लक्षणों में हैं।

(स) मांसपेशियों की क्षीणता, क्लाहैन्ड्स, ४ थी व ५ वीं अंगुलियों का अन्दर की तरफ झुकना, अंगुलियों का अगल-बगल में न मुड़ना, नाखूनों का सिकुड़ना, कड़ापन या सूखापन की अवस्था का होना तथा उससे लगे मांस का सूख जाना लक्षण होते हैं। यह सब कारण व्रण की नाड़ी के प्रभावित होने के कारण होता है। परन्तु रेडियल नर्व के प्रभावित होने पर 'रिस्टड्राप' की अवस्था हो सकती है। अंगुलियों और पंजों की हड्डियाँ डीकलरीकाइड हो जाती है। धीरे-धीरे गल जाती हैं और समाप्त होजाती हैं। जोड़ों में व्रण इत्यादि हो जाते हैं और उनमें टेढ़ापन या मोटापन हो जाता है। आंख के आस-पास की मांसपेशियों का पैरैलिसिस हो सकता है। जिससे आंख पूरी बन्द नहीं होती और अन्य उपद्रव होने लगते हैं। अर्दित भी हो सकता है। महक और स्वाद कान ज्ञान हीनता हो सकती है। लैटेरल पापलीटियल नर्व के प्रभावित होने से मांसपेशी की क्षीणता तथा फुटड्राप की अवस्था पाई जा सकती है।

(२) लेप्रामेटस टाइप—यह मलीगनेन्ट प्रकार की है। और इसके चकत्ते सर्वाङ्ग फैले होते हैं। त्वचा के चकत्ते विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं। जैसे (अ) नोड्यूल्स-ये छोटे बड़े हो सकते हैं जो कानों, चेहरे, हाथों, पैरों, कुहनी तथा घुटनों पर पाये जाते हैं।

जीर्णावस्था में ये पूरे शरीर पर पाये जाते है। और नाक, फैरिंग्स और लैरिंग्स के अन्दर भी हो सकते हैं। (ब) डिफ्यूज्ड, जनरलाइज्ड त्वचा का इन्फिलट्रेसन का रहना जिसके कारण 'लियोनिन ऐपियरेंस' का रहना। (स) इल डिफाइन्ड लास, मोटे और चिकने चकत्तों का रहना (द) इलडिफाइन्ड श्वेत चकत्तों का रहना तथा (न) इन दोनों को मिलाकर उपस्थित रहना।

रक्तपित्त का होना, मुंह व गले में व्रण का होना, श्वास में कठिनाई तथा सायं-सायं आवाज करना इत्यादि लक्षण हो सकते हैं। नेत्र भी इस रोग में प्रभावित होते हैं।

लेप्राफीवर या लेप्रारीएक्सन—यों तो यह रोग बहुत धीरे धीरे बढ़ता है और ज्वर इत्यादि नहीं होता परन्तु तीव्र अवस्था में या जब नोड्यूल्स बढ़ते हैं तो ज्वर, नाड़ीशूल या आइराइटिस का शूल होता है। लेप्रा फीवर एक बड़ी डोज के सल्फोन, आयोडायड से या फीजिकलस्ट्रेन चाइल्ड नर्व की अवस्था में होता है। कभी कभी

यह प्रत्येक वर्ष गरमी में होता है। यह अस्थायी अवस्था है जो कुछ दिनों ही रहती है।

उपद्रव—म्युटीलेसन, विकृति स्टेरीलिटी लेप्रा-फीवर, एकील्वायड डीजनरेसन एसफीक्सिया, इपीसटै-क्सील,ट्यूवर क्यूलोसिस, नेफ्राइटिस, न्यूराइटिस, आइरा-इटिस और ट्राफिक फीवर इत्यादि।

निदान—श्वित्र के निदान के लिए तीन आवश्यक लक्षण हैं। इसमें से कम से कम एक का होना आव-श्यक है।

१. संज्ञाहीनता (लास आफ सेन्सेसन)

२. नाड़ी की मोटाई (थिकेन्ड नर्वस) और

३. एसिड फास्ट वैसिलाई का उपस्थित होना।

चिकित्सा—(१) स्वास्थ्य को सुधारना आवश्यक है। यदि कोई दूसरा रोग है तो उसकी चिकित्सा,शारीरिक कसरत तथा उचित पौष्टिक भोजन देना हितकर है।

(२) हिडनोकार्पस आयल तथा इसके डेरि-वेटिव्स से चिकित्सा-यह तेल ४% क्रीयोजोट या इथा-इल इस्टर आफ हिडनोकार्पस आयल ४% क्रीयोजोट या इन दोनों का मिश्रण सप्ताह में एक या दो बार सूचीवेध करना चाहिए। एक मात्रा १ सी. सी. से १० सी. सी. तक। मात्रा ०.५ सी. सी. बढ़ाते रहना चाहिए। इसका प्रयोग चूतड़ पर मांसपेश्यन्तर्गत करना चाहिए। वैसे अन्तः त्वकीय तथा अवः त्वकीय भी दिया जाता है जो कि अधिक अच्छा है। यदि अन्तःत्वकीय इन्जेक्सन करना हो तो प्रत्येक १ सी. सी. दवा के लिए १५-२० जगह लगाना चाहिए। इसकी सुई छोटी और सुरक्षित (गार्डेड) होनी चाहिए। यदि इससे ज्वर होता है तो इन्जेक्शन बन्द कर देना चाहिए या मात्रा कम कर देनी चाहिए।

(२) सल्फोन ड्रग्स-यह सबसे उपयोगी दवा है। इसको डाईएमीनो-डाईफेनाइल-सल्फोन (डी. डी. एस) कहते हैं। इसकी प्रस्तुतियां जैसे सल्फेट्रान (वी.डब्लू एण्ड कम्पनी) या नोवोट्रान (वी. सी. पी. डब्लू) ०.५ ग्रा. की गोलियों के रूप में मुंह से लेना है। २ गोली से प्रारम्भ करके १२ तक प्रतिदिन सप्ताह के ६ दिनों तक लेना चाहिए। परन्तु ५० % सल्फेट्रान सलूसन का एम्प्यूल सस्ता पड़ता है, जोकि १ से ४ सी. सी. तक मांसपेश्यन्तर्गत एक या दो बार दिया जा सकता है। इससे ५ मि. ग्रा. परसेन का ब्लडलेवेल मेन्टेन करना हितकर है। जब तक रोग रुक न जाय इसका प्रयोग करना चाहिए। यह ६ मास से २ वर्ष नानलेप्रायेटस और ५ वर्ष या अधिक लेप्रासेटस रोगी में हो सकता है। पेरेंट सब्सटेंस (डी. डी. एस.) डेयसोन (वी. डब्ल एन्ड को), नोवोफोन (वी. सी. पी. डब्लू) अवलोसल्फोन (आई. सी. आई) के रूप में थोड़े काल में भी काफी लाभकारी है। और सहज भी है। प्रारम्भ में २५ मि. ग्रा. से ऊपर १०० मि. ग्रा. तक ६ सप्ताह में रोजाना पहुंचा देना चाहिए। इसको मुंह से सप्ताह के ६ दिनों में लेना चाहिए। यह सस्ती तथा सहज औषधि है। यह औषधि लेप्रामेटस टाइप के लिए बहुत अच्छी है। नानलेप्रामेटस के लिए उतनी प्रभावशाली नहीं है।

सल्फोन चिकित्सा का तरीका—रक्ताभाव की हालत में इसे नहीं देना चाहिए। पहले उसकी चिकित्सा कर लेनी चाहिए अतः लाल रक्त कण तथा हिमोग्लोबिन का रक्त परीक्षण कर लेना हितकर है। फिर सल्फोन चिकि-त्सा शुरु करना चाहिए और प्रत्येक २-३ मास बाद इसका परीक्षण करते रहना चाहिए। रोगी को खूब प्रोटीनयुक्त भोजन देना चाहिए। यह इसके दुष्ट परिणामों को कम करते हैं।

सल्फोन के विषीय प्रभाव—रक्ताभाव, नींद न आना, त्वचकीय विवर्णता इत्यादि। यदि ये प्रभाव टिकाऊ हैं तो दवा बन्द कर देनी चाहिए।

उपद्रवों की चिकित्सा—(अ) लेप्रारीएक्सन में— पूर्ण आराम, द्रव आहार, सलाइन मिक्सचर, विबन्ध हो तो रेचन, २ % पोटैसियम एन्टीमनी टारट्रेट सलूसन १ सी. सी. सप्ताह में २ बार ५ सी. सी. कैलसियम ग्लू-कोनेट के साथ अन्तःसिरा सूचीवेध से। इससे न ठीक होने पर कार्टीकोस्टेरायड्स का प्रयोग किया जा सकता है।

(ब) नाड़ीशूल में—एस्पीरिन या वेगानिन अथवा नाड़ी खोल करके डी कम्प्रेसन आपरेसन करें।

(स) आइराइटिसमें—वोरिक से सिकाई, रंगीन चश्मा, ०.५ % एट्रोपीन सल्फेट सलूसन डालना तथा बाद में

५०% सल्फेट्रान का इन्जेक्सन, थोडी मात्रा में अन्तः मांसपेशी सूचीवेध द्वारा हितकर है।

(द) विकृति में —क्लाहैन्ड में हाथ की कसरत मालिस और १ घण्टे तक रोजाना अंगुलियों को खींचना, चालमौंगरा इन्जेक्सन तथा रात में हाथ में स्प्लिट लगाना।

(ब) ट्राफिक व्रण में—रोजाना मैगसल्फ सलूसन से धुलाई तथा सल्फोनामाइड पाउडर से ड्रेसिंग। कुछ दिनों बाद व्रण के किनारों में चालमौंगरा का त्वचा के नीचे सूचीवेध करने से व्रणपूरण जल्दी होगा। यदि संक्रमण नहीं है तो यह इन्जेक्सन शुरू से ही लगाया जा सकता है। इसके साथ पूर्ण आराम होना चाहिए। पेट के ऊपर कोई दवाव नहीं होना चाहिए। अधिक देर तक खड़ा होना, चलना बन्द कर देना चाहिए। एक विशेष प्रकार का जूता भार को वहन करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

रोक थाम—रोगी को स्वस्थ आदमियों से विशेष कर बच्चों से दूर रखना चाहिए। यदि सम्भव न हो तो बच्चों को घर के एक किनारे वाले कमरे में सुरक्षित रखना आवश्यक है। शीघ्र ही सल्फोन चिकित्सा प्रारम्भ कर देने पर बीमारी आगे नहीं बढ़ेगी साथ ही इसका फैलना भी रुक जायेगा।

श्वेत कुष्ठ

यह एक रंग का रोग है। जिसमें थोड़े दूर की त्वचा का रंग साधारण न होकर कुछ कम हो जाता है जिसे डीपिग मेन्टेसन कहते हैं। यद्यपि इसके आस पास का भाग अधिक रञ्जित हो सकता है। रञ्जन कम होने के अलावा त्वचा साधारण रहती है। यह अधिकतर बाद में होती है और कभी-कभी पैदाइश से ही रहती है। बाद की अवस्था में जीर्ण विवन्व का एक महत्वपूर्ण योग हो सकता है। इसमें संज्ञाहीनता, ट्राफिक चेन्जेज तथा ऊपरी नाड़ियों में कोई परिवर्तन नहीं होता। परन्तु रक्त तथा त्वचा दोनों में ही कापर (ताम्र) की कमी पाई जाती है।

चिकित्सा—

(१) यदि पेट में कोई संक्रमण हो उसकी विशेष चिकित्सा करना आवश्यक है।

(२) १ सीसी बावची का तेल, ६ सीसी जैतून के तेल में मिलाकर लगाना चाहिए। इसका संगठन धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए। इसी का अधःत्वकीय इन्जेक्शन कई स्थानों पर कई बार में थोड़ा-थोड़ा लगाने से काफी लाभ होता है। लीवर इक्सट्रैक्ट इन्जेक्शन से लाभ होता है। ताम्र खाने या इन्जेक्शन से आशातीत लाभ नहीं होता है। मेलाडीनीन का प्रयोग खाने या लगाने के लिये भी लाभकर सिद्ध होता है। अल्ट्रा वाक-लेट रेज से भी बालों की जड़ों के आस पास रञ्जन हो जाता है।

त्वकीय विवर्णता

(Cutaneous Leishmaninsis)

यह एक विशेष प्रकार का चर्म रोग है जो कि काला जार के पूर्ण अथवा आंशिक रूप में ठीक हो जाने के पश्चात होता है। वैसे अब भारतवर्ष में कालाजार का रोग कम होता है अतः यह रोग भी कम पाया जाता है।

निदानीय अवस्था—यह अवस्था कालाजार के ठीक हो जाने के १ या इससे अधिक वर्षों के बाद प्रारम्भ होती है। श्वेत मैक्यूलर चकत्ते बनते हैं उसके बाद या साथ साथ तितली के भांति के लाल चकत्ते बनते हैं। ये चकत्ते चेहरे के ऊपर मस्तक के अग्र भाग पर और कभी-कभी पैरों पर भी बनते हैं। इसके बाद ही छोटे-छोटे पैपुलर, नाडुलर या इल्ला जैसे उभार उत्पन्न होते हैं। ये उभार कानों, गालों, पैर के ऊपरी सतह पर या सर्वांग पर हो जाते हैं। ये बिना किसी परिवर्तन के महीनों पड़े रहते हैं। कोई परेशानी नहीं देते। दवा से जल्दी जाते नहीं।

निदान—(१) कालाजार का इतिहास (२) रोग के लक्षण मिलना तथा (३) लीशमन-डोनोवान बाडीज का

उभारों में उपस्थित होना।

चिकित्सा—अधिक समय तक यूरिया-स्टीवामीन का प्रयोग हितकर है। ४ से ६ मास तक इसका प्रयोग करने से यह प्रायः ठीक ही हो जाता है।

एक्जीमा (Eczema)

इस रोग में त्वचा के ऊपर कालिमा शोथयुक्त होती है। थोकि पैप्यूल, वेसीकल, क्रस्ट, स्केल और फिसर तथा कभी-कभी स्रावकारी (वीपिंग) होता है।

यह किसी रासायनिक, उष्ण या यांत्रिक उत्तेजना के कारण होता है। संवेदनशील लोगों में, एलर्जिका या गठिया, जीर्ण वृक्कशोथ, आमवातिक, स्थानीय संक्रमण, भूख न लगना, मदात्यय, मूत्राशय के विकार तथा दांत निकलने वाली अवस्था में भी यह रोग होता है। कभी कभी यह पैत्रिक प्रभाव से भी हो सकता है।

निदानीय अवस्था-बच्चों के गले पर, कान, हाथ, पांव पर तथा बड़ों में भी उसी स्थानों पर। जलन, फड़कना, खुजलाहट की अवस्था रोग की कमी और अधिकता के अनुसार पाई जाती है।

चिकित्सा—(१) कारण को दूर करना चाहिए।

(२) तीव्र अवस्था में जब शोथ अधिक हो तथा स्राव भी हो रहा हो उस समय हलका लेड लोसन तथा तार लोसन मिलाकर १ सप्ताह तक सींचना चाहिए, यदि पाक हो तो $\frac{1}{2000}$ एक्रोफ्लेविन या $\frac{1}{4000}$ पोटेशियम परमेगनेट लोसन लगाना चाहिए। जब स्राव बन्द होजाय कलमिन लोसन या कालाड्रिल या बाद में जिंक क्रीम लगाई जा सकती है। इसके साथ ही एन्टी इन्फेक्टिव, कार्टीकोस्टेरायड्स तथा एन्टी हिस्टामिन्स भी देना चाहिए, रोगी के स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए। किसी तरह का पाक, विबन्ध, गठिया हो इसकी उचित चकित्सा करें।

स्केबीज (*Scabies*)

यह एक छूत का रोग है जिसमें बहुत अधिक खुजली होती है विशेषकर रात में। और लाल फालीक्यूलर पैप्यूल्स और छालों में गुफा जैसी अवस्था के कारण खुजलाने की लाइनें बन जाना विशेष लक्षण हैं। ये गुफायें टेढ़ी लाइनों की होती हैं जो कि फीमेल अकारस के वरो करके उसके अन्त में रहने के कारण होती है जिसकी लम्बाई ०'४ मि. मी. होती है। ये स्कैबीलाई वहां अण्डे देती हैं जो १५ दिनों बाद नए एकारी में बदल जाता है। यह कपड़े के लगाव से एक से दूसरे में फैलती है। यह दो अंगुलियों के बीच, हाथ के सामने, हाथ के अन्दर का भाग, कुहनी, औरतों के स्तनों, पेट, पुट्ठे के तहों, पैर के ऊपर, घुटनों तथा पुरुष जननेन्द्रिय पर अधिक होता है। इसका निदान, खुजली, वरोज तथा संक्रमण के स्थान के आधार पर किया जाता है।

चिकित्सा—(१) बाद के संक्रमण को पेनीसीलिन और सल्फा के द्वारा ठीक करना अधिक हितकर है।

(२) सल्फर आइन्टमेंट (बी० पी०) तीन रातों तक बराबर प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी १० ग्राम पेरु का बालसम ९० ग्राम मलहम में मिलाकर देते हैं। यदित्वचा सल्फर के लिये अधिक संवेदनशील है तो साबुन के पानी से खूब धुलाई करना चाहिए। उसके बाद मलहम लगावें। एक ही कपड़े में ३ दिनों तक इसी प्रकार करना चाहिए। चौथे दिन फिर स्नान करना चाहिए और सारे कपड़े बदल देने चाहिए। यदि गन्धक से कोई शोथ या लालिमा उत्पन्न हो जावे तो कालामिन लोशन की आवश्यकता उसकी उत्तेजना को शान्त करने के लिये होती है।

(३) यूरैक्स को लगाने से खुजली उसी दिन से शान्त होने लगती है।

(४) टेटमोसोल (आई० सी० आई०) २०% साबुन के सलूसन में लगाने से भी इसकी रोक थाम भली प्रकार से होती है।

(५) २५% वेनजिल वेंजोएट का घोल साबुन और पानी के साथ बनाकर लगाने से भी काफी लाभ होता है। इससे त्वचा में कोई उत्तेजना नहीं होती है।

श्वित्र (किलास) रोग चिकित्सा

वैद्यरत्न श्री एम. एस. आर्य, महेन्द्रगढ़ (हरयाणा)

श्वित्र को जनता श्वेत कुष्ठ के नाम से पुकारती है, वस्तुतः यह कुष्ठ नहीं। शास्त्रों में कुष्ठ की व्याख्या करते हुए कहा है "कुष्णातीति कुष्ठम्" शरीर की त्वचा आदि धातुओं का नाश करने के निमित्त इस रोग को कुष्ठ कहते हैं परन्तु श्वित्र में मात्र त्वचा का वर्ण परिवर्तित होता है, जिससे कुरूपता आजाती है। इस कारण रुग्ण के मन में ग्लानि रहने लगती है। कोई विशेष कष्ट तो होता नहीं।

(१) पर्याय—(सं०) श्वित्र कुष्ठ, किलास, वारुण, (हि०) सफेद कोढ-सफेद दाग, (पं०) फुलबहरी, (अ०) बर्स, (अं०) ल्युकोडर्मा (Leucoderma.)

(२) कुष्ठ निरुक्ति यह शरीर तथा अङ्गों पर फूट निकलता है और उसे विकृत कर देता है, किन्तु श्वित्र फूटता नहीं, त्वचा श्वेत कर देता है, जिससे कुरूपता आ जाती है। श्वित्र में कष्ट नहीं होता।

(३) स्वरूप—शरीर में स्थान-स्थान पर सफेद दाग हो जाते हैं, जो धीरे धीरे फैलकर एक हो कर समस्त शरीर को श्वेत बना देते हैं।

(४) दोष—१. वात, २. पित्त, ३. कफ। श्वेत कुष्ठ प्रायः त्रिदोषज होता है।

(५) धातु—१. रक्त, २. मांस, ३. मेद। इन तीन ही धातुओं में यह रोग होता है।

(६) भेद—

१. व्रणज, २ दोषज,

१—मिथ्योपचारादि से व्रण हो जाते हैं, जब वे शांत होते हैं, तो वहां श्वेत वर्ण का चिन्ह हो जाता है, उसे 'व्रणज श्वित्र' कहते हैं।

२—जब विकृत दोष रक्त, मांस तथा मेदस्थ होते हैं तब दोषज श्वित्र होता है।

दोषज के भेद—

१. परज—जो अन्य श्वित्राक्रांत व्यक्ति के सम्पर्क से होता है, तब उसे परज कहते हैं।

२. आत्मज—अपने शरीर में जो श्वित्रोत्पादक कारणों से, विकृत वातादि दोषों से उत्पन्न होता है, वह आत्मज कहलाता है।

१—वातिक श्वित्र कुष्ठ—में त्वचा रूक्ष तथा लाल रंग की होती है। वात दोष रक्ताश्रित रहता है।

२—पैत्तिक श्वित्र कुष्ठ—त्वचा ताम्र के रंग के समान अर्थात् लाल,काली मिश्रित अथवा कमल के पत्ते के समान होती है। इसमें दाह होता है। रोम झड़ने लगते हैं। अथवा कमल के पत्ते के समान होती है। इसमें दाह होता है। रोम झड़ने लगते हैं, पित्त दोष मांस आश्रित रहता है।

श्लैष्मिक श्वित्र कुष्ठ—में त्वचा कण्डूयुक्त श्वेत रंग की होती है। घन तथा गुरु होती है। कफ दोष मेदाश्रित रहता है।

विशिष्ट द्रष्टव्य—

इनमें लाल रंग वाले की अपेक्षा ताम्र वर्ण वाला और ताम्र वर्ण वाले की अपेक्षा श्वेत वर्ण वाला कुष्ठ कृच्छ्रसाध्य होता है।

(७) अनुभव—मुझे जितने भी श्वित्र रोगी मिले हैं, उन में नया दाग जो देखा गया है उसका वर्ण लाल ही पाया गया है। चिकित्सा न कराने पर वही दाग कुछ दिनमें ताम्रवर्ण का हो गया है। फिर भी उस पर ध्यान न दिया गया है तो वही दाग श्वेत रंग का हो गया है।

इससे सिद्ध है कि रक्ताश्रित दोष वात के द्वारा लाल रहता है, कुपथ्य करने और उपचार न करने पर दोष पित्त विकृत हो जाने पर मांसस्थ हो जाता है और त्वचा का रंग ताम्र वर्ण हो जाता है। यदि फिर भी चिकित्सा न की गई तो कफ दोष बिगड़ कर मेदोगत हो जाता है, जिससे त्वचा का रंग श्वेत हो जाता है।

यह रोग केवल त्वचागत ही होता है। तीन धातुओंमें रहता हुआ भी त्वचा में ही उन उन वर्णों को उत्पन्न करता है।

(८) कुष्ठ तथा श्वित्र में भेद—

कुष्ठ	श्वित्र
१. त्रिदोषज	१. प्राय:त्रिदोषज(१ दोषज भी)
२. संक्रामक	२. असंक्रामक
३. सप्त धातुगत	३. रक्त-मांस-मेदोगत
४. परिस्रावी	४. अपरिस्रावी
५. समस्त धातुनाशक	५. ऐसा नहीं
६. क्रिमिजन्य	६. क्रिमि रहित
७. अङ्गपातन करता	७. ऐसा नहीं

१० साध्यासाध्य—

असाध्य—जो श्वित्र मण्डल आपस में मिल गये हों और जिनके रोम भी श्वेत वर्ण के हो गए हों तथा जो कई वर्षों से उत्पन्न चिरकालीन हों और अग्निदग्ध व्रण से पैदा हों एवं गुदा, योनि, हाथ पांव के तलुवों, ओष्ठ, अंगुली के पोरवों और अण्डकोष पर जो हों तो वे असाध्य होते हैं।

साध्य—जिनमें रोम बिल्कुल सफेद न हुए हों, श्वित्र मण्डल आपस में नहीं मिले हों, थोड़े हों, नये हों, तो वे साध्य हैं।

गुदा, योनि, हाथ के तलुओं, होंठ, अंगुली के पोरवों और अण्डकोष पर जो नये श्वित्र हों तो साध्य हैं।

११. परीक्षानुभव—

श्वेत दागों को चुटकी से पकड़कर ऊपर उठावें, मांस चुटकी में न आने पायें, केवल त्वचा में सूचिका चुभाकर देखें—यदि विद्धस्थान से रक्त निकले तो रोग साध्य है। यदि पीत लसिका निकले तो कष्टसाध्य है, यदि जलवत् द्रव निकले तो असाध्य है।

विशिष्ट दृष्टव्य—

श्वित्र के जो तीन भेद बतलाये गये हैं, ये एक ही रोग की तीन विभिन्न अवस्थायें हैं। आरम्भ में जब वात दोष रक्त में रहता है तब त्वचा पर लाल धब्बे पड़ते हैं, इस अवस्था का नाम दारुण है। जब दोष पित्त मांस में रहता है तो धब्बे (दाग) ताम्र वर्ण के होते हैं, और जब कफ दोष मेद में होता है तो श्वित्र श्वेत रंग का होता है।

बाह्य त्वचा में रहने वाले मेलेनिन (Melanin) नामक द्रव्य की विकृति या अभाव के कारण श्वित्र पैदा होता है।

निःसन्देह यह रोग कोई कष्ट नहीं देता परन्तु त्वचा के दूषित होने से कुरूपता आ जाती है। मानव का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, जिससे लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लग जाते हैं। रोगी के मन में ग्लानि रहने लग जाती है। अतः यह घृणित रोग है।

कुमारी लड़की या कुमार लड़के को यह रोग हो जाए तो विवाह होना कठिन हो जाता है। विवाह संस्कार विधि में मनु महाराज का प्रमाण देते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जो दस कुल छोड़ने को कहा है, उनमें नौवां कुल श्वेत कुष्ठियों का ही बतलाया है।

पाठक वृन्द—इस विज्ञान की घुड़दौड़ में आपको ब्रह्मास्त्र देता हूँ।

(१२) चिकित्सानुभव—

१—सर्वप्रथम रोगी को ७ दिन तक निरन्तर प्रातः काल ५० ग्राम गोघृत पान करायें।

२—तत्पश्चात ३ दिन तक प्रतिदिन क्वाथ–कठूमर त्वक् ८० मिलीलिटर में १० ग्राम पुराना गुड़ मिलाकर प्रातः पिलायें और यथा सहन धूप में बैठें।

३—प्यास लगने पर यवमण्ड पिलायें।

४—स्नान जल—खैरसार को १३० गुना पानी में उबालें, जब आधा शेष रहे, उतार छान कर स्नान करें।

५—वमन–विरेचन तथा रक्तमोक्षण करायें।

(अ) श्वित्रारि विरेचन—शुद्ध जयपाल, मयूर तुत्थ, कुटकी तीनों का सूक्ष्म चूर्ण करलें। मात्रा—१ ग्राम, अनुपान—आम के अचार में रख कर दें।

गुण—इससे वमन और विरेचन दोनों होंगे। जब दस्त बन्द करने हों तब सूखे चावल दूध के साथ खिला दें। यह विरेचन तीव्र है।

(आ) वमन—वमनेश्वर रस (रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह द्वितीय खण्ड)।

(इ) भोजन—मूंग भात की खिचड़ी या यव का दलिया खदिरोदक से बनाकर दें। खदिरोदक विधि संख्या ४ स्नान जल है। तत्पश्चात्—

(१३) औषधि व्यवस्था

१—प्रातःकाल—श्वित्रारि रसायन १ गोली।

अनुपान—श्वित्रारि तक्र ५० मि० लि०।

सायंकाल ५ बजे—काशीसबद्ध रस (र० र० स०) ४ ग्रेन, शुद्ध बाकुची चूर्ण १ ग्राम, मधु उत्तम ६ ग्राम।

इन सबको मिलाकर एक मात्रा बना लें। यह चाट कर ऊपर से आंवला तथा खैरसार का क्वाथ ५० मि. लि. पिलावें।

सोते समय—आरोग्यवर्धिनी २ गोली गर्म जल के साथ दें।

२—दागों पर-श्वित्र नाशक लेप—गन्धक, चित्रक मूल, हराकशीस, हरताल, हरड़, आंवला, बहेड़ा छिलका, समान भाग लेकर कूटपीस वस्त्रपूत कर गोमूत्र में पीस दागों पर लेप करें।

१—काशीसबद्धरस—शुद्ध पारद ४० ग्राम, शुद्ध हरा कशीस २०० ग्राम। दोनों को खरल में डालकर घोट लें, फिर ३ घण्टे निरन्तर अर्जुनत्वक क्वाथ में घोटें। फिर सराव-सम्पुट में रखकर कपड़मिट्टी कर सुखा लें। वाराह पुट में रख कंडे की आंच से फूंक दें। शीतल होने पर निकाल कर खूब घोटें। (र. र. स.)

द्रष्टव्य-मैं पारद के स्थान पर रससिन्दूर मिलाता हूं। फिर बावची के क्वाथ की चार भावना देता हूं।

२—श्वित्रारि रसायन—बावची (काले रंग की गाय के मूत्र में शोधित) चूर्ण ५०० ग्राम, कज्जली (पारद गन्धक समभाग निम्बू स्वरस में घोटकर बनी) ५०० ग्राम, फौलाद सिंगरफी भस्म (र.सा.व. सि. यो. सं.) ८० ग्राम, हरीतकी (उत्तम काबुली हरड़) चूर्ण ८० ग्राम, क्वाथ (वन्य काकोदुम्बर मूलत्वक से बना) ८ लिटर, सभी द्रव्यों के चूर्ण को इस क्वाथ में एक मास तक धीरे धीरे निरन्तर ८ घंटे प्रतिदिन खरल करें। जब इतना क्वाथ समाप्त होजाये तब ७ दिन पान के स्वरस में खरल करें, फिर ७ दिन सहजने की जड़ के रस में खरल करें। तत्पश्चात् ७ दिन बावची के क्वाथ में घोटें, फिर ७ दिन काकोदुम्बर स्वरस में घोट कर रखें।

मात्रा—½ से १ ग्राम तक। सहपान-शुद्ध गन्धक ८ ग्रेन। अनुपान-श्वित्रारि तक्र।

३—श्वित्रारि तक्र—अंजीर जंगली की जड़ की छाल ५०० ग्राम, गोदुग्ध ३ लिटर, बावची उत्तम ५० ग्राम, पंवाड़ ५० ग्राम, बावची तथा पंवाड़ दोनों को कूट लें, अंजीर मूलत्वक को भी यवकुट करलें, फिर सबको दूध में मिला कर चूल्हे पर चढ़ा कर औटावें। फिर दही का जामन लगाकर जमा दें। प्रातःकाल बिलोकर मक्खन निकाल लें। बस छाछ तैयार है।

इसकी मात्रा ५० मि. लि. है। मक्खन को दागों पर दादों पर लगायें।

४—लेप—जंगली अंजीर की छाल, बावची, गन्धक आमलासार, मुरदासंग, अर्क मूलत्वक, हरिद्रा समभाग लेकर सूक्ष्म पीस वस्त्रपूत कर, आदि स्वरस में घोट गोली बना लें।

यथावश्यक—गोली को आदि स्वरस में घिसकर लेप करें।

वैद्यरत्न श्री मोहरसिंह आर्य
मिसरी, महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)

दद्रु और पामा पर परीक्षित प्रयोग

श्री युधिष्ठिर सिंह वैद्यराज

मैं आयुर्वेद का एक तुच्छ सेवक हूँ। प्राचीन ऋषियों के आयुर्वेदिक साहित्य का अध्ययन करने में मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

इस मानव सृष्टि का वास्तविक सुख वह भाग्यशाली निरोग्य परिवार ही अनुभव करता है। किन्तु खेद की बात है कि वर्तमान काल में विशेषतः भारत में पारिवारिक अपूर्व सुख विरले परिवार एवं किसी किसी युगल दम्पत्तियों को ही प्राप्त होते हैं।

इसका एक प्रबल कारण यह है कि जिस भारत के नर-नारी ब्रह्मचर्य पालन करना अपना मुख्य कर्म धर्म और व्रत समझते थे, आज उसी देश के निवासी इसके नाम और महत्व को भूल गये हैं। रात दिन विषय वासना में लिप्त रहते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक ब्रह्मचर्य और यथोचित आहार-विहार, खान-पान, रहन-सहन तथा उचित औषधि व्यवस्था के अभाव से भारत रोगों का केन्द्र सा बन रहा है।

संयम नियम से प्रतिकूल चलने से भारत में नाना प्रकार की व्याधियों का आक्रमण दिनों दिन बढ़ रहा है। सब जाति, संस्था व पद के लोग चर्म रोगों के दास बन रहे हैं। आयुर्वेद ग्रन्थों में उनके मुक्त होने के लिये अच्छे प्रभावशाली प्रयोग भरे पड़े हैं। आवश्यकता है उनकी खोज और अनुभव की।

मैं १८ कुष्ठों के अन्तर्गत दद्रु और पामा रोग पर कुछ परीक्षित प्रयोग वैद्य बन्धुओं की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

कोढ़ को आधुनिक विद्वान केवल खून की खराबी समझते हैं। इसलिये एलोपैथी में इसके दो ही भेद दिये हैं। किन्तु प्राचीन विद्वानों का मत इससे भिन्न है। उनके मत से दोषत्रयी का बिगड़ना भी कोढ़ में आवश्यक है। केवल खून की खराबी से कोढ़ होता है। यह सिद्धान्त मान्य भी नहीं हो सकता, जबकि प्रत्यक्ष रूप से दोषों की विकृति दशा का अनुभव हमारे सामने आता है, इससे रोग में वात, पित्त, कफ ये तीनों दोष रस, रक्त, मांस और लसिका ये दूष्य होते हैं। मतलब यह कि अपने अपने कारणों से दोष बिगड़कर रस, रक्त आदि को बिगाड़कर कोढ़ पैदा करते हैं। खून स्वतः दोष नहीं है। इसलिये इसकी प्रधानता नहीं मानी जा सकती। कोढ़ का रोग छूत वाला माना जाता है। यह है भी सच ही। इसके कीटाणु फौरन दूसरे शरीर में घुस जाते हैं और घुसते हुये दिखायी भी नहीं पड़ते। कोढ़ के कीटाणु साधारण नहीं होते बड़े शैतान होते हैं, नख, रोम दांतों तक को खाने में उन्हें कोई असुविधा नहीं होती।

साथ खाने, बैठने, सोने, आलिंगन करने आदि से इसके कीड़े दूसरे को भी लग जाते हैं। कोढ़ की व्याख्या भी इन शब्दों से की जाती है, फाड़ डालना, खींच लेना आयुर्वेदिक साहित्य में बताया है कि कुष्ठ के उत्पन्न होने पर अगर उसकी उपेक्षा की जाती है तो उसका विष सारे शरीर में घुसकर धातुओं को क्लेदित करके बहुत छोटे-छोटे कीड़े पैदा कर देता है, जो अनुक्रम से चमड़ी स्नायु धमनी तरुणास्थि को खाकर समस्त शरीर को फाड़ डालते हैं। यह रोग सहज ठीक कभी नहीं होता, इसको ठीक करने वाले वैद्यों की संख्या भी थोड़ी ही है।

यह रोग बहुत पुराना है। वेदों में भी इसका जिक्र आता है और संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों में भी इसकी भीषणता का वर्णन है। इसके कारण भी बहुत हैं। कुछ मुख्य मुख्य कारणों का उल्लेख किया जाता है।

कारण—दूध, मछली आदि विरुद्ध पदार्थों के खाने से मल मूत्रादि के रोकने आदि बहुत से कारणों से तीनों दोष अलग अलग या एक साथ कुपित होकर रस, रक्त, मांस लसिका को बिगाड़ कर कोढ़ पैदा करते हैं। तिल तेल कुल्थी, वल्मीक रोग गर्मी सुजाक, भैंस का दही, बैंगन ये भी कोढ़ पैदा करते हैं।

कोढ़ १८ प्रकार के होते हैं। जिनमें ७ महाकोढ़ माने जाते हैं। बाकी ११ साधारण महाकुष्ठ बड़े ही

शैतान होते हैं। इनकी चिकित्सा भी बहुत कम सफल होती है।

पूर्व चिह्न—जिस जगह कोढ़ होता है। वहां छूने से व देखने से कोमलता, चिकनापन अथवा खरदरापन मालूम होता है। पसीना आने लगता है या गर्मी में भी पसीना नहीं आता, जलन, खुजली, चमड़े का सूनापन, सुई चुभने जैसे दर्द चकत्ते, मोह, शूल व्रणों का उत्पन्न होकर जल्दी नष्ट नहीं होना और उनके भरने पर उनमें रूखापन होना जरा से कारण से ही उनका कुपित हो जाना ये चिह्न होने लगते हैं। इन्हें देखकर समझ लेना चाहिए कि अब कोढ़ की सवारी आने वाली है।

१८ कुष्ठ में से ११ क्षुद्र कुष्ठ होते हैं, गज चर्म, चर्म दल, विर्चचिका, विपादिका, पामा, कच्छु, दद्रु, विस्फोट, किटिभ, अलसक, शतारू इत्यादि इन ग्यारह में से केवल दद्रु और पामा पर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

दद्रु—इस में खुजली बहुत होती है, लाल-लाल फुन्सियां होती हैं, यह पैदा होते ही उठ जाता है और मण्डल के समान गोल हो जाता है।

पामा—इस में पित्त और कफ की प्रधानता रहती है। यह एक प्रकार की खुजली है, इसमें छोटी-छोटी बहुत सी फुन्सियां होती हैं, उनमें जलन होती है, खुजली चलती है, और उनमें मवाद भी बहता है।

दद्रु नाशक परीक्षित प्रयोग निम्न प्रकार है—

द्रव्य—गोवा पाउडर अभाव में चकौड़ा के बीजों का चूर्ण ६० ग्राम, आमलासार गन्धक २४० ग्राम, भुना सुहागा ३६० ग्राम, हरिया थूथ ३६० ग्राम लें।

विधि—प्रथम सबको अलग-अलग कूट कपड़ छन-कर फिर सबको मिलाकर शीशी में सुरक्षित रखलें।

मात्रा—इच्छानुसार दिन में दो बार दाद को खुजला कर कागजी नीबू के रस में मिलाकर लगावें।

उपयोग—इस चूर्ण के प्रयोग से थोड़े ही दिनों में नया पुराना दाद समूल नष्ट हो जाता है।

द्रव्य—आमलासार गन्धक, सेंदुर, चौकिया सोहागा प्रत्येक १०-१० ग्राम मुरदासंख २½ ग्राम लें।

विधि—सबको अलग-अलग कूट छानकर एक शीशी में रखलें।

मात्रा—इच्छानुसार दिन में दो बार गाय के घी में मिलाकर लगावें।

उपयोग—इसके प्रयोग से सब प्रकार के दद्रु अच्छे हो जाते हैं।

द्रव्य—चकौडा के बीजों का कपड़छन चूर्ण २० ग्राम, कत्था २० ग्राम, बावची बीज का कपड़छन चूर्ण २० ग्राम, आमलासार गन्धक का चूर्ण २० ग्राम लें।

विधि—सबको मिलाकर १ दिन घोट कर शीशी में रखलें।

मात्रा—इच्छानुसार दिन में दो बार दाद को खुजला कर मलें।

उपयोग—इस चूर्ण के प्रयोग से पुराना दाद थोड़े समय में अच्छा हो जाता है।

द्रव्य—पारा ३० ग्राम नीला थोथा ६० ग्राम-खपरिया, नौसादर १२० ग्राम, गाय का घी २४० ग्राम लें।

विधि—प्रथम पारा गन्धक की कज्जली करें फिर शेष औषधियों को कूट कपड़छनकर कज्जली में मिला घी सहित रखलें।

मात्रा—दिन में दो बार दाद को खुजलाकर लेप करें।

उपयोग—इस मलहम के प्रयोग से सब प्रकार के दाद अच्छे होते हैं।

५—द्रव्य—कागजी नीबू का रस १०० ग्राम, मीठा तेल १०० ग्राम, मोम १० ग्राम, इलाइची के दाने ५ ग्राम, चन्दन का बुरादा ५ ग्राम, देशी कपूर १½ ग्राम, केशर असली १½ ग्राम, पुरानी ईंट का चूर्ण ५ ग्राम लें।

विधि—प्रथम कूटने वाली औषधियों को कूट कपड़ छन करलें फिर तेल रस आदि आग पर चढ़ा कर मन्दी आंच से पका कर छान लें।

मात्रा—दिन में दो बार दाद को खुजला कर लगावें।

उपयोग—इसके प्रयोग से सब प्रकार के दाद नष्ट होते हैं।

६—द्रव्य—नीलाथोथा ६० ग्राम, चौकिया सुहागा ६० ग्राम आमलासार गन्धक, ६० ग्राम, कलमी शोरा ६० ग्राम लें।

विधि—प्रथम सबको कूट छान लें फिर १ दिन कागजी नीबू के रस में घोटकर बेर प्रमाण गोली बावें,

मात्रा—दिन में दो बार पानी में घिसकर दाद पर लगावें।

उपयोग—इस वटी के सेवन से दाद समूल नष्ट हो जाता है।

७–द्रव्य–अण्डी का तेल १०० ग्राम, देशी मोम २५ ग्राम, कत्था ५ ग्राम, नैनुआ गन्धक ५ ग्राम, माजूफल ५ ग्राम, मुरदासंग ५ ग्राम, ढाक (पलास) का गोंद ५ ग्राम, खपरिया नोसादर ५ ग्राम, कालीमिर्च ५ ग्राम, कच्चा सुहागा ५ ग्राम लें।

विधि—प्रथम कड़ाही में तेल छोड़कर गरम कर मोम छोडे। फिर शेष औषधि को कूट छानकर मिला दें। बस मलहम तैयार उतार लें।

मात्रा—दिन में दो बार दाद खुजला कर लगावें।

उपयोग—इस मलहम से कष्ट साध्य दाद नष्ट हो जाता है।

पामानाशक परीक्षित प्रयोग निम्न प्रकार हैं

१—द्रव्य-पारा, गन्धक, कालीमिर्च, नीलाथोथा, सेंदुर, दोनों जीरा प्रत्येक १०-१० ग्राम लें और सबके बराबर गाय का घी लें।

विधि—प्रथम पारा गन्धक की कजली करें फिर शेष औषधियों को कूट छानकर कजली में मिला सबको घोट कर घी में मिला दें।

मात्रा–दिन में दो बार दाद खुजला कर लगावें।

उपयोग—इस मलहम से पामा नष्ट हो जाता है।

२–द्रव्य—मुरदासंग, भुना नीलाथोथा, सफेद कत्था, जली सुपारी, हरड़ का वक्कल, उसारे रेवन्द प्रत्येक १०-१० ग्राम और सबके बराबर घी।

विधि—सबको कूट छान लें और घी में मिलाकर रख ले।

मात्रा—दिन में २ बार लगावें।

उपयोग—इस मलहम के प्रयोग से पामा निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

३. द्रव्य—पारा, दोनों जीरा, गन्धक, हल्दी, दारु हल्दी, काली मिर्च, मैनसिल, सेंदुर प्रत्येक १०-१० ग्राम और औषधियों का तिगुना १०० बार का धोया हुआ गाय का घी लें।

विधि—प्रथम पारद, गन्धक की कज्जली करें फिर शेष औषधियों को कूट छानकर घी में मिला दें।

मात्रा–दिन में २ बार लगावें।

उपयोग—इस मलहम से पामा, दाद आदि नष्ट हो जाते हैं।

४. द्रव्य—पारा, गन्धक, कूठ, सतवन, शतावर, सिन्दूर, लहसुन, हरताल, बावची बीज, अडूसा के बीज, पुराना तामा, मैनसिल प्रत्येक १०-१० ग्राम, सरसों का तेल ८०० ग्राम लें।

विधि—प्रथम पारा, गन्धक की कज्जली करें, फिर शेष औषधियों को कूट छानकर कज्जली में मिला घोटलें। बाद में तेल मिला तामे के पात्र में रखकर २-३ दिन धूप में रक्खें।

मात्रा–दिन में दो बार लगावें।

उपयोग—इस के तैल लगाने से पामा नष्ट हो जाता है।

५. द्रव्य—मुरदा संग, कबीला, भुना कुचिला १०-१० ग्राम, देशी कपूर २॥ ग्राम, कालीमिर्च २० नग, गाय का घी ५० ग्राम लें।

विधि–प्रथम सब औषधियों को कूट छानलें फिर सबको गाय के घी में मिलाकर रखलें।

मात्रा-दिन में ३ बार लगावें।

उपयोग–इस घी के इस्तेमाल से पामा रोग नष्ट हो जाता है।

६. द्रव्य–बावची बीज चूर्ण ५० ग्राम, कबीला ५० ग्राम, पारा ५० ग्राम, गन्धक चूर्ण ५० ग्राम, तिल तैल २०० ग्राम लें।

विधि—पारा, गन्धक की कज्जली कर शेष औषधियों को कूट छान तेल में मिलाकर दो दिन घोट शीशी में रख लें।

मात्रा-दिन में दो बार लगावें।

उपयोग—इसके प्रयोग से पामा नष्ट होता है।

५. द्रव्य—चकौडा (पमार) के मूल की छाल का कल्क १०० ग्राम, भांगरे का रस १६० ग्राम, करंज बीज का चूर्ण २० ग्राम, सरसों का तेल ४०० ग्राम लें।

विधि—सबको तेल विधि से पकालें।

मात्रा-दिन में दो बार लगावें।

उपयोग—इस तैल से पामा नष्ट हो जाता है।

—श्री युधिष्ठिर सिंह वैद्यराज
मु० पो० भैंसवार जिला सतना (म० प्र०)

श्वित्रकुष्ठ की उत्पत्ति

श्री पं० रामस्वरूप आयुर्वेदाचार्य

श्वित्रन्तु द्विविधं विद्याद्दोषजं व्रणजं तथा।
तत्र मिथ्योपचाराद्धि व्रणस्य व्रणजंस्मृतम् ॥ १॥
दोषजञ्च द्विधा प्रोक्तमात्मजं परजं तथा।
पर संस्कार संस्पर्शात्तत्परजमुच्यते ॥ २ ॥
तदात्मजं विजानीयाद्‌ हेत्वनिलादिजम् ॥ २ ॥
साध्यासाध्यता-अशुक्लरोममसंसृष्टमथोनवम् ।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रवर्ज्यमथोन्यथा ॥ १ ॥
गुह्य पाणितलोष्ठेषुजातमप्यचिरन्तनम् ।
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ २ ॥
यत्परस्परतोऽभिन्नं बहुयद्रक्तलोमवत् ।
पञ्चवर्षगणोत्पन्नंतच्छ्वित्रं नैवसिद्ध्यति ॥ ३ ॥

साध्यासाध्य जानने की सरल विधि—श्वित्र के श्वेत स्थान को चुटकी से पकड़कर ऊपर उठाकर मांस भाग को छोड़कर केवल त्वचा में सुई चुभा दें, उसमें से यदि रक्त निकले तब उस श्वित्र रोगी को साध्य यदि उसमें जलवत् द्रव निकले तब असाध्य समझें।

चिकित्साक्रम-चरके-

यच्चोक्तं कुष्ठघ्नं श्वित्राणां सर्वमेव तच्छस्तम्।
तेषाञ्चप्रशमार्थं सर्वतोविशुद्धानाम् ॥

अर्थात् प्रारम्भ में रोगी को वमन विरेचनादि से शुद्ध करके कुष्ठशामक चिकित्सा करें।

सुश्रुतेऽपि—कुर्याच्चास्मिन कुष्ठोद्दिष्टं विधानम्।

भेल संहितायाम्-कुष्ठे खादिर रसस्यस्नान पानादिषु सर्वत्र विधेयः।

यद्यपि आयुर्वेद साहित्य में श्वित्र कुष्ठ की चिकित्सा के लिए—असंख्य प्रयोग कहे गये हैं वह देश काल और रोगी की प्रकृति का विचार कर प्रयोग करने पर सब ही लाभप्रद हैं, उनका प्रयोग करके भी मैं रोगियों को स्वस्थ करता रहा हूं। किन्तु २ प्रयोग जो मैंने, अपने चिकित्सा काल में विशेष प्रयोग किये हैं और उनसे सदैव लाभ ही हुआ है उनको ही पाठकों के लिये लिख रहा हूं—

प्रथम प्रयोग-गुरूणांगुरु राजवैद्य श्री भट्ट जी कृत सिद्धभेषजमणिमाला का प्रयोग—

नीरेद्विनल्वणे प्रस्थान वराया दशपञ्च च।
भाण्डेनिक्षिप्य संमुद्य स्थापयेद्दिवसाष्टकम् ॥१॥
अर्कं जात रसांतस्मादुन्नयेन्नल्वणोन्मितम्।
पथ्यापटु गुटात्तेन गिलेच्छ्वित्र विचित्रतः ॥२॥
क्वापि दृष्टो चमत्कारो वर्ष मात्र प्रयोगतः।
श्वित्राणामुपकाराय प्रयोगोस्त्र प्रकाशितः ॥३॥
पीते परं तद्वदर्कं पुनर्निष्कास्यवर्तयेत् ।
मात्रास्य कुड़वोन्माना पथ्यमप्यल्प सैन्धवम् ॥४॥

टीका—२ नल्वण अर्थात् २५ सेर ८ छटांक ४ तोले या २५ सेर ६ छटांक जल में त्रिफला समभाग का यवकुल

श्री वैद्य जी अलीगढ़ जिले के प्रतिष्ठित एवं सफल वयोवृद्ध चिकित्सक हैं। धन्वन्तरि के प्रति आपका स्नेह चिरकालीन है। अपनी ८० वर्ष की अवस्था में चारपाई पर मसनद के सहारे बड़ी कठिनाई से यह लेख धन्वन्तरि के विशेषांक में प्रकाशनार्थ भेज कर अपने अपार स्नेह का परिचय दिया है। आशा है पाठक इससे अवश्य ही लाभान्वित होंगे। —सम्पादक

कुटा हुआ १२ सेर, एक मिट्टी या चीनी के वर्तन में डाल दें, वर्तन का मुख कपड़मिट्टी कर शराब लगावें और आठ दिन के बाद उसका तांबे के कलई किये पात्र से भभके द्वारा अर्क एक नल्वण अर्थात् १२ सेर १२॥ छटांक अर्क खींच लें। उसमें से १६ तोले अर्क, प्रथम छोटी हरड़काली, लाहौरी नमक समभाग की १-१ माशे की गोली बनाकर निगलकर ऊपर से अर्क पीलें। इस प्रकार प्रातः सायं १ वर्ष तक सेवन करने से रोग निर्मूल होगा। जब अर्क समाप्त होने पर हो उससे पूर्व ही बना लिया करें क्योंकि एक साथ अधिक बना अधिक दिन रक्खा रहने से गुणहीन होता है। भोजन में विशेषकर चना की रोटी आदि का

उपयोग घी के साथ रक्खें। भोजन में यदि विना लवण के रह सकें तव विशेष अच्छा है, नहीं तो अत्यल्प मात्रा में सेंधव लवण लेते रहें। दुग्धादि का प्रयोग वर्जित है।

दूसरा प्रयोग जो मेरा अनुभूत है उसको भी लिखकर लेख समाप्त करता हूँ–भिलावे जो जल में डूब जावें उनका डंठल गड़ासी वगैर से काटकर उसको गाय के दूध में जिसमें वह अच्छी प्रकार डूब जावें उनको धीमी धीमी आंच से औटने दें। जब रवड़ी जैसा बन जावे तब उन पर गर्म पानी डालकर धुलने दें। यह क्रिया करते हाथों से गोले का तैल अथवा मीठा तेल चुपड़ लें पश्चात् भिलावे को धूप में सुखा कर २०तोले तोल कर उसमें काले तिल साफ किये २० तोले तोल कर मिलाकर खूब कूटलें जब एक जीव होजावें तब निम्नाङ्कित औषधियों का चूर्ण मिला खूब कूट लें। वह औषधि यह हैं—

कूठ मीठा—दालचीनी, जायफल दखिनी, लौंग, नाग केशर, असली, तेजपात प्रत्येक ३-३ तोले वावची, काली हरड़ छोटी प्रत्येक २०-२० तोले शहद असली ५० तोले चीनी या खांड देशी २॥ सेर की चासनी अवलेह की बनाकर उसकढ़ाई को नीचे उतार यह दवायें मिलादें दूसरे दिन शहद मिला दें। इसको ३-४ दिन के वाद ६-६ माशे चाटकर ऊपर से लघु मंजिष्ठादि क्वाथ अथवा कोई शोधक अर्क पीवें। लाभ अवश्य होगा।

श्री पं० रामस्वरूप आयुर्वेदाचार्य
श्री गोपाल आयुर्वेद भवन
ग्राम—उखलाना जिला अलीगढ़

श्वित्र एक समस्या की पूर्ति एवं वैपादिक स्वानुभूत चिकित्सा

श्री पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र

कुष्ठ एक ऐसा सर्वत्र व्यापी रोग है जो शायद ही भूमण्डल पर रहने वाले कोई मानव इस रोग को नहीं जानते हों। आज के युग में तो कुष्ठ का इतना प्रचार हो गया है कि गांव-गांव, नगर-नगर में बहुधा व्यक्ति कुष्ठ से पीड़ित नजर आते हैं और सर्वत्र कुष्ठ नियन्त्रण केन्द्र भी दिखाई देता है। यह रोग बहुत प्राचीन काल से ही प्रसारित है यहां तक ईश्वर कृत वेद में भी महाकुष्ठ का वर्णन और चिकित्सा मिलती है। यों तो कुष्ठ का वर्णन अथर्वणो ने आयुर्वेद शास्त्र में १८ प्रकार के नामों से किया है। जिसमें कुछ महाकुष्ठ में गणना है शेष क्षुद्र कुष्ठ में। इन्हीं क्षुद्र कुष्ठ में श्वित्र और वपादिक कुष्ठ भी है। कुष्ठ महाकुष्ठ एक प्रकार के संक्रामक रोग हैं। परन्तु जिस क्षुद्रकुष्ठ की मैं स्वानुभव पूर्णचिकित्सा लिखता हूँ वह प्रायः संक्रामक नहीं है। और यह रक्तज कुष्ठ रोग कहा जा सकता है। महाकुष्ठ तथा क्षुद्र कुष्ठ रोग में जैसे पामा, दद्रु, विर्चाचिका आदि में कीटाणु का होना आधुनिक वैज्ञानिक से लेकर हमारे आर्ष ग्रन्थों में भी कीटाणु का होना प्रतीत होता है। कुरुरु अलाण्डू और समीन नामक क्रिमि कुष्ठ रोग उत्पादक है और यह दृश्य अदृश्य दोनों रूप का होता है। अथर्ववेद के एक वाक्य से इसकी पुष्टि होती है। यथा—

दृष्टमदृष्टमतृ हमयो कुरुरुम तृहम।
अलगण्डून सर्वान् धसुनान क्रमीन वचहां जंभंयामासे॥

दूसरे शब्दों में वाग्भट्टाचार्य यों कहते हैं—

रक्तवाही सिरास्थानां रक्तजा जन्तवोऽणवाः।
अपादा वृत ताम्रश्च शौक्ष्माद केचिद् दर्शनाः॥
केशादा रोम विध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः।
पटते कुष्टैक क्रमीणि सहसौर समातरः॥

रक्तज क्रमियों के प्रसारण में इस संदर्भ में पुष्टि होती है। दूसरे वाक्य से यह सिद्ध होता है कि कुष्ठ और महाकुष्ठ सब संक्रामक व्याधि हैं। सुश्रुताचार्य्य ने यों कहा है—

प्रसंगात गात्रसंसर्गातन्निश्वासातसह भोजनात्।
एकशय्या शयनाच्चापि गंधमाल्यानुलेपनात्॥
कुष्ठं ज्वरं च शोषं च नेत्राभिष्यन्दमेव च।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥

कुष्ठ रोगों से वचने के लिये उक्त कारणों से वचे रहना यह इस सुश्रुताचार्य्य का वाक्य हमें वताता है। प्राचीनकाल में यह महारोग प्रायः यत्र-तत्र मानव ने

सताता था। आज तो घर घर में यह महान व्याधि का प्रसारण होते नजर आ रहा है। पहले के लोग धर्म कर्म हवन, यज्ञ कार्य करते और सात्विक निरामिष भोजन करते थे। आज के वैज्ञानिक युग में तो पराकाष्ठा पर उक्त कार्य के विपरीत कर दिया है। अब लोग गौमांस तक होटलों में मीट के स्थान पर खा लेते हैं। एक वैज्ञानिक का कहना है कि गौमांस में उक्त कुष्ठ फैलाने वाले कृमि अधिक मात्रा में प्राप्त है। अतः हमारे ऋषि-महर्षियों ने बताया है कि खराब कुत्सित भोजन गौमांसादि कुष्ठ फैलाने में सहायक है। कुष्ठ शब्द का अर्थ ही है कि जो शरीर को कुत्सित खराब कर देखने में घृणित कर देता है। यथा—

कृष्णानि वायु। छति कुष्टम् ।

यथा वागभट्ट—

त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टा कुष्ण मुसन्तियत ।
कालेनोसेवितं यस्मात् सर्वं कुष्टाऽत तद्वपुः ॥

१८ प्रकार के कुष्ठ रोगों में श्वित्र नामक और भी विशेष कुष्ठ रोग हैं। इसे प्रचलित भाषा में चरक सफेद दाग कहा जाता है। यद्यपि इस रोग के शास्त्रकारों ने कुष्ठ में ही स्थान दिया है। परन्तु यह संसर्गज (औपसर्गिक)रोग नहीं है केवल शरीर को विवर्ण कर देता है अतः इसको भी कुष्ठ याने श्वेतकुष्ठ संज्ञा दी है। यह चर्म एवं रक्तज रोग है। शरीर की ताम्र शक्ति कम होने पर यह रोग शरीर के जगह-२ सफेद दाग हो जाता है। परन्तु इस रोग की पैदाइस जिस कारण से कुष्ठ की उत्पत्ति बताई है उन्हीं सब कारणों से रक्त दूषित होकर त्वचा को वैवर्ण करता है। यह रोग पुराना और निर्लोम स्थान में होने पर अर्थात् ओंठ, गुदा लिंग, योनि, हाथ, पैर का तलवा का सफेद दाग असाध्य माना गया है। शेष स्थान का श्वेत कुष्ठ चिकित्सा साध्य है। और भी जिस सफेद दाग सद्योत्पन्न हो लोम काले ही हो आग का जला न हो साध्य है।

अब श्वेतकुष्ठ क्यों होता है इस पर ध्यान देंगे-त्वचा की ७ सतह हैं। इसमें चतुर्थ त्वचा को ताम्रा जिसमें त्वचा का वर्ण रहता है उसी त्वचा के वर्ण लुप्त हो जाने पर श्वित्र या किलास (लीकोडरमा) इसका ताम्रा नाम कहीं कहीं है क्यों शरीरस्थ धातु ताम्र शक्ति की कमी से इस रोग की उत्पत्ति है। चमड़ी के इस वर्ण को कोई-कोई काली कहते हैं। मूल रंग तांबा जैसा होता है धूप के प्रमाण से काले दिखाई देते हैं। यही प्रधान है कि उष्ण प्रधान देश वासियों को अंगरेजों ने काला आदमी कहा था अभी भी मद्रास या वन जाति विशेषतः काले होते हैं। कुष्ठ और श्वित्र में भेद यही है कि कुष्ठ निश्चित त्रिदोषज संक्रामक सप्तधातुगत परिश्रावी तथा धातुओं को द्रवित करने वाला क्रिमिजन्य भी होता है। इसमें अंगपतन भी होता है। अतः कहा है—

कुष्ठं ज्वरं च शोषं च संक्रामन्ति,
नरांनरम्: औपसर्गिक रोगाश्च ।

श्वित्र किलास त्रिदोषज कभी कभी एक दोषज भी होता है। आचार्य भोज ने इसे दो भागों में कहा है व्रणज जो अग्निदग्ध से उत्पन्न स्थान श्वेत होता है रक्त-मांस त्वचा मेदस्थ होने पर दोषज कहा जाता है। यह रोग प्रायः संक्रामक नहीं है फिर भी भोज ने इसे संक्रामक माना है। परज और आत्मज परज श्वित्राक्रान्त रोगी संपर्क से उत्पन्न आत्मज विकृत वातादि दोष से उत्पन्न। यथा—

श्वित्रेद्विविधं—विधा दोषजं व्रणजं तथा ।
तत्र मिथ्योपचारद्धि व्रणस्य व्रणजं स्मृतम् ॥
दोषजं च द्विधा प्रोक्तं आत्मजं परजं तथा
परं संस्कार संस्पार्शाधितत्परजमुच्यते ।
ततात्मजं विजानीयाद्देहेष्वनिलादिजम् ॥

उक्त कुष्ठ का लक्षण मैं ऊपर बता चुका हूँ। फिर भी यहां उधृत करता हूँ। याने यह रोग प्रायः त्वचान्तर्गत होता है तीन धातुओं के आश्रय से उन धातुओं में रहता हुआ भी त्वचा में ही उनको श्वेत वर्ण करता है। पहले एक स्थान पर होता है फिर कुछ काल में सभी अङ्गों में फैल जाता है आधुनिक चिकित्सक इसे संक्रामक नहीं मानते पर समयानुसार संसर्ग से भी फैलता है। आचार्य इसके विषय में यों कहे हैं।

कुष्टैक सम्भवं श्वित्रं किलासश्चारुणं च तत।
निर्दिष्ट परिश्रावी त्रिधाभव सश्रयम् ॥
वातन्द्रूसारुणं पित्तातांम्रं कमलपत्रवत् ।
सदाहं रोम विध्वंसी कफाच्छ्वेतं घनंगुरु ।

सकण्डु च कफाद्रक्तं मांसमेदः सुचादिसेत ॥
वारुणंतन्तु विज्ञेयं मांसं धातुसमाश्रयं ।
मेन्दाच्छ्रितं भवेत्स्वेतं दारुणं रक्तसंश्रयम् ॥(भालुकी)
दारुणं चारुनं श्वित्रं किलासं नामभिः स्त्रिभिः ।
यदुच्यते ततभिधिम् त्रिदोषं प्रायश्च तत् ॥
दोषं समाश्रिते रक्तं गुरुत चोत्तरोतरम् ॥ (चरक)

यों तो श्वित्र कुष्ठ के विषय में कहा गया पर श्वित्र के चिकित्सार्थ औषधि प्रयोग कहा जाता है । आचार्य चरक का मत है कि इस रोग में भी कुष्ठ रोगोक्त वमन विरेचन क्रिया से शरीर शुद्ध करने पर श्वित्र में लेपादि का प्रयोग शीघ्र लाभ करता है ।

यथा—यच्चोक्तम् कुष्टघ्नं श्वित्राणां सर्वमेवतच्छस्तम् ।
तेषाञ्च प्रशमनार्थं प्रयोक्तव्यं सर्वतो विशुद्धानाम् ॥
(चरक)

श्वित्र नाशक औषधि—सोमराजी (वाकुची), अंजीर या कोठाडुम्बर, काशीस, चिन्तामूल, मनशिला, तूतिया, हल्दी, गोमूत्र, गन्धक ।

उपरोक्त सभी औषधि श्वित्र के लिये विभिन्न प्रकार से बाह्य अन्तर प्रयोग के लिये हैं । परन्तु सबसे श्रेष्ठ लेप एवं अन्तर प्रयोगार्थ सोमराजी है । सोमराजी(वाकुची) के प्रलेप सहायता में कासीश, चित्रकमूल, मनसिला, हड़ताल, हल्दी आदि हैं । इससे कभी-कभी व्रण फोडा भी हो जाता है। बाद में व्रण आराम होने पर चमड़ी अपने वर्ण की होती है । यह भी देखा गया है अच्छा होने पर पुनः हो जाता है । उक्त लेप श्वेत दाग पर गोमूत्र में पीस के मोटा लेप दिन में तीन बार लगाया जाता है । छाया में ही सूखने पर सोमराजी तेल दाग पर लगा दिया जाता है । खाने के लिये वाकुची कल्प या वाकुची के दुग्ध चीनी घी में पकाके १० ग्राम खांड और अन्जीर या कोठाडुम्बर पाक भी खाने के लिए श्रेष्ठ है । अंजीर कोठाडुम्बर को घी में भूनकर चीनी की चाशनी में अवलेह्या पाक बनालें । इसी तरह प्रातः गन्धक रसायन ५ ग्राम सेवन के बाद गोदुग्ध पान करें ।

शुद्ध आमलासार गन्धक को चूर्ण कर घृत में हल करें जब पानीसा गल जाय तो गाय के दुग्ध में गंधक डाल दें । और जल से धोकर चूर्ण कर बराबर मिश्री मिलाकर रक्खें । कुछ भी कहा जाय इतना से श्वेत कुष्ठ अवश्य नष्ट हो जाता है । बहुतों के व्रण होते नजर आया है औषधि प्रयोग के बाद पुनः होते भी देखा गया है । इसमें रहस्य है जो चिकित्सक अभी तक ज्ञात नहीं कर पाए हैं । पहले ही बता चुके हैं कि शरीरस्थ ताम्र खनिज शक्ति के कमी से यह होता है अतः लेपादि के साथ ताम्र प्रयोग से आशातीत लाभ एवं आगे का भय नहीं रहता आप जानते हैं ताम्र तूतिया में मिलता हैं । अतः बाकुची प्रलेप के साथ शुद्ध तूतिया के योग साथ अवश्य करें यह गोपनीय रहस्य आज में धन्वन्तरि के पाठकों के सामने उधृत कर एक देन दे रहा हूँ कि भूतदया आयुर्वेद का सिद्धान्त का सर्वत्र प्रचार हो । विशेषतः श्वेत कुष्ठ नाशार्थ रंजक औषधि के योग लेप में और उत्तम होगा । आयुर्वेद में १।२३।१ में कहा है कि नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्निच । इदं रजनिरजय किलाशं पलितंच तत ॥

हे औषधि ! तू रात्रि में उत्पन्न हुई है । अतः (रामे, कृष्णे) असिक्ति तथा रजनि (हल्दी) तू श्वेत चिह्नों को रंग दे । समान वर्ण युक्त कर दे । इसके मन्त्र में श्यामा, असिक्ति औषधि से प्रार्थना की गई है । किलाशंच पलितंत्र निरतो श्यामा पृषत् । आत्वा स्पो विशता वर्णः परा शुक्लानिः पातयः । उक्त औषधि श्यामा के पर्य्यायवाली है । श्यामा (नीली वृक्ष) काली अनन्तमूल, हल्दी आदि औषधि रंजक है । तूतिया, नीलसत्व, काली सारिवा, श्यामा वर्णकरी, काली भृङ्गराज ये सब रंजक हैं । श्यामा औषधि की प्रार्थना आयुर्वेद में श्वित्र कुष्ठ नाशार्थ प्रार्थना की गई । अथर्वेद १।२२।३।१।२३।४।१।२४।१।१।२४।२। १।२४।३।१।२४।४ प्रकरण देखें ।

श्वेत कुष्ठ का वर्णन अथर्वेद में भी मिलता है । अतः यह रोग आधुनिक नहीं कहा जा सकता है । अपितु पुरातन रोगों में यह सफेदी रोग है ।

बिपादिका पर स्वानुभूत योग

अठारह प्रकार के कुष्ठों के अन्तर्गत क्षुद्र कुष्ठों में विपादिका (बिवाई) भी है । इसको कुष्ठ क्यों कहा गया (कालेनोपेक्षितं यस्मात् सर्वं कुष्णाति यद्व पुः तस्मात् कुष्ठम । (धा० ह०) कुष्ठ शब्द कुष (फाड़ना) धातु से बना है । काल योग से रक्तादि दुषित रुक्ष होकर

विपादिका क्षुद्र कुष्ठ पैरों में विशेषत: जाड़े के मौसम में होते देखा गया है। बिना जूता नंगे पैर घूमने वालों को प्रातः ओस लगकर दोनों पाद को फाड़ता है और भयङ्कर वेदना होती है। अतः कहा गया है जाके गोड़ में न फटे बिवाई, वो का जाने पीर पराई। जिन्हें बिवाई न फटा वे दूसरों की पीड़ा क्यों जाने। बिवाई से बचने के लिए आप नंगे पैर प्रातः ओस में न घूमें। रात को सोते समय गरम जल से पैर को धो डालें। पैर में मैल धूल न लगने पावें। नदी व तथा शीतल जल में प्रातः न जाय। पछिया हवा, रक्त रूक्षता से बिवाई वृद्धि होती है। अकस्मात आप इस रोग से आक्रान्त हो जांय तो निम्न योग से प्रस्तुत मलहम प्रयोग करें—

श्वेत मोम २ माशा, मधु १ माशा, गूगुल १ माशा, सेंधानमक १ माशा, गैरिक मिट्टी १ माशा, घृत १ माशा, रेंडीतेल १ माशा, कपूर १ माशा आग पर एक दिलकर मलहम बनाके प्रयोग करें।

दूसरा योग—मक्खन २ माशा, चूना पान पर खाने वाला १ माशा, कपूर १ माशा सबको एक साथ मथकर लेप में आशातीत लाभ होगा।

रक्तज—दाद (दिनाई) पर स्वानुभव

दद्रु कुष्ठहरं चैव एतद् व्याधि विनाशनम्। यह आदित्य हृदय के वाक्य है। अर्थात आरोग्यं भास्करादिक्षेत आरोग्य प्राप्ति के लिये सूर्य की आराधना श्रेष्ठ है। यह भी क्षुद्र कुष्ठ रोग में कहा गया है। दीनाई दो प्रकार के होते हैं। एक वर्षाकालीन दूसरा स्थाई। वर्षा कालीन दाद शीत ऋतु आगमन के साथ नष्ट हो जाते हैं। स्थाई सर्व दिन बना रहता है। इस दीनाई का स्थान प्रायः कमर कक्षा एवं गुप्ताङ्गों में विशेष रहता है। ऐसे तो पीठ या सर्वाङ्गीण भी हो जाता है। कहा है सुख सीहुली दुःख दिनाई सीहुली केवल चर्म दल का रूप परिवर्तन करता है और दीनाई दुःखदाई व्याधि है। दिनाई को खुजलाने से जो आनन्द प्राप्त होता है उतना ही दुःख खुजलाने के बाद होता है। बहुर जलन यह एक ऐसे लज्जा विहीन कारक रोग है यानि मां बहनों किसी के सामने भी गुप्ताङ्गों को लोग खुजलाने लगते हैं। चर्म दल को विकृत करता है—अतः दाद उत्पन्न होते ही चिकित्सा आवश्यक है। यहां मैं अपना स्वानुभव आपके निकट दे रहा हूं। आशा है लाभ उठाकर आयुर्वेद का भूत-दया का सिद्धान्त को सफल करेंगे। ये योग यह हैं—

योग—गंधक, मुर्दाशंख, चौकिया सुहागे का फूला, नौसादर, चकोड़ा के बीज का सफूफ चूर्ण, कपूर, सब बराबर भाग, जलाया तूतीया ½ भाग, मिश्री २ भाग सभी को चूर्ण बनाकर रखें, निम्बू के रस अथवा किराशन तेल में खरल करके पहले दीनाई को खूब खुजला लें, बाद में इस लेप को लगावें। यदि सर्वाङ्ग में दाद हो तो आप चौकिया सुहागा की खील और चकोड़ के बीज का सफूफ चूर्ण को भैंस के मट्ठा में पीस के लेप दें। किरासन में दें तो अच्छा है। यह योग उत्तम है।

कण्डू (कलादल)—यह रोग भी चर्म रोग के अन्तर्गत रक्तज रोग में है। जब शीतकाल में रक्त रूक्ष हो जाता है तो इस रोग का विशेष प्रादुर्भूत होता है। कहावत है खांड़गाड़ गासा में कलकल के वासा यह दो प्रकार होते हैं एक सूखा दूसरा गीला, सूखे में फुन्सी में खुजलाहट रहता है। गीले के फुन्सी पक कर उसके चेप अन्य स्थान में फैलता है। अंगुलियों के गासा, गुप्ताङ्गों में यह विशेष स्थान ग्रहण करता है। इसमें पेट के विकार से कब्जियत (विष्टम्भ) रहता है। अतः कहा है कलकखिया के पाद (अपशब्द) नहीं छोड़ता है। अर्थात् संक्रामक रोगों में बहुत शीघ्र संक्रमण करता है। कुछ भी हो मैं यहां इस रोग के लिए उत्तम लाभप्रद चिकित्सा लिखता हूं।

कण्डू व्रण पर लेप—एडगजं तिल सर्षप कुष्ठं मागधिका रजनी द्वय मुस्ते। हन्ति कुष्ठ विचर्चिक दद्रु।

चकोड़ के बीज, तिल, सर्षप, कुठ, पीपर, हल्दी, दारूहल्दी मोथा सबको कपड़छान चूर्ण को मठा; छाछ में पीस कर लेप दें। बाद सूखने पर नीचे लिखे तेल प्रयोग करें। ३ दिन में ही कण्डू पर लाभ होगा।

मंजिष्ठां त्रिफला लाक्षा शिला गंधक रात्रितिः।
तैलमादित्य सम्पक्व पामा कण्डू विसर्जयेत॥

मजीठ और हरड़, बहेड़ा, आमला, लाह, मनशिल गंधक हल्दी ये सब चूर्ण को सर्षप तैल में रखके धूप में रखें और कण्डू पर मालिस करें। इसके प्रयोग से चर्म रक्तज रोग नाश होते हैं।

इसके अलावा कण्डु रोग में—रक्त शुद्ध के लिए सरिवाधारिष्ट–सेवन योग्य है।

प्रातः मक्खन ४० ग्राम, कालीमिर्च ५ नग, मिश्री १० ग्राम एक साथ सेवन करें।

नीम कार्वोलिक साबुन लगाकर स्नान करें। बाद में तेल लगालें या तेल लगाकर स्नान नित्य उत्तम है।

वायु कारक वस्तुयें खाना मना है–लोग कहते–सुनो जी कलकल कलकली के दवा–पुराने जो कलकलती हरें चवा और कटैले के बीज को पीसकर लगा। स्वर्ण क्षीरी कटैला के जड़ का रस १ छटांक, काली मिर्च ५ दाने प्रातः पीयें। और बीज लेप या बीज का तेल लगाने से कंडू नाश होता है।

शोथ

ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, विशुचिका, यकृतप्लीहा पांडु पीलिया रोग होने पर शरीर कृश दुर्वल होकर क्षीर तीक्ष्ण गुरुपाक वस्तु भोजन से दही, कच्चा द्रव्य खाने शाक मछली आदि संयोग विरुद्ध भोजन से मर्म स्थान में चोट से व्रण होने से शोथ रोग पैदा होता है।

कुपित वायु दुष्ट रक्तपित्त कफ को बाहर की शिराओं में लाकर तथा वायु भी वही दोषों के रुद्ध होकर त्वक और मांस फलता है शोथ रोग त्रिदोष भेद से ७ प्रकार का होता है। वातज, पित्तज, श्लेष्मज, जिसका विस्तृत वर्णन निदान ग्रन्थों में देखें। अवस्था भेद से शोथजनक कोई दोष आमाशय में रहने से छाती से ऊपर का देह। पक्वाशय में रहने से मध्य शरीर में छाती से पक्वाशय तक मलाशय में रहें तो कमर से पैर के तलवे तक सर्व शरीर में फैला रहने पर सर्वाङ्ग शोथ होता है।

साध्यासध्य–मध्यदेह या सर्वाङ्ग का शोथ कष्टसाध्य। जो शोथ दाहिने बांए ऊपर नीचे विभागानुसार जिस किसी सर्वाङ्ग में उत्पन्न हों अथवा जो शोथ नीचे के अवयोंग में उत्पन्न होकर क्रमशः ऊपर को बढ़ता रहे उसी शोथ को प्राणघातक मानना चाहिए। किन्तु पांडु प्रभृत्ति अन्य रोग के उपद्रव रूप से पहिले पैर से शोथ उत्पन्न होकर ऊपर को बढ़ता हो तो प्राण घालक नहीं है। इसी तरह स्त्री के मुख से नीचे को शोथ बढ़ता है वह भारात्कम होता है स्त्री पुरुष जिस किसी के प्रथम गुदा का शोथ संघातिक है। ऐसे ही कुक्षी आदी गलदेश मर्म स्थान जात शोथ भी जानना चाहिए। श्वांस पिपासा वमी दौर्वल्य ज्वर अरुचि स्थूल कर्कस शोथ उपद्रवयुक्त असाध है। वालक वृद्ध दुर्वल व्यक्ति के शोथ असाध्य होता है—अतिशार युक्त पादशोथ वृद्ध के लिए असाध्य है। यथा—प्रतिज्ञा वागभट्टस्य पाद शोथ न जीवति। ऐसी अवस्थाये अतिसारे समुत्पन्नों वृद्ध को ष्यौनजिविति। कुछ भी कहा जाय मैं यहां शोथ रोग पर कुछ अनुभवपूर्ण चिकित्सा पाठकों के लिए प्रस्तुत करता हूँ।

चिकित्सानुभव

शोथ रोग की चिकित्सा के पहले, जब तक औषधि प्रयोग होता रहे रोगी को पथ्यापथ्य पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। कहा है—

पथ्येसति गदार्त्तस्य निरुजस्य किमौषधम।

जिस प्रकार स्वस्थ्य व्यक्ति के लिये औषधि नहीं है उसी प्रकार यदि पथ्य ठीक है तो रोगी को औषधि किस प्रकार है। रोगी को नमक त्याग करा देवें। पानी के स्थान पर थोड़ा गरम पानी दें यदि पानी त्याग करावें तो उत्तम है पानी की जगह दूध देवें तो उत्तम है, शोथ में दूध पर रखना अच्छा है। शोथ में सोंठ चूर्ण, चूल्हे की मिट्टी के कपड़छन चूर्ण मिला के मलना आवश्यक है। रुचि होने पर रोटी, तरकारी के रस देना चाहिए। साथ-साथ औषधि प्रयोग आवश्यक है।

शोथ रोग में प्रयोगनीय औषधि–पुनर्नवा (शोथघ्नी दीर्घ पत्रिका) पुनर्नवाष्टक मावमण्ड शोथारि चूर्ण, शोथारि माण्डुर, माण्डुर भस्म, कासीस भस्म, लौह भस्म, त्रिकट्वादि लौह, शोथशार्दूल रस, पंचामृत रस, दुग्धवटी, पाण्डुजन्य शोथ में–तारामाण्डूर, तक्रमण्डूर, अतिसार जन्य में दुग्धवटी, स्वर्ण पर्पटी। ज्वरादि न रहने पर पुनर्नवादि तेल, शुष्क मूलादि तेल, चित्रकाद्य घृत।

गदपुरैना (पुनर्नवा) के पञ्चाङ्ग को क्वाथ करें जब चतुर्थांश शेष रहे तो उसमें उतना ही शरफुङ्खा का क्वाथ मिला दें दोनों मिश्रण को एक साथ मिला के उसमें चतुर्थांश भाग चीनी मिलाके १ सप्ताह मुख वन्द करके छोड़ दें बाद छानकर शोथ, यकृत, प्लीहा पर दिन में २ समय समय प्रयोग करें। प्रातः मधु साथ काशीस भस्म, लौह

भस्म पान, अद्रक, मधु साथ दें। शोथ यदि पैर में हो तो ऊपर बताये चूरा लगायें कुछ काल में शोथ शीघ्र शमन होगा। यह अनुभूत औषधि है। यों तो ऊपर बतायी औषधि का प्रयोग विचार कर करना उत्तम है।

बिखरे मोती—

जिस प्रकार मोती जैसी मूल्यवान वस्तु का हार टूट कर बिखर जाता है उसी प्रकार आयुर्वेदीय ग्रन्थोक्त कतिपय स्वानुभूत औषधि।

कास पर—

तुल्या लवंग मरिचादन फलत्वचस्य
सर्वसमं निगदिता खदिरस्यसारः।
बबूल वृक्षत्व कषाय युतं च चूर्णाम्
कासं निहन्ति गुटिका घटिकाष्टकेन॥

उक्त श्लोक में लवंग, गोल मरिच बहेड़ा के फल के छिलके सब बराबर लेकर, सबके बराबर कत्या (खदिर-सार) सभी को बबूल की छाल के क्वाथ में घोट के चने के बराबर गोली बनाकर मुंह में रक्खें, रस चूसता जाय जब तक मुंह में रहेगी कास बन्द होगी।

कोई-कोई इसमें जेठी मधु पिपरमेंट भी मिलाते हैं। मुखपाक में भी उपयोगी होती है।

—वैद्य श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र
मन्त्री—बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन
पोस्ट—ओड़ो वाया—नारदीयगंज
(गया)

विचर्चिका कुष्ठ

श्री वैद्य मोहर सिंह आर्य आयुर्वेद वाचस्पति

पर्याय—उकवत, छाजन, अपरस, अकौता, एक्जिमा (Eczema)

परिचय—विचर्चिका एक दुःखदायी एवं दुराग्रही रोग है। आयुर्वेद शास्त्र में इस रोग का वर्णन एकादश क्षुद्र कुष्ठों में किया गया है। यहां भी आचार्यों में मत भेद है—सकण्डूः पिडकाः श्यावा बहुस्रावा विचर्चिकाः अर्थात् खुजली से युक्त श्याम वर्ण की बहुत स्राव वाली पिडिकाओं को विचर्चिका कहते हैं, यह चरकाचार्य का मत है। यही माधवाचार्य ने लिखा है। भोज ने कहा है:—

"दोषाःप्रदूष्य त्वङ् मांसं पाणिपादसमाश्रिताः।
पिडिकां जनमन्त्याशु दाहकण्डू समन्विताम॥
दाल्यते त्वकखरा रुक्षापाण्योर्ज्ञेया विचर्चिका।
पादे विपादिका ज्ञेया स्थान भेदाद्विचर्चिका॥

हाथ-पांव में स्थित दोष त्वचा और मांस को दूषित कर के शीघ्र ही दाह तथा कण्डू युक्त पिडिकाओं को उत्पन्न कर देते हैं, उन्हें विपादिका कहते हैं। हाथ में उत्पन्न हुई पिडिकाएं विचर्चिका कहाती हैं, हाथों का खर तथा रूक्ष चर्म फट जाता है तो उसे विचर्चिका कहते है तथा पांव में त्वचा फट जाती है तो उसे विपादिका कहते हैं।

विचर्चिका के भेद—विचर्चिका के दो भेद हैं-१—शुष्क विचर्चिका—(dry eczema) २—स्रावी विचर्चिका—(weeping eczema)

विचर्चिका के निदान—कुष्ठ कारक हेतुओं के सेवन से प्रकुपित वात, पित्त तथा कफ और त्वचा, मांस, रक्त एवं लसीका ये चार दूष्य धातु कुष्ठ के कारण हैं।

कुष्ठ कारक हेतु—१—असन्तुलित आहार, २—अनुपादेय विहार, ३—महान दरिद्रता, (विस्तार के लिये आयुर्वेदिक ग्रन्थों का अवलोकन कीजिए।)

विचर्चिका के लक्षण—शुष्क विचर्चिका

१—इसमें भूसी सी उड़ती है।

२—खुजलाने पर पपड़ी सी उतरती है।

३—पपड़ी या भूसी उतरने पर त्वचा लाल निकलती है।

४—दूसरे ही दिन वही लाल त्वचा शुष्क होकर पपड़ी बनकर उतरती है।

५—विचर्चिका स्थान प्रतिदिन चहुँ ओर बढ़ता जाता है। चीन की भांति विस्तार वादी है।

६—खाज (कण्डू) बहुत ही तीव्र होती है।

स्रावी विचर्चिका के लक्षण

१—इस में सर्वप्रथम त्वचा पर छोटे-छोटे दाने निकलते हैं।

२—इन दानों का वर्ण गहरा भूरा रक्ताभ होता है।

३—त्वचा का वर्ण भी भूरा रक्ताभ हो जाता है।

४—इन दानों में से फूटने पर पीप निकलती है।

५—दाने खुजलाने पर फूटते हैं।

६—इन में दाह एवं खुजली बहुत होती है।

७—रुग्ण स्थान के चकत्ते बढ़ते रहते हैं।

८—जिस स्थान पर भी पीप लग जायगा वहीं उकवत बन जायेगा।

९—पीप सूख कर पपड़ी (खुरन्ट) सा बनकर जम जाता है, उस पपड़ी के नीचे जल सदृश पूय उत्पन्न होकर बहता है।

१०—रोग पुराना होने पर रुग्ण स्थान काला पड़ जाता है।

वैपादिका कुष्ठ	विचर्चिका कुष्ठ
१—वैपादिके पणिपाद स्फुटनं तीव्र वेदनम्।	१—सकण्डूः पिडिकाः श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका।
२—यह अधिकांशतः पांव की एड़ी तथा हाथों की अंगुलियों में होता है।	२—यह घुटने से नीचे तथा कुहनी तक हाथों एवं चेहरे पर होता है।
३—इस में तीव्र वेदना होती है।	३—इस में वेदना बहुत कम होती है।
४—इस में खुजली नहीं होती।	४—इस में खुजली बहुत होती है।
५—इस में पिडिकाएं नहीं होती।	५—इस में पिडिकायें होती हैं।
६—इस में ठेस लगने पर रक्त निकलता है।	६—इस में रक्त नहीं निकलता।
७—इस में दरार सी फूटन हो जाती हैं।	७—रोग पुराना होने पर दरार होती है।
८—यह अधिकतर शीत ऋतु में होता है।	८—ऐसा नियम नहीं है। किसी को शीत ऋतु में किसी को ग्रीष्म ऋतु में किसी को वर्षा में तो किसी को बारह मास रहता है।
९—वैपादिका पीप से नहीं फैलता।	९—यह पीप से फैलता है।
१०—यह पुराना पड़ने पर विशेष परिवर्तित नहीं होता।	१०—पुराना होने पर त्वचा पर कालापन आ जाता है

विशेष स्थानों की विचर्चिका

चेहरे की विचर्चिका—यह अधिकतर बच्चों में पाई जाती है। बच्चों में भी एक वर्ष की आयु के भीतर ही हुआ करती है। विशेषतः शीत ऋतु में होती है खुजली भी खूब रहती है। शुष्क तथा स्रावी दोनों प्रकार की पायी जाती है। आरम्भ में गालपर लाल फुन्सी सी उठती हैं और फिर सारे चेहरे पर सिर एव समस्त शरीर पर फैल जाती हैं। कभी-कभी सिर या कान से आरम्भ होकर फैलता हैं।

२—**नाक की विचर्चिका**—नाक के स्राव से ऊपर के होठ के ऊपरी भाग में यह रोग हो जाता है। लक्षण आदि वही जो पूर्व वर्णन किये जा चुके हैं।

कान की विचर्चिका—कान में फुन्सी आदि होने के कारण पीप बहने लगता है कान के बाहर जहां भी यह पीप लग जाती है, वहीं यह रोग उत्पन्न हो जाता है। कान के चारों ओर भीतर बाहर फैल जाता है।

चिकित्सा सूत्र—(१) सर्वप्रथम वमन विरेचन आदि से शोधन करें।

(२) इस रोग में स सन व विरेचन श्रेष्ठ है।

(३) स्वेदन परमावश्यक है।

(४) रक्तमोक्षण भी करायें।

(५) दोष की प्रबलता का ध्यान रखें। वातप्रधान हो तो घृत पान करायें। पित्त प्रधान हो तो विरेचन व रक्तमोक्षण करायें। कफ प्रधान हो तो वमन करायें।

(६) तदनन्तर रक्त शोधक औषधि व्यवस्था करें।

सावधान—यह हठीला रोग है। दीर्घकाल स्थायी, कष्टप्रद तथा कठिनता से जाने वाला है। इसकी चिकित्सा करने कराने में धैर्य से काम लें।

औषधि व्यवस्था—यथा सम्भव शीघ्र लाभ पहुँचाने के लिये सर्वप्रथम पञ्चकर्म के द्वारा रोगी के शरीर का संशोधन परमावश्यक है। इस रोग में विरेचन, स्वेदन तथा रक्तमोक्षण कर्म आवश्यक है।

(१) प्रातःकाल—माणिक्य रस २ ग्रेन, उदयभास्कर रस २ ग्रेन दोनों को मिलाकर १ मात्रा।

अनुपान—घृत ६ ग्राम+मधु १२ ग्राम मिलाकर चटायें, ऊपर से महामञ्जिष्ठादि क्वाथ पिलायें।

(२) मध्याह्न—रसमाणिक्य २ ग्रेन की मात्रा में मञ्जिष्ठादि क्वाथ के साथ दें।

(३) सायंकाल—आरोग्यवर्द्धिनी वटी २ गोली उष्णोदक के साथ दें।

(४) भोजनोपरांत—सारिवाद्यरिष्ट+खदिरारिष्ट यथाविधि जल मिलाकर दें।

प्रलेप—काले सांप को पकड़ कर उसके मुंह में ५० ग्राम गौरीपाषाण भर दीजिए और उसे जीवित ही एक हांडी में बन्दकर ऊपर ढक्कन रख कपड़मिट्टी कर दें, सूखने पर १० उपलों की आंच दें। स्वयं शीतल होने पर निकाल लें। सर्पभस्म १ भाग, गन्धक १ भाग, रस कपूर २ भाग, हिंगुल ४ भाग, रस सिन्दूर १ भाग, गोघृत शतधौत ११० भाग ले पांचों द्रव्यों को सूक्ष्म पीस लें फिर घृत मिलाकर रख लें। स्वेदन के पश्चात् रुग्ण स्थान को साफ कर लगाया करें। दूसरे दिन चणक के आटे से साफ करके पुनः लगावें। साबुन का उपयोग न करें।

स्वेदन विधि—एक ईंट आग में डालकर खूब लाल कर लीजिए और निकाल कर अन्य स्थान पर इसको रख लें। शरीर का वह भाग जहां विचर्चिका है ईंट के ऊपर रख, वस्त्र से ढक दें तथा ईंट पर थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र डालते रहें, गोमूत्र की भाप रुग्णस्थान पर लगती रहे। इस प्रकार स्वेदन क्रिया में १ लिटर गोमूत्र समाप्त करें, फिर इस स्थान को मोटे वस्त्र से साफ करें और लेप लगावें।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य आयुर्वेद वाचस्पति
मु० पो० - मिसरी
जिला—महेन्द्रगढ़ (हरयाणा)

अकौता गजचर्म एक्जीमा

यह रोग एक्जीमा के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है, फिर भी देश भेद से इस रोग के अनेक पर्याय-वाची शब्द हैं—जैसे-विचर्चिका, छाजन, उकवत, खरों अपरस, व्युची एवं भैंस दाद इत्यादि। परन्तु कई चिकित्सक पामा और चम्बल को भी समानार्थ वाची शब्द समझते हैं, लेकिन ये दोनों भिन्न रोग हैं।

एक्जीमा के कारण—इस हठी रोग का मूल कारण अभी अज्ञात है। फिर भी इस रोग के कई उत्तेजक कारण हैं।

जैसे—अधिक धूप में घूमना या परिश्रम, दूध-दही एवं मांस मछलियों के परस्पर विरुद्ध भोज्य पदार्थों का सेवन, उदर में कृमि का होना, मलावरोध, व लालमिर्च खटाई एवं चट-पटे मसालेदार वस्तुओं का सेवन, साबुन, सोडा और चूने का अत्यधिक प्रयोग, भौतिक तत्वों में शीत-गर्मी एवं वायु के झकोरे का विशेष लगना, स्त्रियों में ऋतु संबंधी दोष का होना, बच्चों के दांतों का निकलना या विकृत दूध का पीना, मंदाग्नि अथवा सोरा (Psoriesis) या उपदंश आदि कारणों से जब शरीर की

शम्य शक्ति घट जाती है तब दोष एक चित हो रक्त वाहिनियों द्वारा त्वचा पर अपना प्रभाव डाल इस दुष्ट रोग को उत्पन्न करते हैं। किन्तु कई चिकित्सकों का अभिमत है कि सर्वाङ्ग या निम्नांगों में हाथ-पैरों पर "स्ट्रप्टोकोकस" संक्रमण के कारण चर्म प्रदाह एवं फोड़े-फुन्सियों आदि दिखाई देने लगते हैं।

एक्जीमा का परिचय—एक्जीमा, गजचर्म एक तरह से दाद की जाति का ही रोग है, जो गर्दन के पीछे एवं हाथ-पैरों के अगले हिस्सों में प्रथम फुन्सी के रूप में प्रगट हो धीरे-धीरे वहां के चर्म को धब्बा युक्त काला कर देता है जिसमें खुजली के साथ थोड़ा पानी सा निकलता है। कभी-कभी यह रोग सारे बदन में फैल कर मानव जीवन को दुखमय बना देता है।

लक्षण—प्रथम त्वचा पर जलन, लाली और खुजली के साथ पोस्ता के दाने सदृश छोटी-छोटी २-४ फुन्सियां निकल आती हैं। जिनमें अत्यन्त खुजली और जलन होती है। खुजली के बाद उसमें सफेद पानी की तरह अथवा कभी-कभी मांड़ की तरह गाढ़ा रस निकलता है।

एक्जीमा के भेद (Varities of eczema)—जाति भेद से एक्जीमा कई प्रकार के होते हैं, किन्तु इनके दो प्रमुख भेद हैं। एक सूखा और दूसरा गीला।

शुष्क एक्जीमा (Dry eczema)—इसकी त्वचा सूखी और स्राव रहित होती है। रुग्ण स्थान काला, मोटा व रूखा होता है। उसमें अत्यन्त खुजली और जलन रहती है, जो देखने में बिलकुल हाथी या भैंस की चमड़ी की तरह दिखाई देता है। इस हेतु इसका दूसरा नाम गजचर्म या भैंसा दाद है, जो होने के बाद प्रायः अपनी परिधि में ही सीमित रहता है। गीले की तरह सर्वाङ्ग में शीघ्र फैल नहीं जाता।

स्राव युक्त एक्जीमा (Weeping eczema)—इसका दूसरा नाम गीला एक्जीमा या विचर्चिका भी है। इसकी त्वचा सूखी नहीं रहती, गीली रहती है और रुग्ण स्थान में खुजली के कारण घाव बन जाते हैं एवं पपड़ी दार जख्म से सफेद मांड़ की तरह या पीले रंग का रस निकलता है और यह रोग इसी स्राव व खुजली के द्वारा प्रसार पाकर सर्वाङ्ग में फूट निकलता है एवं चमड़ी शोथ युक्त-घृणित दिखाई देने लगती है।

अपरस—हाथ-पैरों के तलवों में होने वाले एक्जीमा रोग को लोग अपरस कहते हैं। जब उंगलियों के ऊपर एक्जीमा होता है, तो कुछ दिनों के बाद वहां के नख विकृत हो जाते हैं।

रोमकुप का एक्जीमा—यह रोग एक या दोनों पैरों में घुटनों के नीचे रोमकुप (रोंयें की जड़) में पीली सरसों के समान छोटी छोटी फुंसियां एक दूसरे के बाद बराबर निकलती और फूटती रहती हैं एवं फूटने के बाद उनमें से भूसी की तरह छिलके निकल जाती है।

शैशव एक्जीमा (Eczema Infancy)—इस प्रकार का एक्जीमा प्रायः उन शिशुओं में होता है, जिन्होंने मां का दूषित या कृत्रिम दूध का पान किया हो। प्रथम त्वचा पर दाने की तरह अनेक छोटी-छोटी फुन्सियां निकल आती है और उनमें खुजली, लाली, चकत्ते छाले एवं खाजा आदि उपसर्ग पैदा हो पीड़ित स्थान की त्वचा मोटी दिखाई देने लगती है।

खुजली युक्त एक्जीमा (Prurigo)—इसमें अत्यन्त कष्टदायक खुजली चलती है, जो जल्द शांत नहीं होती एवं इस रोग के कारण कूर्पर एवं जानू संधी की त्वचा मोटी पड़ जाती है।

खुजली रहित एक्जीमा—इस भेद में रुग्न स्थान की त्वचा मोटी काली एवं प्रायः खुजली रहित होती है और विपादिका (बिवाई) की भांति वहां की त्वचा फट जाती है। इसलिए इसे "चीर युक्त" एक्जीमा कहते हैं।

वक्तव्य—श्री गंगाधर जी के मतानुसार कितने चिकित्सक इस रोग को ही विचर्चिका मान बैठे हैं। उनका कहना है कि विचर्चिका और विपादिका में केवल स्थान मात्र का भेद है। जब हाथ-पांव के गात्रों में अतिशय खाज एवं पीड़ा युक्त रेखायें (चीर) उत्पन्न हो जाते हैं, तब विचर्चिका और जब पांवों में होती है, तब उसे विपादिका कहते हैं। किन्तु ध्यान रहे आयुर्वेद शास्त्रों में जिस रोग को विचर्चिका रोग कहा गया है, वह कभी शुष्क होता ही नहीं। आयुर्वेद-शास्त्रों में विचर्चिका के लक्षण इस प्रकार हैं।

"सकंडु पिड़का स्रावा बहुस्रावा सा विचर्चिका"

अर्थात्—जो पिड़कायें अत्यन्त पानी देने वाली एवं खुजली से युक्त व श्याम वर्ण की हों, उन्हें विचर्चिका कहते हैं। किन्तु विपादिका में न तो खुजली चलती न स्राव प्रदाह युक्त केवल पीड़ा होती है।

विचर्चिका और चम्बल में भेद—चम्बल रोग को सोरा दोष (Psoriesis) रक्त सर्षपिका और छाल रोग भी कहते हैं। यह भी विचर्चिका (गीला एक्जीमा) की तरह एक बड़ा जिद्दी रोग है। जो एक बार होकर जल्द छोड़ने का फिर नाम नहीं लेता, किन्तु इन दोनों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं, दोनों दो भिन्न रोग हैं। अतः यहां चम्बल रोग के कारण लक्षण आदि लिखे जा रहे हैं, ताकि चिकित्सा क्षेत्र में नवीन पाठकों को शीघ्र सफलता मिल सके।

इस रोग की उत्पत्ति का मुख्य कारण अभी किसी को मालूम नहीं, किन्तु किसी कारण वश अन्तरस्थ स्रावी ग्रन्थियों के रसों का अभाव अथवा शरीर के अन्दर आए हुए दोषों का अभाव अथवा शरीर के अन्दर आए हुए विषों का रक्त में परिवहन, आमवात, गठिया, दंत कृमि, पायोरिया एवं गल ग्रन्थि प्रदाह आदि के फल स्वरूप इसकी उत्पत्ति समझी जाती है। ऐसे तो यह रोग स्वभावतः अनुवंशिक है तथा घी-दूध और मक्खन आदि के सेवन से यह रोग और बढ़ जाता है।

चम्बल और विचर्चिका में लक्षण भेद—

चम्बल	विचर्चिका
(१) चम्बल रोग की उत्पत्ति प्रथम एक सूक्ष्म विन्दु सदृश पिड़िका के रूप में होती है। जिसके ऊपर एक बहुत छोटी पपड़ी सी लगी रहती हैं, जिसे विन्दुकित सोरायेसिस करते हैं। फिर वही धीरे-धीरे बढ़कर अठन्नी या रुपये के बराबर बन जाते हैं।	(१) विचर्चिका में प्रथम त्वचा पर अनेक छोटी-छोटी फुन्सियां निकलती हैं। किन्तु ये फुन्सियां पपड़ीदार नहीं रहती। इसमें स्ट्रेप्टो-कोकस संक्रमण के हेतु चर्म प्रदाह एवं फोड़े-फुन्सियां उत्पन्न होते हैं।
(२) इस रोग में त्वजा के ऊपर ताम्र वर्ण के लाल लाल धब्बे रहते हैं। वे धब्बे शुष्क रजत वर्णी, त्वचा पर उभार के रूप में दिखाई देते हैं और वहां से अभ्रक-पत्र की तरह नीरस छिलके उधड़जाती है, जिनके नीचे कोई रस क्षरण नहीं होता। केवल त्वचा फूटी-फटी सी दिखाई देती है।	(२) इसमें कोई धब्बे नहीं रहते, केवल प्रदाहित फुन्सियां रहती हैं। इसकी त्वचा सूखी नहीं रहती गीली रहती है और खुजली के कारण त्वचा पर अनेकों जख्म बन जाते हैं और उन पपड़ीदार जख्मों से मांड की तरह गाढ़ा या पीले रंग का रस निकलता है।
(३) चम्बल में प्रदाह एवं खुजली बिलकुल नहीं होती केवल नाम-मात्र की होती है।	(३) विचर्चिका में अत्यन्त खुजली के साथ जलन और स्राव होता है।
(४) यह रोग कोहनी के पीछे और ठेहना के सामने सब से अधिक एवं सिर या बदन के दूसरे अङ्गों पर मध्यम तथा मुख मंडल करतलय। तलवों में विरले ही देखा जाता है। इनके ऊपर से अभ्रक या चांदी के समान श्वेत छिलके निकलते हैं, जो इसका मुख्य लक्षण हैं।	(४) यह रोग कोहनी और घुटनों के नीचे हाथ-पैरों में अधिक तथा बदन के दूसरे अंगों में कम एवं हाथ-पैरों तलवों में कभी निकलते नहीं देखा गया। किन्तु चेहरे पर अवश्य निकल आते हैं। स्राव और जलन युक्त खुजली इस रोग का मुख्य लक्षण है।

वक्तव्य—दाद भी एक्जीमा का छोटा भाई है, किन्तु यह एक्जीमा या विचर्चिका की तरह हठी नहीं होता और साधारण औषधियों के प्रयोग से ही जल्द पिण्ड छोड़कर छूट जाता है, किन्तु एक्जीमा तो एक बार होकर फिर वर्षों जाने का नाम नहीं लेता। यहां तक कि बड़े-बड़े पीयूष-पाणि चिकित्सकों को भी यह रोग अंगूठा दिखा देता है और रोगी इस दुष्ट रोग का भुक्त भोगी बनकर अनेक चिकित्सकों का मुहताज बना फिरता है, तो भी इस दुष्ट रोग के चंगुल से उसे जल्द छुटकारा नहीं मिलता है।

नोट—एक्जीमा विभिन्न स्थानों पर होने के कारण

इसका नाम स्थानिक पड़ गया है। जैसे—योनि द्वारा का एक्जीमा, मलद्वार का एक्जीमा, सिर का एक्जीमा और अंडकोष का एक्जीमा आदि।

परिणाम—यह रोग चिरकालीन होता है। किन्तु प्रथम-अवस्था में उचित उपचार होने से जल्द पिण्ड छोड़ देता है। यदि रोग अपने-आप एकाएक बैठ जाता है तो दमा, आतिसार और स्त्रियों में प्रदर आदि रोग होने की संम्भावना हो सकती है, किन्तु ऐसा बहुत कम देखने में आता है।

एक्जीमा की चिकित्सा—

प्रथम रुग्ण स्थान को निम्नाङ्कित नीम या तुत्थ के पानी से धोकर स्वच्छ कर लेना आवश्यक है। इस रोग में साबुन जैसे क्षारीय पदार्थ का प्रयोग अच्छा नहीं।

(१) नीम पत्र को पानी में औटाकर छान लें और इसी पानी से एक्जीमा से रुग्ण स्थानों को बराबर धोया करें।

अथवा २-३ चावल बराबर जला हुआ तुत्थ को पाव सेर पानी में डालकर तुत्थ का पानी बनालें और इसी पानी से एक्जीमा को स्वच्छ किया करें। नमक और छौंकर के पानी से भी धोया जा सकता है। बाद में स्वच्छ कपड़े से जल को उठाकर ऊपर से दवा लगा दें।

(२) तेतार बूटी को पीसकर उसका लेप चढ़ावें। तर और शुष्क दोनों एक्जीमा पर उत्तम प्रभावक है।

(३) थूहर के तने को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट कर सुखालें और मिट्टी के पात्र में बन्द कर उसका काला भस्म बनालें। पश्चात् बारीक पीसकर नारियल के तेल में मिलाकर लगावें। गीला और सूखा दोनों पर अत्यन्त प्रभावक योग है। विशेषकर विचर्चिका और शैशव एक्जीमा पर उत्तम है।

(४) लाल करणीर पत्र को जलाकर चालमोगरे के तेल में मिलाकर लगाने से रोग नष्ट होता है।

(५) एक तुत्थ की डली लेकर पानी में घिसकर शुष्क एक्जीमा पर लगावें। नवीन रोग जल्द शान्त हो जाता है।

विशेष योग—विचर्चिका या गीला एक्जीमा नाशक अव्यर्थ योग—

(६) पाताल यन्त्र द्वारा केवल चने का तेल निकाल-रखें और इस तेल को रसदार एक्जीमा पर लगावें। २ दिन के ही प्रयोग से खुजली और जख्म सूख जाते हैं तथा १५-१६ दिन के प्रयोग से रोग का नामो-निशान नहीं रहता। किन्तु शुष्क एक्जीमा पर इसका कोई विशेष-अविकार नहीं। अनेक बार का परीक्षित योग है।

(७) गीला एक्जीमा नाशक मलहम—

कुष्ठ वैरी का तेल ५ तोले, खोंपड़े का तेल ३ तोले, चक्रमर्द का तेल ६ तोले, नीम का तैल ४ तोले, चन्दन श्वेत का तेल २॥ तोले, शीशम का तेल २॥ तोले, ऊंट की मेंगनी का तेल १। तोले, गोधूम का तेल १॥ तोले, चने का तेल १३ तोले, सफेद वैसलिन ४० तोले।

विधि—सबको अच्छी तरह मिलाकर ढक्कनदार शीशी में रख लें। इस मलहम के लगाने से एक्जीमा, अपरस, चम्बल, खजुआ और छाजन आदि चर्म रोग दूर हो जाते हैं, जो गारन्टी का योग है। विशेषकर 'विचर्चिका' के लिये बहुपरीक्षित है।

(८) चर्मरोगारि मरहम—कड़वा तेल ५० तोले, आमरुल ४ गुच्छी, आम्र का बौर ४ गुच्छी, नीला थोथा ६ तोला, सुहागा १ तोला, आरग्वधपत्र या छाल २ तोला, ओंगा की जड़ १ तोला, थूहर का डण्ठल २ बालिस्त।

विधि—प्रथम तेल को गरम करें। बाद में थूहर को छीलकर उसके अन्दर से जो अंगुल सदृश्य सफेद गूदा निकले उसे तेल में डाल दें। तदनन्तर आमरुल आदि औषधियां क्रमशः डाल दें और मन्दाग्नि से पकावें। जब औषधियां अवजली सी हो जायें तो नीचे उतार कर छान लें फिर सूखा और गीला गन्धाविरोजा २–२ तोला ६। तोला देशी मोम डालकर पुनः पकावें। जब उसकी चाशनी भूमि पर डालने से मलहम जैसा जम जाय तो उतार कर रख लें।

नोट—यदि तेल १ सेर हो तो उसमें आध-आध पाव मोम और ३-३ तोला विरोजा डालना आवश्यक है। तेल गरमा गरम निथार लेने से कूड़ा-कचरा नीचे रह जाता है। इस मलहम के प्रयोग से एक्जीमा (Eczema) दाद, खाज, ब्युची, विचर्चिका, चम्बल, सड़े-गले घाव, जला-फटा जख्म आदि कैसा ही भयङ्कर क्यों न हो ४-६

दिन में अच्छे हो जाते हैं।

(६) चर्मरोगारि तेल—तुवरक बीज १ छटांक, चकवर बीज आधा पाव, बाकुची बीज १ छटांक, अमलतास बीज आधा पाव, कृष्णकनक बीज ३ छटांक, स्वर्णक्षीरी बीज ३ छटांक, तुत्थ ३ तोले, चौकिया सुहागा १२ तोले, राल सफेद १२ तोले, कसीस हरा १ छटांक, दाल चिकना १ तोला, रस कपूर २ तोला, हरताल ३ तोला, मैनसिल १ छटांक, गन्धक १ छटांक, फिटकरी ६ तोले, कबीला ४ तोला, नीम का तेल, चालमोगरे का तेल, गर्जन का तेल प्रत्येक ३-३ छटांक।

विधि—प्रथम ६ औषधियों को स्वच्छ कर अलग रख दें। बाद की शेष १० वस्तुओं को खूब बारीक पीसकर इन्हें खरल में डालें। ३ दिन नीम के तेल में, ३ दिन चालमोंगरे के तेल में, और ३ दिन गर्जन के तेल में खरल कर प्रथम ६ औषधियों के साथ इन्हें मिलाकर पातालयंत्र द्वारा तेल निकाल कर सुरक्षित रक्खें। यही चर्मरोगारि तेल है, जो हर प्रकार के चर्म रोगों पर गारण्टी का योग है। किसी प्रकार के एक्जीमा, चम्बल, दाद आदि चर्म रोगों पर शीघ्र प्रभावकारी है।

खुश्क ऐक्जीमारि मिश्रण (सुरासार द्वारा निर्मित)—चक्रमर्द का प्रवाही सत्व, स्नुही प्रवाही सत्व, चित्रकमूल प्रवाही सत्व, आरग्वध प्रवाही सत्व, कदली फूल प्रवाही सत्व, पानापत्ती बूटी प्रवाही सत्व, स्वर्णक्षीरी प्रवाही सत्व, करवीर लाल प्रवाही सत्व प्रत्येक ५६-५६ मि. लि., कपूर देशी २८ ग्राम, फिनायल उत्तम ५ मि. ली., कोलतार ३० ग्राम, चर्मरोगारि तेल ११४ ग्राम।

विधि—प्रथम जितने प्रवाही सत्व हैं उन्हें किसी बड़े स्वच्छ बोतल में मिलाकर रक्खें। बाद में उसमें कपूर को डाल दें। जब कपूर उसमें घुल मिल जावे तो कोलतार को थोड़ा सुरासार में मिला पतला द्रव बना बोतल में डाल दें। फिनायल और चर्मरोगारि तेल मिला कुल एकत्रित कर रखलें और एक्जीमा आदि चर्म रोगों पर दिन में २-३ बार अवस्थानुकूल लगाया करें। इसके लगाने से शुष्क एक्जीमा, विचर्चिका, चम्बल, अपरस, हठीला दाद, गजचर्म, छाजन, शैशव एक्जीमा, खाज-खुजली आदि चर्म रोग बड़ी खूबी के साथ नष्ट हो जाते हैं। सैकड़ों रोगियों पर इसकी परीक्षा हो चुकी है। चिरकालीन रोगियों को धैर्य के साथ कुछ दिन प्रयोग करना आवश्यक है।

खाने के लिए—पाना पत्ती बूटी का हरा पंचाङ्ग गूलर समान लेकर उसमें थोड़ा नमक मिला रविवार के दिन सबेरे खिला दें और उस दिन खाने के लिए केवल चावल और पीत कूष्मांड की सब्जी के सिवा और कुछ नहीं दें। इस भांति यह बूटी ३ रविवार के दिन खाने से एक्जीमा आजीवन के लिये पिंड छोड़ देता है। महात्मा देवादास जी द्वारा प्राप्त।

बूटी का परिचय—यह क्षुप जाति का पौधा है। इसके डंठल और पत्ते भूरे-भूरे रोमों से युक्त एवं भूमि पर फैले रहते हैं। इसकी पत्ती छोटी-छोटी ठीक पान के पत्ते सदृश्य होती हैं, तथा विशेषकर तर और कंकड़ीली जमीन, बांध, बाग या रास्ते के किनारे पर मिलती है।

शोणित सुधा वटी—महा मंजिष्ठादि क्वाथ का घन सत्व, सप्तपर्ण घनसत्व, लोहभस्म, गिलोय घनसत्व, पारा एवं गन्धक की कज्जली प्रत्येक १-१ तोला, रस माणिक्य ६ माशे, शुद्ध गूगल ६ तोले और पोटास आयोडायड १ तोला।

विधि—प्रथम रस माणिक्य को बारीक पीस लें। तदनन्तर सबको खरल में डाल एक दिन नीमपत्र स्वरस में खरल करें। फिर एक दिन अमलतास पत्र स्वरस में खरल करें और अन्त में एक दिन स्वर्णक्षीरी के रस में खरल कर ३-३ रत्ती की गोलियां बना रखलें। मात्रा १ से २ गोली जल या दुग्ध के साथ दें।

इसका कार्यक्षेत्र रक्त और त्वचा है। इसके सेवन से चर्म कीटाणुओं को पोषक तत्व नहीं मिलता, जिस हेतु चमड़ी के अनेक जिद्दी रोग धीरे-धीरे विनष्ट हो जाते हैं। त्वचा पर सूक्ष्म-सूक्ष्म फुन्सियों के स्फोटों की उत्पत्ति रुक जाती है। खुजली में जलन के साथ पानी या रक्त का आना बन्द हो जाता है। रक्त विकृति चाहे किसी भी कारण से उत्पन्न हुई हो, वे इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। एकादश कुष्ठों पर इसका प्रयोग अत्यन्त सुन्दर है।

वक्तव्य—अगर यह वटी खाकर ऊपर से खदिरारिष्ट या रक्त-सुधाकर का सेवन करें तो और विशेष लाभकर सिद्ध होता है।

चर्मरोगनाशक बिन्दु—उत्तम गूगल, सत्यानाशी बीज, निबौली, चालमोंगरा के बीज, बाकुची बीज प्रत्येक १-१ पाव, चकवड़ बीज ३ छटांक, सेंदुअर बीज, बकायन बीज, काली जीरी, श्वेत चन्दन की लकड़ी प्रत्येक २-२ छटांक, कबीला १ छटांक, पुष्ट चना आधा सेर, शुद्ध मैंशिल और शुद्ध हरताल १-१ तोला तथा शुद्ध आमलासार गन्धक २॥ तोले।

विधि—प्रथम मैंशिल, हरताल और गन्धक को नीम रस (ताड़ी) में ३ दिन खूब घुटाई करें, फिर गोघृत में १ दिन घुटाई करें। बाद में सबको मिलाकर पातालयन्त्र द्वारा तेल निकाल सुरक्षित रख लें और अवस्थानुसार २ से १० १५ बूंद की मात्रा में जल, दूध या किसी खून सफा अर्क के साथ मिलाकर दोनों समय सेवन करें।

यह तेल लगाने और खाने से कुष्ठ, गजचर्म, विचर्चिका, चम्बल, छाजन, पामा, कच्छू, दाद-खाज-खुजली, त्वचा की शून्यता, वातरक्त और फोड़े-फुन्सियां आदि चर्म रोग १ माह के अन्दर शान्त हो जाते हैं।

वक्तव्य—शास्त्रीय योगों में-गन्धक रसायन, रस माणिक्य, वृहद मंजिष्ठादि क्वाथ, खदिरारिष्ट, सारिवाद्यारिष्ट या आसव अथवा अर्क आदि का सेवन भी चर्म रोगियों के लिये अत्यन्त हितकर है।

—कविराज श्री रुद्रनारायण सिंह
नयागांव (सारण) विहार

विसर्प (Erysipelas)

श्री काशीनाथ शर्मा आयुर्वेदाचार्य

विविध प्रकारेण परितः परिसर्पणात् विसर्पः, दूषित वातादि दोषों के द्वारा रक्त लसिका त्वचा और मांस के दूषित हो जाने पर यह रोग शरीर में चारों ओर फैलता है, इसीलिये इसका नाम 'विसर्प, है। यह राग समस्त शरीर पर उत्पन्न हो सकता है किन्तु प्रायः चहरे पर या सिर पर अधिकतर देखा जाता है। बच्चों के नाभिप्रदेश, स्त्रियों के स्तनों पर पुरुषों, के वृषणों पर भी देखा जाता है।

विसर्प के कारण—नमकीन, अम्ल, कड़वे और उष्णवीर्य पदार्थों के अधिक सेवन से दोष दूषित होकर और धातुओं को दूषित करके इस रोग को उत्पन्न करते हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार इस रोग के कारण 'मालाकार जीवाणु' होते हैं किन्तु जब विसर्प में पूय या शोथ हो जाता है तो 'पूयजनक जीवाणु' भी होते हैं परन्तु आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार जीवाणुओं की सत्ता दोषों के द्वारा ही होती है। अतः हमको मुख्य आभ्यन्तरिक कारण दोषों को ही मानना पड़ता है।

विसर्ण की संख्या—यह रोग सात प्रकार का होता। (१) वातज (२) पित्तज (३) कफज (४) सन्निपातज (५) वातपित्तज (इसे अग्नि विसर्प कहते हैं) (६) वात कफज (इस को ग्रन्थिविसर्प कहते हैं)। (७) कफ पित्तज (इसे कर्दम विसर्प कहते है) कुछ लोग आठवां आगन्तुक विसर्प भी मानते हैं, जो कि विषैले शस्त्रप्रहार से तथा व्याघ्रादि पशुओं के दांत, नाखून आदि के द्वारा क्षत हो जाने पर कुपित वातपित्त रक्त को साथ लेकर कुलथी के समान आकार वाली फुन्सियों को उत्पन्न करता है और रक्त कृष्ण वर्ण का हो जाता है। इसको कुछ आचार्य पृथक् नहीं मानते, क्योंकि बाह्य प्रहारादि के द्वारा क्षत हो जाने के बाद दोषों का ही तार-तम्य होता है।

विसर्प उत्पत्ति की अवस्था—बाल्यावस्था के प्रथम वर्ष में तथा ४० वर्ष से ऊपर की अवस्था में यह रोग अधिक होता है। जो लोग वृक्क और यकृत विकार के चिरकालीन रोगी है अथवा अधिक मद्यपान करते हैं मधुमेह और वातरक्त से पीड़ित होते हैं उनमें यह रोग अधिक होता है। शील वाले, गन्धयुक्त दूषित वायु वाले स्थानों में जो रहते हैं उनमें यह रोग पाया जाता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह रोग अधिक होता है। जो लोग सूर्य संताप में अधिक रह कर परिश्रम का

कार्य करते हैं उनको होता है।

विसर्प के लक्षण

(१) वातज विसर्प—इसमें वातज्वर के समान पीड़ा शिरः शूल हृदय में शूल गलशूल, उदर शूल, शोथ, अंगों का फड़कना, सूई चुभने की पीड़ा और ज्वर होता है।

(२) पित्तज विसर्प—इसमें पित्तज्वर के समान पीड़ा तथा स्थान अधिक रक्त वर्ण का होता है।

(३) कफज विसर्प—इसमें कफ ज्वर के समान पीड़ा, स्निग्धता एवं कण्डू इत्यादि लक्षण होते हैं

(४) सन्निपातज विसर्प—इसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं।

विसर्प - एरिसिपेलास

(५) वातपित्त विसर्प (अग्नि विसर्प)— इसमें ज्वर तीव्र होता है। वमन, मूर्च्छा, अतिसार, तृष्णा, दाह आदि रोग होते हैं। सारा शरीर अंगारों से व्याप्त जैसा मालूम होता है अग्नि से जले हुए के समान फफोले होते हैं और वह स्थान कृष्ण नील और रक्त वर्ण का हो जाता है। मनुष्य को किसी भी अवस्था में चैन नहीं मिलता। म। और शरीर को कष्ट होने के कारण -मृत्यु- रूपी निद्रा के वशीभूत हो जाता है। तत्काल यदि चिकित्सा न की जाय तो मृत्यु भी हो जाती है।

(६) वातकफज विसर्प (ग्रन्थि विसर्प)— इसमें कफकारक पदार्थों के सेवन करने से बढ़े हुए कफ के द्वारा वायु अवरुद्ध होकर और कफ का अनेक प्रकार से भेदन करके बढे हुए रक्त वाले मनुष्य के त्वचा, शिरा, स्नायु और मांस में स्थित रक्त को दूषित करके लम्बी, गोल, मोटी तथा रक्त वर्ण की ग्रन्थियों की माला सी उत्पन्न कर देती है। इन ग्रन्थियों के कारण मनुष्य के शरीर में वेदना, ज्वर, श्वास, कास, अतिसार मुख शोष, भ्रम, मूर्छा आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

(७) कफपित्तज विसर्प (कर्दम विसर्प)—एक प्रदेश को ग्रहण करके चलता है और इसमें विशेष पीड़ा नहीं होती। पीत तथा पाण्डु वर्ण की पिड़िकायें होती हैं और वह स्थान काला, मैला, शोथयुक्त गंभीर पाक वाला, उष्ण स्पर्श वाला होता है। त्वचा का वर्ण पंक (कीचड़) के समान होता है। मांस गल कर गिरने लगता है। एवं मुर्दे के समान उसमें से दुर्गन्ध आती है। ज्वर, निद्रा, शिरोवेदना, प्रलाप, अस्थि पीड़ा, आमदोषयुक्त मल का आना, मुख कफ से लिपा हुआ सा रहना इत्यादि लक्षण होते हैं।

स्थान भेद से विसर्प—चरक में स्थान भेद से विसर्प को तीन प्रकार का माना है—(१) वाह्य विसर्प यह त्वगादि धातुओं में आश्रित होता है (२) आभ्यन्तर विसर्प—इसका कोष्ठ से सम्बन्ध होता है (३) उभयाश्रित—इसका त्वगादि धातु और कोष्ठ दोनों से सम्बन्ध होता है। इनमें वाह्य विसर्प साध्य होता है। शेष दोनों क्रम से कष्टसाध्य और असाध्य होते हैं। इसी प्रकार से अभिघातजन्य विसर्प कष्टसाध्य और सन्निपातजन्य असाध्य होता है।

विशेष ज्ञेयांश—विसर्प रोग में आरम्भ से ही ज्वर होता है, जो २४ घण्टों में १०२ से १०४ डिग्री तक चढ़ता है। जिह्वा मैली होती है, नाड़ी की गति प्रति मिनट १०० से १२० तक हो जाती है। मूत्र की मात्रा कम होती है। कभी कभी इसमें 'एलब्यूमन' भी आने लगता है। कुछ लोग विसर्प को मर्यादा वाला मानते हैं, जो कि अपनी तीव्रता के अनुसार दो या तीन सप्ताह में

ठीक हो जाता है यदि कोई उपद्रव न हुआ तो एवं शोथ गंभीर न हो तो। ज्वर प्रायः पांचवे या छठे दिन से धीरे धीरे उतरने लगता है। शोथ भी कम हो जाता है। इसके बाद विकृत स्थान की त्वचा छिलती रहती है और रोगी स्वस्थ हो जाता है। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान भी इसके कई भेद मानता है जैसे—संचारी विसर्प, कर्दम विसर्प, परिवर्तित विसर्प और नवजात विसर्प।

सचारी विसर्प में मुख से ग्रीवा, वक्ष तथा शरीर के अन्य अंगो मे फैलता है। कर्दम विसर्प में-त्वचा मे गंभीर कफ होता है और धातु गलजाती हैं। परिवर्तित विसर्प में एक ही स्थान पर आक्रमण होता है जिसके कारण स्थान मोटा हो जाता है। नवजात विसर्प तत्काल पैदा हुये बच्चे के नाल छेदन के बाद में होता है।

अवस्थाभेद से असाध्यता-बालक, वृद्ध, दुर्बल प्रसूता स्त्री तथा मद्य पीने वाले मनुष्यो में पुरातन वृक्क रोगी मधुमेही एव स्थूल मनुष्यों में यह रोग असाध्य हो जाता है।

विसर्प चिकित्सा—यह रोग संसर्गजन्य है अतः रोगी को पृथक् स्थान में रखना चाहिए। परिचारक के अतिरिक्त मनुष्यों को उससे पृथक रखना चाहिए। परिचारक एव वैद्य को भी बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिए। पीने के लिये पानी पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। भोजन के लिए जौ का यूष, चाय, ग्लुकोज तथा अन्य तरल पदार्थ देने चाहिये। बर्फ डालकर देना हितकर है। बर्फ से वमन यदि अधिक हो तो चूसने के लिए बर्फ देनी चाहिए। मलावरोध को साधारण विरेचन और बस्ति से दूर करना चाहिए। शिरः शूल में शिर पर बर्फ की थैली रखनी चाहिए। ज्वर और शिर दर्द हो और अशान्ति हो तो भी शीतल जल एवं बर्फ की योजना करनी चाहिए। सर्व प्रथम विसर्प में 'लंघन' कराना चाहिए। रुक्ष क्रिया करनी चाहिए तथा रक्तमोक्षण, वमन, विरेचन उत्तम हैं। इसमें स्नेहन वर्ज्य है। वमन के लिए मैनफल, मधुयष्टी और इन्द्रयव का प्रयोग कराना चाहिए। विरेचन के लिए दूध के साथ निरोथ का चूर्ण अवस्था को देखकर उचित मात्रा में देवें। यदि रोगी विरेचन के योग्य न हो तो संशमन क्रिया करनी चाहिए। इनके लिए सारिवा, आमला, खस, नागरमोथा इनका क्वाथ पिलाना चाहिए।

विसर्प में रक्तमोक्षण—क्योंकि यह रोग बिन रक्त एवं पित्त की दुष्टि के नही हो सकता और इसक आश्रय ही रक्त है इसीलिये रक्त बारबार निकालन चाहिए। विसर्प में सारी चिकित्सायें एक तरफ हैं औ केवल रक्त मोक्षण चिकित्सा एक तरफ है। अर्थात् इस रोग की यह प्रधान चिकित्सा है। शाखा में रक्त के दूषित होने पर सर्वप्रथम रक्तमोक्षण कराना चाहिए क्योंकि रक्त के क्लेद से त्वचा मांस और स्नायुओं का क्लेद हो जाता है और रक्त के निकल जाने पर अन्दर के दोष की शुद्धि होजाने पर त्वचा, मांस और सन्धि को विसर्प में लेप सेंक आदि बहिः परिमार्जन क्रिया करना चाहिए।

विसर्प में लेप प्रयोग—वायु के विसर्प में सोया, नागरमोथा, बाराहीकन्द, झिन्टी, धनियां, देवदारू,सहजना, कूठ, इनका लेप करना चाहिए।

पित्तज विसर्प मे वटजटा,केले का मध्यभाग,बिस ग्रंथि इनका लेप शतधौत घृत के साथ करें।

कफज विसर्प में त्रिफला, पद्माख, खस, मजीठ, कनेर (पीत), सारिवा इनका लेप करें।

सन्निपातज विसर्प में मिश्रित चिकित्सा करें और पूर्वोक्त लेपों की औषधियों के क्वाथ से ही परिसेचन करना चाहिए।

साम वायु में लेप—विसर्प में आमयुक्त वायु यदि पित्त या कफ के स्थान में पहुँच गई है तो थोड़े शीतल, कुछ उष्ण और रुक्ष लेप करने चाहिए। वायु के रक्त और पित में पहुंचने पर लेप घी में मिलाकर शीतल और पहले करने चाहिए और इन लेपों को महीन वस्त्र से ढांक देना चाहिए एवं बदलते रहना चाहिए।

विसर्प में घृत निषेध—जिस रोगी में दोष बहुत बढ़े हुए होते हैं उनमें ऐसा घृत कोई नहीं देना चाहिए जो विरेचक न हो। बिना विरेचन की औषधियों से सिद्ध किये हुए घृत से रुके हुए दोष त्वचा, मांस और रक्त को पका देते हैं किन्तु निराम अवस्था में कफ क्षीण हो जाने पर वायु और पित्त के अधिक हो जाने पर तिक्त घृत, महातिक्त घृत जो कि कुष्ठ रोगी के लिए प्रयुक्त होते हैं अथवा त्रायमाण से सिद्ध घृत देना चाहिए।

अग्निविसर्प की चिकित्सा—अग्नि विसर्प में सब

धौत घृत का लेप करना चाहिए और घृत मांड से परिशेचन करना चाहिए और मधुयष्ठी के रस से अथवा इक्षु (गन्ने) के रस से परिशेचन करें। पान, लेप और परिशेक में महातिक्त घृत का प्रयोग करें।

ग्रन्थि विसर्प चिकित्सा—इसमें रक्तपित्त नाशक चिकित्सा करके कफपित्त नाशक चिकित्सा करें। पिण्ड-स्वेद, तथा उपनाह स्वेद करना चाहिए। दशमूल से सिद्ध तेल से परिशेक करना चाहिए। सहजने को पीसकर सुहाता हुआ गर्म लेप करें। ग्रन्थि भेदन के लिए दन्ती, चित्रकमूल, थूहर का दूध, अर्क दूध, गुड़, भिलावा, कासीस इनका लेप करना उत्तम है। कुलथी के यूष में यवक्षार, अनारदाना मिलाकर इसके साथ गेहूँ का या यव का भोजन देवें। यदि इस क्रिया से ग्रन्थि शांत न हो और पाषाण के समान कठोर हो तो अग्निकर्म से या क्षार कर्म से या शर आदि के द्वारा दाह करना चाहिए अथवा पकाने वाली अन्य औषधियों से पकाकर चीर कर ग्रंथि को पूर्ण रूप से बाहर निकाल देना चाहिए।

ग्रन्थि विसर्प में उत्क्लेशित हुए रक्त को बार बार निकालना चाहिए। क्लेद वाले सभी विसर्पों में दाह और पाक होने पर बाह्याभ्यन्तर शोधन करके व्रण की भांति चिकित्सा करें। दारु हल्दी, वाय विडंग, कमीला इनसे सिद्ध तैल वात प्रधान विसर्प में उत्तम है।

कर्दम विसर्प चिकित्सा—कफ और पित्तज विसर्प में दूर्वा स्वरस से सिद्ध घृत देना चाहिए। दशांग लेप का का प्रयोग करना चाहिए।

दशांग लेप—सिरस की छाल, मधुयष्ठी, तगर, लाल-चन्दन, छोटी इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूट, सुगन्ध वाला इन औषधियों को पीसकर घी में मिलाकर लेप करने से विसर्प, कुष्ठ, ज्वर, शोथ नष्ट हो जाते हैं। पंचक्षीरी वृक्षों की त्वचा के क्वाथ से शेचन और इन्हीं की त्वचाओं को पीसकर लेप करने से विसर्प नष्ट होजाता है।

विसर्प

श्री वैद्य छगनलाल समदर्शी आयुर्वेद रत्न

जो रोग विविध प्रकार से अर्थात् कभी दो ओर से कभी चारों ओर से, अथवा कभी-कभी ऊपर नीचे तिर्यक गति से शोथ और विस्फोट के साथ शरीर के मन चाहे भाग पर सर्पण करता है—उसे विसर्प, परिसर्प, सुर्खवाद, और अंग्रेजी में "इरीसिपिलास" (Erysipelas) नामक रोग कहते हैं।
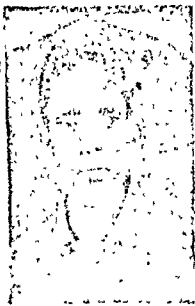
लेखक

विसर्प रोग के कारण—अम्ल, कटु, लवणादि, उष्ण रसों के अधिक सेवन करने से खट्टा दही, विकृत मद्य, अचार-चटनी तथा हरितवर्ग के अत्यधिक सेवन से कूर्चीक किलाट, तिल, उड़द, कुलत्थ, ग्राम्य आनूप तथा वारिशय पशु-पक्षियों का मांस और चावल के आटे से बने भोज्य पदार्थों के सेवन से, अत्यधिक भोजन, विरुद्ध भोजन और भोजन पर भोजन करने से, क्षत से, तीव्र आघात से, गिर कर चोट लगने से, अग्नि आदि अधिक के तापने अथवा स्वेद आदि उष्ण कर्मों के अत्यधिक सेवन से वात आदि दोष कुपित होकर त्वचा के बाहर और भीतर अर्थात् सर्वत्र विसर्प रोग को जन्म देते हैं।

नव्यमतानुसार यह रोग एक प्रकार के कीटाणु द्वारा उत्पन्न होता है। इस कीटाणु को "स्ट्रेप्टोकोक्कस-पायोजिनस" (Streptococus Pyogenus) नाम से पुकारा जाता है। किसी अंग के घायल होने अथवा छिल जाने पर उसकी राह से ये कीटाणु शरीर में घुसकर इस रोग को उत्पन्न करते हैं। धातु-दुर्बलता या स्वास्थ्य के नियमों का ठीक-ठीक पालन न करने से भी इस रोग की उत्पत्ति हो सकती है।

विसर्प के भेद—वात आदि दोषों से सात प्रकार का

विसर्प होता है। यथा—(१) वातज-विसर्प, (२) पित्तज विसर्प, (३) कफज-विसर्प, (४) आग्नेय-विसर्प, (५) ग्रन्थि विसर्प, (६) कर्दमक-विसर्प और (७) सन्निपातज-विसर्प

विसर्प के लक्षण

वातज विसर्प—भ्रम, प्यास, सुई चुभने की सी पीड़ा, शूल, श्वास, कास, कै आना, अरुचि, नेत्र का मलिन होना तथा आंसू आना, आक्रान्त स्थान श्याम-अरुण आभा वाला और शोथयुक्त दिखाई देता है। चिकित्सा का अतिक्रमण हो जाने पर आक्रांत भाग में श्याम आभा वाले एवं शीघ्र फूट जाने वाले फोड़े हो जाते हैं।

पित्तज विसर्प—तृष्णा, मूर्च्छा, कै, अरुचि, पसीना, आना, ज्वर का १०६ या १०७ डिग्री तक ताप होता है। दाह, प्रलाप, शिरदर्द, अनिद्रा आदि लक्षण दिखाई देते हैं। रोगी का किसी कार्य में चित्त नहीं लगता है। शीतल वायु और शीतल जल की रोगी अधिक इच्छा करता है। मूत्र व पुरीष का वर्ण हरा या हल्दी जैसा होता है। रोगी की त्वचा हल्दी के वर्ण सदृश हो जाती है। विसर्प वाला स्थान ताम्बे का सा लाल, हरा, काला या हल्दी के वर्ण जैसा हो जाता है। वहां पर फोड़ हो जाते हैं और उनसे फोड़े के वर्ण जैसा ही स्राव होता रहता है।

कफज विसर्प—सर्दी लगने जैसा मालूम होना, ठंड लग कर अज्वर ाना, देह का भारीपन, निद्रा, अरुचि, कै, आदि लक्षण दिखाई देते हैं। मुख का स्वाद मीठा होजाता है तथा मुख कफ से लिप्त रहता है और बार-बार थूक आता है। विसर्प वाला स्थान शोथ और पांडु अथवा हल्का लाल वर्ण युक्त हो जाता है। उस स्थान का स्पर्श ज्ञान जाता रहता है।

आग्नेय विसर्प—इस विसर्प में अग्नि सदृश सारे शरीर में दाह होती है। कै, अतिसार, मूर्च्छा, ज्वर, पीड़ा तृष्णा, अजीर्ण प्रभृति लक्षण मिलते हैं। विसर्प वाला स्थान कृष्ण अथवा रक्त वर्ण का होता है। आग से जलने सदृश फफोले हो जाते हैं। रोगी बहुत दुखित रहता है। वह कहीं भी बैठना या खड़ा रहना पसन्द नहीं करता है। वात-पित्त के प्रकोप से हुए यह आग्नेय-विसर्प असाध्य होता है।

ग्रन्थि विसर्प—कफ और वायु अपने-अपने कारण से कुपित होकर सिरा, स्नायु, मांस एवं त्वचा में आश्रि ग्रन्थियों की माला को उत्पन्न करते हैं। इनमें वेदना बहु तेज होती है। ये ग्रन्थियां छोटी या बड़ी लम्बी या गो दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं। ग्रन्थियां लाल वर्ण व हो जाती हैं। ज्वर, अतिसार, श्वास, कास, शोष, प्रमे अरुचि, अपचन हिक्का, वर्ण का बदलना, अंगों का टूट निद्रा-नाश आदि उपद्रव हो जाते हैं।

कर्दमक विसर्प—शीतज्वर, दाह, शिरदर्द, निद्र तन्द्रा, मोह, अरुचि, प्रलाप, अग्निमांद्य, दुर्बलता अस्थिर में भेदन सदृश पीड़ा, देह का भारीपन और आमयुक्त म होता है। यह विसर्प प्रायः आमाशय में ही फैलता है आक्रान्त स्थान लाल पीली या पांडुवर्ण की पिड़िकाओं व्याप्त, कृष्णाञ्जन की आभा वाला, स्निग्ध, मलिन, भार अल्प वेदना युक्त, शोथ-युक्त, स्राव रहित, शीघ्र ही ग जाने वाला होता है। वह स्थान अंगुली से दब जाता है मांस सड़ते-सड़ते नीचे की सिरा, स्नायु आदि दीख लगती है। इसमें मुर्दे की सी गन्ध आती है।

सन्निपातज विसर्प—सन्निपातज-विसर्प वाता तीनों दोषों से युक्त, सारे शरीर में सर्पण करने वाल तीनो दोषों के लक्षणों वाला, रस, रक्त आदि सप्त धातुओं में गमन करने वाला होता है। यह सर्वांग में शीघ्र ही फैलकर रोगी का प्राण हर लेता है। यह विसर्प असाध्य होता है।

विसर्प की चिकित्सा

(क) आयुर्वेदीय मतानुसार—

(१) सिरीष छाल, मुलैठी, तगर, लाल चन्दन, इलायची, हल्दी, दारूहल्दी, कूठ, सुगन्ध वाला और वालछरिला प्रत्येक समभाग लेकर जल के साथ पीस घी में मिलाकर आक्रान्त स्थान पर लेप करना चाहिए।

(२) पद्माख १ तोला, खस १ तोला, मुलेठी १ तोला जल के साथ पीसकर लेप करना चाहिए।

(३) वड़ छाल, पीपल छाल, पाकड़ छाल, गूलर छाल और पारीष छाल प्रत्येक १-१ तोला जल के साथ पीस कर लेप करें।

(४) रस कपूर ६ माशा, शुद्ध आंवलासार गन्धक

१ तोला और फिटकरी १ तोला इनको मिलाकर १०८ बार घोये घी में मिलाकर लेप करें।

(५) चन्दन चूर्ण १ तोला, कपूर २½ तोला, गोघृत २½ तोला को एकत्र मिलाकर लेप करें।

(६) चिरायता, त्रिफला, अडूसा, नीम, कुटकी, परवर, चन्दन प्रत्येक ३-३ माशे और जल २० तोले लेकर इन सातों औषधियों का क्वाथ करें। २½ तोला जल शेष रहने पर छान लेवें। यह क्वाथ प्रातः तथा सायंकाल पिलाना चाहिए।

(७) अडूसापत्र, गुरुच, त्रिफला, खरसार, अमलतास का गूदा, परवर-पत्र और निम्ब छाल प्रत्येक ३-३ माशा लें। एक पाव जल में मिलाकर क्वाथ बनावें। आधी छटांक शेष रहने पर उतार कर छान लें और इसमें ६ माशा शुद्ध गुग्गुल मिलाकर प्रातः सायं पिलावें।

(८) डहरकरंज, छतिवन, कलिहारी, सेहुण्डदुग्ध, मदार दुग्ध, चीता, भांगरा, हल्दी और वत्सनाभविष प्रत्येक २-२ तोला लेकर जल के साथ पीस लुगदी बनावें। इस लुगदी में सरसों का तेल ७२ तोला और गोमूत्र २८८ तोला मिलाकर तेल पाक कर छान लें। इस तेल की मालिस करनी चाहिए।

(९) एरंड जड़, चकवड़, कड़वी तुम्बी, कड़वी तोरई, नीम, अंकोल, बावची, एरण्ड बीज प्रत्येक २-२ तोला। इन ८ औषधियों का कपड़छन चूर्ण कर क्रमशः गोमूत्र, दही, दूध, तिल तेल तथा बकरी के दूध में खरल कर पाताल यन्त्र द्वारा तेल निकाल कर मर्दन करें।

(१०) परवर पत्र ४ छटांक, अडूसा छाल ३ छटांक, छतिवन छाल ३ छटांक, गरुच छाल ३ छटांक, नीम छाल ३ छटांक को एकत्र कर १६ सेर जल में ४ सेर अवशेष रहने तक क्वाथ करें। इस ४ सेर क्वाथ में त्रिफला की लुगदी ४ छटांक और घी १६ छटांक लेकर घृत मात्र शेष रहने तक पाक करलें और छान लें। इसको ३ माशा की मात्रा में दूध के साथ प्रातः सायं लेना चाहिए।

(ख) आधुनिक मतानुसार—

(१) इल्कोसिन (Elkosin) की २-२ गोलियां दिन में तीन या चार बार देवें।

(२) गैण्ट्रिसिन (Gantrisin) की पहली मात्रा में ४ गोलियां और बाद में हर ४ घंटे पर २-२ गोलियां दें।

(३) रिडोक्सोन (Redoxon) की १ से ३ गोलियां रोजाना दें।

(४) ओरियोमाइसीव कैप्स्यूल, क्लोरोमाइसेटीन, कैप्स्युल, टेरामाईसीन कैप्स्यूल और सिन्थोमाइसेटीन कैप्स्युल में से किसी १ कैप्स्यूल को हर ४ घंटे के बाद दिन में ३ बार सेवन करावें। ये चारों एन्टीबायोटिक कैप्स्यूल विसर्प रोग में बहुत लाभ पहुंचाते हैं।

(५) एक्रोमाइसीन (Achromycin), क्लोरोमाइसेटीन (Chloromycetin), टेरामाइसीन (Terramycin), सिन्थोमाइसेटीन (Synthomycetin), प्रोकेन पेनिसीलीन, (Procaine Penicillin), रिडोक्सोन (Redoxon) आदि के इन्जेक्शन रोजाना यथायोग्य विधिपूर्वक मांस या नस में विवरणपत्र के अनुसार लगावें।

(६) मरक्युरोक्रोम लोशन (Mercurochrome Solution) ५ प्रतिशत को फुरेहरी से दिन में दो बार आक्रान्त स्थान पर लगावें।

(७) इक्ट्थाल (Ichthyol) या सुबिटाल (Subitol) को विसर्प पर लगाना चाहिए।

(८) कोलोसल मैग्नीज (Collosol Managnese) और स्ट्रेप्टोकोकल वैक्सिन (Streptococal Vaccine) के इन्जेक्शन यथा विधि लगावें।

पथ्यापथ्य-निर्देश

पथ्य—पुराना जौ, गेंहूं, चावल, मूंग, मसूर, चना, अरहर, परवल, करेला, मक्खन, घी, दाल, दाख, अनार, आंवला, खर, चन्दन, मांस का रस आदि ताजे सेवन करना चाहिये।

अपथ्य—विरुद्ध तथा विषम आहार, उड़द कुल्थी, तिल, दही कांजी, खट्टे तथा नमकीन पदार्थ, लहसुन, शराब, धूप, अग्निसेवन, वेग धारण करना, दिन में सोना, मैथुन करना आदि अहितकर हैं।

—वैद्य छगनलाल समदर्शी 'आयुर्वेद रत्न'
समदर्शी मल्टीपर्पज हास्पीटल
रायपुर (झालावाड़) राज०

खुजली व्रण

परिचय—खाज, खुजली, फोड़ा, फुन्सी, दाद, एक्जीमा आदि को सभी पैथी वाले चर्म रोग मानते हैं। पर होमियो पैथिक इसे स्थानिय रोग (चर्म रोग) नहीं मानता है वह सोरा का चर्म पर प्रकट होना मानता है। और इसकी चिकित्सा भी सर्वाङ्गिक लक्षणों के आधार पर की जाती है।

बाहरी प्रयोग या इन्जेक्सन—खुजली आदि रोगों में बाहरी प्रयोग की मरहम आदि तेज दवा लगा कर या इन्जेक्सन आदि लगाकर रोग को दबा देना महान् भयंकर भूल है इससे रोग की बहिर्मुखी गति यानी प्रकृति रोग को अन्दर से बाहर निकालती है यह गति अन्तर्मुखी हो जाती है अर्थात् रोग विष बाहर न निकलकर अन्दर के महत्व पूर्ण यन्त्रों पर अपना प्रभाव जमाता है और भविष्य में अनेको जटिल रोगों की सृष्टी करता है। उस समय चिकित्सक महाशय कहते हैं हम तो चर्म रोग को तो ठीक कर दिया पर यह तो दूसरा नया रोग हो गया। रोगी और चिकित्सक यह नहीं जानते हैं कि यह उसी चर्म रोग को दबाने का फल मात्र है। हमारे पाठक गण यह तो प्रायः देखते हैं कि चेचक आदि की गोलियां किसी कारण वश बैठ जाती हैं (लोप हो जाती हैं) उस समय कितने भयंकर उपसर्ग पैदा हो जाते हैं। यह उपसर्ग आशु प्राण घातक होते हैं। पर चर्म रोग के दबाने से अनेक प्रकार के नये-नये रोग पैदा होते हैं और उनकी चिकित्सा भी अति जटिल हो जाती है। वह पूर्ण आरोग्य जब ही होते हैं जब दवा हुआ चर्म रोग पुनः बाहर न आजावे।

पुरानी बिमारियों की चिकित्सा करने के समय जब हम रोगी का इतिहास लिखते हैं वह अनेकों जगह रोग का मूल कारण चर्म रोग का दवाना या गनोरियां या उपदंश का इन्जेक्सनों द्वारा दबाया जाना पाते हैं। इसको अंग्रेजी में (Metastasis) कहते हैं। पाठकों के लाभार्थ यहां हम एक तालिका लिख रहे है कि चर्म रोग के दवा होने पर क्या-क्या रोग हो सकते हैं एवं उनमें क्या-क्या दवा प्रायः काम आती है। यहां मैं विद्वान पाठकों से यह भी निवेदन करता हूं कि नीचे लिखे हुये रोग चर्म रोग दवकर होते हैं ऐसी बात नहीं है। इसके अतिरिक्त भी अनेकों रोग हो सकते है और उनकी चिकित्सा में रोगी के शारीरिक और मानसिक लक्षणों के सादृश्य जो भी दवा निर्वाछित होवे उसी का प्रयोग हो सकता है। उदाहरण के तोर पर हम नीचे कुछ रोगों के नाम दे रहे हैं जो कि हमें चिकित्सा ग्रन्थों में प्राप्त हुये हैं।

चर्मरोग दवा देने के बाद अतिसार—मेडोरिनम, मेजेरियम्, सलफर, ग्रेफाईटिस, सोरीनम्, ब्रायोनिया, इलका, हीपरस, लाइको, आर्टिका।

चर्मरोग दवकर अङ्ग प्रत्यङ्गों का आक्षेप—कुप्रममेट, कास्टीकम, जिङ्कम।

चर्मरोग दवकर हाईड्रोसील—एवोटेनम।

चर्मरोग दवकर उन्माद—काष्टीकम, सोरिनम, सलफर, कुप्रममेट।

चर्मरोग दवकर दमा—एपिस, आर्सेनिक, कार्वोभेष, इलकामारा, इपिकाक, सोरिनम, पल्सेटिला, सलफर।

चर्मरोग दवकर पक्षाघात—जिङ्कम, कुप्रम, कास्टीकम।

चर्मरोग दवकर अंडकोष प्रदाह—एब्रोटेनम, कल्केरिया कार्व।

चर्मरोग दवकर मृगी—एगरिकस, कुप्रम, जिङ्कम।

चर्मरोग दवकर शोथ—इलकामारा, एसिडफास, सलफर।

उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त पाकाशय प्रदाह, मेनिंजाईटिस, संग्रहणी आदि अनेक रोग चर्मरोग दवकर हो सकते हैं स्थानाभाव के कारण हम यहां नहीं लिख रहे हैं। मैं पुनः पाठकों से निवेदन करता हूं कि चर्मरोग को दवाने की चेष्टा न करें भविष्य में रोगी के लिये यह बहुत ही हानिप्रद होगा। यहां हम अपने १ रोगी की चिकित्सा का वर्णन करके फिर हम चिकित्सा लिखेंगे।

उदाहरण—

श्रीमती………उम्र ३५ वर्ष ३ सन्तानों की जननी चिकित्सा के लिये मेरे पास आई। रोगिणी के लक्षण निम्न प्रकार से थे।

रोगिणी की प्रकृति—दुबली-पतली, कपड़े गन्दे, शरीर से दुर्गन्ध आती थी। दुर्गन्ध सड़े हुये मांस की तरह थी। चमड़ा फटाफटा था।

रोगिणी के द्वारा बताये लक्षण—

मेरे को ४ साल से श्वेत प्रदर की बीमारी है स्राव अधिक मात्रा में बदबूदार आता है। इसका अनेकों जगह इलाज कराया पर लाभ नहीं हुआ, यह रोग नहीं छूटेगा इसके कारण कमजोरी बहुत ज्यादा हो गयी है। इञ्जेक्शन, टेबलेट बहुत खा चुकी हूं एक पड़ोस की स्त्री के कहने पर आपके पास आई हूं। यह रोग ठीक तो होगा नहीं, सोचा कि आपका भी इलाज कराकर देख लेवें।

प्रश्न—बचपन से लेकर अभी तक आपको क्या बीमारियां हुई और उनकी क्या क्या चिकित्सा हुई?

उत्तर—बचपन की बातें तो याद नहीं हैं पर १७-१८ साल की उम्र से प्रति शीतकाल में पांव (जिसे पामा कहते हैं जो प्रायः अंगुलियों के बीच में फुन्सियां होती हैं उनमें पीव रहता है) होती थी अनेकों प्रकार के तेल लगाये, टेबलेट खाये पर कोई लाभ नहीं हुआ फिर एक डाक्टर साहब ने मरहम लगाने को दिया और ४० इञ्जेक्शन लगाये, इन इञ्जेक्शनों से चर्म रोग ठीक हो गया। उसके २ साल बाद सर दर्द आरम्भ हो गया यह अब भी है। दर्द होने पर कोडोपायरिन, नोवाल्जीन, सेरीडोन खा लेती हूं। अभी ४ वर्ष से श्वेतप्रदर काफी हो रहा है। इससे तो तङ्ग आ गई भगवान मौत भी दे दे तो अच्छा होवे।

प्रश्न—पाखाना, पिसाब, पसीना आदि में कैसा अनुभव होता है?

उत्तर-सभी में बहुत दुर्गन्ध है। मेरे बच्चे भी प्रायः कहते हैं कि मां के कपड़ों में बदबू आता है।

प्रश्न—स्नान, खुला हवा, सर्दी, गर्मी, वर्षात् में क्या पसन्द है?

उत्तर—डाक्टर साहब! सर्दी तो मेरे लिये यमराज है मैं ठण्ड सहन नहीं कर सकती, सर पर सर्दी में कपड़ा लपेटना पड़ता है। स्नान ५-७ दिन पर गरम जल से दोपहर में कर लेती हूं। हां एक बात बताना भूल गयी थी कि मुझे रात में १२-१ बजे जोर की भूख लगती है और उस भूख में सर में दर्द होने लगता है। अतः मैं रात में १-२ रोटी रखती हूं। खाने से सर दर्द कम हो जाता है। धूप तो एकदम सहन नहीं होती है।

पति से प्रश्न—क्या आपको गनोरिया सिफलिस या अन्य रोग हुआ था।

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—इनको सहवास की इच्छा कैसी है।

उत्तर—डाक्टर साहब? इसे सहवास की इच्छा बिल्कुल नहीं है। इसके स्वभाव की यह विचित्रता है कि यह निराश रहती है भय प्रायः रहता है। और भी अनेकों प्रश्न करते रहे पर उनमें कोई मतलब का लक्षण नहीं मिला अतः उनका उल्लेख यहां नहीं किया है। निम्नलिखित प्रधान लक्षण संग्रह किये गये।

मानसिक—निराशा, भय,

इच्छा अनिच्छा—शीत कातर, स्नान से अनिच्छा। रात में अस्वभाविक भूख। धूप की अनिच्छा।

सर्वाङ्गिक—दुर्बलता, सभी स्रावों में दुर्गन्ध, चर्म फटा-फटा।

ह्रास वृद्धि—शीत ऋतु में, ठंडी हवा में, रात में वृद्धि सोने पर, घर के भीतर, गरम में, वस्त्र ओढ़ने पर ह्रास।

कारण—चर्म रोग दवा देने से।

उपरोक्त लक्षणों के आधार पर सोरीनम् निर्विरोध निर्वाचित हो गया। उच्च शक्ति ही उचित रही।

ता. १५-६-१९६१ को नक्स वोमिका २०० शक्ति १ खुराक रात में। ता. २०-६-६१ को सोरीनम १००० शक्ति १ खुराख प्रातः दिया गया १५ दिन बाद समाचार देने को कहा।

तारीख १९-७-६१ को समाचार मिला कोई भी लाभ नहीं है। सोचने पर सोरीनम ही उचित समझा अतः सोरीन १०००० शक्ति की २ खुराक शक्ति परिवर्तित किया से दो दिन प्रातः खाने को वह दिया और १ मास बाद खबर देने को कहा।

ता. ३०-६-६१ को रोगणी के पति आकर कहने लगे कि शरीर में खास करके अगुलियों के बीच में नितंम्बों पर पीले रंग की फुन्सियां बहुत निकलती है। पर सर दर्द नहीं है। श्वेत प्रदर कैसा है—मैंने पूछा उत्तर मिला कि उसके बारे में तो नहीं पूछ कर आया वह चर्म रोग से

परेशान हैं। दवा दीजिये।

मैंने २० खुराक सुगर आफ मिल्क की देदी और लगाने को ओलिव आयल (जैतून का तैल) दे दीया। खुराक १ सुबह १ शाम को खावें १० दिन बाद खबर देवें।

१०-७-६१ को खबर मिली फुंसियां कुछ कम हो रही है श्वेत प्रदर में भी लाभ है। दवा–२० खुराक सुगर आफ मिल्क दिया १ खुराक रोज खावें।

३०-७-६१ को रोगिणी स्वयं आई उसका स्वास्थ्य आगे से ठीक था। श्वेत प्रदर अब भी आता है पर आगे से कम सर दर्द नहीं है। सर्दी जुकाम बराबर रहती है। फुन्सियां कुछ-कुछ हैं। ता० १-८-६१ को सोरीनम ५०००० शक्ति २ खुराक ही और १ मास के लिये ६० पुड़ियां सुगर आफ मिल्क दिया।

३०-८-६१ को रोगिणी आई और कहने लगी इस दवा से फुन्सियां और निकली पर पुड़िया से सूखती गईं। श्वेत प्रदर नहीं है। स्वास्थ्य भी ठीक है पर हाथ पर एक्जीमा निकला है जो कि बचपन में था और लगाने की दवा से ठीक हो गया था। सर्दी, जुकाम बराबर लगती है।

ता० १-८-६२ को ट्यूबरक्यूलीनम् 10 M १ खुराक दी। १ साल बाद में रोगिणी से मिले वह पूर्ण स्वस्थ्य थी।

उदाहरण २–

डा० ई० बी० नैश साहब ने १ रोगिणी के पेट के दर्द में आर्सेनिक उच्चक्रम में दिया उससे पेट दर्द तो ठीक हो गया पर हाथ पर एक्जीमा निकल आया जो कि बहुत पहिले दवा दिया था।

यहां यह उदाहरण देने का अभिप्राय यही है कि चर्म रोग को दबाना हानिप्रद है। आगे हम चर्म रोग की चिकित्सा लिख रहे हैं होमियोपैथिक में अनेक नामों के चर्म रोग की चिकित्सा में कोई भी फर्क नहीं है हमें यह नहीं देखना है कि यह दाद है या खुजली है अथवा एक्जीमा है। हमारी दवा निर्वाचन का एकमात्र रास्ता रोगी और रोगी के लक्षण समष्ठी हैं। रोग भी उस लक्षण समष्ठी का एक अङ्ग है अतः प्रथक-प्रथक दवा लिखकर या एक ही दवा को ३-४ जगह लिखकर सिर्फ कागज भरने हम पसन्द नही करते हैं।

पाठकों को भी हम यही राय देंगे कि वह रोग के अनुसार दवा खोजने का अभ्यास न करें बल्कि रोगी के अनुसार ही दवा खोजें। आपको देखना है कि यह रोगी किस दवा का रोगी है। आपको रोगी की चिकित्सा करनी है न कि सिर्फ रोग की।

होमियोपैथिक में शोरा विष का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है अतः इस विषय पर हम कुछ विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

चिकित्सा–

सल्फर ३०, २००, १ M, १० M

होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका में सल्फर को एन्टी-सोरिक दवाइयों का राजा कहा गया है, वास्तव में यह सही बात है यदि लक्षण सादृश्य होवे तो यह प्रत्येक रोग को समूल नष्ट करने की शक्ति रखती है। डा. ई. बी. नैश साहब ने सल्फर पर एक स्वतन्त्र पुस्तक ही लिख दी है उसका नाम है 'लीडर्स इन सल्फर' और हमें सल्फर के रोगी को यह पहचानना है उसके मन को टटोलना है। इन दोनों में यह निर्णय कर लेते हैं कि यह सल्फर का रोगी है तो रोग कुछ भी होवे, हमें सल्फर ही देना होगा और वह रोग अवश्य ही आरोग्य होगा चाहे वह दाद है या एक्जिमा अथवा खुजली या पामा या अन्य कोई रोग। नीचे हम सभी दवाइयों के रोगियों की प्रकृति मानसिक लक्षण, चर्म के लक्षण लिखेंगे। इससे यही लाभ होगा पाठकों को एक ठोस सामग्री मिलेगी और दवा निर्वाचन में सुविधा होगी।

सल्फर का रोगी—

सल्फर रोगी दुबला-पतला झुककर चलने वाला गंदा होता है। उसके ओठ लाल होते हैं। हाथ पैरों एवं माथे में जलन रहती है। चमड़ा और बाल सूखे होते हैं। गंदा रहता है और गंदी चीजें खाता है। मन-स्वार्थी, डरपोक, साधारण फटे पुराने कपड़े लेकर अपने को बड़ा आदमी समझता है। अपना दोष नही देखता दूसरों का दोष देखने वाला होता है। दार्शनिक, पूजापाठ अधिक करता है पर वह सब ढोंग करता है। स्नान करना पसन्द नहीं करता है पर ठंडी जगह खूब पसन्द रहती है। मांस अण्डा, तमाखू, मछली, दूध सहन नहीं होता है पर मीठा, अचार गरम पेय और आहार, शराब की इच्छा। यह है

सल्फर का रोगी इसे कोई भी चर्म रोग हो सल्फर देना ही होगा।

चर्म रोग—

त्वचा सूखी, परतदार, गन्दी, जरासी खरोंच में भी पीव हो जावे। चकत्ते, खुजली खुजलाने पर होती है नहाने या धोने पर वृद्धी। कीलदार दाने, छाले घाम को, वसन्त ऋतु में वृद्धी। दाद, एक्जिमा, सूखी खुजली कोई भी चर्म रोग होवे उसमें खुजली, जलन, स्नान से वृद्धी होवे और रोगी सल्फर का हो तो सल्फर ही उसकी एक मात्र दवा है।

नोट—पूर्ण सभी लक्षण एक ही रोगी में मिलने आवश्यक नहीं हैं। प्रधान-प्रधान लक्षण मिलने चाहिए।

आर्सेनिक एल्वम् ३० से सी. एम. तक—आर्सेनिक का रोगी दुबला-पतला होता है इसमें जलन का लक्षण प्रधान है। पर आर्सेनिक का रोगी गरम चाहता है। जब कि सल्फर का रोगी ठण्डा चाहता है। आर्सेनिक के रोगी को शारीरिक और मानसिक बेचैनी रहती है।

मृत्युभय—रोगी समझता है कि वह अवश्य मरेगा उसका रोग असाध्य है। चिड़चिड़ा रहता है। रात या दिन के १२ बजे से २ बजे तक रोग वृद्धी, ठण्ड से वृद्धी, गरम से उपशम।

चर्मरोग—आर्सेनिक के चर्मरोग में बदबू रहती है। इसके उद्‌भेद कपाल और मस्तक पर अधिक होते हैं। इसके उद्‌भेदों की विशेषता यह है कि भूसी की तरह सूखी पपड़ी पड़ती है। काले उद्‌भेद, फुन्सियां, फोड़े, अपरस, दाद, सूखा एक्जीमा या सोराईसिस आदि में लाभप्रद है। खुजली होती है उसके बाद जलन होती है। ठंडे पानी से रोग बढ़ता है गरम से घटता है।

नोट—पीछे हम डा० ई० वी० नैश की रोगिणी का उदाहरण दे चुके हैं उसके पेट में दर्द रहता था पर गरम चीज पीने पर उपशम के लक्षण पर आर्सेनिक दी गई पेट दर्द तो ठीक हो गया पर २० साल पहिले का एक्जीमा निकल आया।

सर में रूसी की भी आर्सेनिक बहुत अच्छी दवा है।

ग्रेफाईटिस ३० से C. M. तक—ग्रेफाईटिस भी एक प्रधान एण्टीसोरिक दवा है। एक्जीमा का नाम सुनते ही नये छात्र ग्रेफाईटिस की व्यवस्था कर बैठते हैं। पर उचित नहीं है इसके भी प्रधान लक्षण हैं। इसके रोगी को पहचानना चाहते हैं तो तीन F याद रखें Fair, Fatty, Flabby अर्थात् गोरापन, मोटापन और थुलथुलापन। इसका रोगी गोरा, मोटा और थुलथुला होता है। रोगी रक्तहीन रहता है जो हमेशा दुःखी रहता है, हर समय अमङ्गल की आशङ्का करता है, शीतकातर, सहज में ही सर्दी, जुकाम हो जाती है। गाने बजाने से रुलाई आने लगती है। रोगी को प्रायः कब्ज रहती है, संभोग से अरुचि रहती है। मछली, मांस, नमकीन चीजें, मीठी चीज रोगी खाना पसंद नहीं करता है। ऋतु लोप के समय ब्रह्मरंध्र (तालू) के ऊपर जलन होती है। स्त्रियों को ऋतुस्राव कम होता है।

चर्मरोग-ग्रेफाईटिस के रोगी को चर्मरोग प्रायः अवश्य मिलेगा। इस चर्मरोग की विशेषता यह है कि चमड़ा मोटा और फटा-फटा होता है। उसमें रस (पस) निकलता है वह मधु की तरह चटचढा होता है। इस प्रकार का चर्मरोग (एक्जीमा) शरीर के किसी भी स्थान में हो सकता है पर प्रायः सर, हाथ के पीछे, कान के पीछे, अंगुलियों के बीच में, पलकों पर, स्तन के ऊपर, एक्जीमा के ऊपर पपड़ी पड़ती है। उससे पस निकलता है। अंगुलियों के नाखून मोटे हो जाते हैं।

आर्कटियम लैप्पा २× ३×—एक्जीमा में बहुत बदबूदार पस निकलता है। पस से भीगा रहता है और उस पर सफेद रंग की पपड़ी पड़ जाती है।

गर्मी के दिनों में बच्चों को छोटे छोटे फोड़े होते हैं उनमें आर्निकामोंट से लाभ न होने पर इसका प्रयोग करना चाहिये। यह दवा खून साफ करती है और स्वल्प क्रियाशील दवा है।

सोरीनम् २०० से C. M. तक—सोरीनम् नोसोड़ दवा है (नोसोड़ दवा का अर्थ रोग विष से तैयार) सोरीनम् फोड़ा फुन्सियों के विष से तैयार किया जाता है। सोरीनम् का रोगी शीतकातर होता है जो चर्मरोग प्रति शीतकाल में होता हो एवं रोगी के सभी स्रावों में दुर्गन्ध आती हो तो इसका प्रयोग होता है।

चर्म रोग—शरीर की त्वचा देखने में बहुत ही गन्दी रहती है। शरीर से इतनी दुर्गन्ध निकलती है कि नहाने पर भी दूर नहीं होती है। शरीर जरा गरम होते ही असह्य

खुजली होती है। सर्दी के मौसम में चमड़े पर से रूसी की तरह उड़ती है, वह गर्मी में नहीं होती है किसी तरह का चर्मरोग दब जाने के बाद खांसी, दमा, बुखार, हैजा, या कोई भी बीमारी हो तो इसके प्रयोग से लाभ होता है। यह सल्फर की अनुपूरक दवा है। पर प्रभेद कर लेना चाहिये। इसके चार प्रधान लक्षणों को याद रखना चाहिये।

(१) धातुगत या वंशगत सोरा दोष और उपयुक्त दवा का व्यर्थ होना।

(२) रोगी में उद्वेग, आतंक और निराशा।

(३) प्रबल भूख और अति दुर्गन्ध।

(४) दुर्बलता और शीतकातरता।

उपरोक्त ४ लक्षणों की व्याख्या स्थानाभाव से यहां करने में असमर्थ हैं।

पेट्रोलियम् ३० से C. M. तक—पेट्रोलियम् एक गहराई तक एण्टीसोरीक दवा है। इसका प्रथम लक्षण है—प्रत्येक शीतकाल में होने वाला चर्मरोग, पैरों और बगल में दुर्गन्ध युक्त पसीना होता है गर्मी का मौसम आते ही यह चर्म रोग अपने आप ठीक हो जाता है। शीतकाल में पेट्रोलियम् के रोगी के हाथ, अंगुलियों के ऊपर के भाग फट जाते हैं जिसे बिवाय कहते हैं। पसीने में इतनी दुर्गन्द आती है कि पास नहीं बैठा जाता है।

चर्मरोग—एक्जीमा प्रायः हाथ के तलवा में होता है वह सूखा और फटाफटा होता है। पूरे शरीर में खुजली होती हैं और चर्म फटा-फटा होता है। अंगुलियों के ऊपर बिवाई फटती है। स्तन की घुण्डी फटवा, उसमें कपड़े के स्पर्श होने पर दर्द होता है। ओठ फटते हैं। कान, नाक, मुंह की श्लेष्मिक झिल्ली का फटना और वह मोटी और सख्त हो जाती है। हाथों के ऊपर सोराइसिस होना। उपरोक्त चर्मरोगों में बहुत खुजली होती है। चर्मरोग दबकर उदरामय (अतिसार) या पेट के शूल का दर्द। दाद, खुजली आदि चर्म रोग शीतकाल में होते हैं और गरमी का मौसम आते ही अपने आप ठीक हो जाते हैं।

एल्यूमिना ३०, २००, १०००—एल्यूमिना का रोगी दुबला-पतला होता है, स्टार्च युदा पदार्थ, मिट्टी, कोयला, नमक, काफी का चुरा, खट्टी चीजें आदि खाने की इच्छा रोगी को कब्ज रहती है। सूखापन रहता है।

चर्मरोग---त्वचा सूखी, खुरदरी, गन्दी रहती है। खुजलाहट बहुत होती है। गरमी से खुजली बढ़ जाती है। चर्मरोग के साथ कब्ज अवश्य रहती है।

केली आर्स ६, ३०, २००—कपड़े खोलते ही खुजलाहट होती है। चोईयां की तरह परत उठता है। पुराना एक्जीमा गरम से, चलाने पर, कपड़ा खोलने पर रोग वृद्धी, सोराईसिस, फैजेडिनिक घाव।

नीचे हम संक्षेप में दवाइयों के लक्षणों को लिख रहे हैं—

आर्सेनिक आयोड ६, ३०—इसके रोगी कोई शीतकातर और कोई गरमकातर होते हैं। अति दुर्बलता, व्याकुलता, अति भूख के साथ आर्सेनिक के लक्षणों वाले चर्मरोग होवें तो इसका प्रयोग होता है।

कार्बोभेष ३०, २००—बड़े बड़े और मवाद युक्त फोड़े होते हैं। यह फोड़े प्रायः अंगुलियों के बीच में होते हैं, इनमें जलन और बदबू रहती है। सड़न भी रहती है। रोगी स्वयं पंखे की हवा पसन्द करता है पर घाव पर गरम पसन्द करता है। रोगी के पेट में वायु होती है और प्रातःकाल खट्टी डकारें आती हैं।

कास्टीकम ३०, २००, १०००—साईकोसिस दोष युक्त रोगी। हर समय आशंका युक्त रतहा है, शीत कातर पूच युक्त चर्म रोग इसके बाद सल्फर अच्छा काम करती है।

क्रोटोनटिग् ६, ३०,२००,—मलद्वार, लिंग, योनि के चारों तरफ और ऊपर चर्म रोग, इसमें स्पर्श सहन नहीं होता है। भयानक खुजलाहट रहती है। कभी-कभी चर्म रोग के साथ अतिसार रहता है।

हीपर सल्फ ६,३०,२००,१०००—सर्दी के मौसम में चर्म रोग होता है उसमें गाढ़ा मवाद आता है। बहुत ज्यादा दर्द होता है स्पर्श सहन नहीं होता है। रोगी असहिष्णु एवं शीत कातर होता है। फोड़ों में निम्न शक्ति का बार-बार प्रयोग करने पर मवाद पैदा होकर फोड़ा फट जाता है और जहां मवाद आती हो तो उच्चक्रम में प्रयोग करले पर मवाद सूख जाती है।

मार्क सोल ३०,२००,१०००—बर्षात् के मौसम में

—शेषांश पृष्ठ ३४८ पर

क्षुद्र रोगों का वर्णन

नींद की अधिकता–निदान एवं चिकित्सा

नींद की अधिकता का परिचय—निद्रा प्राकृतिक रोग है। यह प्रतिदिन ही प्राणियों को आती है। और प्रतिदिन वापिस भी हो जाती है। इस निद्रा के विषय में आचार्य सुश्रुत ने लिखा है कि—

निद्रांतुवैष्णवी पाटमान मुपदिशन्ति ।
सा स्वभावत् एव सर्वं प्राणिनोऽमि स्पृशति ॥
तत्रगदा संज्ञावह्वानिस्रोतांसि तमांभूयिष्टः श्लेष्मा
प्रतिपद्यते तदा तामसीनाम निद्रा संभवत्पनववोधिनी,
सा प्रलयकाले ।

नींद की अधिकता

तमोभूयिष्ठानामहःसु निशासु च भवति ।
रजोभूमिष्ठा नामनिमित्तं, सत्वभूयिष्ठानामर्वरात्र ।
क्षीण श्लेष्माणामनिल बहुलानां मनः शरीराभितायवताच नैव ।
सा वैकारिकी भवति ॥

अर्थात् निद्रा ईश्वरीय रचना है। इसको पाप रूप माना है यह स्वभाव से ही सभी प्राणियों को हुआ करती है। संज्ञा वाही स्रोतों में तमोगुण की प्रधानता वाला कफ प्राप्त होता है, तब तामसी नाम की नींद आती है। इस से प्राणी कभी नहीं जागता, यह प्रलयकाल में ही होती है। तमोन्डण की प्रधानता वाले प्राणियों को दिन में और रात में यह नींद आया ही करती है। रजोगुण की प्रधानता वालों को विना कारण के चाहे जब नींद आ सकती है। सात्र गुण वालों को आधी रात को नींद आती है क्षीण कफ वाले, तथा वायु की अधिकता वाले, मानसिक कष्ट से पीड़ित तथा शारीरिक दुःख से दुःखी प्राणियों को नींद नहीं आती, अतः यह रोग है और ऐसी नींद वैकारिक मानी जाती है। यह नीद कफ और तमोगुण के के संयोग से हुआ करती है। लिखा भी है कि—

"तमो वातकफातन्द्रा निद्रा श्लेष्म तमोभवा।"

अर्थात् तमोगुण, वायु और कफ के सहयोग से तन्द्रा होती है और तमोगुण के सहयोग से कफ, निम्द्रा को उत्पन्न करता है अतः तमोगुणी और कफ प्रधान गुण वाले आहार और बिहार की जब अधिक मात्रा सेवन की जाती है। तब निद्रा अधिक आने लगती है। समान गुण वाले द्रव्य वृद्धि के कारण होते हैं जैसा कि भगवान चरक ने लिखा है—

'सर्वंवा सर्वभावनां सामान्यं वृद्धिकारणम्।"

अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों की वृद्धि का कारण सामान्य कारण होता है। अतः निद्रा की अधिकता का कारण ऊपर लिखे अनुसार स्पष्ट है।

सामान्य चिकित्सा—सर्वप्रथम वमन और विरेचन के द्वारा कफ प्रधान शारीरिक दोषों को निकाल कर शरीर की शुद्धि अति आवश्यक है। तदनन्तर रूक्ष, उष्ण, और तीक्ष्ण गुण प्रधान आहार और विहार का प्रयोग किया जाना चाहिए। वात वृद्धिकारक, पित्त वृद्धिकारक,

मानसिक दुःख पहुँचाना चाहिए। क्योंकि इनसे ही नींद का आना समाप्त हो सकता है। साधारण स्थिति के आहार विहार करने से नींद अपने उचित और आवश्यक स्तर पर आ जाती है। अथवा वमन, संशोधन, लंघन, रक्तमोक्षण और मनोव्याकुलता की जाए।

विशेष निद्राहर योग—मल्लभस्म, शृङ्गभस्म, रस माणिक्य, रससिंदूर, कुचलासत्व, सतशिलाजीत, त्रिकटु या षड्षण, कीकर की फलियां, निशोथ, एलुवा, रेवन्दचीनी, अगर, कूठ, हल्दी, करंज, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, बहेड़ा, सौंफ, कालीमिर्च, जवाखार, नौसादर, सज्जीखार, आम्र-हरिद्रा, कायफल, तुलसी, कटेरी, लोहवान, लौंग, लहसुन इन सबको ६-६ माशा लेवें। किन्तु मल्लभस्म १ माशा ही लेवें। सबको खरल में सूखा ही मर्दन करके १ भावना प्याज के स्वरस की, दूसरी भावना सौंफ के काढ़े की, तीसरी भावना नागरमोथे के क्वाथ की, चौथी भावना अदरख के रस की, पांचवीं भावना कुटकी के काढ़े की, छठी भावना रास्ना के क्वाथ की, सातवीं भावना बच के काढ़े की देकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें। प्रभु की कृपा से पहले ही दिन १ गोली प्रातः और दूसरी रात को सोने से आधा घण्टा पूर्व गरम पानी से सेवन कराने के नींद कोसों दूर भाग जाती है। १ सप्ताह सेवन कराने के बाद यही गोलियां, असगन्ध, मुनक्का, नवीनगुड़ और भैंस के दूध के साथ सेवन करने से आवश्यक और समय पर उत्तम नींद आने लगती है। इसके अतिरिक्त इससे काम शक्ति बहुत बढ़ जाती है। नपुंसकों को इसका सेवन कामदेव का वरदान सिद्ध होता है। सेवन करके स्वयं ही निर्णय करलें।

होमियोपैथी

परिचय—अति निद्रा कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है यह एक लक्षण मात्र है। इसी प्रकार अनिद्रा भी एक लक्षण भर है अतः हम दोनों की चिकित्सा एक साथ ही लिख रहे हैं।

चिकित्सा—

बेलाडोना ३०, २००—मस्तिष्क में रक्त की अधिकता के कारण अनिद्रा में लाभप्रद है। सिर में दर्द, कनपटी की नसें फड़कती हैं, चेहरा और आंखें लाल रहती हैं, तेज ज्वर, मामूली आवाज से चौंक जाता है, पेशियों में आक्षेप के झटके आते हैं, आंखें बन्द करते ही भयङ्कर मूर्तियां दिखाई देती हैं और रोगी चौंक जाता है। इस प्रकार का लक्षण प्रायः ज्वर की अवस्था में देखे जाते हैं। दांत निकलते समय बच्चों में भी इस प्रकार के लक्षण देखे जाते हैं।

एकोनाइट नेप ३०, २००—नई बीमारी में जहां अस्थिरिता, मृत्युभय, बेचैनी के कारण अनिद्रा होने पर इसका प्रयोग होता है।

पृष्ठ ३४६ का शेषांश

होने वाले फोड़े जिनमें पूय रहता है इनकी नई अवस्था में निम्न शक्ति का प्रयोग करना चाहिए और पुरानी अवस्था में उच्च शक्ति लाभ प्रद है। रोगी को रात में पसीना होता है मुंह से लार गिरती है। यह चर्म रोग कुल्ले पर, अंगुलियों में। होते हैं रोगी के लक्षण सादृश्य होने पर एक्जिमा में भी लाभप्रद है।

नेट्रमस्यूर ३०,२००—नेट्रमस्यूर का रोगी दुबला पतला होता है। गर्मी सहन नहीं कर सकता है। नमक खाने की विशेष इच्छा रहती है। हजामत कराने के समय से क्षौर कंडु चर्म रोग में लाभ प्रद है जिस चर्म रोग में त्वचा सूखी होती है उसमें भी इसका प्रयोग होता है।

डलिकस ३०—असह्य खुजली होती है पर चर्म पर कोई भी उद्भेद नजर नहीं आते हैं।

ऐचिनेसिया ३×६×—रक्त विषाक्त होकर चर्म रोग होवे। सूखी या तर खुजली की यह बहुत अच्छी दवा है। जहां रक्त विषाक्त होवे।

मेजेरियम३०,२००—दाद जिसमें बहुत खुजली और जलन होती होवे। एक्जिमा में मोटी पीली या सफेद रंग की पपड़ी पड़ती है उसके नीचे मोटा गाढ़ा पीले रंग का मवाद रहता है। इस प्रकार के चर्म रोग बच्चों के सर पर विशेष होती है। मेजेरियम् का चर्म रोग रात में और बिछावने की गर्मी से बढ़ता है उसमें खुजली और जलन विशेष होती है।

उपरोक्त दवाइयों के अतिरिक्त और भी बहुत सी दवा चर्म रोग में व्यवहार की जाती है।

एगरिकस ६, ३०, २००—मेरुमज्जा की उत्तेजना के कारण अनिद्रा अथवा कोई भयङ्कर रोग के साथ अनिद्रा जैसे कि ज्वर विकार, कालेरा, मूत्रविकार, स्नायवि अवसाद अथवा अति मात्रा में लिखने-पढ़ने के कारण अनिद्रा में यह लाभप्रद है।

एरानिया डायेड्रेमा ६, ३०, २००—रात में सोने के बाद ही रोगी अनुभव करता है कि उसके सर्वाङ्ग में चींटी की तरह कुछ चल रहा है। अतः इस अनुभूती के कारण अनिद्रा रहती है।

आर्जेन्टम नाईट्रीकम् ३०, २००—रोगी के मन में अनेक प्रकार की चिन्ताओं का स्रोत चलता रहता है। ज्यों ही नींद आती हैं कि शरीर में एक प्रकार की झकानी (झटका) लगती है और रोगी उठकर इधर-उधर खुली हवा में घूमता है। रोगी को मीठा खाने की अधिक इच्छा रहती है। इस दवा का रोगी ठण्डा पसन्द करता है।

काफिया ३०,२००—काफिया अनिद्रा की अच्छी दवा है। अतः नये छात्र अनिद्रा का नाम सुनते ही इस दवा का प्रयोग कर देते हैं पर यह होमियो सिद्धान्त के विपरीत है। जहां अनेक प्रकार की चिन्ताओं के कारण या स्नायविक उत्तेजना के कारण अनिद्रा होवे साधारण आवाज भी बेचैन कर देती हो वहां इसका प्रयोग करना चाहिए।

नोट—अनिद्रा में इस दवा की २०० शक्ति का प्रयोग सोने के १-२ घंटा पूर्व करना चाहिए। जो लोग काफी पीते हैं उनकी अनिद्रा में इसका प्रयोग न करके कैमो मिला देना चाहिए।

डा० हैल साहब कहते हैं कि-काफिया का जिस रोग में उच्च क्रम में प्रयोग होता है वह रोग है अनिद्रा।

उदाहरण—

एक ५० वर्ष के व्यक्ति को कोई संतान नहीं थी वह अपनी और स्त्री की चिकित्सा कराया और उसकी स्त्री के बच्चा पैदा हुआ, उसकी खबर सुनने से उसे रात में नींद नहीं आती थी उसकी पूरी रात अनेक प्रकार के विचारों में ही गुजरती थी १५ दिन बाद वह मेरे पास आया और सभी लक्षण बताये। वह कहता था कि हाथ घड़ी की आवाज भी रात में उसे सुनाई देती है और निद्रा में बाधा डालती है उसे काफिया १००० शक्ति दिया गया उसके बाद उसे शान्त निद्रा आने लगी।

ओपियम् ३०,२००—ओपियम में दोनों ही प्रकार के लक्षण देखे जाते हैं।

अतिनिद्रा और अनिद्रा-—अति निद्रा में रोगी घोर निद्रा में रहता है नाक से आवाज आती है और आंखें आधी खुली रहती हैं। अनिद्रा में रोगी को नींद आती ही नहीं है मामूली आवाज होते ही नींद टूट जाती है।

बोरेक्स ६,३०,२००—बच्चा रात को नींद में अचानक चिल्लाकर जागता है और मां को पकड़ लेता है जैसे वह डर गया होवे।

सम्बल ६,३०—दिन में निद्रालुता पर रात में नींद नहीं आती है।

पेसिफ्लोराइकारनेटा—यह अनिद्रा की अच्छी दवा है। जब किसी भी दवा से नींद न आवे तो इसके मदर टिंचर का प्रयोग करना चाहिए। मात्रा १० से २० बूंद पानी में २ घंटा अन्तर से२-३ बार प्रयोग करें।

कैड़मियम् ६,१२,३०—अनिद्रा, नींद आते ही श्वास बन्द होवे जैसा अनुभव होता हैअतः नींद टूट जाती है और हांफने लगता है फिर इसी भय के कारण दुबारा नहीं सोता है। नींद के बाद शान्ती न होकर ग्लानी होती है।

कोनायम ३०,२००—नींद आते ही सूखी खांसी आने लगती है। इस की एक विशेषता यह है कि नींद आते ही पूरे शरीर में पसीना आता है पर नींद खुलते ही पसीना नहीं रहता है।

काकूलस ३०,२००—इस दवा में भी अनिद्रा का लक्षण है पर अनेक दिनों की अनिद्रा के कारण होने वाले कुफल को भी यह दूर करता है।

कैमोमिला ६,१२,३००दांत निकलने के समय बच्चों की अनिद्रा बच्चा बहुत चिड़चिड़ा और क्रोधी होता है। क्रोध के कुप्रभाव के कारण अनिद्रा।

नक्स वोमिका ३०,२००—अधिक शराब या अति मसाला खाने के कारण, या मानसिक परिश्रम करने वाले को अथवा अजीर्ण या पेट की खराबी के कारण रात में दो तीन बजे के बाद नींद न आने में लाभप्रद है।

लाईकोपोडियम ३०,२००—भोजन के बाद पेट में गैस होना सुस्ती और नींद आती है पर सोकर उठने के बाद कमजोरी का अनुभव होता है।

ऐवेना सेटाईवा—मानसिक परिश्रम करने के कारण या स्नायविक दुर्बलता वालों की अनिद्रा में यह लाभप्रद है। मात्रा १५ से ३० बूंद तक सुषुम जल में मिलाकर पीवें। यह टानिक भी है। इससे थकान दूर होकर शान्त निद्रा आती है।

अतिनिद्रा—यह गर्म देश का रोग है। इस भयानक रोग ने अफ्रीका के अनेकों स्थानों को जनशून्य कर दिया है। इस देश मे भी कभी-कभी गहरी नींद वाले रोगी देखे जाते हैं। यहां रक्सौल में ही मेरे परम मित्र श्री मानवेन्द्र कुमार गुप्ता के बड़े भाई स्व० मदन मोहन गुप्त जो कि काठमांडू में उच्चकोटि के पत्रकार थे, वह इस रोग के शिकार थे। रास्ते में चलते, बात करते, मीटिङ्ग में भाषण सुनते सोते थे, उनकी चिकित्सा संसार के अच्छे-अच्छे डाक्टरों से कराई गई पर लाभ नहीं हुआ, अन्त में अचानक ही उनका देहान्त हो गया।

अनेक रोगों के साथ भी अतिनिद्रा के लक्षण देखे जाते है पर यह एक रोग का लक्षण मात्र है अन्य लक्षणों के अनुसार ही इसकी भी चिकित्सा की जाती है। अफ्रीका के जंगलों में ग्लोसिना नामक एक प्रकार की मक्खी होती है उसके काटने पर अतिनिद्रा, ज्वर आदि होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—

इस रोग का पता लगते ही आर्सेनिक ३X या, एण्टीमटार्ट ३X देना चाहिए। लाभ न होने पर क्लोरल हाइड्रेट २X तीन चार घण्टे के अन्तर से देना चाहिये या लक्षण के अनुसार ओपियम नक्स मस्केटा, एपिस, आर्स, हेलिबोरस, लैकेसिस, नैजा, केलीब्रोम, मस्कस, सल्फर आदि का प्रयोग करना चाहिए।

अन्य रोगों के साथ—किसी दूसरे रोग जैसे ज्वर, ब्लड यूरिया, स्नायविक, दुर्बलता, नशा आदि के कारण होने पर रोग का कारण ह्रास, वृद्धि, रोगी के सर्वाङ्गिक एवं मानसिक लक्षण रोगी की प्रकृति आदि के अनुसार दवा का निर्वाचन करके दवा का प्रयोग करना चाहिए। स्वतन्त्र अतिनिद्रा के रोगी बहुत ही कम पाये जाते हैं। कहीं कहीं टाईफाइड या अन्य रोगों के साथ में यह लक्षण देखा जाता है।

आलस्य की अधिकता-निदान एवं चिकित्सा

आलस्य का परिचय—

'सुखस्पर्श प्रसङ्गित्वं दुःखद्वेषण लोलता
शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मस्वालस्य मुच्यते।'

अर्थात्—सुख कारक स्पर्श की इच्छा करना, दुःख से घबराहट होती है, अतः दुःख के कारणों से बचने की अभिलाषा का होना, कर्म करने की शक्ति अथवा सामर्थ्य होने पर भी किसी प्रकार के कार्य न करने की हिम्मत न करना, आलस्य कहा जाता है यह आलस्य कफ, रक्त और वात के प्रभाव के कारण होता है। प्रायः यह रोग उन्हीं को होता है कि जो लोग अपना जीवन नियमित और संयमित रूप से नहीं बिताते। भोजन, निद्रा आदि का समय जिनका अनिश्चित और अमर्यादित होता है। व्यायाम, भार ढोना, मार्ग चलना, निरन्तर अध्ययन भाषण आदि कार्यो के करते रहने के बाद भी शरीर और मन थक जाते हैं और जब तक स्फूर्ति वापिस नहीं आजाती तब तक आलस्य ही घेरे रहता है। दुर्बल व्यक्ति जब शक्ति से अधिक कार्य कर जाता है तब उसको भी आलस्य दबोच लेता है। जो लोग बेफिक्र होते हैं और जिनके पास कोई काम भी करने के लिये नहीं होता ऐसे लोगों को भी यह आलस्य आ दबा बैठता है। जो लोग आवश्यकता से अधिक या कम निद्रा का सेवन करते हैं उन्हें भी आलस्य आकर घेर लेता है। जो लोग किसी प्रकार का नशा किया करते हैं, उन्हें भी नशा उतरने के बाद अथवा नशीला पदार्थ सेवन करने के समय तक न मिलने पर आलस्य दबा लेता है। इस प्रकार से आलस्य के होने के कारणों का माना गया है।

आलस्य की चिकित्सा—वमन, विरेचन, संशोधन, उपवास और हलका व्यायाम, भ्रमण करना प्रातःकाल उठना, रात्रि को समय पर शयन करना, भोजन मात्रा से

कुछ कम ही करना, तेल मालिश तथा मनोवल को सशक्त बनाने से आलस्य भाग जाता है। स्वावलम्बन पर ध्यान देकर स्वयं ही सब कार्य करने से आलस्य नष्ट होता है। दिन में सोना रात को जागना, कफ कारक और अधिक

गुरु पदार्थों का सेवन कम से कम किया जाये। ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर मल-मूत्रादि से निवृत होकर दातुन करके, सामान्य तेल मालिश करके शीतल जल से स्नान करें और उसके बाद पद्मासन बैठकर सरल प्राणायाम करें तथा हलका व्यायाम अथवा कोई आसन करलें ऐसा करते रहने से सारे दिन चुस्ती बनी रहती है, मन और बुद्धि-न्द्रियां तथा सभी कर्मेन्द्रियां भी स्वस्थ रहती हैं अतः मानव को आलस्ल नहीं दवा सकता। यह अनुभव कर के देखने वाली विधि है। और सर्वथा सही है।

आलस्यहर योग—वैक्रांत भस्म, शृङ्ग भस्म, शङ्ख भस्म, प्रवाल पिष्ठी, ताम्र भस्म, मल्ल सिंदूर, रजतसिंदूर, अभ्रक सत्व भस्म, स्वर्ण भस्म, त्रिकुट, त्रिफला, त्रिमद, पंच तिक्तक, अष्ट वर्ग की कोई सी दो चीजें,केशर, अम्बर,

आलस्य की अधिकता

जायफल, जावित्री, धतूरे के बीज, चोपचीनी चूर्ण, दोनों जीरे, शमी वृक्ष की कोपलें, कीकर की ताजी फलियां, बाजरा, ज्वार और मकई का आटा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र कर के सूखा ही मर्दन करें, फिर एक तोला कुचला के चार तोला क्वाथ की पहली भावना देवें। फिर बन्द गोभी के पत्तों के समभाग स्वरस की दूसरी भावना देवें। तीसरी भावना लाल मकोय के समान रस की देवें। फिर १ रत्ती की गोलियां बनालें। प्रातःसायं १-१ गोली पानी से खावें। आलस्य नहीं होगा और होशियारी आजायेगी।

आंखों के आगे अंधेरा-निदान एवं चिकित्सा

आंखों के आगे अंधेरा आना अनेक कारणों से होता है। यदि कोई नेत्र रोग हो रहा हो या हो गया हो तो भी आंखों के आगे अंधेरा आने लगता है। एक दम तेजस्वी पदार्थों, प्रकाशमान पिण्डों, तीव्र प्रकाश, अधिक उष्णता, अधिक शीत, अधिक प्यास, अधिक भूख, अधिक व्यायाम, अधिक मैथुन, अधिक तीव्र नशीला पदार्थ, अधिक गरम मसाले वाले भोजन, अधिक चर्बी वाले पदार्थ, अधिक बोलना या भाषण करना, उष्णता से तप्त एक दम पानी में घुस पड़े, दूर वर्ती वस्तु को आंखों पर जोर देकर देखना निद्रा भङ्ग होवे या असमय नींद लेने, बहुत रोना, क्रोध, शोक आदि, कोई सिर पर आघात, मल-मूत्र आदि के वेगों को रोकना, स्वेद अधिक लेने या स्वेद की अनुचित या

प्रतिकूल प्रतिक्रिया, धूम्रपान, वमन के वेगों को रोकने अथवा वमन के अति योग से, आंसुओं को रोकने, सूक्ष्म वस्तुओं को देखना, सिर या नेत्रों से विषम चेष्टायें करना, आदि कारणों से रोगी को अथवा किसी भी व्यक्ति को आंखों के आगे अंधेरा छा जाने का अनुभव हुआ करता है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और मस्तिष्क सम्बन्धी विविध कष्टों के कारण भी आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है। विष आदि के प्रभाव से अथवा किसी भी आगन्तुज कारण से भी यह रोग हो जाया करता है। अधिक समयतक प्रकाश में रहकर अथवा अधिक समय तक अंधकार में रह कर प्रकाश या अन्धकार में जाने से भी अचानक आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है।

चिकित्सा—सर्व प्रथम रोग के कारणों का त्याग किया जाना हितकर रहता है। तदनन्तर पथ्यपूर्ण आहार-विहार का उपयोग होना चाहिए नेत्रों को साफ करने के लिए प्रक्षालन, परिषेक, अञ्जन, आदि का भी उपयोग किया जाए। आवश्यकतानुसार संशोधन आदि भी किये जायें यदि नेत्रों के आगे अंधेरा किसी रोग के कारण है तो उस रोग को दूर करने की चिकित्सा की जानी चाहिए। दुर्बलता आदि के कारणों से है तो यहां दुर्बलता नाशक चिकित्सा की जानी चाहिए। अहित क्रियाओं को रोक दिया जाए। सुश्रुत-संहिता आदि ग्रन्थों में तिमिररोग नाशक प्रयोगों का सेवन किया जाना चाहिए। दूध, घी, ताजे फल, हरी सब्जियां, सात्विक भोजन, पूर्ण विश्राम, नियमित निद्रा आदि का सेवन किया जाये।

अनुभूत योग—ज्योति वर्धक—सुवर्ण भस्म १ माशे, माणिक्य भस्म २ माशे, मुक्ता पिष्ठी १ माशा, प्रवालपिष्ठी ५ माशे, अभ्रक सत्व भस्म ७ माशा, शृंग भस्म (अन्त-घूंम विधि से बनी) ४॥ माशा, लौह भस्म शतपुटी २॥ माशा, सत्व शिलाजीत २ तोला, सौंफ का सत्व ३ तोला, त्रिफला घन सत्व ४ तोला, शंख पुष्पी घन सत्व ७ तोला, विदारीकन्द घन सत्व ६॥ तोला, बादाम का गौ दुग्ध में पिसा कल्क ८॥ तोला, मुनक्का का कल्क नासपाती के स्वरस में घुटा हुआ १० तोला, पिण्ड खजूर का शर्बत अनार में घुटा हुआ कल्क ६ तोला, दोनों मूसली, शतावर वहमन सफेद व सुर्ख, चारों मगज, केशर ये सब १-१ तोले सबको खरल में डालकर खूब घुटाई करें जब गोली बनाने योग्य हो जाये तो ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर धूप में सुखालें।

प्रातः सायं १-१ गोली दूध से खावें। सम्पूर्ण नेत्र रोगों की रामबाण दवा है ऐनक उतर जाती है। दिव्य ज्योति भी इसका नाम है। सभी दुर्बलतायें नष्ट होती है दिल और दिमाग बलवान हो जाते हैं। चेहरे का रंग लाल और चमकीला होता है।

श्रम निदान एवं चिकित्सा

श्रम का परिचय—श्रम शब्द का अर्थ है थकावट। यह थकावट प्रतिदिन मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होती और नष्ट होती रहती है। इसका कारण है मनुष्य के शरीर के उन संस्थानों का थक जाना जो कि ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के द्वारा ज्ञान और कर्म संबंधी आचरण करते रहते हैं। मनुष्य प्रतिदिन के अपने क्रिया-कलापों से थक जाता है। चाहे वह थकान शारीरिक हो या फिर बौद्धिक। दोनों ही थकानों का परस्पर संबन्ध है। दोनों ही थकानें एक दूसरे को प्रभावित भी करती हैं। दोनों ही थकानें एक दूसरे के क्षेत्र में भी दखल देती हैं। अधिक परिश्रम करने पर अथवा अधिक समय तक परिश्रम करते रहने पर अथवा अधिक तीव्र गति से परिश्रम करते रहने पर थकावट का आना अनिवार्य है। रोगों के प्रभाव से भी थकावट आती है। दोषों के प्रभाव से भी थकावट आती है। एक प्रकार से शरीर में थकावट आना आवश्यक है अन्यथा मानव विश्राम ही न करे। शरीर को पुनः क्रियाशील एवं सशक्त बनाए रखने के लिये ही थकावट आती है। कभी-कभी यह थकावट भावों और विचारों के दबाव के कारण भी होती है। मानसिक जगत में अधिक व्यस्तता भी थकावट लाती है अतः यह थकावट बौद्धिक या मानसिक कहलाती है। इन्द्रियों पर जब अधिक भार पड़ता है तो भी थकावट आती है। अतः थकावट आने के तो अनेक कारण हैं। जिन्हें हम प्रतिदिन करते ही रहते हैं।

श्रम की चिकित्सा—श्रम अर्थात् थकावट को दूर

करने लिये आराम सबसे बड़ी चीज है। आरामदेह बिस्तरे पर सो जाना सर्वोत्तम दवा और इलाज है। दिमाग और दिल को साफ करके शरीर को भी सरल करके पड़ जाने से अवश्य थकावट मिटती है। भगवान ने रात्रि इसीलिये बनाई है। ताकि प्राणी वर्ग अंधकार के कारण कार्यों से विरत होकर विश्राम करेगा और इस प्रकार से प्रतिदिन क्षीण होने वाली शारीरिक शक्ति पुनः प्राप्त कर सकेगा। श्रम को मिटाने के लिये इच्छित पानी से स्नान, तेल मालिश, उबटन, चांपी कराना, सिर दबवाना, नवयौवना के कोमल हाथों से शरीर स्पर्श का सुख अनुभव करना, उचित मद्यपान करना, पौष्टिक भोजन, हरी सब्जियां, ताजा फल, मनचाहे पेय पदार्थ, आंखों और कानों को सुखद फिल्में, दृश्य, संगीत श्रवण करना तथा स्वच्छ मस्तिष्क एवं हृदय से उन्मुक्त हास्य या खिलखिलाकर हंसना, शीतल वायु में घूमना, बैठना,

श्रम-थकावट

लेटना आदि सभी श्रम को दूर करने वाला और नवीन चेतना, स्फूर्ति, शक्ति, तर व ताजगी को देने वाले हैं। गरम दूध का पीना, मांस रस का सेवन भी थकावट को दूर करता है। चिन्ताओं का त्याग और अलमस्ती का राग सब प्रकार की थकावटों का बढ़िया इलाज है। द्राक्षासव, मकरध्वज वटी, च्यवनप्राश, चन्द्रप्रभावटी आदि उत्तम बने हुये सेवन करने से निश्चय ही श्रम नष्ट हो कर शरीर ताजा बनता है। ये सभी दवायें धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ अलीगढ़ ने उत्तम रूप से तैयार की हैं। वासमती चावल, परवल की सब्जी, गाय का घी, कूप का पानी, रुई का तकिया, आम का शरवत, लीची, थकावट को बहुत ही शीघ्र दूर करते हैं। भांग शुद्ध २ रत्ती, मकरध्वजवटी १ और सेव ताजा १ खाते ही थकावट भाग जाती है और शरीर में स्फूर्ति आ जाती है। यह हमने अनेक थके मांदे लोगों पर परीक्षित किया है।

होमियोपैथी

परिचय—थकावट दो प्रकार की होती है। (१) शारीरिक (२) मानसिक। इन दोनों थकावटों का कारण एक ही है, अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करना। इसके लिये योगासनों में शवासन सर्वोत्तम उपाय है। नीचे खास खास दवाइयों के बारे में लिख रहे हैं।

आर्निका मोन्ट ३०, २००—अधिक शारीरिक परिश्रम के कारण से पूरे शरीर में कुचलने की तरह दर्द होता है। आर्निका इसके लिये सर्वोत्तम दवा है।

डा० कैन्ट साहब ने लिखा है कि कोई किसान दिन भर अपने खेत में परिश्रम करने के कारण थक जाता है। यदि वह रात में १ खुराक आर्निका खाकर सो जाता है तो प्रातःकाल वह स्वस्थ और पुनः काम करने की शक्ति को लेकर उठता है।

रसटक्स ३०, २००—पानी में काम करने के कारण या शील वाली जगह में रहने के कारण थकान, शरीर में दर्द अनुभव होने पर रसटक्स का प्रयोग करना चाहिए।

कालीफास ६×, १२×—अधिक मानसिक परिश्रम करने के कारण थकान होने पर, सिर में भारीपन रहने पर प्रयोग करना चाहिए।

जेल्सीयम् ३०, २००—स्नायविक दुर्बलता के कारण साधारण मानसिक या शारीरिक परिश्रम करने पर, थकान होने पर।

एवेना सेटाईवा Q—शारीरिक या मानसिक परिश्रम के कारण थकावट होने पर इसका प्रयोग होता है। मानसिक परिश्रम करने वाले अध्यापक, वकील आदि यदि शाम को सोते समय सुखुम पानी में इसके मदर-टिंचर १५ बूंद का प्रयोग करें तो दिन भर की थकान दूर होकर शान्त निद्रा आती है।

चिड़चिड़ाहट—निदान एवं चिकित्सा

चिडचिड़ाहट—यह मानव स्वाभाव का एक स्वरूप है। मानव के स्वस्थ रहते हुए भी होता है और बीमारी से उठने के बाद भी हो सकता है। बीमारी के दौरान भी चिड़चिड़ापन आजाता है। मन को ठेस लगने पर भी यह रोग होता है। विचारों में कुछ उलझन आजाने पर भी चिडचिड़ापन आजाता है। कामनायें पूर्ण न होने से, भावनायें दबी रहने से, पूर्ण इच्छानुसार कोई काम न करने से, या आदर सम्मान न मिलने से, या किसी दबाव से,या शारीरिक और बौद्धिक दुर्बलता के कारण या कब्ज रहने से या अजीर्ण होजाने से या नींद न आने से, विश्राम न मिलने से, रात्रि के जागरण से,इच्छा विरुद्ध कार्य करने से, शुद्ध आहार न मिलने से,शुद्ध वायु और जल न मिलने से, संकीर्ण वातावरण में रहने से, गन्दी और तंग गलियों में रहने से, बहुत समय तक जेल में रहने से, चिन्ताप्रद विषयों से, दिमाग को ठेस देने वाली हानि से, निरन्तर मानसिक दुःखों के बने रहने से, असाध्य या साध्य शारीरिक कष्टों के बने रहने से, धूंआं, धूल, धूप, ओस का अति सेवन करने से, सिगरेट, शराब, भांग, चरस, गांजा, अहिफेन, संखिया आदि नशीले और जहरीले पदार्थों के योग एवं विपरीत प्रभाव से, निरन्तर अशान्त वातावरण में रहने से, मिजाज में चिड़चिड़ापन उत्पन्न हो जाता है और भी अनेक कारण हैं। जिनसे यह रोग होजाता है जैसे, सिर पर कोई आघात लग जाने से भी होता है। निरंतर विबन्ध बने रहने से अर्थात टट्टी साफ न होने से भी यह चिड़चिड़ापन होजाता है।

चिड़चिड़ापन

चिड़चिड़ापन की चिकित्सा—सर्व प्रथम इस रोग के कारणों को दूर किया जाना चाहिए। सात्विक, मनोरंजक, बुद्धिवर्धक प्रसन्नतावर्धक औषधि आहार और विहार का उपयोग होना चाहिए।

औषधि योग—ब्राह्मीवटी, सिद्ध मकरध्वज, ब्राह्मी चूर्ण, ब्राह्मीघृत, वचादिघृत, स्वर्ण भस्म, वैक्रांत भस्म, माणिक्य रस, मुक्तापिष्टी, मुक्ता शुक्तिपिष्टी, प्रवालपिष्टी, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, घृत, दूध, मधुर फल, गिलोयसत्व, मकरध्वजवटी, शंखपुष्पी चूर्ण, आमला का कोई प्रयोग, च्यवनप्राश, द्राक्षासव, त्रिवंग भस्म, बादाम, चारों मगज, मन की अनुकूलता, वातावरण की अनुकूलता, स्वतन्त्रता और चिन्ताओं का अभाव, खीर और मालपूड़े, प्राणायाम, योग अभ्यास, सर्वाङ्गासन, जीवनीय गण की औषधियां, सारस्वतारिष्ट, अर्जुनारिष्ट, चन्दनासव, पत्रांगासव, पंचतिक्तघृत, लोहासव, त्रिफलाघृत, उत्तम विधि का बना हुआ ताम्बूल, अंगूर, सेब, नासपाती, केला, मौसम्मी, ईख का रस, मक्खन, मलाई, आज्ञाकारिता, चाटुकारिता, कोमलांगी षोडशी के हास परिहास, आकस्मिक लाभ आदि का यथायोग्य सेवन करने से चिड़चिड़ापन नष्ट हो जाता है। किन्तु जो चिड़चिड़ापन नैसर्गिक होगा, वह किसी भी प्रकार से नहीं जाएगा।

अनुभूत योग-स्वर्ण भस्म १ माशा, वैक्रान्त भस्म ३ माशा, मुक्ता पिष्टी १ माशा, शतपुटी अभ्रक सत्व भस्म ६ माशा, कूठ मीठा, वचा, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, हरी दूब, मुलैठी, क्षीर विदारी, सोंठ इनका चूर्ण १-१ तोला, मधु-

पांच तोला, घृत १० तोला, सितोपलादि चटनी २० तोला और दूध गाय का ४ सेर। सबको मिलाकर मंद आग पर पकावें। गाढ़ा होने पर छोटी इलाइची और केशर ६-६ माशा मिला दें। रात को सोते समय इसकी एक माशा की खुराक है। गरम दूध के साथ। सर्वश्रेष्ठ औषधि है।

होमियोपैथी

परिचय—

चिड़चिड़ापन एक मानसिक लक्षण है। यह लक्षण अनेकों दवाइयों का तो प्रधान लक्षण ही माना जाता है। होमियोपैथिक रिपेर्टरी देखने पर चिड़चिड़ापन के लक्षण हमें निम्नलिखित दवाइयों में मिलते हैं किन्तु सिर्फ इस एक ही लक्षण पर हम दवा का प्रयोग नहीं कर सकते हैं हमें रोगी के मानसिक और शारीरिक सभी लक्षणों का संग्रह करना होगा। उक्त लक्षण समष्टी में चिड़चिड़ापन भी एक मानसिक लक्षण रहेगा। जिन दवाईयों में यह लक्षण है वह निम्न प्रकार से हैं—

एकोनाइट, एलुमि, एन्टीमक्रूड, एपिस, आरममेट, बेलाडोना, सीनावोविण्टा, ब्रायोनिया, कल्केरियाकार्व, कार्वोसल्फ, कार्वेभिष, काष्टीकम, कैमोमिला, ग्रेफाईटिस, हिपरस, कैलीकार्व, कैली आयोड, कैलीसल्फ, लिलियम्, लाइको, नेट्रमकार्व, नेट्रमम्यूर, नाईट्रीक एसिड, नक्सवोमिका, पेट्रोलियम्, फासफोरस, ऐसिड़फास, प्लैटीनम्, आदि अनेकों हैं।

दिन रात चिड़चिड़पन रहे—इग्नेसिया, इपिकाक, लैककैनि, सोरीनम्, स्ट्रैमोनियम।

केवल दिन में चिड़चिड़ापन रहे—लाईकोपोडियम,

केवल रात में चिड़चिड़ापन रहे—एन्टीम टार्ट, जलापा, नक्सवोमिका, रियूम।

चिड़चिड़ापन बच्चा यह सहन न करे कि कोई उसे देखे, छूये या उससे बोले—एन्टीमक्रुड, एन्टीम टार्ट, कैमोमिला, सीना, जेल्स, नक्सवो, सेनीक्यूला, साईलीसि, थूजा।

चिड़चिड़ापन बच्चा तरह-तरह की चीजें मांगें और देने पर अविनयपूर्वक लेने से इन्कार कर देता है—एन्टीम टार्ट, ब्रायो, कैमोमिला, सीना, इपिकाक, क्रियोजोट, रिह्यू सोफिसे।

नीचे हम खास खास दवाइयों के लक्षणों को लिख रहे हैं जिनमें चिड़चिड़ापन मानसिक लक्षणों में सर्व प्रधान रूप से पाया जाता है। अनेकों दवाइयों में तो यह लक्षण उस दवा के निर्वाचन की एक मात्र कुन्जी ही मानी जाती है।

कैमोमिला ३०,२००

कैमोमिला नामक दवा बच्चों के रोगों में व्यवहार होने वाली दवाईयों में एक प्रधान दवा है। इन दवाओं ने कितने घरों में बच्चों के द्वारा फैलाने वाली अशान्ति को दूर करके शान्ती का वातावरण तैयार कर दिया है। कैमोमिला उत्तेजनाशील स्त्रियों और बच्चों के लिए उपयोगी दवा है। यह इतनी जल्दी स्नायवीय उत्तेजना को शांत कर देता है कि इसे होमियोपैथिक की क्लेशनाशक और नींद लाने वाली दवा कहते हैं। यह बच्चों के दांत निकलने के समय की सभी बीमारियों में मानसिक लक्षण मिलने पर प्रयोग होती है। इसका रोगी जरा से दर्द से ही बेचैन हो जाता है।

बच्चा बहुत ही चिड़चिड़ा और क्रोधी होता है। इतना रोता है कि उसे किसी तरह शान्त नहीं किया जाता है। सिर्फ गोद में लेकर घूमने पर कुछ शान्त रहता है। वह अनेक प्रकार की चीजें मांगता है वह चीज उसे देने पर क्रोध करके फेंक देता है फिर दूसरी मांगता है इसी तरह से वह माता को तंग करता है माता नहीं जानती है कि उसका बच्चा क्या चाहता है वह परेशान हो जाती है पर निपुण होमियोपैथ अच्छी तरह से जानता है कि वह बच्चा सिर्फ दो खुराक कैमोमिला चाहता है। यह खुराकें देते ही बच्चा शांत निद्रा देवी की गोद में हिलोरें लेता है और उठने पर अपने को स्वस्थ अनुभव करता है और अपनी माता से प्रेम करने लगता है जिसे वह कुछ देर पूर्व (दवा खाने के पहिले) मारता था, दांतों से काटता था। आपको आश्चर्य होगा कि अब वह अपनी गुड़िया से प्रेम से खेल रहा है। जिसे फेंकता था।

आप प्रश्न करेंगे कि—ऐसा क्यों होता है।

उत्तर में निवेदन है कि—यह सब स्नायविक उत्तेजना के कारण से होता है वह काफी उत्तेजित रहता है छोटी सी आवाज या बात भी उसे वर्दास्त नहीं होती है। कैमोमिला *स्नायू मंडल की अनावश्यक उत्तेजना* को शांत कर देगा। यह मानसिक लक्षण इस दवा की कुन्जी है।

सीना ६, ३०, २००—सीना नामक दवा में भी चिड़चिड़ापन का लक्षण है पर कैमोमिला और सीना के

लक्षणों में बहुत फर्क है कैमोमिला के बच्चों को आप तंग आकर थप्पड़ मार देंगे पर सीना के बच्चों को छाती से लगाकर हिलाते रहेंगे। सीना के रोगियों में कृमी दोष प्रायः रहता है।

सीना का बच्चा बड़ा चिड़चिड़ा स्वभाव का होता है। उसका चेहरा पीला और रुग्ण होता है आंखों के चारों ओर काला घेरा होता है। बच्चा हर समय गोद में घूमना चाहता है किन्तु घमाने पर भी उसे आराम नहीं मिलता है (कैमोमिला के विपरीत) किसी का छूना वह पसन्द नहीं करता है वह नहीं चाहता है कि कोई उसकी तरफ देखे, छूये या उससे प्यार करे। जिद्दीपन का भाव इस दवा में भी देखा जावेगा।

नोट—अन्य लक्षणों के द्वारा प्रभेद निर्णय करना चाहिए।

ब्रायोनियां ३०, २००—ब्रायोनियां का रोगी भी काफी चिड़चिड़े मिजाज का होता है। मामूली वात पर क्रोध में आजाता है। आप पूछेंगे कि ब्रायोनियां के रोगी को क्रोध या चिड़चिड़ापन क्यों होता है।

इसके उत्तर में निवेदन है कि—गति से ब्रायोनियां के सभी उपसर्गों में वृद्धी होती है अतः वह नहीं चाहता है कि वह शारीरिक एवं मानसिक गति करे, कोई उससे बोले या बात करे। वह शान्त और चुपचाप रहना चाहता है।

उदाहरण—सन् १६५० की वात है,मैं एक रोगी को देखने गया उसको ज्वर, दाहिने छाती में दर्द जो कि श्वास लेने पर बढ़ता था, प्यास, जीभ पर सफेद लेप यह लक्षण रोगी के भाई ने मुझे बता दिए थे। मैं रोगी को देखने गया रोगी दाहिने करवट चुपचाप आंखें बन्द करके सो रहा था। मैंने जाकर रोगी से पूछा, कैसे हो उसने मेरी तरफ क्रोध भरी दृष्टि से देख कर आंखें वन्द करलीं। मैंने ब्रायोनिया ३० लिख दिया। मेरा एक छात्र भी मेरे साथ था उसने पूछा, आपने न तो रोगी को देखा ऐसे ही ब्रायोनिया लिख दिया मैंने समझाया देखो प्रायः सभी लक्षण तो मिल ही गये थे। ब्रायोनिया का प्रधान लक्षण दवाने से आराम, यह रोगी को दाहिने तरफ दर्द था और वह दाहिने करवट सोया था। मानसिक लक्षण उसकी नजर से ही ज्ञात होगया। अतः बताओ ब्रायोनिया के लिए और क्या जानना था।

बुद्धि की निर्बलता निदान एवं चिकित्सा

बुद्धि की निर्बलता का परिचय—बुद्धि की निर्बलता के दो प्रमुख कारण होते हैं। पहला प्राकृतिक और दूसरा कृत्रिम प्राकृतिक कारण तो जन्मजात माना गया है। इसमें कर्म की वात भी मानी जाती है । मस्तिष्क की रचना में कोई भी त्रुटि रह जाने से यह रोग हो सकता है। बुढ़ापे की आयु में भी बुद्धि की निर्बलता होती है। शरीर के किसी भी रोग के प्रभाव से बुद्धि की निर्बलता होती है। बुद्धिवर्धक, मस्तिष्क को वल देने वाले हृदय के लिये वल्य, स्मृतिकारक आहार और विहार ठीक न होने से भी यह रोग होता है। पौष्टिक तत्वों की कमी से भी संभव है। मूर्च्छा, भ्रम, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, प्रमेह, मधुमेह, रक्तार्श, क्षय, राजयक्ष्मा, भार ढोना, श्वांस, मदाजन्य आदि रोगों के कारण भी बुद्धि की निर्बलता हो जाती है। सूर्योदय तक सोने वाले और अमर्यादित विषयभोग, धूम्रपान अन्य नशीले पदार्थों का सेवन करने से भी बुद्धि की निर्बलता होती है । निरन्तर बौद्धिक व्यवसाय करने से भी यह निर्बलता आती है । चिन्ता, व्यवाय, भ्रम, लंघन, शीत, शोक, कटु, अम्ल, लवण, उष्ण, विदाही, तीक्ष्ण, क्रोध,आतप, अग्नि, अधिक परिश्रम, सूखी सब्जियां सिर पर आघात आदि कारणों से भी बुद्धि की निर्बलता होती है। स्वप्नदोष, हस्तमैथुन, पशुमैथुन, कन्या से मैथुन, रजस्वला से मैथुन, गुरुपत्नी से मैथुन, अन्य अन्य-अगम्या नारी से मैथुन करने से भी बुद्धि की निर्बलता हो जाती है। अपवित्र भोजन, अपवित्र स्थान पर खान-पान आदि, सड़े-गले खाद्य पदार्थ, विरुद्ध आहार करने से भी बुद्धि की निर्बलता होती है। देवता, ब्राह्मण, गुरु, माता-पिता, सन्त, प्रभुभक्त, सज्जन वृद्ध पुरुष व नारी, गाय, रोगी पुरुष, निर्बल प्राणी, इनका अपमान करने से अथवा इनको मारने से, अथवा इनको कष्ट पहुंचाने से भी बुद्धि विर्बलता होती है। ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का

अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग वेगों को रोकने से अथवा बलपूर्वक निकालने से, रजोगुण और तमोगुण का प्रभाव बढ़ जाने से, दुराचार, व्यभिचार, अनाचार, भ्रष्टाचार और अविचार के करने से भी बुद्धि की निर्बलता हो जाती है। छल, प्रपंच, कपट, धोखा करने से भी यह रोग हो जाता है। शारीरिक विषम चेष्टायें करने से भी हो जाती है। बुद्धि का दुरुपयोग करने से भी बुद्धि की निर्बलता हो जाती है।
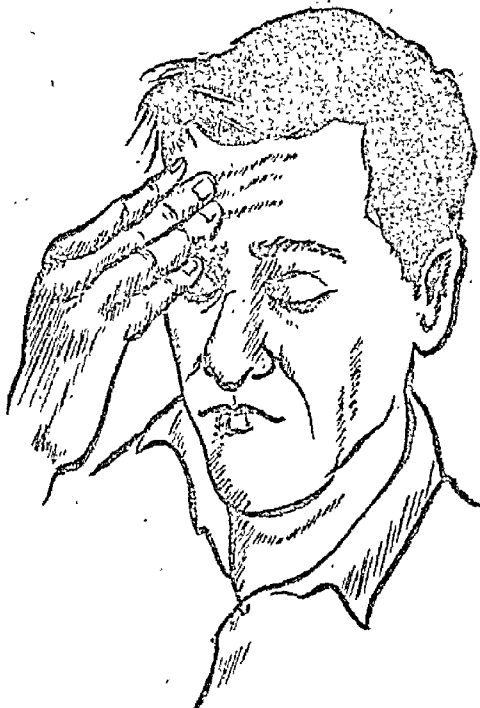
बुद्धि की निर्बलता

बुद्धि-निर्बलता की चिकित्सा—पीछे चिड़चिड़ाहट की जो चिकित्सा दी गई है, वह सम्पूर्ण रूप से बुद्धि की निर्बलता के लिये रामबाण दवायें हैं। विशेष कर घृत का सेवन करना चाहिये और शुक्रधातु की रक्षा की जाय। आस्तिक बनकर अपने-अपने इष्टदेव की उपासना करें, और गायत्री मंत्र का शत-बार प्रतिदिन जाप करें। प्रातः हरी और गीली दूब पर नंगे पैरों से भ्रमण करें। शंखपुष्पीतैल, षड्विन्दुतैल, महानारायणतैल आदि की नस्य लेवें। गाय का धारोष्ण दूध पीकर सो जायें। शीर्षासन मयूरासन, और गर्भासन करें। सिर पर, पैरों पर तैल मर्दन करें। विशेष करके सौ वर्ष पुराना घी मलें। हनुसन्धि के मध्यभाग में सिरा का वेध कराके सात दिन विश्राम करें तथा शंखपुष्पी ६ माशा, स्वर्णभस्म १ चावल, गिलोय सत्व १ माशा, वंशलोचन तीन-माशा, मुलैठी चार माशा, मुनक्का एक तोला, आधा सेर गाय के दूध के साथ प्रातः सेवन करें। भूख लगने पर बांसमती चावल घी, अरहर की दाल छौंकी हुई तथा मीठा आमफल का सेवन किया जाये।

होमियोपैथिक

परिचय—स्मरण शक्ति का अभाव, किसी चीज का भ्रम, निर्णय शक्ति का अभाव आदि बुद्धि की निर्बलता के कारण से होता है। बुद्धि की निर्बलता चिन्ता, दुःख, अतिहर्ष, अतिवीर्यक्षय, वृद्धावस्था की दुर्बलता, नशीली वस्तुओं का अति प्रयोग, प्रेम से निराश, वंशगत सोरा सिफलिटिक एवं साईकोटिक दोष आदि कारणों से बुद्धि की निर्बलता एवं बुद्धि वैकल्य रोग होता है। यह उन्माद का पूर्वरूप भी हो सकता है।

लक्षण—उपरोक्त कारणों में से किसी भी कारण वश बुद्धि पर प्रभाव होने से रोगी में स्मरण शक्ति का अभाव, निर्णय शक्ति का अभाव, सभी कार्य कलाप बुद्धू की तरह होते हैं। गंभीर विषय में हंसना एवं हास्य के के वातावरण में रोना या उदास होना आदि रहते हैं।

चिकित्सा—

एनाकार्डियम् ३०,२००—यह दवा भिलावा में तैयार होती है। मानसिक लक्षण ही इसके सर्वोपरि परिचय हैं एकाएक ही स्मरण शक्ति का लोप हो जाना इसका सर्व प्रधान लक्षण है। मामूली हाल की गई घटना भी याद नहीं रहती है। किसी बात को जल्दी नहीं समझ सकता है। स्मरण शक्ति के घट जाने से वह खुद परेशान रहता है। रोगी के विचार अजीव तरह के होते हैं, वह सोचता है कि उसके अन्दर दो प्रकार की इच्छायें हैं एक इच्छा किसी कार्य को करने के लिए प्रेरणा देती है और दूसरी इच्छा रोकती है। रोगी चलता है तो अनुभव करता है कि कोई दूसरा व्यक्ति उसका पीछा कर रहा है। सभी जगह उसे मल की बदबू आती है। स्मरण शक्ति का अभाव इसका प्रधान लक्षण है इसे याद रखिये। अभी कोई बात कहिये कुछ देर बाद उसे भूल जाता है।

नोट—यह दवा विद्यार्थियों के लिये स्मृति सुधा है, परीक्षा के १०-१५ दिन पहले से इसका रोज १ बार सेवन करने से स्मरण शक्ति बढ़ जाती है। वृद्धों एवं दुर्बल करने वाले रोग को अधिक दिनों तक भोगने के कारण जिन युवकों की स्मरण शक्ति नष्ट हो गई है उनके लिये यह विशेष लाभप्रद है।

कालीफास ६×, १२×, ३०×, २००×—स्नायविक दुर्बलता के कारण, स्मरण शक्ति की दुर्बलता, व्याकुलता, स्नायविक भय जो कि अकारण होवे, निराश, विचित्र बातें सोचे, हर बात का निराशापूर्ण नतीजा सोचे, दोस्तों से मिलना चाहे। अधिक मानसिक परिश्रम से आई दिमागी कमजोरी।

बैराईटा कार्ब ३०, २००—बैराईटा कार्ब के रोगी की बुद्धि का विनाश नहीं होता है एक २०-२२ वर्ष की युवती छोटी बच्चियों की तरह गुड़िया से खेलती है एक युवक के कार्य-कलाप बच्चों जैसे होते हैं। डा. कैन्ट साहब ने लिखा है कि बैराईटा कार्ब का रोगी शरीर से भी नाटा होता है और बुद्धि का भी नाटा रहता है। यह एक जन्म सिद्ध विश्रृङ्खलता है अर्थात् शारीरिक और बुद्धि का विकास रुक जाता है। रोगी की ग्लेन्डस् फूलती है।

लैक केनाईनम २०, २००—बहुत भूल करता है, कोई वस्तु खरीदता है किन्तु घर ले जाना ही भूल जाता है। एक विषय लिखते-लिखते दूसरा लिख देता है। शब्दों के शेषांश भूल जाता है।

ऐसिड़ फास ६, ३०, २००—अति मात्रा में वीर्यक्षय करने के कारण जैसे हस्तमैथुन अतिसहवास के कारण बुद्धि की निर्बलता में लाभप्रद है।

जेल्सीमियम् ३०, २००—स्नायविक दुर्बलता के कारण दिमाग की कमजोरी, रोगी हर समय अकेला रहना चाहता है।

नक्सवोमिका ३०, २००—चिड़चिड़ापन, झगड़ालू, क्रोधी स्वभाव जो प्रायः बैठे रहते हैं या अधिक मात्रा में मिर्च-मसाला, गर्म चीजों का प्रयोग करते हैं अथवा शराब अधिक पीते हैं उनकी बीमारी में लाभप्रद है।

कोनियम् मेकूलेटम ३०, २००—वृद्धावस्था के कारण अथवा संभोग की इच्छा का जबरदस्ती दमन करने के कारण सिर में चक्कर आना और दिमागी दुर्बलता में लाभप्रद है।

मुंह का खारीपन निदान एवं चिकित्सा

रोग का कारण—सड़ेगले, बासी भोजन करने से, मुंह, दाना, जीभ को साफ न करने से, धूम्रपान, शराब, तथा अन्य नशीले पदार्थ के सेवन से, अधिक उष्ण तीक्ष्ण, चटपटे और कषैले द्रव्यों के सेवन से, मलावरोध से, पुराने कब्ज से, खून विकार से, दाह रोग से, रक्त, पित्त और वायु के प्रकोप से, मुंह में खारीपन उत्पन्न हो जाता है। दांतों, आंतों गले, जीभ आदि के रोगों के कारण भी यह रोग होता है। इसका विशेष कारण विषयाग्नि और तीक्ष्णाग्नि के अवसर पर विदाही आहार विहार करना भी है। आयुर्वेद में इसको लवणास्यता कहा जाता है। अनेक रोगों में यह लक्षण अथवा पूर्ण रूप के तौर पर पाई जाती है। जैसे—कफ, ज्वर के लक्षणों में कहा गया है कि—स्त्रोतोरोधो रुगल्पत्वं प्रसेको लवणास्यता। अर्थात् कफ ज्वर में स्रोतों में रुकावट अल्पवेदना, मुंह से पानी बहना और मुख का स्वाद नमकीन हो जाना पाया जाता है।

चिकित्सा—

मुंह का खारीपन यदि किसी रोग के कारण है तो उस रोग की चिकित्सा करने से ही वह नष्ट हो सकता है। यदि मुख, गला, दांत आदि के मल के कारण खारीपन है तो इन्हें साफ करना चाहिये और त्रिफला के कषाय से कुल्ले करें तथा कंवल धारण करें। यदि यह खारीपन दूषित आहार अथवा अजीर्ण एवं विबन्ध के कारण है तो इनका परिहार करके कफनाशक चिकित्सा की जानी चाहिये। इसके लिये खदिर छाल का क्वाथ उपयोगी रहता है। अथवा विजयसार के क्वाथ के साथ चीनी मिलाकर पीवें अथवा लवणभास्कर चूर्ण, चित्रिकादिवटी, शंख वटी, हिग्वाष्टिक चूर्ण, अग्निकुमार रस, अविपत्तिकर चूर्ण, पुनर्नवामंडूर, को यथोचित मात्रा और अनुपान के साथ सेवन करें। नींबू, सन्तरा, अनन्नीस

इमली, चकोलरा, खट्टा नीबू, गजगल गाजर, मूली, पालक, सोया, सौंफ, आदि का यथोचित सेवन करें। यदि विशेष प्रकोप हो तो वमन, विरेचन और नस्य कर्म से भी लाभ अवश्य होता है। तथा रुचिकारक कांजी आदि का सेवन करें। गोमूत्र के कुल्ले करने से भी यह दूर होजाता है। पुनर्नवा का स्वरस, गूलर का स्वरस, वड का स्वरस और जामुन का स्वरस भी इसको नष्ट करता है ये स्वरस चाहें तो यथोचित प्रमाण पीवें या फिर मुख में भरकर कुछ समय तक केवल धारण करना चाहिये। शूल्य मांस खाने से भी लवणास्यता दूर होती है। गरम गरम पानी में नमक और फिटकरी मिलाकर सौ बार कुल्ले करें तो भी खारीपन नष्ट हो जाता है।

पयोलादि क्वाथ का प्रयोग—परवल की पत्तियां, सोंठ, त्रिफला, इन्द्रायण, त्रायमाणा, कुटकी, हल्दी, दारूहल्दी, और गिलोय इनको समान भाग लेकर क्वाथ बनालें, उस काढ़े में शहद मिलाकर पीने से अथवा मुख में धारण करने से मुख का खारीपन अति शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अथवा रसौत, लोध, बड़ी हरड़ मनःशिला सोंठ, गेरू, पाढल, हल्दी तथा गज पीपल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके यथोचित मात्रा में शहद मिलाकर मुख में धारण करें तो मुख का खारीपन अवश्य नष्ट हो जाता है। उत्तम योग है।

होमियोपैथिक

परिचय – मुंह का खारापन अनेक रोगों का एक लक्षण मात्र है। रोगी के लक्षण समष्टी में यह भी एक लक्षण है। सिर्फ इसी एक लक्षण को लेकर ही दवा का निर्वाचन नहीं हो सकता है। निम्नलिखित दवाइयों में मुंह का स्वाद नमकीन होता है।

एण्टीमक्रूड, आर्सेनिक, वेलाडोना, कैड्मियम सल्फ, कार्वोवेज, चायना, साइक्लेमन, मार्ककोर, सार्कसोल,पल्सेटिला, सीपिया, सल्फर, जिकममेट।

उपरोक्त दवाइयों में मुंह का स्वाद खारा रहता है इसका अभिप्राय यह नहीं है कि मुंह का स्वाद खारा इन दवाइयों का मुख्य लक्षण है ऐसी बात नहीं है,इनके प्रधान प्रधान लक्षण तो दूसरे ही हैं, उन लक्षणों के साथ ही यदि मुंह का स्वाद खारा वाला लक्षण भी होवे तो वही दवा प्रयोग करनी चाहिये। नीचे १ दवाई का उदाहरण देने से छात्रों की समझ में अच्छी प्रकार आवेगा।

एण्टीमक्रूड ३०, २००—(१) चिड़चिड़ा और क्रोधी उसकी तरफ देखना या बोलना भी वह सहन नहीं करता है (यह मानसिक लक्षण है)। (२) जीभ पर सफेद मोटा लेप। (३) ठण्डे पानी से स्नान असह्य (सर्वाङ्गिक लक्षण)। (४) सूर्य का ताप असह्य। (५) ज्यादा सर्दी या ज्यादा गर्मी दोनों में ही रोग लक्षणों का बढ़ना। (६) खट्टी चीज खाने की इच्छा, खाता भी है पर वह सहन नहीं होती है। (७) पर्याय क्रम से अतिसार और कब्ज।

उपरोक्त प्रधान लक्षणों का रहना अतिआवश्यक है इनके साथ ही यदि मुंह का स्वाद खारा होगा तो एण्टीमक्रूड लाभ करेगा नहीं तो कोई फायदा नहीं होगा। किसी भी प्रकार की बीमारी क्यों न होवे यदि उपरोक्त लक्षण रोगी में हैं तो उसकी होमियोपैथिक दवा एण्टीमक्रूड ही होगी। रोग जो भी होवे उससे हमें कोई मतलब नहीं है। यही होमियोपैथिक का मूल मन्त्र है। यह नियम सभी दवाइयों के साथ लागू है। पाठकों से निवेदन है कि दवा के लक्षण समष्टी पर ध्यान देवें। यही नियम उपरोक्त सभी दवाइयों के लिये लागू है।

पसीना-निदान एवं चिकित्सा

पसीना का परिचय—शरीर के प्रत्येक रोम कूप से होकर शरीर के भीतर का जलीय अंश गर्मी से पसीजकर जब बाहर निकलने लगे तो उसे स्वेद या पसीना कहते हैं। यह पसीना रक्त और पित्त के कारण बहता है। उष्णता, संताप, धूप, मार्ग चलना, व्यायाम, परिश्रम आदि कारणों से पसीना आता है गरम पानी या क्वाथ के सेवन से पसीना आ जाता है। गरम कपड़ों से भी पसीना आ जाता है। प्राणायाम आदि से भी पसीना आता है। अधिक दुर्बलता के कारण भी आता है। थकावट से भी होता है। भय और क्रोध से भी पसीना आता है। दौड़ने, भागने आदि क्रियाओं से भी पसीना आता है। विभिन्न प्रकार के रोगों में भी पसीना आता है। जैसे कि पित्त

ज्वर में पसीना आना माना जाता है। मेदोज विकृति के कारण हाथ, पैर, नाक, मस्तक, कांख और गुप्त स्थानों में पसीना आता है।

पसीना

चिकित्सा—

सामान्य कारणों से होने वाले पसीने को विश्राम करके, स्नान करके या शीतल स्थान, वायु, छाया आदि का प्रयोग करके मिटाया जा सकता है। शीतल आहार-विहार करने से भी पसीना आना बन्द हो जाता है। विशेष अवस्था में या रोग की अवस्था में रोगानुसार चिकित्सा की जानी चाहिए। इसके लिये महामंजिष्ठादि क्वाथ, त्रिफला क्वाथ, आमले का स्वरस, गिलोय सत्व, माण्डूर भस्म, दशमूल क्वाथ, सारिवाद्यासव, पंचतिक्तक घृत, खदिरारिष्ट, नीम का काढ़ा, वड़, पीपल, गूलर, कीकर की छाल के काढ़े से स्नान, परिषेक, सिंचन आदि करना चाहिए। सुपारी पाक और अभ्रक भस्म यथोचित मात्रा और अनुपान के साथ देवें। चन्द्रप्रभावटी, च्यवनप्राश और पेठापाक का यथोचित मात्रा में गोमूत्र के साथ प्रयोग करें। सुश्रुत सूत्रस्थान में कहे गए सालसारादि गण, वरुणादिगण, रोध्रादिगण, अर्कादिगण, सुरसादिगण, मुष्ककादिगण, अषकादिगण और वरकोक्त, स्वेदहर द्रव्यों का क्वाथ, कल्क, चूर्ण आदि के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

हाथ और पैर के स्वेद की चिकित्सा—हाथ और पैरों पर पसीना आता हो तो पंचतिक्तक घृत और पंचतिक्तक गुग्गुल का प्रयोग किया जाना चाहिए।

पञ्चतिक्तक घृत—नीम, परवल, छोटी कटेरी, गिलोय, वांसा प्रत्येक को ४० तोला प्रमाण लेवें। यवकुट करके १६ द्रोण पानी में (१ द्रोण १६ या १२ सेर का होता है) पकावें। चौथाई भाग शेष रहने पर १ सेर गाय का घृत उसमें मिलाकर और त्रिफला का कल्क १६ तोला बीच में स्थापित करके मन्द अग्नि से पाचन करें।

पञ्चतिक्तक गुग्गुल—नीम की छाल, गिलोय, अडूसा, परवल, छोटी कटेरी प्रत्येक ४० तोला लेकर २५ सेर पानी में पकावें। आठवां भाग शेष रहे उतार लें, छान लें, फिर उसमें १२८ तोला घी मिलादें और पाढल, विडंग, देवदारु, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हल्दी, सौंफ, चव्य, कूठ, तेजोवती, मिर्च, कुड़े की छाल, अजवायन, चित्रकमूल छाल कुटकी, भिलावा शुद्ध, दूधिया वच, पीपलामूल, मंजीठ, अतीस, त्रिफला एवं अजमोद ये प्रत्येक १-१ तोला चूर्ण के रूप में लेकर पानी में घोट करके कल्क बनालें फिर शुद्ध गुग्गुल २० तोला मिलाकर पकालें। यह सर्वोत्तम योग है। सम्पूर्ण विष, वातरोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, श्वास, कास, शोष, हृद्रोग, वातरक्त, आमवात, ऊर्ध्वजन्तुगत रोग, नाड़ीव्रण, सम्पूर्ण प्रकार के कुष्ठ इन दोनों से नष्ट होते हैं।

होमियोपैथिक

परिचय—पसीने से हमारा अभिप्राय: यह नहीं है कि ज्वर आदि में जो पसीना होता है उसमें हम या उस पसीने पर विशेष ध्यान देंगे जो कि व्यक्ति को प्रायः प्रकृतिगत होता है। जैसे-आपको ऐसे अनेक व्यक्ति मिलेंगे जिनके सिर पर अधिक पसीना होता है अनेकों व्यक्तियों के पैर के तलवे और हाथ के तलवों में पसीना होता है। यह एक प्रकृतिगत के लक्षण है। होमियोपैथिक

व्यक्ति की प्रकृति की चिकित्सा करती है अतः यह एक लक्षण मात्र होते हुये भी आवश्यक लक्षण है।

चिकित्सा—

कल्केरिया कार्ब ३०, २००, I M,—कल्केरिया कार्ब रोगी मोटा थुलथुला होता है उसके हाथ और पैर हमेशा ठंडे रहते हैं। सिर पर पसीना अधिक आता है यहां तक कि तकिया भीग जाता है। सर के पिछले भाग में हाथ पैरों के तलवों में, गर्दन, बगल आदि में पसीना अधिक आता है। कल्केरिया कार्ब के पसीने में खट्टी बदबू रहती है। पसीना खास करके सरके पीछे के भाग में एवं हाथ पैरों के तलवों में आये, कल्केरिया का प्रधान लक्षण है।

साईलीसिया ३० से C.M तक—ऊपर हम कल्केरिया कार्ब के रोगी के पसीने के बारे में बता चुके हैं कल्केरिया कार्ब का रोगी मोटा थुलथुला होता है। साईलीसिया नामक दवा में भी रोगी को पसीना आता है इसका प्रभेद निर्णय कर लेना चाहिए। साईलीसिया का रोगी दुबला पतला होता है उसके पूरे सर में पसीना आता है। हाथ और पैर के तलवों में बदबू दार पसीना अधिक मात्रा में होता है इस पसीने के कारण पैरों की खाल (चर्म) गल जाती है अंगुलियों के बीच में घाव हो जाते हैं। साईलीसिया के रोगी का स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़ा होता है। हाथ और पैर के तलवों का पसीना हठात् बन्द होकर यदि व्यक्ति बीमार हो जावे तो उसकी दवा साईलीसिया है।

कल्केरिया फास ३० से C.M—कल्केरिया कार्ब के पसीने के सभी लक्षणों के साथ यदि रोगी मोटा न होकर दुबला पतला होवे तो उसकी दवा कल्केरिया फास होती है।

कैलेडियम् ३०,२००—कैलेडियम् के रोगी के शरीर में पसीना होता है पर उसकी विशेषता यह है कि वह पसीना मीठा होता है अतः शरीर पर मक्खियां बैठती रहती हैं।

भेरेट्रमएल्बम् ३०,२००—रोग कुछ भी होवे यदि रोग के आक्रमण के समय कपाल में ठंडा पसीना आवे तो उसकी दवा भेरेट्रमएल्बम होगी।

उदाहरण—कालेरा, हूपिंग खांसी आदि अनेको जटिल रोगी में इसी लक्षण पर इस दवा का प्रयोग करके मैंने अनेकों रोगीयों को आरोग्य किया है। स्थानाभाव के कारण पूर्व विवरण यहां नहीं दे रहा हूँ।

यूफ्रोबिया कोटोलेटा ३×६×—अतिसार हैजा आदि की पतनावस्था में यदि पूरे शरीर में ठंडा पसीना होने पर इसका प्रयोग करें। (सिर्फ सर पर ठंडा पसीना होने पर भेरेट्रमए. लाभप्रद है)।

थूजा ३० से C.m—पूरे शरीर में पसीना होता है पर इसकी विशेषता यह है कि रोगी निद्रावस्था में रहता है तो उसके शरीर से पसीना आता है पर यदि जाग जाता है तो पसीना बन्द होकर शरीर सूख जाता है। इस प्रकार की विशेषतायें पाठकों को याद रखनी चाहिये।

सैम्बूकस ना. ३०,२००—इस दवा का लक्षण थूजा के ठीक विपरीत है अर्थात् नींद से सोकर उठते ही पसीना आता है पर निद्रावस्था में नहीं रहता है।

कोनियम मेकूलेटम ३०,२००—दोनों आंखें बन्द करते ही पसीना आने लगता है यह लक्षण कोनियम का है।

मार्कसोल ३०,२००—मार्क सोल नामक दवा का भी रात में पसीना होना एक प्रधान लक्षण है पर ज्वर आदि किसी भी रोग में पसीना होने पर भी रोगी को किसी प्रकार का उपशम नहीं होता है। साथ ही मुंह से लार गिरना आदि भी आवश्यक है।

शरीर में दुर्गन्ध निदान एवं चिकित्सा

वर्णन—शरीर में दुर्गन्ध के अनेक कारण होते हैं। जैसे—स्नान न करना, वस्त्रों को साफ न रखना, मल-मूत्र आदि के स्थानों को भली प्रकार से स्वच्छ न रखना, दुर्गन्ध कारक द्रव्यों का सेवन करना जैसे प्याज, लहसुन आदि तथा मांस, शराब आदि का सेवन करना तथा किसी रोग की वजह से भी हो सकती है। वातादि दोषों के प्रकोप से अथवा रस-रक्त आदि धातुओं के गुण-मात्रा विपर्यय से भी हो सकती है। विशेषकर

मेद नामक धातु की अति वृद्धि होने पर शरीर में दुर्गन्ध पैदा होती है। यह बात भगवान धन्वन्तरि के पट्ट शिष्य आचार्य सुश्रुत ने सूत्र स्थान अध्याय १५ में कहा है कि—

"मेदः स्निग्धाङ्गतामुदरपार्श्ववृद्धि कास-श्वासादीन् दौर्गन्ध्य च" इति।

अर्थात मेद धातु के अतिवृद्धि या बढ़ जाने पर अङ्ग प्रत्यङ्गों में चिकनाई, पेट का बढ़ जाना दोनों पार्श्व भागों का लटकने लगना, खांसी और दमा होना तथा शरीर में दुर्गन्ध होना। इस प्रमाण से स्पष्ट है कि शरीर में दुर्गन्ध मेदो वृद्धि के ही कारण होती है विभिन्न प्रकार के रोगों के कारण, उनके लक्षणों अथवा स्वरूप या पूर्वरूप आदि में भी दुर्गन्ध का होना माना गया है। यह दुर्गन्ध प्रकृति विकृति आने पर अथवा अरिष्ट चिन्ह प्रगट होने पर भी मालूम पड़ती है। किसी प्रकार के व्रण, फुन्सियां, दाद, खाज आदि सड़ने गलने पर भी शरीर में दुर्गन्ध पैदा हो जाती है। अतः सामान्य कारणों से सामान्य अवस्था की शरीर दुर्गन्ध की चिकित्सा की जा सकती है, अन्य की नहीं।

शरीर की दुर्गन्ध की चिकित्सा—

शरीर की स्वच्छता, वस्त्रों की स्वच्छता आदि के अतिरिक्त शरीर पर उबटन, सुगन्धित प्रलेप आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए। चन्दन, खस, कस्तूरी, केसर, चमेली के फूल, नागकेशर, अगर-तगर, नेत्रा वाला, कपूर, आदि का उपयोग विभिन्न प्रकार से किया जाये। मेदो-धातु की वृद्धि का शमन करने के लिए पसीने और पसीने की दुर्गन्ध को रोकने के लिए सालसारादिगण की औषधियों का या वरुणादिगण, रोध्रादिगण, सुरसादिगण की औषधियों का स्नान, पान, आलेपन आदि में प्रयोग किया जाना चाहिए। कुछ विशेष दुर्गन्ध नाशक योग निम्न प्रकार से हैं।

(१) नागर मोथा, कूठ, धनियां, मुलैठी और एलुवा इनका क्वाथ, कल्क, चूर्ण आदि यथोचित प्रकार से प्रयोग करने पर शरीर, बगल की, मुंह की पसीने की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है।

(२) पञ्चपल्लव, मुलैठी, चमेली के फूल, इनका कल्क बना कर सूर्य की किरणों से तपाकर अथवा चतुर्गुण जल मिलाकर घृत पाक करलें। यह घृत स्त्री-पुरुषों के गुप्त प्रदेशों की बदबू को तत्काल नष्ट कर खुशबू पैदा करता है।

(३) कूठ, एलुआ, इलायची बड़ी, नागरमोथा, धनियां और मुलैठी, इन सबको समभाग लेकर चूर्ण बना लें अथवा क्वाथ बनाकर केवल धारण करें या शरीर स्नान करें या अन्य स्थानों का प्रक्षालन करें तो सभी प्रकार की दुर्गन्ध अवश्य नष्ट हो जाती है। और खुशबू पैदा हो जाती है।

(४) बीज पूरक की छाल का चूर्ण शहद के साथ मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार की दुर्गन्ध नष्ट होती है, विशेषकर अपान वायु की सड़ी हुई बदबू को तुरन्त नष्ट कर देता है।

होमियोपैथिक

परिचय—सोरादि दोषों के कारण अथवा किसी स्थान पर सड़न होने पर रोगी के शरीर में दुर्गन्ध आती है इस दुर्गन्ध की चिकित्सा करने के लिए सिर्फ दुर्गन्ध कहने पर ही दवा का निर्वाचन नहीं होता है, यह एक लक्षण मात्र है अतः रोगी के लक्षण समष्ठी की आवश्यकता है। आपको तो रोगी की चिकित्सा करनी है न कि दुर्गन्ध की, यह होमियोपैथिक का अपना प्रथक विधान है अतः रोगी के सर्वाङ्गिक लक्षणों का संग्रह करना है। यदि किसी दवा में रोगी के मानसिक और सर्वाङ्गिक लक्षण सब मिलते हैं और एक दुर्गन्ध का लक्षण नहीं भी मिलता है तो रोगी उसी दवा से आरोग्य होगा और दुर्गन्ध भी ठीक होगी। खैर यह हम उन दवाइयों के लक्षण देंगे जिनमें दुर्गन्ध का भी लक्षण है पर छात्र यह न समझ बैठें कि यही दवा है और नहीं है।

सोरीनम २०० से C. M—सोरीनम नामक दवा में रोगी के शरीर से दुर्गन्ध निकलने का लक्षण अवश्य है पर इसी एक लक्षण पर हम सोरीनम का प्रयोग करके सफल नहीं हो सकते हैं उसके साथ ही और लक्षणों की भी आवश्यकता है। जैसे कि—सब समय निराश मन, चमड़ा फटा-फटा और देखने में गंदा, सभी स्रावों में जैसे—मल-मूत्र, पसीना, पस आदि में सड़ी हुई दुर्गन्ध, ठंडा सहन नहीं करना, स्नान करना नहीं चाहता है। शीत कातर, क्षुधा-

कातर (भूख सहन नहीं होती) यदि मध्य रात्रि में भी भूख लगती है और भूख लगने पर सर दर्द। झड़ और वर्षा के पूर्व रोग वृद्धी। गरम के समय भी कपड़ा ओढ़ना चाहता है। प्रति शीतकाल में चर्म रोग होता है। उपरोक्त सभी लक्षणों के साथ शरीर से सड़े हुए मांस की तरह दुर्गन्ध निकलने में लाभप्रद है।

कल्केरिया कार्ब ३०, २००,—कल्केरिया कार्ब का रोगी मोटा थुल-थुला होता है पेट और सिर अधिक बड़ा होता है। रोगी शीत कातर होता है। रोगी के शरीर से खट्टी दुर्गन्ध निकलती है। पसीना आदि सभी स्रावों में दुर्गन्ध रहती है। प्रायः उन बच्चों में आपको खट्टी गंध मालुम होगी जिनके दांत निकल रहे हैं।

वैप्टीसिया ६, ३०, २००,—वैप्टीसिया नामक दवा में भी दुर्गन्ध का लक्षण है पर यह लक्षण आपको टाईफाइड आदि रोगों में दिखाई देगा। रोगी के मल-मूत्र पसीना आदि में भयङ्कर दुर्गन्ध रहती है।

मार्क सोल २००, १०००—मार्क सोल के रोगी को रात में पसीना अधिक होता है अतः उस पसीने के कारण शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। मुंह में बहुत ही दुर्गन्ध रहती है।

नेट्रम-कार्ब ३०, २००—नेट्रम कार्ब के रोगी में भी खट्टी गंध आती है खट्टी गंध का लक्षण हीपर सल्फ भी है।

उपरोक्त दवाइयों के अतिरिक्त स्रावों में दुर्गंध का लक्षण बहुत सी दवाइयों मे है।

मद निदान एवं चिकित्सा

मद का परिचय—आयुर्वेद में मद शब्द से शराब, नशे का दौर और अतियोग से होने वाली प्रतिक्रिया में तीन अर्थ ग्रहण किये हैं। तीनों ही एक विषय के अंश-प्रत्यंश के रूप में रहते हैं। इसके अतिरिक्त उन्माद की प्रथम अवस्था को भी मद कहते हैं। जैसे—

मद

"सचा प्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञा विभर्तिज्ञ" सु० उ० ६२

अर्थात् वह उन्माद रोग जब तक कि अधिक बढ़ना हो, नया-नया हो तो उसको मद भी कहते हैं। मद्य का अति अनावश्यक प्रयोग अतियोग होता है उसको पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम का नाम दिया है और यही मद कहलाता है। अर्थात् मद के ही अंदर लिखे चार नाम हैं। आचार्य सुश्रुत के मतानुसार—

तदेवानन्नमज्ञेन सेव्यमानममात्रया।
कामाग्निनाह्यग्निसम् समेत्य कुरुतेमदम्॥

अर्थात् वही अग्नि के समान मद्य, बिना खाद्य पदार्थों के साथ लिये यदि कोई मूर्ख व्यक्ति उसका सेवन करता है अथवा अति मात्रा में सेवन करता है तो वह मद्य जठराग्नि के साथ मिलकर मद किया करता है। इस मद के वशीभूत होकर मानव मन, बुद्धि, और इन्द्रियों के नियंत्रण से बाहर निकल जाता है, अतः गुप्त बातें भी कह डालता है, न करने के योग्य भी काम कर डालता है, क्योंकि चेतन अचेतन संज्ञा, चेतना, सूझ बूझ आदि सभी कुछ नष्ट हो जाता है। इस मद की तीन अवस्थायें सुश्रुताचार्य ने कही हैं। पूर्व मद, द्वितीय या मध्यम और

पाश्चिम मद । पूर्व मद में वीर्य, रति, प्रीति-हर्ष, बोलना आदि बढ़ जाते हैं, यह प्रसन्नता वर्धक है । द्वितीय मद में

प्रलाप, मोह, उचित-अनुचित के ज्ञान से शून्य हो जाता है तृतीय मद में चेतना हीन नष्ट क्रिया के गुणों से भी रहित हो जाता है ।

चिकित्सा—

वात प्रधान में—अजवायन, सौंठ, हींग, सोंचलनमक मिलाकर मद्य पीवें ।

पित्तज में—काकोल्यादि मधुर वर्ग की चीजें मिलाकर शरबत या मद्य पीवें ।

कफज में—दुरालमादिगण की औषधियों को पीकर वमन करें । मूंग का यूष पीवें ।

त्रिदोषज में—तीनों दोषों की प्रथक-प्रथक कही चिकित्सा को सम्मिलित करके सेवन करावें । मन को प्रसन्नता देने वाले भावों का भी सेवन किया जाय । मटर, मूंग, आंवला, अनार मिलाकर मुनक्का, आंवला, छुआरा, फालसा के रस से यूष अथवा तर्पण करें । यदि किसी भी प्रकार से मद शान्त न होता हो तो दूध का सेवन कराना चाहिये । मद के कारण होने वाली दुर्बलता, कफ की क्षीणता आदि में भी दूध का प्रयोग ही किया जाये अथवा पुनर्नवा का काढ़ा, दूध और मुलैठी का कल्क इनसे सिद्ध घृत का सेवन कराना चाहिये । इससे मद का विकार नष्ट हो जाता है । क्षीणता भी नष्ट हो जाती है। ओज की वृद्धि और रक्षा भी होती है। मद का सर्वोतम इलाज शराब ही है । मद होने पर शनैःशनैः या बलपूर्वक पुनः मद्य का सेवन करने से मद का विकार अवश्य नष्ट होता है ।

कांपना—निदान एवं चिकित्सा

कम्पन का परिचय—कम्पन शब्द का अर्थ है—कांपना, हिलना, झटकना, इत्यादि । यह वातव्याधि का एक लक्षण है । लगभग सभी वातव्याधियों में कम्पन का होना पाया जाता है । कम्पवात नाम से एक विशेष रोग और भी है । इसमें सम्पूर्ण शरीर में कम्पन पाया जाता है । अथवा केवल सिर का ही कांपना भी हो सकता है । सिर कम्पन के अतिरिक्त हाथ-पैर, अंगुली, कान आदि का कम्पन भी होता है । कम्पन की क्रिया वायु के वेग के कारण होती है । वायु का वेग अपने स्थानों में भी कफ के द्वारा नियन्त्रित रहता है । अतः बाल्यकाल, यौवन और स्वस्थ अवस्था में कफ के स्वस्थ रहने के कारण वायु के वेग पर कन्ट्रोल रहता है अतः तीव्र गति से चलता हुआ भी वायु कम्पन नहीं कर पाता । किंतु रोग के आक्रमण होने पर अथवा आयु के चरम भाग बुढ़ापे में वायु का वेग शरीर को या उसके किसी भी अङ्ग को कंपा देता है । क्योंकि बुढ़ापे में काल प्रकर्ष के कारण कफ का क्षय हो जाता है अतः वायु को नियन्त्रिण करने का काम समाप्त हो जाता हैं । इसी प्रकार रोग के आक्रमण होने पर भी कफ का क्षय हो जाता है । अतः वायु की गति पूर्ण स्वतन्त्र हो जाने से झटके पर झटके आने लगते हैं । कम्पन को

आयुर्वेद में वपायु भी कहते हैं। सबसे बड़ा दोष यह होता है कि शरीर के अंगों में कोमलता नहीं रहती। लचकने की क्रिया जब मांसपेशी, सिरा स्नायु आदि में से निकल जाती है और वहां पर कठोरता, परुषता, रूक्षता आ जाती है तो इसी प्रकार के गुण धर्म वाले वायु को भड़कने का अवसर मिल जाता है। यह अनाम्यता का दोष ही कम्पन का मुख्य हेतु होता है। इसी अनाम्यता के दोष के कारण आयुर्वेद ने स्नेह, स्वेद, अभ्यंग,आदि सभी चिकित्साओं पर विशेष बल दिया। जिन स्नेहों, द्रव्यों तथा औषधियों से अंग-प्रत्यंगों में स्निग्धता, कोमलता, दृढ़ता,नमन गुण और वायु पर नियन्त्रण करने वाले शुद्ध कफ की प्राप्ति और रक्षा होती हो, उनका ही प्रयोग करने का विधान दिया है।

कांपना

चिकित्सा-

सामान्य चिकित्सा—सर्व प्रथम कम्पन वात में मधुर, अम्ल तथा लवण रस युक्त भोजन, अभ्यंग, स्नेह बस्ति आदिका प्रयोग किया जाए। फिर रास्ना गुग्गुल,महा बला तैल, नारायण या महा नारायण तैल, महामाष तैल का प्रयोग, अभ्यंग पीने और वस्ति विधि में प्रयोग किया जाना चाहिए। ये योग जनता-प्रसिद्ध हैं और धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ अलीगढ़ आदि भारत की सभी आयुर्वेदिक औषधि विक्रय करने वाली संस्थाओं द्वारा इन्हें जन साधारण तक प्रचलित भी किया हुआ है अतः यहां इनके नुस्खे आदि नहीं दिए हैं।

विशेष अनुभूत योग—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक की कज्जली, लोह भस्म शतपुटी, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म, रजतभस्म, ताम्रभस्म, वंग भस्म, कांतलोह भस्म, फौलाद भस्म ३-३ माशा, शुद्ध पत्र हरताल, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, चातुजति, चित्रक की छाल,त्रिकटु, जायफल जावित्री, कचूर, निशोथ, रास्ना, जवांसा, गिलोय दन्तीमूल १-१ तोला लेवें। फिर तीनों क्षार दोनों नमक वंशलोचन, असगंध, चव्य, शीतल चीनी, शतावर, कपूर, शरपुंङ्खा ये २-२ तोला लेकर बारीक चूर्ण बना लें। फिर सबको एकत्र करके भांगरा, धतूरा, वज्रकन्द, कालीमकोय ब्राह्मी और अदरख इन छः के समान भाग स्वरस की १-१ भावना देवें। फिर ४-४ रत्ती की गोलियां बना लें। केवल रात को सोने से एक घंटा पहले १ रत्ती शिलाजीत और यथेष्ट गरम दूध के साथ इसकी एक गोली का सेवन करें। कम्पवात, पुराना दमा, पुरानी खांसी,भगन्दर, श्वेत कुष्ठ, शूल, मधुमेह, स्वप्नदोष, गुल्म, आमवात, वातरक्त, संग्रहणी, दुर्बलता को निश्चय ही नष्ट करता है। शत प्रतिशत सफल योग है।

होमियोपैथिक

परिचय—कम्पन रोग २ प्रकार का होता है। (१) सर्वाङ्गिक (२) एकाङ्गिक। सर्वाङ्गिक में पूरा शरीर कांपता है, इसे कोरिया या तांडव रोग भी कहते हैं, चालू भाषा में इसे कंपवायु कहते हैं। एकाङ्गिक में शरीर का कोई एक अंग कांपता है।

कारण—होमियोपैथिक मतानुसार साईकोसिस दोष ही इसका मूल कारण है। वैसे आधुनिक चिकित्सा के मतानुसार स्नायविक दुर्बलता को ही मुख्य कारण माना जाता है। अतः वह विटामिन B_1 आदि दवाईयों का प्रयोग करते हैं पर होमियोपैथिक में तो समलक्षण दवा का ही प्रयोग होता है। नीचे हम संक्षेप में कुछ दवाइयों

के लक्षणों को लिख रहे हैं।

जेल्सियम् ३०, २००—स्नायविक दुर्बलता के कारण हाथ, पैर, जीभ आदि कांपती हैं। रोगी अपने किसी भी अंग का संचालन अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकता है। यह स्नायविक दुर्बलता के कारण होता है। यह स्वल्प क्रियाशील दवा है अतः रोग की नई अवस्था में इसका प्रयोग करना चाहिये।

ऐगेरिकस मस्केरियस ३०, २००—यह ताण्डव रोग (कोरिया) की अच्छी दवा है। इसके अलावा किसी अंग का या मांसपेशी का फड़कना या कांपने में भी यह लाभप्रद दवा है। मेरुदण्ड की उत्तेजना, मस्तिष्क और स्नायू केन्द्र के ऊपर इस दवा की क्रिया होती है। आंख के पलक में खुजलाहट और वह फड़कता है। आपने प्रायः ऐसे व्यक्तियों को देखा होगा जो प्रायः कहा करते हैं कि मेरी दाहिनी और बायीं आंख फड़कती हैं और वह इसे मंगल और अमंगल का सूचक मानते हैं। यह कुछ नहीं है सिर्फ स्नायविक विकार मात्र है। आयुर्वेदिक मतानुसार इसे वायु का प्रकोप बताया है। खैर, यदि किसी व्यक्ति को बराबर ही इस प्रकार से फड़कन हो तो उक्त दवा का प्रयोग करना चाहिये। आंख के पलक ही नहीं यदि मांस पेशियों में भी फड़कन होवे और उसमें यह विशेषता हो जैसे—रोगी जागता रहता है तो फड़कन होती है पर गहरी निद्रा में सो जाने पर नहीं होती। दूसरी बात यह है कि मांस-पेशियों में फड़कन जो होती है वह कोनाकोनी भाव से होती है।

अर्थात् दाहिने तरफ ऊपर के अंग में और बांयें तरफ नीचे में या इसके विपरीत होती है। झड़ वर्षात् या बिजली चमकने के समय रोग की वृद्धी और निद्रा में उपशम भी याद रखना चाहिये।

डा. डब्ल्यू. ए. दुबे एम. डी. ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि—

ऐगेरिकस—यथार्थ मस्तिष्क सम्बन्धी ताण्डव (पेशियों का खिचाव) रोग में यह तालिका के प्रथम स्थान में आता है।

जिंकम मेटालिकम् ३०, २००, १०००—जिंकम के रोगी के पैर बराबर कांपते रहते हैं।

माई गेल ६, ३०—चलते समय पैर दूसरी जगह गिरता है, सारा शरीर निरन्तर हिलता है, अंग प्रत्यंगादि का कम्पन हाथ स्थिर नहीं रहता, हाथ व पैर का न रोक सकने वाला हिलन, चलते समय प्रत्यंगादि मानो खिचकर खड़े रहते हैं। मुंह की पेशियांका कांपना, सिर रह कर एक तरफ धक्का देने की तरह हिल उठता है।

ताण्डव रोग (कोरिया) के भेद और दवा—

स्पाईनलकोरिया—सिक्यूटा, काकु, कूप्रम, माइगेल, नक्स।

यूटराईन कोरिया—सिपीया, सिकेली, लिलियम, पल्स, कोलोफाईलम्, सिमिसिफ्यूगा।

रियुमैटिक कोरिया—कास्टिकम, रसटस्स, स्टिकटा, सिमिसिफ्यूगा, कैली आयोड।

ऐब्डोमिनल कोरिया—एसाफिटीड़ा, आयोडियम्, लाईकोयोडियम्, साईलिसिया, चेलिड़ोनियम्।

उपरोक्त दवाइयों के लक्षण मेटेरिया मेडीका में देखियेगा।

अम्लभाव खट्टीडकारें और कड़वी डकारें निदान एवं चिकित्सा

अम्लभाव-खटास का परिचय—सर्व प्रथम यहां पर यह सूचित किया जाना उचित रहेगा कि विषय सूची में इसके आगे कड़वी डकारें और इससे भी आगे खट्टी डकारें दो विषय पृथक से छपे हैं। किन्तु इन तीनों का एक ही प्रकरण होने से हम यहां पर तीनों के प्रतीक अम्लपित्त का विस्तृत वर्णन कर रहे हैं। खट्टी डकारें हों या कड़वी डकारें ये सभी अम्लपित्त के ही रूप हैं। खटास का अर्थ भी अम्लपित्त ही है।

अम्लपित्त का निदान एवं स्वरूप--पित्त दो प्रकार का होता है। प्रकृतपित्त और विदग्धपित्त। प्रकृत पित्त का रस कटु अर्थात चरपरा होता है और विदग्ध पित्त का स्वाद अम्ल होता है। पित्त का कटु स्वाद आरोग्य का प्रतीक है और उसका अम्ल स्वाद रोग का प्रतीक है। इस दृष्टि से विरुद्ध आहार करने से, विकृत आहार करने से अथवा अत्यधिक खट्टे पदर्थों का सेवन करने से, विदाही और पित्त को कुपित करने वाले खाद्य पदार्थों के खाने या पीने से

पदार्थों का अति सेवन करने से, पित्त दूषित एवं कुपित हो जाता है अर्थात वह कच्चा ही रह जाता है, पूर्णरूप से परिपक्व नहीं होने पाता। कच्चा रहने से वह खट्टा होता है और पूर्णरूप से परिपक्व होने पर वह कटु रस वाला उत्तम स्वस्थ पित्त होता है। वर्षा ऋतु के प्रभाव से भी पित्त कच्चा रह जाता है, अतः अम्लता आ जाती है। अम्लपित्त में ही कड़वी डकारें भी आती हैं। वात और कफ का अशांशी सम्बन्ध होने पर डकारें कड़वी आता हैं। अथवा पित्त की अम्लता ही तिक्तता से युक्त हो जाती है। विदग्धपित्त, विदग्ध वात कफ से मिलकर कडुवापन पैदा करता है।

अम्लपित्त के लक्षण—खाद्य पदार्थों का पाचन न होना, विना परिश्रम के ही शरीर में थकावट मालूम पड़ना, जी मिचलाना, कड़वी, खट्टी-डकारें आना, शरीर में गुरता होना, छाती और गले में जलन होना, अरुचि का होना ये सब अम्लपित्त के ही लक्षण माने जाते हैं।

अम्लपित्त की गतियां—अम्लपित्त की दो प्रकार की गतियां मानी जाती हैं। पहली अम्लपित्त की ऊर्ध्वगति अर्थात अम्लपित्त का ऊपर से मुखमार्ग से बाहर निकलना। दूसरी अम्लपित्त की गति अधोगति कहलाता है अर्थात अम्लपित्त का नीचे के मार्ग गुदा से बाहर निकलना। अतः इन दोनों ही गतियों का वर्णन निम्न प्रकार से है—

अम्लपित्त की ऊर्ध्वगति—जब अम्लपित्त में कफ का अनुबन्ध विशेष रूप से रहता है तो हरे, पीले, नीले, काले, लाल वर्ण आदि में से किसी भी रंग की वमन होती है। रंग हल्का भी हो सकता है और गहरा भी हो सकता है। यह वमन बहुत खट्टा होता है। इससे दांत किसकिसा जाते हैं। इस वमन में आने वाला द्रव्य मांस की धोवन के समान बहुत ही चिपचिपाहट अथवा साफ कफयुक्त, कुछ नमकीन, कुछ कड़वा और कुछ चरपरा स्वाद वाला होता है। अम्ल पित्त की स्थिति बड़ी विचित्र होती है। विना भोजन किए भी कड़वी अथवा खट्टी वमन हो जाया करती हैं। भोजन का विकृत पाचन होने पर भी ऐसी ही स्थिति पाई जाती है। इस प्रकार की डकारों से छाती गला और उदर में जलन भी अवश्य होती है। सिर में भारी दर्द भी रहता है। कफपित्त के सम्बन्ध के कारण हाथ पैरों में जलन गर्मी, भारी अरुचि तथा ज्वर भी उत्पन्न हो जाता है। रोगी के शरीर पर खुजली, चकत्ते, छोटी-छोटी बेशुमार फुन्सियां भी उत्पन्न होजाती हैं।

अम्लपित्त की अधोगति—गुदा मार्ग से प्रवाहित होने वाले अम्लपित्त में तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, मोह पाया जाता है। काला, पीला, नीला, हरा या लाल वर्ण का वह अम्लपित्त कभी-कभी नीचे के मार्ग से भी वह सकता है। प्रायः अधोगामी अम्लपित्त कम ही देखने को मिलता है। इसमें जी मिचलाना, चकत्ते होना, मन्दाग्नि, रोमांच, पसीना और शरीर के अवयवों में पीलापन पाया जाता है।

अम्लपित्त का विशेष खुलासा—अम्लपित्त वात की अधिकता वाला, वात और कफ की अधिकता वाला तथा केवल कफ की अधिकता वाला, इस तरह से तीन प्रकार का होता है। इस वर्गीकरण को जब तक न समझा जाएगा तब तक अम्लपित्त के निदान करने में भारी भूल होती है।

अतः उसके विशेष लक्षण यहां पर दिये जा रहे हैं। जो कि सहायक होंगे।

वाताधिक अम्लपित्त—इस अम्लपित्त में प्रलाप मूर्छा, कम्पन, शरीर में चिड़चिड़ाहट या चुनचुनाहट, अङ्गों का ढीलापन, शूल, आंखों के आगे अंधेरा आ जाना, दिमाग में अस्थिरता और रोम हर्ष ये लक्षण मिलते हैं।

वातकफाधिक अम्लपित्त—प्रायः इस प्रकार के अम्लपित्त में कड़वी, खट्टी और चटपटी डकारें आती रहती हैं। सारी छाती में कहीं पर भी जलन हो सकती है। यह जलन पेट में और गले में भी खूब होती है। तथा मूर्च्छा, वमन, अरुचि, भ्रम, शिरदर्द, आलस्य, मुख से लाल स्राव होना अथवा मुख का स्वाद मधुर बन जाए। कफ प्रधान और वातप्रधान अम्लपित्त के ही मिले-जुले लक्षण इस वात-कफ प्रधान अम्लपित्त में पाए जाते हैं।

कफाधिक अम्लपित्त—कफ की प्रधानता वाले अम्लपित्त में मुख से कफ का पतला स्राव बार-बार होता है। गौरव, अकर्मण्यता, अरुचि, शीतलता, शिथिलता, वमन, मुख में चिपचिपाहट, मन्दाग्नि, कण्डू और नींद की अधिकता प्रायः विशेष रूप से पाए जाते हैं। ऐसा अनुभव में आया है।

अम्लपित्त की साध्यासाध्यता—अम्लपित्त अपनी नवीन स्थिति में प्रयत्न पूर्वक नियंत्रण में आ जाता है। अर्थात् साध्य है। हमारा अनुभव है कि तीन वर्ष के पश्चात् वह साध्य और असाध्य की श्रेणी में आ जाता है। प्रायः आजकल के वातावरण में हमें जितने भी अम्लपित्त मिले हैं वे कष्ट साध्य ही मिले हैं। लोगों का आहार-विहार ठीक न होने से और स्वास्थ्य के नियमों का यथा-वत् पालन न करने से यह रोग साध्य तो नाममात्र का ही होता है, वर्ना सम्पूर्ण ही कष्ट साध्य पाया जाता है। शास्त्र में इसको असाध्य नहीं माना है।

अम्लपित्त-खटास, कड़वी डकारें, खट्टी डकारों की चिकित्सा

साधारण चिकित्सा—अम्लपित्त में प्रथम वमन कर्म करावें तदनन्तर विरेचन कराना चाहिए। परन्तु विरेचन हलका ही करावें। इसके बाद स्नेहन किया जाए। यदि पुराना अम्लपित्त है तो दोषों की स्थिति को देख करके उसके अनुसार अनुवासन वस्ति या आस्थापन वस्ति जो भी उचित प्रतीत हो करानी चाहिए। इस प्रकार से पूर्ण संशोधन करने के बाद अम्लपित्त को शमन करने वाली औषधियों का प्रयोग किया जाए। भोजन भी ऐसी ही स्थिति का होना चाहिए। सामान्यतया ऊर्ध्वगति वाले अम्लपित्त को वमन के द्वारा और अधोगति वाले को मृदु-विरेचन के द्वारा शमन किया जाना चाहिये। तिक्त रस वाले आहार और पेय पदार्थ दिये जायें। जौ, गेहूँ, सत्तू, मिश्री और मधु का उपयोग उचित और उपयुक्त विधि से किया जा सकता है।

अम्लपित्त में क्वाथ—परवल, गिलोय, सौंठ और कुटकी का काढ़ा अम्लपित्त, शूल, अरुचि, मन्दाग्नि, भ्रम, दाह और वमन को शान्त कर देता है अथवा वांसा, पित्तपापड़ा, नीम की छाल, चिरायता, भांगरा, त्रिफला और परवल का काढ़ा मधु के साथ देने से अम्ल-पित्त नष्ट होता है।

अम्लपित्त नाशक चूर्ण—छोटी हरड़ और भांगरे का समभाग चूर्ण गुड़ के साथ सेवन करने से अम्लपित्त शान्त हो जाता है। अथवा त्रिफला और कुटकी का सम-भाग चूर्ण मिश्री के साथ सेवन करने से अम्लपित्त शान्त होता है। अथवा सौंठ और गिलोय का चूर्ण समभाग मधु के साथ सेवन करने से अम्लपित्त शान्त हो जाता है। इनके कल्क बनाकर भी सेवन किए जा सकते हैं।

अम्लपित्तज में वासादि गुग्गुल—अम्लपित्तज में, वांसा, नीम की छाल, परवल, त्रिफला, और विजयसार के क्वाथ में गुग्गुल डाल कर पीवें कफ प्रधान अम्लपित्त तो अवश्य शांत होता है।

अम्लपित्त में गुड़ादि मोदक—अम्लपित्त के समूल विनाश के लिये गुड़, छोटी पीपल और हरड़ को समान भाग लेकर गोली बनालें। यह अग्निदीपक और कफ नाशक भी है।

पिप्पलीघृत—पीपल के क्वाथ व कल्क से सिद्ध घृत मधु मिलाकर सेवन करने से अम्लपित्त, वाताधिक्यता, कफा-धिकता, मन्दाग्नि, वमन आदि सभी शान्त होते हैं।

दिनकरामृत रस—(अनुभूत योग)—अष्ट संस्का-रित पारद, शुद्ध गंधक, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मनःशिला भस्म, वर्कीहरतालभस्म, खर्परभस्म, शिलाचन्द्रोदय सबको समान भाग लेकर एकत्र कर खरल में इतना मर्दन करें कि पारद नष्ट हो जाय। फिर नीबू के रस की तीन भाव-नायें दे डालें। फिर वांसा, नागरमोथा, गिलोय, काला-भांगरा, नीम की छाल, खरेंटी की जड़, शतावर पित्तपापड़ा, सफेद भांगरा, बड़ी कटेरी पुनर्नवा इन सबको दो दो तोला लेकर गिलोय के स्वरस की सात भावना दे डालें। फिर अभ्रक भस्म शतपुटी लोहभस्म शतपुटी और अग्निस्थायी सिगरफ एक-एक तोला लेकर शतावरी के चौगुने स्वरस में पांच भावनायें देवें। फिर सबको खरल में एकत्रित करलें और वांसा के स्वरस की एक भावना नीबू के रस की एक भावना, चित्रक के रस की या क्वाथ की एक भावना, अदरक के स्वरस की एक भावना इस प्रकार से चार भावना देने के पश्चात् कपर्दिका भस्म दो तोला, प्रवाल पिष्टी दो तोला, मुक्ताशुक्ति पिष्टी साढ़े सात माशा मिलाकर गिलोय के स्वरस की दो भावनायें दे डालें। फिर अन्त में सब का एक गोला सा बनाकर गोघृत में धीरे से छोड़ कर मृदु अग्नि से पाचन करें। जब गोला रक्त वर्ण हो जाय तो निकाल लें और छाया में रख कर शुष्क होने दें। एक दिन के पश्चात् उस गोले

को खरल में पीसकर समभाग सौंफ का काढ़ा मिलाकर घुटाई करें और दो-दो रत्ती की गोलियां बना लें। अम्ल-पित्त के रोगी को सामान्य प्रकार से वमन और मृदु विरेचन से शुद्ध कर के इस रस का सेवन प्रातःसायं और रात्रि को सोते समय गिलोय के रस, बांसा के स्वरस, द्राक्षा के स्वरस, अदरख के स्वरस, पंचकोल स्वरस, या काढ़े से, या अर्क सौंफ से सेवन करावें। यह रस अम्ल-पित्त यदि असाध्य भी हो गया होगा तो चालीस दिन में उखाड़ फेंकेगा, यह हमारी चुनौती है। देश काल, बलाबल, आहार विहार, आयु आदि का इसमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है। भयंकर अजीर्ण, पुरानी मन्दाग्नि, पुराना कब्ज, पुराना जिगर और तिल्ली पुरानी, संग्रहणी, कफ और वायु के विकार, कोई सा भी शूल, अन्तद्रव शूल, परिणाम शूल, जी मिचलाना, अरुचि, तृष्णा, पुरानी और भयंकर खांसी, हृदय की दुर्बलता, रक्तपित्त, दाह, शोथ, भ्रम, तन्द्रा, फफोले या छाले, चर्म कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, तीन वर्ष तक का श्वांस रोग, दिमाग का चकराना, थकावट, और बुढ़ापे की नामर्दी ये सब रोग एक दम निर्मूल हो जाते हैं। हमें यह योग स्वामी भैरवानन्द आचार्य वाममार्ग से प्राप्त हुआ था और अम्लपित्त पर इतना सही-सही पाया है कि आश्चर्य होता है। जहां आस्तिकों ने अम्लपित्त को याप्य करार दिया हो वहां एक वैदिक मार्ग विरोधी विद्वान उस अम्लपित्त को समूल नष्ट कर सकता है। कृष्ण कन्हैया की मर्जी सर्वोपरि है।

होमियोपैथिक

परिचय—अम्लभाव, कड़वी, खट्टी डकारें आनी यह सब उपसर्ग अम्लपित्त में देखे जाते हैं और अम्लपित्त की चिकित्सा हम धन्वन्तरि के चिकित्सा विशेषांक भाग १ के पृष्ठ संख्या ९०-९१ में लिख चुके हैं। इसकी जानकारी के लिये प्रथम भाग देखें। नीचे डकारों में प्रयोग होने वाली कुछ दवाइयों को संक्षेप में लिख रहे हैं।

कार्बोवेज ६, ३०, २०० पेट में वायु हो तो बहुत कष्ट के साथ खट्टी डकार आती है, डकार आने पर रोगी आराम अनुभव करता है। कार्बोवेज में प्रायः वायु स्थली में संचय होती है। अतिसार के साथ पेट में वायु संचय होने में कार्बोवेज विशेष लाभप्रद है।

लाईकोपोडियम—३०, २०० अम्ल के लक्षणों के साथ पेट में वायु जो कि प्रायः तलपेट में विशेष होती है। उक्त लक्षणों के साथ ही खट्टी डकारें आती है। लाइको के रोगी को प्रायः कब्ज रहती है। भोजन के बाद और शाम को ४ बजे से ८ बजे तक रोग वृद्धी रहती है।

चायना—३०, २००—चायना में पूरे पेट में वायु होती है पर विशेषता यह है कि डकार आने पर रोग लक्षण कम नहीं होते हैं बल्कि बढ़ते ही हैं।

स्टेनमनेट३०, २००—खट्टी डकारों में स्टेनम से लाभ होता है।

कल्केरिया कार्ब ३०,२०० खट्टी डकारें, खट्टी कै (वमन) होती है, मुंह से खट्टा पानी आता है, कलेजे में जलन होती है। यदि उपरोक्त उपसर्गों में रोगी की प्रकृति कल्केरिया कार्बकी होवे तो यह दवा पूर्ण आरोग्य करती है।

नेट्रमफास—६×३० यह अम्लभाव की उत्तम दवा है। इसका प्रयोग वायोकैमिक और होमियोपैथिक दोनों में होता है। दूध और चीनी खाने के कारण अम्ल का भाव, खट्टी डकारें आवें, मल में भी खट्टी गंध रहती है। साथ में क्रिमी के उपसर्ग भी रह सकते हैं।

रियूम ६, ३०—श्वास, पसीना, मल, वमन, सबमें खट्टी गंध आती है। बच्चों के शरीर से भी खट्टी गंध आती है। बच्चे को चाहे जितना नहला-धुला लिया जावे, बच्चों के दांत निकलने के समय खट्टी वमन और दस्त।

रोबिनिया ३, ६, ३०—पेट में जलन, बहुत खट्टी डकार आती हैं वमन और दस्त में खट्टी गंध रहती है।

सल्फ्युरिकएसिड ३, ६, ३०—खट्टी डकारें आती हैं, वमन में मुंह दांत खट्टे हो जाते हैं। (रोबिनिया) कलेजे में जलन होती है।

वायोकैमिकमिश्रण—कल्केरिया फास ३×या १२× कालीम्योर ३× कालीफास ३× नेट्रमम्यूर ३× नेट्रमफास ३×नेट्रमसल्फ ३×साईलीसिया १२× फेरमफास १२ सभी दवाइयों को समभाग मिलाकर मिश्रण तैयार कर लेवें।

मात्रा—५ ग्रेन दवा को १ पाव सुपुम जल में मिलाकर उस जल की ४ मात्रा करके दिन भर में ४ बार पिला देवें।

नोट—दवा मिलाये हुये जल को दुबारा गरम नहीं करना चाहिये। अम्लपित्त के रोगी को दाल, मिर्च, खटाई आदि का त्याग करना चाहिये।

विवर्णता—निदान एवं चिकित्सा

विवर्णता का परिचय—आयुर्वेद के मत से वस्तुतः विवर्णता को पृथक से कोई रोग संज्ञा देकर विवेचन नहीं किया गया। रक्तज रोगों में तथा अन्य रोगो में यह उपद्रव, लक्षण, स्वरूप आदि के प्रकार से सम्मिलित की गई है। रक्त की लालिमा कांति अथवा सवर्णता में जब कोई परिवर्तन आजाता है, तब वह विवर्णता ही कहलाती है। वर्ण त्वचा का धर्म है। अतः त्वचा की विकृति उत्पन्न होने पर भी विवर्णता आजाती है। वास्तविक रंग का फीका पड़ जाना या बदल जाना भी विवर्णता के अन्तर्गत आता है। कष्टों की अनुभूति तथा दोषों के या रोगों के प्रभाव से भी विवर्णता स्पष्ट हो जाती है। रोगों के पूर्व रूप आदि में भी यह विवर्णता पाई जाती है। जैसे ज्वर के पूर्वरूपों में आया है "श्रमोऽरति विवर्णत्वमिति" अर्थात ज्वर के पूर्व रूपों में श्रम, बेचैनी और विवर्णता होना इत्यादि। रंग का फीका पड़ना भी विवर्णता है जैसे रक्तार्श के लक्षणों में कहा है कि "हीन वर्ण बलोत्साहो" अर्थात वर्ण की हीनता या रंग का फीका पड़ जाना माना है। विसूचिका के लक्षणों में भी विवर्णता पद आया है। जैसे—"वैवर्ण्यं कम्पोहृदये रुजश्च" अर्थात विसूचिका में विवर्णता कम्पन आदि लक्षण होते हैं। इसी प्रकार से अभ्यन्तर क्रमियों के सामान्य लक्षणों में भी विवर्णता पद आया है। जैसे 'ज्वरो विवर्णता शूलमिति' अर्थात अभ्यन्तर क्रमियों के सामान्य लक्षणों में ज्वर विवरणता और शूल का होना, पाया जाता है। इसी प्रकार से मृत्तिकाजन्य पांडु रोग की सम्प्राप्ति में भी कहा है कि "पांडु रोगं करोत्याशुवल वर्णाग्नितानशनम्" अर्थात वल, वर्ण तथा अग्नि को नष्ट करने वाले पाण्डु रोग को उत्पन्न करती है। अतः यहां पर वर्ण की हानि विवर्णता ही है। यही बात हमें उरःक्षत के लक्षणों में मिलती है। जैसे—"क्रमाद् वीर्यं वलं वर्णोरुचिरग्निश्चहीयते" अर्थात उरःक्षत में क्रमशः वीर्य, वल और वर्ण की हीनता उत्पन्न हो जाती है, इस प्रकार से विवर्णता यहां पर भी विद्यमान है। यही विवर्णता हमें छिन्न-श्वास के लक्षणों में भी मिलती है जैसे—"विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः" अर्थात छिन्न श्वास में रोगी अचेत, शुष्क मुख वाला और जो विवर्ण होता है इत्यादि। वातरक्त रोग के पूर्वरूपों में भी विवर्णता पाठ आया है। जैसे—"वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वाता सृक्पूर्वलक्षणम्" अर्थात त्वचा का विवर्ण होजाना और चकत्ते पैदा होना वातरक्त का पूर्व लक्षण है। इत्यादि प्रकार के अनेक उदाहरणों से स्पष्ट है कि विवर्णता रोगों के लक्षणों, पूर्वरूपों और विकृति आदि के अंश रूप से ही विद्यमान है।

विवर्णता की चिकित्सा—विवर्णता जिस-जिस रोग में प्राप्त है उसी-उसी रोग की चिकित्सा करने पर नष्ट हो सकती है अन्यथा नहीं। साधारण अवस्था की विवर्णता निम्न प्रयोग से अवश्य नष्ट हो जाती है।

प्रलेप योग—फिटकरी, कबीला, मुर्दासंग, सौंफ, अमलतास के फूल, त्रिफला, दोनों हल्दी, गेरू, सेंधा नमक, आटा और तेल इन सब चीजों को समान भाग लेकर कूट पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर तेल में लेप सा बनाकर स्थान विशेष पर उबटन सा करके अन्त में लेप करदें और प्रातः चमेली के क्वाथ से धो डालें। ऐसा सात दिन करने से बाह्य विवर्णता अवश्य नष्ट हो जाती है। और वर्ण का निखार आता है। कांति चमक उठती है।

अन्तः सेवन के लिए—आन्तिरिक कारण को दूर करने के लिए सारिवाद्यासव २ तोला के साथ १ रत्ती त्रिवङ्ग, १ रत्ती मुक्ताशुक्ति पिष्टी और १ रत्ती रस माणिक्य सेवन करने से साधारण विवर्णता अवश्य नष्ट हो जाती है।

होमियोपैथिक

परिचय—वर्ण का फीकापन रोग का लक्षण मात्र है। होमियोपैथिक में किसी भी एक लक्षण पर दवा का निर्वाचन होना असंभव है। विवर्णता को सुनकर कोई भी होमियोपैथी दवा नहीं लिख सकता है जब तक कि रोगी के सभी शारीरिक एवं मानसिक और प्रकृतिगत लक्षणों को नहीं जान लेवें।

इस विषय सूची में होमियोपैथिक मतानुसार चिकित्सा लिखना मेरे लिये बड़ी कठिनाई है फिर भी लिख रहा हूँ इसे आप पसन्द करें या नहीं।

चिकित्सा

यदि रोग का कारण रक्ताल्पता होवे तो निम्न दवा-इयों में से लक्षण के अनुसार निर्वाचन करके दवा देवें।

फेरममेट, फेरमफास, कल्केरिया फास, ग्रेफाईटिस, लेसिथिन, चायना, कार्वोभेष आदि।

यदि रोग का कारण कामला (जोण्डिस) होवे तो निम्न दवाइयों का प्रयोग करके देखें या यदि रखें, रोगी के मानसिक शारीरिक लक्षणों का सादृश्य होना अनि-वार्य है।

चेलीडोनियम्, नक्सवोमिका, क्रोटेलस, डिजिटेलिस डालिकस, हाईड्रस्टीस, फासफोरस, मार्कसोल, नेट्रमसल्फ पोडोफाईलम्, कार्डुयस् आदि।

यदि रोग का कारण सिफलीटिक दोष होवे तो एण्टी सिफलीटिक ग्रुप की दवाइयों में से दवा का सम लक्षण निर्वाचन करें। इसी प्रकार और भी अनेकों कारण हो सकते हैं। विवर्णता रोग नहीं है यह तो रोग का लक्षण मात्र है।

प्यास-निदान एवं चिकित्सा

प्यास का परिचय—यद्यपि इसी अङ्क में आगे श्वास-संस्थान के रोगों में तृष्णा रोग पर वर्णन किया गया है। सामान्यतया प्यास को तृष्णा के ही अन्तर्गत माना जाता है। केवल भाषा का ही अन्तर है। किन्तु हमने यहां प्यास रक्तज रोगों में वर्णित की है। क्योंकि रक्त के प्रकोप अथवा विकृति के कारण किसी भी रक्तज-रोग में इसका होना संभव है। जैसे क्षतजदाह रोग में। "तेनान्तर्देहातेऽत्यर्थं तृष्णा मूर्च्छा प्रलापवान्" इसीप्रकार से क्षतजकास में—"पर्वभेद ज्वर श्वास तृष्णा वैस्वर्यपीडितः" तथा पित्तज कास में "तिक्त मुखस्तृषार्तः" और रक्त पित्त के उपद्रवों में "तृष्णा कोष्ठस्य भेदः" तथा आगन्तुज विद्रधि में "ज्वरस्तृष्णाच दाहश्च जायते नस्य देहिनः"।

(१) पच्यमान शोथ में—'ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम्'।

(२) व्रण के उपद्रवों में—'ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः।'

(३) रक्त प्रदर में—"तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो-मूर्च्छा मदतरेषा।

(४) रक्तज दाह रोग में—"स उष्यते तृष्यते च ताम्राभस्ताम्र लोचनः"।

इत्यादि प्रकार से रक्तज रोगों में जो तृष्णा पाई जाती है, वही तृष्णा यहां प्यास शब्द से सम्बोधित की गई है। यह उपद्रव रूप, लक्षण रूप और पूर्वरूपादि तथा निदान आदि के अन्तर्गत पठित है। अतः इसके निदान और चिकित्सा आदि उसी-उसी रोग की चिकित्सा के अनुसार करने से लाभ हो सकता है। क्योंकि यह प्यास रोग की प्यास है, अतः रोग के नष्ट होने पर ही नष्ट हो सकती है सामान्य प्यास, भोजन करते समय, भोजन के परिपाचन के समय व्यायाम आदि करने से खुश्की आने पर मार्ग चलते हुए व्यक्ति का धातुक्षय होने पर विशेष प्यास, उष्ण ऋतु के प्रभाव से भी प्यास उत्पन्न होती है। सामान्य प्यास की चिकित्सा में केवल शीत जल पीलेना ही पर्याप्त है अथवा दूध की लस्सी, दही की पतली लस्सी, कोई शरबत, पानक आदि ही पी लेने से तत्काल सामान्य प्यास का शमन होजाता है। बर्फ चूसने से भी सामान्य प्यास मिट जाती है। फलों के रस, गन्ने का रस सेवन करते ही प्यास बुझ जाती है और तृप्ति हो जाती है। विशेष प्यास जिसको रोग रूप माना गया है, उसका वर्णन आगे तृष्णा के नाम से किया गया है। अतः उसका परिचय, निदान लक्षण, चिकित्सा, तत्सम्बन्धी प्रयोग आदि वहीं पर पढ़ें। रक्तज प्यास रक्त में पानी की कमी होने पर उसकी पूर्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ करती है। अतः रोगानुसार चिकित्सा ही वहां पर उचित रहती है।

तृष्णा--निदान एवं चिकित्सा

रोग परिचय—आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि—

सततं यः पिबेद् वारि न तृप्तिमधिगच्छति।
पुनःकांक्षति तोयचं तं तृष्णार्दितमादिशेत्॥

अर्थात्—तृष्णा का स्वरूप—जो मनुष्य निरन्तर पानी पीने पर भी तृप्ति अनुभव नहीं करता, फिर भी पानी को चाहता है, उसे तृष्णा से पीड़ित जानें।

अतिशय विक्षोभ, शोक, श्रम, मद्य पान, रूक्ष, अम्ल शुष्क उष्ण, कटुरस के सेवन से, धातुओं के क्षय से, लंघन से, सूर्य की गरमी से, पित्त और वायु अतिशय बढ़कर एक साथ मिलकर मनुष्यों के जलवाही स्रोतों को दूषित करते हैं। जलवाही स्रोतों के दूषित होने से अति बलवान् तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा सात प्रकार की है, यथा वात, पित्त, कफजन्य तीन व्रण निमित्तजन्य, रसक्षयजन्य, आमसमुद्धवा और सातवीं स्निग्धादि भोजन निमित्तजा। इनके लक्षण इस प्रकार हैं। तालु, ओष्ट, कण्ठ, मुख का सूखना दाह, संताप, भ्रम, व्यर्थ की बकवास, ये तृष्णाओं के पूर्वरूप है, तृष्णाओं के उत्पन्निकाल में ये पूर्वरूप विशेष रूप में होती है। वात जन्यतृष्णा में मुख में शुष्कता सिर और आंख प्रदेश में चुभने का सा दर्द, स्रोतों का अवरोध, मुख में विरसता और शीतल जल से प्यास और भी बढ़ती है। पित्तजन्य तृष्णा में मूर्छा, प्रलाप, अरुचि, मुखशोष, आंख में पीलापन, निरन्तर दाह, शीत की चाह मुख में तिक्तता, तथा धूमोद्गमन की भांति मुख से काली वाष्प बाहर आती है। कफजन्य तृष्णा में कफ से पित्त और वायु का अवरोध हो जाने से शुष्क हुआ कफ भी तृष्णा को उत्पन्न करता है। इससे निद्रा, उदर में भारी पन, मुख में मधुरता होती है। प्यास से पीड़ित मनुष्य अति मात्रा में सूख जाता है। कण्ठ में मलवृद्धि, मुख में विच्छिलता, शीत पूर्वक ज्वर वमन अरोचक, हाथ-पैर सिर में भारीपन, हाथ पैरों में सूजन, अविपाक ये लक्षण इस कफ जन्य तृष्णा से पीड़ित मनुष्य के होते हैं, वह जल की अधिकता की चाह नहीं करता व्रण वाले रोगी में वेदना के कारण तथा रक्त के निकल जाने से चौथी क्षय जन्य तृष्णा उत्पन्न होती है। इस तृष्णा से पीड़ित होने पर रोगी दिन रात में लगातार पानी पीता हुआ दुःख से समय काटता है। रस के क्षय से जो तृष्णा उत्पन्न होती है। उसे क्षयज तृष्णा कहते हैं। इस तृष्णा से पीड़ित मनुष्य सूखता जाता है, उसे जलन होती है। पानी की बहुत चाह करता है। इस तृष्णा में रस क्षय के सम्पूर्ण लक्षण भी जानने आवश्यक हैं। आम जनित तृष्णा में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं। साथ में हृदय में दर्द, थूक का आना शिथिलता भी होती है। स्निग्ध, अम्ल और लवण भोजन और भारी भोजन अतिशय प्यास को उत्पन्न करता है क्षीण नष्ट मन वाले, वहरे, तृष्णा से जिसकी जिह्वा बाहर निकल आई हो इस प्रकार के रोगी की चिकित्सा न करें। तृष्णा के बढ़ा होने से, उदर के भारी होने पर पिप्पली मिश्रित जल से रोगी को वमन करायें। अनार, आम्रातक, विजौरा इनको दूसरे व्यक्ति इसके सामने खायें, जिससे इसमें लालच उत्पन्न हो। सम्पूर्ण रस वीर्य वाले शीतल उपचारों से वात-पित्त कफ जन्य तीनों तृष्णायें निवारण करें। मुख की विरसता में मद्य, कांजी, विजौर आदि के अम्ल द्रव्यों से गण्डूप करायें। आंवले के चूर्ण से भी गण्डूष करायें आंवले का चूर्ण मलें। स्वर्ण चांदी लोष्ठ, सिकता आदि को अग्नि में लाल गरम करके पानी में बुझायें। जब पानी गुनगुना हो जाये, तब तृष्णा रोगी पीये अथवा शीतल जल में शर्करा या मधु मिलाकर पीयें। पांच द्रव्य वाले जो पंचमूल कहे गये हैं। उनमें या विदारी गंन्धादि प्रथमगण में सिद्ध किया गुन गुना पानी पीयें इस प्रकार करने से वात जन्य तृष्णा शीघ्र शान्त होती है। उत्पलादि, सारिवादि, काकोल्यादि, पित्तनाशकगणो से बनाया कषाय शीतल करके मधु और शर्करा मिलाकर पीयें। अथवा जीवनीयगण की औषधियों से सिद्ध किया दूध पित्त जन्य तृष्णा को शीघ्र दूर करता है। बिल्व, अरहर, लघुपंचमूल और दर्भ से सिद्ध पानी कफ जन्य तृष्णा को नष्ट करता है। नीम पत्तों के उष्ण पानी से कफज तृषा में वमन कराना उत्तम है।

सब प्रकार की तृषाओं में पित्तनाशक विधि बरतें इस पैत्तिक विधि से ये तृष्णायें नष्ट हो जाती हैं। पकी गूलर का स्वरस या पकी गूलर का क्वाथ इनमें शर्करा मिलाकर पीयें। सारिवादि वर्ग के क्वाथ को शीतल करके प्यास की पीड़ा में पीना चाहिए। कसेरु, सिंघाड़ा, कमल, केला, पद्ममूल, ईख से सिद्ध किया जल (इनका क्वाथ) क्षतज तृष्णा को नष्ट करता है। लाजा, कमल, खस, चन्दन इनको पानी में घोलकर खुली वायु में रात भर रक्खा रहने देवें। इसको प्रातः निथारकर इसमें उदार-गन्धा, सुगन्धित पुष्पों से सुवासित करके, शर्करा और मधु के साथ मिलाकर प्रचुर द्राक्षा घोलकर तृष्णा से पीड़ित रोगी को दें। पञ्चतृणमूल को सारिवादिगण के साथ,

उत्पलादिगण को विपरीतकषादिगण के साथ पूर्वोक्त विधि से पानी में भिगोकर खुली वायु में रात भर रखकर प्रातः छानकर, मधु-शर्करा मिलाकर प्रचुर द्राक्षा मिलाकर देवें। मधुकपुष्पादि एवं क्षीरि-करीतन इन छः द्रव्यों से पूर्वोक्त विधि के अनुसार रात में भिगोकर प्रातः निथारकर मधु शर्करा मिलाकर देना हितकारी है।

तुण्डिकेरी एवं ग्राम्यकपास के फलों को पीसकर पानी में घोलकर पीयें। क्षयजन्य तृष्णा को क्षतोद्भव वेदना को शान्त करने से, मांस रसों के पान से, हिरण आदि के रक्त के पान से शान्त करें। क्षयजन्य तृष्णा को दूध से निकाला घृत या दूध मिला घृत, मांस का सोरवा, मुलैठी का पानी शान्त करता है। आमजन्य तृष्णा में पिप्पल्यादि द्रव्यों के साथ विल्व और वचा मिलाकर क्वाथ करके पिलायें। अम्बाडा, भिलावा, बचा मिलाकर क्वाथ करके पिलायें, अम्बाडा, भिलावा, बला मिश्रित दीपनीय द्रव्यों का कषाय आमजन्य तृष्णा में पिलायें। भारी अन्न से उत्पन्न तृष्णा को वमन से शान्त करें। आमजन्य तृष्णा में वमन करायें, क्षयजन्य तृष्णा में वमन न करायें। थकान से उत्पन्न तृष्णा को मांस रस या गुड़ का शरबत अथवा घृतमिश्रित पानी में घुला सत्तू नष्ट करता है।

आहार निरोधजनित तृष्णा में उष्ण यवागू को पीयें। अथवा पित्त प्रबल तृष्णा में शीतल मन्थ पीये। मद्यपी मनुष्य को मद्यजनित तृष्णा को आधा जल मिला मद्य नष्ट करता है। शर्करा मिश्रित जल, गन्ने का शीतल रस ये तृष्णा से उत्पन्न तृष्णा को नष्ट करते हैं। वातादि जनित तृष्णाओं की शान्ति के लिए जो-जो उनके अपने-अपने कषाय कहे हैं। उन कषायों से उन दोषों में वमन करायें। ज्वर में कहे पाचन देवें। लेप, अवगाहन, परि-षेचन, शीतलघरों का सेवन, विरेचन, दूध, मांसरस, घृत, मधुर एवं शीतल लेह सब प्रकार की तृष्णाओं में बरतें।

अनुभूत योग-तृष्णारिपु—प्रवालपिष्टी, मुक्तापिष्टी, वैक्रान्तभस्म, माणिक्यभस्म, स्वर्णभस्म ये सब १-१ माशा लेकर खरल में डालकर बरगद के कोंपल की कल्क २ तोला, कूठ का कल्क ६ माशा, धान की खील का चूर्ण ३ तोला, नीलोफर ताजा का कल्क २ तोला, लाल चावलों का ताजा भात ५ तोला, मुलहठी का घनसत्व २ तोला, खम्भारी के ताजे फलों का घनसत्व २ तोला, मुनक्का का कल्क २ तोला, पके गूलर के फलों का कल्क ३ तोला, मिश्री ४ तोला मिलाकर पहली भावना बेर के स्वरस की, दूसरी भावना अनार फल ताजा स्वरस की, तीसरी भावना इमली के पत्ते की, चौथी भावना खश के पानी की, पांचवी भावना लाल चन्दन के शीत कषाय की, छठी भावना गूलर के हिम कषाय की और सातवीं भावना गन्ने के रस की देकर १-१ माशा की गोलियां बनालें। छाया में सुखालें। किसी भी प्रकार की तृष्णा अथवा प्यास से पीड़ित रोगी को तीसरी गोली के बाद ही आराम हो जाता है। सात गोली से अधिक आज तक हमारे अनुभव में कोई रोगी नहीं आया। शतप्रतिशत सफल योग है। अनुभव करके देख लें। शराब की प्यास और क्षय की प्यास की यह गारण्टी की दवा है।

पांच प्रकार की तृष्णा कही गई है (वातजन्य, पित्त जन्य, आमजन्य, क्षयजन्य और उपसर्गात्मिक)। सुश्रुत ने सात प्रकार की तृष्णा मानी है। वातज, पित्तज, कफज क्षतज, क्षयज, आमज और भक्तज (अन्न से उत्पन्न)।

क्षोभ(मानसिक और शारीरिक विक्षोभ, का घबराहट उद्वेग) से, भय से, श्रमसे, शोक से, क्रोध से, उपवास से, मद्यपान से, क्षार, अम्ल, लवण, कटु, उष्ण, रूक्ष और शुष्क अन्न को सेवन करने वालों में रसादि धातुओं के क्षय से रोग के कारण उत्पन्न हुई कृशता से वमन और विरेचन के अतियोग से सूर्य के संताप या धूप से पित्त और वायु कुपित होकर कफ आदि धातुओं, रस वाहिनी धमनियों, जिह्वामूल, गला, तालु और अन्याशय को शुष्क करके मनुष्यों के शरीर में अति प्रबल तृष्णा को उत्पन्न करते हैं। चक्रदत्त ने दो प्रकार की तृष्णा कहती है। एक मानसी तृष्णा यह शरीर में इच्छा और द्वेष रूप होती है। वह दुःखः से उत्पन्न होती है, दूसरी देहगत दोषों से उत्पन्न होती है।

अति बलवान पित्त और वायु दोनों बार-बार पिये हुये जल को शुष्क कर देते हैं। अतः तृष्णा शान्त नहीं होती। सब प्रकार की तृष्णाओं में मुख का शुष्क होना होता है। यही सब तृष्णाओं का प्रारूप है। सदा पानी की इच्छा प्रबल बनी रहती है। यह तृष्णा का लक्षण है।

तृष्णाचिकित्सा—जलों के क्षय होने से तृष्णा मनुष्य को शीघ्र मार सकती है। अतः मधु के साथ वर्षा जल अथवा उसके समान गुण वाला अन्य जल मधु के साथ मिलाकर पीना चाहिये। इसके लिये हंसोदक का व्यवहार करना चाहिये। "दिवार्ककिरणै र्जुष्टं जुष्टमिन्द्र करैर्निशि वायुनास्फालितंशश्वत् तत्तुल्यं गगनाम्बुना" हंसोदक लक्षण। कूप एवं बावली का शुद्ध जल जिसमें से नित्य बहुत पानी निकाला जाता है अथवा वर्षा जल उत्तम है। श्रृतशीत पकाकर शीत किया हुआ भी उत्तम है। ऊर्ध्वविशेष में शर्करा मिलाकर देना चाहिये।

कुश, कास, दर्भ, शर और ईख इनकी जड़ों के क्वाथ में शर्करा मिलाकर देना चाहिये।

लाजाओं (भुजिया) के सत्तुओं से वर्षा के जल में मन्थ बनाकर मधु और शर्करा के साथ पीना चाहिये। जौ को भून कर इनसे मांड बनाकर शीतल करके मधु और शर्करा के साथ देना चाहिये। चावलों की पेया और कोदों की पेया देनी चाहिये या उष्ण दुग्ध के साथ मधु शर्करा से मिश्रित अन्न देना चाहिये। भोजन में व्यञ्जन के लिये लवण और अम्ल नहीं देना चाहिये। पंच तृषा मूल मूंज के क्वाथ से तथा फालसे के रस से सिद्ध दूध को मधु और शर्करा के साथ मिलाकर देना चाहिये। तृष्णा पीड़ित रोगी को चाहिए कि सौ बार धोया हुआ घृत, शरीर पर लेप करके शीतल जल में अवगाहन करे, दूध पीये। मूंग मसूर और चने के यूषों को घृत से युक्त देवें।

पान अभ्यङ्ग और नस्य—(१) जीवनीयगण की औषधियों तथा मधुर द्रव्यों से पकाये दूध में मधु और शर्करा मिलाकर तथा तिक्त और शीत द्रव्यों से पके दूध में मधु और शर्करा मिला कर पीने तथा अभ्यङ्ग के योगों में वरतना चाहिए (२) इस प्रकार के दूध से घृत निकाल कर इस घृत को नस्यकर्म में, पीने में और अभ्यङ्ग में प्रयुक्त करना चाहिए। (३) स्त्री के दुग्ध में शर्करा मिलाकर अथवा (४) ऊंटनी के दूध में शर्करा मिलाकर नस्य देना चाहिए। इसी प्रकार गन्ने के रस से नस्य देना चाहिए।

गण्डूष योग्य ६ द्रव्य(गण्डूष, मुख में द्रव्य भर कर बिना चलाये धारण करने को कहते हैं)न्यूनातिन्यून धीरे-धीरे २०० गिनती तक धारण कर के निकाल देना चाहिए। दूध, गन्ने का रस, गुड़ का शरबत या शर्करा का शरबत, मधु का शरबत, सीधु, मद्य, माध्वीक, मद्य, वृक्षम्ल, गजगल का रस इनमें से किसी भी वस्तु से गण्डूस करने पर तालुशोप नष्ट होता है।

प्रलेप-(१) जामुन, आम्रातक (आंवड़ा)बेर अम्लवेत इसके कोमल पत्तों से बनाया अम्ल प्रलेप हृदय मुख और सिर पर लगाने से मूर्छा, चक्कर आना और तृष्णा नष्ट होती है। (२) अनार दाना, कैथ, लोध, विदारीकन्द और बिजौरे नीबू का रस इनसे किया लेप मूर्छा भ्रम और तृष्णा को नष्ट करता है। (३) हल्दी आंवला इनको घृत और कांजी में मिलाकर शिर और हृदय पर लेप करने तृष्णा, मूर्छा नष्ट होती है।

आम तथा जामुन के पत्तो अथवा गुठली के क्वाथ में मधु मिश्रित कर पीने से तृष्णा एवं वमन शांत होती है वड़ की नवीन कोपल, खांड, लोध, अनारदाना, मुलहटी और मधु इन्हें एकत्र पेपण कर तण्डुलोदक के साथ पीने से वमन तृष्णा शांत होती है। मातुलुङ्ग की केशर मधु तथा अनारदाना इन्हें एकत्र पीसकर कवल धारण करने (इतना द्रव्य मुख में भरे जो साधारणतया हिलाने से हिले उसको कवल कहते है। जो न हिल सके गण्डूस कहते हैं) से क्षण में असह्य तृष्णा शान्त होती है। मधु के गण्डूस को धारण करने से दाह तृष्णा दोनों शांत होते है।

लाल चावलों को मधु के साथ खाने से तृष्णा और वमन दोनों शांत होते हैं।

पिपासित मनुष्य को मधु उष्ण काल में मृत्तिका के घट के शीतल जल को कण्ठ तक पिलावें, वमन होने पर पिपासा शांत होती है। तृष्णा से अत्यन्त पीड़ित मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है अतः मृत्यु हो जाती है। अतएव सम्पूर्ण अवस्थाओ में प्यास लगने पर जल अवश्य पीने को देना चाहिए।

लोकेश्वर रस-आम तथा जम्बु की गुठली के क्वाथ में मधु को मिश्रित कर इसके साथ रस सिन्दूर को सेवन करे। मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक। शीतल स्थान पर बैठा कर मधु मिश्रित शीत जल के गण्डूस धारण कराना चाहिए।

महोदधि रस—ताम्र भस्म, वंग भस्म, पारद, हरिताल तुल्य इन्हें वटांकुर रस से मर्दन कर वटिका बनावें। मात्रा ¼ रत्ती से ½ रत्ती तक । इसके सेवन से तृष्णा नष्ट होती है

कुमुदेश्वर रस—ताम्र भस्म दो भाग, वंग भस्म १ भाग इन्हें मुलहठी के क्वाथ में सात बार भावना दे देकर शुष्क कर ले । मात्रा ¼ रत्ती । अनुपान-लाल चन्दन, अवन्त मूल, मोथा, छोटी एला, नागकेशर मिश्रित १ तो., लाजा १ तो. पाकार्थ जल ३२ तोले शेष १६ तोला । इस क्वाथ में खांड तथा मधु मिलाकर अनुपान के तौर पर देना चाहिए यह तृष्णा क्षय का निवारण करता है ।

तृष्णाहर रस—हरताल, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक तीनों को समान मिश्रण कर युक्ति से भस्म करके मधु के साथ, मात्रा ½ रत्ती, भोजन से २ घण्टे पूर्व खाना चाहिए ।

होमियोपैथिक

परिचय—प्यास भी अनेकों रोगों में एक लक्षण मात्र है । नीचे हम उन दवाइयों का लक्षण (सिर्फ प्यास का ही) लिख रहे हैं जिनमें प्यास का लक्षण है ।

एसेटिक एसिड ३०, २००—ज्वर में प्यास नहीं रहती है और सभी रोगों में प्यास रहना इस दवा की विशेषता है ।

आर्सेनिक एल्वम् ३०, २००—आर्सेनिक में प्यास का लक्षण है किन्तु उसकी विशेषता यह है कि रोगी थोड़ा थोड़ा जल पीता है उसे भय रहता है कि ज्यादा जल पीने से वमन न होजावें । यह प्यास के लक्षण नये रोगों में ही दिखाई देता है, पुरानी बीमारियों के रोगियों में प्यास नहीं रहती है ।

एकोनाइट ३०, २००—तेज प्यास के साथ बेचैनी मृत्युभय, एवं तेज ज्वर रहता है । रोग का अचानक आक्रमण होता है ।

फासफोरस ३०, २००—ठंडे पानी पीने की अति इच्छा रहती है पर विशेषता यह है कि पेट में पानी गरम होते ही वमन हो जाती है ।

ब्रायोनिया ३०, २००—ब्रायोनियां में भी प्यास का लक्षण है रोगी का मुंह [illegible] है अतः वह ज्यादा मात्रा में पानी पीता है ।

मार्कसोल ३०, २००—जीभ [illegible] ती है मुंह से लार गिरती है पर प्यास अधिक रहती है ।

पल्सेटिला ३०, २००—पल्सेटिला के [illegible] गणी का मुंह सूखा रहता है पर प्यास नहीं रहती है । यह लक्षण मार्कसोल नामक दवा से बिपरीत है ।

लाईकोपोडियम ३०, २००—लाईकोपोडियम् का रोगी गरम पेय पीना अधिक पसन्द करता है ।

सल्फर ३०, २००—खाना कम खावे पर पानी अधिक पीता है ।

उपरोक्त दवाइयों के अतिरिक्त और भी बहुत सी दवाइयां हैं जिन में प्यास का लक्षण है । जैसे कि बेलाडोना, नेट्रमम्यूर, कैमोमिला, स्पंजिया, सीपिया ऐसिडनाईट्रीक,

भूख की कमी के साथ प्यास—एमन कार्ब, कल्केरिया, स्पाई जे, ऐसिडनाईट्रीक ।

जल पीने से अरुचि पर प्यास—बेलाडोना, केन्थरिस, हायोसायमस, स्ट्रमोनियम, नक्स ।

थोड़ा पानी पीने पर ही तृप्ती—आर्सेनिक ।

शाम के समय प्यास—बूजा, मग्नेसिया कार्ब, सीपिया, नेट्रमम्यूर, जिकम ।

प्रातः प्यास—ब्रायोनियां, ड्रोसेरा, सीपिया ।

रात्री में प्यास—सल्फर, बेलाडोना, ब्रायो, कल्केरि, सिलिका, रसट, ना. एसिड, मेरकार्ब ।

बायोकैमिक मिश्रण—

प्यास अधिक होने पर निम्न मिश्रण देवें—कल्केरिया फास ३X या १२X कल्केरिया सल्फ ३X फेरम फास १२X कालीफास ३X काली फल्फ ३X नेट्रमम्यूर ३X नेट्रम सल्फ ३X समभाग ।

मात्रा—५ ग्रेन सुषुम जल में डालकर ४ बार पिलावें ।

गौरव-निदान एवं चिकित्सा

गौरव का परिचय—गौरव शब्द का अर्थ है, गुरुता । अर्थात् शरीर में भारीपन अनुभव होना । गुरुता कफ के कारण होती है । आमदोष जब रक्त में प्रविष्ट हो जाता है, तब यह गुरुता या गौरव अनुभव में आता है । प्राय:

सभी रोगों में यह गौरव, कारण, पूर्वरूप, रूप, उपद्रव आदि के रूप में विद्यमान रहता है। जैसे—
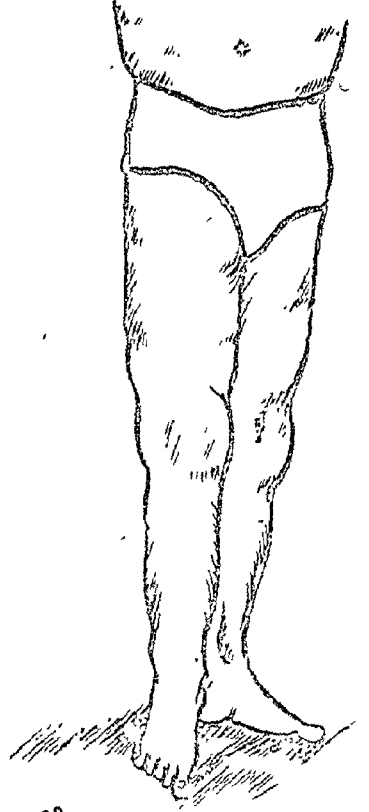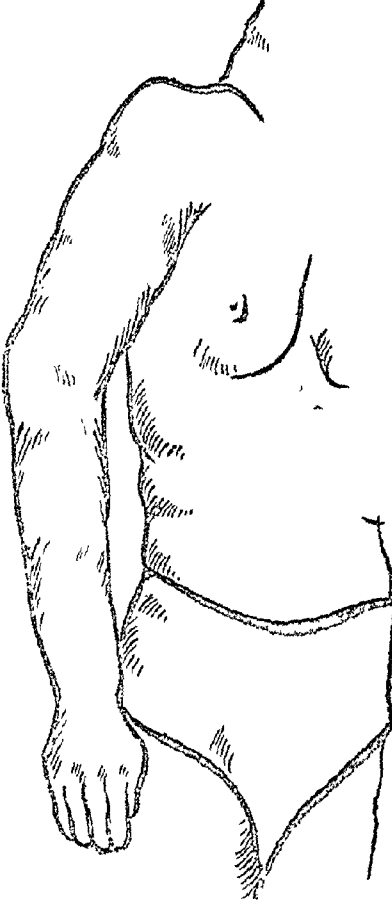
१. ज्वर के पूर्व रूप में—

जृम्भाऽङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः।

२. कफज्वर के लक्षणों में—

गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता।

३. वातश्लेष्म ज्वर में—

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च।

४. प्रलेपक ज्वर में—

प्रलिम्पन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च।

५. आम ज्वर में—

तन्द्रालस्य विपाकास्य वैरस्यं गुरुगात्रता।

६. आमाजीर्ण में—

तत्रामे गुरुतां त्क्लेद शोथो गण्डाक्षिकूटगः।

७. सामान्य अजीर्ण में—

ग्लानिगौरवविष्टम्भ भ्रममारुत मूढता।

८. कफज पांडु रोग में—

गौरव- शरीर में भारीपन

कफप्रसेक श्वयथु तन्द्रालस्याति गौरवैः।

९. कफज कास रोग में—

अभुक्तरुग् गौरव कण्डुयुक्तः कासेद्भृशमिति।

इत्यादि प्रमाणों से गौरव का आमदोष पूर्वक उत्पन्न होना और प्रायः सभी रोगों में किसी न किसी स्वरूप से मिले रहना स्पष्ट है। अतः मुख्य रोग का इसको एक अंश माना जाता है। इसीलिए तत्तद् रोगानुसार ही इसका निदान एवं चिकित्सा समझनी चाहिए।

सामान्य गौरव स्वस्थ पुरुष में भी पाया जाता है। जो लोग सदा बैठे ही रहते हैं। व्यायाम आदि नहीं करते, आलस्य के आधीन होकर पड़े रहते हैं, भारी अथवा देर से पचने वाला भोजन करते हैं। स्निग्ध पदार्थों का अति सेवन करते हैं। उन सबको यह गौरव या फिर कहिए कि शरीर गुरुता अवश्य उत्पन्न हो जाती है।

गौरव का लक्षण—

आर्द्रं चर्मावनद्धं वा योगात्रमभिमन्यते ।
तथा गुरुशिरोऽत्यर्थी गौरवं तद्विनिर्दिशेत् ॥

अर्थात् गीले चमड़े से शरीर लिपटा हुआ अनुभव होना और सिर अधिक भारी होना गौरव कहलाता है ।

सामान्य गौरव चिकित्सा—

साधारण अवस्था में जब गौरव उत्पन्न हो जाता है, तब योगासनों का प्रयोग करने से चमत्कारपूर्ण प्रभाव देखने में आता है । योगासनों से शरीर का रक्त संचालन क्रम ठीक हो जाता है और सुस्त पड़े शरीर के अवयव सचेत एवं सचेष्ट हो जाते हैं । शरीर में स्फूर्ति और लाघव का समावेश हो जाने से चित्त में प्रसन्नता और कार्य करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है । यह योगासन पहले किसी जानकार के पास जाकर सीख लेने आवश्यक हैं, यों ही देखा-देखी आसन करने से हड्डी पसली टूटने का भी भय बना रहता है । अतः पहले योगासनों का प्रशिक्षण लेना आवश्यक है । किन्तु योगासन वे ही लोग करें जो आसन करने के योग्य हों । योगासनों में उत्तानपादासन, कुक्कुटासन, गर्भासन, शलभासन, मयूरासन, सिद्धासन, पद्मासन, शीर्षासन, हलासन, सर्वाङ्गासन, सर्पासन और शवासन इन बारह आसनों में से कोई से तीन आसन करने से थोड़े समय में ही गौरव नष्ट हो जाता है अथवा १ रत्ती ताम्रभस्म के साथ २ तोला सारिवाद्यासव पीना चाहिए ।

दाह निदान एवं चिकित्सा

दाह का परिचय—आयुर्वेद में दाह का कारण विधि विपरीत मद्यपान करना लिखा है । किन्तु पित्त के विरुद्ध होने से बिना मद्यपान किए भी दाह हो सकता है । अनेक प्रकार के विषों का प्रयोग हो जाने से भी दाह उत्पन्न हो जाता है । तीक्ष्ण,उष्ण रूप एवं कठोर द्रव्यों के आहार विहार से भी दाह उत्पन्न हो जाता है । वस्तुतः दाह रोग रक्तज है । मद्यपान से होने वाला दाह पित्तज होता है । अतः पित्त के समान ही उसके लक्षण आदि तथा चिकित्सा हैं जैसाकि आचार्य सुश्रुत ने लिखा है कि "पित्तवत् तत्रभेषजम्" सामान्य सिद्धान्त के अनुसार सभी प्रकार के दाहों में पित्त की कारणता सकारण मानी गई है ।

संख्या सम्प्राप्ति—यह दाह रोग सात प्रकार का माना गया है । रक्तज, पित्तज, तृष्णानिरोधज, रक्तपूर्णकोष्ठज, धातुक्षयज, क्षतज और मर्माभिघातज ।

रक्तज दाह—रक्त कुपित होकर सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाता है, अतः शरीर में आग सी लगी अनुभव होती है । तीक्ष्ण प्यास लगती है । शरीर का वर्ण लाल हो जाता है । रोगी के मुख और शरीर से लोहे की सी गन्ध आती है और रोगी स्वयं को अग्नि से व्याप्त समझता है ।

पित्तज दाह—आयुर्वेद में पित्तज दाह का लक्षण पित्त ज्वर के समान कहा है, किन्तु पित्त ज्वर में आमाशय आदि स्थान विकृत हो जाते हैं, परन्तु दाह रोग में ये स्थान सुरक्षित रहते हैं अतः यह अन्तर निकाल कर शेष लक्षणों में समानता मानी जाती है ।

तृष्णानिरोधज दाह—प्यास को रोकने से पानी का अंश सूख जाता है, अतः पित्त की वृद्धि हो जाती है । उस पित्त की उष्णता, गले, तालु, होंठ को खुश्क करके सारे शरीर के भीतर और बाहर दाह पैदा कर देती है ।

रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह—जब कोष्ठ के भीतर रक्तस्राव होकर उष्णता बढ़ जाती है, तब जो दाह उत्पन्न होता है वह रक्तपूर्णकोष्ठज कहलाता है ।

धातुक्षयज दाह—मानव शरीर की रस, रक्त, मांस सप्त धातुओं की क्षीणता हो जाने के बाद भी दाह उत्पन्न हो जाता है । इसमें बेहोशी, प्यास, आवाज का बैठना ये लक्षण विशेष होते हैं । यह बहुत कष्टकारक माना गया है ।

क्षतज दाह—रोगी को उपवास, भूख हड़ताल, शोक आदि करने से दाह उत्पन्न हो जाता है इसमें प्रलाप, प्यास और मूर्च्छा ये विशेष रूप से पाए जाते हैं ।

मर्माभिघातज दाह—जब शरीर में हृदय बस्ति एवं सिर आदि के मर्मस्थानों पर कोई चोट या आघात पहुँचता है तब दाह हो जाता है, किन्तु यह असाध्य होता

है। शीतल शरीर हो और अन्तर्दाह हो तो वह भी असाध्य माना जाता है।

दाह चिकित्सा—शतवार धौत घृत की मालिश करें। जौ के सत्तू अथवा बेर और आंवला से मिश्रित कांजी का लेप करें। कांजी में भिगोए हुए कपड़े से सारा शरीर लपेट देना चाहिए। या खश, चन्दन और सिरके का लेप करें अथवा केले के पत्तों और कमल के पत्तों पर सोवें अथवा फव्वारे के नीचे बैठें, लेटें, आराम करें। स्नान, शीतल वायु का सेवन करना चाहिए। शीतल दूध क्षीरी वृक्षों के काढ़े शीतल करके चन्दन मिलाकर परिषेक स्नान अवगाहन आदि करें। कुशादिपंचमूल, शालपर्णी और जीवकादिगण की औषधियों से घृत अथवा तेल सिद्ध करके खाने, पीने और मालिश के लिए प्रयोग करें। प्रियंगु या मेंहदी या कमलगट्टा की गिरी, लोध, खस, सुगन्धवाला, नागकेशर, तेजपात और मोथा का चूर्ण पीले चन्दन के काढ़े में पीसकर लेप करें। सुगन्धवाला, पद्माख, खश, चन्दन का चूर्ण जल में मिलाकर उसमें बैठें।

अनुभूत योग-दाहरिपु-(विशेष सम्पादक का)—गिलोय सत्व, वैक्रान्त भस्म, मुक्ताशुक्तिपिष्टी, कपूर, चमेली के पत्तों का रस, नीम के पत्तों का रस, स्वर्णभस्म, वड़ की छाल का स्वरस, केला के मध्य भाग का स्वरस, इनमें से स्वरसों की मात्रा १-१ तोला, शेष दो रत्ती प्रत्येक, स्वर्णभस्म १ चावल। इनको पाव भर गोदुग्ध शीतल में मिलाकर पीवें और इन सबको गाय के गोबर में मिलाकर सारे शरीर पर लेप करदें, और शीतल स्थान पर लेटें या बैठें। दो घण्टे बाद लेप बदल दें। ऐसा दो दिन करने से दाह रोग निश्चय ही शान्त हो जाता है, यह हमारा अनुभूत है।

होमियोपैथिक

परिचय—अनेक रोगों में पित्त की अधिकता के कारण अथवा शरीर में किसी प्रकार के विष प्रकोप, रक्त दूषित होने के कारण जलन होती है। नीचे हम उन होमियोपैथिक दवाइयों का विवरण लिखेंगे जिनमें जलन का लक्षण है।

सल्फर ३०,२००,१०००—सलफर को एन्टीसोरिक दवाइयों का राजा बताया है। सोराविष जहां है वहां जलन (दाह) अवश्य है। यह मन की जलन ही तन पर प्रकट होती है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि सोरा मन की दूषित अवस्था का नाम है अतः सोरादोष युक्तरोगी को मन में दूसरों के प्रति जलन होती है (ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि मन की जलन है) इस प्रकार के रोगियों को चर्म रोगादि नाना प्रकार के रोग होते हैं और उनमें जलन होती है। खैर-सल्फर मे जलन का लक्षण सर्वोपरि है रोगी के पूरे शरीर में जलन होती है हाथ और पैर के तलवों में, आंखों में, तालु (सर के ऊपरी भाग) पर जलन होती है रोग का नाम कुछ भी होवे सल्फर के अन्य लक्षणों के साथ यदि जलन का लक्षण रहे वह ठंडे प्रयोग से उपशम हो। रोगी ठंडा चाहता है। तो सर्व प्रथम सल्फर पर ध्यान देना चाहिए यह जलन के साथ ही रोगी को भी आरोग्य कर देगी या इस प्रकार का परिवर्तन ला देगी कि सम लक्षण दूसरी दवा अपना कार्य आसानी से कर सकेगी।

सल्फर में अन्य लक्षणों के साथ ही दाह भी एक प्रधान लक्षण है और उसकी विशेषता है ठंड से उपशम, यदि दाह के साथ गरम से उपशम हो तो आपको सलफर न देकर देना होगा आर्सेनिक।

आर्सेनिक एल्बम् ३०, २००, १०००—आर्सेनिक (संखिया) को कहते हैं, होमियोपैथिक मतानुसार इसको शक्तिकृत किया जाता है। आर्सेनिक में प्यास, बेचैनी, मृत्यु भय और दाह यह लक्षण है पर आर्सेनिक की दाह की एक विशेषता है उसे अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। रोगी को जलन होती है या आक्रान्त स्थान पर जलन की अनुभूति होती है फिर भी वह गरम रहना चाहता है, आक्रान्त स्थान पर भी गरम प्रयोग चाहता है। जैसे हम ऊपर बता चुके हैं कि सल्फर का रोगी ठंडा चाहता है। इस प्रकार की और भी बहुत दवा है जिनमें दाह है और रोगी ठंडा चाहता है पर वहां अन्य लक्षणों के द्वारा प्रभेद निर्णय करके उचित दवा निर्वाचन करना चाहिए। दाह तो एक लक्षण मात्र है दवा का निर्वाचन लक्षण समष्टी पर होता है। नीचे हम इस प्रकार की दवाइयों के बारे में लिखेंगे जिनमें दाह है और ठंड से उपशम भी है। फिर भी अन्य लक्षणों मे वह एक दवा से पृथक हो जाती है।

दवा में रोगी को अनुभव होता है कि जैसे वह आग की चिनगारियों से जल रहा है। रोगी चाहता है कि उसे ठंडे पानी में डाल दिया जावे। आपको रोगी के शरीर को स्पर्श करके आश्चर्य होगा कि वह स्पर्श में ठंडा है। हैजे की हिमांग अवस्था में इस प्रकार के रोगी देखे हैं कि उन पर ठंडा पानी गिराया जावे।

ऐमिलेनम नाईट्रोसम Q,३, ६—आग से जलने की तरह जलन होती है, रोगी सर्दी के मौसम में भी बदन पर कपड़ा नहीं रखता है।

एकोनाईट नेप ३०, २००—जलन, प्यास, बेचैनी और मृत्यु भय रोग का अचानक तूफान की तरह आक्रमण होता है।

कैन्थारिस ३०, २००—पेशाव करते समय और बाद में भयङ्कर जलन होती है। इसके अतिरिक्त गला, छाती, आंतें पाकस्थली आदि में जलन रहती है।

कैप्सिकम ३०, २००—यह दवा लाल मिर्च से तैयार होती है मिर्च लगने पर जिस प्रकार जलन होती है ठीक उसी प्रकार की जलन होने पर लाभदायक है।

लैकेसिस २००, १०००—यह सर्प विष से तैयार किया जाता है रक्त विषाक्त होने पर लक्षणों के अनुसार इसका प्रयोग होता है।

जलन के लिए होमियोपैथिक में करीब १०० के अन्दाज दवा हैं सभी के लक्षण यहां लिखना असंभव है अतः अनेक दवाइयों के नाम लिख रहे हैं। पूर्ण लक्षणों की जानकारी के लिए मेटेरिया मेडिका का अध्ययन करना चाहिए।

ऐन्थ्रासीरम्, टेरेन्टुला, ऐचिनेसिया, ऐपिसमेल, ग्रेफाइटिस, सोरिनम्, सीपिया, मेजेरियम्, पल्सेटिला, कार्बोभेष, कल्केरिया सल्फ, एगारिकस, कूप्रमसल्फ, सेनेगा, आईरिस-वर्स, सैनिकूला, मेडोरिनम्,नेट्रम,सल्फ, वेलाडोना इत्यादि।

अति दुर्बलता—निदान एवं चिकित्सा

अति दुर्बलता का परिचय—दुर्बलता दो प्रकार से होती है। प्रथम पौष्टिक एवं शक्तिदायक आहार बिहार के न मिलने से दुर्बलता अवश्य होती है द्वितीय दुर्बलता का कारण रोग होते हैं। इस बात को सभी जानते हैं कि सभी रोग शरीर में दुर्बलता उत्पन्न करते हैं। अतः वह दुर्बलता तो हुई रोग पूर्विका। उसके निदान, लक्षण, चिकित्सा आदि तत्तद् रोगानुसार ही हुआ करते हैं। रही प्रथम दुर्बलता जो कि पौष्टिक आहार न मिलने के कारण होती है उसमें सभी बातें शामिल हैं, जैसे शरीर का पूर्ण-विकास न होना बुद्धि, स्मृति, वाणी, दृष्टि, कान, नाक आदि की दुर्बलता, पुरुषार्थ की कमी, खून मांस आदि धातुओं की कमी, बल, शक्ति, स्फूर्ति, साहस, उद्यम आदि की कमी, धैर्य, ज्ञान, विचार शक्ति की कमी, कर्म करने की शक्ति की कमी आदि अनेक प्रकार की दुर्बलतायें हैं। नपुंसकता,काम शक्ति की कमी, शीघ्रपतन आदि भी इसी के अन्तर्गत रख लिये जायें तो ठीक होगा। इसकी चिकित्सा इस प्रकार से है—

शास्त्रीय चिकित्सा—द्राक्षासव, सिद्धमकरध्वज, अभ्रकस्वर्णभस्म, भस्म, रजतभस्म, त्रिवंगभस्म, वैक्रान्त भस्म, चन्द्रप्रभावटी, च्यवनप्राश, अश्वगन्धादि चूर्ण,कौंच-

अति दुर्बलता
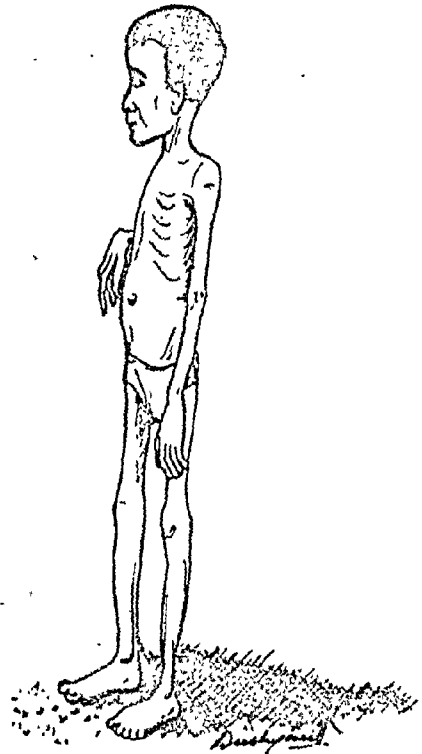
पाक, केसर पाक आदि अनेक औषधियां हैं जिनका प्रयोग करने से मनुष्य की सभी शक्तियां पुनः आ जाती हैं और वह पूर्ण यौवन पा जाता है।

अनुभूत योग—(१) वंशलोचन, केसर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, अकरकरा, सालममिश्री, दोनों मूसली तीन-तीन माशा लेकर गोदुग्ध समान भाग में घोटकर कल्क बना लें

(२) त्रिवंग भस्म, शतपुटी अभ्रक भस्म, शतपुटी, लोह भस्म, कौक्रान्त भस्म, रस सिन्दूर ये पांचों पांच २ ग्राम लेकर भैंस के दूध की चौगुनी मलाई में घोटकर कल्क बनालें।

(३) बादाम, पिस्ता, काजू, असगन्ध, विदारीकन्द, शतावर, खरैंटी, कंघी इन आठों को एक-एक तोला लेकर अंगूर या सेव या नासपाती के चौगुने स्वरस में घोटकर कल्क बनालें।

(४) मण्डूर भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, काशीश भस्म, शिलाजीत, शुद्ध गुग्गुलु, मल सिंदूर इन छः द्रव्यों को दो-दो माशा लेकर भांग के चौगुने काढ़े में घोटकर कल्क बना लें।

(५) शंख पुष्पी, मत्स्याक्षी, गोखरू, वाराहीकन्द, ब्राह्मी, बीजबंद, सकाकुल मिश्री, बहमन सुर्ख, बहमनसफेद तोदरी पीली, तालमखाना इन ग्यारह चीजों को एक-एक तोला लेकर दूब, हल्दी, कुचला इनमें से किसी एक के समभाग क्वाथ में घोट कर कल्क बना लें। फिर इन पांचों ही कल्कों को एकत्र करके प्याज के स्वरस की पहली भावना देवें, फिर दूसरी भावना मुलैठी के काढ़े की देवें। फिर तीसरी भावना पंचकोल के छःगुने काढ़े से देवें। और अन्त में एक माशा प्रमाण की गोलियां बनालें। यह योग परम रसायन है, सर्वोत्तम वाजीकरण है। श्रेष्ठतम वृष्य है। सम्पूर्ण शक्तियों का जनक है। हृदय मस्तिष्क और फेफड़ों को बलशाली बनाता है। उन्माद, अपस्मार स्मरणशक्ति की दुर्बलता, शारीरिक दुर्बलता, कामशक्ति का पतन, हस्त मैथुनजन्य नपुंसकता, अति विषयभोग जन्य नपुंसकता, बुढ़ापे की क्षीणता और कमजोरी क्षय, शोष, सभी प्रकार के प्रमेह, मधुमेह, पुरानी खांसी, पुराना नजला, दमा, पुराना कब्ज, पुरानी संग्रहणी को अस्सी दिन में निश्चय ही नष्ट कर देता है। शरीर का पूर्ण विकास होता है। दुर्बल अंग बलवान बन जाते हैं। स्फूर्ति, साहस और मन की दृढ़ता का संचार हो जाता है। शरीर मांसल एवं सुडौल बन जाता है। बूढे भी इसके सेवन के बाद सीना तान कर चलने लगते हैं। वीर्य दोष के कारण जिनके सन्तान नहीं होती, अथवा होकर मर जाती है अथवा कन्या प्रायः प्रसूति वालों को यह रसायन जितना भी शीघ्र हो सके उतना ही शीघ्र सेवन करना चाहिए। जो किन्हीं कारणों से जीवन से निराश हो गये हैं, उन्हें हम पर पूर्ण विश्वास रखते हुए इसका सेवन तुरन्त करना चाहिए। जिनका विश्वास सभी दवाइयों से उठ गया है, वे सज्जन हमारे कहने से एक सप्ताह सेवन करके देख लें, सही निकले तो आयुर्वेद के चिरन्तन भक्त बन जाएं।

होमियोपैथिक

परिचय—दुर्बलता अनेकों कारणों से होती है। सर्व प्रथम कारण की खोज कर के उसे दूर करना आवश्यक है। दूसरी बात शारीरिक और मानसिक दो प्रकार की दुर्बलता होती है उनका भी प्रभेद कर लेना चाहिए।

चायना ३, ६, ३०—रक्तस्राव अथवा शरीर का तरल पदार्थ बहुत ज्यादा मात्रा में निकलने के कारण होने वाली दुर्बलता में लाभप्रद है। कान में भों-भों आवाज आना, आंखों के चारों तरफ नीला या काला दाग, सर में चक्कर आना आदि कमजोरी के सभी लक्षण रहते हैं।

कार्बोवेज ६, ३०, २००—शरीर के तेजस्कर पदार्थों के क्षय होने के कारण होने वाली दुर्बलता में लाभप्रद है। कार्बोवेज का रोगी खुली हवा अधिक पसन्द करता है क्योंकि उसे आक्सीजन की विशेष आवश्यकता रहती है। पाखाना पतला होता है पेट में वायु अधिक बनती है। रस, रक्त का निकलना, अधिक दिनों तक स्तन पिलाना, कफ गिरना, अतिसार, अधिक सहवास आदि कारणों से दुर्बलता में लाभप्रद है।

एसिड फास ६, ३०, २००—वीर्य क्षय जनित दुर्बलता में विशेष लाभप्रद है जैसे—हस्तमैथुन, स्वप्नदोष आदि के कारण अति वीर्यक्षयजनित दुर्बलता में इसका

प्रयोग होता है। एसिड़ फास के रोगी को पहिले मानसिक दुर्बलता आती है उसके बाद ही शारीरिक दुर्बलता होती है।

पल्सेटिला ६०, २००—मोटी धुल-धुली नम्र स्वभाव की स्त्रियां जिनको मासिक सम्बन्धी शिकायतें रहती हैं या श्वेत प्रदर रोग से आक्रान्त हैं उनके लिये लाभप्रद है।

जेल्सीयम्—यह दवा स्नायविक, दुर्बलता के लिये विशेष उपयोगी है। रोगी के हाथ, पैर, जीभ कांपती है

स्टेनमुमेटालिकम् ३०, २००—पूरे शरीर में तो कमजोरी के लक्षण रहते ही हैं पर वक्ष स्थल में कमजोरी अधिक अनुभव होती है।

केलीकार्ब ३०, २००—त्वचा फीकी व सफेद, आंख मुंह फूले फूले, कमर में दर्द, भोजन के बाद पेट में वायु होती है सर्दी सहन नहीं होती।

एवेना सेटाईवा Q–इस दवा की क्रिया समस्त स्नायु और मस्तिष्क पर होती है। अतः किसी कठिन बीमारी के बाद अथवा अधिक मानसिक परिश्रम के कारण कमजोरी, रति शक्ति का कम होना, सर में दर्द आदि लक्षणों में मदर टिंचर की १५ बूंद सुखुम जल में दिन में २ बार सेवन करने पर लाभ होता है।

नोट—मैं प्रायः स्नायविक दुर्बलता में इस दवा का बराबर प्रयोग करता हूं। इस दवा के गुण के कारण अधिक मानसिक परिश्रम करने वाले इसे बराबर प्रयोग करते हैं। पाठक गण अवश्य लाभ उठावें।

एल्फा एल्फा Q–ऐवेना सेटाईवा की तरह एल्फाएल्फा भी एक बलवर्धक दवा है यह शरीर का वजन भी बढ़ाता है। इसकी मात्रा मदर टिंचर १० से १५ बूंद तक ३ बार रोज है। कमजोरी के लिये एल्फा एल्फाटानिक, एवेना टानिक आदि पेटेण्ट दवा भी निकली है और प्रायः सभी होमियोपैथिक दवा बेचने वालों के पास मिलती है।

नोट—बाजार में प्रायः अनेक होमियोटानिक मिलते हैं उन सभी में प्रायः एवेनासेटा, एल्फा Q एल्फा Q, चायनाQ, हाईड्रेस्टीस Q अश्वगन्ध आदि होते हैं।

ऐसिड पिक्रिक ३, ३०—स्नायु-दौर्बल्य की जितनी भी दवा है। अगर रोग का कारण अति सहवास है तो यह दवा सब में उत्तम है।

रोगी हमेशा सोते रहना चाहता है किसी भी काम को करने की इच्छा नहीं होती है। उदासीनता, सिर में चक्कर आना, आंखों के सामने अन्धेरा आता है कमर में दर्द, किसी भी काम में मन नहीं लगता, सुस्ती रहती है।

फेरममेट ३०, २००—रक्ताल्पता के कारण दुर्बलता, जीभ, ओंठ, सफेद रहते हैं।

फेरमफास ३×६—रक्ताल्पता के कारण दुर्बलता होने पर बायोकैमिक मतानुसार फेरमफास और कल्केरियाफास का प्रयोग करने पर लाभ होता है।

फाइवफास–३×६×१२—इस दवा में बायोकैमिक ५ दवाइयों का मिश्रण है यह है कल्केरियाफास-फेरमफास, नेट्रमफास, कालीफास, मग्नेसिया फास। साधारण कमजोरी में इस मिश्रण के द्वारा लाभ होता है।

कालीफास ६×१२—बायोकैमिक मतानुसार यह स्नायविक दुर्बलता में अन्य दवाइयों के साथ मिलाकर या स्वतंत्र रूप से प्रयोग की जाती है।

उपरोक्त दवाइयों के अलावा और भी बहुत सी दवाइयों में दुर्बलता का लक्षण है। जिस दवा से आपके रोगी के शारीरिक और मानसिक लक्षणों का सादृश्य होवे सर्वोतम टानिक है। सम लक्षण दवा रोग को दूर करके स्वास्थ्य का सुधार कर देगी।

सिरदर्द—निदान एवं चिकित्सा

सिरदर्द का परिचय—आयुर्वेद के मत से सिरदर्द वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तज, कृमिज, क्षयज, सूर्यावर्त्तक, अनन्तवात, अर्धावभेदक, और शंखक इस प्रकार से यह ग्यारह प्रकार का माना जाता है।

सिरदर्द के कारण—वेगों को रोकने से, दिन में सोने से, रात को जागने से, नशीले पदार्थ से, ऊंचा बोलने से, ओस में सोने से, पूर्वी वायु से, अधिक मैथुन कर्म करने से, असात्म्य गंधों को सूंघने से, धुंआ, धूल, धूप से, बर्फ

से, भारी, अम्ल, हरे पदार्थ, अधिक शीतल पदार्थों के सेवन से, सिर में चोट लगने से, दूषित किरणों के लगने से, रोने से, आंसुओं को रोकने से वात आदि दोष कुपित होकर सिर में दर्द हुआ करता है।

वातज सिरदर्द—बिना किसी कारण के सिरदर्द होता हो और वह भी रात को विशेष रूप से होता हो, सिर को बांधने से या सेकने से जो घट जाता है या नष्ट हो जाता है, वह सिरदर्द वायु के कारण होता है।

पित्तज सिरदर्द-जिस सिरदर्द में सिर गरम, अङ्गारों से भरा हुआ जैसा, सिर, आंख, नाक में जलन होती हो या धुंवा सा निकलता हो, शीतोपचार करने से या रात्रि के समय जो कम हो जाए अथवा नष्ट हो जाए वह पित्त के कारण से होता है।

कफज सिरदर्द—जिस सिर दर्द में सिर, गला, कफ से व्याप्त हो, भारी, स्थिर, एवं शीतल हो, आंखों तथा मुख पर शोथ हो वह सिर दर्द कफ के कारण होता है। सन्निपातज में तीन दोषों के सम्मिलित लक्षणों को समझना चाहिए।

रक्तज सिरदर्द— रक्त से उत्पन्न सिरदर्द में सभी लक्षण पित्तज सिरदर्द के समान होते हैं। विशेषता यह होती है कि रोगी स्पर्श को सहन नहीं कर सकता और न बोलना तथा शब्द ही उसे अच्छा लगता है।

क्षयज सिरदर्द—सिर में चोट आदि के लगाने से वसा, कफ, मज्जा आदि के क्षीण होने से यह क्षयज सिरदर्द हुआ करता है। इसमें वेदना बहुत तीव्र होती है और वह वेदना, स्वेदन, वमन, नस्य, धूम, रक्तमोक्षण आदि उपचारों से और अधिक बढ़ जाती है।

कृमिजन्य सिरदर्द—जो सिरदर्द बहुत ही तीव्र हो अर्थात् जिसमें चुभती हुई वेदना होती हो, सिर के भीतरी भाग में रेंगन जैसी या कोई काट-काट कर खा रहा है, ऐसी अनुभूति होती हो, नाक से कुछ लाल रंग का पानी बहता हो, वह कृमिजन्य होता है।

सूर्यावर्त्तक सिरदर्द-जो सिरदर्द सूर्य के साथ उदय होता, बढ़ता और ढल जाता हो शीतोपचार से, कभी उष्णोपचार से जिसमें शान्ति मिलती हो, आंख, भौहें विशेष दुःखती हैं। ऐसा कष्टकारक त्रिदोष सम्पन्न विकार सूर्यावर्त्तक सिरदर्द कहलाता है।

सिर-दर्द
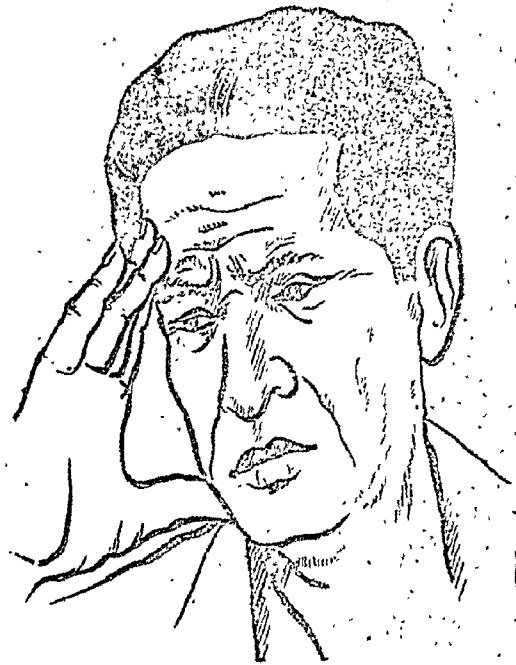
अनन्तवात सिरदर्द—जिसमें तीनों दोष दूषित होकर मन्या नाड़ियों में पहुंचकर गले के पृष्ठ भाग पर तीव्र वेदना करते हों, विशेषतया आंखों, भौंह और शंख प्रदेश में यह होता हो, गाल के पार्श्व भाग में कम्पन होता हो और जिसमें ठोड़ी की जकड़ाहट तथा नेत्र सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो गये हों, वह त्रिदोषज अनन्तवात नामक सिरदर्द होता है।

अर्धावभेदक सिरदर्द—जिस सिरदर्द में केवल सिर के आधे भाग में बहुत तीव्र वेदना होती हो, तोद, भ्रम,

एवं शूल होता हो, बिना किसी हेतु के जो दसवें या पन्द्रहवें दिन आक्रमण करता रहता हो, वह त्रिदोषज आधा शीशी का दर्द होता है।

शंखक सिरदर्द—कनपटी में स्थित वायु अति वेग से कुपित होकर कफ, पित्त और रक्त को साथ लेकर सिर में, विशेषतया कनपटी में भारी वेदना करता हो, वह मृत्युतुल्य कष्टकारक, शङ्खक नाम का शिरदर्द कहलाता है। इसको एक हजार वैद्य एक साथ मिलकर भी उखाड़ना चाहें तो हर्गिज भी अच्छा नहीं हो सकता। यदि तीन दिन तक यह रोगी जीवित रह जाए तो त्रिदोषज विसर्प की चिकित्सा करने से शायद बच सके। इसका सही इलाज अष्टादश संस्कारित पारद है, पूर्ण विश्वास के साथ दिया जा सकता है और रोगी बच सकता है।

सिर दर्द की चिकित्सा—

वस्तुतः यह सत्य है कि काष्ठौषधियों के युग में शंखक आदि सिर दर्द, चिकित्सकों के लिए वाकई सिर दर्द रहे होंगे, किन्तु रस चिकित्सा के युग में इन रोगों को असाध्य कह कर त्याज्य करने की घोषणा कहीं और कभी नहीं की गई। हम पूर्ण दृढ़ता एवं सम्पूर्ण सत्य पर आश्रित होकर यह कहते हैं कि सम्पूर्ण प्रकार से प्राचीन प्राचीन और आधुनिक असाध्य रोगों की एक मात्र सफल और सही दवाई अष्टादश संस्कार सम्पन्न पारद भस्म ही है। यह ध्रुव सत्य है।

वातज सिर दर्द चिकित्सा—वातज सिर दर्द में नस्य, स्नेहन, स्वेदन, खानपान आदि सभी वातनाशक औषधियों के द्वारा किए जायें। कूठ कड़वा को एरण्ड तैल में घोट कर सिर पर लेप करें। शिरोवस्ति विशेष लाभ करती है।

पैत्तिक सिर दर्द चिकित्सा—पत्तिक सिर दर्द में करके विरेचन देना चाहिए। फिर घृत और दूध से करें। नस्य लेवें। शीतल लेप करें। जीवनीयघृत

नस्य पदार्थ—चन्दन, मुलैठी और जवांसा से सिद्ध अथवा शक्कर और द्राक्षा से सिद्ध घृत का नस्य सिर दर्द को तुरन्त नष्ट करता है।

रक्तज सिर दर्द चिकित्सा—रक्तज सिरदर्द में पित्तज सिरदर्द के समान ही दवाई करनी चाहिए। उष्ण विधियों को बदलते रहना चाहिए और रक्त मोक्षण किया जाना चाहिए।

कफज सिर दर्द चिकित्सा—कफ से उत्पन्न सिर दर्द में लंघन, रूक्ष क्रिया और उष्ण पाचन कर्म करने वाले पदार्थों के द्वारा स्वेदन करें, तीक्ष्ण नस्य देवें। तीक्ष्ण धूम्र पान और तीक्ष्ण कवल प्रयोग हितकर माना गया है।

पिप्पल्यादि लेप—कफज सिर दर्द में छोटी पीपल, नागरमोथा, सौंठ, मुलैठी, सौंफ, नीलोफर और कूठ को पानी में पीसकर सिर पर लेप करें।

त्रिदोषज सिर दर्द चिकित्सा—तीनों दोषों के सिर दर्द में पुराना घी पिलाना चाहिए और तीनों दोषों की पृथक-पृथक कही गई चिकित्सा यहां सम्पूर्ण की जाए।

नस्य विधान—त्रिदोषज सिर दर्द में सोंठ के कल्क से मिश्रित दूध का नस्य लेने से पूर्ण लाभ होता है। यह हमारा भी परीक्षित योग है। सही है।

क्षयज सिर दर्द चिकित्सा—इस सिर दर्द में क्षय की चिकित्सा की जाए तथा बृंहण चिकित्सा सर्व श्रेष्ठ है। वातनाशक पदार्थों से मधुर गण के द्रव्यों को मिलाकर घृत सिद्ध करें और उससे नस्य कर्म करें तथा पीवें।

कृमिज सिर दर्द चिकित्सा—कृमिजन्य सिर दर्द में करंज, सहजना के बीज और त्रिकुटा इनको बकरी के मूत्र में घोटकर नस्य देने से कृमि नष्ट होकर लाभ होता है।

सूर्यावर्त चिकित्सा—इसमें सिरा वेध उत्तम रहता है। दूध व घृत से नस्य देवें। दूध और घृत का सेवन करें। इन्हीं के माध्यम से विरेचन लेवें। तिलों को दूध में पीसकर उनका लेप करें। जीवनीयगण की औषधियों को उचित प्रकार से सेवन करें। नस्य, स्वेदन आदि भी परमोपयोगी माने गए हैं।

अनन्त वात चिकित्सा—इसकी चिकित्सा सूर्यावर्त की चिकित्सा ही है शिरोवेध यहां पर भी आवश्यक है। वातपित्तहर भोजन होना चाहिए। दही का तोड़ मधु पतली लप्सी या दलिया हितकारी होता है। किन्तु उसमें घृत अवश्य होना चाहिए।

शङ्खकचिकित्सा—सूर्यावर्त के समान ही यहां पर भी चिकित्सा की जाए और घृत तथा दूध पीवें और उसी से नस्य लेते रहें या देते रहें। शतावरी, काले तिल, मूर्वा, नीलोफर और मुलैठी का लेप करें। उसके कम्पन में वात-नाशक स्नेह स्वेद और शिरोवस्ति का प्रयोग किया जाए।

आधा सीसी दर्द चिकित्सा—इस दर्द के लिए षड्-विन्दुतैल सर्व श्रेष्ठ है एरण्ड की जड़ तगर सौंफ, जीवन्ती रास्ना, सेंधव लवण, भांगरा, वायविढंग, मुलैठी, सोंठ, काले तिलों का तेल, बकरी का दूध और तेलों से चौगुना भांगरे का रस मिलाकर पकावें। इसकी छः विन्दु कान में डालने से आधासीसी का दर्द तत्काल शांत हो जाता है। रसायन विधि से सात मास सेवन करने से सफेद बाल काले हो जाते हैं। दांत दृढ़ होते हैं। दृष्टि साफ हो जाती है। बल की वृद्धि होती है।

होमियोपैथिक

परिचय—सिर दर्द अनेक कारण से होता है जैसे कि सिर में रक्त संचय होना, प्रदाहिक अवस्था, स्नायु-शूल रक्ताल्पता के कारण आदि।

बेलाडोना ६,३०,२००—भयंकर सिर दर्द, उसके साथ ही आंखें लाल, सिर गरम एवं कनपटी की नसें फड़-कती हैं बेलाडोना का रस दर्द सिर में रक्त संचय के कारण होता है साथ में तेज ज्वर भी रह सकता है। दर्द टपक की तरह जोरों से होता है। रोगी दर्द के मारे बेचैन रहता है, रोशनी सहन नहीं होती है। बेलाडोना रक्ताधिक्य की बढ़ी हुई अवस्था की दवा है। रोगी सिर को पीछे की ओर करता है तो सिर दर्द घटता है।

एकोनाईट नेप ६,३०—ठंड लगने के कारण सिर दर्द होने में लाभप्रद है। सर्दी लगकर सिर और जबड़ों में दर्द होता है। याद रखिये एकोनाईट सूखी ठंड लगने की दवा है जोकि मगसर से माघ तक होती है।

ब्रायोनियां ३०,२००—नये और पुराने सिर दर्द में जब कि कब्ज, जीभ पर सफेद लेप, हिलने डुलने पर रोग वृद्धि, दवाने से उपशम, प्यास बहुत देर के अन्तर से अधिक मात्रा में पानी पीता है। चुपचाप रोगी सोता है, यदि उठता है तो वमन होने लगती है। उपरोक्त लक्षणों के साथ सिर दर्द होवे चाहे वह जुकाम के सूख जाने के कारण होवे या गर्मी लगकर हो, या सर्दी से होवे आप ब्रायोनियां का प्रयोग करें। याद रखिये ब्रायोनियां का रोगी होगा तो मुंह से लेकर मलद्वार तक सूखापन अवश्य होगा और हिलने डुलने (अर्थात् गति) से रोग वृद्धि होगी यहां तक कि आंख खोलने पर भी सिर दर्द बढ़ता है। ब्रायोनियां में रोग का आक्रमण धीरे-धीरे होता है। एकोनाईट की तरह अचानक नहीं होता है।

एगरिकस ३०,२००—स्नायविक सिर दर्द में रोगी को अनुभव होता है कि जैसे तेज और ठंडी सूई के द्वारा मस्तिष्क में अनेकों स्थानों में छेदा जा रहा है। साथ में शरीर की नाना स्थानों की मांसपेशियां फड़क रही है, घूमने फिरने पर दर्द में उपशम होता है।

ऐलियम सेपा ६,३०—यह दवा प्याज से तैयार होती है। सर्दी लग जाने के कारण आंखों, नाक से पतला पानी का स्राव होता है छींकें आती हैं और उसके साथ ही सिर में दर्द होवे तो यह लाभप्रद है।

एलो ३०,२००—रोगी अनुभव करता है कि कपाल पर दवाव इस दवाव के कारण जैसे दोनों आंखें बन्द हो जाती हैं। आंखें बन्द करने पर और ठंडे जल के प्रयोग से उपशम। गरम प्रयोग से रोग वृद्धि होती है। कमर का दर्द और सिर दर्द पर्यायक्रम से होता है। अनेकों जगह सर्दी के मौसम में सिर दर्द और गर्मी के मौसम में अतिसार यह एक प्रकृतिगत लक्षण है।

अर्जेन्टम नाइट्रीकम ३०,२००—यह दवा सिरःशूल या अर्द्ध सिरःशूल दोनों में ही लाभप्रद हैं। प्रधान लक्षण रोगी को अनुभव होता है कि मेरा माथा बड़ा हो गया है और जोर से कपड़े से सिर को बांध रखने पर या दवाने से दर्द में उपशम होता है। भोजन के बाद शरा[illegible] पीने से उपशम। पित्तयुक्त वमन होने पर उपशम हो[illegible] है। रोगी बहुत कमजोर रहता है। माथा में इस प्रक[illegible] की सुरसुरी अनुभव होती है जैसे कीड़ा चल रहा है[illegible] इस दवा में सिर दर्द और सिर में चक्कर आने के दो प्रकार के लक्षण हैं। किसी ऊंचे मकान को देखते ही [illegible] में चक्कर आने लगता है।

पर
र शंख
होता।
म्बन्धी
नामक
त सिर
, भ्रम,

ग्लोनाइन ३०,२००—माथे में किसी तरह की गर्मी धूप, या लू लगने के कारण अथवा उच्च रक्तचाप से माथे में भयंकर दर्द होता है, रक्त का संचय माथे में होता है रोगी कहता है कि माथा चूर-चूर हो जावेगा। देखने से से भी माथे की गर्दन और कनपटियों की शिरायें फूली हुई नजर आती हैं। और स्पर्श से उनमें टपक का अनुभव होता है। रोगी को धूप या सर पर कपड़ा टोपी सहन नहीं होती है। चेहरा लाल सुर्ख रहता है। यह बेलाडोना की अपेक्षा बहुत अधिक होता है।

डा० ई० वी० नैश साहब ने एक जगह कहा है-यदि किसी व्यक्ति को होमियोपैथिक दवा की सूक्ष्म मात्रा पर विश्वास न होता होवे तो उसकी जीभ पर ग्लोनाइन २ X शक्ति की एक-दो बूंद डाल दीजिये। नतीजा यह होगा कि देखते देखते ही उसके सर में भयंकर टपक का दर्द पैदा हो जावेगा और वह व्यक्ति बेहोश हो जायगा।

डा० वेरिज का कहना है कि-एक युवक एक दिन एकाएक पागल सा हो गया तो उसकी जीभ पर ग्लोनाइन की शीशी का कार्क २-४ बार छुआ दिया, जिससे उसका उग्रता का भाव घट गया और वह सो गया और दूसरे दिन वह चंगा हो गया।

मेरा अनुभव—लू लगने के कारण उपरोक्त लक्षणों में ग्लोनाइन मंत्र की तरह कार्य करती है। अनेकों रोगियों पर प्रयोग करके देखा है। अति उच्च रक्तचाप में उक्त लक्षण रहने पर इस दवा की भांति शीघ्रता से कार्य करने वाली दवा किसी पैथी में भी नजर नहीं आती है। एक ४५ वर्ष की रोगिणी का ऋतुस्राव बन्द होते ही भयंकर सर दर्द पैदा हो गया, सर दर्द की अनेकों दवा दी गई पर लाभ नहीं हुआ। ग्लोनाईन १० शक्ति की ३ खुराकों से पूर्ण आम हो गया।

मेलिलोटस Q से ३० तक—सिर दर्द में जहां मस्तिष्क में रक्त संचय होता है आंखें लाल रहती हैं ऐसा अनुभव होता है, कि मानो कपाल फट जायगा। रोगी दर्द के मारे बेचैन हो जाता है। उपरोक्त लक्षणों में यह दवा बेलाडोना और ग्लोनाईन के समकक्ष है किन्तु इसमें प्रभेद यह है कि उपरोक्त दोनों दवाइयों की अपेक्षा इस दवा में रोगी का चहरा अधिक लाल रहता है। सिर दर्द के समय यदि नाक से रक्त स्राव हो जाता है तो दर्द कम हो जाता है। सिर दर्द के साथ होने वाले नक्सीर के रोगियों को इस दवा ने आरोग्य किया है। अफसोस है कि समय पर इस दवा को लोग भूल जाते हैं बेलाडोना का प्रयोग कर बैठते हैं।

नेट्रमम्यूर २००,I.M,IOM नेट्रमम्यूर दी क्रियाशील दवा है अतः प्रायः पुराने सिर दर्द में विशेष लाभप्रद है। इस दवा के विशेष लक्षण हैं–सिर के ऊपर और सामने इस तरह का दर्द होता है जैसे हथौड़ों से मारा जाता होवे, इस प्रकार का सिर दर्द प्रायः जिनका शरीर मलेरिया भोगने के कारण दुर्बल हो गया है। नमक खाने की इच्छा, रोगी साग दाल आदि में नमक अधिक खाना पसन्द करता है। ठंडा जल, खुली हवा रोगी को विशेष पसन्द है। गरमी या धूप सहन नहीं होती है,। धूप से एवं १० बजे सुबह से शाम तक दर्द बढ़ता है। नेट्रमम्यूर रोगी को कब्ज प्रायः रहती है।

नेट्रमकार्ब ३०,२००—धूप की गर्मी से ग्रीष्म काल में सिर में दर्द, रोगी धूप में नहीं जाना चाहता है क्योंकि धूप में जाते ही सिर दर्द आरम्भ हो जाता है। इस दवा का रोगी वर्षा एवं बिजली चमकने के समय भयभीत हो जाता है। मानसिक परिश्रम से रोग वृद्धि।

मेरा अनुभव—आग के पास काम करने वाले, गेस की गरमी, धूप में फिरने के कारण होने वाले सिर दर्द या इस प्रकार का सिर दर्द जो कि एक दिन के अन्तर से होता है उसमें इस दवा के लक्षण होने पर ३० शक्ति का प्रयोग करता हूं।

लैकेसिस ३०, २००, 1M—बायें तरफ का सिर-दर्द या बायें तरफ से आरंभ होकर दाहिने तरफ आता है। रजनिवृत्ति काल (४५ वर्ष की उम्र के करीब जबकि स्त्रियों का मासिक स्राव सदा के लिये बन्द होता है उसे रज निवृत्ति काल कहते हैं) में स्त्रियों को होने वाले सिर दर्द में प्रायः इस दवा का प्रयोग होता है। धूप से प्रातः काल और निद्रा के बाद रोग लक्षण बढ़ते हैं। किसी भी प्रकार का स्राव चालू होने पर उपशम।

सैंगुनेरिया कैनाडेंसिस ३०, २००, १०००—दाहिनी तरफ होने वाले अधकपाली (आधाशीशी) के

दर्द के लिये यह सर्वोत्तम दवा है। सूर्योदय के बाद से ही सिर दर्द आरम्भ होता है और दोपहर में बहुत ज्यादा बढ़ जाता है फिर धीरे-धीरे कम होता है और शाम को एकदम ठीक हो जाता है। अनेक बार बहुत ज्यादा पेशाव होकर भी सिरदर्द में आराम हो जाता है। सिरदर्द के साथ मिचली और वमन भी रहती है। सोने से रोगी को आराम मिलता है। दर्द सिर के पीछे से आरम्भ होकर दाहिने आंख के ऊपर रुक जाता है। रोगी शब्द, प्रकाश सहन नहीं कर सकता है।

स्पाईजिलिया ३०, २००, १०००—स्पाईजिलिया में भी सूर्य की गति के साथ होने वाले सिरदर्द का लक्षण है। इसमें दर्द बायें तरफ होता है अतः बायीं आंख के ऊपर होने वाले स्नायुशूल का दर्द भी गर्दन के पास से आरंभ होकर सिर के ऊपर से होता हुआ बांये आंख के ऊपर स्थाई हो जाता है। शब्द से, हिलने-डुलने से, मौसम के परिवर्तन से रोग वृद्धि। माथा नीचा करने से भी दर्द बढ़ता है। दबाने से उपशम।

मेरा अनुभव—स्नायुशूल किसी प्रकार का होवे, मैं दाहिने और बांये के भेद से उपरोक्त दोनों दवाइयों का प्रयोग करता हूं। अब कपाली के दर्द के लिए उपरोक्त दोनों दवाइयों का लक्षण भेद से प्रयोग करके हजारों रोगियों को आरोग्य किया है। अतः पाठक इनका प्रयोग करके अवश्य लाभ उठावें।

नोट—स्थानाभाव के कारण कुछ दवाइयों के लक्षण संक्षेप में दे रहे हैं।

केलिबाईक्रम ६, ३०, २००—खास करके दाहिनी आंख के ऊपर दर्द होता है इसकी एक विशेषता यह है कि दर्द आरम्भ होने के कुछ देर पहिले से आंखों से कम दिखाई देता है (धुंधली दृष्टि) पर दर्द आरम्भ हो जाता है तो साफ दिखाई देने लगता है। सिरके एक बहुत छोटे स्थान में दर्द होता है जिसे अंगुली के अग्रभाग से नापा जा सके। दर्द अचानक होता है और अचानक ही जाता है।

इपिकाक ६, ३०—ग्यूरैल्जिक या अजीर्ण के कारण सिरदर्द, जीभ की जड़ और दांत तक फैलता है उसके साथ ही मिचली और वमन भी रहती है।

इग्नेसिया ३०, २००—हिस्टेरियाग्रस्त स्त्रियों का सिरदर्द जो कि आधे सिर में होता है, दबाने पर आराम मालूम होता है। आहार के बाद सिर दर्द घट जाता है।

जेल्सियम् ३०, २००-स्नायविक दुर्बलता के कारण सिरदर्द में लाभप्रद है। सिर ऊंचा रखने पर, दबाने पर और अधिक पेशाव होने पर दर्द का घटना। धूम्रपान से, धूप में, सिर नीचा करने पर दर्द बढ़ता है। सिर के पीछे के भाग में दर्द आरम्भ होकर पूरे सिर में फैल जाता है। अन्त में आंख के ऊपर आकर ठहर जाता है।

सेलीनियम् 30—शराब का नशा समाप्त होने पर सिर दर्द का पकड़ लेना।

नक्स वोमिका ३०, २००—गर्दन की ओर एक तरफ के रग में दर्द,बाईं आंख पर ठहरता है,प्रातः आरम्भ होकर शाम को छूट जाता है। उसके साथ अम्लपित्त या अजीर्ण के लक्षण रहते हैं।

उपरोक्त दवाइयों के अलावा और भी बहुत सी दवा हैं जो कि लक्षण साहश्य होने पर प्रयोग की जाती हैं।

तन्द्रा निदान एवं चिकित्सा

तन्द्रा का परिचय-आयुर्वेद में तमोगुण, वायु, और कफ से होने वाली नींद को तन्द्रा कहा गया है। वस्तुतः यह अधूरी या कच्ची नींद होती है। मानव कुछ जागता और कुछ सोता सा रहता है। वायु के कारण निद्रा उखड़ती रहती है और कफ के कारण तथा तमोगुण के कारण कुछ-कुछ नींद आती भी रहती है। इसलिये इसको पूर्ण रूप में निद्रा नहीं कह सकते। यह कच्ची या अधूरी नींद कही जाती है।

तन्द्रा का लक्षण—"इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः। निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत्"॥ अर्थात् जिसमें सभी इन्द्रियों के विषय उचित प्रकार से ज्ञान में न आते हों, शरीर में भारीपन रहता हो, जंभाई अधिक आती हों, बिना परिश्रम किये ही थकावट का अनुभव होता हो और जिस निद्रा में निमग्न

तन्द्रा

मनुष्य की भांति चेष्टा पाई जाती हो, ऐसी अधूरी अपरिपक्व नींद को तन्द्रा कहते हैं। निद्रा और तन्द्रा में अन्तर है। निद्रा की अवस्था में तो मानव का मन और इन्द्रियां शान्त हो जाती हैं, कोई भी कार्य उनके द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता। परन्तु तन्द्रा में ऐसा नहीं होता। तन्द्रा में सम्पूर्ण इन्द्रियां तो छुट्टी कर लेती हैं किन्तु मन को छुट्टी नहीं मिलती अतः वह अपना कार्य अवश्य करता रहता है। ऐसा इसलिये होता है कि वायु सचेत रहती है अतः जंभाई आती रहती हैं, नींद गहरी नहीं हो पाती। तमोगुण और कफ के कारण शरीर में भारीपन और ग्लानि बढ़ती रहती है। इसलिये सब काम अधूरा होने से मन को शांति नहीं मिल पाती। अतः तन्द्रा में मन अपना कार्य करता रहता है। परन्तु इन्द्रियों का सहयोग न होने से वह व्यवहार नहीं कर पाता।

तन्द्रा की चिकित्सा—रोगी को प्रथम पेट साफ कर लेना चाहिये। शरीर पर तेल की मालिश करें। शरीर के अंगों में उबटन लगाया जाये। तथा शरीर पर दबाना या चापी करना चाहिए। बासमती चावल, गेहूं पिट्ठी से बने अन्न, गुड़ आदि से बने मधुर पदार्थ, स्निग्ध भोजन, दूध, मांसरस आदि का सेवन करना चाहिए। द्राक्षा, मिश्री का उपयोग रात्रि के समय किया जाये, चारपाई, आराम कुर्सी, आदि सुकोमल होने चाहिए, पौष्टिक पदार्थ सेवन करें। भैंस का दूध पीवें। भेड़ का दूध पी सकें तो बहुत शीघ्र लाभ होता है। द्राक्षासव, च्यवनप्राश, स्वर्णभस्म, वैक्रान्तभस्म, लोह रसायन, सिद्ध-मकरध्वज, मुक्ता भस्म, माणिक्य भस्म, सतगिलोय, बादाम, मुनक्का और मिश्री का हलुवा, गन्ने के रस की खीर, घी में पके हुये कटहल के बीज दूध में शहद मिलाकर केला का सेवन करें।

अनुभत योग —(विशेष सम्पादकका—तन्द्राहर वैक्रान्त भस्म, अभ्रकभस्म शतपुटी, मुक्ताशुक्ति पिष्टी, वंशलोचन, स्वर्णमाक्षिक भस्म, इन सबको समान भाग लेकर विदारीकन्द के दूध अर्थात् ताजा स्वरस में इक्कीस भावना देवें। फिर दोनों मूसली, असगंध, सालममिश्री, अकरकरा, मुलैठी, द्राक्षा, भांग, खरैंटी, कौंच, गिलोय सत्व, शतावरी, कमलगट्ठा, बेलगिरी, जहरमोहरा खताई कहरवा पिष्टी इन सबको एक एक तोला मिलाकर भैंस के दूध से मर्दन करें। एक माशा प्रमाण की गोलियां बना लें। एक गोली रात को सोने से पूर्व शीतल दूध से खावें। प्रथम दिन ही तन्द्रा का विनाश हो जाता है। गहरी नींद आती है और यथा समय जागरण होता है।

होमयोपैथी

परिचय—तन्द्रा कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है यह तो रोग का एक लक्षण मात्र है तन्द्रा में रोगी ऊंघता रहता है अर्थात् न तो गहरी निद्रा ही आती है और न जागता ही है दोनों अवस्थाओं की मिश्रित अवस्था का नाम ही तन्द्रा है। इस लक्षण में होमियोपैथिक में रोगी की प्रकृति के अनुसार ही दवा का निर्वाचन करना होगा यदि रोग पुराना है। इस रोग लक्षण की चिकित्सा अनिद्रा की तरह ही करनी होगी।

चिकित्सा—

पेसीफ्लोरा इन्कारनेटा Q—अनिद्रा की यह अच्छी दवा है। जहां मानसिक उत्तेजना अनिद्रा का कारण होवे वहां इस दवा का मूल अर्क ३० से ६० बूंद की मात्रा में देना चाहिए।

ऐवेना सेटाईवाQ—जो लोग बहुत ही स्नायविक और थके हुये हैं उन को इस दवा की १५ बूंद सुषुम जल में देना चाहिए। इससे थकान दूर होकर स्वप्न-रहित शान्त निद्रा आती है। यह कमजोर व्यक्तियों के लिये

उत्तम टानिक भी है।

काफिया ३०, २००, १०००—मन की उत्तेजना के कारण अनेक प्रकार के विचार मन पर प्रभाव डालते होवें। अतः रोगी सो नहीं सकता है। छोटी से छोटी आवाज भी बेचैनी का कारण बन जाती है यह स्नायविक उत्तेजना के कारण होता है। यह अनुभव से प्रमाणित हुआ है कि इसकी उच्च शक्ति विशेष लाभदायक होती है। दांत निकलने वाले बच्चों की अनिद्रा में भी यह दवा लाभप्रद है।

डा. चन्द्रशेखर काली का मत है कि कॉफी का स्थूल मात्रा में प्रयोग करने पर नींद नहीं आती है अतः होमियोपैथिक के सिद्धांत के अनुसार वही कॉफी सूक्ष्म मात्रा में अनिन्द्रा की सर्वोत्तम दवा है। काफीया की २०० शक्ति के प्रयोग से अच्छा लाभ मिला है। काफिया के प्रयोग से जो निद्रा आती है वह प्राकृतिक निद्रा है, एलोपैथिक दवा देने के बाद जो निद्रा आती है। उससे रोगी जागने के बाद शरीर में थकावट का अनुभव करता है किन्तु इस दवा के सेवन से जागने पर रोगी शरीर में हलकापन अनुभव करता है।

बेलाडोना ३०, २००—मस्तिष्क में रक्त संचय के कारण होने वाली अनिद्रा में लाभदायक है।

जेल्सीयम् ३०, २००—दिमागी काम अधिक करने वालों की अनिद्रा के लिए यह उत्तम दवा है। जो व्यवसायी प्रायः दुश्चिन्ता में रहते हैं उनके लिए लाभदायक है। काफिया नामक दवा में स्नायविक उत्तेजना प्रधान है उसी प्रकार जेल्सीयम् में स्नायविक अवसाद प्रधान रूप में पाया जाता है।

इग्नेसिया ३०, २००—निराशाजनक या शोक के कारण अनिद्रा होने पर यह लाभप्रद है।

उदाहरण—एक स्त्री का ६ मास का बच्चा मर गया वह एक ही बच्चा था। उस स्त्री को नींद नहीं आती थी सभी समय चुपचाप बैठी रहती थी। लंबी श्वांस फेंकती थी। अनेक चिकित्सा की गई पर जब तक दवा दी जाती थी तभी तक लाभ रहता था। उसको मैं इग्नेसिया १००० शक्ति की दो खुराक दी और उसकी हालत ठीक हो गई। अभी वह पूर्ण स्वस्थ्य है।

नेत्रों की लाली—निदान एवं चिकित्सा

नेत्रों की लाली—यह रोग यद्यपि शालाक्य तन्त्र के अन्तर्गत आना चाहिए किन्तु यहां पर सामान्य सिद्धान्त के अनुसार रक्तज रोगों के सन्दर्भ में इसका वर्णन किया जा रहा है।

नेत्रों की लाली

परिचय—नेत्रों की लाली का अर्थ है आंखों का लाल होना। यह कई प्रकार का होता है। नेत्रों के प्रान्त भाग का लाल होना, नेत्रों के ऊर्ध्वभाग का लाल होना, नेत्रों के अधोभाग का लाल होना अथवा सम्पूर्ण नेत्र का लाल हो जाना। यह लाली स्वाभाविक और दोषजन्य भेद से दो प्रकार की है। स्वाभाविक लाली प्राकृतिक रचना होने से अपरिहार्य है। किन्तु रक्तप्रधान कारणों को लेकर वातादिदोषों से होने वाली नेत्रों की लाली की चिकित्सा की जाती है। यह ध्यान रहे कि यह नेत्रों की लाली भी स्वतन्त्र रोग न होकर किसी नेत्र सम्बन्धी रोग का लक्षण, उपद्रव अथवा अंश होता है इसलिये नेत्रों की लाली जहां भी मिलती है, वहां उसका आधार कोई न कोई रोग विद्यमान रहता है, जैसे—नेत्राभिष्यन्द, रक्तज नेत्र रोग, कुष्ठ रोग में, विषजन्य उन्माद रोग में, असाध्य

मदात्यय रोग में, इत्यादि प्रकार से नेत्रों की लाली मिलती है।

कारण—नेत्रों में लाली रोग के कारण होती है। साधारण दशा में दोष प्रकोपजन्य भी होती है और आघात, आतप, धूम्र, मद्य, क्रोध आदि कारणों से भी नेत्रों की लाली उत्पन्न हो जाती है। शास्त्र में लिखा भी है कि—

"क्रोधेन मद्यन रवेश्च भाषारागं व्रजन्याशु विलोचनानि।"

अर्थात् क्रोध, मद्य, सूर्य का प्रकाश आदि कारणों से बहुत शीघ्र नेत्रों में लाली आ जाती है। व्यायाम आदि भी इसके लिए कारण हैं।

चिकित्सा—जन्मजात नेत्रों की लाली की कोई चिकित्सा नहीं हुआ करती है। यदि नेत्रों के कोण अथवा प्रान्त भाग लाल हों तो वह शुभ लक्षण माना जाता है। यह ज्योतिष का सिद्धान्त है। कफ प्रकृति आदि के भी नेत्रों के प्रान्त भाग लाल हुआ करते हैं, अतः यह सब प्राकृतिक है। इसकी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है। दोषज अथवा रोग सम्बन्धी नेत्रों की लाली की चिकित्सा मूल रोग की ही चिकित्सा से दूर हो सकती है। सामान्य अवस्था में होने वाली नेत्रों की लाली को दूर करने के लिये चिकित्सा सिद्धान्त यह है कि हलका विरेचन कराके उदर साफ करना ठीक रहता है। शीतल जल से नेत्रों का प्रक्षालन किया जाये। रोग के कारणों का त्याग सबसे पहले आवश्यक है। सात्विक एवं सदा आहार-विहार किया जाना चाहिए। कच्चे गोदुग्ध से नेत्रों को पूर्ण क्रिया जाना चाहिए। बकरी का ताजा दूध इसके लिए बेहद उपयोगी है। इस दूध में रुई के फाहे भिगोकर नेत्रों पर रक्खें और पैर के तलवों पर लौकी या घिया को काट कर शनैः शनैः घर्षण करें। जल और घृत को मिलाकर कर पैर के तलवों पर मलने से भी लाभ होता है।

प्रयोग—फिटकरी १ माशा, गुलाबजल २ तोला और निर्मली का कल्क १ माशा, (१) को बकरी के ४ तोला दूध में मिलाकर नेत्रों में बूंद-बूंद कर टपकावें।

(२) ताजे आंवले की लुगदी और पुनर्नवा के पत्रों का कल्क आवश्यकतानुसार लेकर पतला-पतला नेत्रों के चारों ओर लेप करने से विशेष लाभ होता है।

(३) प्रवालपिष्टी, वंशलोचन, वैक्रान्त भस्म, मुक्ता-शुक्ति पिष्टी, सितोपलादि चूर्ण, गिलोयसत्व, आमलक सत्व, यशदभस्म, शतपुटी लोहभस्म, अभ्रकसत्व भस्म, बादाम, चारों मगज, छोटी इलायची, केसर और स्वर्ण माक्षिक भस्म इन सबको समान भाग लेकर खरल में मर्दन करके एक रस कर लें फिर समभाग विदारीकन्द स्वरस की एक भावना दें। दूसरी भावना ताजे आंवले के स्वरस की दें। तीसरी भावना अंगूर के स्वरस की दें और चौथी भावना सप्रमाण त्रिफला के क्वाथ की देकर ४-४ रत्ती की गोली बनालें। छाया में सुखा लें। १८ वर्ष से ऊपर के रोगियों को १-१ गोली प्रातः और सायं ताजा गोदुग्ध से सेवन करावें। पांच वर्ष के ऊपर के बालकों को आधी-आधी गोली और पांच वर्ष से नीचे वालों को चौथाई गोली तथा १ वर्ष तक के बालक को नहीं देनी चाहिए। खटाई, लालमिर्च, तेल की चीजें, गरम पदार्थ, उड़द की दाल, दही, भारी खाद्य-पदार्थों को सेवन न करें।

होमियोपैथिक

परिचय—साधारण भाषा में प्रदाहिक अवस्था के साथ आंखों का लाल होने को आंख दुखना या आंख आना कहते हैं।

एकोनाइट ३०,२००—सर्दी लगने के कारण आंखें लाल होवें और उसके साथ ही ज्वर हो तब सर्व प्रथम एकोनाइट का प्रयोग करना चाहिए।

बेलाडोना ३,६,३०—आंखें लाल होवें, अति वेदना रोशनी असह्य, सर में दर्द होवे, आंखें फूल जावें उनमें गरमी अनुभव होती हो तो बेलडोना का प्रयोग करना चाहिए।

एपिस मेल ६,३०,२००—आंख लाल होवें और पलकें शोथयुक्त होवें, डंक मारने की तरह की वेदना होने पर प्रयोग करें।

आर्निका मोन्ट ६,३०,२००—आंख में चोट लगने के कारण आंख का रंग लाल हो गया होवे तो अवश्य प्रयोग करना चाहिए।

आर्जेन्टमनाईट्रीकम्—३०,२००—सद्योजात शिशु की आंख लाल होवें तो आर्जेन्टम नाइट्रिकम् सर्वश्रेष्ठ दवा है।

इयूफ्रेसिया ६,३०,२००—आंखें लाल होवें और उनसे पानी गिरता होवे, इस पानी की विशेषता यह कि इसके कारण आंखों की पलकें पक जाती हैं।

पल्सेटिला ३०,२००-आंखों के श्वेत अंश का प्रदाह शाम के समय जलन और खुजलाहट, आंखों से जो स्राव होता है वह पीला और गाढ़ा होता है।

रसटक्स ३०,२००—वर्षा या पानी में अधिक भीगने के कारण आंखों का प्रदाह,आंखों से पानी गिरता है। पलकें फूल जाती हैं।

सल्फर ३०,२००,१०००-यह दवा चक्षु रोग में लक्षण मिलने पर अति लाभदायक है। इस दवा के चरित्रगत लक्षण होने अति आवश्यक हैं जैसे खुजलाहट, जलन, रोशनी सहन नहीं होती है। सभी प्रकार के घाव, रोगी के लक्षण प्रायः सल्फर के होने पर इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

मार्कसोल ६,३०,२००—उपदंश विषयुक्त रोगियों के चक्षु प्रदाह में लाभदायक है गाढ़ा स्राव होता है, रात में रोग वृद्धि। इस दवा से लाभ न होने पर सिफलीनम् देना चाहिए।

फेरमफास ६X१२X—बायोकैमिक मतानुसार प्रदाह की प्राथमिक अवस्था में यह दवा लाभप्रद है।

कालीम्यूर ३X६X१२X—प्रदाह की दूसरी अवस्था में कालीम्यूर फेरमफास के साथ पर्याय क्रम से देना चाहिए।

नोट—रोग सूची में 'नेत्रों की लाली' ही लिखी है अतः हम सिर्फ प्रदाहिक अवस्था की दवाइयों के बारे में संक्षेप में लिखा हैं। नेत्रों की अन्य बीमारियों का विवरण यहां नहीं दिया गया है। अच्छा होता कि सूची में सिर्फ नेत्र रोग ही लिखा होता।

उपरोक्त दवाइयों के अतिरिक्त लक्षणानुसार और भी दवाइयों का प्रयोग किया जा सकता हैं। स्थानाभाव के कारण यहां सभी दवा नहीं लिखी गई हैं।

नाक की दुर्गन्ध—निदान एवं चिकित्सा

नाक की दुर्गन्ध भी ऐसा रोग है कि जिसे स्वतः व्याधि का स्थान नहीं दिया जा सकता है। यह दुर्गन्ध भी किसी न किसी रोग का अंश होती है, रक्तज रोगों में ही यह मिलती है। अन्य रोगों में भी उपद्रव एवं लक्षणों के अन्तर्गत आजाती है। विशेषकर यह दुर्गन्ध सुश्रुत संहिता में नासागत रोगों में पूतिनस्य नाम के रोग में मानी गई है। यथा—

दोषैर्विदग्धैर्गलं तालुमूलेसंवासितो यस्य समीरणस्तु।
निरेति पूतिर्मुख वासिकाभ्यां तं पूतिनासं प्रवदन्तिरोग॥

अर्थात् जिस रोगी के गले और तालु मूल में दूषित-वायु रक्त, पित्त और कफ के साथ मिलकर और इनकी विकृत गन्ध को अपने साथ लेकर जब मुख और नासिका के मार्ग से बाहर निकलने लगता है, तब उसको पूति-नस्य कहते हैं। बदबू वाली सांस आती रहती है और नाक में हर समय दुर्गन्ध बनी रहती है।

चिकित्सा—सुश्रुत के अनुसार—नाक की दुर्गन्ध में रोगी को सर्व प्रथम स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म, वमन और विरेचन कर्म कराना चाहिए। तदनन्तर तीक्ष्ण, साल्प एवं लघु आहार समय पर देना चाहिए। गरम पानी ही पीने के लिए दिया जाए। तथा धूम्रपान के समय पर धूम्रपान भी कराया जाए।

१. हींग, त्रिकटु, इन्द्रजौ, श्वेत पुनर्नवा, लाख, तुलसी के बीज, कट्फल, वच, कूठ, सुहांजना, वायविडंग, करंज इन सबको समान भाग लेकर कूटपीस कर अवपीडन नस्य के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए। उत्तम प्रयोग है।

२. हींग, त्रिकटु, इन्द्रजौ, श्वेत पुनर्नवा, लाख, तुलसी के बीज, कट्फल,वच, कूठ, सुहांजना, वायविडंग, करंज इन सबको समान भाग में लेकर कूट पीसकर अठगुने गोमूत्र में घोलकर सरसों का तेल सिद्ध कर लें और उसका प्रतिदिन नस्य करने से निश्चय ही नाक की दुर्गन्ध का समूल विनाश होता है।

अनुभूत योग—(विशेष सम्पादक का)—

१. शुद्ध गंधक, शुद्ध गैरिक, शुद्ध पारद, भुना सुहागा, शुद्ध वत्सनाभ और कालीमिर्च, इनको समान मात्रा में

लेवें। पारद गंधक की कज्जली बनालें और शेष को उस कज्जली के साथ घोट लें। फिर शतपुटी लोह भस्म,ताम्र-भस्म,अभ्रकभस्म,त्रिफला,नागरमोथा,हींग,वायविडंग,चित्रक, चिरायता, देवदारु, हल्दी दोनों पोहकरमूल, अजवाइन, काला और सफेद जीरा, कचूर धनियां, चव्य इन सबको भी १-१ भाग लेकर कूट पीस कर एक जीव करलें। फिर इन सबको आठ गुना पुनर्नवा का स्वरस डालकर खूब दृढ़ भावना देवें। फिर इसमें कज्जली के सम प्रमाण वंग भस्म और कान्तलोह भस्म मिलाकर चौगुने गोमूत्र की एक भावना देवें। फिर दुगुने मुलैठी के क्वाथ की भावना दे दें। तदनन्तर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। धूप में सुखाकर रखलें। १-१ गोली प्रातः सायं और रात्रि के अवसर पर अदरख के रस के साथ सेवन करावें। यह योग पूतिनस्य, अपीनस, सम्पूर्ण नासा रोग, शोथ, पुरानी संग्रहणी, पाण्डुरोग, कामला, मन्दाग्नि, जीर्ण ज्वर, प्लीहा, गुल्म, यकृत् वृद्धि, कास, श्वास, प्रतिश्याय, जलोदर, शिर-शूल, गल ग्रह, ज्वरातिसार को अवश्य नष्ट करता है। अनेक बार का भली भांति सुपरीक्षित प्रयोग है।

२. नासारोगादि—अष्ट संस्कारित पारद, रजत भस्म, ताम्र भस्म शतपुटी, अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म इन सबको समान भाग मिलाकर चौगुने अदरख के रस में घोटें। फिर त्रिकटु, त्रिजात, कुचलासत्व, शुद्ध शिलाजतु, शुद्ध वत्सनाभ, त्रिवंग भस्म इन सबको समान भाग लेकर पंचपल्लवों के दुगुने स्वरस में मर्दन करें। फिर इन दोनों योगों को मिलाकर पुनर्नवा के ताजे चौगुने स्वरस में मर्दन करें और ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें। १-१ गोली प्रातः सायं जल से, दूध से, अंगूर के रस से या सेव के रस से देवें। यह सम्पूर्ण नाक के रोगों, मधुमेह, स्वप्नदोष दुर्बलता, नेत्र रोग, हस्तमैथुनजन्य, नपुंसकता, बालरोग, हृदय रोग की रामबाण दवा है।

होमियोपैथिक

परिचय—नाक की दुर्गन्ध भी दूसरी बीमारियों का लक्षण मात्र है। दुर्गन्ध का आना सड़न का सूचक है। अतः नाक से होने वाला स्राव भी बदबूदार होगा।

नाक की दुर्गन्ध—एसाफिटीडा, आरममेट, कल्के-रियाकार्ब, मार्कसोल, नेट्रमकार्ब वालसयपेरू, काली सल्फ, कालीफास, आर्सेनिक, लाईकोपोडियम नेट्रमसल्फ, सीपिया आदि।

एसिड फ्लोरिकम् ६, ३०, २००—उपदंश विष के कारण नाककी हड्डी गलकर बदबूदार स्राव होने पर प्रयोग होता है।

कालीफास ६×१२×—किसी भी कारण से सड़न होकर नाक से बदबू (दुर्गन्ध) आती हो और साथ में स्नायविक दुर्बलता के लक्षण होने पर प्रयोग करना चाहिए।

मार्कसोल ६, ३०, २००—नाक से पीले रंग का स्राव होता है उसमें दुर्गन्ध रहती है साथ ही रोगी में मार्कसोल लक्षण होवें जैसे कि–मुंह से लार गिरती हो, रात में पसीना आता हो, पसीने से रोग वृद्धी हो, रात में रोग वृद्धी होती है।

आर्सेनिक ऐल्ब ३०, २००–आर्सेनिक के सभी स्राव जलन करने वाले होते हैं साथ में प्रधान लक्षणों का रहना अनिवार्य है जैसे कि–मृत्यु भय, बेचैनी, गरम से उपशम १२ बजे से २ बजे तक सभी रोगों की वृद्धी होती है।

बैप्टीसिया ३, ६—बैप्टीसिया के सभी स्रावों में दुर्गन्ध रहती है।

मुंह की दुर्गन्ध-निदान एवं चिकित्सा

मुंह की दुर्गन्ध—यह रोग भी पूति नस्य के समान ही निदान एवं लक्षणों वाला है। अतः इस विषय में पूति नस्य का प्रकरण दें। सामान्य अवस्था में यह रोग मुख साफ न करने से होता है। जो लोग दांतुन आदि नहीं करते उनके मुख में खाद्यांश फंसे रहते हैं और वे ही सड़ कर बदबू पैदा कर देते हैं यहां रक्त आदि दोषों का सम्बन्ध पूतिनस्य के ही समान माना जाता है।

चिकित्सा—मुख दुर्गन्ध में चिकित्सा सिद्धान्त भी पूतिनस्य के ही समान होता है। वमन, विरेचन आदि के द्वारा संशोधन किया जाना चाहिए। दन्त, कण्ठगत जिह्वा, गला आदि को साफ किया जाना चाहिए। कण्ठगत मल

को भी दांतुन आदि के द्वारा साफ किया जाना चाहिए। सुश्रुत संहिता में उत्तर तंत्र में दुष्ट प्रतिश्याय नामक रोग की जो चिकित्सा लिखी है, वह भी की जाए अर्थात्—

नवं प्रतिश्यायमपास्य सर्वंमुपाचरेत्सर्पिषएव पानैः ।
स्वेदैर्विचित्रैर्वमनैश्च युक्तैः कालोपपन्नैरवपीडनैश्च ॥

अर्थात् नवीन प्रतिश्याय को छोड़ कर सभी प्रकार के प्रतिश्यायों में घृतपान कराना चाहिए। नाना प्रकार के स्वेद देवें। और युक्ति पूर्वक वमन तथा अवपीड नस्य देवें। इसी प्रकार से शीताद नामक दन्त रोग की भी चिकित्सा करने से मुख दुर्गन्धि में लाभ होता है। जैसे—

सोंठ और सरसों को जल में क्वाथ करके इसमें त्रिफला, नागरमोथा और रसौत को मिलाकर कुल्ले करें प्रियंगु, नागरमोथा और त्रिफला के कल्क का प्रलेप करें। मुलैठी, कमल, पद्माख और त्रिफला से सिद्ध तैल से नस्य की जानी चाहिए ऐसा सुश्रुत में दिया गया है और यह सफल भी है। सुश्रुत में कहे अनुसार ताम्बूल का सेवन करने से भी मुख दुर्गन्धि का विनाश हो जाता है। जैसे—

कपूर, जातीफल, शीतलचीनी, लवंग, कस्तूरी, चूना और सुपारी के साथ पान खाना उत्तम है। पान खाने से मुख की निर्मलता, मुख में सुगन्ध, कान्ति और सौष्ठव उत्पन्न हो जाता है। मुख से पानी आना बन्द हो जाता है।

अनुभूत योग—

मुख रोगारि—जामुन, अर्जुन, गम्भार, इन तीनों के फूल दो-दो तोला, तिल, आम की गुठली, पुनर्नवा कटेरी, विजयसार, त्रिफला इन छः का चूर्ण एक-एक तोला लोहभस्म, रसौत, सतमुलैठी, लाख, लोध, दोनों हल्दी, कूठ मीठा, नागकेशर, हरताल, कवीला, स्वर्णगेरू, गोपीचन्दन, गोरोचन, कपूर, जायफल, शीतलचीनी, लौंग, अकरकरा, रुत्या, सौंफ, दखिनी सुपारी, वच इन तेईस को छः-छः माशा मिलाकर खरलमें एक साथ घुटाई करें। फिर आम्रपत्र स्वरस वट छाल स्वरस, कीकर छाल स्वरस, लालचन्दन क्वाथ, गुडूची स्वरस, नीम छाल स्वरस, अनार पुष्प स्वरस इन सबको प्रथक प्रथक—एक-एक भावना देकर आतप में शुष्क करके पाउडर सा बना कर के शीशी आदि में रख लें। प्रातः और सायं मंजन की भांति दांतों, मसूड़ों और जीभ पर इसकी मालिश सी कर लें। दस मिनट के बाद शीत काल हो तो गरम पानी में, यदि गर्मियां हों तो शीतल जल में नाम मात्र की फिटकरी मिलाकर खूब कुल्ले करें और बाद में छोटी इलायची चबावें। मुख दुर्गन्ध आदि समस्त मुख रोगों की यह रामबाण दवा है।

मसूढ़े की सूजन—निदान एवं चिकित्सा

आयुर्वेद में मसूढ़ों की सूजन को भिन्न-भिन्न प्रकार के दन्त मूलगत रोगों में माना है जैसे—शीताद रोग में मसूढ़े शोथयुक्त, पके हुए रक्त, पूय और दुर्गन्धयुक्त होते हैं। दन्तपुप्पुटक रोग में दांतों के मूल में अधिक शोथ एवं वेदना उत्पन्न होती है। दन्तवेष्ट रोग में मसूढ़ों पर शोथ रक्त और पूय का बहना आदि दूषित रक्त से होते हैं। शौषिर रोग में मसूढ़ों में सूजन उत्पन्न हो जाती है, वेदना भी होती है, परिदर रोग में मसूढ़ों में सूजन, रक्त और पूय का आना आदि होता है। उपकुश रोग में मसूढ़े शोथ युक्त और पक जाते हैं। वैदर्भ रोग में मसूढ़ों पर घर्षण से शोथ उत्पन्न होता है। अधिमांस रोग में भी मसूढ़ों में महान् शोथ उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार से सुश्रुत संहिता में मसूढ़ों की सूजन का उल्लेख मिलता है।

चिकित्सा—अतएव मसूढ़ों के शोथ को दूर करने के लिये ऊपर लिखे रोगों की जो-जो चिकित्सा बतलाई गई है वह सम्पूर्ण रूप से की जानी चाहिये। जैसे—मसूढ़ों की सूजन में रक्त निकालकर सोंठ और सरसों के क्वाथ में त्रिफला चूर्ण, नागरमोथा और रसौत मिलाकर कुल्ले करने चाहिए। फूल प्रियंगु, नागरमोथा और त्रिफला का कल्क बनाकर मसूढ़ों पर प्रलेप करना चाहिए। पांचों नमक, यवक्षार को समभाग मिलाकर शहद में मिश्रित करके मसूढ़ों पर हलका-हलका घर्षण करें। अथवा मसूढ़ों का रक्त निकाल कर लोध, लालचन्दन, मुलहठी, लाख का समभाग चूर्ण मधु में मिलाकर मसूढ़ों पर मलें। बड़, पीपल आदि क्षीरी वृक्षों का कषाय, शहद, घृत और शक्कर मिलाकर कुल्ले करने चाहिए अथवा मसूढ़ों का

रक्त निकालकर लोध, नागरमोथा और रसौत का समभाग चूर्ण शहद में मिलाकर लेप करें। अथवा कठगूलर, गोजी आदि के पत्रों से मसूढ़ों को रगड़ कर रक्त निकाल दें और फिर पांचों नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल का समभाग चूर्ण शहद में मिलाकर मसूढ़ों पर धीरे-धीरे मलें और पीपल, पीली सरसों, सोंठ, वेतसफल या समुद्रफल इनका समभाग चूर्ण यथेष्ट गरम पानी में मिलाकर उसके कुल्ले
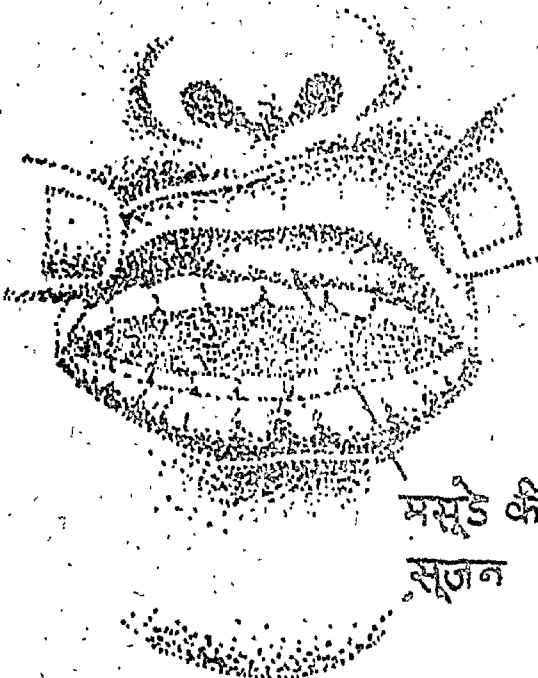
मुख में धारण करें, कम से कम ५-५ मिनट तक धारण करें। कुल २० मिनट तक ऐसा करें अथवा वच, तेजल, पाठा, सज्जीखार और जवाखार को समान मात्रा लेकर मधु में मिलाकर मसूढ़ों पर शनैः शनैः रगड़ें। पिप्पली चूर्ण और शहद को गरम पानी में मिलाकर केवल धारण करें।

अनुभूत योग

मुखरोगारि—वड़, पीपल, गूलर, पिलखन, ढाक के ताजे फूल इन पांचों का ताजा स्वरस १-१ सेर। देवदारु, शुद्ध गुग्गुल, मुलहठी, सोंठ, मिर्च, पीपल, सज्जीखार, जवाखार, विडनमक, लोध, पीली सरसों, त्रिफला, कत्था, लाक्षा, लाल चन्दन, अगुरु, तेजबल, मैनफल, कुटकी, गोखरू, इन बीस को २-२ तोला लें। सबको मिलाकर कूट-पीसकर कपड़छन करलें। रसौत, हरताल, गेरू, कीकर का गोंद, सतगिलोय, नागरमोथा, ताम्रभस्म इन सात को डेढ़-डेढ़ तोला लेकर उसमें मिला दें। फिर सबको खरल में डालकर पहली भावना समान भाग त्रिफला क्वाथ, दूसरी समान भाग गोमूत्र की, तीसरी समानभाग भावना काकोल्यादिगण के क्वाथ की, चौथी भावना क्षीरी वृक्षों के शीत कषाय की और पांचवीं भावना पुनर्नवा के समभाग ताजा स्वरस की देकर के छायाशुष्क करलें। आवश्यकतानुसार प्रातः और सायं मसूढ़ों पर इस चूर्ण की मालिश करें और उसके पन्द्रह मिनट बाद हल्दी मिले शीतल जल से कुल्ले करलें। यह सम्पूर्ण मुख, दन्त रोगों का सफलता से विनाश करने वाला सिद्ध योग है।

होमियोपैथिक

परिचय—मुंह में दुर्गन्ध आने के अनेकों कारण हैं जैसे पेट की खराबी, आंतों में सड़न, दांतों में मवाद पैदा होना आदि इसी प्रकार मसूड़ों की सूजन के भी अनेकों कारण हैं जैसेकि पायरिया, पेट की खराबी, पारे का सेवन आदि। यह सर्व स्वतन्त्र रोग नहीं हैं यह रोग के लक्षण मात्र है, मूल रोग की चिकित्सा करने पर यह लक्षण स्वयं ठीक हो जाते हैं। मसूड़ों की सूजन के अनेकों रोगियों में सिफलिस (उपदंश) विष भी पाया जाता है अतः चिकित्सा करने के पूर्व रोगी का पूर्व इतिहास जान लेना अति आवश्यक है।

उदाहरण—रोगी मेरे पास आया उसके मुंह में घाव, मसूड़ों की सूजन एवं लार गिरना ३ वर्ष से था। पूर्व इतिहास से ज्ञात हुआ कि वह पहिले ट्रक का ड्राईवर था उसी समय संसर्ग जात उपदंश रोग हुआ और वह किसी वैद्य से दवा खाई वह दवा मुनक्का में दी जाती थी। दवा का प्रयोग १ मास तक चालू रहा। उपदंश के घाव तो ठीक हो गये पर मुंह का उपरोक्त हाल हो गया, उसकी होमियोपैथिक चिकित्सा ६ माह की गई और वह ठीक हो गया। यदि पूर्व रोग फिर से सामने आ जावे तो घबराने की आवश्यकता नहीं है उससे रोगी का मंगल ही होगा।

चिकित्सा—

मार्कसोल ३०, २००, 1M—मार्कसोल एन्टीसिफलीटिक दवाइयों में प्रधान दवा है। इसका निर्माण पारद

से होता है, उपदंश विष के कारण मुंह से दुर्गन्ध आये और मसूड़े फूल जावें तो इसका प्रयोग करना चाहिये। समलक्षण होने पर यह मुख के उपसर्गों के साथ ही प्रधान रोग उपदंश को भी ठीक कर देगी।

लक्षण—रोगी को रात में पसीना अधिक आता है पर पसीने से सभी उपसर्गों का बढ़ जाना, मुंह से लार गिरती है, मसूढ़े फूले हुए और उनसे रक्तस्राव होता है, मुंह में सड़ी दुर्गन्ध आती है, मसूढ़े नरम और दांतों से अलग हो जाते हैं, जीभ मोटी थुलथुली और उस दांत के दाग होते हैं। यह देखकर आपको आश्चर्य होगा कि रोगी की जीभ, मुंह तर रहता है फिर भी प्यास अधिक लगती है। मुंह से दुर्गन्ध आती है जो कि सारे कमरे में भर जाती है। सभी कष्ट रात में बढ़ते हैं। मार्कसोल के रोगी के मुंह में बदबू और मुंह, मसूढ़ों की अवस्था यदि आप एक बार देख लेंगे तो जीवन में दुबारा पहचानने में असुविधा नहीं होगी।

एण्टिमक्रुड ३०, २००—एण्टिमक्रुड़ नामक दवा में मुंह की दुर्गन्ध का कारण पाचन क्रिया की गड़बड़ी है। इस दवा का प्रधान लक्षण है जीभ पर मोटा सफेद लेप जैसे कि जीभ पर चूना लेप दिया होवे। मुंह के कोनों में दरार और फटाव, मसूढ़े दांतों से अलग हो जावें, खूनआसाकों से आये, मुंह में गलने-सड़ने वाले घाव,प्यास का अभाव, सभी रोग लक्षण सूर्य की गरमी से और ठंडे पानी से स्नान करने पर बढ़ते हैं।

आर्सेनिक एल्बम् ३०, २००—आर्सेनिक एक दीर्घ क्रियाशील दवा है। किसी जगह सड़न दुर्गन्ध के साथ इसके चरित्रगत लक्षण होवें वहां इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिए। जैसे कि—जलन और उसमें गरम से उपशम, प्यास पर थोड़ा थोड़ा जल पीता है, बेचैनी शारीरिक और मानसिक, मृत्यु भय रोगी सोचता है कि दवा खाना बेकार है इस रोग से अवश्य ही मृत्यु हो जावेगी। उपरोक्त लक्षणों के साथ किसी भी स्थान को सड़न या दुर्गन्ध में आप इसका प्रयोग करें लाभ अवश्य होगा।

औरम मैटालिकम् २००, १ M, १० M—यह दवा सोने से तैयार होती है, यह भी एन्टी सिफलिटिक दवा है। जिस सोने की प्राप्ति के लिये मानव क्या नहीं करता है वही यदि स्वस्थ्य व्यक्ति को खिलाया जाय तो उसकी विष क्रिया के कारण जो लक्षण पैदा होते हैं उनमें सर्व प्रधान मानसिक लक्षण है, "आत्म हत्या करने की इच्छा" यदि उपरोक्त लक्षण के साथ ही यौवन प्राप्त युवतियों के मुंह से दुर्गन्ध आवे, मुंह का स्वाद सड़ा हुआ या कड़वा मसूढ़ों पर घाव बन जावे।

बैप्टीसिया ३×६×६, ३०, २००—बैप्टीसिया एक स्वल्प क्रियाशील, वनौषधी जातऔषधी है। इस दवा का प्रधान लक्षण ही दुर्गन्ध है। शरीर के किसी भी द्वार से स्राव क्यों न होवे वह दुर्गन्धयुक्त होता है जैसे श्वास,मल, मूत्र, पसीना, सभी जगह दुर्गन्ध रहती है। उपरोक्त लक्षणों के साथ दांत और मसूढ़ों में दर्द, घावयुक्त, श्वास बदबू युक्त, जीभ जैसे जल गई होवे।

हीपर सल्फ ३×, ३०, २००—जब पीव पैदा होना आरम्भ होवे, मसूढ़ों में घाव हो, पारे का अप व्यवहार के कारण होने वाले रोग।

बेलाडोना ६, ३०, २००—मसूढ़ों की सूजन की प्रथमावस्था में जन प्रदाह के कारण मसूढ़े लाल होवें उनमें दर्द न होवे रात्रि में और छूने से वृद्धि होती है।

साईलीसिया ३०, २००—मसूढ़ों में नासूर होवे और उससे पतला पस का स्राव होने पर यह लाभप्रद दवा है।

स्टैफिसेग्रिया ३०, २००—मसूढ़े दांतों से अलग हो जाते हैं। साथ ही दांतों का क्षय होता होवे।

नीचे हम मसूढ़ों के रोगों के बारे में डा० जार के अनुभव लिख रहे हैं।

मसूढ़ों से रक्तस्राव होने पर मार्कसोल और कार्बोभेष प्रधान दवा है। यदि रोग अधिक उग्र न हो और वह सहसा सर्दी लग जाने से आया हो, मुंह में चाहे लार आती हो या न आती हो तो डलकामारा ही सर्वोत्तम औषधि है। यदि विकार पारा के सेवन से आया हो तो कार्बोभेष, चायना, 'हीपरसल्फ' लैकेसिस और आर्सेनिक देना चाहिए। यदि मसूढ़ों से खून गिरे और दुर्गन्ध आवे तो कार्बोभेष का व्यवहार अनिवार्य है। यदि सड़ाव (Gangrene) आने की आशंका हो तो आर्सेनिक लोकेसिस देवें। डा० हैम्पल का मत है कि मसूढ़ों से रक्त गिरने पर मार्कआयोड और हाईड्रैस्टिस भी उपयोगी है।

—श्री बनारसीदास दीक्षित, रक्सौल (चम्पारन)

चिकित्सा रहस्य

चिकित्सा-विशेषांक द्वितीय भाग के लिए इसके विशेष सम्पादक श्री बी० एस० प्रेमी द्वारा प्रस्तुत साहित्य केवल ३६४ पृष्ठों में समाप्त हो जायगा इसका अनुमान हम छपने से पूर्व नहीं लगा सके थे। जब इस विशेषांक के ३२० पृष्ठ छप गए तब यह भान हुआ कि शेष साहित्य बहुत कम रह गया है। अब इतना समय भी नहीं था कि हम श्री प्रेमी जी से निवेदन करते तथा वे और लेख लिखकर भेज सकते। विशेषांक को सदैव की भांति ५०० पृष्ठ का प्रकाशित करना आवश्यक था, ऐसी दशा में क्या किया जाय यह एक समस्या थी। बहुत कुछ विचार एवं ऊहापोह करने पर भी समस्या का सुलझाव समझ में न आया।

स्वर्गीय श्री पं० कृष्ण प्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य, जिन्होंने वनौषधि-विशेषांक के पांच भागों का लेखन-संकलन किया था और जो धन्वन्तरि ग्राहकों के सुपरिचित थे, का लिखा हुआ "चिकित्सा-रहस्य" हमारे पास रखा था। चिकित्सा रहस्य का प्रथम भाग पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुका है [प्रथम भाग की विषय-सूची भी हम आगे प्रकाशित कर रहे हैं] उससे आगे का लगभग दुगना साहित्य और रखा था जिसे हम पुस्तक रूप में ही प्रकाशित करना चाहते थे। इसमें विभिन्न रोगों का सुन्दर वर्णन,चिकित्सा सिद्धान्त तथा सुपरीक्षित सफल प्रयोगों का संग्रह है। यह साहित्य चिकित्सकों के लिए निश्चय ही अति उपयोगी तथा संग्रहणीय है।

स्वर्गीय त्रिवेदी जी का यह अलभ्य साहित्य-धन्वन्तरि के पाठकों को हर दृष्टि से पठनीय एवं संग्रहणीय प्रमाणित होगा। यह विश्वास करते हुए हम विशेषांक के शेष भाग में इसे प्रकाशित कर रहे हैं।

—सम्पादक

स्वर्गीय श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी
बी० ए० आयुर्वेदाचार्य

सत्रहवां अध्याय

धातु और मल

दोषों का विवरण हो चुका, अब बहुत ही संक्षेप में धातु और मलों के विषय में लिखकर आगे रोग, औषधि एवं चिकित्सा प्रकरण प्रारम्भ करेंगे।

सर्व प्रथम **दोष, धातु और मल इन तीनों का सूक्ष्म भेद** समझ लेना आवश्यक है। दोष, धातु और मल इन तीनों के सम्बन्ध को इस प्रकार समझाया जा सकता है—त्रिदोष ये कार्यकारी है, अर्थात् कार्य-कारिणी शक्ति विशेषतः वात, पित्त, कफ में पाई जाती है। तथा इस शक्ति के आधारभूत धातु और मल हैं। शरीर के प्रत्येक छोटे से छोटे या बड़े से बड़े भाग में सदैव वृद्धि दशा और क्षीण दशा प्राप्त होती रहती है। वृद्धि या बढ़ाने की सामर्थ्य जिसमें है वह प्रायः शक्ति सम्पन्न रहता है और छीजने वाला या क्षीण दशा को प्राप्त होने वाला अंश उसके आश्रय से रहता है। इस प्रकार प्रत्येक भाग के—उत्पादन सामर्थ्ययुक्त,हीन सामर्थ्ययुक्त और इन दोनों के बीच में धारण करने वाला मध्यभाग, ऐसे तीन विभाग किये जा सकते हैं। शरीर के प्रत्येक घटक में वृद्धि और ह्रास की दशा सदैव चालू रहती है। उत्पादन सामर्थ्य युक्त भाग अर्थात् दोष तथा छीजन वाला भाग धातु इन दोनों के बीच में या इन दोनों का आश्रय भूत जो भाग है, वह 'मल' कहाता है। इस प्रकार शरीर के प्रत्येक भाग में दोष, धातु और मल इन तीनों की अवस्थिति होने से 'दोष धातु मल मूलं हि शरीरम्' ऐसा आयुर्वेदीय सिद्धान्त है।

जीवितावस्था में इन सब भागों या घटकों (Cells) के समुदाय को ही शरीर कहते हैं। तथा प्रत्येक घटक का अस्तित्व ही उक्त त्रिविध स्वरूप का होने से, दोष, धातु और मल ये तीनों शरीर के धारक कहे जाते हैं। किन्तु इनके शरीर धारक रूप इस सामान्य कार्य में भी भेद है। धातुयें आश्रय रूप से आधार या शरीर धारण का कार्य करती हैं, दोष क्रियाकारी स्वरूप से वही कार्य करते हैं, तथा मल इन दोनों का केवल आवरण रूप में आधार होकर रहते हैं। इन तीनों को केवल एक धातु शब्द से पुकारने से पूर्ण अर्थ बोध नहीं होता। अतः स्पष्ट रूप से इन तीनों के विषय में ऐसा कहा जा सकता है कि दोष वे हैं जो धातुओं में रहते हुए परम सूक्ष्म शक्ति स्वरूप से अपना कार्य करते हैं तथा ये परम सूक्ष्म होने से दृष्टिगोचर नहीं है। धातु वे हैं जिनमें दोषों की क्रिया घटित होती है अथवा जो क्रियाकारी शक्ति सम्पन्न दोषों के आधारभूत हैं। ये दृष्य हैं और धातुओं के उन शक्तिहीन दशा प्राप्त पदार्थों को मल कहते हैं, जो धातुओं के ही आश्रय से रहते हैं तथा जिनके अनावश्यक घटने या बढ़ने से उक्त दोनों के कार्य में रुकावटें पैदा होकर शरीर मलिन या विकार ग्रस्त हो जाता है। इसी से "मलिनी करणान्मलः" ऐसा स्पष्ट निर्देश इनके विषय में किया जाता है।

जिसके कारण या जिसके योग से शरीर मलीन या दूषित होता है उसे मल कहते हैं। शारीरिक धातुओं में या स्रोतों में या रन्ध्रों में कई प्रकार की अनावश्यक पदार्थों की उत्पत्ति या वृद्धि होती रहती है, जो किसी न किसी रूप में शरीर के बाहर निकल जाने का प्रयत्न किया करते हैं, ये सब मल कहलाते हैं। ऐसे ही शारीरिक धातु आदि का जब किसी कारणवश रूपान्तर हो जाता है—जैसे रक्त का रूपान्तर राध (पीव) में होना इत्यादि, अथवा वात, पित्त, कफ प्रमाण शरीर में आवश्यकता से अधिक बढ़ जाने या घट जाने पर उनका जो रूपान्तर देखने में आता है तथा इनके अतिरिक्त शरीर में जिन-जिन पदार्थों की विशेष वृद्धि के कारण दुर्बलता या क्षीणता बढ़ती है, वे सब मल कहलाते हैं। ध्यान रहे, शरीरान्तर्गत दोष, धातु और मल के दो भेद-मल और प्रसाद रूप से किये जाते हैं। इनमें जो पदार्थ शरीर में रहने पर किसी प्रकार की पीड़ा या हानि पहुंचाता है, जिसका बाहर निकाल देना ही श्रेयष्कर या सुखकारक होता है, वही 'मल' कहाता है तथा वही 'मल' या किसी अन्य शब्द से पुकारे जाने वाला पदार्थ जब तक शरीर में अविकृत या समप्रमाण में रहते हुए, किसी प्रकार की

पीड़ा न पहुँचाते हुए, अपने प्राकृत कर्मों से शरीर को अनुग्रहीत करता रहता है, तब तक वह 'प्रसाद रूप' में माना जाता है।

वात, पित्त, कफ भी जब तक देह में समावस्था में हैं तथा अपने प्राकृत कर्मों से शरीर की रक्षा करते हैं, तब तक वे 'प्रसाद रूप' में धातु कहे जाते हैं। वे ही विषमावस्था में रोगजनक होने से दोष तथा अत्यधिक होने से विसर्ग द्वारा यथोचित मार्ग से बाहर निकाल देने के योग्य हो जाने पर 'मलरूप' हो जाते हैं। इसीलिए प्रसंगानुसार वात, पित्त, कफ को कहीं दोष, कहीं धातु और कहीं मल कहा गया है। पुरीष, मूत्र, स्वेद आदि ये दोष और धातुओं की अपेक्षा अधिक मात्रा में मल रूप होने तथा अपने-अपने मार्गों द्वारा शीघ्र ही बाहर फेंके जाने योग्य होने से तथा इनकी शरीर में वृद्धि होने से ये शरीर को अत्यधिक मलीन कर देते हैं, इस कारण मुख्यतया मल शब्द इन्हें ही लगाया जाता है। दोष और धातुओं की मल संज्ञा गौण रूप से हैं।@ गुण भेद से गुरु, लघु आदि २० गुणों को तथा द्रव्यभेद से रस से लेकर सप्त धातुओं को विकार रहित (वृद्धि या क्षय को न प्राप्त) दशा में प्रसाद कहते हैं।

शरीर में रस, रक्तादि धातु, पुरीष मूत्रादि मल तथा वात, पित्त, कफ ये दोष जब तक यथा-योग्य प्रमाण में रहते हैं, तब तक शरीर में किसी प्रकार का विकार या रोग नहीं होने पाता प्रत्युत् शरीर की सर्वाङ्गीण परिपुष्टि हुआ करती है। जैसा कि शार्ङ्गधराचार्य जी का कथन है—

अतवस्तन्मला दोषा नाशयन्त्यसमास्ततनुम्।
समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचमायचा॥

अतः ये सब जब तक शरीर में यथा योग्य प्रमाण में रहते हैं, तब तक वे 'धातु' अर्थात् शरीर के स्वास्थ्य घटक कहलाते हैं। मल-धातु और प्रसाद-धातु दोनों शरीर धारण के काम में परस्पर सहकार्य करते रहते हैं। धातुओं और मलों का चिकित्सोपयोगी विवरण पीछे अध्याय ११ के प्रमुख सूत्रावली प्रकरण के नं. २ के सूत्र में देखिये) यहां उनकी समावस्था तथा वृद्धि एवं क्षय सम्बन्धी चिकित्सोपयोगी विवरण प्रसङ्गानुसार दिया जाता है—

(१) रस धातु—समावस्था—शरीर में रसधातु यथायोग्य प्रमाण में होने पर शरीर न कृश होता है और न स्थूल क्योंकि शरीर की कृशता और स्थूलता रस के निमित्त से ही होती है, कहा है—

रसं निमित्तमेव स्थौल्यं कार्श्यं च॥
सु. सू. अ. १५

शरीर में रक्त की पुष्टि और वृद्धि भी यथायोग्य प्रमाण में होती है, तथा अन्य सब धातुओं की पुष्टि भी यथास्थित होते रहने से धैर्य, बल, उत्साह, उत्कंठा आदि की वृद्धि होती है।

वृद्धि अवस्था—शरीर में रस की विशेष वृद्धि होने पर—मुख से लार टपकना, अरुचि, मुख की विरसता, उबकाई, जी मिचलाना, स्रोतों का अवरोध, मधुर रस से, द्वेष, मंदाग्नि, श्वास, कास आदि कफ की वृद्धि जैसे ही प्रायः सब लक्षण होते हैं।

@ शरीरधातवः पुनर्द्विविधाः संग्रहेण मलभूताः प्रसाद भूताश्च, तत्र मल भूतास्ते ये शरीरस्य बाधकराः स्युः तद्यथा-शरीरच्छिद्रेषूपदेहाः पृथग् जन्मानो बहिर्मुखाः, परिपक्वाश्च धातवः, प्रकुपिताश्च वातपित्त श्लेष्माणो ये चान्येऽपि केचिच्छरीरे तिष्ठन्तो भावाः शरीरस्योपघातायोपपद्यन्ते सर्वांस्तान् मलान् संप्रवक्ष्महे, इतरांस्तु प्रसादाख्यान्, गुर्वादींश्च द्रवान्तान गुणभेदेन, रसादींश्च शुक्रान्तान् द्रव्य भेदेन। च. शा. अ. ६

† रसोऽतिवृद्धो हृदयोत्क्लेदं प्रसेकं चापादयति। —सु. सू. अ. १५

तथा—प्रसेकारोचकास्यवैरस्य हृल्लास स्रोतोरोध स्वादुद्वेषांगमर्वादिभिरन्यैश्च श्लेष्म विकारस्प्राये रसः। —अ. सं. सू. अ. १९

नोट—रोग की साध्यासाध्यता की परीक्षा तथा स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए शरीर के मध्य, स्थूल और कृश ऐसे तीन भेद किये जाते हैं। इन तीनों भेदों का कारण भी रस धातु ही है। यदि स्वस्थ्यवृत्तोक्त प्रकृत्यनुसार ऐसा आहार विहार किया जाय जो कि न तो स्थूलता करक (मेदोवर्धक) हो और न कृशताकारक हो तो जो रसोत्पत्ति होती है, उससे सर्व धातुओं की समानरूप से परिपुष्टि होती है, उनकी क्षीणता या वृद्धि न होकर साम्य बना रहता है। शरीर मध्य (न अति स्थूल और न कृश) अवस्था में, जिसका गठन (संहनन) समरूप में अग्नि भी सम होकर इन्द्रियां सुदृढ़, सर्व प्रकार का व्यायाम या परिश्रम करने में समर्थ, भूख, प्यास, शीत, उष्णादि द्वन्द्वों को अनायास सहन करने वाला, बलवान, रोग वेग से पीड़ित न होने वाला, तथा अकाल में ही जराग्रस्त न होने वाला होता है।

क्षीणावस्था—हृदय कम्प, थोड़ी सी भी चेष्टा करने से जैसे कोई हृदय को आलोड़ित करता हो ऐसा प्रतीत होना, हृदय धकधक करने लगना हृदय में जकड़न, शूल‡ ग्लानि, अत्यधिक थकावट मुख आदि का सूखना, रूक्षता, तृष्णा, आमाशय हृदय तथा मन की शून्यता (इनका खाली सा प्रतीत होना) कोई भी किसी प्रकार का शब्द सहन न होना (फोनोफोबिया Phonophobia), ग्लानि, श्वास का बढ़ना आदि लक्षण होते हैं। इस दशा में बार बार शीतल जल, हिम, चांदनी, निद्रा, मधुर रस, ईख, मांस रस, शहद, घृत, शर्बत आदि की इच्छा होती रहती है।×

रसजविकार—वास्तव में विकार या रोग की उत्पत्ति का कारण तो दोष वैषम्य ही हैं, किन्तु जिस धातु आदि में दोष का अवस्थान होता है, उसी के नाम से घृतदग्ध की भांति औपचारिक दृष्टि से,व्यवहार में वह रोग पुकारा जाता है। कहा है--'रसादिस्थेषु दोषेषु व्याधयः संभवन्ति ये। तज्जानित्युपचारेण तानाहुर्घृतदाहवत्।' (अ. सं)। चिकित्सा की दृष्टि से भी जिस धातु आदि में स्थान संश्रय करके दोषों द्वारा विकारोत्पत्ति हुई है, उसके विशेष लक्षणों को जानना आवश्यक होने से, हम यहाँ प्रत्येक धातु आदि के वृद्धि, क्षय के लक्षणों के साथ ही साथ, उन्हें भी लिखे देते हैं।

रस धातु के दोष दूषित होने पर ये लक्षण होते हैं—भोजन के प्रति तिरस्कार(अन्न द्वेष), अरुचि,(Anorexia) मुख के रस का विकृत होना, मधुर आदि रसों का ज्ञान न होना, जी मिचलाना (nausea), गौरव (भारीपन), तन्द्रा, अङ्गमर्द, (शरीर का टूटना), ज्वर, हृद्रोग, पाण्डुरोग, स्रोतों का रुक जाना, क्लीवता (नपुंसकता), शिथिलता, कृशता, अग्निनाश, अकाल में झुर्रियां तथा बालों का श्वेत होना, सदैव पेट भरा सा मालूम होना (तृप्ति Sense of Satiety), ग्लानि (थकान), आदि।+

---

‡ हृदय को रस-रक्त अल्प प्रमाण में मिलने से वात की वृद्धि होकर अथवा हृदय-पोषक धमनियों का स्तंभ, संकोच होकर हृदय में शूल होता है। पाश्चात्यमत से प्रथम हृदय में संकोच या स्तंभ होता है, फिर रस रक्त के अभाव से शूल होने लगता है, इसे एंजाइना पेक्टोरिस (Anginapectoris) कहते हैं।

× रस क्षय हृत्पीड़ाकम्पः शून्यता तृष्णाच ॥ —सु. सू. अ. १५

तथा—शब्दासहत्व हृदय द्रव कम्प शोष शूल शून्यता स्पन्दन घट्टनैरल्पयापिच चेष्टया श्रम तर्षाभ्यां रसः : अ. सं. सू. अ. १६, तथाच, "घट्टते सहते शब्दं नोच्चैर्द्रवति शूल्यते। हृदयं ताभ्यतिस्वल्पचेष्टस्यापि रस क्षये ॥" —च. सू. अ. १७

नोट—ध्यान रहे, प्रत्येक पूर्व धातु अत्यन्त बढ़ने पर अपने समीपवर्ती उत्तर धातु को बढ़ा देता है। इस प्रकार एक धातु की वृद्धि या क्षीणता से उत्तरोत्तर धातुओं की वृद्धि या क्षीणता का क्रम जारी हो जाता है। अतःइस वृद्धि या क्षीण परम्परा अर्थात् विकार परम्परा को रोकने लिये अतिवृद्ध धातु को क्षीण तथा अतिक्षीण धातु की वृद्धि स्वाभाविक मर्यादा तक औषधि उपचार द्वारा करना प्रशस्त होता है। इसी प्रकार उत्तर धातु की वृद्धि या क्षीणता से पूर्व-पूर्व धातुओं की वृद्धि या क्षीणता हुआ करती है, जैसे शुक्र की वृद्धि या क्षीणता से उसके पूर्व-पूर्व धातु मज्जा, अस्थि आदि धातुओं की वृद्धि या क्षीणता हुआ करती है। अतः कारणवश क्षीण या वृद्धि हुए धातुओं को बढ़ाना या घटाना ही स्वास्थ्य की दृष्टि से चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य है। कहा है—"पूर्वं पूर्वोऽति वृद्धत्वाद्वर्धयेद्धि परं परम्। तस्मादति प्रवृद्धानांधातूनां ह्रासनं हितम् ॥ सु. सू. अ. १५ तथा 'पूर्वोवृद्धः परं कुर्याद् वृद्धः क्षीणश्च तद्विधम्" (अ. हृदय) क्षपयेद् बृंहयेच्चापि दोषधातु मालान् भिषक्। तापधा वदरोगः स्यान्नरो रोग समन्वितः ॥ इति

+ अश्रद्धा चारुचिश्चास्यवैरस्यमरसज्ञता। हृल्लासो गौरवं तन्द्रा सांगमर्दोज्वरस्तमः। पाण्डुत्वं स्रोतसां रोधः क्लैव्यं सादः कृशांगता। नाशोऽग्नेरयाकालं वलयः पलितानि च। रसा प्रदोषजा रोगाः —च० सू० अ० २७। तथाच--"तत्र अन्नाश्रद्धारोचकाविपाकांगमर्द ज्वर हृल्लास तृप्तिगौरव हृत्पाण्डुरोग मार्गोपरोध कार्श्य वैरस्यांगसादाकाल जवलीपलितदर्शन प्रभृतयो रसदोषजा विकाराः ॥ —सु० सू० अ० २

उपचार—उक्त रसज विकारों की शान्ति के लिये भारी, शीतल, अत्यन्त स्निग्ध (घी, तेल आदि स्नेह से युक्त) तथा अत्यधिक मात्रा में भोजन(आहार विहार)नहीं करना चाहिये, दिमागी कार्य या मानसिक विषय की अति चिन्ता न करें। इस में लङ्घन (अनशनादि उपचार जिस से शरीर हलका हो) कराना सर्वश्रेष्ठ उपाय है। कहा है—

"गुरु शीतमतिस्निग्धम तिमात्रं समश्नताम् ।
रसवाहीनि दुष्यन्ति चिन्त्यानामति चिन्तनात् ॥
—च. वि. अ. ५

रसजानां विकाराणां सर्वलङ्घनमौषधम् ॥
—च. सू. २७

नोट—लंघन के १० प्रकार हैं—चार प्रकार की संशुद्धि (वमन, विरेचन, आस्थापन, शिरोविरेचन),प्यास के वेग को रोकना, वायु सेवन, धूप सेवन, पाचन द्रव्यों (जो द्रव्य जाठराग्नि या कायाग्नि को प्रवल करते हैं)का सेवन, उपवास, और व्यायाम इनमें से रोगी के प्रकृति अनुसार जो भी लंघन हो उसे कराना चाहिये। ×

२ रक्तधातु—

समावस्था—समावस्था में रहने पर शरीराकृति में गात्रोंमें कोमलता तथा मांस आदि उत्तर सुन्दरता, धातुओं की पुष्टि होती है।

वृद्धि अवस्था—'चयोवृद्धिः स्वधाम्न्येव' तथा 'कोपस्तून्मार्गगमिता' इस सूत्रानुसार अन्य धातुओं के समान ही रक्त-वृद्धि के दो भेद—चय और प्रकोप रूप से (धातु दूषित होकर अपने नियम स्थान पर ही बढ़ने पर चयवृद्धि, तथा कुपित हो, स्थनान्तर गमन पर प्रकोप वृद्धि) होते हैं। इस प्रकार रक्त की जब वृद्धि होती है तब ‡

× चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ। पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेतिलङ्घनम् ॥ —च.सू.अ. २२

नोट-बालकों में पक्व(Coeliac disease)नामक रोग- यह रस क्षय का ही एक विकार है। इसमें यकृद्वृद्धि,क्षुधानाश,मल पतला कई बार होना, उदर प्रदेश का बढ़ना, मांसपेशियों की हीनता, दुर्बलता आदि लक्षण होते हैं। उपचार—प्रथम बल का संरक्षण और स्रोतों का संशोधन करे। गोमूत्र को श्वेत बोतल में भर, उसमें केशर ३ माशे मिला, ३ दिन सूर्य ताप में रक्खें। इसमें से १ चम्मच गोमूत्र में ५ तोले तक गोदुग्ध मिला प्रातः सायं पिलावें। मक्खन निकाला हुआ दूध देवें या बकरी का दूध देवे, भारी भोजन न दें। संतरा, मौसम्बी, अंगूर, सेब आदि अधिक देवें। पथ्यकर भजन थोड़ा-थोड़ा कई बार में देवें। फल और दूध एक साथ नहीं देवें, कम से कम ३ घंटे के अन्तर से देवें। पेशाव में क्षार आदि कोई द्रव्य निकालना हो, पेशाव का रंग अधिक पीला हो, तो चन्द्रप्रभावटी या शिलाजीत या अपामार्ग क्षार आदि का सेवन करावें। दस्त अधिक हों तो पंचामृत पर्पटी या स्वर्णपर्पटी विशेष हितकर है। यदि अस्थिवक्रता हो तो चूना प्रधान औषधियां-प्रवाल, शंख, शृंगभस्म आदि का भी प्रयोग करें। अरविन्दासव, सुवर्णवसंत आदि की योजना करे। उक्त रसक्षयजन्य व्याधि युवावस्था में प्रायः पुरुषों को अधिक होती है। त्वचा में झुर्रियां पड़ती हैं, वर्ण बदल जाता है। सन्धियों में वेदना, ज्वर का बार बार आक्रमण होना, पाण्डुता, उदर में भारीपन, शेष लक्षण बालकों के पक्व रोग जैसे ही होते हैं। इस पर संग्रहणी रोग की चिकित्सा तथा पथ्यापथ्य का पूर्ण पालन करना चाहिये। चतुर्मुख रस और प्रवाल पंचामृत का मिश्रण रोग की प्रारम्भिक अवस्था में उत्तम है। प्रबलावस्था में पंचामृत पर्पटी या हिंगुल रसायन की योजना करें। प्रवाल पिष्टी,स्वर्णवसंत, माण्डूर माक्षिकभस्म और ६४ प्रहरी पीपल इनका मिश्रण उचित प्रमाण में सेवन करावें।

‡ रक्त की अस्वाभाविक अधिकता को पालीमिया Polyemia, तथा उससे रक्तवाहिनियों की असाधारण पूर्णता को प्लेथोरा Plethora, रक्तकणों की वृद्धि को एरीथ्रीमिया Erythraemia कहते हैं।

ध्यान रहे पित्तप्रकोपक कारणों से ही रक्त का प्रकोप हुआ करता है। बारम्बार पित्त प्रकोपक आहार विहार आदि के सेवन से तथा द्रव, स्निग्ध, गरिष्ठ पदार्थों के सेवन से, दिन में सोना, क्रोध, अग्नि और सूर्य का ताप परिश्रम, चोट लगना, अजीर्ण,विरुद्धाशन, अध्यशन इत्यादि कारणों से रक्त प्रकुपित हो जाता है। कहा है—

"पित्त प्रकोपणैरेव चाभीक्ष्णं द्रव स्निग्ध गुरुभिराहारैर्दिवास्वप्न क्रोधानलातपश्रमाभिघाताजीर्ण विरुद्धाध्यशनादिभिर्विशेषैरस्टक् प्रकोपमापद्यते।
— सु० सू० अ० २१

विदाहीन्यन्नपानानि स्निग्धोष्णानि द्रवाणि च। रक्तवाहीनि दुष्यन्ति भजतां चातपानलौ ॥ —च०वि०अ०

सिराओं (रक्तवाहिनियों) की पूर्णता, नेत्र और त्वचा में रक्तिमा, कुष्ठ, विसर्प, फोड़े फुन्सी, रक्तप्रदर, नेत्र, मुख, लिंग और गुदा का पकना, प्लीहा, गुल्म, विद्रधि, मुखव्यंग (मुख पर काली झांई पड़ना), कामला, अग्निमांद्य, आंखों के सामने अंधियारी आना, वातरक्त आदि प्रायः वे ही सब लक्षण होते हैं, जो पित्त प्रकोप में कहे गये हैं। *

उपचार—प्रथम देखना चाहिए कि रक्त को दूषित कर प्रकुपित करने वाला दोष कौन है? दोषों के प्रकोप काल तथा निम्न लक्षणों पर से यह शीघ्र ही जाना जा सकता है। यदि रक्तवात से दुष्ट हो, तो वात प्रकोपकाल में रक्तज उक्त विकारों की वृद्धि होगी तथा रक्त के परीक्षण से मालूम होगा कि वह झागदार, किंचित् लाल रङ्ग का काला, रूखा, पतला, जल्दी बहने वाला और जमने वाला नहीं है। यदि पित्त से दुष्ट होगा तो पित्त प्रकोपकाल में विकारों की विशेष वृद्धि होगी और रक्त नीला, पीला, हरा, काला, मांसगन्धी, चींटी और मक्खियों के लिए अप्रिय तथा न जमने वाला होता है।

यदि कफ में दुष्ट होगा तो कफ प्रकोप काल में विकारों की वृद्धि होगी, तथा रक्त–गेरू के जल के समान चिकना, ठण्डा, चिपचिपा, मन्दगति से बहने वाला (या देर तक बहने वाला, देखा गया है कि त्वचा में सुई से छेद करने पर जो रक्त का स्राव होता है, वह ढाई मिनट में बन्द होता है। यह सामान्यतः रक्तस्रवण काल Bleeding time कहाता है। किन्तु कई रोगों में जैसे शीताद Purpura, Scurvy, Hemophilia आदि–यह स्रवणकाल आधे घण्टे से भी अधिक हो जाता है) और मांसपेशी के समान दिखाई देना हैं। तीनों दोषों से बिगड़ा हुआ रक्त उपर्युक्त सर्वलक्षण युक्त कांजी के समान एवं विशेषतः दुर्गन्धयुक्त होता है। जिसमें दो दोषों के लक्षण हों उसे दो दोषों से बिगड़ा हुआ समझना चाहिए। यद्यपि रक्त का चौथा दोष माना जाता है, किन्तु त्रिदोषों के समान उसमें स्वतन्त्र क्रियाशक्ति नहीं है। इसीलिए कहा गया है—

> यस्माद्रक्तं विनादोषैर्न कदाचित् प्रकुप्यति ।
> तस्मात्तस्य यथादोषं कालं विद्यात्प्रकोपणे ॥
> —सु० सू० अ० २७

तत्र फेनिलमरुणं कृष्णं परुषं तनुशीघ्रगमस्कंदि च वातेन दुष्टं, नीलं पीतं हरितं श्यावमित्यादि ।
—देखिए सु० सू० अ० १४

इस प्रकार रक्तज रोगों में प्रवृद्ध दोष और काल को देखकर यथायोग्य चिकित्सा करनी चाहिए। इसमें रक्त और पित्त का शमन करने वाली औषधि योजना करें तथा यथोचित् विरेचन, उपवास और रक्त का स्रावण करना चाहिए। ध्यान रहे, जो साध्य रोग शीत, उष्ण, और स्निग्ध, रूक्ष आदि परस्पर प्रतिपक्षी उपक्रमों द्वारा सम्यक्तया चिकित्सा करने पर भी सिद्ध या ठीक नहीं होता उसे रक्तज रोग समझकर ही यथायोग्य उसका उपचार करना चाहिए। कहा है—

> शीतोष्ण स्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रान्ताश्च ये गदाः ।
> सम्यक् साध्या न सिध्यन्ति रक्तजांस्तान्विभावयेत् ॥
> कुर्याच्छोणित रोगेषु रक्तपित्तहरीं क्रियाम् ।
> विरेकमुपवासं वा स्रावणं शोणितस्य वा ॥
> —च० सू० अ० २४

क्षीणावस्था—रक्त के क्षीण होने पर त्वचा खुरदरी, फूटी हुई सी, मुरझाई हुई और रूक्ष हो जाती है। सिरायें, धमनियां (Blood vessels) तथा हृदय भी शिथिल हो जाता है। (यह सिरा या धमनी शैथिल्य आधुनिक बहुप्रचलित रक्तदोष की अल्पता रोग–लो ब्लड प्रैशर Low blood pressure या हायपोटेंशन Hypotension @ में मुख्यतया पाया जाता है। मांस धातु के

* रक्तावृत वात—रक्त धातु की विशेष वृद्धि होकर जब वह वात को आवृत कर लेता है, तब शरीर में सुइयां चुभने की सी वेदना, स्पर्श द्वेष, स्पर्श का अज्ञान (प्रसुप्ति), त्वचा तथा मांस के मध्य में दाह, वेदना तथा रक्तिमा से युक्त शोथ और मण्डल एवं विविध पित्त विकार होते हैं। इसकी चिकित्सा "वातरक्त" प्रकरण में देखिए।

सूचीभिरिव निस्तोदः स्पर्शद्वेषः प्रसुप्तता। दोषाः पित्तविकाराः स्युर्मारुते शोणितान्विते ॥ —सु० नि० अ० १

रक्तावृते सदाहार्तिस्त्वङ्मांसान्तरजो भृशम् । भवेच्च सरागः श्वयथुर्जायन्ते मण्डलानि च ॥ —च०चि०अ० २७

@ आगे देखिए अध्याय २० के हीनरक्तचाप के प्रकरण में।

क्षय में भी यही लक्षण होता है) और अग्निमांद्य एवं वात का विशेष प्रकोप होता है। कहा है —

परुषा स्फुटिता म्लाना त्वग्रूक्षा रक्त संक्षये।

—च० सू० अ० १७

शोणितक्षये त्वक्पारुष्यमम्लशीत प्रार्थना सिराशैथिल्यं च।

—सु० सू० अ० १५

नोट—रक्तक्षीणता की विशेष पहिचान यह है कि रोगी खट्टी और शीत वस्तुओं के सेवन की बहुत इच्छा करता है तथा—अंगूर या अनार का सिरका, नमकीन, घृत मिश्रित भोजन एवं रक्त में पकाये हुये मांस आदि की उसे विशेष चाह होती है। कहा है—

द्राक्षा दाडिम युक्तानि सस्नेहलवणानि च।
रक्तसिद्धानि मांसानि रक्तक्षीणोऽभिकांक्षति॥

—सुश्रुत डल्हण की टीका

उपचार—शरीर में किसी भी कारणवश रक्त की क्षीणता हुई हो तो अग्नि की मन्दता और वात प्रकोप-जन्य लक्षणों की ओर ध्यान देते हुये वात दोष के शमनार्थ बृंहणीय एवं स्निग्ध खाद्य पदार्थ, तथा अग्निमांद्य के निराकरणार्थ हलके एवं दीपनीय पदार्थों के साथ रक्तानुकूल नातिशीत(न बहुत ठंडा और न बहुत गरम)किंचित् खटाईयुक्त या खटाईरहित भोजन एवं औषधि आदि की योजना करनी चाहिए। कहा है—

"धातुक्षयात् स्रुते रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः।
पवनश्च परं कोपं याति तस्मात् प्रयत्नतः॥
ते नातिशीतैर्लघुभिः स्निग्धैः शोणितवर्धनैः।
ईषदम्लैरनम्लैर्वा भोजनैः समुपाचरेत्॥

—सु. सू. अ. १४

काकोली[1] आदि औषधियों का क्वाथ शर्करा और मधु से मधुर करके पिलावें। अथवा कृष्ण या ताम्र हिरण, मेंढ़ा आदि का रुधिर पिलावें[2]। क्षीर, मूंग आदि का यूष और मांस रस इनका स्निग्ध पदार्थों के साथ सेवन करावें। ध्यान रहे, पित्त दूषित रक्त के क्षय में या पित्त प्रकृति के रोगी को क्षीर या दुग्ध मिश्रित स्निग्ध भोजन, कफ दूषित रक्तक्षय में मुद्गादियूष का भोजन तथा वातदुष्ट रक्तक्षय में मांसरस का भोजन हितकारी होता है। कइयों का मत है कि मन्द जठराग्नि में मांस, रक्त भोजन, मध्यम जठराग्नि में यूष भोजन और दीप्त जठराग्नि में क्षीर भोजन देवें।

---

१ काकोलकादि गण में अष्टवर्ग (काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि व वृद्धि) के अतिरिक्त वनमूंग, वनउड़द, गिलोय काकड़ासिंगी, वंसलोचन, पद्मकाष्ठ, पुंडरिया, (प्रपौंडरीक), द्राक्षा, मुलहठी और जीवन्ती ये १० औषधियां हैं। इनमें अष्टवर्ग के अभाव में, दोनों काकोली के अभाव में असगंध, जीवक ऋषभक के स्थान में विदारीकंद, दोनों मेदाओं के स्थान में शतावर, तथा ऋद्धि व वृद्धि के स्थान में वाराहीकन्द लेवें। "काकोल्यादि क्वाथं वा शर्करामधुमधुरं पाययेत्, एवं हरिण वारुधिरं, क्षीरयूषरसैः सुस्निग्धैश्चाश्नीयात्, उपद्रवांश्च यथास्वमुपाचरेत्॥"

—सु. सू. अ. १४

२ आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि समान गुण भूयिष्ट द्रव्यों से समान द्रव्य की वृद्धि होती है, यथा धातवः पुनः शरीराः समान गुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्याहार विकारै रभ्यस्यमानैर्वृद्धिप्राप्नुवन्ति—च. शा. अ. ६) रक्तनाश की अवस्था में रक्त का सेवन समान गुण द्रव्य का उदाहरण है। पाश्चात्य वैद्यक में मनुष्यों के रक्त का उपयोग प्रत्यक्ष शिरा द्वारा रोगी के शरीर में किया जाता है। इस विधि को रक्तसंक्रम (Transfusion) कहते हैं। इस रक्त के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। यदि योग्य समय पर रक्त के अन्तःक्षेप का प्रयोग किया जाय तो सहसा रोगी की मृत्यु होने की संभावना नहीं होती। रक्त का सेवन करने से रक्तस्राव बन्द होने में भी मदद मिलती है, क्योंकि रक्त में स्कन्दन सहायक पदार्थ होते हैं। सांप्रतरक्त के स्थान में घोड़े की लसिका (serum) मुखद्वारा या इंजेक्शन द्वारा रक्त का स्राव रोकने के लिये दी जाती है। समान गुणभूयिष्ट द्रव्यों में लोह, यकृतसार (Extract liver), ताम्र आदि उल्लेखनीय हैं।

—डा. भा. गो. घाणेकर जी।

हिरण, वराह, खरगोश आदि के ताजे रक्त में यथोचित् प्रमाण में शहद मिलाकर पिलाया जाता है। कहा है—
अतिनिःस्रुत रक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक्।

—सु. उ. अ. ४५

जिनमें लोह का प्रमाण विशेष हो ऐसे खाद्य द्रव्यों (शलगम का कन्द तथा पत्ते, प्याज, मूली, टमाटर, पालक, चुकन्दर, अण्डे आदि) का सेवन करावें। किंतु ये सब तभी उपयोगी हो सकते हैं जब इनके साथ विटामिन ए., बी., सी. और ई तथा सुधा (केल्शियम) पर्याप्त मात्रा में हो और यकृत ठीक कार्य करता हो। सोमल (मल्ल) और ताम्र अपने प्रभाव से रक्त की वृद्धि करते हैं।

कारण भेद से रक्तक्षय के अनेक प्रकार आधुनिक मतानुसार किये जाते हैं—जैसे यकृत की विकृति से या रक्तजनक द्रव्य की विकृति या हीनता से, लोह की न्यूनता से या रक्त कणों की विकृति आदि से होने वाला रक्तक्षय जिस द्रव्य की विकृति या न्यूनता हो उसकी पूर्ति करना ही एकमात्र उपचार इसका माना जाता है। किस द्रव्य की हीनता हुई है, यह एकदम स्पष्ट प्रतीत नहीं होता है, अतएव लोह, ताम्र मिश्रित कल्पों एवं यकृतसार आदि सभी द्रव्यों का एक साथ यथोचित प्रमाण में सेवन कराना ही श्रेयस्कर माना जाता है।

"रंजक द्रव्य की उत्पत्ति और संचय योग्य प्रमाण में होने के लिए आमाशय और यकृत का स्वस्थ होना आवश्यक है। आयुर्वेद में रक्तक्षय तथा पाण्डु में साक्षात् रक्तवर्धक लोह, मण्डूर आदि के साथ कुटकी आदि द्रव्य दिये जाते हैं, जो यकृत का संशोधन करते हैं, कई द्रव्य तिक्त होने से, आयुर्वेद मत से पित्त का शमन (स्वरूप की शुद्धि) तथा उभय मत से पचन को उद्दीप्त करते हैं। कई द्रव्य उष्ण होने से एक ओर कफ का लेखन कर पाचक रसों के स्राव की वृद्धि तथा रंजक द्रव्य के शोषण को सुविधा उत्पन्न करते हैं, साथ ही उष्णता के कारण स्थानीय रक्त की वृद्धि कर इन रसों के निर्माण में उपयोगी द्रव्यों का आयात विशेष प्रमाण में करते हैं। आरोग्यवर्धनी में रहा ताम्र, अयस् (लोह) के आत्मसात्मीकरण में भी उपयोगी है। पाण्डुरोग की चिकित्सा में प्रयुक्त पुनर्नवा आदि मूत्रल द्रव्य, मूत्र के अङ्गभूत द्रव्यों का निर्माण विशेष कराके भी यकृत का भार हलका करते हैं (मूत्र निर्माण का कार्य यकृत में ही होता है, वृक्क केवल उसको छानने-क्षरण का कर्म करते हैं)।

—आ. क्रिया शारीर से।

रक्त क्षय की दशा में—(१) पं. रघुवीर प्रसाद जी त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य द्वारा आविष्कृत-रक्त क्षयान्तक वटी उत्तम लाभदायक है। प्रयोग विधि इस प्रकार है—

फोलिकाम्ल (Folic acid), तुत्थोत्थताम्र भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, वैदूर्यभस्म, अङ्कोल भस्म, निम्बूक सत्व और पुनर्नवाचूर्ण प्रत्येक ५ तोला, तथा तृणकान्त मणिपिष्टी, अभ्रक भस्म शतपुटी, प्रवाल भस्म, उशीरचूर्ण, लाल चन्दन चूर्ण प्रत्येक १० तोला, तथा कांतलोह भस्म, आमलकी चूर्ण, और पालक चूर्ण, प्रत्येक २० तोला एवं यकृत सत्व द्रव (Liquid extract of liver) आवश्यकतानुसार लेकर, प्रथम सब भस्मों को खरल में एकत्र घोटकर, फोलिक एसिड मिलालें। फिर सब शेष द्रव्य डाल, यकृत सत्व मिलाकर १-१ रत्ती की गोलियां बना, गुडूची सत्व में लपेट कर छाया में सुखा लें। ये गोलियां एक साथ बहुत अधिक न बनावें। पुरानी खराब हो जाती हैं।

ये गोलियां सब प्रकार के रक्तक्षय में लाभ करती हैं। निम्नांकित रक्तक्षय में इससे लाभ होता हुआ देखा जाता है—(१) संग्रह-ग्रहणी जनित रक्तक्षत (स्प्रू), (२) गर्भावस्था का रक्तक्षय, (३) एडीसोनियन रक्तक्षय, (४) ट्रापीकल मेगालोसाइटिक हाइपरक्रोमिक रक्तक्षय (५) माइक्रोसाइटिक हाइपोक्रामिक अर्थात् लोह की कमी से होने वाला पांडु।

यह वटी रक्त निर्माणकारी सम्पूर्ण संस्थान में नवजागृति लाती है। ये व्हिटामीन 'बी' की कमी को भी दूर

रक्तक्षय की पूर्ति के लिये अन्य धातुओं की अपेक्षा लोह और ताम्र का उत्तम उपयोग होता है। आधुनिक परीक्षणों से विदित हुआ है कि लोहे का पूर्ण लाभ तभी होता है, जब उसके साथ अल्प मात्रा में ताम्र भी हो—

Experiments show that traces of copper, under certain circumstances are of distinct aid in the utilization of therapeutic iron .....XX of other metals investigated, none has proved significant in haemoglobin formation. —Text book of physiology by Howell

इस दृष्टि से आयुर्वेदीय ताम्रमिश्रित लोहकल्प के आरोग्यवर्धिनी जैसे कतिपय प्रयोग विशेष हितकारी हैं।

करती है।

मात्रा—१ से २ गोली पपीता (अण्डखर्बूजा) के पके फल के साथ या जल से दें।

(राजकीय औषधियोग संग्रह से साभार)

(२) चिन्तामणि रस (भै. र. हृद्रोगाधिकार) उत्तम लाभकारी है। योग विधि-शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, वंग भस्म, शुद्ध शिलाजीत १-१ भाग, चांदी भस्म ½ भाग और स्वर्ण भस्म ¼ भाग लेकर प्रथम कज्जली बना उसमें शेष भस्मों को मिला मर्दन करें। बाद में शिलाजीत मिलाकर खूब खरल करें। फिर चित्रक रस, भांगरे का रस और अर्जुन छाल के क्वाथ की पृथक-पृथक ७-७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां, छायाशुष्क कर शीशी में सुरक्षित रक्खें। यह हृदय को बलदायक है, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, रक्तार्श, रक्तस्रावजन्य रक्तक्षय पर भी उत्तम लाभकारी है। यह प्रमेह, श्वास और कास पर भी गुणदायक है।

मात्रा—१ से २ गोली, गेहूँ के क्वाथ के साथ देवें। गेहूँ को कूटकर पानी में उबालकर छान लेवें।

भैषज्य रत्नावली का 'सित कल्याणघृत' भी रक्तक्षय में परम लाभकारी है।

विशेष प्रयोग पांडु-रोग और रक्तपित्त के प्रकरणों में देखिये।

सितकल्याण घृत के विषय में देखिये अ. २० में—हीन रक्त चाप का प्रकरण'।

३. मांसधातु

समानावस्था में स्थित होने पर शरीर पुष्ट और सुदृढ़ होता है। बल की वृद्धि होती है। तथा मेद धातु की परिपुष्टि होती है।

वृद्धि अवस्था—इस धातु की अतिवृद्धि होने पर कटि के नीचे का भाग (चूतड़), गाल, ओष्ठ, शिश्न, आंध्र उदर बाहु, पिण्डली आदि स्थूलता को प्राप्त होकर शरीर में जड़ता बढ़ जाती है। तथा गलगण्ड, गण्डमाला, (कण्ठमाला), अर्बुद, ग्रन्थि, तालु रोग, जिह्वारोग, कण्ठ के रोग, अधिमांस (मांस पर-मांस के अंकुर निकलना) उपकुश (दंत रोग विशेष), गल शालूक गलशुण्डिका, अजाजी (प्रमेह पिडिका), मांस संघात, ओष्ठ प्रकोप इत्यादि मांसाश्रित कफ-रक्त विकार पैदा होते हैं। कहा है—

मांस (अतिवृद्धिं) स्फिग्गण्डौष्ठोपस्थोरुबाहु जंघासु वृद्धिं गुरुगात्रतांच (आपादयति)-सु. सू. अ. १५

तथाच- गलगण्ड गण्डमालार्बुद ग्रन्थि तालु जिह्वा कण्ठ रोग स्फिग्गण्डौष्ट बाहूदरोम जंघा गौरववृद्धिभिः श्लेष्मरक्तविकार प्रायैश्च मांसम् —अ. सं. सू. अ १९

और देखो चरक सूत्र स्थान अ. २८ में सुश्रुत सूत्र स्थान अ. २४ में।

उपचार—ध्यान रहे धातु अति प्रवृद्ध हो तथा रोगी बलवान हो, तो संशोधन, धातु मध्यम वृद्ध हो और रोगी दुर्बल हो, तो संशमन चिकित्सा करें, अथवा संशोधन, संशमन चिकित्सा बड़ी सावधानी से करें। अतिवृद्ध धातु का संशोधन या संशमन केवल उतनी ही मात्रा में करना चाहिए, जितनी में धातु अपनी स्वाभाविक रूप में प्राप्त हो जाय, अधिक न घटने पावे, अन्यथा वृद्धि के स्थान पर धातुक्षय होने की संभावना है। कहा है—

तेषां यथास्वं संशोधन क्षपणंच क्षयादविरुद्धैः क्रिया विशेषैः प्रकुर्वीत। —सु. सू. अ. १५

मांस को बढ़ाने वाले आहार का त्याग करें तथा मांसवृद्धिहर व्यायाम, उपोषण आदि कर्मों द्वारा वृद्ध मांस को समान स्थिति में लाने का प्रयत्न करें।

यदि रोगी के शरीर पर कड़ी, निर्वर्ण फुन्सियां (पिडिकायें) तथा शोथ हो और त्वचापर मानों चीटियां रेंगती हों ऐसा रोगी को भान हो तो जानना चाहिए कि मांस ने वात को आवृत कर लिया है *। ऐसी दशा में रोगी को मंजिष्ठादि क्वाथ का सेवन तथा कंटकटारा के क्षुप को कुटवा कर, मटकी में भर उसमें थोड़ा पानी मिला अग्नि पर पका रोगी को खूब बफारा (वाष्प स्वेद) देवें। विरेचन और निरूह वस्ती भी बीच-बीच में देते रहना आवश्यक है।

क्षीणावस्था—मांस की क्षयावस्था Atrophy में कटि के नीचे का भाग (स्फिक का चूतड़), कपोल (गाल) होंठ (ओष्ठ), शिश्न, जंघा, वक्षस्थल, कांख, पिण्डली,

* कठिनाश्च विवर्णाश्च पिडकाः श्वयथुस्तथा। हर्षः पिपीलिकानां च संचार इव मांसगे। —च. चि. अ २८

उदर, गला आदि में शुष्कता, रूखापन, शरीर में टोचने की सी पीड़ा, इन्द्रियों का अपने कार्य करने में असामर्थ्य, शरीर में थकान, सन्धियों के स्थान में पीड़ा और धमनियों में शिथिलता[1] ये लक्षण होते हैं। कहा है—

मांसक्षये स्फिग्गण्डोष्ठोपस्थोरुवक्षः कक्षा पिण्डिकोदर-ग्रीवा शुष्कतारौक्ष्यतोदौ गात्रा णांसदनं धमनीशैथिल्यं च।
—सु० सू० अ० १५

मांसधातु क्षीण रोगी को दही में सिद्ध किये हुये अम्ल या अतिमधुर पदार्थ, खट्टे मीठे पदार्थ तथा मांसभक्षी स्थूल प्राणियों के मांस आदि खाने की लालसा होती है।

उपचार—मांसवर्धक आहार-विहार का सेवन करें। रोगी की इच्छानुसार यदि मांस, अण्डा आदि न दिया जा सके तो जिसमें अधिक गुण मांस धातु के समान हो ऐसे भोज्य पदार्थ दुग्ध, उड़द की दाल आदि का सेवन करावें। किन्तु यकृत का कार्य और पाचकाग्नि का कार्य ठीक-ठीक होते रहने के लिये—

(१) हरीतकी रसायन—४ से ५ छोटी हरों को ५ तोला घृत में सेंककर, चूर्णकर खावें तथा अनुपान में वही घृत थोड़े से गर्म दूध में मिलाकर पीवें। अथवा—

(२) शिलाजतु योग का सेवन इस प्रकार करें- शिलाजीत, वायविडंग, लोहभस्म, हरें, रससिंदूर और स्वर्णमाक्षिक भस्म समान भाग एकत्र खरल कर, मात्रा २ से ६ रत्ती तक, शहद और घृत में मिला प्रातः सायं सेवन करने से शीघ्र ही यथेष्ट लाभ होता है। शुक्रधातु की क्षीणावस्था में भी यह यथेष्ट लाभकारी है। अथवा—

(३) अश्वगन्धा योग—शिशिर ऋतु में असगन्ध के महीन चूर्ण का सेवन १ तोला तक की मात्रा में शहद और घृत के साथ सेवन करें। अथवा—

(४) आभादि चूर्ण—बबूल की कोमल फली (जिसमें बीज न पड़े हों) और बावची बीज समभाग महीन चूर्ण कर मात्रा—३ माशा तक दुग्ध के साथ सेवन करें। अथवा—

(५) भृङ्गराजासव और दशमूलारिष्ट का सेवन करावें।

उक्त प्रयोगों के साथ ही साथ अश्वगंधा तेल की मालिश करावें। असगंध के कल्क तथा उसी के क्वाथ और गोदुग्ध के साथ तिल तेल को सिद्ध कर लेवें। तैल सिद्धि के लिये कल्क १० तोला, क्वाथ २ सेर, दूध २ सेर और तैल १ सेर लेवें।

@(४) मेदधातु—

स्वस्थावस्था में—शरीर को स्नेहत्व (चिकनापन) युक्त मार्दव एवं दृढ़ता युक्त बनाते हुये तथा स्वेद को यथायोग्य प्रमाण में बाहर निकलते हुए अस्थियों को पुष्ट करता है। कहा है—

मेदः स्नेहस्वेदौ दृढ़त्वं पुष्टिमस्थ्नांच (करोति)
—सु० सू० अ० १५

[1] धमनी-शथिल्य यह रक्त दाब की न्यूनता (Low blood pressure) का एक खास लक्षण है। हृदय और धमनियों के घटक मांसपेशियों की क्षीणता एवं तज्जन्य दुर्बलता से यह विकार होता है।

@ शरीर में प्रायः सर्वत्र (नेत्र पलक, अण्डकोष आदि कुछ स्थानों के अतिरिक्त) त्वचा के नीचे मेदोधरा कला (Superficial Fascia) तथा उसके नीचे मांसधरा कला (Deep Fascia) होती है। मेद या चर्बी के खण्ड मेदोधराकला में जमे हुए होते हैं। उदर प्रदेश की अन्त्रच्छदाकला (Omentum) में इन मेदखण्डों का विशेष संग्रह हुआ करता है। अन्तरावयवों की बाह्य आघातों से तथा बाह्य शीत एवं उष्णता से रक्षा मेद द्वारा होती है। इसके द्वारा उदर प्रदेश की ऊष्मा का संरक्षण होने से पाचनक्रिया में विशेष सहायता मिलती है। बड़ी-बड़ी नलिकास्थियों में जो मज्जा होती है उसमें प्राकृत पीले वर्ण का मेद ९६ प्रतिशत होता है। छोटी अण्वस्थियों की मज्जान्तर्गत मेद सरक्त (रक्त वर्ण की) होती है। मांस सूत्रों के मध्यभागों में जो मेद होता है, वह वसा कहाता है; जो कि मांस से ही उत्पन्न एक उपधातु है। कहा है—

"स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जात्वभ्यन्तराश्रितः। अथेतरेषु सर्वेषु सरक्तं मेद उच्यते ॥
शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्त्तिता।"
—सु० शा० अ० ४

वृद्धावस्था—मेद धातु की अति वृद्धि से×अङ्गों में स्निग्धता, उदर तथा पार्श्वों की वृद्धि, खांसी, श्वास आदि रोग, प्रमेह के पूर्वरूप (स्वेद, अङ्ग गन्ध आदि), स्थूलता के उपद्रवादि और प्रायः कफ-रक्त मांस विकारों की उत्पत्ति होती है।

आयु की कमी (हीनायु) वेग या फुर्ती का न होना, कष्ट मैथुनता (मैथुन शक्ति का अल्प होना, वीर्य के कम होने तथा मेद द्वारा मार्गों के अच्छादित होने से मैथुन शक्ति का ह्रास हो जाता है), दुर्बलता (मेद की वृद्धि से रक्तादि धातुओं में विषमता होकर दुर्बलता बढ़ती है), दुर्गन्धता (मेद स्वाभाविक आमगन्धी होने से, एवं उसके दुष्ट होने पर अति स्वेद आने से शरीर दुर्गन्धित हो जाता है), अत्यधिक पसीना आना (मेद के कफ मिश्रित होने, स्वेदवाही सिराओं के मूल में स्थित होकर स्वेद का बाहर स्पन्दन करने वाला-बहाने वाला, विष्यन्दी होने तथा कोई भी व्यायाम के न सह सकने के कारण वह व्यक्ति स्वेद से पीड़ित रहता है), अत्यधिक भूख और प्यास का लगना (अग्नि के तीक्ष्ण होने तथा कोष्ठ में वायु के अत्यधिक होने से क्षुत्पिपासा की अति वृद्धि होती है। ये आठ दोष मेद की अति वृद्धि या अतिस्थूलता से होते हैं। कहा है—

मेदः (अतिवृद्धम्) । स्निग्धांगतामुदरपार्श्ववृद्धिं कास श्वासादीन दौर्गन्ध्यञ्च ॥ —सु. सू. अ. १५ तथा प्रमेह पूर्वरूपैः स्थौल्योपद्रवैश्चान्यैरपि श्लेष्म रक्त-मांस विकार प्रायैर्मेदः ॥ —अ. सं. सू. अ. १६ तथा अतिस्थूलस्य तावदायुषोह्रासो जवो पदोष कृच्छ्रव्यवायता दौर्बल्यं दौर्गन्ध्यं स्वेदाबाधः क्षुदतिमात्रं पिपासातियोगश्चेति भवन्त्यष्टौ दोषाः —च. सू. अ. २१

मेदोवृद्धि का हृदय पर दुष्परिणाम—बाह्य आघात प्रतिघात से हृदय की रक्षा करने के लिए हृदावरक झिल्ली (Pericardium) पर जो स्वाभाविक मेद का आवरण रहता है, उक्त दशा में उसकी भी वृद्धि हो जाने से, हृदय की विशेषतः विकास क्रिया में रुकावट आती है। वह आवश्यकतानुसार विकसित नहीं हो पाता। परिणाम में अङ्ग-प्रत्यङ्गों में रक्त परिभ्रमण ठीक नहीं हो पाता। रक्तपरिभ्रमण में शैथिल्य आजाने से तक्राम्ल (Lactic acid) का संचय विशेष होने लग जाता है। जिससे शरीर में शीघ्र ही थकावट आती है। तथा अङ्गाराम्ल (Carbon dioxide) की शुद्धि नहीं हो पाती, और वह मस्तिष्क में पहुंच कर श्वसन क्रिया के केन्द्रों को उद्दीप्त कर देता है, जिससे ऊर्ध्वश्वास या हांफनी सी होकर रोगी को कष्ट होता है। ऐसी दशा में उस व्यक्ति से कुछ भी व्यायाम या श्रम का कार्य नहीं हो पाता। यदि कुछ व्यायाम करता है तो और भी दुर्बलता बढ़ती है।

मेदावृत वात के लक्षण—मेद बढ़कर जब शरीर के वात-केन्द्रों को आवृत कर लेता है, तब अंगों में अस्थिर या स्थान परिवर्तन करने वाला स्निग्ध, कोमल एवं शीतल शोथ होता है तथा अरुचि भी रहती है। इसे आढ्यवात रूमेटिस्म (Rheumatism) अर्थात् आढ्य या धनाढ्य का वात रोग कहते हैं। यह कष्टसाध्य होता है।*

नोट—मेद की वृद्धि होकर उसके वातादिदोषों द्वारा दूषित होने पर मेदोग्रन्थि (लाइपोमा Lipoma) मेदज अण्डवृद्धि, अन्त्रवृद्धि,गलगण्ड, आर्बुद, मेदोज ओष्ठप्रकोप मधुमेह[1] आदि रोग भी होते हैं (देखो सु. सू. अ. २४)

×अतिभोजन, गुरु, मधुर, शीतल, स्निग्ध द्रव्यों का उपयोग, मैथुन, व्यायामादि न करना, दिन में सोना, कोई दिमागी कार्य (किसी प्रकार की चिन्तवन आदि) न करना, माता पिता के बीज स्वभाव आदि कारणों से शरीर में मेदोवृद्धि होती है। उक्त कारणों से अन्न ठीक नहीं पचता तथा अपक्व एवं अत्यन्त मधुर अन्न रस शरीर में परिभ्रमण करता हुआ अतिस्निग्ध होने के कारण विशेष मेदोत्पत्ति करता है। यही अति संचित होजाने पर स्थूलता को प्रगट करता है।

* चलःस्निग्धो मृदुःशीतः शोफोऽङ्गेष्वरुचिस्तथा । आढ्यवात इतिज्ञेयः स कृच्छ्रो मेदसावृतः ॥ च.चि.अ. २८

[1] यहां मधुमेह से सर्व प्रमेहों का ग्रहण हो सकता है, क्योंकि प्रायः सर्व प्रमेहों में मेदो दुष्टि की प्रधानता रहती है। चक्रपाणिदत्त का कथन है—मधुमेह शब्दः सर्वप्रमेहे मधुमेह विशेषेच वर्तते यथा तृण शब्दः सर्वतृणेतृण विशेषेच वर्तते—च. चि. अ. ६ ।

उपचार—ध्यान रहे मेदोवृद्धि से अन्य धातुओं के मार्ग रुक जाते हैं, वे धातु वर्धित नहीं हो पाते, अत्यन्त दुर्बलता आती है तथा प्रमेहपिड़िका, ज्वर, भगन्दर, विद्रधि और वातविकारों में से किसी रोग से ग्रसित होकर रोगी अत्यन्त कष्टसाध्य या असाध्य हो जाता है। मेद से उसके सब स्रोत निरुद्ध होने के कारण प्रायः सभी रोग बलवान हो जाते हैं। इसमें भी मुख्य उपचार मेदोत्पत्ति के कारणों का परिहार ही है। कहा है—

सर्व एव चास्य रोगा बलवन्तो भवन्त्यवृत मार्गत्वात् स्रोतसाम्, अतस्योत्पत्ति हेतुं परिहरेत् ॥ सु. सू. अ. १५

इसके उपचार में—शिलाजीत, गूगल, गोमूत्र, त्रिफला, लोह भस्म, रसौत, मधु, जौ, मूंग, कोदों धान, श्यामाक, कूटू (मेदनाशक द्रव्यों में कूटू श्रेष्ठ है कहा है, उद्दालकान्नं विरूक्षणीयानाम। —चरक) इत्यादि मेदनाशक एवं शरीर को रूक्ष करने वाले पदार्थों का विधिपूर्वक उपयोग करना तथा व्यायाम और लेखनवस्ति † का उपयोग करना चाहिए।

रूक्ष उबटन, गिलोय तथा नागरमोथे का प्रयोग, त्रिफला का प्रयोग, तक्रारिष्ट प्रयोग, माक्षिक (शहद) प्रयोग, तथा वायबिडङ्ग, सोंठ, यवक्षार, तीक्ष्णलोह भस्म, शहद, जौ का आटा, आंवले का चूर्ण, इस योग का प्रयोग श्रेष्ठ कहा जाता है। विल्व आदि पंचमूल (बेल, श्योनाक, गंभारी, अग्निमंथ, पाटला) का मधु के साथ प्रयोग तथा अग्निमंथ (अरणी) के रस के साथ शिलाजीत का प्रयोग उत्कृष्ट है।

भोजनार्थ—सेंडआ चावल (श्यामाक), जव, जुंवार कोदों, कटकी, कूटू, मूङ्ग, कुल्थी, बनमूंग, मोंठ, अरहर, परवल, आंवला आदि का प्रयोग करें।

अनुपान में मधूदक (शहद का शरबत) तथा मेद, मांस एवं कफ के नाश करने वाले अरिष्टों का रोगी की प्रकृति बल आदि के अनुसार यथायोग्य प्रयोग करना चाहिए (च. सू. अ. २१)

सिद्ध साधित प्रयोगों में से

(१) **त्र्यूषणाद्य चूर्ण**—त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, पीपरामूल, चित्रक-छाल, विड़ नमक, सेंधा नमक, काला नमक और बावची सम भाग चूर्ण, मात्रा—१ से ३ माशे तक शहद के साथ, प्रातः सायं सेवन करें। अथवा—

(२) **बिल्वादि क्वाथ**—बेल वृक्ष की मूल की छाल, अरणी मूल, अरलु और खम्भारी तथा पाढ़ल की मूल छाल के समभाग के विधि पूर्वक अष्टमांस क्वाथ में शहद मिला, सेवन करें।

(३) **मेदोहर गुग्गुल**—त्रिकटु, चित्रकमूल, नागरमोथा, त्रिफला और वायविडंग प्रत्येक समभाग लेकर महीन चूर्ण करें। चूर्ण के समभाग शुद्ध गूगल लेकर उसे प्रथम एरण्ड तेल मिला खूब कूट कर मुलायम होजाने पर उसमें उक्त चूर्ण थोड़ा थोड़ा मिलाते हुए खूब कूटना चाहिए। सब एक जीव होजाने पर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। मात्रा—२ से ४ गोलियां, प्रातः सायं गोमूत्र के साथ अथवा गरम जल से लेवें। अथवा—

(४) **षडूषण गुग्गुल**—त्रिकटु, पिपलामूल, चव्य और चित्रक का चूर्ण, शुद्ध गूगल, शहद और गाय का घृत समान भाग लेकर एकत्र खूब कूटकर, एकजीव हो जाने पर मात्रा १ मासे तक की गोलियां बनालें। उक्त अनुपान से प्रातः सायं सेवन करें। पथ्य में कटु, तिक्त और कषाय रसयुक्त पदार्थ लेवें। लगभग ४-६ मास तक सेवन करने से पूर्ण लाभ होता है। अथवा

(५) **बडवाग्निलोह**—रससिंदुर, शुद्ध हरताल, लोहभस्म और ताम्रभस्म समभाग लेकर सबको आक के पत्र रस में घोटकर सुरक्षित शीशी में भर रख द। मात्रा १ से ३ रत्ती तक शहद के साथ देवें। अथवा

(६) **मेदोहर रस**—शुद्ध पारद और गन्धक की कज्जली बना उसमें समभाग वायविडंग का चूर्ण मिला, सबको आक के रस में खरल कर सुरक्षित रक्खें। मात्रा-१ से ३ रत्ती तक, शहद के शरबत के साथ सेवन करें। अथवा

(७) **त्रिमूर्ति रस**—शुद्ध पारद, गन्धक और लोहभस्म समान भाग लेकर, प्रथम पारद, गन्धक की कज्जली

---

† त्रिफला क्वाथ, गोमूत्र, मधु, जवाखार तथा ऊषकादिगण (क्षारमृत्तिका, सैंधव, शिलाजीत, दोनों कसीस, हींग, तुतिया) की औषधियों का प्रक्षेपयुक्त वस्ति लेखन वस्ति कहाता है। इस वस्ति से भीतर रहे हुए मेद, कफ और आम आदि सूक्ष्म दोष सूख जाते हैं और स्थूल दोष बाहर निकल जाते हैं। यह दोषों को पतला करके निकाल देती है।

करें, फिर उसमें लोहभस्म मिला मर्दन कर, निर्गुण्डी पत्र रस और श्वेत मूसली कन्द रस (या क्वाथ)से पृथक-पृथक भावित कर शुष्क चूर्ण रूप में सुरक्षित रक्खें। या २ से ४ रत्ती तक की गोलियां बना लेवें। प्रातः सायं इसकी मात्रा १ माशा तक लेकर उसमें लोध का चूर्ण ३ मासे और शहद ६ माशे तक मिला सेवन करें। फिर दिन में ३-४ बार उक्त नं० १ का त्र्यूषणाद्य चूर्ण की मात्रा—३ से ६ माशे तक गरम जल के साथ लेते रहने से, विशेष लाभ होता है। आम और मेद जलने लगता है। रक्त के भीतर और त्वचा से सम्बन्धित मेदाणु गलने लगते हैं। मलशुद्धि नियमित होने लगती है तथा वातवाहिनियां सवल होकर पचनेन्द्रिय संस्थान भी सबल हो जाता है। इसका सेवन पथ्य पूर्वक ६ मास तक करते रहना चाहिये। उक्त सब प्रयोग योगरत्नाकर, भैषज्य रत्नावली आदि ग्रन्थों के हैं। ‡

नोट—प्रस्वेद नाशार्थ—बबूल के पत्तों को जल में पीस कर शरीर पर मलें, पश्चात इसी प्रकार हर्र को पीसकर मलें और स्नान करें। इससे अधिक पसीना आना शीघ्र ही रुक जाता है। —योगरत्नाकर

दुर्गन्ध नाशार्थ—सिरस की छाल, कूठ (पद्मकाष्ठ) खस और लोध समभाग का महीन चूर्ण बना, शरीर पर मलें, उक्त स्नान के पश्चात् इस चूर्ण को शरीर पर मल लेने से दुर्गन्ध नहीं आने पाती।

प्रवृद्ध मेदनाशार्थ तैलप्राशन भी आयुर्वेद का एक सिद्ध प्रयोग है। कारण तैल, उष्ण होने से शीतगुणयुक्त मेद और कफ को क्षीण कर देता है। चरक जी का स्पष्ट मत है कि—

प्रवृद्ध श्लेष्म मेदस्काश्चलस्थूल गलोदराः।
वात व्याधिभिराविष्टा वात प्रकृतयश्च ये॥
बलं तनुत्वं लघुतां दृढ़तां स्थिरगात्रताम्।
स्निग्ध श्लक्ष्णतनुत्वक्तां ये च कांक्षन्ति देहिनः॥
कृमिकोष्ठाः क्रूरकोष्ठास्तथा नाड़ी भिरर्दिताः।
पिबेयुः शीतले काले तैलं तैलोचिताश्चये॥
—च० सू० अ० १३

अर्थात् जिनके शरीर में कफ या मेद विशेष बढ़ गया हो, तथा इसी कारण (विशेषतः मेद प्रवृद्धि के कारण) गला और पेट स्थूल (मोटे) लम्वायमान होकर हिलते हों, जो वात रोगों से पीड़ित एवं वातप्रकृति वाले हों, जो शरीर में बल, पतलापन, हलकापन, दृढ़ता, स्निग्ध चिकनी और पतली त्वचा चाहते हों, जिनके पेट में कृमि हों

---

‡ मेदोवृद्धि जन्य नपुन्सकता पर—अत्यन्त मेद की वृद्धि से जननेन्द्रिय सिकुड़ जाती है। इसमें कोई भी तिला अवलेहादि वाजीकरण प्रयोग काम नहीं देगा। प्रथम मेदा को ही घटाने का प्रयत्न करना होगा। इस पर त्रिफला आधा सेर और पानी ४ सेर का चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमें मधु १ सेर, माण्डूरभस्म २॥ तोला और ताड़ का क्षार ५ तोला मिला शीशी में भर रक्खें।

मात्रा—५ तोला, प्रातः सायं सेवन करें। इसी क्वाथ के साथ यदि निम्न चूर्ण को लिया जाय तो और भी उत्तम है—छोटी हरड़, निम्बपत्र, लोध्र और अनार का वक्कल समभाग चूर्ण, मात्रा—६ माशे तक। उक्त क्वाथ के अभाव में इस चूर्ण को ही प्रातः सायं मधु ५ तोला और जल १० तोला के शर्बत के साथ ले सकते हैं।

† सुश्रुत का भी कथन है—

कृमिकोष्ठानिला विष्टाः प्रवृद्ध कफमेदसः। पिबेयुस्तैलसात्म्याश्च तैलं दार्ढ्यार्थिनश्चये॥ —चि० अ० ३१

नोट—सर्वसाधारण में ऐसा ख्याल किया जाता है कि तैलादि कोई भी स्नेह मेद और कफ की वृद्धि किसी भी अवस्था में करते हैं। किन्तु यह एक भ्रम है। अत्यन्त शीत समय में स्नेहपान का निषेध होने पर भी अत्यधिक विकारों में स्नेहपान शीतकाल में करने का आदेश दिया गया है। तैल उष्ण होने के कारण रात्रि या सायंकाल के ठण्डे समय में या शीतकाल में वात-पित्त वाले को पिलाना हितकारी होता है। कहा है—

दिवा निश्यनिले पित्ते संसर्गे पित्तवत्यपि। त्वरमाणेतु शीतेऽपि दिवा तैलं च योजयेत्॥ —अ०सु०सू० अ० २५

मेद और कफ की वृद्धि कराना हो तो घृत, वसा आदि का सेवन कराया जाता है। आगे स्नेह चिकित्सा में इसका विवरण देखिए।

कोठा क्रूर हो, नाड़ी व्रणों से पीड़ित हों तथा जो तेल के अभ्यासी (सात्म्य) हों, उन्हें शीतकाल में तेल का सेवन करना चाहिए। वैद्य मनोरमा पटल १२ में लिखा है कि-प्रातः काल तिल तेल (तेल का सोलहवां भाग मजीठ, और मजीठ का चौथा भाग हल्दी, लोध, मोथा, हरड़, बहेड़ा और बड़ की जटा तेल में मिला मंदाग्नि पर पकाकर, छानकर बोतल में सुरक्षित रखें) यथोचित मात्रा में, लगभग ५ से १० तोले तक पिलाने से मेद वृद्धि में लाभ होता है अथवा असना वृक्ष के सार का क्वाथ शहद मिलाकर पिलाने से भी लाभ होता है। कहा है—

अतिस्थूल शरीरो यस्तिलतैलं प्रगे पिबेत्।
पिबेदसनसारस्य क्वथं वा मधुसंयुतम् ॥

मेद की क्षीणावस्था—लक्षण—सन्धियों का स्फुटन (दो अस्थियों के रगड़ की आवाज), तथा उनमें शून्यता का प्रतीत होना, प्लीहा का स्थानभ्रष्ट होकर बढ़ना (इसे फ्लोटिंग या वाण्डरिंग स्प्लीन floating or wandering-speen कहते हैं चक्रपाणी जी का कथन है—

"प्लीहाभिवृद्धिरुदरे मेदः क्षये वृद्धवाते नोदरशून्य तया च प्लीहा स्थानाद्र भ्रष्टो वर्धते")

नेत्रों में ग्लानि (आँखें मुर्झायी सी होना), परिश्रम के बिना भी शरीर में थकान सी बनी रहना, शरीर में रुक्षता, कृशता, पेट का कृश या छोटा होना, कमर में सुप्तता या शून्यता, शोष तथा स्निग्ध या गाढ़े मांस के खाने की इच्छा होती है। तथा उपयुक्त क्षीणमांस के कहे हुये लक्षण भी पाये जाते हैं ‡।

उपचार—पीछे मांस क्षीणता के प्रकरण में जो आहार विहार और प्रयोगों का निर्देश किया गया है वे भी इस प्रसङ्ग में भी लाभकारी है। जिन आहार विहारादि से मेद का पुष्टि होती है उनका सेवन क्षीण हुए मेद के साम्य के लिये उपयोगी है।

(५) अस्थि धातु—

समावस्था में—देह का धारण या शरीर का ढांचा (skoleton formation) ठीक ठीक सुगठित होता है। दबाव या चोट आदि लगने पर भी उसकी आकृति में कोई फर्क नहीं आने पाता, शरीर का भार ठीक ठीक संभाला जाता है, कोमल अङ्गों या मर्मों की सुरक्षा होती है, मांसपेशियों के निबन्धन से शरीर में विविध प्रकार की गतियों का यथोचित सहारा मिलता है, तथा मज्जा की पुष्टि होती है।—

"अस्थीनिदेहधारणं मज्ज्ञः पुष्टिं च ।"
—सु० सू० अ० १५

वृद्धि अवस्था में—अस्थियों की अनैसर्गिक वृद्धि, या स्वाभाविक आकार से उनमें अधिक मोटापन हो जाता है, इसे अंग्रेजी में हायपरट्रोफी Hypertrophy of bones कहते हैं, अथवा अस्थियों में एक प्रकार का अर्बुद सा (Bony tumour बोनी ट्यूमर@) उत्पन्न होता है, अस्थियों की संख्या में भी वृद्धि होती है, स्वाभाविक संख्या से अधिक दांत या दांत पर दांत उत्पन्न होते हैं तथा अश्म और केशों की अतिवृद्धि (हायपरट्रायकियासिस (Hypertrichiasis) होती है। कहा है—

अस्थि (अति वृद्धं) अध्यस्थीनधिदन्तांश्च (आपादयति) ॥ सु. सू. अ. १५। अत्र चकारात् केश नखयोरति वृद्धिर्ज्ञेया—डल्हण टीका।

उक्त अस्थि वृद्धि का कारण तथा तत्सम्बन्धी दोषज विकार—अति व्यायाम, अतिमानसिक क्षोभ, अस्थियों की अति रगड़ या संघर्ष से, ऊंचा नीचा होने से या चोट से, या अस्थियों को बहुत हिलाने से, तथा वातज आहार-विहार के अति सेवन से अस्थिवाही स्रोत (अस्थिप्रधान अवयवों में अस्थिपोषक रस पहुँचाने वाला स्रोत) दूषित होकर

---

‡ सन्धीनां स्फुटनं ग्लानिरक्ष्णोरायास एव च लक्षणं मेदसि क्षीणे तनुत्वमुदरस्य च — च. सू. अ. १७
तथा—मेदः क्षये प्लीहाभिवृद्धिः सन्धिशून्यता रौक्ष्यं मेदुर मांस प्रार्थना च ॥ — सु. सू. अ. १५
तथा—प्लीहवृद्धि कटी स्वाप सन्धिशून्यताङ्गरुक्षता कार्श्यं श्रम शोष मेदुर मांसाभिलाषै मांसक्षयोक्तैश्च मेदः — अ.सं. सू. अ. १९

@इसे ओस्टिओमा (Osteoma) भी कहते हैं। तरुणास्थि के अर्बुद को कोंड्रोमा (Chondroma) या एको-न्ड्रोसिस (Ecchondroses) कहते हैं।

अध्यस्थि (अस्थि अर्बुद) अधिदन्त (दांत का अर्बुद, ओडंटोमा Odantoma) अस्थितोद (दांत या अस्थि में चुभने की सी पीड़ा) शूल, विवर्णता तथा केश लोम, नख दाढ़ी मूंछ के भिन्न भिन्न विकार पैदा होते हैं‡।

अस्थि से वायु के आवृत होजाये पर रोगी, उष्ण स्पर्श (सेक आदि के रूप में) और पीडन (अंग दबवाने) की इच्छा करता है। उसके अंग टूटते, स्पर्श शून्य होते हैं तथा उनमें सूइयां चुभने की सी व्यथा होती है। कहा है—स्पर्शमिस्थ्नावृतं तूष्णं पीडनं चाभिनन्दति। संभज्यते सीदतिच सूचीभिरिवतुद्यते ॥ च० चि० अ० २८।

उपचार—उक्त अस्थि आश्रित रोगों की चिकित्सा पंचकर्म, वस्तिनां, तिक्तद्रव्यों से युक्त या उनसे साधित दूध एवं घृत के प्रयोगों द्वारा करनी चाहिए। कहा है—

अस्थ्याश्रयाणां व्याधीनां पंचकर्माणि भेषजम्।
वस्तयः क्षीर सर्पीषि तिक्तकोपहितानिच ॥
—च० सू० अ० २८

क्षयावस्था—अस्थियों की क्षीणता में अर्थात अस्थि के कारण भूत द्रव्यों के अभाव या न्यूनता की अवस्था में हड्डियों में पीड़ा, नख और दांतों की खराबी (उनमें भंगुरता होकर शीघ्र पतन होना), देह एवं दांत और नखों में रूक्षता, केश, रोम और श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ के बालों का) झड़ना, अनायास थकावट का होना, संधियों में शैथिल्य, पारुष्य (कड़ा या रूखा बोलना) तथा मज्जास्थिस्नेह संयुक्त मांस के खाने की इच्छा होना (इस प्रकार मांस खाने की इच्छा प्रायः मांसहारियों को ही होती है) ये लक्षण होते हैं†।

दूध, दही, माखन, हरी साग सब्जी, मछली का तेल, अण्डा, जानवरों के यकृत आदि जिनमें विटामिन 'ए' और 'डी' की प्रचुरता होती है ऐसे परमोपयोगी खाद्य द्रव्यों की कमी या अभाव से प्रायः अस्थिक्षय होता है या हड्डियां ठेढ़ी मेढ़ी, कमजोर और भुरभुरी हो जाती हैं। कारण, इनके अभाव से शरीर में चूना (Calcium) और फास्फोरस का सात्म्यीकरण ठीक-ठीक नहीं हो पाता, अतः अस्थियों तथा दांतों का पोषण यथायोग्य न होने से उनमें उक्त विकृतियां पैदा हो जाती हैं।

अस्थियों के यथायोग्य पोषणार्थ आहार में चूना, तथा उक्त विटामिन युक्त द्रव्यों की परमावश्यकता है। इनमें किसी की भी कमी या अभाव से बालास्थि@ विकृति (रिकेट्स Rickets) या फक्क नामक हड्डियों का रोग, कृमिदन्त (Dentai Caries) आदि दांतों के विविध विकार उत्पन्न होते हैं। हड्डियां मृदु होती हैं, दांत देर में निकलते हैं, उनकी बनावट ठीक ठीक नहीं होती। अस्थियां मृदु होने से शरीर के दबाव से दब जाती हैं या टेढ़ी मेढ़ी हो जाती हैं। यह हड्डियों का ठेढ़ामेढ़ापन हाथ-पैर की तथा पसलियों की हड्डियों में विशेषतः देखने में आता है।

गर्भवती के आहार में चूना एवं उक्त विटामिन युक्त द्रव्यों (दूध, मठ्ठा, माखन, घृत, गेंहू की मोटे आटे की रोटी, प्याज, गोभी, मूली, पालक, आलू, टमाटर, शलगम, गाजर, अण्डा आदि) के अभाव या कमी से गर्भस्थ बालक अपने पोषण के लिए माता को क्षति पहुंचाते हुए उक्त पदार्थों को विशेषकर चूना (Calcium)

‡ व्यायामादति संक्षोभादस्थ्नामतिविघट्टनात्। अस्थि वाहीनि दुष्यन्ति वातलानां च सेवनात्॥ च. वि. अ. ५। तथा अध्यस्थिदन्तौ दन्तास्थिभेदशूलं विवर्णता। केशलोम नखश्मश्रुदोषाश्चास्थिदोषजाः॥ च. सू. अ. २८। तथा— अध्यस्थ्यधिदन्तास्थि तोदशूल कुनखप्रभृतयोऽस्थि- दोषजाः॥ सु० सू० अ० २४

†अस्थिक्षयेऽस्थितोदो दन्त नख भंगो रौक्ष्यंच।
—सु० सू० अ० १५

तथा—केशलोमनखश्मश्रुद्विजप्रपतनंश्रमः। ज्ञेयमस्थि क्षये लिंग सन्धिशैथिल्यमेवच॥ च० सू० १७

अस्थि क्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थिस्नेह संयुतम् (अभिकांक्षति) उल्हण टीका (सुश्रुत)

@ बालास्थि वक्रता (Rickets)—इस रोग में हड्डियां मृदु होकर मुड़ जाती हैं तथा कृशता, पाण्डुता, मांसक्षीणता, कुब्जता (कुबड़ापन) आदि तथा अस्थिधातु में से चूने का परिमाण कम हो जाता है। उदर बड़ा हाथ-पैर पतले, मानसिक विकृति बालक का क्रोधी, दुराग्रही हो जाना, दांत आने के समय शरीर में क्षोभ होकर अनेक इन्द्रियों के व्यापार में विकृति होना, पचनेन्द्रिय की क्रिया विकृति होने से कभी अतिसार और कभी कोष्ठबद्धता, होना आदि लक्षण होते हैं।

को माता की अस्थियों और दांतों से आकर्षित कर लेता है। जिससे माता को @अस्थिमृदुता (Osteomalacia ओस्टिओमेलेसिया) और कृमिदन्त विकारों से परेशानी उठानी पड़ती है।

उपचार—स्वयोनिवर्धन द्रव्योपयोग। प्रतिकारः

सु० सू० अ० १५

उक्त सूत्र वाक्यानुसार अस्थि निर्माण में कारण भूत एवं अस्थिवर्धक द्रव्यों का उपयोग, अस्थिक्षय की दशा में करना चाहिए। ऐसे द्रव्य एक तो वे ही होंगे जिसका क्षय होरहा है या समानगुण वाले अथवा समानगुण भूयिष्ठ अन्य द्रव्य हो सकते हैं। शरीर में जिसका क्षय हो रहा है उसी अर्थात् तत्सम द्रव्य का आहार में या औषधि रूप में प्रयोग करना अति श्रेष्ठ उपाय है। अस्थिक्षय में अस्थि का ही प्रयोग उत्तम होता है। केकड़े की या कछुए की पीठ की हड्डी के टुकड़े टुकड़े कर १०-१५ दिन गोमूत्र में भिगोये रक्खें, बाद गजपुट में एक या दो पुट की आंच से जो अस्थि भस्म तैयार होती है उसका प्रयोग गोघृत के साथ या अण्डे के तरल भाग के साथ करना उत्कृष्ट लाभदायक होता है। विशेषतः गर्भज फक्क रोग में तो यह बहुत ही उत्तम लाभकारी है। चरक जी इस प्रसङ्ग में तरुणास्थि (Cartilage) का उपयोग करने के लिये कहते हैं—

"अस्थि तरुणास्थ्ना (भूयस्तरमाप्यायतेऽन्येभ्यः शरीर धातुभ्यः) च. शा. अ. ६

इसके अनुसार तरुणास्थि को पकाकर और छानकर उसका सुखा (शोखा) पिलाया जाता है।

उक्त समद्रव्य के अभाव में या अहिंसा की दृष्टि से समान गुण द्रव्य (यही विचार अन्य सब धातुओं के क्षय की दशा में किया जाता है) जिनमें चूना (क्यालसियम Calcium) प्रचुर मात्रा में हो, सेवन कराना चाहिए। आयुर्वेदोक्त गोदन्ती भस्म † इस दृष्टि से अस्थिक्षय की दशा में प्रवालमुक्ता आदि के भस्मों की अपेक्षा विशेष कार्यकारी होता है। प्रवालमुक्ता आदि शीत वीर्य द्रव्यों के प्रयोग से अस्थिगत बात की और भी वृद्धि होकर लाभ की अपेक्षा हानि ही होने की संभावना है। शुक्रादिधातुओं के क्षय जन्य राजयक्ष्मा आदि रोगों में प्रवालमुक्ता आदि का जितना उत्तम सफल प्रयोग होता है उतना अस्थिक्षय में नहीं होता। अस्थिक्षय में तो स्निग्ध और बृंहण औषधियों का ही प्रयोग प्रशस्त माना गया है। अष्टांग संग्रह में वाग्भट जी का कथन है—

अस्थिक्षयजान् वस्तिभिस्तिक्तोपहितैश्च क्षीरसर्पिभिः ॥

---सू. अ. १९ ॥

अर्थात्—अस्थिक्षय से होने वाले रोगों की चिकित्सा कल्पस्थानोक्त तिक्त रस वाले द्रव्यों के साथ बस्ति द्वारा अथवा उनसे साधित दूध और घृतों के प्रयोग (बाह्याभ्यन्तर सेवन) द्वारा करना चाहिए।

साथ ही साथ अस्थिपोषक समान गुणभूयिष्ठ द्रव्य जिनमें चूने के साथ फास्फरस भी होता है, जैसे—तक्र, पनीर, मूंग, चना आदि शिम्बीधान्य, बाजरा, हाथों से कुटा हुआ चावल, मूली, ककड़ी, गाजर, शलगम, बन्द-गोभी, ताजे पत्र शाक, सर्व प्रकार के फल, मेवे, तथा अण्डे का तरल आदि सेवन कराना चाहिए किन्तु ध्यान रहे, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं उक्त चूना और फास्फर-युक्त द्रव्य तभी शरीर में उत्तम लाभदायक अस्थिपोषण कार्य करते हैं जबकि उनके साथ विटामिन 'डी' युक्त द्रव्य जैसे दूध, घृत, फल, साग—सब्जी, मछली का तेल, सूर्य-प्रकाश या सूर्य की धूप का सेवन आदि आहार विहार की यथोचित् योजना की जाय।

सिद्ध औषधि प्रयोगों में से—'पुष्पधन्वारस'-भैषज्य रत्नावली ग्रन्थ का जो कि एक अत्युत्तम वाजीकरणीय रसौषधि है, वह विशेषकर स्त्रियों के उत्पन्न होने वाले अस्थिमृदुता नामक अस्थिक्षय में अच्छा काम करता है। यह विकार अति पुराना न हो। मनोव्याघात आदि कारण

@ अस्थिमृदुता—विशेषकर स्त्रियों की नितम्बास्थि मृदु हो जाती है, चलते समय उनकी एक विलक्षणगति होती है, मुड़कर चलना पड़ता है। पैर को उठाकर आगे बढ़ते समय बड़ा कष्ट या परिश्रम अनुभव होता है। कभी कभी अन्य स्थानों की हड्डियों पर गांठ सी हो जाती है।

† इसमें चूना और गन्धक का उचित सम्मिश्रण होता है। इसीलिए इसे कैल्शियम सल्फेट [Calciumsulphate] रासायनिक नाम से पुकारते हैं। इसके (गोदन्ती) के भस्म से ही प्लास्टर आफ पारिस (Plaster of Paris) बनाया जाता है, जिसका अस्थिभंग में प्रयोग होता है।

स्पष्ट हों, या मानसिक विकृति के लक्षण अधिक हों तो पुष्पधन्वारस मात्रा—१ से २ रत्ती, दिन में दो बार घृत के साथ सेवन करावें। घृत के स्थान में मलाई या मक्खन के साथ भी ले सकते हैं।

पुष्पधन्वा की विधि—रस सिन्दूर, नाग (सीसा) भस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वंगभस्म समभाग लेकर महीन पीसकर धत्तूरपत्र रस, नागरवेल पान के स्वरस की तथा शुद्ध भांग, मुलैठी और सेमल की जड़ के क्वाथ की पृथक-पृथक एक-एक भावना देकर खरल कर, शुष्क चूर्ण रूप में या १-१ रत्ती की गोलियां बना कर रखलें।

नोट—यदि उक्त 'अस्थिमृदुता' व्याधि बहुत पुरानी हो, तथा अशक्त एवं निर्बल स्त्री जो बार-बार सगर्भा होती रहती हो, उसे यह विकार हुआ हो, साथ-साथ अन्य इन्द्रियां भी अति क्षीण हो गई हों, तो केवल 'नागभस्म' मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक, मक्खन और मिश्री के साथ दिन में २ बार सेवन करावें। इससे अस्थिगत पार्थिव आदि घटकों की पूर्ति होकर अस्थिधातु अच्छी पुष्ट हो जाती है। अस्थिगत व्रणों में भी यह भस्म उत्तम कार्य करती है। किन्तु ध्यान रहे कभी-कभी नागभस्म के अत्यधिक सेवन से कोष्ठशूल पैदा हो जाता है। ऐसी दशा में इसे थोड़े दिनों के लिये बन्द कर देना चाहिए। यह सीसा भस्म उत्तम निरुत्थ होनी चाहिए, कच्ची भस्म से उदर शूल हो जाया करता है। इस भस्म के सेवन काल में या पुष्पधन्वा रस के सेवन काल में खटाई का सख्त परहेज करना चाहिये। अथवा-रसचण्डांशु ग्रन्थ का।

मधुमालिनी वसन्त—जिसमें हिंगुल को अनारदाने के रस में ७ दिन तक खरल कर शुष्क चूर्ण कर, उसमें जितने तोले हिंगुल हो उतने ही नग मुर्गी के अण्डों (यदि हिंगुल १० तोला हो तो १० अण्डे) का तरल भाग मिला लोहे की कड़ाही में मन्दाग्नि से पकावें, लोहे की कलछी से चलाते रहें। जब तरल भाग शुष्क हो जाय, तब नीचे उतार उसमें कचूर, श्वेतमिर्च, प्रियंगु (गेहुला) प्रत्येक का महीन चूर्ण, हिंगुल के वजन से अर्ध प्रमाण में मिला, बड़हर या अनार के रस में पुनः ७ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना ली जाती हैं।

छोटे बच्चों की अस्थिवक्रता (Rickets) 'रिकेट्स' नामक व्याधि में इसकी मात्रा को मण्डूरभस्म, शृङ्गभस्म और सितोपलादि चूर्ण के मिश्रण के साथ दिया जाता है। इससे रक्त, मांस और अस्थि का पोषण होता है। ध्यान रहे, गर्भवती की अस्थिधातु क्षीण होने पर गर्भ की भी अस्थिधातु क्षीण होती है और फिर बालक को उक्त मृदु-स्थि रोग हो जाने की संभावना रहती है। अतः अस्थि-धातु के पोषणार्थ सगर्भा को उक्त योग का सेवन कराना विशेष लाभप्रद होता है। अथवा—

बालक के उक्त मृदुस्थि रोग में मण्डूरभस्म की मात्रा गिलोय सत्व के साथ सेवन करने से, अथवा सर्वाङ्गसुन्दर रस की मात्रा घृत के साथ देने से और अरविन्दासव का सेवन कराते रहने से भी विशेष लाभ होते हुये देखा गया है। यदि इस रोग में बालक के चूतड़ आदि स्थानों पर सिकुड़न आ गई हो, हाथ पैर की विशेषतः पैर की हड्डी मुड़ गई हो, बार-बार थोड़ा २ दस्त होता हो, ज्वर भी रहता हो तथा खांसी भी हो तो प्रवालपिष्टी का प्रयोग शृङ्ग भस्म के साथ कराते हुये, उक्त मधुमालती वसन्त का प्रयोग कराने से उत्तम लाभ होता है। इससे अस्थिक्षय जन्य सर्व विकार जैसे हड्डियों में पीड़ा, नख और दांतों की खराबी, रूक्षता बालों का झड़ना, सन्धिशैथिल्य आदि शीघ्र दूर हो जाते हैं।

(६) मज्जा धातु ‡—

समअवस्था में—शरीर को स्नेहयुक्त चिकना करती है, बल बढ़ाती है, व्रणों का प्रसादन करती है, अस्थियों को पूर्ण करती है, तथा शुक्र को पुष्ट करती है। कहा है—

मज्जा स्नेहं बलं शुक्र पुष्टिं पूरणमस्थ्नो च करोति

सु. सू. अ. १५

वृद्धि की अवस्था में—नेत्र, शरीर तथा रक्त में भारीपन (गुरुता) हो जाता है, अंगुलियों की संधियों में

‡ मज्जा-यह मेद या स्नेह का ही प्रकार है इसमें ९६ प्रतिशत मेद होता है। इसे मेद से भिन्न धातु मानने का कारण है इसके विशेष कार्य। यह शरीर का स्नेहन और बलसम्पादन करते हुए शुक्र धातु का पोषण करती है। यह अण्वस्थियों एवं नलकास्थियों के मुण्डों के शुषिरों तथा मध्य विवर में विशेष रहती है।

(पर्वों में) स्थूल या जाड़े मूल (मोटा) वाले व्रण पैदा होते हैं। कहा है—

नेत्राङ्ग रक्तगौरवैः पर्वसु च स्थूलमूलारुर्भिर्मज्जा
—अ. सं. सू. अ. १७६

तथा—मज्जाऽतिवृद्धः सर्वाङ्गनेत्रगौरवं च (आपादयति)। —सु.सू. अ. १५

वृद्धि सम्बन्धि दोषज अन्यान्य विकार—

आंखों के आगे अन्धेरा छाना, बेहोशी, भ्रम (चक्कर आना), अस्थियों के पर्वों पर विशाल व्रणों का होना, नेत्राभिष्यन्द (आंख आना), पर्वभेद (अस्थि सन्धियों में भेदनवत् पीड़ा) आदि विकार होते हैं †।

मज्जा के उक्त विकारों का विशेष कारण—

कुचले जाने से, आघात से, दब जाने से, शोथ से या विरुद्ध आहार के सेवन से मज्जा की रक्त वाहिनियां दूषित होकर उक्त विकारों का कारण होती हैं। कहा है—

उत्पेषादत्यभिष्यण्दादभिघातात् प्रपीड़नात्।
मज्जवाहीनि दुष्यन्ति विरुद्धानां च सेवनात्॥
—च.वि. अ. ५

अतिवृद्ध मज्जा से वात के आवृत हो जाने पर देह का नव जाना (झुक जाना), अधिक जम्भाई आना, मरोड़ने की सी वेदना (रस्सियों से बांधे जाने जैसी वेदना), शूल, हाथों से दबाने से रोगी को आराम मिलना आदि लक्षण होते हैं ‡।

उपचार—आगे देखिये।

क्षयावस्था—मज्जा की क्षीण अवस्था में—वीर्य की अल्पता, अस्थियों में तथा सन्धियों में फूटनवत् पीड़ा, अस्थियों में पोलापन (शून्यता), दुर्बलता, अपूर्ण वृद्धि या लघुता, अस्थियों का जीर्ण होना (झरने छुटने लगना (Necrosis of bones अर्थात् अस्थि का क्षरण होकर छिद्रयुक्त होते जाना) तथा निरन्तर वात रोगों से पीड़ित रहना, चक्कर आना, प्रकाश में भी अंधेरे का अनुभव होना आदि लक्षण होते हैं।×

उपचार—मज्जा की वृद्धि में तो वे ही सब उपचार लाभप्रद होते हैं जो मांस और मेद की वृद्धि में कहे गए हैं।

मज्जा की क्षीणावस्था में स्वयोनिवर्धन स्नेह द्रव्यों का विशेषतः मज्जा का ही या तद्गुण भूयिष्ठ द्रव्यों का उपयोग करने के लिए आयुर्वेद का आदेश है। मज्जा के सामान्य गुणों को दर्शाते हुए चरक जी का कथन है कि मज्जा का सेवन बल, वीर्य, रस, कफ, मेद और मज्जा को बढ़ाता है। यह विशेषतः अस्थियों के बल को बढ़ाती है, और स्नेहनार्थ हितकर है। यथा—

बल शुक्ररस श्लेष्म मेदोमज्जविवर्धनः।
मज्जा विशेषतोऽस्थां च बलकृत्स्नेहने हितः॥
च. सू. अ. १३

अस्थिमज्जागत वात प्रकोप के कारण, अस्थि क्षीण और नरम होकर टेढ़ी, बांकी हो जाती है, अस्थियों के संधिस्थानों में हड्डी बढ़ी सी या दबी सी भासती है, वहां भयंकर वेदना होती है, तथा ज्वर, वमन, बेचैनी विशेष होती है। ऐसी दशा सगर्भावस्था में या प्रसूतावस्था में कभी-कभी हो जाती है। इस पर नाग (सीसा) भस्म का प्रयोग, आंवला, गोखरू और मिश्री के चूर्ण के साथ करने से लाभ होता है। मज्जावृत वात की दशा में भी यह प्रयोग लाभदायक होता है।

मज्जा की क्षीणावस्था में प्रायः वे ही सब लक्षण

† रुक् पर्वणां भ्रमो मूर्च्छा दर्शनं तमसस्तथा। अरुषां स्थूलमूलानां पर्वजानां च दर्शनम्॥ मज्ज प्रदोषात्
—च. सू. अ. २८

तथा च—तमो दर्शन मूर्च्छा भ्रम पर्व स्थूलमूलारुर्जन्म नेत्राभिष्यन्द प्रभृतयो मज्जदोषजाः॥ —सु. सू. अ. २४

‡ मज्जावृते विनामः स्याज्जृम्भणं परिवेष्टनम् शूलंतु पीड्यमानेच पाणिभ्यां लभते सुखम्॥ —च. चि अ. २८

× मज्जक्षयेऽल्पशुक्रता पर्वभेदोऽस्थिनिस्तोदोऽस्थिशून्यता च॥ —सु. सू. अ. १५। तथा च—

शीर्यन्त इवचास्थीनि दुर्बलानिलघूनि च। प्रततंवातरोगीणि क्षीणे मज्जनि देहिनाम्॥ —च. सू. अ. १७

अस्थिसौषिर्य निस्तोद दौर्बल्य भ्रमतमोदर्शनैर्मज्जा
—अ. सं. सू. अ. १६

मज्जा क्षीणता की दशा में रोगी को मीठे और खट्टे पदार्थों को एक साथ मिलाकर खाने की इच्छा होती है। यथा—

स्वाद्वम्लसंयुतं द्रव्यं मज्जक्षीणोऽभिकांक्षति॥
—डल्हणाचार्य (सुश्रुत)

होते हैं जो शुक्र की क्षीणावस्था में होते हैं, हृदय में कम्प, मैथुन की अनिच्छा, बड़ी आवाज का सहन न होना आदि, शेष लक्षण ऊपर देखिए-ऐसी दशा में—

मधुमालिनी वसन्त मात्रा २ रत्ती तक, प्रवालभस्म और गिलोय सत ३-३ रत्ती का मिश्रण [यह एक मात्रा हुई) आमले के मुरब्बे के साथ सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है।

७. शुक्रधातु † —

इसकी उत्पत्ति, स्वरूप और कार्य का विवरण देखिये पीछे अध्याय ८ में।

समावस्था में रहने पर—शरीर में किसी भी परिस्थिति के समय निर्विकारता, निर्भयता, शूरता (धैर्य) होती है, मैथुन के समय सुखपूर्वक उसकी च्युति होकर स्त्री की पुरुष पर एवं पुरुष की स्त्री पर प्रणय प्रेम की वृद्धि होती है। शरीर में यथायोग्य वल या उत्साह तथा काम की प्रवलता (हर्ष) होती है और गर्भोत्पत्ति के लिये यथोचित वीज (Spermatozoa) का प्रदान होता है। कहा है—

शुक्रं धैर्यं च्यवनं प्रीतिं देहवलं हर्षं (करोति) वीजार्थञ्च।

—सु० सू० अ० १५

वृद्धि की अवस्था में—शुक्र की अतिप्रवृत्ति (अधिक मात्रा में स्खलन, स्त्री संभोग की तीव्र इच्छा) तथा शुक्र की पथरी (शुक्राश्मरी) हो जाती है (यह पथरी ऐसी होती है जो दवाने से विलीन हो जाती है, विशेष कड़ी नहीं होती)। कहा है—

शुक्रं (अतिवृद्धं) शुक्राश्मरीमतिप्रादुर्भावं च।

—सु० सू० अ० १५

तथा च-अतिस्त्रीकामिता शुक्राश्मरीसंभवाभ्यां शुक्रम्।

—अ० सु० सू० अ० १६

नोट—शुक्र के अति प्रादुर्भाव की दशा में मैथुन की तीव्र इच्छा होने पर भी मैथुन न करते हुये उसके वेग को रोके रहने से, अपने स्थान से च्युत हुये, तथा बलपूर्वक रुके हुये उस शुक्र को वायु अण्डकोषों के मध्य स्थान में शुष्क कर देती है वही शुक्राश्मरी कहाती है, जो कि मूत्राशय में पीड़ा, मूत्रकृच्छ्र और अण्डशोथ को उत्पन्न करती है। नूतन निर्माण हुई इस अश्मरी को उसके स्थान में (अण्डकोषों के वीच में) ही पीड़न या दवाने से वह विलीन हो जाती है तथा शुक्र मूत्रमार्ग से आ जाता है। कहा है—

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात्।
स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः॥
शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी।
वस्तिरुङ्मूत्रकृच्छ्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी ॥
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ।
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिम् (मा. निदान)

सुश्रुत जी का भी कथन है—

पोडितमात्रे च तस्मिन्नेवावकाशेप्रविलयमापद्यते॥

सु. नि. अ. ३

शुक्र वृद्धि सम्बन्धी दोषज अन्यान्य विकार—

उक्त शुक्रातिप्रवृत्ति के कारण निषिद्ध ऋतु एवं दिनों में मैथुन करने, अयोनिगमन (निषिद्ध योनि, रजस्वला आदि से मैथुन तथा गुदगमन या मुष्टिमैथुन आदि) करने, अत्यधिक मैथुन करने से, या वीर्य के वेग को रोकने से, तथा शस्त्रकर्म Operation, क्षारकर्म एवं अग्निकर्म से शुक्रवाही स्रोत दूषित होकर शुक्रदोषज और जननेन्द्रिय सम्बन्धित रोग पैदा होजाते हैं। जैसे—× क्लीवता (ध्वजोच्छ्राय होना किंतु मैथुनयोग्य पूर्ण शक्ति न होना), अहर्षण

† "धारणात् धातु" इस योगार्थ के अनुसार अंग्रेजी में इसका रूपान्तर कनेक्टिव टिशू (Connective tissue) में होता है और आयुर्वेदिक सर्वधातु मांस और शुक्र छोड़कर इसी वर्ग में आते हैं। शुक्र शरीर के एक विशिष्ट अङ्ग का स्राव है। इसको पाश्चात्य वैद्यक में धातु नहीं मानते।

—डा० घाणेकर

× क्लीवता या क्लैब्य की दशा में वीज का अभाव (पुरुष और स्त्री दोनों में) होता है। इसे ही चरक में 'नर नारिषण्ड' कहा गया है। अंग्रेजी में इसे स्टरलिटि (Sterlity) कहते हैं। इसमें ध्वजोच्छ्राय हो सकता है, मैथुन भी थोड़ा-बहुत होता है, किंतु सन्तान नहीं होती। अप्रहर्ष या अहर्षण में सर्वथा लिंग शैथिल्य होता है, इसे वास्तव में नपुन्सकता, इम्पोटेन्स (Impotence) कहते हैं।

(ध्वजोच्छ्राय का सर्वथा न होना) शुक्राश्मरी, शुक्रमेह आदि। उक्त प्रकार से दूषित वीर्य से जो सन्तान पैदा होती है, वह रोगी, नपुंसक, अथवा विकृतरूप वाली होती है। अथवा गर्भस्थापना ही नहीं होती, या गर्भस्राव या पात (चौथे महीने से पूर्व जब तक गर्भ द्रव रूप होता है, तब तक स्राव कहाता है, तथा प्रसव के उचित समय से पूर्व विशेष कर छठे महीने तक पात कहाता है) हो जाता है। इस प्रकार दूषित शुक्र जहां उस पुरुष को हानि पहुँचाता है, वहां सन्तान और स्त्री के लिए भी हानिकर है। कहा है—

अकालयोनिगमनान्निग्रहादतिमैथुनात्।
शुक्रवाहीनि दुष्यन्ति शस्त्रक्षाराग्निभिस्तथा॥
—चा. वि. अ. ५

तथाच-शुक्रव्यदोषात् क्लैब्यमहर्षणम्।
रोगिणं क्लीबमल्पायुर्विरूपंवा प्रजायते॥
न वा संजायते गर्भः पतति प्रस्रवत्यपि।
शुक्रंहि दुष्टं सापत्यं सादरं बाधते नरम्॥
—च. सू. अ. २८

क्लैब्याप्रहर्षं शुक्राश्मरी शुक्रमेह शुक्रदोषादयश्च तद्दोषजाः॥ —सु. सू. अ. २४

शुक्रावृत वात के लक्षण—वात के शुक्रावृत होने पर शुक्र का पतन या स्खलन होना सर्वथा बन्द हो जाता है अथवा बड़े वेग से उसका पतन होने लगता है। तथा उस शुक्र से गर्भोत्पत्ति नहीं हो पाती। कहा है—

'शुक्रावेगोऽतिवेगो वा निष्फलत्वं च शुक्रगे।
—च. चि. अ. २८

उपचार -

(१) शुक्राश्मरी पर—पाषाण भेद, वरुणा, गोखरू एरण्ड, छोटी कटेरी और तालमखाना इन ६ बूटियों की जड़ों को समभाग लेकर चतुर्थांश क्वाथ कर, छानकर उसमें थोड़ा दही का घोल मिलाकर प्रातःसायं पान करें। अथवा—शतावरी मूल के रस में (अभाव में शताव क्वाथ में) समभाग दूध मिला पान करें अथवा—

पेठा (कुष्माण्ड) के स्वरस में जवाखार और पुराना गुड़ मिलाकर पान करने से शुक्राश्मरी शीघ्र ही दूर होती है। उक्त तीनों प्रयोग योगरत्नाकर ग्रन्थ के हैं।

शुक्रमेह (स्वप्नदोष) पर—लोहभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, वंगभस्म प्रत्येक १-१ तोला, केशर ३ माशे, कस्तूरी ३ माशे और अम्बर ३ माशे तथा शिलाजीत ५ तोले इन ८ द्रव्यों को त्रिजात (दालचीन, इलायची और तेजपात) के क्वाथ से खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। प्रातःसायं २ से ४ गोली तक गुलकन्द के साथ या आंवले के मुरब्बे के साथ सेवन करें। अथवा—

शिलाजीत और वंगभस्म समभाग २-२ तोला लेकर उसमें लोहभस्म १ तोला और अभ्रकभस्म ६ माशा मिला २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। प्रातःसायं उक्त अनुपान से या बकरी के दूध से सेवन करें।

कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म मात्रा १ से ४ रत्ती तक अनार के रस के साथ प्रातःसायं सेवन करें।

उक्त तीनों प्रयोग अनुभूत हैं। रसतन्त्रसार से साभार उद्धृत किये गए हैं।

३. शुक्र दोषजन्य रोग, क्लीवता, अप्रहर्ष आदि पर—

चूर्णों में-वृहद्वाराहीकन्द चूर्ण-वाराहीकन्द, सिंघाड़ा और बिलाईकन्द (अभाव में शतावरी) इनका चूर्ण ४-४ तोले लेकर, एकत्र मिला, घृत में भूनकर उसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, पीपल, सोंठ और वंशलोचन का चूर्ण २-२ तोला तथा मिश्री सबके समभाग मिश्रित कर सुरक्षित रक्खें। मात्रा—२॥ तोले तक सायंकाल में गोदुग्ध के साथ सेवन करें। प्रातःकाल में त्रिवंग भस्म, मात्रा २ रत्ती तक शहद और घृत के साथ सेवन करें। यह योग वंगसेन का है (उत्तम है)। इससे शुक्रदोष नष्ट होकर क्लीवता और शुक्रमेह में भी लाभ होता है। ● अनुभूत है।

● स्वानुभूत चूर्णों में—सालिम मिश्री, सेमरकन्द, इलायची (छोटी) के बीच, तृणकान्त (कहरवा), कतीरा, श्वेतमूसली प्रत्येक १-१ भाग, वाराहीकन्द, असगन्ध, विदारीकन्द, शतावर, समुद्रशोष और बबूल की कोमल फली प्रत्येक २-२ भाग तथा ईसबगोल की भूसी ३ भाग, सबका महीन चूर्णकर उसमें समभाग मिश्री चूर्ण मिला सुरक्षित रक्खें। मात्रा—३ माशे तक, प्रातः सायं दुग्ध या ताजे जल के साथ सेवन करने से शुक्रदोष दूर होकर वह काफी गाढ़ा होता है। स्वप्नमेह शीघ्र दूर होता है। शुक्रदोष का विशेष विवरण इसी प्रकरण के अन्त में देखिए।

वटियों में—त्रिफलादि वटी—त्रिफला, कुटकी, पित्तपापड़ा और त्रायमाण का चूर्ण समभाग तथा सबके समान शुद्ध कुचले का चूर्ण लेकर सबको जल में खरल कर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। १ या २-२ गोली प्रातः सायं अनार के रस के साथ सेवन करें +।

घृतों में—अश्वगन्धादि घृत—असगन्ध १ सेर, दूध ८ सेर और घृत १ सेर यथा विधि पाक कर उसमें त्रिकटु चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर), वायविडंग, जावित्री, बला, अतिबला, गोखरू, विधारा प्रत्येक ४-४ तोला तथा लोह, बंग, अभ्रक ये तीनों भस्में भी ४-४ तोला, शहद और चीनी आधा-आधा सेर मिला दें। यथोचित मात्रा में प्रातः सायं सेवन करने से शुक्र-दोष, शुक्रावृत्त वातदोष तथा अन्यान्य वातविकार दूर होते हैं, यह अत्यन्त वाजीकरण भी है। अथवा—

शतावरी घृत—शतावरी का कल्क १० तोला, घृत १ सेर और दूध १० सेर, सबको एकत्र मिला मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर सुरक्षित रक्खें। यह उत्तम शुक्रशोधक तथा स्त्रियों का आर्तवदोष-नाशक भी है। मात्रा—उक्त घृतों की २॥ तोला तक लेवें। उक्त तीनों प्रयोग वंगसेन के उत्तम प्रशंसित हैं।

पाकों में—पूग (सुपारी) पाक—दक्षिणी चिकनी सुपारी बारीक कतर कर जलयुक्त दूध के साथ पकाकर जल से धोकर, शुष्ककर, कूटकर महीन चूर्ण ३२ तोले लेकर, कलईदार पात्र में प्रथम घृत भी ३२ तोला डाल-कर पकावें, उसमें उक्त चूर्ण मिलाकर भूनें, फिर उसमें शतावरी रस या क्वाथ, और आमला रस प्रत्येक ६४ तोला, दूध २॥ सेर तथा शक्कर या बूरा ५ सेर मिला सबको मन्द अग्नि पर पकावें। गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार कर उसमें—नागकेशर, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी-इलायची, नागरमोथा, चन्दन, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी-पीपल, आमले की मींगी, चिरोंजी, श्वेत जीरा, स्याह-जीरा, सूखा-सिंघाड़ा, वंसलोचन, जायफल, जावित्री, लौंग, धनियां, शीतलचीनी, नाकुली, तगर, सुगन्धवाला, खस, भांगरा और असगन्ध प्रत्येक का महीन चूर्ण ४-४ तोला अच्छी तरह मिलाकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा—२ तोले तक, दूध के साथ सेवन करें। यह योग भैषज्यरत्ना-वली का श्रेष्ठ लाभदायक है।

च्यवनप्राशावलेह—यदि ठीक-ठीक शास्त्रानुसार बनाया गया हो तो शुक्रदोषों के नाशार्थ मात्रा २ तोले तक, मूसली क्वाथ के साथ प्रातः-सायं सेवन करने से आशातीत लाभ होता है।

नोट—उक्त सुपारी पाक या पूग खण्ड का प्रयोग अनुपान भेद से कई रोगों पर भी किया जाता है। जैसे—नेत्ररोग, शरीर में झुर्रियां पड़ी हों (बली) और पांडुरोग में इसे त्रिफला क्वाथ से, प्रदर, वंध्यत्व, अम्लपित्त, क्षीणता और दुर्बलता में दूध से, उदर और अजीर्ण में उष्णोदक से, शूल और यक्ष्मा में बकरी के दूध से, गुदा से रक्तस्राव में अपामार्ग क्वाथ से, कब्जी या कोष्ठबद्धता में एरण्ड तेल और गर्म जल के मिश्रण से, तृष्णारोग में नारियल के जल से, मूत्रकृच्छ्र या मूत्रसंग में गोखरूक्वाथ से, पलित या अकाल में बाल पकते हों तो भांगरा रस से सेवन कराया जाता है। ❂

+ वटियों में पुरन्दर वटी (रसेन्द्रसार संग्रह ग्रन्थ की) भी उत्तम लाभकर है—शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग की कज्जली कर उसमें त्रिकटु और त्रिफला के द्रव्य १-१ भाग (सोंठ २ भाग लेवें) का महीन चूर्ण मिला, बकरी के दूध की ७ भावनायें देकर २ से ४ रत्ती तक की गोलियां छायाशुष्क कर रख दें। मात्रा—१ गोली, अदरख रस के साथ सेवन कर ऊपर से ताजा जल पीवें। यह प्रायः सभी रोगों पर दी जा सकती है, श्वास, कास को तो शीघ्र ही नष्ट करती है। मैथुनशक्ति को खूब बढ़ाती है।

❂ इस प्रसंग में रतिवल्लभ मोदक [धन्वन्तरि संहिता] विशेष लाभकारी है—भांग ३ सेर को कूटकर १६ सेर पानी में पका ४ सेर पानी शेष रहने पर छान लेते हैं। फिर उसमें १ सेर दूध, २॥ सेर खांड, आधा सेर शतावर का रस, १ सेर घृत और २० तोला पीपली का चूर्ण मिला मन्दाग्नि पर पका, गाढ़ा होने पर उसमें त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, चित्रक, पिपरामूल, धनियां, जीरा, मेथी, नागरमोथा, भारंगी, तालीसपत्र, निसोत, दन्तीमूल, पोखरमूल, लौंग, जावित्री, अजवायन, वंसलोचन, जाय-फल, कपूर, काकड़ासिंगी, विदारीकन्द, शतावर, असगंध का चूर्ण आधा-आधा तोला मिला, १-१ तोले के लड्डू बनाते हैं। इसके सेवन से शुक्रदोष और दारुण क्लीवता और षण्ढत्व दूर हो जाता है। मात्रा १-१ मोदक ताजे जल के साथ।

रसों में—वसन्त कुसुमाकर रस (भै० र०)—जिसमें स्वर्णभस्म और चांदीभस्म २-२ भाग, वङ्ग, नाग और कान्तलोहभस्म ३-३ भाग तथा अभ्रक, प्रवाल और मुक्ता भस्म ४-४ भाग लेकर, एकत्र कर उसमें गोदुग्ध, गन्ने का रस, अडूसा पत्र रस, लाक्षारस, सुगन्धवाला क्वाथ, केले की जड़ का रस, केले के फूल का रस, कमल के फूल का रस, चमेली फूल का रस और कस्तूरी के जल की (प्रत्येक की) १-१ भावना दी जाती है। मात्रा—२ रत्ती तक, प्रातः-सायं मिश्री, घृत और मधु के अनुपान से सेवन करने से शुक्र सम्बन्धी सर्वविकार दूर होकर नपुन्सकता, ध्वजभंग आदि विकार शीघ्र दूर होते हैं।

अनुपान भेद से यह रस अम्लपित्त आदि पित्तज विकारों पर मिश्री और श्वेत चन्दन के जल के साथ, रक्तपित्तादि रक्तविकारों में अडूसे के रस के साथ, प्रमेह में गिलोय के रस के साथ, उन्माद रोग में ब्राह्मी रस के साथ इत्यदि कई रोगों पर सफलपूर्वक प्रयुक्त होता है।

वंगेश्वर रस (भै० र०)—जिसमें रससिंदूर को खूब महीन पीसकर उसमें समभाग वंगभस्म मिला अच्छी तरह खरल कर रख लिया जाता है। इसे स्वल्पवंगेश्वर भी कहते है। मात्रा—१ से २ रत्ती, मुलैठी क्वाथ और मधु के साथ प्रातः-सायं सेवन कराने से विशेषतः शुक्रमेह में परम लाभ होता है। दोषभेद से अनुपान बदल कर यह रस प्रायः सर्व प्रकार के प्रमेहों पर प्रयुक्त होता है।

तिला लेपादि में—पलाशबीजादि तेल—ढाक के बीज, कुचला, मालकंगनी और जंगली कबूतर की बीट प्रत्येक ६-६ तोले तथा लौंग, अकरकरा और दालचीनी १-१ तोला सबके मोटे चूर्ण को बकरी के दूध में घोंटकर, सुखा कर, पातालयन्त्र द्वारा तेल निकाल लें।

इसे सीवन और सुपारी छोड़कर इन्द्री पर मलकर, ऊपर से बंगला पान बांध देना चाहिए। इन्द्री को ठंडे पानी से बचायें।

राल तेल—राल ४० तोला, श्वेत चन्दन का चूर्ण २० तोला, लोबान १० तोला और लौंग २॥ तोला सब को एकत्र कूट पीसकर, पातालयन्त्र से तेल निका लें।

इसे शिश्न पर तथा वृक्क (गुरदों) पर धीरे-धीरे मालिश करें। अथवा—

कस्तूरी तिला—कस्तूरी ७ रत्ती, कालीमिर्च, जुन्देबेदस्तर, हींग और बीरबहूटी ५-५ माशे, केशर १ माशा और बिनौले की गिरी ७ माशा लेकर, सबको खरल कर ५ तोला चमेली के तेल में मिला सुरक्षित रक्खें। इसे शिश्न पर धीरे-धीरे मलने से उसकी शिथिलता दूर हो जाती है, नपुन्सकता दूर होती है।

नागरादि लेप—सोंठ, लौंग और अकरकरा समभाग, महीन चूर्ण कर शहद में मिला मलहम सा बना रक्खें। रात्रि को सोते समय इन्द्री पर लेप कर, ऊपर से पान बांधा करें। एक मास में नपुन्सकता दूर होती है। अथवा—

अरिष्टकादि लेप—रीठे का छिलका और अकरकरा समभाग लेकर दोनों को तीक्ष्ण मद्य में पीसकर इन्द्री पर लेप कर ऊपर से पान बांधना चाहिए, यथेष्ट लाभ होता है। अथवा—

एलादिलेप—इलायची, जावित्री, श्वेत कनेर की जड़, सेंभल की छाल और अफीम ६-६ माशे लेकर, सबको महीन पीस, १ तोला तेल मिला गर्म कर लेप करें, ऊपर से पान बांधें। उक्त तीनों प्रयोग भा० भै० रत्नाकर, से लिए हैं। लेप या तीला के प्रयोग के समय शिश्न को शीतल जल से बचाना तथा मैथुन से परहेज करना और प्रसंग के प्रारम्भ में कहे गए निदान या रोग के कारणों का पूर्ण त्याग करना परम आवश्यक है। कामवासना पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहिए।

नोट—कामवासना का शरीर पर परिणाम—

स्त्री संभोग विषयक कामवासना अमर्याद हो जाने पर, पुरुष शरीर नाना प्रकार से विकारमय एवं रोगग्रस्त हो जाता है। ध्यान रहे कि क्रोध, भय, शोकादि के सदृश ही काम-वासना भी एक तीव्र मनोविकार है। यह मनोविकार (भावना या इमोशन Emotion) प्रथम मन में उत्पन्न होता है और फिर शरीर के अनेक अन्तर्बाह्य अवयवों पर इसका अनिष्ट परिणाम होता है। अन्य मतावलम्बियों का मत है कि बीज कोषों और उपवृक्कों में प्रथम अन्तःस्राव होता है, पश्चात् यह कामवासना जागृत होती है। अस्तु हमें यहां सतमतान्तरों के झगड़े में नहीं पड़ना है। हमें तो उपर्युक्त प्रथम मत ही मान्य है,

और इसके लिए श्री भगवद्गीता के भगवद् वाक्य ही प्रमाण हैं।

"ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते। संगात्संजायते काम"......इत्यादि (गीता अ० २)

काम वासना के स्वरूप के विषय में तथा अन्तर्बाह्य अवयवों पर, विशेषतः वात वह-मण्डल (Nervous system) एवं अन्तः स्रावक पिण्डों पर उसका जो अनिष्ट परिणाम होता है, इस विषय में प्रायः सर्व शास्त्रज्ञों की एक वाक्यता पाई जाती है। जिस प्रकार हर्ष, शोक, भय, क्रोधादि मनोविकारों के अत्यधिक उद्रेक होने पर, शरीर पर तीव्राततितीव्र दुष्परिणाम (शरीरपात भी) हो जाता है, वैसे ही कामवासना के उद्रेक से भी होता है। इसके कई उदाहरण 'हेव्लाकएलिस' कृत लिङ्ग विज्ञान (Psychology of Sex by Havellock Ellis) पुस्तक में दिए गए हैं।

अपने यहां भी देखा जाता है कि कई युवावस्था को पार किए हुए प्रवेढ़, बड़ी उमंग में आकर वाला स्त्री से विवाह कर शीघ्र ही काल-कवलित हो जाते हैं, तथा अपनी प्रियतमा भार्या को वैधव्य की दुःखाग्नि में झोंक जाते हैं।

कई युवक कामोद्रेक से अति मैथुन में प्रवृत्त होकर, प्रमेह, दाह (हाथ पैरों में अत्यधिक प्रस्वेदयुक्त दाह एवं समस्त शरीर में जलन), रक्तार्श, भगन्दर आदि गुदा के भिन्न भिन्न रोग, पित्त प्रकोप, भ्रम, मूर्च्छा, राजयक्ष्मा, मूत्रकृच्छ्र, मुख शुष्कता तथा ऊपर कहे गये ध्वजभंग आदि रोगों में ग्रस्त होकर स्वयं दुःखाग्नि में जलते रहते हैं तथा अपनी भार्या को जन्म भर दुःख दिया करते हैं।

काम-भावना यदि तीव्र स्वरूप की न हो, तो विशेष भयङ्कर परिणाम नहीं होता, तथापि उसका कुछ न कुछ असर मस्तिष्क और वात-वहमण्डल पर होता ही है। उसमें विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका असर अन्तः स्रावक पिण्ड एवं उनसे उत्पन्न होने वाले स्रावों पर होता है। इस प्रकार कामवासना का दुष्परिणाम समस्त शरीर पर होता है तथा उपर्युक्त कथनानुसार कई प्रकार के भयङ्कर रोग होते हैं, तथा उसका अत्युद्रेक होने पर मृत्यु भी होती है।

अन्तःस्रावी पिंड या ग्रन्थियां, जैसे जत्रुस्थ पिण्ड@ थायमस (Thymus) कंठस्थ ग्रन्थी, वृक्कों के शिरोभाग की दो ग्रन्थियां, शीर्षस्थपिण्ड या पोषण ग्रन्थि (पिट्यूटरी बॉडी Pituitary body) मस्तिष्कावर्ति पिण्ड (पीनियल ग्ल्यांड्स Pinealglands) आदि विशेष महत्व की हैं।

उपर्युक्त अन्तःस्रावी ग्रन्थियां एवं काम-भावना का विशेष सम्बन्ध इस प्रकार है—इन ग्रन्थियों में शीर्षस्थ-पिण्ड विशेष महत्व का है। शरीर में धातुपोषक क्रम, शरीर की वृद्धि, विशेषता जननेन्द्रियों का विकास इसी ग्रन्थि के अन्तःस्राव पर अवलम्बित है। कंठस्थग्रन्थि (चुल्लिका ग्रन्थि Thyroid gland) का स्राव कामयन्त्र को सुव्यवस्थित रखता है। उपवृक्कों के स्राव का उपयुक्त परिणाम हृदय, यकृत, रक्तवाहिनियां, प्लीहा लालापिंड, आंत्र, नेत्रों का कनीनिका मण्डल (Iris) एवं जननेन्द्रियों पर

@थायमस—यह पिण्ड या ग्रन्थि छाती में उरोस्थि के पीछे होती है। बाल्यावस्था में यह बड़ी होती है, फिर धीरे-धीरे यह क्षीण होती है। इसका अन्तःस्राव शरीर की वृद्धि और पोषण का कार्य करता है। इसके द्वारा पुरुष शरीर में वृषण (अण्डकोष) और स्त्री शरीर में अन्तःफल ओदरी (Ovary) जैसा कि सुश्रुत का कथन है पुंसां पेश्यः पुरस्ताधाः प्रोक्ता लक्षण मुष्कजाः, स्त्रीणामावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गतं हिताः) इन दोनों का नियन्त्रण यथायोग्य होते रहता है। जिससे शरीर की संपूर्ण पुष्टि होती है।

शीर्षस्थ पिण्ड या पोषणग्रन्थि—यह मटर (कलाय) जैसी ग्रन्थि मस्तिष्क के अधोभाग में होती है। इसमें दो अन्तःस्रावी ग्रन्थियां संयुक्त होती हैं। इसका अन्तःस्राव अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का उद्दीपक होने से इसे मास्टर ग्ल्यांड (Master gland) भी कहते हैं।

पीनियल बाड़ी—ये मस्तिष्क गह्वर Ventricle के दोनों ओर कटहल बीज सदृश जो दो मस्तिष्क के वृहद् पश्चात गण्ड (Thalamus थैलेमस) हैं, उनका ही आगे को बढ़ा हुआ एक भाग है। इस पीनियल बाडी का अन्तः स्राव उक्त थायमस के सदृश ही शरीर पोषण का कार्य करता है।

होता है। शीर्षस्थ पिण्ड, कंठस्थपिंड और उपवृक्क तदनन्तर अण्डकोष इनके द्वारा ही पुरुष या स्त्री (स्त्री शरीर में अण्डकोष के स्थान में अन्तःफल या बीज कोष) शरीर में काम-यंत्र का नियन्त्रण या प्रणयन हुआ करता है। अण्डकोषान्तर्गत स्राव उक्त शीर्षस्थ एवं कंठस्थ पिंडों के अन्तःस्राव पर अवलम्बित है। इस प्रकार इनका पारस्परिक असर हुआ करता है। किन्तु शीर्षस्थपिंड के स्राव का परिणाम विशेषतः पुरुषों की जननेन्द्रिय पर अत्यधिक होता है। यह स्राव एक प्रकार का जीवन-रासायनिक द्रव्य है, जिससे शुक्र को पुष्टि मिलती है। यथायोग्य ब्रह्मचर्य के पालन से यही स्राव शरीर में कांति, ओज, मेधा, दृढ़ता और पुष्टि को बढ़ाते हुए पुरुष को वैर्यशाली बनाता है।

सारांश यह है कि कामयन्त्र की सुव्यवस्था के लिये अन्तःस्रावक पिण्डों का अन्तःस्राव और वात-वहमण्डल के प्रस्पन्दन, प्रेरण, उद्वाहनादि कार्यों की पारस्परिक सहायता आवश्यक होती है। कामयन्त्र का कार्य यदि नियम एवं संयमपूर्वक होवे तो विषयानन्द की पूर्णतया प्राप्ति होकर वह सार्थक होता है, अर्थात् सुयोग्य प्रजोत्पत्ति में कारणीभूत होता है। अन्यथा निरर्थक होकर अशक्ति को बढ़ाते हुए, उपर्युक्त कतिपय कष्टदायक रोगों का कारणीभूत होता है। इसका बड़ा भारी दुष्परिणाम हृदय पर भी होता है। हृदय की प्रस्पन्द क्रिया बढ़ जाती है, वह कमजोर होकर अकाल में ही क्रियाहीन हो जाता है, जिसे 'हार्टफेल कहते हैं।

रक्तचाप या ब्लडप्रेशर का विकार भी कामोद्रेक से होता देखा गया है, जिसके कारण कई प्रकार के हृद्रोगों की उत्पत्ति होती है। बद्धकोष्ठता का भी अप्रत्यक्ष कारण कामवासना कही जा सकती है। जो कि प्रायः पुरुषों में विशेष पाई जाती है और जिसके निवारणार्थ कई प्रकार के चटपटे चूर्ण एवं दस्तावर दवाइयां नित्य सेवन की जाती हैं। किन्तु 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की' वाली कहावत चरितार्थ होती है। मूल नाश न होने से बद्धकोष्ठता (कब्जी) जोर पकड़ती जाती है, एवं तज्जन्य कई रोगों का शिकार शरीर को होना पड़ता है! यद्यपि कामवासना का प्रत्यक्ष परिणाम बद्धकोष्ठता नहीं कहा जा सकता, तथापि उसका जो असर सहकारी वात-वहमण्डल एवं नाड़ी चक्रों पर होता है, वही बद्धकोष्ठता उत्पादक है। अतः कोष्ठबद्धता रक्तचाप आदि को दूर करने के लिये हमें संयम पूर्वक, कामवासना की तीव्र भावना को सर्वप्रथम दूर करना चाहिए। कामवासना को नियन्त्रण में रखने के लिये सदाचार, सत्संग की विशेष आवश्यकता है, तथा उष्ण उत्तेजक, रजोगुण और तमोगुण वर्धक आहार-विहार से बचने की भी परमावश्यकता है।

कामोद्रेक एवं अति स्त्री संभोग जन्य पूय प्रमेह या सोजाक पर एक सरल एवं सफल प्रयोग—

बिनौला (कपास के बीज) २ तोले महीन पीसकर उसमें श्वेत जीरा और सौंफ ३-३ माशे का महीन चूर्ण मिलादें, साथ ही तवाजीर या वंसलोचन भी ३ माशे मिला, एकत्र मिश्रण (यह एक मात्रा है) को खूब खरल कर उसमें १० तोले जल मिलाकर वस्त्र में छानकर पिलावें। इस प्रकार दिन में ३ बार पिलाने से शीघ्र ही लाभ होता है, किन्तु अपनी कामवासना एवं संभोगादि का पूर्ण नियंत्रण करना होगा। तेल, लाल मिर्च, गुड़, दही और खटाई से परहेज करना होगा।

ध्यान रहे, उक्त प्रयोग रोग की प्रारम्भिकावस्था में पूर्ण सफलीभूत होता है। इससे उपवृक्कों का विकृत स्राव ठीक रास्ते पर आ जाता है, हृदय कमजोर नहीं होने पाता, तथा दाह एवं पित्तप्रकोप भी नहीं होने पाता। खेद है कि इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में उपेक्षा की जाती है, जिसका परिणाम भयकर होता है। रोग-बीज त्वरित गति से वृद्धि को प्राप्त होकर भयंकर सूजन और दाह को उत्पन्न करता है। मूत्र मार्ग से अत्यन्त घना, पीले रङ्ग का, चिकना श्राव होता है। पेशाब करते समय असह्य वेदना तथा जलन होती है। शिश्न के पीछे अन्दर की ओर जो वस्ति ग्रैवेयकपिण्ड(Prostate glands)हैं, उनमें दाह होता है, जिसके कारण मूत्र में रुकावट होती है। अण्डकोषों में जो शुक्रधातु वाहक नाड़ियां हैं, उनमें भी दाह होता है। अतः उस समय बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। आगे यथा प्रसंग इस रोग के विषय में देखिये।

शुक्रतारल्य जन्य नपुंसकता की चिकित्सा—

शुक्रतारल्यदशा में स्तम्भक शक्ति नष्ट हो जाती है, स्त्री सहवास के अयोग्य होता है। नाड़ी शैथिल्यजन्य नपुंसकता

और शुक्रतारल्य जन्य नपुंसकता में भेद यह है कि वात-नाड़ी शैथिल्य से हुई नपुंसकता में औषधि रूप में उत्तेजक वस्तु देने से तथा तिला आदि के प्रयोगों से लाभ होता है, किन्तु शुक्रतारल्य सम्बन्धी नपुंसकता की दशा में उत्तेजक औषधियां लाभ के स्थान में हानि पहुंचाती हैं। शुक्रस्राव और भी अधिक प्रमाण में होने लग जाता है। रोगी शीघ्र ही लाभ होने की आशा से बाजारू, उत्तेजक एवं कृत्रिम स्तम्भक औषधियों का सेवन कर अपनी दशा को और भी भयंकर बना डालता है।

रोगी को प्रथम समझा देना चाहिए कि वह अपने मन को कामवासना से हटा कर श्रेष्ठ धार्मिक तथा किसी अन्य सद्विचारों में लगाता रहे। मन को संयम में रखने का प्रयत्न करे। ऐसा करते रहने से प्रजननेन्द्रियों को आवश्यक विश्राम की प्राप्ति होगी, वीर्याण्ड पुष्ट होंगे। तरलता दूर होगी, स्वप्नदोष नहीं होने पावेगा। उक्त मानसिक संयम के साथ ही साथ रात्रि को शयन के पूर्व ही मलमूत्र का विसर्जन अवश्य कर लिया करें। कब्जी या विबन्ध हो तो कोई मृदु सारक औषधि, शुद्ध रेंडी का तैल आदि बीच-बीच में ले लिया करें। नर्म और गर्म गद्दों पर शयन न करें। शयन के समय कोई उत्तम शांति-दायक ईश प्रार्थना करें या अपने इष्ट देवता का ध्यान करें।

औषधि योजना ऐसी करनी चाहिए जो शुक्राङ्गों की जननेन्द्रियों को उत्तेजित न करे, उन्हें पुष्टि पहुँचावे। तथा मानसिक दुर्बलता को दूर करे—एतदर्थ, प्रथम कुछ दिनों तक रोगी को उत्तम वंगभस्म मात्रा २ रत्ती और अकीक भस्म मात्रा १ रत्ती का मिश्रण (यह १ मात्रा हुई) प्रातः मक्खन के साथ और सायंकाल शहद के साथ सेवन कराने से औषधि के शीतल प्रभाव से उत्तेजना धीरे-धीरे कम हो जाती है। वीर्य पुष्ट होता है। शरीर में फुर्ती, मन में स्फूर्ति, उत्साह और शान्ति प्राप्त होती है। इसमें अकीकभस्म हृदय को सबल बनाती है, जिसमें पुनः-पुनः पैदा होने वाली विषयकामना को रोकने की शक्ति उत्पन्न होती है। उक्त प्रयोग कम से कम ७ या ११ दिन सेवन कराने के पश्चात्, उक्त प्रयोग में ही चांदी की भस्म (हरताल जारित) एक रत्ती मिलाकर सेवन कराये जाने से मानसिक शैथिल्य, हर समय अपने विकार की ही चिन्ता करते रहना आदि दूर होता है। कुछ दिनों लगभग ७ दिन के बाद रोगी को चन्द्रप्रभावटी और चांदी-भस्म का मिश्रण सेवन कराने से परिपूर्ण स्तम्भक शक्ति प्रकट होती है। यदि और भी शक्ति की आवश्यकता प्रतीत हो तो— [illegible]

स्वर्ण वङ्ग १ रत्ती, त्रिवङ्ग २ रत्ती और शतावर्यादि चूर्ण (शतावर, गोखरू, कौंच के बीज, नागवला या गंगेरन की जड़, अतिवला या कंघी की जड़ और तालमखाना समभाग का चूर्ण) ३ माशे एकत्र मिला, शहद के साथ सेवन कराने से यथेष्ट लाभ होता है। साथ ही साथ चन्द्रकला रस या चन्द्रप्रभावटी का भी सेवन कराया जा सकता है।

शुक्र की क्षीणावस्था—शुक्र या वीर्य की क्षीणता पर-पुरुष में शरीर दौर्बल्य, मुख का सूखना, शरीर का पीला पड़ जाना, अंगों में शैथिल्य, अनायास श्रम या थकावट, नपुन्सकता, मैथुन में अशक्ति, स्त्रीसंग में बड़ी देर से वीर्य का स्खलन होना या वीर्य स्खलन न होकर बड़ी देर के बाद लिंगेन्द्रिय से रक्त सहवीर्य का स्खलन होना, लिंग में धुंवे जैसी प्रतीत अर्थात् दाह होना, अण्डकोष में टोंचने की सी पीड़ा, अग्निमांद्य, आंखों के सामने अंधियारी आना आदि लक्षण होते हैं। कहा है—

दौर्बल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदनं श्रमः।
क्लैब्यं शुक्राविसर्गश्च क्षीणशुक्रस्य लक्षणम्॥

—च० सू० अ० १७

तथाच—शुक्रक्षये मेढ्र वृषण वेदनाऽशक्तिर्मैथुने।
चिराद् वा प्रसेकः प्रसेके चाल्परक्तशुक्रदर्शनम्॥

—सु० सू० अ० १५

और देखो अष्टांगसंग्रह सूत्रस्थान अध्याय १९ में।

भाव यह है कि—अतिकामातुर होकर स्त्रियों में अति प्रसक्ति से, शनैः-शनैः शुक्र क्षीण हो जाता है। ऐसा होने पर भी यदि पुरुष मैथुन से निवृत्त नहीं होता तो शुक्र की परिपूर्ण समाप्ति होजाने से (शरीर में शुक्र का प्रमाण अपने हाथ की अर्धाञ्जलि होता है) नपुंसकता अथवा राजयक्ष्मा की उत्पत्ति होती है।

शुक्र के समाप्त होजाने पर मैथुन करने से वात का प्रकोप होकर शिश्न और अण्डकोष में वेदनायुक्त रक्त का स्राव होने लग जाता है। फिर [illegible] और

अति प्रवृति के कारण सन्धिशैथिल्य, मुखशोष, रूक्षता, दुर्बलता आदि को बढ़ाते हुए वात, कफ और पित्त को तथा शरीर की समस्त क्रियाओं को विकृत कर पार्श्वशूल, कन्धों में दर्द, गला बैठना (कंठोद्ध्वंस) सिर में भारीपन, सन्धिवेदना, अङ्गमर्द, अरुचि, अजीर्ण, ज्वर, कास, श्वास, एवं प्रतिश्याय आदि लक्षणोंयुक्त यक्ष्मा को पैदा कर देता है। इसमें कभी-कभी कास के अति वेग से फुफ्फुसों की सूक्ष्म रक्तवाहनियां फट जाने से रक्तष्ठीवन (मुख से खकार में रक्त आना) होने लगता है, जिससे दुर्बलता की असीम वृद्धि होकर, इस प्रतिलोम क्षय का भयङ्कर दुष्परिणाम अर्थात् मृत्यु की प्राप्ति होती है जैसा कि कहा है—

"अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तरम्।
क्षीयन्ते धातवः सर्वेततःशुष्यति मानवः॥

अनुलोम क्षय में प्रथम रस धातु की विकृति या क्षीणता होकर क्रमशः रक्तादि धातु तथा विशेषतः शुक्र क्षीणता को प्राप्त होते हैं। इसमें भी यथायोग्य उपचार के अभाव से अन्त में यक्ष्मा की ❀प्राप्ति होकर मृत्यु होती है। अतः आरोग्य के लिये शुक्र की सदैव रक्षा करते रहना चाहिए। कहा है—

रसः प्रधानधातुर्हि क्षीयेताशुततो नृणाम्।
रक्तादयश्च क्षीयन्ते धातवस्तस्य देहिनः॥
शुक्रावसानास्तेभ्योऽपि शुक्रं धाम परं मतम्।
चेतसोवाऽतिहर्षेण व्यवायं सेवतेऽति यः॥
तस्याशु क्षीयते शुक्रं ततः प्राप्नोति संक्षयम्।
घोरं व्याधिमवाप्नोति मरणं वा स गच्छति॥
शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्ष्यमारोग्यमिच्छता॥
—चा. चि. अ. ३०.

शुक्र क्षीणता के कारणों को दर्शाते हुए चरक जी का कथन है कि जरा (बुढ़ापा), चिन्ता, रोग, पंचकर्म अथवा अन्य कर्मों (अत्यन्त परिश्रम आदि) से उत्पन्न शारीरिक क्षीणता, अनशन (उपवास) तथा अत्यन्त स्त्री संभोग से शुक्र क्षीण हो जाता है। यथा—

जरया चिन्तया शुक्रं व्याधिभिःकर्मकर्षणात्।
क्षयं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणां चाति निषेवणात॥
—च० चि० अ० २

शुक्रक्षीणता की दशा में रोगी की इच्छा शुक्रवर्धक पदार्थों की, तथा जो आमषभोजी हैं उनकी इच्छा मोर, मुर्गी, हंस, सारस आदि ग्राम्य और अनूप देश के रहने वाले एवं जलाशय के किनारे रहने वाले पक्षियों के अण्डों के सेवन की होती है। †

शुक्रक्षय का उपचार—शुक्र की वृद्धि के लिये भी समान, समानगुण या समान गुणभूयिष्ट द्रव्यों का सेवन हितकर है। इनमें भी समान द्रव्य अर्थात् स्वयं शुक्र का सेवन सर्वोत्तम उपाय है। वृष्य अर्थात् शुक्रवर्धक (समान) द्रव्यों में नक्र या घड़ियाल का शुक्र सर्वश्रेष्ठ माना गया है। किन्तु नक्र आदि (चरक,हंस, मुर्गा, मोर, शिशुमार, केकड़ा, भैंसा, सांड, बकरा)का शुक्र दुष्प्राप्य होनेसे उनके अण्डे ग्रहण करें। भैंसा, सांड आदि चौपायों के अण्डकोष ग्रहण करे। ‡ इनके प्रयोग देखिये चरक चि. अ. २ में। यूनानी वैद्यक में जो जुंदबेदस्तर, जदवा आदि द्रव्य हैं तथा जिनका प्रयोग नपुंसकता में किया जाता है, वे सब प्राणि विशेष के शुक्र ही हैं। पाश्चात्य चिकित्सक अण्डकोष के सत्वों का इंजेक्शन देते हैं।

जैसा कि हम पहले कह आये हैं, यदि उक्त वीर्य

❀ पाश्चात्य वैद्यक शुक्र क्षीणता को राजयक्ष्मा का हेतु नहीं मानता। वह तो टी. बी. नामक जन्तु विशेष के पीछे ही डंडा लिए फिरता है। और तदनुसार यक्ष्मा के निवारणार्थ शुद्ध वायु,उचित विश्राम और सुपाच्य पौष्टिक आहार प्रणाली पर ही विशेष जोर देता है। किन्तु देखा जाता है कि यह सब होते हुए भी इस मूंजी रोग से रोगी का पिण्ड शीघ्र या चिरस्थायी रूप से नहीं छूटता। अतः आयुर्वेदानुसार शुक्रक्षीणता को यक्ष्मा का कारण मानते हुए, तदनुसार यथायोग्य चिकित्सा करने से लाभ चिरस्थायी और उत्तम होता है।

† मयूरकुक्कुटाण्डानि हंस सारसयोस्तथा। ग्राम्यानूपौदकानां च शुक्र क्षीणोऽभिकांक्षति। —डल्हाणचार्य (सुश्रुत)
—सु० सू० अ० १५

‡ तत्रापि (शुक्रक्षये) स्वयोनिवर्धन द्रव्योपयोगः (प्रतीकारः)
तथा—शुक्रं शुक्रेण (आप्याय्यते भूयस्तरम्) —च० शा० अ० ६
नक्ररेतो वृष्याणां (श्रेष्ठम) —च० सू० अ० २५

अण्डे आदि द्रव्यों का सेवन करना या कराना अभीष्ट न हो तो उनके स्थान में सशून गुण या समानगुण भूयिष्ट द्रव्यों का सेवन कराना चाहिये। प्रस्तुत क्षय के प्रसंग में दूध और घृत का उपयोग करना चाहिए तथा शतावरी, मुसली आदि मधुर, पिच्छिल, अविदाही, स्निग्ध, शीतल आदि गुणयुक्त (शुक्र के ही समान गुणयुक्त) द्रव्यों का सेवन करावें ×। यहां दूध और घृत की गणना शुक्र के समान गुण द्रव्यों में की जा सकती है, क्योंकि तुल्यगुण होने से वे शीघ्र ही शुक्र की उत्पत्ति करते हैं। इसीसे कहा है कि-"सद्यः शुक्रकरं पयः।" और शतावरी, मूसली, विदारीकन्द, अश्वगन्धा, वाराहीकन्द आदि शुक्र के समान गुण भूयिष्ठ वृष्य द्रव्य हैं + जो विशेष शुक्रवर्धक हैं। इस प्रसंग में चरक चिकित्सा स्थान अध्याय २ में कहे गये वाजीकरण प्रयोग जैसे-बृंहणी गुड़िका, वाजीकरण घृत, षष्टिकादिगुडिका, वृष्यक्षीरम्, वृष्यघृतम्, दधिसरप्रयोग, वृष्यपूपालिका, शतावरीघृत, वृष्यगुटिका, आदि का सेवन अपनी प्रकृति अनुसार करना चाहिये।

शुक्रक्षय एवं तज्जन्य विकारों पर कुछ सिद्ध साधित प्रयोग—

चूर्णों में-मधुयष्ट्यादि चूर्ण—मुलैठी, वंसलोचन, आमला, गोखरू और कोंच के बीज इनके समभाग महीन चूर्ण में बंगभस्म और अभ्रक भस्म (चूर्ण का चतुर्थांश भाग) मिला, सबको एकत्र खरल कर आमले के रस की भावना देकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा—१ माशा तक गोदुग्ध के साथ प्रातः-सायं सेवन करें। (भा० भै० र०) इससे वीर्य वृद्धि और नपुन्सकता दूर होती है। अथवा—

चोपचिन्यादि चूर्ण—चोपचीनी १६ तोला, मिश्री ४ तोला, पीपल, पिपलामूल, मिर्च, लौंग, अकरकरा, खुरासानी अजवायन, सोंठ, वायविडंग और दालचीनी १-१ तोला लेकर महीन चूर्ण बनालें। मात्रा—३ से ६ माशे तक, घृत और शहद के साथ अथवा निवाये जल के साथ सेवन करने से वीर्य की शुद्धि, क्षीणता, उपदंश, सुजाक आदि विकार नष्ट होते हैं। (आ. मिषक)

वृद्धखण्ड चूर्ण—श्वेत मूसली, गिलोयसत्व, कौंच के बीज, गोखरू, सेमलमूल की छाल और आमला समभाग चूर्ण कर सबके बराबर मिश्री मिलाकर रक्खें। मात्रा—१ तोला तक प्रातः-सायं दूध के साथ सेवन करने से धातु-क्षीणता, स्वप्नदोष, वातज प्रमेह आदि शीघ्र दूर होते हैं। (र० तं० सार)

अश्वगन्धादि चूर्ण—असगन्ध, विधारा, आंवला, गोखरू, गिलोय का समभाग महीन चूर्ण कर, शतावरी स्वरस की ३ भावनायें देकर शुष्क कर समभाग मिश्री मिला सुरक्षित रक्खें। (अ० हृ०) मात्रा—१ तोला तक शहद और घृत में मिला सेवन करें और ऊपर से गोदुग्ध पीवें। १ वर्ष पर्यन्त इसका सेवन करते रहने से पूर्ण लाभ होता है।

चूर्ण रत्नम्—शतावर, विदारीकन्द, गोखरू, तालमखाना, खरेंटी के बीज (बीजबन्द) तथा कंघी की जड़ समभाग महीन चूर्ण कर उसमें समभाग अभ्रकभस्म तथा सबसे दो गुनी मिश्री मिला सुरक्षित रक्खें। दक्षिण देशवासी वैद्यगण इसमें अभ्रक से चौथाई पारद और गन्धक की कज्जली भी मिलाते हैं। यह अत्यन्त वृष्य और रसायन है। मात्रा—१ माशा तक प्रातः-सायं दुग्ध के साथ लेवें। यह रसेन्द्र चिन्तामणि का श्रेष्ठ प्रयोग है।

मदन प्रकाश चूर्ण—तालमखाना, मूसली, विदारीकन्द, सोंठ, सेंमल के फूल, बीजबन्द (खरेंटी के बीज), शतावर, मोचरस, गोखरू, जायफल, उड़द की दाल (घी में भुनी हुई), भांग और वंसलोचन एक-एक भाग तथा शक्कर सबके बराबर चूर्ण बनाकर रक्खें। मात्रा—६ माशे तक दूध के साथ नित्य रात्रि के समय सेवन करते रहने से बल और वीर्य की वृद्धि होती है। प्रमेह का नाश होता है। संभोगशक्ति खूब बढ़ती है। (भा. भै. र.)

× तस्य ये समानगुणाः स्युराहार विकारा असेव्यास्च, तत्र समानगुण भूयिष्ठानामन्यप्रकृतीनामप्यहारा विकाराणामुपयोगःस्यात्; तद्यथा—शुक्रक्षये क्षीरसर्पिषोरुपयोगः मधुरस्निग्ध समाख्यातानां चापरेषामेव द्रव्याणाम् ॥ —च० शा० अ० ६

+ वृष्यद्रव्य-जो कोई भी द्रव्य मधुर, स्निग्ध, जीवन (Vitality) दाता, बृंहण, गुरु और मन में हर्ष उत्पन्न करने वाला है, वह वृष्य कहाता है। जैसा कि कहा है—

'यत्किंचिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु। हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्वृष्यमुच्यते ॥ —च० चि० अ० २

तालीसाद्य चूर्ण—तालीसपत्र, त्रिकटु, पीपलामूल, छोटी इलायची, दालचीनी, जायफल, कमलनाल, वंशलोचन और मोथे का चूर्ण १-१ भाग तथा मिश्री का चूर्ण ३-३ भाग लेकर सबको एकत्र खरल कर रक्खें। मात्रा—६ माशे तक, प्रातः-सायं शहद के साथ सेवन करने से शुक्रक्षीणताजन्य क्षय, कास, श्वास, रक्तपित्त, हाथ-पैरों की दाह आदि दूर होते हैं। बीच-बीच में सितोपलादि चूर्ण का भी सेवन रोगी को कराते रहने से विशेष लाभ होता है।

गुटिकाओं और रसों में—वृष्यवटी—मल्लभस्म १ रत्ती, अफीम ६ माशे, जुन्दे वेदस्तर २ माशे, अम्बर १ रत्ती और असली केशर ८ माशा एकत्र मिला गोदुग्ध में ६ घण्टे खरल कर ½-½ रत्ती की गोलियां बनावें। ऊपर स्वर्ण वर्क लगावें, अथवा १ माशा स्वर्णभस्म मिला देने से विशेष लाभ होता है। मात्रा—१ से २ गोली प्रातः दूध के साथ सेवन करने से नपुंसकता यथाशीघ्र नष्ट होती है, एवं शक्ति बढ़ती है।

—र० त० सार

वटपत्र गुटिका—वरगद (बड़) के पत्र जो वृक्ष में ही पककर पीले हो गए हों, तोड़कर एक बड़े मटके के भीतर दबा-दबा कर भरें। फिर उसमें इतना पानी डालें कि वह मटका पानी से भर जावे। मटका ऐसा हो जिसमें पहले दो-चार दिन पानी भरा गया हो, आठ प्रहर के पश्चात् वे सब पत्ते और पानी मटके से निकाल कर एक बड़े कड़ाहे में डाल दें और नीचे मन्द अग्नि जलावें। जब आधा पानी शेष रहे, उतार कर किंचित शीतल होने पर उसको खूब मलें, यहां तक कि सब रस निकल आवे। फिर छान लें। इस छाने हुये पानी को मन्दाग्नि पर पकावें। जब मधु के समान गाढ़ा हो जाय तो उतार कर निम्नलिखित औषधियां (यदि उक्त घन क्वाथ १० तोले हो तो निम्न प्रमाण में) डालकर तथा खूब खरल कर चना जैसी गोलियां बना रक्खें। वंगभस्म नं. १ एक तोला, इमली की गिरी का महीन चूर्ण २ तोला, प्रवाल भस्म १ तोला और बबूल की फली का चूर्ण जिनमें बीज न पड़े हों १॥ तोला।

मात्रा—१-१ गोली प्रातः-सायं, यदि प्रकृति गरम है तो ईसबगोल की भूसी २ माशे में, १ गोली रखकर शर्बत नीलोफर के साथ सेवन करें। यदि प्रकृति वातज, या कफज या वातकफज है तो लौंग, केशर, जायफल, जावित्री, तज और दालचीनी समभाग के चूर्ण ४ रत्ती के साथ १ गोली थोड़ी मलाई में रखकर सेवन करें। यदि रूक्षता करे तो चूर्ण की मात्रा और भी न्यून कर देवें।

वंगभस्म नं० १ की विधि—अच्छी प्रकार से शुद्ध की गयी कलई। कलई को बार-बार पिघलाकर २१-२१ बार तिल, तेल, छाछ, त्रिफला क्वाथ, कांजी और लहसुन के काढ़े में बुझावें। इस प्रकार बुझाने पर ६ सेर कलई यदि हो तो वह अन्त में २॥ सेर तक रह जाती है। फिर उसे पतला कर तथा नख के समान टुकड़े करलो। फिर बड़ा उपला (कण्डा) लेकर उसमें गड्ढा खोदकर, प्रथम पलाश की राख बिछावें, फिर अजवायन रखें और टुकड़े पृथक-पृथक रखकर ऊपर अजवायन डाल दें। ढाक की राख से बन्द कर ऊपर से दूसरा उपला देकर इतस्तता ८-१० सेर उपले लगाकर अग्नि लगादें। यदि अधिक भस्म करनी हो तो साथ ही साथ इसी प्रकार के उपले बनाकर, जितने चाहें रख सकते हैं। अग्नि लगादें और शीतल होने पर वंगभस्म की फुटकियां चुन लें।

उक्त धातुक्षीणता और शुक्रमेह का अचूक प्रयोग श्री वैद्यभूषण पं० ठाकुर दत्त जी शर्मा का है।

मदनकान्ता गुटिका—रस सिंदूर ४ तोला, स्वर्णवर्क १ तोला, चांदी वर्क २ तोला और शुद्ध वच्छनाग का महीन चूर्ण १ तोला, इनको एकत्र खूब खरल कर, उसमें कपूर, मीठाकूठ २-२ तोला, अफीम, जायफल, लौंग, पीपल, अकरकरा, जावित्री, अगर, दालचीनी, श्वेतमूसली, कौंच-बीज और गिलोय सत्व १-१ तोला का चूर्ण मिला खरल करें। फिर शुद्ध शिलाजीत २ तोले को धतूरे के रस में मिलाकर डालें और १२ घण्टे तक धतूरे रस में खरल कर, दूसरे दिन अदरख के रस में खरल करें। तीसरे दिन केशर १ तोला अम्बर और कस्तूरी ६-६ माशे मिलाकर पके हुए नागरवेल के पान के रस के साथ ६ घण्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना रक्खें। मात्रा—१-१ गोली मिश्री मिले हुए दूध के साथ सेवन करने से अत्यन्त बल-वीर्य की वृद्धि होती है।

—आ० निबन्धमाला

ध्यान रहे ऊपर या नीचे दिए गए किसी भी प्रयोग

के सेवन काल में लाल मिर्च, खटाई, तेल, गुड़, दही आदि अपथ्य कर पदार्थों का सेवन तथा स्त्री संभोग एकदम बन्द कर देना चाहिए। उक्त मदनकान्ता गुटिका को अनुपान भेद से क्षय, कास, श्वास, अग्निमांद्य, जीर्णज्वर, प्रतिश्याय, जीर्ण वातरोग, धनुर्वात, अर्धाङ्ग वात, हिस्टीरिया, बहुमूत्र, मधुमेह आदि रोगों पर सफलतापूर्वक दे सकते हैं।

पञ्चामृत रस नं० १—जायफल, जावित्री, लौंग, केशर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, त्रिकटु, चित्रक, पीपलामूल, शतावर और वंशलोचन का महीन चूर्ण ४-४ तोला तथा लोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, रस सिंदूर और नागभस्म ५-५ तोला लेकर सबको एकत्र मिला पान के रस में अथवा शहद में खरल कर २ या ४ रत्ती की गोलियां बना लें। इसे यथोचित मात्रानुसार दूध के साथ सेवन करें। यह धातुवर्धक, अग्निवर्धक तथा कफ रोगों का नाशक है। (वंगसेन)

लघु चन्द्रोदय रस—जायफल, लौंग, कपूर और कालीमिर्च का चूर्ण १-१ तोला, स्वर्ण भस्म और कस्तूरी १-१ माशा तथा रस सिन्दूर सबके बराबर लेकर, एकत्र पान के रस में खरल कर २ या ४ रत्ती की गोलियां बना लें। इसे मिश्रीयुक्त दुग्ध के साथ सेवन करें। यथेष्ठ लाभ होता है। (भा. भै. रत्नाकर)

शिलाजतु योग †—शुद्ध शिलाजीत, वायविडंग, हरड़, तथा लोह भस्म, रससिन्दूर और स्वर्ण माक्षिक भस्म समभाग लेकर एकत्र खरल कर चूर्ण या गुटिका ४-४ रत्ती की बनालें। शहद और घृत के साथ सेवन करने से दुर्बल देह और क्षीण-धातु व्यक्ति का शरीर पुष्ट हो जाता है। (योग चिंतामणि)

पंचामृत रस नं. २—रससिन्दूर, अभ्रकभस्म और लोहभस्म १-१ भाग, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध वच्छनाग, गिलोय और त्रिफला क्वाथ से सिद्ध किया गुग्गल ३-३ भाग लेकर सबको एकत्र शहद के स[ाथ] खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना रखें। १-१ गोली, वनतुलसी का रस और दूध के साथ वासावलेह या बकरी के दूध के साथ या कालीमिर्च घृत के साथ या पीपल चूर्ण और शहद के साथ सेवन कराने से शुक्रक्षयजन्य राजयक्ष्मा को शीघ्र, शुक्र स्र[ाव] को दूर करता है। स्त्रियों के प्रदरजन्य क्षय को भी दूर करता है। यह उक्त पंचामृत रस नं. १ की [अपेक्षा] उत्तम है। यह योग रत्न समुच्चय ग्रन्थ का है। [इसके] विषय में औषधि गुण धर्म शास्त्र में कहा गया है [कि] इस रस के सेवन से राजयक्ष्मा के ज्वर आदि [सब] लक्षणों का निवारण होता है। इसका उपयोग कीट[ाणु] जन्य क्षय में ज्वर वेग तीव्र होने पर किया जाता है किन्तु क्षय की प्रथमावस्था में जब ज्वर अधिक न हो, इस तीव्र रस का प्रयोग न किया जाय तो अच्छा है। प्रथमावस्था में अभ्रकभस्म, शृंगभस्म प्रवाल पिष्[टी] और गिलोय सत्व का मिश्रण देना विशेष हितकारी हो[ता] है। जब द्वितीय या तृतीयावस्था में ज्वर का वेग तीव्र [हो] जाता है। तब आवश्यकतानुसार इस का प्रयोग करना चाहिए। क्षय की दशा में सब धातु क्षीण होकर, शरी[र] बल मांस विहीन सा हो जाय, रोगी ज्वर से ग्रस्त र[हे] तथा कफ अधिक मात्रा में निकले, तो इस रस का सेव[न] विशेष लाभप्रद होता है। संक्षेप में यह रस धातुओं क[ी] क्षीणता को दूर करता है। धातुओं की साम्यवस्[था] स्थापित करने वाला ज्वघ्न, क्षयघ्न, बल्य, रसायन, औ[र] प्रमेह आदि का विनाशक है।

काम चूड़ामणिरस—मुक्ता पिष्टी, स्वर्णमाक्षि[क] भस्म, स्वर्णभस्म, भीमसेनी कपूर, जावित्री, जायफ[ल] लौंग, वंगभस्म और रजत भस्म ये ९ औषधियां २-[२]

---

† मांस धातु की क्षीणावस्था में यह योग हम पीछे दे आये हैं। शुक्र धातु की क्षीणावस्था में यह विशेष हितकारी होने से पुनः इसका उल्लेख यहां किया गया है। इस योग में शिलाजीत सूर्यतापी लेना चाहिए। शिलाजीत के पत्थरों का महीन चूर्ण कर, उसमें तौल से द्विगुणित मात्रा में अत्युष्ण स्वच्छ जल मिला, तथा खूब हिलाकर ३ घंटे रक्खा रहने दें। फिर ऊपर के मलाईयुक्त द्रव को निथारलें, तथा दूसरे स्वच्छ पात्र में धूप में रख दें इसपर जो मलाई जमे उसे चम्मच से दूसरे पात्र में लेकर उसमें पुनः दुगनी मात्रा में उष्णजल मिला धूप में रख दें। इस पर जो मलाई एकत्र हो उसमें पुनः दुगना उष्ण जल मिला, धूप में रक्खें। इस प्रकार तीसरी बार की निकाली गयी मलाई को कांच पात्र में सुरक्षित रक्खें। यह शिलाजीत बहुत ही गुणकारी है।

तोले तथा चातुर्जात (दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के दाने और असली नागकेशर) का चूर्ण ६ तोले लेकर सबको एकत्र शतावरी के रस में ७ दिन तक खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। (र. यो. सा.)

मात्रा—१ से २ गोली प्रातः सायं धारोष्णदुग्ध या मिश्री मिले दूध या रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन करें।

यह रस शीतवीर्य, पौष्टिक और कामोत्तेजक है। जिन्होंने अत्यधिक स्त्री समागम से या अन्य रीति से अपने शुक्र को नष्ट कर दिया हो, उनके लिए अमृतरूप लाभदायक है। पित्त प्रधान प्रकृति वाले गांजा और शराब के व्यसनी तथा मिर्च आदि मसाले खाने वालों को इसका सेवन वीर्यवर्धक रूप से कराया जाता है। इसमें सब औषधियां शामक हैं, केवल कपूर ही एक उत्तेजक औषधि इसमें है। अतः यह वीर्य को गाढ़ा और शीतल बनाता है, शुक्राशय की वातवाहिनियों को दृढ़ बनाता है, तथा मस्तिष्कस्थ केन्द्र पर शामक असर पहुँचा कर क्षण-क्षण में उत्पन्न होने वाली मानसिक उत्तेजना को शान्त करता है। अतः क्षीणवीर्य तथा उष्ण और पतले वीर्य वाले मनुष्यों के लिए यह अति हितकर है। ऐसी दशा में यह बसंतकुसुमाकर से भी श्रेष्ठ लाभदायक है। ऐसे रोगियों को बसंत कुसुमाकर देने पर भी उत्तेजना आकर हानि पहुँचती है, अतः उन्हें इस रस का सेवन धैर्यपूर्वक कराया जाता है।

स्त्री समागम के अतियोग से शुक्रक्षय होने पर नवयुवकों के मुख मण्डल निस्तेज या उदासीन हो जाते हैं। नेत्र गढ़े में धुस गये हों, ऐसे भासते हैं, किसी भी कार्य के लिए उत्साह नहीं रहता। देह पांडुवर्ण की शुष्क और कृश, चक्कर आना, वातप्रकोप, हृदयस्पन्दन की वृद्धि, अग्निमांद्य, मलावरोध, आलस्य, निद्रा की वृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनको यह रसायन धारोष्ण दूध के साथ देने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

हस्तमैथुन आदि कृत्रिम उपायों का आश्रय दीर्घकाल तक लेने से कई युवकों को नपुंसकता आ जाती है। फिर उदासीनता, निस्तेज वदन, स्मरणशक्ति का ह्रास, कभी उन्माद जैसी अवस्था उपस्थित होना, किसी-किसी को वात प्रकोप के झटके आना, किसी को शुक्रनाश-जनितक्षय रोग की सम्प्राप्ति होना आदि लक्षण या प्रकार उत्पन्न होते हैं। उन रोगियों को यह रस अमृतप्राश, च्यवनप्राशावलेह या शतावर्यादि घृत के साथ दिया जाय और आग्रहपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन कराया जाय तो मस्तिष्क वातसंस्थान, शुक्राशय और हृदय की स्थिति सुधर जाती है। स्थानिक हानि (ध्वजभंग आदि) को दूर करने के लिए आवश्यकतानुसार स्थानिक प्रयोग रूप से श्री गोपाल तैल या तिला आदि का उपयोग कराया जाता है।

अति व्यवायी युवकों को शुक्रक्षय होने पर भी स्त्री संभोग की इच्छा प्रबल होती जाती है, स्त्री समागम काल में, अधिक परिश्रम होने पर वीर्य के स्थान पर गरम गरम रक्त थोड़े परिमाण में निकलता है। उस समय मूत्रप्रसेकनलिका में जलन होती है। ये शुक्रक्षीण की पराकाष्ठा के लक्षण हैं। ये विकार विशेषतः शराबी मनुष्यों के होते हैं। वे सर्वदा शराब के नशे में मस्त रहते हैं। कुछ वर्षों बाद क्षय रोग से ग्रस्त होकर अकाल मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। ऐसे रोगियों को क्षयरोग की प्राप्ति होने के पूर्व ही या क्षय की प्रथमावस्था में, इस रस का सेवन कराने से वे बच जाते हैं।

युवावस्था में अति स्त्री सहवास होने पर वृद्धावस्था में मूत्रसंस्थान शिथिल हो जाती है। वृक्क निर्बल होने से मूत्रोत्पत्ति योग्य नहीं होती, तथा वस्ति निर्बल होजाने से पेशाब की धारणा नहीं होती। बार-बार पेशाब करना पड़ता है। तथा वात प्रधान लक्षण प्रकाशित होते हैं। ऐसी दशा में इस रस को शतावर्यादि चूर्ण के साथ सेवन कराया जाता है।

यह रसायन स्त्रियों के लिए भी अति हितकारक है। जिस तरह पुरुषों के शुक्र को शुद्ध, शीतल, सबल और गाढ़ा बनाता है, उसी तरह स्त्रियों के रज को भी शुद्ध और सबल बनाता है। पुरुषों के शुक्राशय और शुक्र के समान स्त्रियों के बीजाशय और रज पर भी लाभ पहुंचाता है। कई युवतियों को युवावस्था आने पर भी देह कृश होने से बीजाशय का योग्य विकास नहीं होता। फिर मासिकधर्म नहीं आता। उनको यदि उष्ण उत्तेजक औषधि देकर मासिक धर्म प्रारम्भ कराया जाय तो कुछ वर्षों के पश्चात् युवावस्था में ही वृद्धा बन जाती हैं। इसके विपरीत कामचूड़ामणि रस + प्रवालपिष्टी + अमृतासत्व + सितोपलादि

चूर्ण के मिश्रण का सेवन कराया जाय, तो देह सबल बनती है तथा बीजाशय, गर्भाशय, स्तन आदि अवयवों का योग्य विकास होता है और मासिकधर्म आने लगता है।

सुजाक आदि विकार होजाने पर व्याधि-विष रक्त आदि धातुओं में लीन रहता है, जिससे रक्त अशुद्ध रहता है, वीर्य पतला और उष्ण रहता है, तथा रोग-निरोधक शक्ति निर्बल रहती है। फिर बार-बार विविध प्रकार के विकार ज्वर, अग्निमांद्य, व्रण विद्रधि, दृष्टिमांद्य, शोथ, बहुमूत्र आदि उत्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में इस रस को अमृता-सत्व, मिश्री और दूध के साथ या सारिवाद्यरिष्ट के साथ २-४ मास तक सेवन कराया जाय तो रक्तप्रसादन होकर रोग शमन हो जाता है। एवं फिरंग और पूयमेह हो जाने के बाद पुरुषों के अण्डकोष या स्त्रियों के बीजाशय की समीपस्थ वाहिनियां वात और केशिकायें संकुचित होकर नपुन्सकता आई हो तो वह भी इसके सेवन से दूर हो जाती है। (रसतंत्रसार से साभार)

(१६) **रसराज रस नं० १**—मोतीभस्म, प्रवालभस्म, रस सिन्दूर (पारदभस्म), स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, इन ८ औषधियों को समभाग एकत्र मिला गिलोय और शतावर रस की ७-७ भावनायें देकर १-१रत्ती की गोलियां बनालें। यह प्रयोग योगरत्नाकर आदि कई ग्रन्थों में है। किसी-किसी ग्रन्थ में चांदी भस्म के स्थान में मैनसिल लिया गया है, जो कि प्रस्तुत प्रसङ्ग में ठीक नहीं है। प्रातःसायं इसकी १-१ गोली शहद, घृत और श्वेत काली मिर्च के चूर्ण के साथ, अथवा अडूसे का रस(वासा स्वरस) और शहद के साथ या बकरी के दूध के साथ सेवन करने से शुक्र क्षयजन्य सर्वविकार दूर होते हैं। इसके साथ अनुपान में शृंगभस्म, गोदन्ती भस्म और मुलैठी का चूर्ण मिला देने से और भी विशेष लाभ होता है।

क्षय की दूसरी या तीसरी अवस्था में यदि उरःक्षत होकर रक्तस्राव होने लगे उस अवस्था में इस के सेवन से रक्तस्राव बंद हो जाता है। कफ की शुद्धि होती है, क्षय कीटाणुओं का नाश होता है। ज्वर की शान्ति होती है। (दूसरे रसराज रस का प्रयोग आगे धनुस्तम्भ प्रकरण में देखिये।

[१७] **विन्ध्यवासी योग**—यह योग रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह द्वितीय-खंड का बहुत ही उत्तम कार्य करने वाला और सरल है—इसमें त्रिकटु, त्रिफला, शतावर, गंगेरन और खरैटी की जड़ इन ६ द्रव्यों का महीन चूर्ण १-१ तोला लेकर उसमें ६ तोला लोहभस्म तथा प्रवालपिष्टी, कुक्कुटाण्डत्वकभस्म और शृंगभस्म प्रत्येक ६ तोला खूब खरल कर सुरक्षित रक्खें। मात्रा-१ से २ रत्ती दिन में ३ बार सितोपलादि चूर्ण, घृत और शहद के साथ अथवा अमृतप्राश और घृत के साथ सेवन करने से शुक्रक्षय, शोक या चिन्ता जनित शोष, उरःक्षत, कण्ठरोग, कफ, कास, श्वास, बाहुस्तम्भ, अर्दित आदि रोगों सहित उग्र राजयक्ष्मा दूर हो जाता है। केवल १ या २ मास तक सेवन करने से सब विकार दूर होकर शरीर सबल और नीरोग बन जाता है।

उपर्युक्त रस योगों के अतिरिक्त महालक्ष्मीविलासरस, राजमृगाङ्क, स्वर्ण सिन्दूर, वृहतस्वर्णमालिनी बसन्त तथा सिद्धभैषजमणि माला का शुक्रसंजीवन रस का प्रयोग भी उत्तम लाभदायक है।

पाक तथा अवलेहों में—पाकों में मूसलीपाक,अश्वगन्धापाक, कपिकच्छु या कौंच बीजपाक, कामाग्नि संदीपन मोदक आदि प्रयोजनीय हैं। अन्य ग्रन्थों में या हमारे वृहतपाक संग्रह ग्रन्थ में देखिए, अवलेहों में।

(१८) **अश्वगन्धाद्यवलेह**—असगंध, गोखरू, शतावर, विदारीकन्द, बीजबन्द, मुलैठी, तालमखाना, कौंचबीज, सैंभल की मूसली, बिधारे के बीज, लौंग, जावित्री, जायफल, नागकेसर, दालचीनी, तेजपात, वंसलोचन, छोटी और बड़ी इलायची, केसर और गिलोय का सत प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबके महीन चूर्ण को १ सेर शहद में मिला रक्खें।

मात्रा—१ से २ तोला तक, सेवन कर आधा घन्टा बाद दूध पीवें। इसमें धातु, क्षय, ध्वजभंग, वात रोग आदि का नाश होता है। यह गदनिग्रह ग्रन्थ का अनुभूत योग है।

आसवों में—महाद्राक्षासव, लोहासव तथा मृतसंजीवनी सुरा आदि उत्कृष्ट सेवनीय हैं।

पाश्चात्य एलोपैथिक प्रयोग में से—

टानिक मिक्सचर—लिक्विड एक्सट्रक्ट कोका (Liquid Ext. coca) २ ड्राम लिक्विड एक्सट्रक्ट डेमियाना (Liquid Ext. Damiana)–२ ड्राम ईस्ट्रन सिरप

(Eastern syrup) ४ ड्राम डिस्टिल्ड वाटर (वाष्प जल) ८ औंस।

उक्त मिश्रण की मात्रा—१ औंस, दिन में ३ वार भोजन के पश्चात् दी जाती है। इसे खाली पेट नहीं दिया जाता। यह वीर्य पुष्टिकर और उत्तेजक योग है।

टिंक्चर नक्स वामिका (Tinc. Nux. Vom) ५ मिनिम लिक्विड एक्सट्रक्ट डेमियाना—½ ड्राम फेरिपायरो फासफेट (Ferripyro Phosphate) २ ग्रेन ग्लैसरीन (Glycerin) ½ ड्राम एल्क्षीर सिनकोना (Elixir cinchona) इतना मिलावे कि जिससे सब मिश्रण ४ ड्राम हो जाय। इसकी ३ मात्रायें बना, दिन में ३ बार कुछ भोजन के पश्चात् सेवन करें।

टिंक्चर स्टील (Tr. steel) २॥ औंस स्ट्रिकनिया (Strychnine) ½ ग्रेन वाष्प जल (Aqua) १६ औंस उक्त मिश्रण मात्रा १ औंस, दिन में ३ बार देवें।

एक्स्ट्रेक्ट कोका (Ext. Coca) १॥ ड्राम। नक्सवामिका (Nux. Vom) १ ड्राम, केनेबिस इंडिका (Ext.Cannabis Indiea) १ ड्राम एक्स्ट्रेक्ट डेमियाना Ext. Damiana), ४ ड्राम फेरीसल्फ Ferri sulph) १ ड्राम। सबको खरल कर १२८ गोलियां बना रक्खें। प्रातः सायं १-१ गोली, मिश्री मिले दूध के साथ सेवन करें, शुक्र की क्षीणता, निर्वलता तथा नपुंसकता दूर होती है।

एक्सट्रक्ट डेमियाना (Ext. Damiana) ४ ड्राम, एक्सट्रेक्ट नक्स वामिका Ext. Nux. Vom.) २५ ग्रेन गोल्ड क्लोराइड, सोडियम ३-३ ग्रेन क्विनीन सल्फास (quinine sulp.) १ ड्राम, एक्सट्रेक्ट कोका (Ext.Coca) २५ ग्रेन सबको खरल कर १०० गोलियां बनावें। भोजन के बाद १-१ गोली सेवन करें, दिन में ३ बार।

स्ट्रिकनिया (कुचला सत्व) एक ग्रेन लेकर गोदुग्ध में फुलाया हुआ छुहारा १ नग के साथ खरल कर ६० गोलियां बनालें। १-१ गोली दिन में २ बार दूध से सेवन करने से शुक्र क्षीणता दूर होती है।

शुक्रदोष—

शुक्रदोष के विषय में ब्रह्मचर्य प्रकरण अध्याय ८ में संक्षेप में लिखा गया है। प्रसङ्ग वश उसका कुछ विशेष स्पष्टीकरण यहां कर दिया जाता है।

वात दोष से शुक्र वायु के वर्ण और लक्षणों का अर्थात् रूक्ष, फेनिल, अरुणवर्ण, अल्पमात्रा में, विच्छिन्न रूप में, कुछ पीड़ायुक्त बहुत देर से संभोग काल में निकलता है। यह वीर्य गर्भोत्पादन में समर्थ नहीं होता पित्त दूषित वीर्य किंचित् नीले वर्ण का अथवा पीला अत्यन्त उष्ण और दुर्गन्ध युक्त होता है। यह मूत्रेन्द्रिय में दाह करता हुआ बाहर निकलता है। कफ दूषित वीर्य कफ द्वारा मार्ग के बन्द होने या स्रोतों के रुके होने से अत्यधिक चिपचिपा हो जाता है। ((

रक्त दूषित शुक्र या शुक्र में रक्त मिलने से (अति मैथुन से, दण्ड आदि की चोट से और शस्त्र आदि के क्षत से प्रायः रक्त मिश्रित शुक्र की प्रवृत्ति होती है +) शुक्र शवगन्धी और अल्प प्रमाण में निकलता है। कामला रोग में भी शुक्र का वर्ण लाल, पीला हरा इत्यादि हो जाता है। कफवात दूषित शुक्र गांठदार होता है, अथवा वीर्य के वेग को रोकने से वायु द्वारा मार्ग में रोका गया वीर्य गांठदार होकर बड़े कष्ट से बाहर आता है, यह शुक्र का अवसादी दोष कहाता है। इस प्रकार शुक्र के ये आठ दोष कहे गये हैं। यथा—

फेनिलं तनुरूक्षं च विवर्णं पूति पिच्छिलम्।
अन्यधातूपसंसृष्टमवसादि तथाष्टयम्॥

वातज, पित्तज, कफज, कुणपगन्धि (रक्तज), ग्रन्थिभूत (वातकफ), पूयनिभ (पूयसदृश यह पित्त कफज), क्षीण

((फेनिलं तनुरूक्षं च कृच्छ्रं चाल्पं च मारुतात्। भवत्युपहतं शुक्रं न तद्गर्भाय कल्पते॥
सनीलमथवा पीतमत्युष्णं पूतिगन्धि च। दहल्लिङ्गं विनिर्याति शुक्रं पित्तेन दूषितम्॥
श्लेष्मणा बद्धमार्गं तु भवत्यर्थं पिच्छिलम्। —च० चि० अ० ३०

+ स्त्रीणामत्यर्थगमनाद भिघातात्क्षतादपि। शुक्रं प्रवर्तते जन्तोःप्रायेण रुधिरान्वयम्॥ —च० चि० अ० ३०

शोणितवर्णं वेदनं कुणपगन्ध्यल्पं च रक्तेन, ग्रन्थिभूतं श्लेष्मवाताभ्यां, पूतिपूयनिभं पित्तश्लेष्मभ्यां, क्षीणं पित्तमारुताभ्यां, मूत्रपुरीषगन्धि सन्निपातेनेति। तेषु कुणपगन्धि पूतिपूय क्षीणरेतसः कृच्छ्रसाध्याः मूत्रपुरीषरेतसस्त्वसाध्याः। —सु० शा० अ०

(वात पित्तज) और मूत्र पुरीष गन्धि (सन्निपातज) शुक्र दोषों का अन्तर्भाव उक्त अष्ट दोषों में किया जा सकता है।

पित्तकफ दूषित शुक्रपूययुक्त और दुर्गन्धित जो ऊपर कहा गया है, वह प्रायः अष्ठीला (पौरुष ग्रन्थि Prostate gland) के विकार से, शुक्राशय या शुक्रोत्पादक संस्थान के किसी अङ्ग में पुराना शोथ होने से होता है। इसे पूयशुक्रता (Pyospermia) कहते हैं।

वातपित्त दूषित शुक्र एकदम क्षीण होता है। यह शुक्र की क्षीणता स्वाभाविक नहीं है। यह अति मैथुन से हुआ करती है।

सन्निपात दूषित शुक्र का लक्षण मूत्र पुरीषगन्धी कहा गया है। शुक्राशय तथा शुक्र वाहिनियां मूत्राशय और मलाशय के मध्यभाग में होने से, सन्निपात की दशा में शुक्रों का सम्बन्ध इन दोनों से हो जाना संभव है। मल और मूत्र के संसर्ग से शुक्राणु मृतक हो जाते हैं।

चिकित्सा—

वातयुक्त शुक्रदोषों में निरूह और अनुवासन वस्तियों का प्रयोग हितकर होता है। पैत्तिक शुक्रदोष में अभयामलकीय रसायन (देखो ब्राह्म रसायन चरक चिकित्सा स्थान अ० १ में पाद १) प्रशस्त है। कफज शुक्रदोष के नाशार्थ पिप्पलीरसायन, आमलकी रसायन, लोहरसायन, त्रिफला रसायन और भल्लातक रसायन प्रशस्त हैं। इन सब रसायनों का विस्तारपूर्वक वर्णन देखिए चरक चि० अ० १ में कहा है—

वातान्विते हिताः शुक्रे निरूहाः सानुवासनाः।
अभयामलकीयं च पैत्ते शस्तं रसायनम् (ब्राम्ह्यामलकीयं च पैत्ते शस्तं विरेचनम्)॥ मागध्यमृत लोहानां त्रिफलाया रसायनम्। कफोत्थितं शुक्रदोषं × हन्याद् भल्लातकस्य च॥ —च० चि० अ० ३०

कुणपगन्धी शुक्रदोष में—धाय के फूल, खैर, अनार और अर्जुन इन तीनों की छाल लेकर चारों द्रव्य सम भाग का कल्क १ सेर, घृत ४ सेर और जल १६ सेर एकत्र कर मंदाग्नि पर पकाकर घृत सिद्ध करें। मात्रा-२॥ तोला तक सेवन करावें। अथवा—+सालसारादिगण के जितने द्रव्य मिल सकें उतने द्रव्यों के कल्क एवं क्वाथ से साधित घृत का सेवन रोगी को करावें कहा है—

पाययेतवरं सर्पिभिषक् कुणपरेतसि।
धातकीपुष्प खदिर दाडिमार्जुन साधितम्॥
पाययेदयवासर्पिः शालसारादिसाधितम्॥
—सु. शा. अ. २

नोट—उक्त सालसारादि घृत सिद्धि के लिये क्वाथ के लिये सालसारादि द्रव्यों को ८ सेर और जल ६४ सेर लेकर चतुर्थांश क्वाथ (१६ सेर) तैयार होने पर उसमें ४ सेर घृत मिला घृतपाक करें। फिर इस ४ सेर सिद्ध घृत पाक में सालसारादि द्रव्यों का १ सेर कल्क और १६ सेर

× शुक्रदोष की सम्पूर्ण चिकित्सा, अष्टांगसग्रह शारीर स्थान में इस प्रकार कही गई है—वातिके शुक्रदोषे वनुकर्मन्ववफलाम्लसिद्व यवक्षारप्रतीवायं सर्पिष्पानम्। बिल्व विदारिसिद्वं क्षीरयुक्तमास्थापनम्। मधुकमद्रदारु सिद्वं तैलमनुवासनम्। क्षीरकुलीररससिद्वं तैलमुत्तरवस्तिः॥

पैत्तिके काण्डेक्षु श्वदंष्ट्रागुडूचीसिद्व मूर्वामधुक प्रतीवापं सर्पिष्पानम्। त्रिवृच्चूर्णः सघृतो विरेकः। पयस्याश्रीपर्णीसिद्व क्षीरयुक्तमास्थापनम्। मधुकमुद्गपर्णीसिद्वंतैलमनुवासनमुत्तरवस्तिश्च।

श्लैष्मिके पाषाणभेदाश्मन्तकामलक क्वाथ सिद्वं पिप्पलीमधुक चूर्ण प्रतिवापं सर्पिष्पानम्। मदनफल कषायो वमनम्। दन्ती विडंग चूर्ण स्तैललीढोविरेकः। राजवृक्षमदनफल कषाय प्रगाढमास्थापनम्। मधुकपिप्पलीसिद्वं तैलमनुवासनमुत्तरवस्तिश्च॥

+ सालसारादिगण के द्रव्य—सालवृक्ष का सार, अजकर्ण (सालवृक्ष का ही एक भेद), खैर, कदर, कालस्कंध (तिन्दुक वृक्ष), सुपारी वृक्ष, भूर्जपत्र, मेढ़ासिंगी, तिनिश [सादन Dalbergia oojeinensis], श्वेतचन्दन कुचन्दन (रक्तचन्दन), सीसम, शिरस, असन (Terminalia Tomentosa), धव (धावड़ा Anogeissus latifolia) अर्जुन, ताल (ताड), सागवान, करंज, पूतिकरंज, अश्वकर्ण (साल का ही एक भेद), अगर, और पीलाचन्दन या हरिचन्दन। इन सब वृक्षों की छाल लेनी चाहिये।

जल मिला कल्कपाक करें। घृतमात्र शेष रहने पर छान-कर सुरक्षित रखें। मात्रा-१ तोला तक सेवन करावें।

यदि शुक्र में अवसादी दोष हो, शुक्र गांठदार हो गया हो, तो शठी (कचूर) द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत, अथवा पलाश भस्म (अथवा पलाश क्षारजल) में साधित घृत का सेवन कराना चाहिए ‡ -

नोट—पलाश (ढाक) की भस्म को ६ गुने में जल घोलकर २१ बार (या ७ बार) छानकर स्वच्छ जल निथार लेवें। यह पलाश क्षारजल ४ सेर और घृत १ सेर मिला कर घृतसिद्ध कर लेवें। घृत पकाते समय जब फेन आने लगे तथा घृत फटे हुए दूध के समान दीखने लगे तो उसे सिद्ध समझना चाहिए। इसकी मात्रा ६ माशे या १ तोला तक है। यह घृत स्त्रियों के रक्तगुल्म को नष्ट करने के लिये भी सेवन कराया जाता है। शीघ्र लाभ कारी है।

यदि शुक्र पित्तकफ दूषित, पूययुक्त दुर्गन्धित, पूतिपूय हो तो परूषकादि और वटादिगणों की औषधियों द्वारा साधित घृत रोगी को सेवन करावें। कहा है—

परूषकवटादिभ्यांपूय प्रख्येच साधितम् ॥
सु. शा. अ. २

नोट—परूषकगण के द्रव्य—फालसा, द्राक्षा, कायफल, अवार, खिरणी, निर्मली बीज (कतकफल), सागवन का फल और त्रिफला। इस गण के वृक्षों के फलों को लेना चाहिए।

वटादिगण—वड़, गूलर, पीपल (अश्वत्थ), पाकड़ (प्लक्ष) महुआ, आमड़ा (आम्रातक), अर्जुन, आम, कोशाम्र (आम का भेद), चोरकपत्र (लाक्षावृक्ष), जम्बूद्वय (बड़ी और छोटी जामुन), चिरोंजी वृक्ष (पियाल) मुलैठी, कटुकी, वंजुल (वेतस), कदम्ब, वेर, तेन्दु, सल्लकी, लोध्र भिलावा, पलाश और नन्दीवृक्ष। इनकी छाल ली जाती है।

सन्निपात से दूषित मलमूत्र गन्धी शुक्रदोष विशेष प्रवल न हो तो उसकी चिकित्सा करें, अन्यथा उसकी उपेक्षा ही करनी चाहिए, क्योंकि यह असाध्य होता है। इन्दू टीकाकार अष्टांग संग्रह में लिखते हैं कि—मूत्रपुरीष-रेतसि नातिदुष्टे चिकित्सा, अतिदुष्टप्रपेक्षा (कार्या)"

इसकी चिकित्सा में—चित्रक, खस और हींग से साधित घृत का सेवन कराना चाहिए। कहा है—

'विट्प्रभे पाययेत् सिद्धं चित्रकोशीर हिंगुभिः ॥'
सु. शा. अ. २

नोट—शुक्र दुष्टि की दशा में, जो उपयोग द्वारा उस दुष्टि के निवारक एवं सुखावह हों तो ऐसे वाजीकरणीय योगों से या रक्त पित्तनाशन योगों से तथा योनि-विकार में हितकर योगों से उपचार करना चाहिए। जीवनीयघृत (जीवक,ऋषभकादि अष्टवर्ग की ८ औषधियां तथा जीवन्ती और मुलैठी मिलाकर १० औषधियों को जीवनीयगण कहते हैं। अष्टवर्ग के अभाव में शतावर, विदारीकंद, असगन्ध और वाराहीकन्द ये ४ द्रव्य लिये जाते हैं। इन समस्त द्रव्यों को समभाग में लेकर जल में पीस कल्क तैयार करें। कल्क १ भाग में घृत ४ भाग और दूध १६ भाग मिला घृत सिद्ध किया जाता है), च्यवनप्राशावलेह, तथा शिलाजीत का प्रयोग वीर्य दोषों को दूर कर देता है। शुक्रदोषों में-घृत, मांसरस, शालिचावल, जौ, गेहूँ और सांठी के चावल प्रशस्त है, तथा वस्तिकर्म विशेषतः हित कर है। कहा है—

'वाजीकरणयोगैस्तैरुपयोगसुखैर्हितैः ।
रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापदिकैस्तथा ॥
दुष्टं यदाभवेद्रेतस्तदा तत्समुपाचरेत् ।
घृतं च जीवनीयं यच्च्यवनप्राश एवच ॥
गिरिजस्य प्रागोगश्च रेतोदोषानपोहति ।
सर्पिः पयोरसाः शालिर्यवगोधूम षष्टिकाः ॥
प्रशस्ताः शुक्रदोषेषु वस्तिकर्म विशेषतः ।
इत्यष्ट शुक्रदोषाणां मुनिनोक्तं चिकित्सितम् ॥
—च. चि. अ. ३०

ध्यान रहे, रसादि धातुओं की वृद्धि तथा क्षय शोणित (रक्त) के ऊपर निर्भर है। क्योंकि रक्त का नाश होने से या विकृत होने से जठराग्नि मन्द या विकृत हो जाती है। इससे आहार की पाचन क्रिया ठीक-ठीक नहीं होती, रस भी ठीक नहीं बनता तथा इसका दुष्परिणाम सब धातुओं पर होता है। जैसा कि कहा है—

त एते शरीर धारणाद्धातव इत्युच्यन्ते ।
तेषां क्षयवृद्धी शोणित निमित्ते ॥
—सु. सू. अ. १४

‡ ग्रन्थिभूते शठीसिद्ध पालाशे वाऽपिभस्मनि ॥ —सु. शा. अ. २

विशेष विवरण ऊपर रक्त के प्रकरण में देखिए।

अब धातुओं के साथ-साथ उपधातुओं का प्रसंगवशात् वर्णन करना आवश्यक है, क्योंकि उपधातु भी शरीर धारण के कार्य में धातुओं के समान उपकारक है किन्तु ये धातुओं के समान अन्य धातुओं का उत्पादन या पोषण नहीं कर सकते। धातु और उपधातु दोनों ही शरीर का धारण करते हैं। किन्तु इनमें भेद इतना ही है कि धातु धारण के साथ-साथ पोषण भी करते हैं, उपधातु पोषण कार्य नहीं करते। इनमें स्वयं की गति नहीं होती तथ धातुओं से उत्पन्न होते हैं, इसी से उपधातु कहाते हैं कहा है—

सिरास्नायु रजः स्तन्यस्त्वचो गति विवर्जितः।
धातुभ्यश्चोपजायन्ते तस्मानी उपधातवः॥

अठारहवां अध्याय

उपधातु

शरीर धारण रूप कार्य में उपधातुओं के साथ कुछ साम्य होने से स्तन्य (दूध), आर्तव, कण्डरा, सिरा, वसा, त्वचा और स्नायु ये ७ उपधातु कहाते हैं। यहां "उप" शब्द उपमान या सादृश्य बोधक है। "उपमितो धातुना इत्युपधातुः।"

@ रस के प्रसादांश से रक्त के साथ ही साथ (स्त्री) शरीर में स्तन्य (दुग्ध) और आर्तव की, रक्त के प्रसादांश से मांस के साथ ही साथ कण्डरा (स्थूल स्नायु या स्थूल सिरा) और सूक्ष्म शिराओं की, मांस धातु के प्रसादांश से मेद के साथ ही साथ वसा (मांसगत स्नेह) और ६ त्वचाओं की, और मेद धातु के प्रसादांश से अस्थि के साथ ही साथ सूक्ष्म स्नायुओं (या स्नायुसन्धियों) की प्रवृत्ति और पुष्टि होती है। कहा है—

रसात् स्तन्यं ततो रक्तमसृजः कण्डराः सिराः।
मांसाद् वसा त्वचः षट्च मेदसः स्नायु सम्भवः॥
—चा. चि. अ. १५

१—स्तन्य उपधातु—

यह अपनी समावस्था में स्तन को पुष्ट करती है तथा सन्तान के लिये जीवनप्रद है। कहा है—

स्तन्यं स्तनयोरापीनत्वजननं जीवनं चेति।
—सु. सू. अ. १५

"अत्र जीवनं बालानां, तेषामेव स्त्रीक्षीरसात्म्यत्वात्॥"
—डल्हन

नोट—प्रसवावस्था में, स्तनान्तर्गत दुग्ध ग्रन्थियों की वृद्धि होने से तथा दुग्धवाहिनियों की दुग्धपूर्णता से, एवं कुछ स्तनगत मेद की वृद्धि से भी स्तनों की पुष्टि हुआ करती है। माता का दूध शिशुओं का सर्वोत्तम पोषक एवं बलवर्धक होने से उनका जीवन रूप ही है। आधुनिक वैज्ञानिक भी अब मानने लगे हैं कि शिशुओं के शरीर वर्धनार्थ तथा उनके स्वास्थ्य और सुख जीवन के लिए मातृदुग्ध से बढ़कर अन्य कोइ चीज नहीं है।

वृद्धि अवस्था—स्तन्य की वृद्धि (स्तनों में दूध की विशेष वृद्धि) होने से स्तन विशेष स्थूल हो जाते हैं, बार-बार दूध का स्राव होने लगता है, तथा स्तनों में तनाव की सी पीड़ा होती है, या सुई टोंचने जैसी पीड़ा होती है।*

नोट—दुग्धवृद्धि कर पदार्थों के सेवन करने से अथवा शिशु चूचुकों को ठीक तरह खींच कर दुग्ध पान के न करने से (कभी-कभी चूचक ठीक उभरे हुए होने से बालक ठीक तरह खींचकर दुग्ध पान नहीं कर सकता) या शिशु की मृत्यु हो जाने आदि कारणों से स्तन्य की वृद्धि हो जाया करती है। इसमें कभी-कभी उक्त तनाव की पीड़ा इतनी प्रबल हो जाती है कि स्त्री को उसके कारण ज्वर हो जाता है। ऐसा विशेषकर प्रथम प्रसव की दशा में हुवा करता है।

उपचार—चुसवाकर या ब्रेस्ट-पम्प (Breast-pump)

@ रसात् स्तन्यं प्रसादजं तथा रक्तमपि रजः संज्ञं रसादेव प्रसाद भाग जन्यं, उक्तं च सुश्रुते-"रसादेव स्त्रिया रक्तं रजः संज्ञं प्रवर्तते।"—चक्रपाणि॥ उपधातुओं के विषय में मतभेद आगे यथास्थान देखिये।

* स्तन्यं स्तनयोरापीनत्वं मुहुर्मुहुः प्रवृत्ति तोदं च।
—सु. सू. अ. १५

द्वारा अन्दर का दूध निकलवाकर प्रवृद्ध स्तन्य का संशोधन कर देना चाहिये। तथा स्तन्यवृद्धिहर शीघ्र पाकी लघु द्रव्यों का यथोचित मात्रा में सेवन कराना चाहिये।

स्तनों पर निम्न स्तन्यशोषक लेप के लगाने से विशेष लाभ होता है—

कालीजीरी का चूर्ण १ तोला, एलुवा और डीकामाली ६-६ माशे लेकर, सबको जल के साथ पीसकर थोड़ा गर्म कर, स्तन पर लेप कर देने से स्तन्य वृद्धिजन्य वेदना दूर हो जाती है। लेप लगाने पर जब तक विकार हो तब तक उस स्तन का दूध बालक को नहीं पिलाना चाहिए। भारीपन आ जाने पर ब्रेस्टपम्प से खींच लेना चाहिए। साथ ही साथ कपूर ४-४ रत्ती प्रातः-सायं खिलाने से दूध की उत्पत्ति कम हो जाती है। (र. त. सा.)

बच्चा नष्ट हो जाने पर (या अन्य कारणों से) स्त्री के स्तनों में दूध एकत्रित होकर पीड़ा करने लगे तो कुमारी (ग्वारपाठा) की जड़ और हल्दी के चूर्ण को एकत्र पीसकर लेप करने से पीड़ा शीघ्र ही शान्त हो जाती है। अथवा इन्द्रायन की जड़ पानी में पीसकर लेप करने से भी लाभ होता है। (भा. भै. र.)

दुग्ध वृद्धि से स्तन में तनाव के कारण † ज्वर हो तो स्तनों पर गेरू को जल में पीस आग पर गर्म कर, गाढ़ा-गाढ़ा लेप दिन रात में कई बार लगाने से लाभ होता है।

स्तन की क्षयावस्था—क्षयावस्था में स्तनों पर म्लानता या सिकुड़न हो तो, दूध की उत्पत्ति बन्द हो जाती है या दूध अत्यल्प प्रमाण में आता है।

उपचार—निदान परिवर्जन यह चिकित्सा का एक प्रधान सूत्र होने से, स्तन्य नाश या स्तन्याल्पता में भी देखना होगा कि वह किस कारण विशेष से हुआ। इसके कारणों में मानसिक विकृत स्थिति, अनुपयुक्त आहार, शारीरिक दुर्बलता, स्तन प्रकोप या स्तन विद्रध आदि स्तन विकार और स्तन चूषण में कमजोरी विशेष उल्लेखनीय है।

मानसिक विकृति जो कि इसका मुख्य कारण है, उसके दो प्रकार किये जा सकते हैं, एक तो किसी विशेष घटनावश मन में उत्तेजना, क्रोध, शोक, भय आदि से मन का ग्रस्त हो जाना। इसमें विशेष घटना का प्रभाव होने पर मन शनैः शनैः अपनी स्वस्थ दशा को प्राप्त हो जाया करता है तथा स्तन्य नाश चिरस्थायी नहीं होता। दूसरा प्रकार वह है जिसमें आन्तरिक भावनाओं या विचारों का ही प्राबल्य होता है। जैसे‡ अवात्सल्य (बालक के प्रति मन में प्रेम न होना), आत्मविश्वास का अभाव,

---

† स्तन्य ज्वर (Milk fever) प्रसव के अनन्तर दुग्धोत्पत्ति के समय स्तन कड़े और पीड़ा युक्त होते हैं। कभी कभी उस समय शरीर का तापमान १ या २ अंश से बढ़ जाता है। आयुर्वेद में इस ज्वर की गणना सूतिका ज्वर में ही की जाती है। प्रसव के तीसरे या चौथे दिन, दूध उत्पन्न होकर बन्द पयोवह स्रोतसों (Lactiferous tubules and ducts) में अभिघट्टन (उत्तेजना) पैदा करता है, जिससे स्तनों में स्तम्भ (कठिनता, पीड़ा), हृदयद्रव (छाती में बेचैनी), तृष्णा, कुक्षिपार्श्व और कमर में पीड़ा, अङ्ग-मर्द, सिर में पीड़ा आदि लक्षण होते हैं। दुग्ध का ठीक-ठीक प्रवर्तन हो जाने पर ये सब लक्षण स्वयमेव बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार का स्तन्य ज्वर प्रायः कामल और वात प्रकृति की स्त्रियों को हुआ करता है। ध्यान रहे, यह ज्वर कुछ घण्टों से अधिक देर तक नहीं रहता। यदि ज्वर लगातार अधिक देर तक बना रहे, तो उसे अन्य ज्वर या योनिदोषज ज्वर जानकर, तदनुसार जननेन्द्रिय की ओर विशेष ध्यानपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए। कहा है—

"तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा नार्याः स्तन्यं प्रवर्तते। पयोवहानि स्रोतांसि संवृतान्यभिघट्टयेत् ॥
करोति स्तनयोः स्तम्भं पिपासां हृदयद्रवम्। कुक्षिपार्श्वकटी शूलमङ्गमर्दं शिरोरुजाम् ॥
एतत्स्तन्यागमोत्थस्य ज्वरस्योक्तं स्वलक्षणम् ॥ संहिपीयूष संशुद्धो क्रममात्रेण तिष्ठति ॥" —काश्यप संहिता

‡ जैसे शुक्र सारे शरीर में रहते हुए भी शरीर के अवयवों को काटने से कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता (वैसे ही दुग्ध भी दिखाई नहीं देता) किन्तु वही शुक्र मनोहर स्त्री के दर्शन, स्मरण, स्पर्शनादि से एवं मैथुन जन्य प्रहर्ष से सारे शरीर से शुक्राशय में जाकर शिश्न द्वारा बाहर निकलता है, वैसे ही आहार रस से उत्पन्न हुआ स्त्रियों का दुग्ध भी सन्तान के स्पर्श, दर्शन, ग्रहण (गोद में लेकर पकड़ने या बच्चे के हस्त द्वारा स्तनों को पकड़ने) से और स्मरण मात्र से वात्सल्यवश, सारे शरीर से स्तनों में प्राप्त होकर चूचुक द्वारा बाहर निकलता है। प्रायः स्तन्योत्पादन में माता का बच्चे में निरन्तर (सत्य स्वाभाविक) स्नेह ही कारण है। कहा है—

विशस्तेष्वपि गात्रेषु यथा शुक्रं न दृश्यते। सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ॥ तदेव चेष्टं युवतेर्दर्शनात् स्मरणादपि.........प्रहर्षाच्च प्रवर्तते। सुप्रसन्ने मनस्तत्र हर्षणे हेतुरुच्यते। आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ॥.........स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते ॥ —सु० नि० अ० १०

या कृत्रिम दुग्धों के रंगीले चटकदार विज्ञापनों को पढ़कर बालक को स्वयं स्तनपान कराने की इच्छा न होना या मन में कल्पना कर लेना कि स्तनपान कराने से छाती की शोभा मारी जाती है। स्तनपान कराना यह एक असभ्य प्रथा है, इत्यादि। इस प्रकार की आन्तरिक भावनाओं या विचारों का प्रभाव स्थायी होने से, तज्जन्य स्तन्यनाश भी स्थायी रूप का होता है।

दूसरा कारण है अनुपयुक्त आहार, आहार में जल की कमी उपोषण, (उपवास) लंघन आदि। स्तन्य या दूध आहार रस से ही उत्पन्न होता है। इसकी उत्पत्ति में मानसिक या शारीरिक स्थिति सहायक मात्र होती है। आहार यदि प्रकृति अनुकूल न हो, अपर्याप्त हो तथा आहार के साथ या ऊपर से भी जल यदि उचित प्रमाण में न पिया जाय तो स्तन्य की उत्पत्ति उचित प्रमाण में नहीं होती, न्यून होती है या बिल्कुल ही नहीं होती। अतः ऐसी दशा में स्त्री को स्तन्यवर्धक आहार द्रव्यों प्रकृत्यनुकूल गाय या भैंस का दूध, जौ, गेहूँ, चावल, विविध शाक, मांसरस, पर्याप्त जल, एवं मधुरामय लवणभूयिष्ठ शरीर को बृंहण करने वाले खाद्य पदार्थों की योजना करनी चाहिए। यदि इससे भी पर्याप्त लाभ न हो तो उक्त मानसिक विकृति का निवारण करते हुए, अर्थात् मन की प्रसन्नता (सौमनस्य) के लिये क्रोध, शोकादि भावों को दूर करना, बालक के प्रति वात्सल्य भाव पैदा करना, तथा स्त्री की कुशिक्षा जनित विचार धारा को समझाबुझाकर दूर करना आदि उपायों को करते हुए उसे स्तन्यवर्धक औषधियों (जैसे विदारी कन्द), शतावरी, सिंघाड़ा, तृणपंचमूल, कपास की जड़, भूमि कुष्माण्ड, कसेरु, कमलकन्द, मुलैठी, नाड़ीशाक इत्यदि) का सेवन कराना चाहिए। कहा है—

क्रोध शोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रियाः स्तन्य नाशोभवति। × अथास्या: क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य, यव गोधूम शालि षष्टिक मांसरस सुरा सौवीर कपिण्याक लशुन मत्स्यकशेरुक शृङ्गाटक बिस विदारिकन्द मधुक शतावरी प्रभृतीनि विदध्यात् —सु० शा० अ० १

तीसरा कारण जो शारीरिक दुर्बलता या अस्वास्थ्य है उसका स्तन्योत्पत्ति में बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है दुर्बलाङ्ग स्त्री में भी यदि सौमनस्य और वात्सल्य भाव है, तो वह उचित प्रमाण में दूध पिलाकर अपने बालक को पुष्ट करती हैं। इसके विपरीत मोटी तगड़ी स्त्रियाँ ऐसी देखी जाती हैं जिनके मन में प्रेम न होने से या आधुनिक कुशिक्षा के चक्कर में फंस जाने से दुग्धहीन होती हैं, तथा उनके बालक कृश एवं दुर्बलाङ्ग होते हैं।

स्तन्यचूषण में कमजोरी यह भी एक कारण स्तन्याल्पता या स्तन्य क्षीणता में होता है। जैसे पुरुष शरीर में शुक्र का उत्तम प्रवर्तक युवा एवं मनोनुकूल स्त्री का संग होता है + वैसे ही स्तन्य का उत्तम प्रवर्तक स्वस्थ एवं सबल बालक का स्तनपान होता है। यदि बालक शुरू से ही अस्वस्थ, कमजोर है, या जुकाम या विदीर्णतालु (Clefat palate) आदि विकारों से पीड़ित है, तो वह अच्छी तरह जोर से स्तनपान नहीं कर सकता इसका दुष्परिणाम स्तन्याल्पता या स्तन्यनाश में होता है। ऐसी दशा में बालक की यथोचित चिकित्सा करनी चाहिए। यदि स्तन-प्रकोप, स्तन विद्रधि आदि कोई स्तन सम्बन्धी विकार से स्तन्य नाश हो तो उसकी रोगानुकूल चिकित्सा करनी होगी।

स्तन्यक्षय की दशा में प्रकृति या देश भेदानुसार किसी स्त्री को शराब की, किसी को विशेष चावल, मांस, गोदुग्ध, शक्कर, आसव, दही, मछली आदि हृद्य भोजन की इच्छा हुआ करती है। उसकी इच्छा की पूर्ति होने पर स्तन्य की क्षीणता दूर हो जाती है। कहा है—

सुरा शाल्यन्नमांसानि गोक्षीरं शर्करां तथा।
आसवं दधि हृद्यानि क्षये स्तन्यस्य वाञ्छति॥

—डल्हन (सुश्रुत)

स्तन्य नाश पर कुछ शास्त्रीय सिद्ध प्रयोग—

वटादि वृक्ष एवं क्षीरी वृक्षों की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें यवक्षार डालें। फिर उसमें दूध मिला पुनः पकावें। फिर इसे पके हुए दूध में पाक्य (सौवर्चल

× वाग्भट जी अष्टांग संग्रह में स्तन्यनाश के कारणों को दर्शाते हुए कहते हैं—
रुक्षान्नपानकर्षन क्रोध शोक कामदिभः स्तन्यनाशः॥

+ वाजीकरणमग्र्यं च क्षेत्रं स्त्री या प्रहर्षिणी —चरक तथा—प्रवर्तनी स्त्री शुक्रस्य। —शार्ङ्गधर.

नमक) गुड़, विडलवण और घृत मिलाकर शालि चावलों को भात के साथ सेवन करने से शुष्कस्तनी (जिसका दूध एकदम सूख गया है) स्त्री के भी दूध आ जाता है।

इसी प्रकार शालिधान्य, षष्टिक धान्य, दर्भ, कुश ग्रन्द्रा (जलजदर्भ), इत्कट (तृण भेद या शर) सारिवा, वीरण (खस), इक्षु, कुश काश की जड़ें लेकर उनके साथ दुग्ध का संस्कार कर क्वाथ बना सेवन करना दूध के बढ़ाने का श्रेष्ठ उपाय माना जाता है। इन प्रयोगों से स्वभाव से ही नष्ट, शुष्क अथवा दृष्टि दोष (नजर लगने) से दूषित हुआ दुग्ध पुनः शुद्ध रूप में प्रवृत्त होने लगता है ‡ ।

कालीमिर्च और पीपला मूल के कल्क को दूध के साथ सेवन कराने से अथवा पीपल (छोटी), सोंठ और हर्रे के चूर्ण को गुड़ में मिलाकर तथा उसमें थोड़ा सा घृत डालकर दूध के साथ पिलाने से प्रसूता के स्तनों में दुग्ध वृद्धि होती है। कहा है—

मरीचं पिप्पलीमूलं क्षीरं क्षीरविवृद्धये ।
मागधी नागरं पथ्या गुडेन सघृतं पयः ।
पानं जनयते क्षीरं स्त्रीणां क्षीरक्षयादपि ॥

हा. सं. स्था ३. अ. ५६

छोटी बेरी की जड़ को दांतों से चबाकर मुख में रखकर उसका रस चूसने से प्रसूता स्त्री के स्तनों में दुग्ध वृद्धि होती है तथा दूध की शुद्धि होती है, उसके कृमि नष्ट हो जाते हैं ७ दिन में इस प्रयोग का फल मालूम देता है। भा. भैं. र. भाग ३

विदारी कन्द के चूर्ण में शक्कर मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से खूब दूध की वृद्धि होती है तथा शरीर पुष्ट होता है—

भूमि कुष्माण्डमूलं पिबति क्षीरेण या नारी।
सशर्क रेणैव पुष्टा ह्यतिशयदुग्धयती सा भवति ॥

—वंगसेन

नोट—उक्त प्रयोग के सेवन की विधि इस प्रकार है विदारी कन्द को या उसके चूर्ण को गौ के दूध के साथ पीसकर, उसे कपड़े में निचोड़कर रस निकाल लें, फिर उसमें शक्कर मिलाकर पान करें। कहा भी है—

भूमिकुष्माण्डमूलस्य क्षीर पिष्टस्य यो रसम् ।
पिबेत्सशर्करं तस्याः क्षीरं बहु विवर्धते ॥

-योग रत्नाकर।

विदारीकन्द्र के चूर्ण को सुरा (मद्य) के साथ भी पिलाया जाता है। अथवा वनकपास तथा ईख की जड़ को, सौवीर (कांजी) के साथ पीसकर सेवन कराने से भी प्रसूता का दूध बढ़ता है * ।

अथवा शतावरी को गौ के दूध के साथ पीसकर पान करने से तथा किंचित उष्ण गौ के दूध के साथ पीपल का चूर्ण मिला पान करते रहने से भी प्रसूता का दूध बढ़ता है। यह शतावरी और पीपल का प्रयोग साथ ही साथ चालू रखें।

सौभाग्य शुण्ठीपाक के प्रयोग से दुग्धक्षय (दूध कम उतरने) की दशा में बहुत ही उत्तम लाभ होता है। पाक का सेवन प्रातः और सायं करावें, तथा दुपहर में भोजन के बाद जीरकाद्यरिष्ट मात्रा ५ तोले तक समभाग जल मिला पिलावें। पाक का प्रयोग शास्त्रों में देख लेवें।

---

‡ वटादीनां च वृक्षाणां क्षीरिकायाश्च वल्कलम । पाक्व कषायः क्वथितः क्षीरं तेन पुनः शृतम् ॥
पाक्यं गुडविडोपेतं सघृतं शालिमाशत् । अपि शुष्क स्तनीनां तत् क्षीरोपजननं परम् ॥
शालिषष्टिक दर्भाणां कुश गुंद्रेत्कटस्य च । सारिवा वीरणेक्षूणां मूलानि कुशकाशयोः ॥
पेयानि पूर्वकल्पेन श्रेष्ठं क्षीर विवर्धनम् । स्वभावनष्टे शुष्के वा दुष्टे साध्वीक्षिने संहितम् ॥ (काश्यपसंहिता)

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान दुग्धप्रवर्तनार्थ जेवर (आंवल) का सत्व, श्लेष्मग्रन्थि सत्व, और मूत्र क्षार का विशेष महत्व देता है।

An injection of placental extract in crea- ses the secsetion of milk: so does pituitary extract.........urea is supposed to be a true galactagague. —materia mericrlly hashc

* वनकापासिकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा । विदारी कन्द सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्धनम् ॥
शतावरी क्षीर पिष्टा पीता स्तन्य विवर्धनी । कवोष्णं कणया पीतं क्षीरं क्षीरविवर्धनम् ॥ (यो. र.)

रिष्ट की विधि-जीरा ५ सेर लेकर उसे २५॥ सेर जल में मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें। उसे छानकर उसमें गुड़ ७॥ सेर धाय के फूल ३२ तो. सोंठ चूर्ण ४ तोले जायफल नागर मोथा, दाल चीनी, तेजपात, छोटीइलायची के दाने, नागकेशर, अजवायन, शीतल चीनी और लोंग प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोला मिला, घृतस्निग्ध तथा धूपित मिट्टी के पात्र में या अमृतवान में भर मुख मुद्राकर एक मास तक पड़ा रहने देवें। पश्चात् छानकर बोतलों में सुरक्षित भर रक्खें।

नोट-जीरे में जो उड़न शील तेल होता है। वही विशेषत: कार्यकारी द्रव्य होने से, उक्त अरिष्ट के लिये क्वाथ तैयार करते समय पात्र पर ढक्कन रख देना चाहिए। क्वाथ को छानते समय वस्त्र को शुद्ध जल से धोकर निचोड़कर छाने क्वाथ की अपेक्षा फांण्ट बनाकर सिद्ध किया हुआ यह अरिष्ट स्तन्यवर्धनार्थ उत्तम होता है, यह माता के बल को बनाये रखता है। इस अरिष्ट के सेवन से मन्द ज्वर, हाथ पैर का दाह त्वचा में जलन आदि नवप्रसूता के विकार शीघ्र दूर होते हैं। इसमें मूत्र की भी शुद्धि होती है।

(६) यदि स्त्री पित्तप्रधान प्रकृति की हो तो उक्त-सौभाग्य शुण्ठीपाक के स्थान में पंचजीरक पाक की योजना उत्तम होती है। विधि इस प्रकार है:—श्वेतजीरा, काला जीरा, सौंफ, सोया, अजमोद, अजवायन, धनियां, मैथी, सोंठ, पीपरामूल, चित्रक, हाऊबेर छोटीबेर के फल का चूर्ण, कूट और कबीला प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोले तथा २॥ सेर गुड ६४ तोले दूध और १६ तोले घृत लेकर पाकविधि से पाक सिद्ध करें। यह प्रसूतिका के सर्वविकारों को दूर करता है।

यदि स्तन्यक्षय के कारण स्तन में सिकुड़न पड़ गई है। शिथिल एवं पतित हो गये हों तो श्री पर्णी तैल की मालिश करें।

(७) श्रीपर्णीतैल—गम्भारी वृक्ष की छाल २ सेर को कूटकर १६ सेर पानी में पकावें। ४ सेर क्वाथ शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें उसी वृक्ष की छाल का कल्क १० तोले और तिल तैल १ सेर मिलाकर तैल सिद्ध कर लेवें। इस तैल में रुई भिगोकर स्तनों पर रखने तथा धीरे-धीरे मालिश करने से स्तन दृढ़ और पुष्ट हो जाते हैं। इस तैल में रूई को भिगोकर स्तन के चारों ओर रखकर बंध (Bandage) बांध देना चाहिए। यह प्रयोग भैषज्य रत्नावली, चक्रदत्त आदि ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। तथा हमारा अनुभूत है।

स्तन्य दोष +—

स्तन्य की वृद्धि या क्षीणता के साथ ही साथ स्तन्य दोष का भी विचार करना आवश्यक है। गरिष्ट, विषम

+ स्तन्यदोष सामान्य हेतु और सम्प्राप्ति इस प्रकार है-अजीर्ण पर भोजन, असात्म्य, विषम या विरुद्ध भोजन के अत्यन्त सेवन से, लवण अम्ल कटुक्षारऔर प्रक्लिन्न (सड़े- हुऐ द्रव्यों के सेवन से, मानसिक तथा दैहिक संताप से, रात्रि जागरण, चिन्ता, मल मूत्रादि के वेगों को रोकने से, अप्राप्त वेगों को बलात् प्रवृत्त करने, खीर गुड़ से बनी हुई, कृशरा, मन्दकदही (अच्छी तरह न जमा हुआ दही) अभिष्यन्दी, ग्राम्य आनूप और जलज पशुपक्षियों के मांस के अधिक सेवन से तथा इनका सेवन कर सो जाने से, अतिमद्यपान से, कोई श्रम का कार्य करने, चोट, क्रोध या किसी रोग से उत्पन्न दुर्बलता के कारण वातादि दोष क्षीरवहा शिराओं में पहुंचकर दूध को दूषित कर देते हैं।

वात दूषित दूध में—(१) विरसता होती है, जिसे पीने से शिशु शरीर की पुष्टि नहीं होती (२) फेन संघात् (झागयुक्त होना) होता है, जिसे पीने से स्वर अत्यन्त दुर्बल व कृश होता है, मूत्र खुलकर नहीं आता, मलवायु पेट में रुका रहता है, तथा वातिक शिरोरोग या पीनस हो जाता है। और (३) रूक्षता होती है, इसके पीने से भी शिशु दुर्बल होता है।

पित्त दूषित दूध में—(४) विवर्णता होती है,जिसके पीने से शिशु का देह विकृत वर्ण वाला होता है, पसीना आता है, प्यास अधिक लगती है, मल पतला फटा हुआ आता है,देह सदा गरम रहता है,वह स्तनपान करना नहीं चाहता। (५) दुर्गन्धित होता है—जिसके पीने से बच्चे को पांडुरोग या कामला होता है।

कफ दूषित द्रव्य में—(६) अति स्निग्धता होती है, जिससे शिशु को वमन होती है, मल प्रवृति के समान कुंथन करता है, मुख से सर्वदा लार बहती रहती है, स्रोत सदा कफ लिप्त रहते हैं, निद्रा,श्वास, कास, कफ प्रसेक (मुख से कफ स्राव होना)और तमक श्वास पीड़ित रहता है। (७) पिचपिचापन (पैच्छिल्य) होता है, जिससे शिशु के लार बहती रहती है, मुख और नेत्र शोथयुक्त, तथा वह जड़वत होता है, खेलता कूदता नहीं। और (८) गुरुता होती है जिससे शिशु को हृद्रोग तथा अन्यान्य कफ रोग भी होते हैं। (देखो चरक चिकित्सा-स्थान अ. ३०) इन विकारों की विस्तृत चिकित्सा भी वहीं पर देखिये।

और दोषोत्पादक आहारों से माता या धात्री के शरीर में दोष प्रकुपित होते हैं, जिससे दूध भी दूषित हो जाता है। मिथ्या आहार-विहार करने वाली स्त्री के दूषित वातादि-दोष दूध को दूषित करते हैं, जिससे बालक में शारीरिक व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

वातजन्य स्तन्य दुष्टि में दशमूल क्वाथ का सेवन करावें। पित्तजन्य दुष्टि में गिलोय, शतावर, परवल के पत्ते, नीम की छाल, लाल चन्दन तथा सारिवा का क्वाथ पिलावें। यही क्वाथ बालक को भी थोड़े प्रमाण में पिलाने से तज्जन्य विकार नष्ट हो जाते हैं। कफज स्तन्य दुष्टि में त्रिफला, नागरमोथा, चिरायता और कुटकी इनसे सिद्ध किये गये क्वाथ का सेवन करावें।

किसी भी प्रकार की स्तन्य दुष्टि हो, यदि स्त्री को भारंगी, देवदारु, बच, पाढ़ तथा अनीस का क्वाथ सेवन कराया जाय और मूंग के यूष के साथ, (मांस से परहेज न हो तो मांस रस के साथ) शाली चावल आदि पथ्य भोजन दिया जाय तो शीघ्र लाभ होता है अथवा-पीपल, पीपलामूल, सोंठ, नागरमोथा, सुगन्धवाला, धनियां और मजीठ समभाग लेकर तथा थोड़े से दूध के साथ पत्थर पर पिट्ठी की तरह पीसकर फिर कुछ अधिक दूध में मिला ठंडाई की तरह छानकर प्रातःकाल पिलावें। कहा है—

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं धनबालकम्।
कुस्तुम्बरूणि मंजिष्ठां सतक्षीरेण कल्कयेत्॥
पानं क्षीरविशुद्ध्यर्थं कल्कमप्रातराशिते॥
(हारीत संहिता)

अथवा—त्रिफला, त्रिकटु, पाठा, मुलेठी, वच, वेर का चूर्ण, जामुन की छाल, देवदारु और सर्षप (सरसों) सब समभाग का चूर्ण मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक शहद के साथ सेवन करावें।

अदरख तथा पटोलपत्र के रस से पिप्पली चूर्ण का सेवन कराना चाहिए। अथवा—

धाय के फूल, इलायची, मजीठ, कालीमिर्च, जामुन की छाल तथा मुलैठी का चूर्ण उत्तम दुग्धशोधक होता है। किन्तु उक्त किसी भी प्रयोग के साथ स्त्री को पथ्य रूप में मूंग का यूष आदि लघु अन्नपान की योजना करनी आवश्यक है। ये प्रयोग काश्यप संहिता के हैं।

यदि स्तन से दूध के साथ रक्त आने लगे तो गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, इन्द्रजौ, कुटकी, मोरवेल, चिरायता, पाढ़ और देवदारु समभाग महीन चूर्ण कर रखें।

मात्रा—३ से ६ माशे तक चूर्ण को ५ तोले सुखोष्ण जल में थोड़ा शहद मिला पिलावें। इसी प्रकार प्रातः सायं सेवन करने से शीघ्र लाभ कम से कम ७ दिन में हो जाता है। रुग्णा को रूक्ष, बासी तथा अति तरल पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये।

आर्तव उपधातु—आर्तव सम्बन्धी कुछ ज्ञातव्य बातें हम अध्याय ८ के शुक्र और आर्तव भेद के प्रसंग में लिख आये हैं। यहां विशेष और भी सूचित कर दिया जाता है कि—गर्भाशयगत जो रक्त प्रतिमास में तीन दिन तक योनिमार्ग से प्रवृत्त होता है उसी को आर्तव, रज या पुष्प भी कहते हैं। कहा है—

रक्तमेव च स्त्रीणां मासे मासे गर्भकोष्ठमनुप्राप्य त्र्यहं प्रवर्त्तमानमार्त्तव मित्याहुः। —अ० सं० शा० अ० १

पुरुषों में गर्भोत्पादक 'शुक्रबीज' (Semen) यह एक ही वस्तु होती है, किन्तु स्त्रियों में दो वस्तुयें गर्भोत्पादन में सहायक होती हैं—एक तो वही उपरोक्त दृश्य वस्तु है, जो प्रतिमास योनिमार्ग से निःसृत होती है। इसे आर्तव शोणित या बहिः पुष्प (Menses, Menstruation) भी कहते हैं। दूसरी अदृश्य, अत्यन्त सूक्ष्म, एवं भीतर ही रहने वाली होती है, इसे अन्तःपुष्प, स्त्रीबीज (Ovum) या केवल आर्तव कहते हैं। वात्स्यायन का कामशास्त्र में एक सूत्र है—

द्वादशाब्दे व्यतीते तु यदि पुष्पं बहिर्नहि।
अन्तः पुष्पं भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत्॥

भविष्य मे होने वाले फल का पूर्वरूप वृक्षों में जैसे पुष्प होता है, वैसे ही भविष्य में होने वाले गर्भरूपी फल का पूर्व रूप स्त्रियों में "आर्तव" होता है। इसीलिए आर्तव को आलंकारिक तौर पर @'पुष्प' कहा जाता है।

@ अंग्रेजी ग्रन्थकारों ने भी "आर्तव" के लिये पुष्प flower शब्द की योजना की है—

Menstruation called also menses, period, monthly flow and flowers, is known in woman and monkeys. Exceptional cases of flowers at the age of seven to eight have been noted.
—Riddle of Sex

इन्दुकृत्त जी का भी कथन है कि—

शुद्धं च रक्तं पुष्पसंज्ञं गर्भाशयस्य फलस्य भविष्यतोऽभिव्यञ्जकत्वात्।

मासिक चक्र—डा० घाणेकर जी ने इसकी विवेचना बड़े सुन्दर ढङ्ग से की है—

गर्भ धारण के लिये योनि व गर्भाशय के स्वास्थ्य के अतिरिक्त गर्भाशय के अन्तःस्तर की विशेष स्थिति की भी आवश्यकता होती है। गर्भ गर्भाशय में विराजमान होने के लिए, उसे नए सिंहासन की आवश्यकता होती है, इसलिये गर्भाशय में एक मासिक चक्र यौवन के प्रारम्भ से यौवन के अन्त तक जारी रहता है, जिसके द्वारा प्रतिमास गर्भाशय में गर्भ के लिये नया आसन बनता है। यदि गर्भ का आगमन नहीं हुआ तो वह पुराना आसन नष्ट होकर फिर से नया आसन बनता है और इस तरह गर्भ के आगमन तक यह चक्र जारी रहता है। यदि गर्भ का आगमन हुआ तो नए आसन पर वह स्थिर होता है और उसके अवस्थान के समय तक तथा उसके पश्चात् कुछ काल तक यह चक्र बन्द रहता है। पश्चात् फिर से नए गर्भ के लिए जारी रहता है। इस चक्र की तीन अवस्थायें हैं—

(१) **आर्तव पूर्व अवस्था**—गर्भाधान न होने के कारण इस अवस्था में पुराने अन्तःस्तर का नाश करने की पूर्व तैयारी होती है। इसमें योनि गर्भाशय में रक्ताधिक्य होता है, श्रोणि (Pelvis) में भारीपन, खिंचावट और गर्मी मालूम होती है, रक्ताधिक्य के कारण गर्भाशय के अन्तःस्तर की रक्तवाहिनियां फूलती हैं, कुछ फूटती हैं और अन्तःस्तर के नीचे रक्त कई जगह इकट्ठा होता है। इसकी अवधि ५ से ६ दिन की होती है।

(२) **आर्तव की अवस्था**—रक्तभार अधिक बढ़ने से अन्तःस्तर कई जगह टूट जाता है और रक्त के साथ बाहर निकल आता है। यही पुरानी रज या आर्तव है। इसकी अवधि ३-५ दिन तक की होती है।

(३) **आर्तवोत्तर अवस्था**--इस अवस्था में टूटी हुई रक्तवाहिनियां जुड़ती हैं, टूटा हुआ अन्तः-स्तर फिर से नया बनना शुरू होता है और थोड़ी देर के बाद गर्भाशय में नवीन रक्त और नवीन अन्तःस्तर पूर्ण नया बन जाता है, जिसके ऊपर गर्भ संलग्न हो सकता है। इसी आर्तवोत्तर अवस्था (Post menstrual period) में गर्भधारणा की अधिक सम्भावना होती है। चरक के ऋतुमती के लक्षण में गर्भाशयान्तर्गत इन परिवर्तनों के अनुसार—

गते पुराणे रजसि नव चावस्थिते शुद्ध स्नातां स्त्रियम व्यापन्नयोनि शोणित गर्भाशयामृतुमतीमा चक्ष्महे।

—च० शा० अ० ४

मोटे शब्द समूह का अर्थ करना चाहिये —सु. शा. अ. ३ की टीका से साभार उद्धृत।

आर्तव स्राव से लाभ-(१) आर्तवस्राव के प्रारम्भ से यौवनावस्था के प्रारम्भ का और इसकी निवृत्ति से यौवनावस्था की निवृत्ति का ज्ञान सहज में हो जाता है।

(२) प्रतिमास मासिकधर्म ठीक होने से साधारणतया स्त्री के शरीर के दोष बह जाते हैं और स्त्री का स्वास्थ्य ठीक रहता है। कहा है—रजः प्रसेकान्नारीणां मासि मासि विशुद्धयति, सर्वं शरीरं दोषाश्च

(तन्त्रातार डल्हण टीका)

आधुनिक विद्वानों की भी मासिकधर्म के सम्बन्ध में इस प्रकार की कल्पना है—

Menstruation is nature's wash day; the poorest blood in the circulation is thrown out, for menstrual blood possesses none of the vital properties peculiar to that which escapes when haemorrhage occurs.

—Laws of sexual physiology by Chandra.

(३) योग्य आयु में रजोदर्शन न होने से स्त्री के स्त्रीत्व की कमी का या उसके स्वास्थ्य की खराबी का ज्ञान हो जाता है। वैसे ही जिसमें रजोदर्शन ठीक समय पर प्रतिमास हो रहा है, उसमें समय पर रजोदर्शन न होने से उसके भी स्वास्थ्य की खराबी का अनुमान किया जा सकता है।

(४) आर्तव दर्शन से गर्भाधान के लिये तथा *गर्भाधान* रोकने के लिए योग्य काल का बोध होता है।

(५) आर्तवस्राव से स्त्री के अपत्यमार्ग की स्थिति तथा प्रतिक्रिया, शुक्राणुओं के प्रवेश के लिए अर्थात गर्भाधान के लिये अनुकूल होती है।

(६) समागम करने के पश्चात्, आर्तव **दर्शन बन्द**

होने से गर्भाधान का ज्ञान हो जाता है। साधारण जनता के लिये स्त्री की सगर्भावस्था का ज्ञान होने का यही मुख्य लक्षण होता है।

(७) प्रसवकाल निश्चित करने के लिए अनेक साधन होते हैं। परन्तु इन सब साधनों में रजोदर्शन के आधार पर प्रसवकाल निश्चित करने का मार्ग सबसे सरल और सबके लिए सुगम होता है। साधारणतया मानवी गर्भावस्था की अवधि २८० दिनों की होती है, अर्थात् ९ मास ७ या १५ दिनों की होती है।

(डा० घाणेकर जी)

समावस्था में—प्राकृत आर्तव, जीव रक्त के समान ही गुणधर्म युक्त होता है, तथा गर्भस्थिति कारक होता है।‡ क्योंकि आर्तव की प्रवृत्ति प्रायः उसी समय होती है, जबकि पक्वबीज, डिम्बकोष या बीजकोष (Ovary) से डिम्ब प्रणाली (Fallopian tubes) में आता है। आर्तव प्रवृत्ति से पूर्व प्रायः बीज परिपक्व नहीं होते, तथा आर्तव प्रवृत्ति के पश्चात् बीजकोष सिकुड़ जाता है तथा बीज का निकलना बन्द हो जाता है। इस प्रकार डिम्बाणु (Ovum) या स्त्री बीज के परिपक्व होने तथा आर्तव प्रवृत्ति से बहुत कुछ सम्बन्ध है और दूसरी बात यह भी है कि आर्तव जब अपनी प्राकृत अवस्था में प्रावृत्त होता है, तब गर्भाशय की श्लैष्मिक कला गर्भ धारणा के योग्य तैयार हो जाती हैं और १० या १६ दिन के अन्दर ही स्त्री के गर्भवती होने की अधिक संभावना होती है। तथा गर्भधारण के बाद आर्तव बन्द हो जाया करता है।

शुद्ध आर्तव के लक्षण—जो आर्तव मास में एक बार, जिसमें छिछड़े (श्लेष्म कला के अन्तःस्तर के खण्ड) न हों, जिसकी प्रवृत्ति के समय पित्त तथा वात की दुष्टि के द्योतक दाह या वेदना न हो, जिसकी प्रवृत्ति ५ दिन (स्वस्थ स्त्रियों में इसका अनुबन्ध २ या ७ दिन तक होता है) तक हो, प्रमाण में न बहुत अधिक और न बहुत कम हो (आर्तव का प्रमाण १२ तोले से २५ तोले तक बहुधा देखा जाता है, इसका स्वस्थ दशा का प्रमाण २२½ तोला माना गया है) जिसका वर्ण लाल धुन्धली, लाल कमल, लाक्षारस, खरगोश के रक्त या बीरबहूटी के वर्ण के सदृश हो, तथा वस्त्र पर लगे हुए जिसके दाग सरलता से धोये जा सकते हों, उसे शुद्ध आर्तव मानना चाहिए।[१]

नोट—ऊपर जो शुद्ध आर्तव के लाल वर्ण के लिए भिन्न-भिन्न उपमायें दी हैं। वे स्त्री के प्रकृति भेद दर्शाने के लिए हैं। उसमें भी ध्यान देने योग्य बात यह है कि शुद्ध आर्तव एकदम लाल नहीं होता। हां जब वह अत्याधिक प्रमाण में प्रवृत्त होता है, तब वह एकदम लाल हो सकता है। अन्यथा वह शिरागत रक्त जैसा, कुछ कलौंछ लिए हुए होता है, तथा विशिष्ट गन्धयुक्त होता है।

गर्भाशय को रक्त की पूर्ति करने वाली दो रक्तवाही धमनियां होती हैं, जिन्हें गर्भाशय-धमनी (uterine arteries) कहते हैं। इनके ही द्वारा महीना भर में एकत्र किया गया, किंचित् कृष्णवर्ण का, विशिष्ट गंधयुक्त आर्तव, योग्य समय पर अपान वायु द्वारा योनिमुख की ओर ले जाया जाता है। यह योनि में थोड़ी देर रुकने से कुछ सड़ सा जाता है। अतः इसमें एक प्रकार की गन्ध आती है × कहा है—

> मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्तवम्।
> ईषत्कृष्णं विगन्धं च वायुर्योनिमुखं नयेत्॥
> —सु० शा० अ० ३०

यद्यपि स्वाभाविक मलमूत्रादि की प्रवृत्ति के समान ही आर्तव प्रवृत्ति, बगैर किसी पीड़ा, दाह आदि के, सरलता से होना यही शुद्ध आर्तव का खास लक्षण है। तथापि देखा गया है कि अधिकांश स्त्रियों में आर्तव

---

‡ रक्त लक्षणमार्तवं गर्भकृच्च। —सु. सू. अ. १५

[१] मासान्निष्पिच्छ दाहार्ति पंचरात्रानुबन्धि च। नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत्॥ —च० चि० अ० ३०
गुञ्जाफल सवर्णं च पद्मालक्तक संनिभम्। इन्द्रगोपक संकाशमार्तवं शुद्ध मादिशेत्॥ —सु० शा० २
तथा च—शशासृक् प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम्। तदार्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत्॥

× The menstrual discharge has also some odour due to slight decomposition, which takes place during its passage through Vagina. —Crossen.

प्रवृत्ति के समय, प्रायः श्रेणी प्रदेश में किसी न किसी प्रकार की पीड़ा हुआ करती है। साथ ही साथ सिर में पीड़ा बेचैनी, मानसिक कमजोरी, चिड़चिड़ापन आदि लक्षण भी देखे जाते हैं। वास्तव में ये सब लक्षण कृच्छार्तव (Dysmenorrhoea) के द्योतक हैं। अतः आर्तव प्रवृत्ति के समय कोई पीड़ा आदि शारीरिक विकार हों तो वह शुद्ध आर्तव नहीं है, ऐसा निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता।

दूसरा शुद्ध आर्तव का खास लक्षण यह है कि वह साधारण शुद्ध जीवरक्त के सदृश जमता नहीं है। क्योंकि उसमें चूना (Calcium) अधिक प्रमाण में होता है। अतः जो आर्तव जम जाता है या छिछड़ेदार या गांठदार हो उसे अशुद्ध ही मानना होगा। तथा तीसरा खास लक्षण यह है कि जैसे शुद्ध जीवरक्त के दाग वस्त्र आदि पर लगे हुए गर्म पानी से धोने पर शीघ्र ही मिट जाते हैं। वैसे ही शुद्ध आर्तव के दाग भी मिट जाते हैं।

वृद्धि अवस्था—आर्तव की वृद्धि की दशा में उसकी अति प्रवृत्ति, तथा उसके कारण वात-नाड़ियों पर दबाव पड़ने से अङ्गमर्द, तथा उसके विदग्ध हो जाने से उसमें दुर्गन्धी आती है)(। यही रक्तप्रदर, रक्तगुल्म आदि भयंकर व्याधियों का कारण हो जाता है।

आर्तव की वृद्धि अवस्था को ही रक्तप्रदर मान लेना यह एक भूल है। इसे हम एक रुग्णा के उदाहरण से स्पष्ट करते हैं—

एक १६ वर्ष की लड़की अपने पती और सास के साथ हमारे पास आई। पूछने से मालूम हुआ कि उसे २॥ वर्ष पहले रजोदर्शन हुआ, तबसे अभी तक उसका स्राव बन्द नहीं होता। बीच-बीच में ३ या ४ दिन के लिए स्राव में कुछ कमी हो जाती है, निर्बलता बढ़ती जाती है।

हमारी प्रथम कल्पना यह हुई कि कहीं रज की अपरिपक्व अवस्था में ही उसके साथ अनुचित प्रसङ्ग किया गया हो, इस शङ्का की निवृत्ति बड़ी बारीकी से प्रश्नों द्वारा हमने करली, हमें विश्वास हुआ कि ऐसी कोई अनुचित क्रिया नहीं की गई है, और यह भी मालूम हुआ कि कई प्रकार के उपचार हो चुके हैं, किन्तु लाभ नहीं हुआ।

रजःस्राव जो एक समान जारी था, वह वर्ण में किंचित काला, तथा कुछ दुर्गन्ध युक्त था इसका दाग वस्त्र पर नहीं पड़ता था। शरीर से इतस्ततः दर्द, अग्निमांद्य तृष्णा, शक्तिक्षीणता, छाती के हृदय स्थान में पीड़ायुक्त विशेष धड़कन तथा शोष ये लक्षण विशेष मार्के के थे।

उक्त लक्षणों में से सतत रजःस्राव तथा उसमें दुर्गन्ध शरीर में दर्द एवं अग्निमांद्य ये लक्षण जाहिर करते थे कि रुग्णा के शरीर में रजोवृद्धि की विशेषता है, और छाती में पीड़ायुक्त धड़कन, शोष, तृष्णा एवं निर्बलता ये लक्षण रस-क्षय के निदर्शक थे (पीछे देखिये रस-क्षय के लक्षण)।

अब हमें देखना था कि यह विकार दोष प्रकोपजन्य रक्त प्रदर, अथवा अधोग रक्तपित्त या पित्तयोनि या पित्तावृत, अपान या धातुवृद्धि स्वरूप रक्तवृद्धि या केवल आर्तववृद्धि के कारण हुआ है। इसका मूल कारण क्या होना चाहिए? हमने निर्णय इस प्रकार किया कि, यदि यह विकार दोष प्रकोपजन्य रक्तप्रदर ही माना जाय, तब तो गत २॥ वर्ष से बराबर जारी रहने के कारण इसमें धातुक्षय होकर प्रलाप, मूर्च्छा, पाण्डु आदि कई भयङ्कर उपद्रव हो जाते। कारण—दोषः प्रकुपितो धातून् क्षपयत्यात्मतेजसा।" तथा जिस रोग में दोष धातुओं का सतत स्राव २॥ वर्ष से हो रहा हो, क्या वह रोगी (कोमलाङ्गी स्त्री) एक मील पैदल चलते हुए हमारे औषधालय तक सुस्थिर चित्र से आ सकती है? २॥ वर्ष से बराबर-स्राव होते रहने पर भी उसके शरीर में वैसा कुछ परिलाक्षणीय दुष्परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होता था।

यदि दोष प्रकोपजन्य रक्तयोनि [रक्तप्रदर] या रक्त पित्त रोग माना जाय तो इन दोनों रोगों के कारण की तलाश करने पर किसी भी कारण का पता नहीं लगा। ×

)(आर्तवं (अतिवृद्ध) अङ्गमर्दमतिप्रवृत्ति दौर्गन्ध्यंच (आपादयति) —सु० सू० अ० १५

× रक्तप्रदर और रक्तपित्त के कारणो में प्रायः समानता है। कहा है—चरक प्रदर निदाने-'निरुद्धमद्याव्यशनादजीर्णाद्र गर्भप्रपातादति मैथुनाच्च--प्रदरे जायते। तथा रक्तपित्त करैर्नयैरिरक्तंपित्ते न दूषितम्। अति प्रवर्तते योन्यां लब्धे बीजेऽपिसाऽप्रजा इत्यादि ॥ तथा रक्तपित्त निदाने-धर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरति सेवने--ततः प्रवर्तते रक्तमित्यादि।

अच्छा, रक्तप्रदर में योनि वेदनारूप लक्षण होना प्राय। स्वाभाविक है, कहा भी है ।

'असृग्दरं भवेत् सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ॥

सवेदनम् सशूलं असृग्दीर्यतेच्यवते यस्मिन्नित्य सृग्दरम्।" इति टीका।

किन्तु यह लक्षण भी प्रस्तुत केस में बिल्कुल नहीं था। थोड़ी देर के लिये यदि मान लिया जाय कि इस विशिष्ट लक्षण की अनुपस्थित में भी प्रकृति विशेष के कारण रक्तप्रदर हो सकता है, तो आज २॥ वर्ष से जब उस रक्तप्रदर का स्राव हो रहा है, तो उसके उपद्रवों में से मुख्य उपद्रव पाण्डुता, मूर्च्छा, दाह, प्रलाप आदि में से कुछ उपद्रवों का निदर्शन होना आवश्यक था । किन्तु तृष्णा और निर्बलता को छोड़ और कोई विशेष उपद्रव स्वरूप के लक्षण नहीं थे ।

यदि इसे अयोग रक्तपित्त ही माना जाय तो इतना काल व्यतीत हो जाने से, उसके कोई उपद्रव विशेष ⊛ अवश्य होने चाहिए थे। किन्तु ऐसा कोई लक्षण नहीं था [illegible]शीत वर्षादि ऋतुओं में स्वाभाविक ही रक्तपित्त का स्राव बहुत कुछ कम हो जाना चाहिए, किन्तु वैसी भी कोई बात इस केस में नजर नहीं आती थी।

यदि इसे पित्तयोनिरोग (पित्तदूषित या लोहितक्षया) माना जाय तो पित्तप्रकोप को निश्चित कराने वाले दाह, पाक, ज्वर, ऊष्मा आदि लक्षण नहीं थे, और न कष्टयुक्त पीला, काला और अत्यन्त उष्ण आदि स्राव उस रक्त का इस केस में होता था। क्योंकि कहा है—

दाहपाक ज्वरोष्णार्त्ता नील पित्तासित्तार्त्तवा।

भृशोष्ण कुणपस्रावयोनिःस्यात्पित्त दूषिता ॥

—चरक।

यदि इसका पित्तावृत अपान × ऐसा निदान किया जाय तो सिवा-'रजसश्चाति वर्तनम्' इस सामान्य लक्षण के, दूसरे आवश्यक लक्षण जैसी मल-मूत्र और त्वचा का पीतवर्ण होना, गुदा मूत्रमार्ग और योनि में संतप्तता होना आदि पित्तविकृति के कोई लक्षण इसमें नहीं के बराबर ही थे।

उक्त प्रकार से विचार करने पर यह सिद्ध हुआ है कि यह व्याधि केवल दोष प्रकोपजन्य नहीं है । अब हमने धातुवृद्धि स्वरूप लक्षणों की ओर विचार दृष्टि से देखा कि शायद रक्तवृद्धि से यह विकार हुआ हो, तो रक्तवृद्धि में जो लक्षण + कहे गये हैं, उनमें से आर्त्तवस्राव (असृग्दर) के अतिरिक्त और कोई लक्षण इसमें नहीं थे। असृग्दर या रक्तप्रदर तो यह है नहीं, इसे हम पहले ही निश्चित कर चुके थे। अतएव यह सिद्ध हुआ कि यह रक्तवृद्धि (देखो पीछे रक्तधातु का प्रकरण) या रक्त प्रदोषज विकार भी नहीं है।

पश्चात रजोवृद्धि के लक्षणों की ओर ध्यान देकर देखा गया तो ऊपर कहे गये सुश्रुतोक्त आर्तव वृद्धि के लक्षणों में से सब लक्षण परिपूर्णतया मौजूद थे। अतः हमने निश्चित किया कि यह व्याधि आर्तव वृद्धिजन्य ही होनी चाहिये। अर्थात् इसमें आर्तव वृद्धि यह प्रधान विकार होते हुये रसक्षय यह परतन्त्र विकार होना चाहिए।

स्वातन्त्र्य पारतंत्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत्,,

उपचार—जो व्याधि परतन्त्र तथा अति अल्पप्रमाण में है, उसकी सर्वप्रथम चिकित्सा करने की विशेष आवश्यकता नहीं। स्वतन्त्र व्याधि जो यहां आर्तव प्रवृद्धि रूप है, उसकी ही प्रथम चिकित्सा करना हमें उचित जान पड़ा। किन्तु आर्तव या रज का निर्माणकर्त्ता धातु रस है और उसका निमित्त भूत धातु शुक्र है (रसादेव स्त्रिया रक्तं रजः संज्ञं प्रवर्त्तते)। अतः इन दोनों की ओर भी ध्यान देना आवश्यक ही है। इनमें भी रस की ही ओर

⊛ दौर्बल्य श्वास कास ज्वर वमथुमदाः पाण्डुता दाहमूर्च्छा, युक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपिसदाहृद्यतुल्याच पीड़ा—इत्यादि देखिये माधव निदान।

× हारिद्रमूत्र र्वर्चस्त्वक् तापश्च गुदमेद्रयोः। लिङ्ग पित्तावृत्तेऽपाने रजसश्चाति वर्तनम् ॥ —च. चि. अ. २८।

+ कुष्ठवीसर्प पिड़िकारक्तपित्तमसृग्दरः। गुदमेद्रस्य पाकश्च प्लीहा गुल्मोऽथ विद्रधी ॥

नीलिका कामला व्यङ्ग पिप्लवस्तिलकालकाः। दद्रुश्चर्मदलं श्वित्र पामा कोठास्नमण्डलम् ॥

रक्त प्रदोषाज्जायन्ते .... -च. सू. अ. २८

ध्यान देना प्रस्तुत प्रसङ्ग में विशेष आवश्यक जान पड़ा कारण रूग्णा की विषय सेवन (मैथुनेच्छा) की ओर किंचिन्मात्र भी प्रवृत्ति नहीं यह बात उसके पति से गुप्त रूप से पूछने पर विदित हुई।

(१) हमने विचार किया कि इस केस में रस धात्वग्नि अव्यवस्थित एवं मन्द हो जाने के कारण रस से अत्यधिक प्रमाण में रजोत्पत्ति ही होती है अतः आगे की रक्त मांसादि धातुओं की क्रिया बहुत मन्द प्रमाण में होती है। अतएव रसधात्वग्नि ठीक रास्ते पर आ जाने से रूग्ण की स्थिति शीघ्र ही सुधार पर आना सम्भव है। इस प्रकार विचार स्थिर होने पर हमारा ध्यान अकस्मात् इन्द्रयव की ओर आकर्षित हुआ। कारण इससे पूर्व हमने कई चमत्कारिक लाभदायक अनुभवों को इन्द्रयव द्वारा प्राप्त किया था। इन्द्रयव कटु, तिक्त, शीतल, रजदोष निवारक दीपक, त्रिदोषघ्न एवं धारक आदि गुणों से युक्त होने के कारण, अवश्य लाभदायक कार्य करेगा, ऐसा निश्चित कर हमने केवल इन्द्रयव के महीन चूर्ण की मात्रा ३ माशे के अनुसार १४ मात्रायें बनाकर दे दीं (इन्द्रयव मीठा लिया गया था) और कह दिया कि शहद के अनुपान से प्रातः सायं सेवन कराने से लाभ हो जायगा। ईश्वर कृपा से ७ दिनों में ही आशातीत लाभ हुआ। स्राव बन्द होगया, क्षुधा अच्छी तरह लगने लगी। ७ दिन के बाद और भी ७ दिन के लिये वही दवा दी गई, उसे पूर्ण लाभ हो गया हमें रुग्णा की शोधन आदि कोई भी क्रिया नही करनी पड़ी।

हम चिकित्सा कर्म में प्रथम सरलातिसरल प्रयोगों की योजना करते हैं। यदि उससे लाभ न हो तो फिर बड़े प्रयोगों की ओर हाथ बढ़ाते हैं। यदि उक्त सरल प्रयोग से रुग्ण को लाभ न होता तो हम उसे बोलपर्पटी का सेवन कराते जो कि ऐसी अत्यार्तव की दशा में तथा रक्त प्रदर रक्तातिसार रक्तपित्त आदि रोगों की भयंकर दशा में अत्यत्तम लाभकारी है विधि इस प्रकार है—

(२) समभाग पारद गंधक की कज्जली कर, उसे आग पर रखें, जब वह पिघल जाय तब उसमें बोल (मुसब्बर) का चूर्ण कज्जली के समभाग मिलाकर शीघ्र ही गोबर की वेदी पर बिछे हुये केले के पत्तों पर डाल-ऊपर से दूसरा केले का पत्ता दबा देवें। मात्रा—२ से ६ रत्ती तक, प्रातःसायं शक्कर और मधु के साथ माखन मिश्री या गुलकन्द के साथ सेवन करावें। पर्पटी की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये। इसके उपयोग के विषय में औ. गु. ध. शास्त्र में लिखा है कि यह रक्त स्राव को शीघ्र से शीघ्र बन्द कर देती है, इसके प्रयोग से रक्तवाहिनियां संकुचित होती हैं, जिससे रक्त पित्त, उरःक्षत, रक्तार्श और रक्तप्रदर, अत्यार्त्तव आदि रोगों में शीघ्र लाभ होता है। गर्भाशय में होने वाले रक्तस्राव, तथा रक्तातिसार को भी सत्वर लाभ पहुंचाती है। इस पर्पटी के साथ अकीकपिष्टी और तृणकान्तमणिपिष्टी मिला देने से विशेष लाभ होता है। ऐसा हमारा भी कई बार का अनुभव है। यदि इस प्रयोग में बोल के स्थान में खून खराबा (हीरा दोखी गोंद) मिलाया जाय तो और भी शीघ्र लाभ होता है, ऐसा कुछ चिकित्सकों का मत है। हम तो इसमें काला बोल (मुसब्बर या एलुआ) ही मिलाते हैं।

(३) अत्यार्त्तव की दशा में 'शोणितार्गल रस' ४ रत्ती तक, बबूल की मुलायम कच्ची फली के चूर्ण और मिश्री के साथ दिन में ३ बार देने तथा ऊपर से लोध्रासव पिलाने से भी शीघ्र लाभ होता है।

विधि—लोहभस्म, अभ्रकभस्म, जसदभस्म, फिटकरी का फूला १·१ तोला, तथा रस सिन्दूर, रक्तचन्दन, सोना गेरू और पीपल की लाख का महीन चूर्ण २-२ तोले लेकर सबको एकत्र महीन खरल कर उसमें रसौत १ तोला को थोड़े पानी में घोलकर मिलावें, और खूब खरल करें। २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

यह शोणितार्गल रस, स्वर्गीय श्री वैद्य गोपाल जी कुंवरजी ठक्कुर का सूचित किया हुआ, रक्तार्श, रक्तप्रदर रक्तातिसार आदि विकारों में भी रक्तस्राव को बन्द करने और शक्ति संरक्षणार्थ महान उपयोगी है। इसके सेवन से रक्तवाहिनियां, आन्त्र और गर्भाशय आदि स्थानों की उष्णता शमन होकर रक्तस्राव बन्द हो जाता है। यह भी एक निर्भय औषध है, इसके प्रयोग में दूषित रक्त रुककर भविष्य में हानि पहुँचने की भांति नहीं रहती। इसकी मात्रा—उशीरासव या केवल जल के साथ भी सेवन करायी जाती है।

(४) निम्न शोणितार्गल चूर्ण भी विशेष लाभकारी है।

कमलगट्टा, श्वेत चन्दन, खस, धाय के फूल, अनार फूल, जामुन की गुठली, जटामासी, नागरमोथा, रसोत, मजीठ, पाढ़ लोध, कमल केसर, बेलगिरी, अतीस, आम, की गुठली, कुड़ा छाल, इन्द्रयव, झाऊबेर, छोटी इलायची मोचरस और मिश्री के समभाग को चूर्ण बना उसमें चूर्ण का आधा गिलोय सत्व मिला सुरक्षित रक्खें। मात्रा ३-३ माशे दिन में दो बार, चावल के धोवन के साथ अथवा गाय के दूध के साथ सेवन करावें।

वृद्धावस्था का अत्यार्तव—वैद्यरत्न कविराज श्री प्रतापसिंह जी धन्वन्तरि के सिद्ध चिकित्सांक में लिखते हैं, कि—

आजकल स्त्रियों को वार्धक्य प्रारम्भ होने के समय प्रायः अति रक्तस्राव होने लगता है इसको आधुनिक लोग मेनोपाज (menopause) कहते है। यह दशा स्त्रियों के अन्तः स्रावी ग्रन्थियों (Ductless glangs) की क्रियाओं के परिवर्तन से होती है। यदि उचित रीति से चिकित्सा न की जाय तो रक्तार्बुद (Cancer) जैसी व्याधि अन्त में प्रायः हो जाती है। इसलिए इस समय को बड़ी सावधानी से सतर्कतापूर्वक संभालना चाहिए। क्योंकि इस दशा में अनेक रोग उपद्रव के रूप में भी हो जाया करते हैं, और विशेषतः वातनाड़ियों की दुर्बलता की विकृतियां अनेक प्रकार की पाई जाती हैं। ऐसी दशा में निम्नांङ्कित योग देश काल और पात्र समझकर उपयोग में लाया जाय तो अच्छा लाभ रहता है, और विना किसी उपद्रव के यह समय निकल जाता है।

यदि रक्त अधिक स्राव हो तो केले की जड़ के रस के साथ नीचे लिखा योग दें। यदि रोगी वात प्रकृति का हो, और शीतल द्रव्य अनुकूल न पड़े तो ताजे गोदुग्ध के साथ रक्तस्राव के समय दो या तीन दिन ३-३ माशे की मात्रा से सेवन करवाकर फिर एक सप्ताह वन्द करदें। बाद में फिर रक्तस्राव होने पर इसी प्रकार पुनरावृत्ति करें। इस योग के द्रव्य सावधानी से शुद्ध करलें।

गोदन्ती (भस्म) १ छटांक, गिलोयसत्व २॥ तोले शुद्ध फिटकरी (फुलाई हुई) १। तोला और शुद्ध स्वर्णगैरिक (सोनागेरू) १। तोला इस सबको खूब मिलाकर, पीसकर शीशी में रख लें।

मात्रा—१ से ३ माशे तक, रोगी के बलाबल के अनुसार।

यदि रोगी दुर्वल हो तो मुक्तापंचामृत (भैषज्य-रत्नावली) की १-२ रत्ती की मात्रा बकरी के दूध के साथ या शरबत अनार से दें।

रक्तस्राव की तीव्रता अधिक हो तो, पंच पञ्चवल्कल कषाय (पीपल, पाखर, गूलर, बड़ और बेल की छाल का क्वाथ) में फिटकड़ी (स्फटिका) को घोल बनाकर अपत्य मार्ग में (योनि के अन्दर) पिचु धारण करावें और रोगी को शय्यारूढ़ रक्खें।

नोट—जैसा कि हम ऊपर सूचित कर चुके हैं कि अत्यार्तव की प्रवृत्ति ही रक्तप्रदर का रूप धारण कर लेती है। उस दशा में (रक्तप्रदर में) जो रक्तस्राव होता है वह शुद्ध आर्तव रक्त से कुछ भिन्न लक्षणों वाला होता है, अर्थात् इसमें दोषानुसार भिन्न-भिन्न लक्षण होते हैं (देखो निदान ग्रन्थों में) तथा वह ऋतुकाल के अतिरिक्त काल में भी अत्यधिक मात्रा में प्रवृत्त होता है, जैसा कहा है—

तदेवातिप्रसङ्गेन प्रवृत्तमनृतावपि ।
असृग्दरं विजानीयादतोऽन्यद्रक्तलक्षणात् ॥

—सु० शा० अ० २,

जो स्त्री लवण, अम्ल, गुरु, कटु, विदाही, स्निग्ध द्रव्य, ग्राम्य तथा जलज प्राणियों के मेद्य मांस का, कृशरा (तिल तण्डुल कृत अन्न),पायस (खीर),दही, सिरका, दही का पानी (मस्तु) और सुरा आदि का अत्यधिक सेवन करती है, उसका कुपित हुआ वायु रक्त को अपने प्रमाण से बढ़ा देता है और गर्भाशय की रजोवहा सिराओं का आश्रय कर और उस अपने प्रमाण से अधिक बढ़े हुए रक्त के साथ ही साथ रज को भी शीघ्र बढ़ा देता है। अतः अपने मान से उसका मान अधिक बढ़ जाता है। यही असृग्दर (रक्तप्रदर) कहाता है। इसमें रज फूट-फूट कर निकलते रहने से यह प्रदर (प्रदीर्यते इति विस्तरिती भवति इति प्रदरः।) कहाता है। (देखो च० चि० अ० ३०)

रक्त प्रदर में—रज का प्रमाणाधिक्य, दीर्घकालानुबंधित्व और रक्त वैलक्षण्य (स्वाभाविक आर्तव के रक्त से रक्त की भिन्नता) इन तीन बातों का विचार किया जाता है। पाश्चात्य वैद्यक में रक्त वैलक्षण्य का विचार नहीं किया जाता। रज प्रमाणाधिक्य और उसके काल का ही विचार

कर वह इन दोनों के लिये दो नामों की योजना करता है रजःस्राव अधिक प्रमाण में, अपने आर्तव काल में (ज्यादा से ज्यादा ७ दिन तक) ही होता रहे तो उसे अति रजस्राव (मेनो-हेजिया Menorrhagia) और वह दीर्घ-काल तक अर्थात् अनावर्त्त काल में भी होता रहे तो उसे अस्वाभाविक जरायुरक्तस्राव (मेट्रो-हेजिया Metrorrhagia) कहते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न नामकरण होने पर भी चिकित्सा दृष्टि से दोनों में कोई विशेष भेद नहीं है। आयुर्वेद का भी ऐसा ही मत है कि दोनों अवस्थायें एक साथ सम्बन्धित हैं, तथा एक ही अवस्था दूसरी में परिणत हो जाया करती है। ×

प्रदर के उक्त चरकोक्त निदान में माधवनिदानोक्त कारणों में कही गई कुछ महत्व की बातें छूट गई हैं, जैसे गर्भप्रपात अति मैथुन, यानद्वारा चलना, बहुत मार्ग चलना, शोक, लंघनादि द्वारा धातुओं का क्षीण होना, भार उठाना और दिन में सोना ❁।

उक्त कारणों में से गर्भप्रपात शब्द से गर्भस्राव, गर्भपात और गर्भप्रसूति इन तीनों का बोध होता है। गर्भस्राव और गर्भपात में तो अतिरिक्त प्रवृत्ति होती ही है, किन्तु गर्भप्रसूति की अवस्था में यदि असावधानीवश गर्भाशय में अपरा (आंवल Placenta) या गर्भ की ही कोई झिल्ली या कला का कुछ अंश रह जाय तो गर्भाशय अपनी स्वाभाविक पूर्वावस्था (Involution of the uterus) को शीघ्र नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत वह कुछ मोटा और पिलपिला रक्ताधिक्य के कारण हो जाता है, तथा उसमें से रक्तस्राव अत्यधिक प्रमाण में होने लग जाता है। गर्भपात की अवस्था में तो गर्भाशय की उक्त दशा (Subinvolution) प्रायः अधिक प्रमाण में हुआ करती है।* इसी आशय का बोध कराने के लिये मालूम देता है, गर्भप्रपात शब्द की योजना की गई है।

अति मैथुन के कारण भी गर्भाशय से रक्तप्रवाह कभी-कभी विशेष जोर से होने लग जाता है। अतः निदान परिवर्जन की दृष्टि से चिकित्सक को इस ओर भी ध्यान देकर स्त्री और पुरुष को सचेत कर देना आवश्यक है। ऐसा प्रायः विवाहोपरान्त प्रथम के कुछ प्रसङ्गों में ही हो जाया करता है। इसमें गर्भाशयगत रक्त स्राव और आर्त्तवज दोनों प्रकार का रक्तस्राव प्रायः होता है। ‡

(४) यानाध्व—घोड़ा, ऊंट, खच्चर, साईकिल आदि वाहनों पर अत्यधिक सवारी करने से तथा बहुत दूर तक तेजी के साथ घूमने फिरने से, विशेष कर वात पित्त प्रकृति वाली स्त्री के गर्भाशय में धक्के लगाकर रक्तस्राव होने लग जाता है।

(५) शोक—यह उपलक्षण मात्र है, इससे काम, क्रोध, चिन्ता, भीति आदि प्रायः सर्व उग्र मानसिक विकारों का ग्रहण किया जा सकता है। इन विकारों के कारण शरीर के अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में उत्तेजना होकर रक्तचाप की वृद्धि (Blood pressure) होती है और परिणाम में प्रदर रोग से ग्रस्त होना पड़ता है।

अतिकर्षणात्—अत्यधिक लङ्घनादि करने से तथा पर्याप्त खाद्यपेय द्रव्यों के अभाव से शरीर की धातुयें क्षीण

× Menorrhagia passes insensibly into metrorrhagia and it is therefore convenient to consider the two conditions together. Many diseases lead at first to menorrhagia and subsequently to metrorrhagia —Diseases of women, by Bland Sutton and gils

❁ विरुद्धमद्याध्यशनाद् जीर्णाद् गर्भप्रपातादति मैथुनाच्च। यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च, भाराभिघाताच्छयनाद् दिवाच। तं श्लेष्मपित्तानिलसंनिपातैश्चतुः प्रकारं प्रदरंवदति॥ —माधव निदान

* A portion of placenta or of membranes may remain attached to tho uterine wall, both after full time delivery and after abortion. It is most frequent in the latter case. (Diseases of women by Bland Sutton and giles)

‡ There is no doubt that sexual excess, often in the first months of married life, is a reflex cause of uterine congestion and may cause metrorrhagia as well as menorrhagia Differential diagnosis, by Herbert French

होकर प्रदर, शीताद (scurvy) आदि कई विकार होते हैं।

भाराभिघातात्—भारी बोझ को कमर या पीठ पर लाद कर ले जाने कमर पर कसकर कपड़ा, पट्टा आदि बांधने से या नाचते कूदते समय या अन्य किसी प्रसङ्ग में बाह्य चोट आदि गर्भाशय पर लगने से, या गर्भाशय पर दबाव या बोझ पड़ने से भी प्रदर विकार होता है।

इनके अतिरिक्त निम्न कारण भी प्रदर रोग को पैदा करते हैं—(१) इन्फ्लुएन्जा, आन्त्रिकज्वर, मसूरिका, विषमज्वर, आमवात इत्यादि संक्रामकरोग, यकृद्दाल्युदर हृत्कपाटरोग आदि (२) गर्भाशय के विकार-केन्सर, सार्कोमा इत्यादि, दुष्टार्बुद, अर्श (polypus), पेश्यर्बुद (myoma) इत्यादि सौम्यार्बुद स्थानभ्रष्टता (Displacements) और गर्भाशय का नवीन या पुराना प्रकोप (Endometritis), गर्भाशयगत रक्ताधिक्य (Congestion) गर्भाशय के लचकीले मांस तन्तुओं की राण जैसे कठिन तन्तुओं में परिवृत्ति (Firbosisuteri), रक्तगुल्म इत्यादि सु: शा. अ. २ टीका। —डा. भा. गो. घाणेकरजी

उपचार—प्रदर के उपचार में विशेष ज्ञातव्य यह है कि जो स्त्री बलसत्वयुक्त हो, तथा हितकर आहार विहार का सेवन करने वाली हो, तथा अल्प उपद्रव युक्त हो, अर्थात् दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छा, मद, पिपासा, दाह, प्रलाप, पाण्डुता, तन्द्रा एवं अन्य घातकरोग ये उपद्रव अल्प प्रमाण में हों, अथवा असाध्य‡ न हो, तो उसकी चिकित्सा रक्त पित्त (रक्तार्श, रक्तातिसार) की विधि से करनी चाहिए। कहा है—

तरुण्या हितसेविन्यास्तमल्पोद्रवं भिषक्।
रक्तपित्त विधानेन यथावत् समुपाचरेत्॥
—सु. शा. अ. २

ध्यान रहे, आजकल का विशेष प्रचलित श्वेतप्रदर † (ल्युकोरिया leucorrhoea) रोग त्रिदोषज प्रदर में से कफज प्रदर का ही एक रूप है। इसका स्राव विशेषकर योनिमार्ग से पतला, गाढ़ा, श्वेत या श्वेताभ वर्ण का या पीला नीला अथवा मांस के धोवन जैसा होता है। इसके भी कारण—अतिकाम वासना, अतिमैथुन, आलस्य, मलावरोध आदि प्रायः वे ही हैं जो ऊपर रक्तप्रदर के कह आये हैं। इसमें योनि मार्ग की श्लैष्मिक कला में कुछ रक्ताधिक्य होकर इसकी उत्पत्ति होती है।

पाश्चात्य वैद्यक के अनुसार यह भग, योनिग्रीवा, मध्य योनि तथा गर्भाशय इन स्थानों की शोथ का एक उपद्रव मात्र है। कीटाणु उक्त स्थानों में शोथ पैदा कर देते हैं जिससे स्राव होता रहता है यह स्राव भग के समीप के स्थानों को विशेष गीला कर देता है, जिससे रुग्णा को कष्ट होता है। यह बाल्यावस्था, कन्यावस्था विवाहितावस्था और वृद्धावस्था में भी होता है।

बाल्यावस्था में—भग में मिट्टी एवं पूयोत्पादक कीटाणुओं के प्रवेश से, भग पर चोट लगने से, शारीरिक दुर्बलता से, हस्तमैथुन क्रिया के अधिक करने से जो श्वेत प्रदर होता है उसमें प्रायः भग शोथयुक्त प्रदाह (Vulvitis) पाया जाता है। रोगी का स्राव कुछ रक्त वर्ण का एवं दाहयुक्त होता है। मूत्र फिरते समय भी जलन एवं पीड़ा होती है।

इसमें ऊर्ध्ववस्ति (योनि-वस्ति) करानी चाहिये। वस्ति के लिये पंचवल्कल क्वाथ@ की अथवा सफेदा (Zinc Sulphate जिंक सल्फेट) ५ ग्रेन की मात्रा में या टङ्कणक्षार (बोरिक एसिड) ५ से १० ग्रेन तक एक पौंड (४० तोले तक) जल में मिला प्रयोग करें। तथा

‡ जिसका स्राव निरन्तर जारी हो, तृष्णा, दाह और ज्वर से पीड़ित हो ऐसी क्षीण रक्तवाली दुर्बल स्त्री का प्रदर तथा त्रिदोष प्रकोप से होने वाला प्रदर जो शहद, घृत, मज्जा और हरताल के जैसा वर्णवाला तथा मुर्दे की सी गन्धवाला हो वह भी असाध्य होता है (देखो माधव निदान)

† कई चिकित्सकों के साथ ही हमारा भी मत है, कि आजकल का बहुप्रचलित श्वेतप्रदर यह प्राचीन आयुर्वेदोक्त सोमरोग का ही एक प्रकार है। शरीर भी श्लेष्मान्तर्गत जलीय (सोमसंज्ञक) धातु का स्राव इसमें हुआ करता है। इसमें प्रायः आर्तव का स्राव, युवावस्था को प्राप्त स्त्री और वृद्धा स्त्री को जिसका आर्तव स्राव का बन्द होने का समय आता है या हुआ करता है। इस स्राव में श्वेत, पीवयुक्त लेसदार द्रव प्रवाहित होते रहता है। अतः यह कफज प्रदर के ही अन्तर्गत माना है।

@ वट (बरगद), पीपल, पाकड, गूलर और सीरीष की छाल ५-५ माशे लेकर जौकुट कर १ सेर जल में पकावें, आधा सेर जल शेष रहने पर छानकर, योनिप्रक्षालन (Vaginal douch) के कार्य में लावें

अनन्तमूल का क्वाथ प्रातः सायं पिलावें और पुनर्नवासव का सेवन करावें।

यदि उक्त अवस्था, पूयमेह कीटाणुओं के संक्रमण से हुई हो, तो पूयमेह (सोजाक) की चिकित्सा करें।

कन्यावस्था का श्वेत प्रदर—इसमें भी योनिशोथ होकर स्राव, श्वेत या पाण्डुवर्ण का होता रहता है। यह चिरस्थाई नहीं होता। मासिकधर्म, तीव्र पीड़ायुक्त अधिक मात्रा में होता है, बस्ति गह्वर के अङ्गों का संकोच होता है, जिससे स्राव और अधिक बढ़ता है। प्रायः मैथुन की प्रबल इच्छा से या कामवासना की अपूर्ण तृप्ति से इसकी प्रवृत्ति होती है। †

इसमें प्रायः वात की प्रबलता रहती है। अतः वातनाशक स्निग्ध, उष्ण चिकित्सा के साथ पूर्ण आराम, तृप्तिकर भोजन, मलावरोध नाशक सूक्ष्म सौम्य विरेचन या रेंडी तेल की बस्ति देनी चाहिए।

विवाहिता का श्वेत प्रदर—सूतिकावस्था का योनिपथ प्रदाह (Puerperal vaginitisa) बालक के जन्म लेते समय योनि में रगड़ आदि से शोथ उत्पन्न होने के कारण अथवा पूयमेह शोथ (Gonorrheal Vaginitis) अर्थात् सुजाक के कीटाणुओं के संक्रमण से हुई योनिमार्ग की प्रदाह युक्त शोथ के कारण, अथवा श्लेष्मला योनि का पूययुक्त योनिशोथ (Purulent Vaginitis) अर्थात् अभिष्यन्दि पदार्थों से बढ़ा हुआ कफ यदि स्त्री की योनि को दूषित कर देता है तो वह कफ उस योनि को पिच्छिल, शीत, कण्डूग्रस्त और वेदनान्वित कर देता है[1]। इसके कारण अथवा अन्यान्य कारणों से हुये योनिप्रदाहयुक्त शोथों के कारण यह श्वेतप्रदर हुआ करता है।

इसके उपचार में रुग्णा को पूर्ण विश्राम तथा वातकफनाशक प्रलेप, धूम्र एवं वर्तियों का प्रयोग हितप्रद होता है। यदि उसकी उत्पत्ति पूयमेह के संक्रमण से हो तो पूयमेह के समान चिकित्सा करें। यदि शूल की विशेषता हो तो उष्ण स्वेदन क्रिया करनी चाहिए।

इसी प्रकार उक्त कारणों से ही विवाहितावस्था में गर्भाशय की श्लैष्मिक कला की शोथ से श्वेत प्रदर का स्राव होता है। प्रसूतिकाल में नाल एवं झिल्ली का कुछ अंश गर्भाशय में रह जाने से, उक्त श्लैष्मिक कला या झिल्ली में शोथ हो जाती है, जो कि सूतिकास्राव को बढ़ा देती है और स्राव दीर्घकाल तक जारी रहता है। फिर इसमें तीव्र गन्ध आने लगती है एवं मन्द ज्वर भी हो जाता है।

इसमें मलावरोध नाशक चिकित्सा के साथ उक्त प्रलेप आदि का उपचार करें। उदुम्बर सार को जल में घोल कर दिन में ३ बार योनिमार्ग से उत्तरबस्ति देनी चाहिए। अथवा—मुलैठी और देवदारु के क्वाथ से लेकर गर्भाशय तक प्रक्षालन करें। पाश्चात्य चिकित्सक डेटाल (Dettol) आदि मृदुस्वरूप के जन्तुघ्न घोल से योनिमार्ग का शोधन कर उसमें डेसुलान (Desulan) एस. वी. सी. (S. V. C.) या वेजिफ्ला (Vegiflaw) आदि वर्तियों को धारण कराते हैं।

आयुर्वेदोक्त नताद्य तैल अथवा धातक्यादि तैल का फाया योनिमार्ग में रखना, इनकी उत्तरबस्ति देना विशेष लाभकारी है। विधि इस प्रकार है—

(१) **नताद्य तैल**—तगर, बड़ी कटेरी, कूठ, सेंधा नमक और देवदारु के चूर्ण को समभाग लेकर तथा जल

---

† देह का योग्य विकास होने के पूर्व ही लड़कियों का पुरुष समागम हो जाने से, योनिशैथिल्य उत्पन्न होकर प्रदर रोग हो जाता है। पतला सा स्राव होता रहता है। ऐसी दशा में—

वङ्गभस्म १ से २ रत्ती तक के साथ रस सिन्दूर अर्ध रत्ती और बबूल की कोमल फली का छाया शुष्क चूर्ण १ या २ माशे तक, एकत्र खरल कर (यह १ मात्रा हुई) मलाई और मिश्री के साथ प्रातः सायं सेवन कराने से, तथा साथ ही साथ वङ्ग भस्म में फिटकरी का फूला, माजूफल और बबूल की फली का उक्त चूर्ण एकत्र मिला और थोड़े जल के साथ या दूध के साथ पीसकर वर्तिका बना योनि मार्ग में धारण करावें। उत्तम लाभ होता है। योनिशैथिल्य शीघ्र दूर होता है। त्रिवङ्गभस्म (अध्याय १६ में देखें) का सेवन कराना श्रेष्ठ लाभकारी है। मात्रा १ से २ रत्ती, अनुपान में गिलोय सत्व, शीतलमिर्च व गोखरू चूर्ण देवें, दिन में २ बार ऊपर से दूध पिलावें।

[1] कफोऽभिष्यन्दिभिर्वृद्धोयोनिं चेद्दूषयेत् स्त्रियाः। सकुर्यात् पिच्छिलां शीतां कण्डूग्रस्तां सवेदनाम्॥ —च.चि.अ. ३०

में पीस कल्क १४ तोले तक बनावें। फिर उक्त ५ द्रव्यों का क्वाथ अलग ८ सेर तक बनालें। पश्चात, कल्क, क्वाथ और दो सेर तिल तैल एकत्र मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखलें। यह योग बंगसेन तथा वाग्भट (अ. हृ.) में भी लिखा है।

धातक्यादि तैल की विधि चरक संहिता तथा वाग्भट में भी है, वहीं देख लें।

इन तैलों की पिचकारी (योनिमार्ग में) लगाने या फाया को इससे तर कर योनि में रखने से विप्लुता योनि (योनि के भीतर की पीड़ा बनी रहना) उदावृता योनि वातलायोनि, योनिशोथ आदि दूर होते हैं। गर्भाशय शिथिल होने पर मासिकधर्म अनियमित होता है, एवं मासिक धर्म के समय शूल, कमर में वेदना, चारों ओर दबाने से पीड़ा होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, ऐसी अवस्था में इस तैल की उत्तरवस्ति दिन में १-२ बार देने (१-२ औंस तक तैल चढ़ाने) तथा कमर, गर्भाशय, पैर आदि भागों पर मालिश करने पर योनिशूल निवृत होता है, गर्भाशय सबल होता है। योनिमार्ग में वस्ति देने की विधि रुग्णा को बांयी करवट लिटा दें, बांया हाथ पीठ की ओर करा पैर मुड़वावें, अर्थात् सिम्स पोजीशन (Sims position) में लिटाकर पिचकारी देवें और आधा घण्टे तक लेटे ही रहने देवें। योनि के मुख पर रुई का फोहा लगा दें। बस्ति यदि गर्भाशय में देनी हो तो पलंग पर चित्त लिटाकर गर्भाशय और योनि मुख ऊंचा रखवाकर रबर के निर्जन्तुक किये हुए केथेटर द्वारा तेल प्रवेश करावें। इस वस्ति के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

(रसतन्त्रसार)

योनि धूपन के लिए—चरकानुसार प्रथम योनि में स्नेह चुपड़कर, चीड़ की लकड़ी का बुरादा (अथवा गंधा विरोजा), गुग्गुल, जौ इनमें घृत मिला धूपन करें।

विबन्धता या मलबद्धता निवारणार्थ—प्रातः काल त्रिफला क्वाथ में सेंधा नमक मिला पिलायें। रात्रि के समय अमलतास का घनसत्व ४ रत्ती या १ माशा तक दूध के साथ अथवा निशोथ का चूर्ण और कल्ली शोरा समभाग एकत्र कर मात्रा ३ माशे तक गरम जल से, अथवा अश्वकंचुकी रस २ रत्ती तक दूध के साथ सेवन करावें।

कुछ विशेष लाभदायक अनुभूत प्रयोग—

चूर्णरूप में—पुष्यानुगचूर्ण—यह शास्त्रोक्त सर्व प्रसिद्ध योग है। यह स्तम्भक, रूक्ष, उष्ण एवं रक्त-शोधक है। अपने उष्ण गुण से यह आम का पाक करता है, तथा स्तम्भक और रूक्ष गुण से स्राव को शुष्क करता है। प्रदर पर इसका बहुत व्यवहार किया जाता है। यह वीर्य में शीत होने से रक्त स्तम्भक एवं रक्त प्रसादक है, पित्त को शमन करता है। इसका विशेष उपयोग रक्त-प्रदर पर किया जाता है। किन्तु श्वेत, नील या पीत-प्रदरों पर भी यह उत्तम कार्य करता है। रक्तप्रदर में उपयुक्त इस चूर्ण में केशर के स्थान में नागकेशर मिलाना उत्तम होता है। तथा श्वेतप्रदर की अवस्था में शुद्ध केशर ही होना चाहिए। स्त्री के स्तन्यकाल में, मल विबन्ध की अवस्था में, उन्माद, अपस्मार या गर्भ की विषमता में इसका प्रयोग नहीं कराना चाहिए।

इस चूर्ण के सब द्रव्य पुष्य नक्षत्र में संग्रहित करना चाहिए, ऐसा चरक जी का कथन है, किन्तु यदि ऐसा न हो सके तो कम से कम पुष्य नक्षत्र में ही इसे कूट, छानकर तैयार कर लिया जाय तो भी उत्तम है।

मात्रा—१ से ३ माशे तक, मधु मिश्रित चावल के धोवन के साथ रक्तप्रदर में तथा केवल मधु या जल के साथ श्वेत प्रदर में सेवन करावें, दिन में ३ बार।

अश्वगन्धादि योग—असगन्ध और बिधारे का चूर्ण ८-८ भाग, बड़ी इलायची का चूर्ण २ भाग कुक्कुटाण्ड त्वक् भस्म २ भाग, बंग भस्म १ भाग और मिश्री का चूर्ण ८ भाग इन सब को एकत्र मिलाकर शीशी में भरलें। मात्रा-४-४ माशे, गाय के दूध के साथ, प्रातः सायं सेवन कराने से श्वेतप्रदर (नया हो या पुराना) दूर होता है स्त्री को २ से ६ माह तक या रोग अच्छा होने तक इस चूर्ण का सेवन करावें।

(सिद्धयोगसंग्रह) श्री पं. यादवजी त्रिकमजी कृत

मायाफलादि चूर्ण—माजूफल ५ तोले, अश्वगन्धा २॥ तोला, आंवले की मज्जा का चूर्ण २॥ तोले, फिटकरी का फूला १। तोले, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म १। तोले, इन सबके समभाग मिश्री या शक्कर मिला बोतल में भर रक्खें।

मात्रा—३-३ माशे, दुग्ध या शीतल जल के साथ,

सेवन कराने से श्वेत प्रदर योनिभ्रंश और गर्भाशय की निर्बलता मिटती है।

(रसतंत्रसार भाग २)

लोध्रादि चूर्ण—पठानीलोध, समुद्रसोख, और मिश्री २०-२० तोले, अनार की कली, मोचरस और ढाक का गोंद ५-५ तोले। सबको कूट छानकर रक्खें। मात्रा १ तोला तक, प्रातः सायं, मिश्री मिला हुवा सुखोष्ण दुग्ध के साथ सेवना करावें। (धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगांक भा. १)

ईसबगोल की भूसी ६ माशे को १० तोले जल में घोलकर उसमें मिश्री ३ माशे और शुद्ध शिलाजीत (असली) २ रत्ती मिला (यह १ मात्रा हुई) प्रातः सायं सेवन करावें। ७ दिन में पूर्ण लाभ होता है। ‡ (गुप्त सिद्ध प्रयोगांक)

क्वाथरूप में-दार्व्यादि क्वाथ—दारुहल्दी, रसौत, चिरायता, अडूसा, नागरमोथा, बेलगिरी, लाल चन्दन और मदार के फूल समभाग लेकर, जौकुट कर रक्खें। इसमें से २ तोला चूर्ण लेकर १॥ पाव जल में क्वाथ विधि से पकावें। लगभग १छटांक जल शेष रहने पर छानकर ठंडा होने पर उसमें २ तोला शहद मिला प्रातः सायं पिलाने से वेदना युक्त श्वेतप्रदर नष्ट होता है।

इस क्वाथ के भिन्न-भिन्न पाठ कई ग्रन्थों में है, हमारा अनुभूत खासकर श्वेत प्रदर पर यह क्वाथ भावप्रकाश के अनुसार बनाया जाता है। इसी क्वाथ में मदार के फूल के स्थान में कुमुद या नीलोफर डालकर सिद्धकर पिलाने से रक्त प्रदर तथा रक्तार्श पर भी लाभदायक होता है।

रस रूप में— प्रदरारिलौह—६। सेर कुड़े की छाल को ३२ सेर पानी में पकावें, ४ सेर पानी शेष रहने पर छानकर उसे पुनः पकाकर गाढ़ा करें, और फिर उसमें मजीठ, मोचरस, पाठा, बेलगिरी, नागरमोथा, धाय के फूल और अतीस का चूर्ण तथा अभ्रकभस्म और लोहभस्म ५-५ तोले मिला, खूब खरल कर १-१ माशे की गोलियां बनालें। प्रातःसायं १ या आधी गोली कुश के क्वाथ के साथ सेवन करावें। यह हमारा अनुभूत उत्तम प्रयोग भैषज्य रत्नावली का है। इसके सेवन से श्वेत, लाल, काला और पीला दुस्साध्य प्रदर, कुक्षिशूल, कटिशूल तथा शरीर की पीड़ा सहित नष्ट हो जाता है, तथा बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है।

प्रदरारि रस—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और नागभस्म शतपुटी १-१ तोला, रसौत ३-३ तोले, लोध्र चूर्ण ६ तोले, सबको मिला अडूसे के रस में ६ घण्टे घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१ से २ गोली दिन में २ बार शहद अथवा चावल के धोवन के साथ सेवन करने से दोनों प्रकार के प्रदर तथा गर्भाशय के दोष दूर होते हैं, पाचन शक्ति बढ़ती है।

नोट—यदि शरीर में आम संचय अधिक हो तो इस रस को या अन्य प्रदरनाशक औषधियों को कुमार्यासव के साथ देना विशेष लाभकारी होता है। यदि निद्रावस्था में ही स्राव हो जाता हो, स्राव होने पर तृष्णा जागृत हो जाती हो, तो उसे पाचक और मलनिःसारक कुमार्यासव अनुपान रूप में देना चाहिए।

यदि गर्भाशय आदि अवयवों की निर्बलता के हेतु से, उत्तेजना आये बिना बार-बार स्राव होता रहता हो तो मात्रा अधिक देनी चाहिए। किन्तु अधिक मात्रा से मलावरोध हो जाय तो स्वतंत्र रूप में अधिक पुट वाली नागभस्म दें और इस रसायन का सेवन भी करावें।

यह रसायन बढ़े हुये रोग में अधिक समय तक (निदान परिवर्जन पूर्वक) ब्रह्मचर्य और पथ्यपालन सह देते रहना चाहिए। नागभस्म शतपुटी से कम नहीं होनी चाहिए, कम पुट वाली से उचित लाभ नहीं मिलता -(र. तंत्रसार)

‡ गुप्त सिद्ध प्रयोगांक भा. १ का निम्न फकीरी योग भी बहुत उत्तम लाभदायक है—

नीम के बीज की मींगी और मुनक्का बीज निकले हुए समभाग लेकर प्रथम नीम की मींगी को बारीक पीसकर इसमें मुनक्के इस तरह सिल पर पीसकर मिलावें कि दोनों एक जीव हो जांय। झरबेरी के बेर से दूनी बड़ी गोलियां बनालें। मात्रा-१ से २ गोली तक। बबूल (कीकर) की पत्तियों के क्वाथ के साथ सेवन करावें नित्य प्रातः एक बार। ४१ दिन के प्रयोग से अत्यन्त बढा हुआ जीर्ण श्वेतप्रदर नष्ट हो जाता है। दही और गरम वस्तु से परहेज करें।

(६) श्वेत प्रदर से पीड़ित रुग्णा को यदि प्रातःसमय वसन्त कुसुमाकर रस की मात्रा–१ से २ रत्ती तक, जामुन की गुठली का चूर्ण और शहद के साथ सेवन कराने पर दोपहर में चन्द्रप्रभावटी १ या २ गोली ताजे जल से देवें और रात्रि में सोते समय बंगभस्म और कुक्कुटाण्ड-त्वक भस्म मात्रा समभाग मिलाकर एक रत्ती में आनन्द-भैरव रस की मात्रा अर्ध रत्ती मिश्रण कर दूध के साथ सेवन कराते रहें तो १ मास के अन्दर सब शिकायतें दूर हो जाती हैं।

वृद्धावस्था एवं शारीरिक दुर्बलता से उत्पन्न हुए श्वेत प्रदर को भैषज्य रत्नावली का 'रत्नप्रभावटी' का प्रयोग शीघ्र ही दूर कर देता है। शरीर में नवीन जीवन का संचार कर देता है। इसे साध्य और असाध्य दोनों दशाओं में दे सकते हैं। मात्रा–केवल १ रत्ती खरेंटी (बला) के क्वाथ से या गर्म दूध के साथ केवल प्रातःकाल में इसे देते रहने से परम लाभ होता है।

यदि गर्भाशय या योनिमार्ग की श्लैष्मिक कला में उष्णता होकर श्वेत प्रदर हुआ हो तथा नवीन हो, तो स्वर्णमालिनी वसन्त का प्रयोग, गिलोयसत्व और मधु के साथ सेवन कराने से लाभ पहुंचता है। बीजाशय की विकृति और व्रण आदि हेतु से प्रदर हो, तो प्रदरांतक-लोह, प्रदरान्तक रस आदि का सेवन तथा बाह्य उपचार करने से लाभ होता है। भोजन के पश्चात् पत्रांङ्गासव अथवा अशोकारिष्ट का सेवन करावें।

पाश्चात्य चिकित्सकगण प्रायः जीर्ण श्वेतप्रदर पर कैल्सियम और आयोडीन के सम्मिलित योग का इंजेक्शन दिया करते हैं, जिससे कभी-कभी उत्तम लाभ होता है। पेशीगत सूचीवेध ओम्नामाइसिन (Omnamycin) का करते रहने से भी स्थानिक दोषों का शोधन होकर लाभ होता है।

रक्तप्रदर

ऊपर अत्यार्त्तव के प्रसंग में जो उपचार कहा गया है और जो ३-४ योग दिये हैं, वे बड़े मार्के के हैं। उन्हीं का प्रयोग रक्तप्रदर पर कार्यकारी होता है। पाठकों के लाभार्थ और भी कुछ चुने हुए विशेष प्रयोग यहां दिये देते हैं।

चूर्ण रूप में—ऊपर कहा हुआ पुष्यानुगचूर्ण का प्रयोग करें, अथवा—

(१) **प्रदरान्तक चूर्ण**—चिकनी सुपारी, माजूफल, चौलाई की जड़, धाय के फूल, सोनागेरू, मोचरस, पठानी लोध और राल सबको समभाग महीन चूर्ण कर सब चूर्ण के समभाग मिश्री मिलावें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक चावल के धोवन के साथ सेवन करावें।

इस चूर्ण के सब द्रव्य प्रायः कषाय रस और ग्राही गुण प्रधान हैं। अतः मन्दाग्नि वालों को मात्रा कम देनी चाहिए। कारण, हरड़ के अतिरिक्त सब कषाय रस प्रधान औषधियां प्रायः पचनक्रिया को मन्द कर देती हैं। किन्तु कषाय रस और ग्राही गुण प्रधान औषधियां बहुधा शामक असर पहुंचाती हैं। इनमें इस प्रयोग की औषधियों का शामक गुण प्रजनन यन्त्र पर मुख्य होता है। यदि प्रदर के स्राव में कोथ होने से मुर्दे सदृश दुर्गन्ध आती हो तो उस पर इस चूर्ण का उपयोग नहीं करना चाहिए।

(रसतंत्रसार से साभार)

चन्दनादि चूर्ण—श्वेतचन्दन, जटामांसी, लोध, खस कमलकेसर, मिश्री, नागकेशर, बेलगिरी, मोथा, सोंठ नेत्रवाला, पाठा, कुड़ा छाल, धाय के फूल, इन्द्रजौ, अतीस, रसौत, आम की गुठली की गिरी, जामुन की गुठली की गिरी, मोचरस, कमलगट्टा की गिरी, लजालू, छोटी इला-यची और अनार फल की छाल, समभाग लेकर महीन चूर्ण बना लेवें।

मात्रा—२ से ६ माशे तक, दिन में दो बार, चावल का धोवन ५ से १० तोले तक में ३ माशे शहद मिला ऊपर से पिलावें। यह चूर्ण कीटाणु विष प्रकोपजन्य प्रदाहयुक्त रक्तस्राव या पूयस्राव मय नवीन प्रदर को १५ या २० दिनों में दूर कर देता है। साथ फिटकरी के घोल से योनिप्रक्षालन भी करते रहना चाहिए। यह भैषज्य रत्नावली का बहुत ही उत्तम प्रयोग है।

दन्ती भस्मादि चूर्ण—दन्ती भस्म, गुडूचीसत्व, शुद्ध स्फटिक, और शुद्धगेरू, समभाग सूक्ष्म चूर्ण कर मात्रा--१ से ३ माशे तक दिन में ३ बार कदली कन्द स्वरस से देवें। स्वरस की मात्रा ५ तोले से २० तोले तक ऋतु के अनुसार दी जा सकती है। पथ्य- में दूध

भात तथा सौम्य भोजन देवें। अथवा—

सर्जादिचूर्ण—श्वेत राल, रक्तचन्दन, मजीठ, चिकनी सुपाड़ी, गोखरू, अनार पुष्प, वटजटा, शुद्ध सोना गेरु, शीतल चीनी, श्वेत सुर्मा, कत्था, लोध्र सब समभाग लेकर तथा सबके समभाग मिश्री मिला चूर्ण कर लेवें।

मात्रा—२से ६ माशे तक निम्न क्वाथ के साथ सेवन करावें।

क्वाथ द्रव्य—दारुहल्दी, अशोक छाल, मोथा, उन्नाव कुशमूल, अडूसा, कुड़ाछाल, गिलोय चिरायता, और अर्जुन छाल समभाग, जौ कुटकर ,इसमें से २ तोले लेकर ३२ तोले जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उक्त चूर्ण के साथ प्रातः काल पिलावें।

दोपहर और रात्रि में अशोकारिष्ट और लोध्रासव दोनों मिलाकर २॥ तो. में समभाग जल मिला सेवन करें।

नोट—रुग्ण को प्रारम्भ में मृदुरेचनी तथा मूत्रल औषधियों का ३-३ दिन तक निम्न प्रयोगों का सेवन कराना उत्तम होता है—गुलाब फूल, मुलैठी, सनाय, गुलबनफशा ८-८ तो. सोंफ और शुद्ध गन्धक ४-४ तोले तथा मिश्री ४० तोले, सब का चूर्ण करें। मात्रा—२ से ४ या ६ माशे तक सोते समय गर्म दूध के साथ देवें। इसके पश्चात् २ या ३ दिन तक निम्न मूत्रल प्रयोग देवें।

कल्मीसोरा ४ भाग और फिटकरी १ भाग दोनों को अलग-अलग आग पर फुलाकर पीसकर मात्रा—दोनों को मिश्रित कर ३ से ६ माशे तक-मूली, जामुन या नीबू के ५ तोले रस के साथ अथवा अनार के १० तोले रस के साथ या इन सबके मिश्रित रसों के साथ अथवा केवल शीत जल के साथ ही सेवन करावें, दिन में २ बार।

मूषक विष्टादि चूर्ण—चूहे की मेंगनी ५ तो., ऊन की राख और आंवला २-२ तोला, सोंठ और सोंफ १-१ तोला, नागकेशर ६ माशे और मिश्री १२॥ तोले, सबका महीन चूर्ण करें। मात्रा—४ से ६ माशे तक मिश्री मिले हुए गाय के धारोष्ण दुग्ध के साथ प्रातः सायं सेवन करावें।

नोट—यह प्रयोग विष्टम्भकारक होने से यदि रुग्णा को कब्ज करे तो गुलाब का गुलकन्द २॥ तोले में सोंफ चूर्ण ६ माशे मिला दूध से देते रहना चाहिए।

अथवा—ऊर्णभस्म, केवल पुरानी ऊन या ऊनी वस्त्र को जलाकर काली राख कर [प्रथम खुले मैदान में जला दें, निर्धूम होने पर ढक देने से काली राख हो जाती है] पीसकर छान रखें।

मात्रा—१ से ३ माशे तक, शीत जल से दिन में दो बार सेवन कराने से भी परम लाभ होता है। रसतन्त्र कार ने इस ऊर्णभस्म का नाम 'रक्तप्रदररिपु' चूर्ण रक्खा है।

लाक्षादि चूर्ण—पीपल की लाख १० तोले, अशोक की छाल (छाया शुष्क) और माजूफल ५-५ तोले, तथा लोध्र, नागकेशर, आंवला और खश २॥-२॥ तोले, सबका महीन चूर्ण बना सुरक्षित रक्खें। मात्रा ६ माशे तक, अशोकारिष्ट या दूर्वा रस के साथ, प्रातःसायं सेवन कराने से आशातीत लाभ होता है। पथ्य में गेंहूं का दलिया और बकरी या गाय का दूध देवें।

अवलेहों में— मधुकाद्यावलेह—

मुलैठी, लालचन्दन, पीपल की लाख, लाल कमल के फूल, शुद्ध रसौत, कुश की जड़, खास, खरैंटी की जड़, अडूसा की जड़, बेर की गुठली की गिरी, नागर मोथा, बेल की गिरी, मोचरस, दारु हल्दी, धाय के फूल, अशोक की छाल, मुनक्का, गुड़हल की कलियां (अधखिले फूल), आम के कोमल पत्ते जामुन के कोमल पत्र, कमल के नरम पत्ते शतावरी और विदारीकन्द प्रत्येक का चूर्ण ६-६ माशे तथा चांदी भस्म, लोहभस्म और अभ्रक भस्म भी प्रत्येक ६-६ माशे लेकर चूर्ण और भस्मों को एकत्र खरल में अच्छी तरह घोटकर शतावरी का रस ६४ तोले में मिश्री २६ तोले मिला, चाशनी कर उसमें उक्त मिश्रण को मिलादें। नीचे उतार कर शीतल होने पर उसमें शहद ८ तोले मिला सुरक्षित रखें। इस अवलेह को मन्दाग्नि पर पकावें।

मात्रा— ३ से ६ माशे, दिन में दो बार अशोकारिष्ट के साथ अथवा मन्दोष्ण दुग्ध या केवल जल के साथ या तण्डुलोदक के साथ, सेवन कराने से बहुत ही उत्तम शीघ्र लाभ पहुँचाता है। इसकी मात्रा १ तोला

तक दे सकते हैं। × यह भैषज्य रत्नावली का एक श्रेष्ठ रत्न है इसे शतावरी सिद्ध गोदुग्ध के साथ सेवन कराने से भी भयंकर प्रदर की शान्ति होती है स्त्रियों के लिए यह एक अमृत ही है।

रसों में-सर्वाङ्ग सुन्दर रस (महागन्धक रस)

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ तोला लेकर कज्जली बना, अत्यन्त मन्दाग्नि पर पिघलावें, फिर उसमें जायफल, जावित्री, लौंग, नीम पत्र, संभालु (निगुंण्डी) के पत्ते और छोटी इलायची के बीजों का महीन चूर्ण १-१ तोला मिलावें। सबको जल के साथ खूब घोटकर लुगदी बनालें और उसे दो मोती की सीपियों में बन्द कर उस पर केले का पत्ता लपेट, कुश से बांधकर उसके ऊपर मिट्टी का एक अंगुल मोटा लेप कर देवें। पश्चात् लघु पुट में पकावें। जब ऊपर की मिट्टी का रंग लाल हो जाय, तब उसे आग से बाहर निकाल, ठंडा होने पर भीतर से औषधि को निकाल पीसकर सुरक्षित रक्खें।

शास्त्रों में सर्वाङ्गसुन्दर नाम के कई प्रयोग हैं। प्रस्तुत प्रसंग में यही प्रयोजनीय है। इसे भैषज्य रत्नावली में 'महागन्धक रस' और रस चण्डांशु में 'सर्वाङ्ग-सुन्दर रस नाम दिया गया हैं।

इसकी उपरोक्त विधि में-प्रथम कज्जली की पर्पटी बनाकर, फिर उसके स्तंभ अन्य औषधियों का चूर्ण मिला कल्क किया जाता है। सम्पुट से निकालने के बाद, सीप सहित सब औषधि को खरल कर लिया जाता है।

मात्रा—आधी रत्ती से ६ रत्ती तक। इसका आश्चर्यकारी प्रयोग रक्तप्रदर पर इस प्रकार किया जाता है। इसकी मात्रा के साथ बकुल (मौलसरी) की छाल का चूर्ण ६ माशे तक मिला तण्डुलोदक के साथ पिलाया जाता है। दिन में दो या तीन बार इस तरह सेवन कराने से २-३ दिन के अन्दर ही रोग की शान्ति हो जाती है।

यह रस अग्निदीपक, आम पाचक, संग्राही, वल वर्धक वर्णकारक है। यह रस ज्वर ग्रहणी, प्रवाहिका, सूतिका रोग, रक्तार्श, रक्तार्श, रक्तातिसार, आमातिसार इत्यादि रोगों में परम लाभकारी है। इसका सेवन कुण्डा-छाल के क्वाथ के साथ भी किया जाता है। बालकों को रोगों के या ग्रह, पिशाचादि के आक्रमणों से यह बचाता है। यह बालकों को दूध या शहद के साथ दिया जाता है।

कामदुधारस—शास्त्रों में इस नाम के कई प्रयोग हैं। उनमें से ३ प्रयोग हम लिख देते हैं।

मोती भस्म, प्रवाल भस्म, मोती की सीप की भस्म, कौड़ी भस्म, शंख भस्म, शुद्ध सोना गेरू और गिलोय का सत, समभाग एकत्र खरल कर रक्खें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक, जीरा और मिश्री के साथ, दिन में दो बार सेवन करावें।—अथवा

गिलोय का सत ५ तोले तथा सोनागेरू और अभ्रक भस्म १-१ तोला लेकर सबको एकत्र खरल कर रक्खें। मात्रा—३ रत्ती तक गोदुग्ध और राब के साथ, अथवा चावलों के पानी में राब मिलाकर औषधि के साथ देवें रक्तप्रदर पर अच्छा काम देता है। पित्त रोगों में इसे घृत और राब या मिश्री के साथ, अथवा गोदुग्ध और मिश्री के साथ देते हैं। प्रमेह में पीपल के चूर्ण और शहद के साथ या तण्डुलोदक और मिश्री या राब के साथ देते हैं। इस प्रकार अनुपान भेद से यह कई रोगों पर दिया जाता है, किन्तु प्रदर में विशेष उपयोगी है। कहा है—

अनुपान विभेदेन सर्वरोगेषु योजयेत्। एष: कमादुधा नाम प्रदरेषु प्रशस्यते॥ (र० यो० सा०) अथवा—

सोनागेरू के चूर्ण को थोड़े घृत में भूनकर उसमें आमले के रस की ७ भावनायें देकर, धूप में सुखा कर महीन चूर्ण करलें।

× अनुपान भेद से यह अवलेह कई रोगों पर शीघ्र गुणकारी है, जैसे—योनिशूल में अपामार्ग के क्वाथ से। कुक्षिशूल में—सोंठ के क्वाथ से, वस्तिशूल में—यवक्षारयुक्त सहंजना के क्वाथ और मधु से, रक्तार्श में गाजर का रस या अडूसा क्वाथ से, रक्तातिसार में, कुटजक्वाथ से, रक्तपित्त में, लाक्षारस या अडूसा क्वाथ से, मूत्ररोग (मूत्र कृच्छ्र आदि) में गोखरू क्वाथ से, वमन में, दाह में, आमला रस और मधु, भ्रम से में-पित्तपापड़ा या जवासे के क्वाथ से, मूर्छा में-अनार का रस और शक्कर इत्यादि से।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक, तण्डुलोदक के साथ देने से, प्रदर में यह अल्प मूल्य बहुगुणी कामदुघा अच्छा काम करती है। रक्तपित्त, रक्तार्श या नकसीर में इसे दूर्वारस के साथ देते हैं ●।

कुछ पाश्चात्य वैद्यक के प्रयोग—

एक्स्ट्रेक्ट अर्गट लिक्विड(Extract Ergot Liquid) ३० बूंदें, पोट. ब्रोमाइड (Pot. Bromide) १० ग्रेन, टि. डिजिटेलिस (Tr. Dgitalis) ५ बूंद, जल (Aqua) १ औंस।

उक्त मिश्रण की ३ मात्रायें, भोजनोपरान्त देने से रक्तस्राव बन्द होता है। अथवा—

एक्स्ट्रेक्ट अर्गट लिक्विड़ १५ बूंद, पोटास ब्रोमाइड १५ ग्रेन, फेरी सल्फ २ ग्रेन, टिंचर सिनेमन ३० बूंद, जल १ औंस।

मिश्रण की तीन मात्रायें, दिन में ३ बार। अथवा—

कैलिसयम क्लोराइड २० ग्रेन, हैजलिन लिक्विड़ १ ड्राम, जल १ औंस।

उक्त मिश्रण की ३ मात्रायें, दिन में ३ बार। अथवा—

एसिड गैलिक १० ग्रेन, टिंचर सिनेमन ३० बून्द और जल १ औंस के मिश्रण की ३ मात्रायें दिन में ३ बार देवें। अथवा पेटेण्ट औषधियों में—

स्टिप्टाल टिकिया (Styptol) ३ टिकिया की ३ मात्रायें। या स्टिप्टीसिन (Stypticin) की टिकिया ३ की मात्रा ३, दिन में ३ बार। या ऐलेट्रिस कोर्डियल (Aletris Cordial) १ ड्राम ३ बार इत्यादि।

इञ्जेक्शनों में—ल्युटोसाइक्लीन (Lutocyclin) ५-१० Mg. प्रतिदिन १ बार। प्रोजेस्टेरॉन (Progestrone) या ल्युटोसाइक्लिन (Leutocyclin) आदि के इञ्जेक्शन दिन में एक बार। तथा विटामिन ई और के प्रयोग किये जाते हैं।

अर्कों में-अशोकारिष्ट मिश्रण—अशोकारिष्ट ६ औंस में टिंचर केथारीडिस १३ बूंद, लाईकर फैरी ४ ड्राम और एक्वाकम्फरकन्संट्रेड १॥ ड्राम मिलावें, फिर गर्म एकेशिया १५ ग्रेन (अरबी गोंद) को २ औंस वाष्पजल में मिलाकर, छानकर, उसमें आयल कोपायबा १॥ ड्राम, आयल सेन्डल वुड [चन्दन तेल] ३० बूंद मिला, उक्त अशोकारिष्ट के मिश्रण में मिला दें। पश्चात् इस मिश्रण में ४ औंस वाष्प जल और मिला दें, जिसमें कुल मिश्रण १२ औंस हो जाय। मात्रा—१-१ ड्राम दिन में ३ बार प्रतिबार २॥ तोले जल मिलाकर पिलाया जावे।

रसतन्त्रसार में इस मिश्रण का नाम "स्त्रीगदान्तक अर्क" रखा गया है, तथा कहा गया है कि इस "अर्क के उपयोग से स्त्रियों के गर्भाशय के दोष, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, नीलप्रदर, गर्भाशय का दाह, मासिकधर्म में अनियमितता, मासिकधर्म के समय गर्भाशय में शूल, गर्भाशय विकृतिजन्य मलावरोध, बेचैनी, अरुचि, नेत्रदाह, सिरदर्द, हाथ-पैर टूटना, अपचन आदि सब विकार दूर होते हैं। जीर्ण रोग में अर्क २-३ मास तक पथ्यपालन सह लेना चाहिए। किसी भी कारण से गर्भाशय में उग्रता उत्पन्न होने, प्रदाह होने तथा दूषित द्रव्य के संग्रहित होने से प्रदरोत्पत्ति हुई हो, इसके सेवन से शीघ्र ही लाभ होता है। यह उत्तम गर्भाशय शोधन औषधि है। साथ ही साथ मूत्रदाह, मूत्र बूंद-बूंद गिरना, मूत्रावरोध, मूत्र का पीलापन आदि मूत्र-संस्थान की विकृति को भी यह दूर करता है।

यह अर्क, मूल में सुजाक के उपद्रवों से पीड़ित रुग्णा के लिये तैयार किया था। फिर इसका उपयोग सुजाक रहित रोगियों पर भी किया गया। अनेकों को लाभ हुआ। अभी तक इस अर्क का उपयोग १०००० रुग्णाओं से अधिक पर हो चुका है। यह अति निर्भय और उत्तम औषधि है।

सूचना—यदि पूयमय प्रदर हो, प्रदर में दुर्गन्ध आती

● अनुपान भेद से इसका प्रयोग इस प्रकार किया जाता है-'शीतपित्त' में—मधु से चटाते हैं, और इसमें हल्दी और कालीमिर्च का चूर्ण मिला घृत के साथ लेप करते हैं। 'हिक्का में'—इसे कुटकी चूर्ण और मधु के साथ देते हैं। 'विसर्प जन्य शोथ में'—इसे घृत के साथ मिला लेप करते हैं। 'नेत्र रोगों में'—इसे सोंठ के चूर्ण के साथ मिला, जल में पीस ऊपर से लेप करते हैं। सर्वप्रकार के दाह पर—समभाग मिश्री मिलाकर गोदुग्ध के साथ पिलाते हैं, अथवा आंवले के रस में मिला पिलाते हैं। अम्लपित्त में—आंवले के रस में [illegible] नारियल तैल में मिला लेप करते हैं।

हो तो गर्भाशय को कीटाणुनाशक धोवन से धोते रहें। फिर धातक्यादि तेल या नतादि तेल की पिचकारी लगाते रहना चाहिए।"

लोहितक्षरा योनिविकार—रक्त प्रदर के प्रसङ्ग में लोहितक्षरा योनिरोग विशेष का विचार कर लेना आवश्यक है। यह एक प्रकार का पित्तप्रकोप जन्य विकार है। तीक्ष्ण उष्ण आहार विहार से प्रकुपित हुआ पित्त, गर्भाशय में प्रविष्ट होकर, तदनन्तर्गत उष्णता को बढ़ा देता है, जिसके कारण रजोवाही शिराओं के मुख बन्द नही हो पाते, एवं रक्त वहां स्थिर नहीं हो पाता। रक्त-पित्त विकार जसी परिस्थिति गर्भाशय की हो जाती है। परिणाम यह होता है कि स्त्री का मासिकधर्म १५ या २० दिन के बाद ही पुनः शुरू होकर उसका स्राव, एक समान ६ से ८ दिनों तक प्रायः दाहयुक्त तथा अधिक प्रमाण में होता रहता है। प्राकृतिक मासिक धर्म में तो रजःस्राव २८ से ३० दिनों के पश्चात् होकर प्रायः ५ दिनों तक रहता है, तथा स्राव का प्रमाण धीरे-धीरे कम होते हुए पांचवें दिन बन्द हो जाता है, तथा वह दाहयुक्त नहीं होता। सारांश, मासिक धर्म का शीघ्र-शीघ्र होना, स्राव अधिक प्रमाण में तथा दाह युक्त चिरकालानुबन्धी होना यही लोहितक्षरा का विशेष लक्षण है। कहा है—

सदाहं प्रक्षरत्यस्रं यस्यां सा लोहितक्षरा।@

—सु० उ० तं० अ० ३८

उपचार—

इस विषय में उपचार की दृष्टी से, महाराष्ट्र की प्रसिद्ध वैद्या श्रीमती लक्ष्मी बाई बोरवणकर (आयुर्वेद विशारदा) के चिकित्सानुभवों में से कुछ अनुभव यहां दिये जाते हैं—

अनुभव नं १—रोगी स्त्री उम्र ३० वर्ष की, इसे बार-बार अपचन, शूल, आनाह (पेट का फूलना), थकावट पैरों में दर्द इत्यादि लक्षण थे। डाक्टरों ने अनेमिया का निदान करके अनेक इंजेक्शनों का प्रयोग किया था। जिससे थोड़ा लाभ होकर पुनः वैसी ही हालत हो जाती थी।

लोहितक्षरा योनिरोग के लक्षण मेरे परीक्षण में आये। इसे मासिकधर्म २५ दिन के अन्दर ही हो जाया करता, तथा रजःस्राव ८ दिन तक अधिक प्रमाण में होता था इस प्रकार अधिक रक्तस्राव के कारण ही उसके अग्निमांद्य और दौर्बल्य का निदान कर. उसे लघु, सुपाच्य आहार के लिये कहा, तथा कोष्ठस्थ अजीर्ण नष्ट होकर अग्नि प्रदीप्त होने के लिये, तथा शूल और आनाह की शांति के लिये हिंग्वाष्टक २ माशे और सैंधानमक ४ रत्ती के मिश्रण के प्रमाण से दिन में ३ बार लेने के लिये ३ मात्रायें बनाकर उष्णोदक के साथ सेवनार्थ दी गई इसी प्रकार ४ दिन यही औषधि देने के पश्चात् जब मालूम हुआ कि कोष्ठस्थ दोष संचय दूर हो गया है तब रक्तस्राव के स्तम्भनार्थ तथा मासिक धर्म शीघ्र न होने पावे एतदर्थ—

कामदुधा रस २ रत्ती और प्रवाल ४ रत्ती के मिश्रण की एक मात्रा के प्रमाण से प्रातः सायं शर्करा मिश्रित दुग्ध के साथ सेवनार्थ देना प्रारम्भ किया, तथा भोजन के पश्चात् दोनों शाम के लिये अशोकारिष्ट की मात्रा १। तोले में उतना ही जल मिलाकर लेने के लिये कहा गया।

@ वाग्भट्ट, शार्ङ्गधर तथा माधव निदान में इसे ही "लोहितक्षया" कहा है, ऐसा माना जाता है। तथा वाग्भट्ट में जो 'रक्तयोनि' है वहे लोहितक्षरा है। किन्तु लोहितक्षया में आर्तव का धीरे-धीरे क्षय ही हो जाता है और वह स्त्री फिर वन्ध्या हो जाती है। इसी से चरक जी ने इसे अरजस्का या शुष्का नाम दिया है। तथा इसमें (लोहित-क्षरा में) पित्त के साथ वात का अनुबन्ध हुआ करता है, जैसा कि वाग्भट्ट में कहा है—

""""वात-पित्ताभ्यां क्षीयते रजः। सदाह कार्श्य वैवर्ण्य यस्याः सा लोहितक्षया ॥ —अ०हृ०उ०स्थान अ० ३४

इसमें शरीर में दाह, कृशता और विवर्णता ये विशेष लक्षण होते हैं। रक्तयोनि की विशेषता यह है कि रक्त एवं पित्तकारक द्रव्यों के अति सेवन से स्त्रियों का रक्त, पित्त से दूषित होने पर योनि से बहुत अधिक प्रवृत्त होता है। गर्भस्थिति होने पर भी रक्तस्राव बन्द नहीं होता तथा बीज के प्राप्त होने पर भी वह स्त्री सन्तानरहित होती है, कहा है—रक्तपित्तकरैर्नार्या रक्तं पित्तेन दूषितम्। अतिप्रवर्त्तते योन्या लब्धे बीजेऽपि साऽप्रजा (सासृजा)

—च० चि० अ० ३०

दही, गुड़, मिर्च, लहसुन आदि पदार्थ वर्ज्य करते हुए, उसका उक्त उपचार दो माह तक किया गया। उसकी सब शिकायतें दूर हो गई, पूर्ववत् शरीर में शक्ति का संचार हुआ, तथा मासिक धर्म भी यथास्थित नियमानुकूल होने लगा। अनेमिया नष्ट हो गई।

अनुभव नं. २—लोहितक्षरा (रसवृद्धिजन्य)

स्त्री उम्र ३२। इसे अङ्गमर्द, सुस्ती, आलस्य, अपचन अस्वस्थता (बेचैनी) तथा बायें हाथ के नीचे के भाग में पीड़ा यह नित्य की शिकायतें थीं। मासिकधर्म प्रति १५ दिन के बाद शुरू होकर ४ दिनों तक जारी रहता था, किन्तु इसे थकावट नहीं थी।

ये सब रसवृद्धि के लक्षण हैं, ऐसा निदान कर उसे सोंठ, धनिया और सोंफ समभाग का पाचक क्वाथ, तथा आरोग्यवर्धिनी २ रत्ती और प्रवाल ४ रत्ती के मिश्रण की १ मात्रा के अनुसार प्रातः सायं शहद के साथ सेवनार्थ दवा प्रारम्भ की। लघु आहार के लिए कहा गया

उक्त उपचार के बाद प्रथम सप्ताह में ही अङ्गमर्द कम हो गया रुग्णा को स्वास्थ्य का अनुभव होने लगा। मासिक धर्म २२ दिन के बाद आना शुरू हुआ। हाथ के दर्द के लिये विषगर्भ तैल की मालिश और सेंकने का उपचार बतला दिया गया। इस प्रकार ३ माह के उपचार के बाद वह पूर्ण निरोगी हो गई मासिक धर्म २२ दिनों के बाद ही आता था, किन्तु स्राव के प्रमाण में बहुत कमी हो गई।

अनुभव नं. ३—लोहितक्षरा (वात प्रकोप)

रुग्णा उमर ४२। इसे कटिशूल और श्वेतस्राव अनेक वर्षों से जारी था। इसे भी अनेमिया समझ कर कई उपचार किये गये थे।

किन्तु यह भी लोहितक्षरा योनिरोग से ही ग्रस्त थी। बार २ मासिक धर्म तथा अधिक प्रमाण में रक्त स्राव हुआ करता था। इसीसे वातप्रकोप होकर रूक्षता की वृद्धि हुई, सौम्य एवं स्निग्ध शुक्र धातु का नाश हुआ। यह दुष्टि प्रतिलोम गति से शुक्र के पश्चात् मज्जा और तदनन्तर मेद धातु तक पहुंची, एवं मेद क्षीणता के कारण कटिशूल और रक्तक्षीणता ये लक्षण निर्माण हुए।

अस्थिगत् सरक्तमज्जा (Redmarrow) का क्षीणत्व यही उसके पाण्डुत्व या अनेमिया का मूल कारण है, ऐसा जानकर शुक्रधातुवर्धक चिकित्सा करने से रुग्णा को उपशय हुआ, रोग की बहुत कुछ शान्ति हुई। रुग्णा को—

वृष्यवटी (प्रयोग देखिये पीछे शुक्रक्षय के प्रकरण में) ४ रत्ती और प्रवाल ४ रत्ती के मिश्रण की एक मात्रा के अनुसार प्रातः सायं शर्करा मिश्रित दुग्ध के साथ दिन में दो मात्रायें सेवनार्थ देना प्रारम्भ किया, तथा भोजन के पश्चात् दशमूलारिष्ट का सेवन कराया गया -

प्रथम सप्ताह में श्वेतस्राव में बहुत कमी होगई रुग्णा को बहुत हर्ष हुआ। तथा इस हर्ष और आनन्द के कारण रुग्णा को शीघ्र ही स्वास्थ्य दशा प्राप्त हुई। क्योंकि आनन्द भी शुक्रवर्धक होता है। इस प्रकार उक्त उपचार से ही उसका लोहितक्षरा योनिरोग तथा पांडुरोग दूर होकर स्वास्थ्य का अनुभव हुआ

यहां तक आर्तव वृद्धि पर संक्षेप में विचार हुआ अब आर्तवक्षय पर विचार करें।

आर्तव क्षय या नाश

आर्तव नाश के मुख्य तीन प्रकार हैं—

(१) प्रारम्भ में ही, स्त्री के यथायोग्य आर्तवप्रवृत्ति के समय में (१२ से लेकर १३ या १५ वर्ष की अवस्था में) भी आर्तव की प्रवृत्ति न होना, यह **प्राथमिक अनार्तव** (Primary amenorrhea) कहाता है। ऐसा प्रायः गर्भाशय तथा बीजकोष (Ovary) के विलम्ब से परिपक्व होने के कारण या राजयक्ष्मा, रक्तक्षय या शरीरशोषक अन्यान्य रोगों के कारण भी होता है।

(२) **अन्तरस्थ ऋतुस्राव**—अर्थात् अनार्तव के इस प्रकार में आर्तव की प्रवृत्ति तो होती है, किन्तु वह बाहर नहींआता। इसे क्रिप्टोमिनोरिया (Crypto menorrhea) कहते हैं। इसमें कन्या के योग्य वय में आर्तव प्रवृत्ति होने पर भी, उसके बाहर आने को मार्ग में रुकावट होने से वह भीतर ही आवृत्त रहता है। प्रायः योनिमार्ग का न होना (Absence of vagina) या गर्भाशय की ग्रीवा में छिद्र का न होना या योनिद्वार के पर्दे (योनिच्छद Hymen) में छिद्र का न होना इत्यादि कारणों से प्रायः यह आवृत्तार्तव हुआ करता है। कभी-कभी आघात या शस्त्रकर्म के कारण भी योनिमार्ग या गर्भाशय के मुख में रुकावट पैदा हो जाया करती है।

अन्तरस्थ ऋतुस्राव या अनार्तव के इस प्रकार की

अवस्था में मासिकधर्म के समय बस्तिगह्वर या श्रोणि-प्रदेश (Pelvis) में पीड़ा, बेचैनी, सिरदर्द आदि लक्षण होते हैं। अतः अनार्तव की उक्त नं. १ या निम्न नं. ३ की अवस्थाओं में इस आवृत्तार्तव का ध्यान रखते हुए यदि हो सके तो रुग्णा के जननेन्द्रिय का परीक्षण अवश्य ही करना या करवा लेना चाहिए।

(३) **क्षीणार्तव या नष्टार्तव**—यह प्रकार अस्वाभाविक रजोरोध या रोगों के उपद्रव स्वरूप रजोरोध [Secondary Amenorrha] का है। इसमें अवस्था एवं परिस्थिति के अनुसार यथायोग्य समय पर स्त्री को आर्तव प्रवृत्ति होती है किन्तु आगे चलकर कुछ दिनों बाद वह अस्वाभाविक रूप से रुकावट के साथ होने लगता है या क्षीण और नष्ट दशा को प्राप्त होता है। ऐसा प्रायः रस की क्षीणता से (क्योंकि रज या आर्तव रस का ही उपधातु है), अथवा रक्तक्षय, राजयक्ष्मा, मधुमेह, पाण्डु, दुष्टार्बुद, मस्तिष्कार्बुद, शरीर क्षयकारी अन्य विकार, या चित्तोद्वेग (Malancholia) उन्माद आदि अन्यान्य मानसिक विकारों से भी होता है। उक्त प्रकार के विकारों में प्रायः पित्त का क्षय तथा वात कफ की वृद्धि होती है। इन दोषों की वृद्धि से गर्भाशय में आर्तव उत्पन्न होने का जो स्वाभाविक क्रम या मार्ग है वह आवृत्त हो जाता है। फलतः स्त्रियों का आर्तव क्षीण या नष्ट हो जाया करता है। इसीसे कहा है—

"दोषैरावृतमार्गत्वादार्तवं नश्यति स्त्रियाः।"

—सु० शा० अ० २

मेद (चरबी) की वृद्धि से भी आर्तव स्राव का मार्ग अवरुद्ध हो जाने से,अथवा रजोवाही शिरा या गर्भाशय का मुख अत्यन्त ही बारीक (सूचिवक्त्रा) होने से भी आर्तव-स्राव में रुकावटें आती हैं। तथा अपान वायु की विकृति या उसकी ऊर्ध्वगति हो जाने से भी उक्त दशा की प्राप्ति होती है। गर्भाशयस्थ अपानवायु के प्रमुख कार्यों में से यह भी एक कार्य है कि वह ठीक-ठीक प्रकार से रज का निष्क्रमण करें। किन्तु उसकी ऊर्ध्वगति के कारण आर्तव का स्राव ठीक नहीं हो पाता। उदावर्त्तायोनि-विकार में प्रायः ऐसा ही हुआ करता है। गर्भाशय में शूल होकर रज का स्राव फेनयुक्त बहुत ही अल्प प्रमाण में होना यह उदावर्तायोनि रोग का प्रमुख लक्षण कहा गया है—

"सा फेनिलं उदावर्त्ता रजः कृच्छ्रेणमुंचति।"

ध्यान रहे, नियमित रजोदर्शन नारी के सुन्दर स्वास्थ्य और सौन्दर्य का नियामक तथा सहायक होता है। आर्तव के नियत समय पर बिना कष्ट के आने से, स्त्री के अच्छे स्वास्थ्य का अनुमान किया जा सकता है जिस स्त्री को माहवारी ठीक समय पर बिना किसी कष्ट के होती है, उसे प्रायः अन्य रोग होने की बहुत कम सम्भावना रहती है। क्योंकि बिना कष्ट के मासिक स्राव के द्वारा स्त्री शरीर का दूषित या विषोत्पादक अंश निकल जाया करता है, जिससे शरीर पुनः ताजा (स्वस्थ) और गर्भधारण करने के योग्य बन जाता है।

प्रथम प्रकार का या द्वितीय प्रकार का आर्तवादर्शन—ऊपर आर्तवनाश (रजोदर्शन का न होना) के जो मुख्य तीन प्रकार कह आये हैं, उनमें से प्रथम प्रकार के अर्थात् 'प्राथमिक अनार्तव' या 'विलम्बित अनार्तव' @ Delayed meases or Retention of the meses) के जो कारण निर्दिष्ट किये हैं, उनके अतिरिक्त सर्वाङ्गीण दुर्बलता, धातुगत दोष आदि भी हो सकते हैं अथवा आवृतार्तव के जो कारण उक्त द्वितीय प्रकार में बतलाये हैं, उनमें से भी कोई कारण हो सकता है। तथा उक्त लक्षणों के अतिरिक्त भ्रम (चक्कर), दिमाग में गड़बड़ी उदर विकार, पेडू में बोझ, पीड़ा आदि कई लक्षण होते हैं और किसी-किसी को शोथ, मूर्च्छा या योषापस्मार (हिष्टीरिया) रोग भी होते देखा गया है।

उपचार—

कारणों की ओर ध्यान देते हुए उपचार करना आवश्यक है, प्रवीण शस्त्र चिकित्सक के द्वारा गर्भाशय या योनिमार्ग की विकृति को दूर करना होगा। यदि सर्वाङ्गीण दुर्बलता, धातुगत दोष, यकृत प्लीहा के रोग आदि

@ कभी-कभी क्वचित किसी स्त्री का गर्भाशय और बीजकोष दोनों ही सदा के लिये अपरिपक्व रह जाते हैं, जिससे उसे आर्तव दर्शन कदापि नहीं होता। इसे स्थायी अनार्तव (Permanent amenorrhea) कहते हैं। वह सदा के लिये वन्ध्या ही होती है।

हो इसके कारण हों तो, रुग्णा को उत्तम आहार, नियमित उष्ण-स्नान, साफ हवादार गृह में निवास, मन की प्रसन्नता रखना विशेष आवश्यक है। किसी तरह ठण्ड नहीं लगनी चाहिए। हलका पुष्टिकर खाद्य की योजना करते हुए, मासिक स्राव जारी करने के लिये, तथा दोषों के निवारणार्थ—

वंगभस्म योग—उत्तम वंगभस्म १ से २ रत्ती तक में १ रत्ती उत्तम लोह भस्म और १ से २ माशे तक एलुवा (मुसब्बर) मिला (१ मात्रा हुई) अच्छी तरह खरल कर शहद के साथ, प्रातः सायं सेवन करावें। शीघ्र ही बीज कोष (ovary) की फलवाहिनयां, तथा जननेन्द्रियां सबल होकर मासिकधर्म की रुकावट दूर हो जाती है।

कन्यालोहादि वटी—ऐलुवा १० तो० दालचीनी, इलायची और सोंठ ५-५ तोले तथा शुद्ध कसीस (कसीस को ३ घंटे तक भांगरे के रस में खरल कर धूप में शुष्क करलें, वह शुद्ध हो जावेगा) ७॥ तोले लेकर इनका महीन चूर्ण कर २० तोले गुलकन्द के साथ अच्छी तरह घोट कर १-१ रत्ती की गोलियां बना रक्खें।

'आर्य औषधि' नामक महाराष्ट्र ग्रन्थ का यह प्रयोग ऐसी दशा में बहुत उपयुक्त है। मात्रा—१ से २ गोली जल के साथ प्रातः सायं सेवन कराने से मासिक धर्म नियमित रूप से आने लग जाता है और ठीक प्रमाण में आता है, उदर पीड़ा, सिरदर्द, बेचैनी, अग्निमांद्य, अरुचि, मलावरोध आदि शिकायतें दूर हो जाती हैं। किन्तु, ध्यान रहे, यदि रुग्णा के शरीर में रक्ताल्पता हो और पांडुता आ गई हो, तो प्रथम त्रिफलारिष्ट, सुवर्णमालनी वसन्त आदि रक्तवर्धक औषधियों का यथोचित सेवन कराने के पश्चात् मासिकधर्म की शुद्धि के लिए इस प्रयोग का सेवन कराने से उत्तम लाभ होता है। मिष्टान्न द्विदल धान्य (अरहर, चना, मटर आदि) एवं कोई भी गरिष्ठ पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए। तथा इस औषधि का सेवन नियम पूर्वक ३ से ६ मास तक कराने से पूर्ण लाभ होता है। छोटी तथा बड़ी आयु वाली सब स्त्रियों को इसका सेवन कराया जा सकता है। मासिक धर्म आने पर १० दिन तक इसका सेवन बन्द कर पुनः प्रारम्भ कर देना चाहिए। इससे मासिक धर्म की अनियमितता एवं अप्रमाणता (कभी कम और कभी ज्यादा होना) दूर हो जावेगी।

जननेन्द्रियों की निर्बलता को दूर करने के लिये इस कन्यालोहादि वटी के साथ यदि वंगभस्म का सेवन कराया जाय तो और भी उत्तम लाभ होता है।

मण्डूर भस्म योग—मण्डूर भस्म १ से ३ रत्ती तक की मात्रा में, महीन त्रिफला चूर्ण २ माशे तथा उत्तम घृत ६ माशे और मधु १ तोला मिला (यह १ मात्रा हुई) प्रातः सायं नियम पूर्वक एवं पथ्यापथ्य का ध्यान देते हुये सेवन कराने से उत्तम लाभ होता है।

इस योग के विषय में औषधि गुण धर्म शास्त्र में लिखा है कि कन्या का बाल्यावस्था में कमजोर रहने से या मृदुस्थि (रिकेट्स) या देह को निर्बल बनाने वाले किसी प्राकृतिक रोग से, या अतिसार, संग्रहणी आदि किसी आन्त्र सम्बन्धी चिर व्याधि से, अथवा यकृत, प्लीहादि रोगों के कारण कभी-कभी लड़की की आयु बड़ी होने पर भी सर्वाङ्गीन निर्बलता, कृशता रहती है, रजोदर्शन नहीं होता, चेहरा निस्तेज, गाल कुछ सूजे से रहते हैं, और सूक्ष्म ज्वर भी कभी कभी रहता है। और स्त्री-बीज कोषों और गर्भाशय आदि जननेन्द्रियों का योग्य विकास न होने से मासिकधर्म की प्रवृति ही रुक जाती है। ऐसी अवस्था में उक्त मण्डूर भस्म योग उत्तम सफल कार्यकारी होता है।

नष्ट पुष्पान्तक रस—पारा, गन्धक, लोहभस्म, वंगभस्म, सुहागे की खील, चांदी भस्म, अकीक भस्म और ताम्रभस्म ४-४ तोले लेकर, पारे गन्धक की कज्जली के साथ शेष द्रव्यों को खरल कर उसमें गिलोय, त्रिफला, दन्ती, हारसिंगार, कटेली, मकोय, हल्दी, वासा और खरैंटी में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ की ३-३ भावनायें देवें, पश्चात् सेंधानमक, मुलैठी, दन्तीमूल, लौंग, वंसलोचन, रास्ना और गोखरू प्रत्येक का चूर्ण ४-४ माशे मिला, उसे तुलसी के रस में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

यह रस चण्डांशु ग्रन्थ का योग मासिक धर्म को खोल देता है, नष्टार्तव, नष्टशुक्र, योनिदाह, योनिक्लेद आदि विकारों को दूर करता है। मात्रा—१ से २ गोली तक उष्ण जल के साथ देनी चाहिये।

पाश्चात्य प्रयोगों में से—फेरी फास्फेट Ferri-

phosphate) और पोटोशियम फास्फेट (Potassium phosphate) की ५-५ ग्रेन, की मात्रायें एकत्र मिलाकर इसकी २ मात्रायें प्रातः सायं सेवन कराते रहने से शरीर पुष्ट होकर रजोदर्शन हो जाता है। ऐसा कई डाक्टरों का अनुभव है।

(६) सर्व साधारण प्रयोगों में से—

नीम की छाल और गुड़ २-२ तोले के साथ सोंठ ४ माशे जोकुट कर १॥ पाव जल में औटाकर आधा पाव शेष रहने पर छान कर पिलाने से; और—

काले तिल और गोखरु १-१ तोला एकत्र कर थोड़ा कूट कर ५ तोले जल में रात्रि के समय भिगो देवें। प्रातः अच्छी तरह मसल छानकर जो रस निकले उसमें थोड़ी शक्कर मिला नित्य प्रातःकाल पिलाया करें। अवश्य लाभ होता है। ताप्यादि लोह तथा फलघृत आदि का भी सेवन कराया जा सकता है।

अनार्त्तव का तृतीय प्रकार

क्षीणार्तव या नष्टार्त्तव (असमय में मासिक धर्म का बन्द होना)—

योग्य समय पर रजोदर्शन का न होना अथवा रजः स्राव कम होना और योनि में पीड़ा होना आदि लक्षण होते हैं। जैसा कि कहा है—

आर्तवक्षये यथोचितकालादर्शनमल्पता वा योनिवेदना च॥ —सु. सू. अ. १५

आर्तव के क्षय होने पर रुग्णा को चरपरे, खट्टे, नमकीन, विदाही, गरम और भारी (गरिष्ट)भोजन की तथा इसी प्रकार के फल, शाक-सब्जी और पेय पदार्थों की वासना होती है। कहा है—

कट्वम्ललवणम्लानि विदाहीनि गुरुणि च।
फलेशाकानुपानानिस्त्री वाञ्छत्यार्तवक्षये॥
(डल्हण टीका, सु. सू. अ. १५)

चिकित्सा की दृष्टि से नष्टार्त्तव असमय में मासिक बन्द होना या कष्टार्त्तव (Dysmenorrhea) के दो भेद किये जा सकते हैं—

(१) वातमण्डल (Neuralgic) विकृतिजन्य और (२) रक्तसंचयात्मक (Congestive)।

(१) वातमण्डल विकृतिजन्य कष्टार्त्तव या नष्टार्त्तव के कारण।

मासिक धर्म के समय आर्द्र स्थान में घूमना-फिरना, शीतल जल से स्नान करना, शीतल या जलीय प्रदेशों में रहना, पानी में भीग कर कोई काम करना, अधिक समय तक जल में खड़े रहना, ठण्ड या सरदी का लगना, अजीर्ण, विलासी जीवन, परिश्रम न करना, अधिक विषय सेवन, उपवास, रक्ताल्पता, पाण्डु, गण्डमाला, श्वेत प्रदर या डिम्बकोष (Ovary) का कोई रोग, यकृत विकार, फेफड़ों की खराबी, मानसिक दुःख, शोक, प्रबल उद्वेग, उत्तेजना, ईर्षा, द्वेष, पति के प्रति अप्रीति, अधिक रोना आदि कारणों से हुआ करता है।

उक्त कारणों से होने वाला कष्ट या नष्टार्त्तव प्रायः युवतियों को युवावस्था में होता है। तथा कभी-कभी उस स्त्री को भी होता है जिसे ऋतु के आरंभकाल से १० या १२ वर्षों तक कोई संतान न हुई हो। प्रत्येक वार संभोग काल में पुरुष के ही प्रथम स्खलित हो जाने के कारण स्त्री की विषय कामना की पूर्ति न होने से भी उसे जो एक प्रकार का क्षोभ होता है उससे भी यह अवस्था प्राप्त हो सकती है। दुर्बल एवं कोमल प्रकृति वाली युवतियों का अत्यधिक मैथुन में प्रवृत होना इस विकार का प्रमुख कारण माना जा सकता है। वन्ध्या स्त्रियों में भी यह विकार अपेक्षाकृत अधिक होता है।

लक्षण—मासिकस्राव के प्रारम्भ होते ही या उसके दो एक दिन पूर्व ही तथा जितने दिन ऋतुस्राव होता है उतने दिनों तक रुग्णा के कटि प्रदेश में, पेडू में, तथा जांघ, पीठ, डिम्बकोष एवं जरायु में असह्य पीड़ा होती है। प्रथम तीन दिनों तक असह्य पीड़ा होकर फिर धीरे-धीरे कम होती है। पीड़ा भी ठहर-ठहर कर होती है, तथा कभी सिरदर्द और मूर्च्छा के लक्षण दिखाई देते हैं। रक्त थोड़ा निकलकर किसी कुपथ्य से रुक जाय या स्वभावतः जनेनन्द्रिय की दुर्बलता से कम मात्रा में निकलें तो भी पीड़ा असह्य होती है, जिससे स्त्री बेचैन हो जाती है। ऋतु के इस कष्ट के साथ ही साथ वातप्रकोप के अन्यान्य विकार सिर में पीड़ा, स्वभाव में भीरुता, चिड़चिड़ापन, चक्कर, श्वास कष्ट, कलेजे में धड़कन, पैर के पंजों में सूजन, मितली, वमन, अग्निमांद्य, प्रलाप, उन्माद, हिस्टीरिया आदि विकारों के लक्षण होते हैं। कभी-कभी

उक्त असह्य पीड़ा की दशा में आर्त्तव के साथ गर्भाशय या जरायु की श्लैष्मिक झिल्ली के टुकड़े भी निकलते हैं। इसे मेम्ब्रनस डिसमेनिरिया (Membranous dysmenorrhoea) कहते हैं। उस समय प्रसव वेदना जैसी पीड़ा होती है।

उपचार-

इस विकार की चिकित्सा करने के पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि रुग्णा को गर्भधारणा तो नहीं हुई है। यदि गर्भधारणा न होने का निश्चय हो जाय तो नष्टार्त्तव या कष्टार्त्तव की उक्त किसी भी अवस्था में वात-प्रकोप शामक उपचार-लघुपोषक आहार, फल, मक्खन, दूध,मांसरस, अण्डे की जर्दी आदि बलवर्धक आहार की योजना, तथा साधारण व्यायाम के साथ-साथ पूर्ण आराम की भी योजना करते हुए प्रकृति, देशकालादि का विचार कर उचित बलवर्धक औषधियों की योजना करनी चाहिए। यदि रुग्णा में रक्ताल्पता हो तो साधारण रक्तवर्धक उपचार भी करते रहने से स्वाभाविक ही ऋतु ठीक आने लग जाता है। यदि इसमें सफलता न मिले तो साथ ही साथ निम्न साधारण प्रयोगों का व्यवहार करें—

ध्यान रहे, शरीर में वातहर तैलों की मालिश के साथ पहले शरीर में बलवर्धक औषधियां देनी चाहिए। परन्तु बलवर्धक औषधियां ऋतुकाल के अतिरिक्त दिनों में सेवन करानी चाहिए, तथा ऋतुकाल में पीड़ा शामक औषधि का सेवन कराना चाहिए।

ऋतुकाल में प्रायः वातनाड़ियों की दुर्बलता से आर्तव के निकलने में बड़ी कठिनता होती है, तथा रुग्णा इसी यन्त्रणा से विह्वल हो जाती है। ऐसी दशा में रुग्णा को एक टब में, जिसमें पोस्त के डोंडों का गरम कषाय और सोड़ा पड़ा हुआ हो, कमर तक जल में बैठाना चाहिये, १५ या २० मिनट तक जल में बैठाने के बाद शरीर को अच्छी तरह पोंछकर गरम वस्त्र ओढ़ादें और पेडू पर गरम जल की बोतल का सेंक करें। साथ ही गर्भाशय के मुख पर धतूरा रस क्रिया (Extract Belladona) यशद भस्म और रसौत को एक पोटली से बांधकर रक्खें। यदि इस उपचार से पीड़ा शांत न हो, तो मार्फिया का त्वचा में सूची वेध कर दें। परन्तु स्त्री का हृदय यदि दुर्बल हो, तो यह सूचीवेध अच्छा नहीं रहता। ऐसी दशा में कोई निद्राजनक औषधि (जो हृदयावसादक न हो) देनी चाहिये। ऋतु काल व्यतीत होने पर बल्य औषधियां देनी चाहिए। इसके लिये आयुर्वेदीय वृहत् योगराज गुग्गुल को अश्वगन्धारिष्ट और दशमूलारिष्ट के साथ या केवल दशमूल क्वाथ के साथ सेवन कराना उत्तम है।

रक्त की न्यूनता के कारण यह कष्ट हो तो लोह के योग जैसे चिन्तामणि चतुर्मुखरस, वात चिन्तामणि रस आदि को बलाकषाय के क्षीरपाक के साथ देवें और भोजनोत्तर बलारिष्ट का प्रयोग करें। शरीर में प्रतिदिन बलातैल या नारायण तैल की मालिश करावें। रात के साथ इस रोग में यदि पित्त का भी प्रकोप हो तो शतावरीघृत या अश्वगन्धादिघृत को दूध में मिलाकर कुछ काल तक सेवन कराना चाहिए। कई बार देखा गया है कि गर्भस्थिति हो जाने से भी इस विकार की शाँति हो जाती है।

(धन्वन्तरि नारीरोगाङ्क में प्रो० धर्मानन्दजी के लेख से साभार)

कपास के फूल और पत्ते आधपाव लेकर सेर भर जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमें थोड़ा गुण मिला कर पिलाने से, अथवा—

कपास की जड़ ● १ तोला का चूर्ण कर एक पाव जल में पकावें। आधा पाव शेष रहने पर थोड़ी शक्कर मिला उसकी दो खुराक दिन में २ बार पिलाने से अथवा—

मूली के बीज, गाजर के बीज और मैंथी चूर्ण १-१ माशा खरल कर ३ मात्रायें, उष्ण जल से पिलाते रहने से मासिक सम्बन्धी कष्ट दूर हो जाते हैं। अथवा—

एलुवा २ तोले तथा हीराकसीस और केशर १-१ तोला लेकर तीनों को अर्क सोंफ में घोट कर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें। मासिक धर्म या ऋतुकाल के ७ दिन पहले से प्रातःसायं १-१ गोली गरम पानी के साथ सेवन कराने से भी विशेष लाभ होता है।

विशेष प्रयोग-

स्त्री गदान्तक वटी—एलुवा, रक्तबोल, सुहागे क

● पीले फूल की देवकपास की जड़ लेनी चाहिए। इसका पौधा काफी बड़ा होता है।

फूला और दालचीनी प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोले तथा हीरा कसीस, सोंठ और क्विनाईन १-१ तोला सबका चूर्ण एकत्र कर उसमें गोली बनाने लायक शहद मिला खूब घोंटकर चने जैसी गोलियां बनालें।

ऋतुकाल के ६ दिन पहले से प्रातः सायं २-२ गोलियां जल के साथ सेवन करावें। ठीक ऋतु आने पर लग जाता है, ऋतु ठीक आने पर यह प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। इन गोलियों के साथ कुमार्यासव एक चम्मच दिया जाये तो और भी अधिक लाभ होता है। यह प्रयोग प्रत्येक मास में ऋतु आने से ६ दिन पूर्व सेवन करावें। इस प्रकार २-३ बार कराने से सब विकार दूर हो जाते हैं। गर्भ-रहने का निश्चय हो गया हो वहां ऐसी दवायें न देनी चाहिये।

यदि बहुत ही कष्ट के साथ ऋतु आता है तो उस समय उक्त गोलियों के साथ उलटकम्बल ❀ के क्वाथ (या बाजार में तैयार मिलने वाले इसके प्रवाही सार) की ४ या ६ खुराक देने से शीघ्र ही पीड़ा शान्त हो जाती है, और बिना कष्ट के ऋतु ठीक समय पर आ जाता है। उक्त उलटकम्बल के प्रवाहीसार (या टिंचर) की मात्रा दो छोटी चम्मच है। (वैद्य गोपाल जी कुवर जी ठक्कर का यह खास प्रयोग बड़े मार्के का है)।

रज प्रवर्तिनी वटी नं० १—सुहागा फुलाया हुआ घृत में भूनी हुई हींग, शुद्ध कसीस, और घृतकुमारीसार (मुसब्बर या एलुवा) सब समभाग चूर्ण कर एकत्र घीक्वार के रस में अच्छी तरह खरल कर (लगभग ६ घण्टे खरल करें) चने जैसी गोलियां (लगभग २-२ रत्ती की गोलियां) बना रक्खें। मात्रा—१ से २ गोली। अनुपान में—

काले तिल, इन्द्रायनमूल, अमलतास का गूदा और सौंफ के पौधे की जड़ २-२ भाग, बांस की गांठ, कपास मूल, गाजर बीज, मूली बीज, ककड़ी बीज की गिरी और हंसराज १-१ भाग लेकर, सबका जौकुट चूर्ण कर, ३ तोले चूर्ण को १६ गुने जल के साथ चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसकी ३ खुराक दिन में ३ बार (प्रातः, दोपहर और रात्रि को) थोड़ा-थोड़ा गुड़ मिलाकर गोली के ऊपर पान करावें। अथवा केवल काले तिल का क्वाथ बना, कुछ ठंडा होने पर गुड़ मिलाकर पिलावें। अथवा केवल मदोष्ण या स्वच्छ जलानुपान के साथ सेवन करावें।

मासिक धर्म यदि शुरू हो जाय तो १० दिन तक इसका सेवन बन्द रक्खें। उक्त वटी का प्रयोग भैषज्य रत्नावली का सर्व प्रसिद्ध एवं प्रमाणित है।

रजः प्रवर्तिनी वटी नं० २—दालचीनी, एलुवा तथा शुद्ध कसीस १-१ तोला का महीन चूर्ण एकत्र कर उसमें शुद्ध अफीम १ तोला को हुलहुल के पत्र रस में घोलकर मिलावें तथा अच्छी तरह खरल कर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। प्रातः और रात्रि में दो बार १-१ गोली निम्न क्वाथ के साथ सेवन करावें—

सोंठ, मिर्च, पीपल १-१ माशा, वायविडंग, भारंगी, बिनौला, इन्द्रायन मूल, श्वेत बच, मूली के बीज गाजर बीज और सोया बीज ३-३ माशे तथा काले तिल २ तोला सबका जौकुट चूर्ण कर २० तोले जल में भिगोकर, अग्नि के ऊपर औषधि पात्र को चढ़ा देवें और इसमें पुराना गुड़ २॥ तोले डाल देवें। ५ तोले काढ़ा शेष रहने पर छान-कर पिलावें। यदि इस क्वाथ से अधिक दस्त आने लगें तो उक्त योग में से इन्द्रायनमूल निकाल देना चाहिए। इस प्रकार रोगी देश कालानुसार इस प्रयोग के सेवन से बहुत अच्छा लाभ होता है। यह प्रयोग श्रीमती इन्दिरा देवी जी शास्त्री का प्रमाणित है।

कसीसादि वटी—कसीस (शुद्ध), भुनी हींग, सुहागे का फूला, सोंठ, चित्रकमूल, इन्द्रायनमूल, इन्द्रायन के फल, जवा-खार, सज्जीखार, सेंधा नमक, हल्दी, दारुहल्दी, कपूर और समुद्रझाग समभाग कूटछानकर तथा घीकुंवार के रस में खरल कर चने जैसी गोलियां सेवनार्थ और कुछ शिखराकार की गोलियां (सोगठियां) जननेन्द्रिय में धारणार्थ बना रक्खें। मात्रा—प्रकृति और शक्ति के अनुसार २ से ४ गोली तक दिन में २ बार सेवन करावें और आवश्यकतानुसार

❀ उलटकम्बल एक वनस्पति है, जो प्रायः बंगाल में होती है। यह वनस्पति इस काम के लिये बहुत चमत्कारिक लाभ करती है, जरूर उपयोग करके देखना चाहिये। जिन्हें यह वनस्पति न मिले, वे बंगाल केमिकल के एजण्टों से इसका प्रवाही-सार खरीद कर काम में ला सकते हैं।

सोगठी योनिमार्ग में रखने से नष्टार्तव और पीड़ितार्तव आदि मासिकधर्म के कष्ट दूर होते है और ऋतु समय पर आने लग जाता है।

रसतंत्रसार में इस प्रयोग के विषय में कहा है कि-कई मेद बड़ी हुई स्त्रियों के गर्भाशय और बीजाशय बहुत कठोर होते हैं। उनको मासिक धर्म आने पर अति कष्ट होता रहता है, रजःस्राव बहुत कष्ट मे होता है। उनको ऊपर कहे हुए (रजःप्रवर्तनी वटी नं० १ में कहे गए) अनुपान के साथ कासीसादि वटी का मासिकधर्म आने पर (या ऋतुकाल में) १५-१५ दिन ३ मांस तक पथ्य भोजन, ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक सेवन कराने पर गर्भाशय नरम हो जाता है। फिर मासिकधर्म नियमित बिना कष्ट के आने लगता है। यदि वेदना तीव्र हो तो पेड़ू पर निम्नाङ्कित पीडितार्तवहर लेप भी लगावें।

पीड़ितार्तवहर लेप—तिल और सरसों की खली, खजूर(गुठली रहित)४-४तोले,डीकामाली,गूगल,एलुवा और पोस्त के डोंडे २-२ तोले इन सबको २० तोले जल में मिला, हलवे केसमान पकावें। फिर सहन हो सके वैसा गरम रहने पर शाम को गर्भाशय और बीजाशय के ऊपर प्रथम तैल का हाथ लगाकर लेप करें। ऊपर रुई चिपकावें और कपड़ा बांध देवें। प्रातः लेप निकाल कर थोड़ा तेल चुपड दें। कभी-कभी केवल इस लेप के ही प्रभाव से बहुत लाभ होता है। मासिकधर्म साफ आ जाता है, कष्ट नहीं होता। गर्भाशय में शोथ हो तो वह भी दूर हो जाता है। यह अति निर्भय और श्रेष्ठ उपाय है। शीतकाल हो या कष्ट अधिक ही होता हो, तो लेप लगाकर लोटे में या रबड़ की थैली में गरम जल भरकर २०-३० मिनट सेक करें। सेक अधिक समय तक न करें कारण गर्भाशय के ऊपर मूत्राशय होने से उसमें उग्रता आ जाती है। फिर पेशाब करने में कष्ट पहुँचता है (र० तं० सार भा० २)

रजः प्रवर्तक चूर्ण—भारंगी, कालीमिर्च पीपल, और सोंठ ८-८ माशे और भूनी हींग ३ माशे लेकर चूर्ण करें। मात्रा—२ से ३ माशे, अनुपान ब्राह्मी १ तोला और काले तिल ५ तोले के क्वाथ के साथ सेवन करावें। मासिक धर्म आने के समय से १० दिन पहले से रोज प्रातः देवें। मासिकधर्म आने पर चूर्ण देना बन्द कर। इस प्रकार ४—६ मांस तक देते रहने से मासिक धर्म रुकावट, शूल, कमर में दर्द, अरुचि, बेचैनी आदि दूषित रक्त की विकृति से होने वाले विकार दूर होते हैं। बीजाशय नलिका में अवरोध होने से रजःस्राव में कष्ट होता है, तथा पूरा स्राव नहीं होता। इसी हेतु से मस्तिष्क में भारीपन और वेदना, दृष्टिमांद्य, शारीरिक निर्बलता तथा पाण्डुतादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर इस चूर्ण का प्रयोग किया जाता है।

यह औषधि सामान्यतः १५ से ३५ वर्ष की आयु वाली स्त्रियों को दी जाती है। आगे रजोधर्म के बन्द होने का स्वाभाविक समय आता है, उस समय उत्पन्न हुए विकारों पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। यदि रुग्णा का शरीर निर्बल हो, पाण्डुरोग से पीड़ित हो, तो मासिकधर्म के ५ वें दिन से स्वर्णमालिती वसन्त या लोह प्रधान औषधि का सेवन १५-१५ दिन तक कराते रहना चाहिए।

मासिक धर्म के दिनों में मलावरोध नहीं रहना चाहिये। भोजन लघु पौष्टिक लेवें। ३ दिन तक स्नान न करें और शीतल वायु का सेवन भी न करें। नेत्रों को अधिक कष्ट न देवें। शान्ति से लेटे रहना विशेष हितावह है। यदि रुग्णा को मासिकधर्म काल में मलावरोध हो तो सनाय या स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण देकर कोष्ठ शुद्धि करा लेनी चाहिए। अन्यथा रजःस्राव पूरा नहीं हो सकेगा (र० तं० सार से साभार)।

इस विषय में पं० शिवशर्मा जी की निम्नलिखित सूचना स्मरणीय और प्रयोग विशेष लाभकारी है—

आजकल का जीवन जैसे पुरुषों को वैसे ही स्त्रियों को वात प्रकृति बनाता जा रहा है। घी, दूध, दही आदि का व्यवहार ही उठ गया है। जहां व्यवहार है भी वहां असली दूध, घी ही नहीं मिलते। पानी, चर्बी, तैल आदि की मिलावट से बचना असम्भव हो गया है। चाय, अचार खटाई आदि का प्रयोग, शरीर को पतला बनाने वाले लंघन आदि, सब ही क्रियायें वायु को प्रकुपित करती हैं। ऐसी अवस्था में बहुत सी स्त्रियों को अल्पार्तव या नष्टार्तव हो जाता है। इन रुग्णाओं को कई बार उष्ण-वीर्य औषध देकर रक्त को प्रवृत्त करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु उससे आर्तव व भी सूख जाता है,

क्योंकि उसके कम होने का प्रधान कारण रूक्षता है, न कि पैत्रिक क्रियाओं का ह्रास।

इनके लिये निम्न प्रयोग कई बार लाभप्रद सिद्ध हुआ है—

बादाम मीगी ७ और छुहारा १ को रात के समय जल में भिगो दें। प्रातः बादाम का लाल छिलका तथा छुहारे की गुठली निकाल कर पीसें, और उसमें अर्ध रत्ती या १ रत्ती केशर तथा २ तोले मक्खन मिलाकर खिलावें उचित पथ्य दें। गर्म पदार्थों व खटाई से परहेज रक्खें। प्रायः डेढ़ दो मास के उपचार से ऋतु खुलकर आने लग जाता है। (धन्वन्तरि से)।

ऋतुरोध निवारक देशी अर्गट—यवक्षार, सज्जीखार, दन्तीक्षार १-१ तोला और कलमीशोरा १० तोले, इन चारों क्षारों को १ तोला उबले हुये जल में डालकर छानकर एक स्वच्छ शीशी में भर रक्खें। निम्न एलादि क्वाथ को बना रक्खें—

बड़ी इलायची, दालचीनी, अखरोट का छिलका १-१ तोला तथा हंसराज, बाँस का छिलका, छुहारा (बीज निकाला हुआ), मुनक्का (बीज रहित) गाजर बीज, प्याज के बीज, मेंथी के बीज २-२ तोले और सोया के बीज ८ तोले। सबको जौकुट कर अष्टावशेष क्वाथ बना, उसमें उत्तम मद्य चतुर्थांश मिलाकर छान लें, तथा एक शीशी में पुराने गुड़ की चाशनी बना रक्खें।

उक्त क्षार मिश्रण की मात्रा चौथाई से आधा तोला में ऐलादिक्वाथ आधा से १ तोला, तथा गुड़ की चाशनी आधा तोला तक और गरम पानी २ से ४ तोले तक एकत्र मिला(यह१मात्रा हुई) इस प्रकार की२-३ मात्रायें दिन में २-३ बार पिलाने से, किसी को शीघ्र किसी को कुछ दिन में मासिक धर्म खुलकर आता है, तथा ऋतुशूल भी नष्ट होता है। इसे केवल रजःकष्ट पर ऋतु आने के समय २-३ दिन पहले और आर्तव समय २-३ दिन नियमानुसार पिलाकर बन्द कर देना चाहिए। गर्भवती को नहीं देवें।

गर्भाशय शुद्धि के लिये और रजःशुद्धि के लिये एवं गर्भागम के पश्चात् या बच्चा हो जाने के बाद इस प्रयोग की २-३ मात्रायें गर्भाशय की शुद्धि के लिए या आंवल निकालने के लिये देना चाहिए।

यह प्रयोग अंग्रेजी 'अर्गट' के समान गर्भाशय संकोचक है। अधिक सेवन नहीं कराना चाहिए। अर्गट तो गर्भाशय पर दी जाती है, किन्तु यह प्रयोग गर्भाशय का मुख भी खोल देता है। अधिक सेवन कराने से फिर गर्भाशय का मुख बन्द नहीं होगा। अतः सावधानी से कार्य में लाना चाहिए।

(श्रीमती सरोजनी देवी वैद्या का प्रयोग—गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क से)

आसवारिष्टों में—एलुवासव—एलुवा १ तोला और मद्य (२० से ६० प्रतिशत वाली) २० तोले दोनों को एकत्र कर बोतल में भर दृढ़ कार्क लगाकर, ७ या १५ दिन तक रक्खें। बीच में हिलाते जावें। फिर फलालैन या ऊनी वस्त्र से छानकर सुरक्षित रक्खें। उक्त मद्य के स्थान में संजीवनीसुरा ४० तोले तक ले सकते हैं।

मात्रा—२ माशे से १ तोला तक, दिन में दो बार ५ तोले तक जल मिलाकर सेवन करावें। इससे पेट साफ होकर, क्षुधा वृद्धि होती है तथा रजोधर्म के कष्ट दूर होते हैं।

सारस्वतारिष्ट-[भै. रत्नावली का] देखो वृहदासवारिष्ट संग्रह। यह अरिष्ट उस अवस्था में उत्तम कार्य करता है, जब मासिक धर्म के असमय से ही बन्द हो जाने से चक्कर (भ्रम), घबड़ाहट, बेचैनी, हाथ-पैरों में शून्यता, निद्रानाश, कर्णनाद आदि विकार हों। ऐसे अवसर पर इसकी मात्रा—६ माशे से २ तोले तक दिन में दो बार समभाग जल और २ से ४ रत्ती तक स्वर्णमाक्षिक भस्म मिलाकर सेवन कराते हैं। स्त्रियों के बीजाशय [वैसे ही पुरुषों के अण्डकोष] की वृद्धि यथोचित प्रमाण में न होने से आयु वृद्धि होने पर भी शरीर का विकास उचित अंश में नहीं होता। ऐसी दशा में इस अरिष्ट का सेवन मकरध्वज और वङ्गभस्म के साथ कराया जाता है।

देवदार्वाद्यरिष्ट भी ऐसी अवस्था में उत्तम लाभदायक होता है। गर्भाशय के विकारों को यह शीघ्र ही दूर कर देता है। ऋतुस्राव बन्द हो गया हो या थोड़ा-थोड़ा स्राव किन्तु दुर्गन्ध रहित होता हो, गर्भाशय के चारों ओर वेदना हो, साथ ही ज्वर भी हो, तो इसका उपयोग रोग की प्रारम्भिकावस्था में अच्छा कार्य करता है। स्राव में दुर्गन्ध हो या कीटाणुजन्य विषप्रकोप और व्रण आदि से उत्पन्न

तीव्र विकार हों तो इसके स्थान में दशमूलारिष्ट का प्रयोग करना चाहिए।

द्राक्षासव के साथ अग्नितुण्डी वटी—यदि दस्त साफ न होता हो, खुष्क होता हो, दुर्बलता हो और रक्त की कमी हो तो अग्नितुण्डी वटी (शार्ङ्गधर की) का सेवन १ गोली शाम को गर्म जल से देवें और द्राक्षासव दोनों शाम भोजन के बाद, मात्रा १ से २॥ तोले तक दोगुने जल के साथ देवें। लगभग १।। मास तक इस प्रयोग को जारी रक्खें। अवश्य लाभ होगा। यदि विबन्ध विशेष हो तो द्राक्षासव के स्थान पर कुमार्यासव देना उत्तम होता है। कुमार्यासव के प्रयोग से पेट का आध्मान, गुड़गुड़ाहट, शरीर की पांडुता और रक्ताल्पता शीघ्र ही दूर होगी।

विशेष ज्ञातव्य——ध्यान रहे, उपर्युक्त कोई भी प्रयोग के सेवन के साथ ही साथ गरम पानी की बोतल या केवल गरम पानी से भिगोकर कपड़ा से सेंक करना तथा तारपीन तेल की पेट पर मालिश या गोमूत्र से सेंक करना, पोटली, वर्तिका, योनिमार्ग प्रक्षालन (डुश) आदि वाह्य उपचार भी करते रहना आवश्यक है ×

गर्भाशय में रखने के लिये यह पोटली अच्छी है—कडुई तोरई का गूदा, छोटी पीपल, मैनफल, जवाखार, पुनर्नवा के बीज और पुराना गुड़ समभाग लेकर उक्त द्रव्यों के महीन से महीन चूर्ण बना, गुड़ में अच्छी तरह मिला रक्खें। इसमें से १ से ३ माशे तक चूर्ण आवश्यकतानुसार लेकर उसमें थोड़ी शराब (मद्य) मिला, साफ कपड़े में पोटली बना, रात्रि में सोते समय गर्भाशय में रखते हैं। इससे मासिक धर्म खुलकर होने लगता है।

वर्तिकाओं में—कड़वी तुम्बी के बीज, दन्तीमूल, छोटी पीपल, मैनफल, मुलैठी इनके महीन चूर्ण में मद्य की गाद (सुराबीज) और थोड़ा गुड़ मिला थूहर के दुग्ध के साथ खरल कर वर्ति बना योनि में रखने से अथवा—

नरकचूर, लौंग, सोयाबीज, वायविडंग, अजमोद, गन्दाबिरोजा, फिटकरी का फूला और सेंधा नमक १-१ तोले का एकत्र किये हुये महीन चूर्ण में शुद्ध तिल तैल १५ तोले मिला रखें। इस तेल में अंगुष्ठ प्रमाण रुई का पिचु या स्वच्छ मुलायम महीन वस्त्र की मोटी वत्ती डुबोकर और थोड़ा निचोड़कर रात्रि में सोते समय योनि में रखने से, अथवा—

थोड़े से गुड़ को, बहुत थोड़े घृत में मिला किसी पात्र में आग पर रक्खें। जब वत्ती बनाने योग्य हो जाय तब थोड़ा रूखा बिरोजा पीस मिलाकर बत्ती बना गर्भाशय के मुख में पहुँचाने से अथवा—

देवदाली (कडुवा विदाल) का फल और एलुवा ६-६ माशे ले, दोनों को तेज शराब में पीस, पतले कपड़े पर लेप करें, फिर कपड़े को गूण्ड वत्ती सी बनालें। इसे योनिमार्ग में धारण करने से मासिकधर्म आने लग जाता है। साथ ही साथ सत्यानशी की जड़ को जल में पीस नाभी पर प्रलेप करें।

डुस या योनि में वस्ति देने के लिये—दशमूल १० तोले, त्रिफला ३ तोले तथा माजूफल, असगन्ध, हल्दी, जावित्री, दन्ती, गोखरू, समुद्रफेन, छारछबीला, रास्ना, कायफल, जायफल और लौंग १-१ तोला सबको जौकुट कर रक्खें। इसमें से १ तोले चूर्ण को ३ पौंड पानी में १२ घण्टे भिगोकर आग पर चढ़ा १॥ पौंड शेष रहने पर, कुछ ठण्डा होने पर इसका डुश कुछ समय तक लेते रहने से योनि के समस्त रोग दूर होकर नियमित रूप से मासिकधर्म होने लगता है (श्रीमती इन्दिरा देवी जी शास्त्री) डुस की क्रिया प्रतिदिन ताजे क्वाथ से ही करनी चाहिए।

यूनानी प्रयोगों में-निम्न प्रयोग उत्तम है-मुस्तकरामसी, रेवन्द चीनी, तगर, हरमल, सातर, सौंफ

× सुश्रुत शा० अ० २ में कहा है-

स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्तववार्तिषु। कुर्यात्कल्कान् पिचूंश्चापि पथ्यान्याचमनानि च॥

अर्थात् चतुर्विध आर्तव दोषों में [वात, पित्त, कफ और रक्त इन चार दोषों से पीड़ित विकारों में) यथा दोष हर औषधियों की लुगदी (कल्क) योनि में धारण कराना, पिचू (यथा दोषहर द्रव्यों के क्वाथ या तेल में रुई का फोया तरकर प्याड़ Pad रूप में योनि में धारण करना), तथा यथा दोषहर द्रव्यों के क्वाथ से योनि प्रक्षालन (आचमन) करना चाहिए।

(अनीसून), तुख्म कफस, अजखर, सोया, हमामा, बांस की जड़ प्रत्येक ५-५ तोले, उलटकम्बल की जड़ २० तोले, इन सबको जौकुट कर ४ सेर जल में पकावें १ सेर जल शेष रहने पर पर छानकर, पुनः मन्द आंच पर पकाकर गाढ़ा होने पर उसमें कूट और जवाखार १-१ तोले, जुन्दवेदस्तर आधा तोला और हीराबोल १॥ तोले, इन ४ द्रव्यों का महीन चूर्ण मिला ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें। गोलियां छाया में शुष्क करें। मात्रा २-२ गोली प्रातः-सायं जल के साथ सेवन करने से कष्टार्तव की शिकायतें शीघ्र दूर होती हैं। आर्तव ठीक समय पर आने लग जाता है।

एलोपैथिक प्रयोगों में निम्न प्रयोग प्रमाणित किये गए हैं—

(अ) फेनाजोन (Phenazone) १५ ग्रेन, लाइकर मार्फ हाइड्रोक्लोर (Liqr. Morph Hydro.) १० बूंद, टिंचर वलेरियन (Tr. Valerian) २० बूंद, सीरप आरेंज (Syrup orange) ½ ड्राम और एक्वा क्लोरोफार्म १ औंस, इनका मिश्रण ४-४ घण्टे से देवें, ३ दिनों तक ऋतुकाल में सेवन करावें।

(आ) एण्टिपाइरीन ५-१० ग्रेन, लिकरमोर्फीन हाइड्रोक्लोर २० बूंद, टिंचर कैस्टर २० बूंद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूंद और अक्वामैंथ पिप १ औंस, यह मिश्रण ३-३ घण्टे से देवें।

(इ) कोडीन (Codeine) १ ग्रेन, एस्प्रिन १० ग्रेन और फेनासीटीन (Phenacetin) ५ ग्रेन। इन तीनों को खरल कर ३ मात्रा में दिन में ३ बार देवें। इसे आर्तव-स्राव प्रारम्भ होने से ३ दिन पहिले से सेवन कराना शुरू करना चाहिए। आर्तवकाल में वन्द करें।

पेटेण्ट औषधियों में—कोडोपाइरीन (Codopyrin) १ गोली २ या ३ बार, वेरेमन (Veramon) की १-२ टिकिया, सोनल्जीन (Sonalgin) १ गोली २-३ बार, सिवल्जीन (Cibalgin) १ टिकिया, २ या ३ बार इत्यादि टिकियां ऋतुकाल में शूल की शान्ति के लिये प्रयुक्त होती है।

होमियोपैथिक और बायोकैमिक प्रयोगों में से-सीपिया (Sepia) ३० की दिन में २ बार देवें। मेग्निशीया फास (Magnasia Phos 6X), फेरमफास (Farrum phos 6X) इनके मिश्रण की ४ मात्रायें (प्रत्येक मात्रा २॥ रत्ती) गरम जल से देवें। लगभग १ माह तक देवें।

वि० वक्तव्य—क्षीणार्तव और नष्टार्तव में कोई विशेष भेद नहीं है। क्षीणार्तव ही आगे चलकर नष्टार्तव हो जाता है। अस्वाभाविक विकार या कारणों को छोड़कर नष्टार्तव एकदम से नहीं होता। प्रथम धीरे-धीरे क्षीण होते हुए वह नष्ट होता है। जो विकार क्षीणार्तव के लक्षणों को उत्पन्न करते हैं, उनके ही अधिक तीव्र हो जाने पर नष्टार्तव की दशा प्राप्त होती है। अतः रोग सम्प्राप्ति की दृष्टि से क्षीणार्तव की चिकित्सा नष्टार्तव के समान ही करने के लिये सुश्रुत जी का स्पष्ट आदेश है। यथा—

क्षीणं प्रागीरितं रक्तं सलक्षण चिकित्सितम्।
तथाऽप्यत्र विधातव्यं विधानं नष्टरक्तवत्॥

—सु० शा० अ० २

श्रीयुत घाणेकरजी इस विषय को बहुत ही सुस्पष्ट ढंग से इस प्रकार दर्शाते हैं—
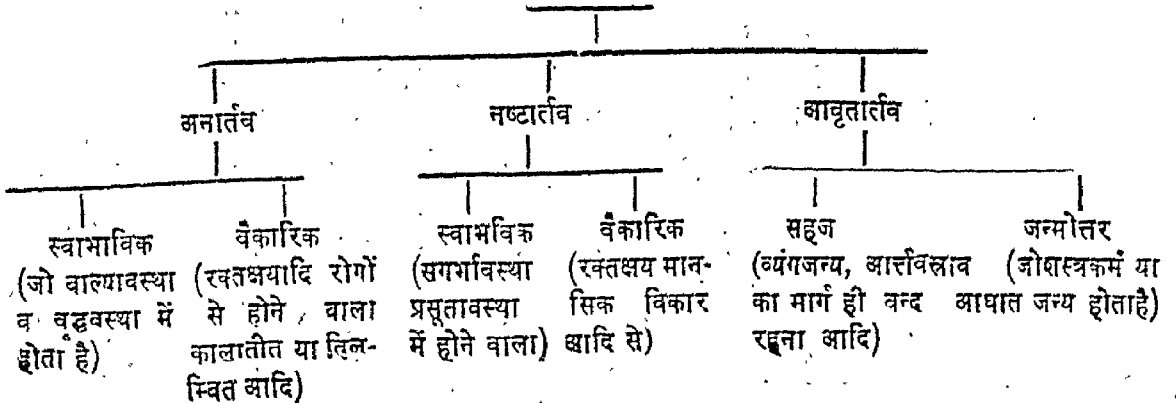
इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि आर्त्तवादर्शन रोग नहीं है, लक्षण है। इसलिये उसकी चिकित्सा कारणानुसार करनी चाहिये। स्वाभाविक अनार्त्तव की चिकित्सा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वैकारिक अनार्तव, जो गर्भाशयादि की स्थायी अपरिपक्वता से उत्पन्न होता है, अचिकित्स्य हैं। वैकारिक नष्टार्तव तथा रक्तक्षयादि जनित अनार्तव कारणानुरूप चिकित्सा करने पर प्रायः साध्य होता है। आवृत्तार्तव कुछ असाध्य और कुछ शस्त्रसाध्य होते हैं। उनमें औषधि सेवन से कुछ भी फायदा नहीं होता सर्दी से बचना, गरम कपड़े पहनना, पौष्टिक पर्याप्त और हलका आहार सेवन करना स्वच्छ हवा में हलका सा व्यायाम करना, जल्दी सोना और अधिक निद्रा लेना कोष्ठ शुद्धि रखना तथा कारणानुसार औषधि सेवन (जैसे रक्तक्षय में लोह संखिया कुचला इत्यादि) यह आर्तवादर्शन की संक्षिप्त चिकित्सा है। (सु० शा० अ० २ की टीका)

आंत्रस्थवायु के अवरोध से उत्पन्न रजोनाश— एक २-२ वर्ष की स्त्री की यह शिकायत थी कि उसके पेट (गर्भाशय) में आर्तव की गांठें बंध गई हैं। कृशता, मलावरोध, अग्निमांद्य, शिरःशूल, जीर्णज्वर आदि लक्षण थे। मैंने कहा कि गांठ वगैरा कुछ नही है, धीरज रक्खें।

परीक्षण से मालूम हुआ कि लघ्वन्त्र में अत्यन्त गुड़गुड़ाहट है, तथा नाड़ी क्षीण, लघु है।

प्रथम आंत्रस्थ वायु के अनुलोमार्थ हिंग्वाष्टक चूर्ण २ में सेंधव नमक ४ रत्ती मिला (यह १ मात्रा), इस प्रमाण से ३ मात्रायें बनाकर, उष्णोदक के साथ दिन में ३ बार सेवनार्थ दी गई। इसी प्रकार ४ दिनों तक इसी सरल सहज प्रयोग के सेवन से ही, उसे बहुत कुछ लाभ हुआ फिर उसने उसी औषधि की मांग की अतः पुनः उसे ८ दिन के लिये उक्त हिंग्वाष्टक योग दे दिया गया परिणाम यह हुआ कि जो आर्तव ५ महीनों से बन्द था उसका आगमन व्यवस्थित रूप से होने लगा। फिर उसकी दुर्बलता निवारणार्थ अन्य औषधियां दी गई।

अत्यन्त मलावरोध के कारण रजोदर्शन का न होना—

एक १६ वर्ष की लड़की मेरे पास लाई गई और कहा गया कि उसे रजोदर्शन नहीं होता है। उसके स्वेद से और वस्त्रों से मल की दुर्गन्ध आती थी भोजन ठीक प्रकार से करती थी, किन्तु सुस्ती, आलस्य एवं अनुत्साह के लक्षण विशेष थे। परीक्षण से मालूम हुआ कि उसे तीव्र मलावरोध है।

अतः प्रथम मल शुद्धि के लिये उसे नाराचरस ‡ की मात्रा दी गई। तदनन्तर उसे आरोग्यवर्धिनी प्रातः सायं दो-दो गोलियां उष्णोदक से (भोजन के २ घण्टे पूर्व) दी जाने लगीं। इस प्रकार आरोग्यवर्धिनी के प्रयोग से उसे प्रतिदिन मल शुद्धि होने लगी। तथा १५ दिन के बाद ही उसे रजोदर्शन हुआ।

कृमिजन्य रजोनाश—एक ३५ वर्ष की स्त्री, ३-४ लड़कों की जननी की शिकायत थी कि उसे ७-८ मास हो गये मासिकधर्म बन्द हैं। परीक्षा से मालूम हुआ कि कृमि विकार कई वर्षो से है, तथा उसके मल में बार-बार छोटे बड़े कृमि निकला करते हैं। उसे संटोनाईन की मात्रा शुद्ध रेंडी तेल के साथ कुछ दिनों तक देने से ही उदर के सब कृमि साफ हो गये तथा उसे मासिकधर्म शुरू हो गया।

इस प्रकार आर्तव क्षय या नाश के वास्तविक कारण का पता लगाकर चिकित्सा करने से शीघ्र ही लाभ होता है।

‡ नाराचरस—अत्यन्त तीव्र रेचक है। शास्त्रों में इसके कई प्रयोग हैं। उनमें से योगचिंतामणि का प्रयोग हमें पसन्द है-इसमें शुद्ध जमालगोटा ८ भाग सोठ चूर्ण ३ भाग, शुद्ध गंधक २ भाग, तथा कालीमिर्च का चूर्ण सुहागे की खल और शुद्ध पारद १-१ भाग लेकर, प्रथम कज्जली बना शेष औषधियां मिला जल के साथ खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना ली जाती हैं। मात्रा-१ गोली ठण्डे पानी से (प्रकृति अनुसार शहद या गर्म जल से) देते हैं। यह गुल्म, प्लीहा, उदर रोग, शूल, विष्टम्भनाशक है। यदि विरेचन अधिक हो तो उसे रोकने के लिये दही खिलावें। इस रस को गर्भिणी या दुर्बल रोगियों को नहीं देना चाहिये।

उदावर्त्तायोनि विकार जिसमें बड़े ही कष्ट के साथ अति अल्प प्रमाण में फेंसदार रजस्राव होता है, उसके शमनार्थ वात का अनुलोमन करना आवश्यक है । तथा योनिधावन (डुश), पिचु (गांजा), योनि में बर्ति धारण, लेपादि से ही यह कार्य सिद्ध हो जाता है।

स्निग्ध पिचु या वर्ति के धारध कराने से योनिमार्गान्तर्गत् स्नेह का शोषण अन्दर के अवयवों द्वारा होकर वात का शमन, अनुलोमन हो जाता है, मलावरोध भी दूर होता है, कटिशूल में भी बहुत कमी हो जाती है, तथा रुग्णा को बहुत शान्ति प्राप्त होती है। तत्पश्चात् दोष-दूष्य-दुष्टि के अनुसार जो लक्षण हों तदनुरूप चिकित्सा करनी चाहिए। प्रायः दशमूलारिष्ट और योगराजगुग्गुल के सेवन कराने से २-३ महीनों के अन्दर ही वात की उदावर्तित गति अनुलोमित हो जाया करती है।

शस्त्रक्रिया क्युरेटिंग Curetting—रजःस्राव ठीक-ठीक न होता हो, या वंध्यत्व हो तो यह लेखनशस्त्रकर्म किया जाता है। इसमें गर्भाशय का ग्रीवामुख विस्तृत कर क्युरेटिंग अर्थात् लेखन कार्य किया जाता है। किन्तु उपर्युक्तानुसार वात की उदावर्तित गति न हो तथा मार्गावरोध अर्थात् रजोवाही शिरारोध हो तब ही इस शस्त्र-कर्म से कुछ लाभ हाता है। ऐसी दशा में गर्भाशय की अन्तस्त्वचा को खरोंच कर मार्गावरोध दूर किया जाता है। उदावर्त्ता योनिरोग में इस शस्त्र क्रिया का कुछ भी उपयोग नहीं होता। उसमें तो उक्त प्रकार की वातानुलोमन चिकित्सा ही फलदायी होती है।

रक्तसंचयात्मक अनार्त्तव—यहां तक वातमण्डल विकृतिजन्य नष्टार्त्तव या कष्टार्त्तव का संक्षिप्त विवरण हुआ। अब इसका दूसरा भेद जो रक्तसंचयात्मक (Congestive) है, उस पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है।

गर्भाशय या डिम्बग्रन्थियों में शोथ आदि के कारण यह संचयात्मक ऋतु कष्ट होता है। यह प्रायः प्रसूता स्त्रियों को विशेष होता है। बार-बार गर्भस्राव या या पात होने या गर्भाशय में चोट लगने, गर्भाशय के मुख में उत्तेजक या क्षोभक द्रव्यों के रखने या शीघ्र-शीघ्र अधिक सन्तानों को प्रसव करने, डिम्ब ग्रन्थियां या डिम्ब प्रणाली में अर्बुद या किसी प्रकार का शोथ होने, मूल-गर्भ की दशा में शास्त्रों का प्रयोग करने या अपरा (Placenta आंवल) पातन के निमित्त गर्भाशय की दीवार को खुरचने से हुये क्षत या शोथ के कारण भी रक्त निकलने में बड़ी कठिनाई होती है।

लक्षण—तल पेट या पेड़ू पर बोझ या भारीपन और पीड़ा होना, जी मिचलाना, पीठ और कमर में अत्यन्त पीड़ा होना तथा इस पीड़ा के साथ ही साथ थोड़ा-थोड़ा रक्तस्राव होना ऋतुकाल में एक या डेढ़ सप्ताह तक ही ये दशा रहकर धीरे-धीरे कष्ट का कम होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा में सेंकादि उष्ण उपचार से रक्त कुछ अधिक मात्रा में निकल कर पीड़ा में कमी होती है, रुग्णा को कुछ शान्ति प्राप्त होती है। ऋतुकाल के अतिरिक्त अन्य दिनों में योनि से दुर्गन्धित पिच्छिल (लिबलिबा) श्राव होते रहता है।

उपचार--

डाक्टर धर्मानन्द जी वैद्य शास्त्री का कथन है कि ऐसी दशा में यदि गर्भाशय के मुख में शोथ हो तो उस पर चीरा (minor opertion) लगा देना चाहिए या जोंक लगाकर रुके हुये रक्त को निकाल देना चाहिये। अथवा शोथ युक्त स्थान पर रक्त की गति को बढ़ाने के लिये रुग्णा को एक गरम जल के टब, में जिसमें सोड़ा और पोस्त के डोंडे का चूर्ण तथा थोड़ी सी ब्राण्डी डाली हुई हो, बैठाना चाहिए इस टब में गरम जल इतना होना चाहिए जिसेस वह रोगिणी के बैठने पर कमर तक आ सके। इस क्रिया से भी यदि पीड़ा में कमी न हो तो अहिफेन के योगों का त्वचा में सूचीवेध करना चाहिए। कई बार निम्नलिखित वर्ति को गर्भाशय मुख पर रखने से भी शोथजन्य अवरोध दूर हो जाता है।

लेड आयोडाइड—२० ग्रेन, एक्सट्रेक्ट आफ हेमलाक-२४ ग्रेन, एक्स्ट्रेक्ट बेलाडोना-१० ग्रेन, आयल आफ थियोब्रोमा-१० ड्राम। इन सबको एकत्र मिलाकर अग्नि पर पिघलावें। जब मिलकर एक हो जाय तो वर्ति बनाकर गर्भाशय के मुख पर रखें, इसके साथ-साथ निम्न योग पिलावें—

लायकर सिड़ान ½ ड्राम, एलोनिस कार्डियल [रियोसाइब का) और जल १ औंस दोनों मिलालें, ऐसी ६ मात्रायें बनालें। हर तीन घण्टे बाद एक खुराक देवें।

डिम्ब-ग्रन्थियों के शोथ को दूर करने के लिये शुद्ध रसोत और ग्लिसरीन दोनों को समभाग में लेकर एकत्र कर शुद्ध रुई या कपड़े के फाये में लगाकर गर्भाशय के बाहर भी लेप करदें। साथ ही रजतभस्म, लोहभस्म, रससिंदूर और टंकणभस्म को दशमूल और बला कषाय से दिन में दो बार सेवन करावें। भोजन लघु और पोषक देना चाहिए। ऐसी अवस्था में स्त्री को पूर्ण विश्राम देना चाहिए। जब तक रक्त के छिछडे (Blood clots)निकलने बन्द न हो जांय, तब तक विषय-भोग से पूरा परहेज रखना चाहिए।

ऊपर जो रज प्रवर्तक चूर्ण नं. ८ का तथा ऋतुरोध निवारक देशी अर्गट के योग दिए हैं, वे भी ऐसी दशा में लाभकारी हैं। यदि रुग्णा को उत्तम मण्डूर भस्म की मात्रा ४ रत्ती तक, १ माशे पुनर्नवामूल के चूर्ण के साथ मिला शहद के प्रातः-सायं नित्य पथ्य पूर्वक सेवन कराया जाय तो गर्भाशय तथा डिम्बकोष का शोथ शनैः-शनैः शीघ्र दूर होता है।@

अनुकल्प ऋतु या अस्थानिक ऋतु स्राव (Vicarious menstruation)—कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मासिक ऋतुस्राव स्वाभाविक योनि मार्ग से न होते हुए और किसी शरीर द्वार से, जैसे गुदामार्ग से या कान, नाक, आंख, मुंख आदि से या किसी क्षत से होने लग जाता है। सूजन, वमन की इच्छा, परिपाक यन्त्रों की गड़बड़ी और त्वचा पर विकृति पैदा हो जाती है। कभी-कभी मूर्च्छा हो जाना, अपस्मार जैसी अकड़न भी होती है। ऋतुकाल में ऋतुशूल होता है ग्रध्रसी (Sciatica) निस्पन्द वायुरोग (Catalesy), उदररोग, सहसा अतिसार प्रस्वेद आदि लक्षण भी देखे जाते हैं। यदि शरीर में कोई क्षत हो तो कभी उस क्षत या घाव से इतना रक्तस्राव होने लग जाता है कि रुग्णा प्राण संकट में पड़ जाती है।

ध्यान रहे इस प्रकार का रक्तस्राव पाकाशय से वमन के जरिए भी हो सकता है। किसी के फेफड़ों से यदि स्राव होता है तो खांसी के साथ रक्त निकलने लग जाता है। किसी को आंख के कोने से, तो किसी के स्तनों से यह रक्तस्राव होने लगता है। यदि योग्य समय पर इसकी ठीक-ठीक चिकित्सा न हो तो मृत्यु संकट उपस्थित हो जाता है।

उपचार—रोग का ठीक निर्णय कर इसकी चिकित्सा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए। प्रोफेसर जे. पी. सिनहा L. M. S. H. (रायचैनपुर, पलामू) सूचित करते हैं कि—इसकी चिकित्सा में गेंदा की पत्ती, कंघी के पत्ता १-१ माशा तथा कालीमिर्च २१ नग मिलाकर गोली बनाकर सेवन कराने अथवा इनके पत्तों का शरबत बनाकर पिलाने से लाभ होता है।

किन्तु इस अस्थानिक ऋतुस्राव के वास्तविक कारण का पता लगा लेना आवश्यक है। यदि कुमारीच्छद (योनिच्छद Hymen) का न फटना या स्वाभाविक रूप से ही पहले से उसमें छिद्र का न रहना ही इसका कारण हो तो एक मामूली शस्त्र क्रिया से ही रोग निर्मूल हो सकता है। यदि जीवनी-शक्ति की निर्बलता इसका कारण हो तो असगन्ध पाक अश्वगन्धारिष्ट, सौभाग्यसुण्ठी पाक आदि का सेवन करा, यथेष्ट शक्ति संचार कराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त और भी विशेष कारण हो सकते हैं। डिम्बाशय में होने वाले अनेक रोगों के कारण भी ऐसा हो सकता है। डिम्बाशय के पूर्ण विकासावस्था को प्राप्त न होने से, तथा जरायु के भी अविकसित रह जाने से यह रोग हो सकता है। इसके अतिरिक्त जरायु(Uterus) या गर्भाशय का न होना (Entire absence of uterus) गण्डमाला या प्रमेह आदि रोग ग्रस्त स्त्री को भी स्वाभाविक प्रकार से ऋतुस्राव नहीं होता इन सब कारणों की उचित जांच पड़ताल कर साध्यासाध्य का निर्णय करने के पश्चात् ही यथोचित चिकित्सा क्रम निर्धारित करना चाहिए।

@ यदि आर्तव गांठदार या छीछड़ेदार Blood clots हो तो पाठा, त्रिकटु और कुड़ा छाल का क्वाथ पिलावें। दुर्गन्धित, पूययुक्त और मज्जासव आर्तव में मलयज श्वेतचन्दन, अभाव में साधारण श्वेत चन्दन का क्वाथ सेवन करावें। यथा—

ग्रन्थिभूते पिबेत् पाठ त्र्यूषणं वृक्षकाणि च। दुर्गन्धे पूयसङ्काशे मज्जतुल्ये तथाऽर्तवे ॥
पिबेद्भद्रश्रियः क्वाथं चन्दनक्वाथमेव च। —सु० शा० अ० २

उन्नीसवां अध्याय

कण्डरा और स्नायु (उपधातु) Tendons & ligaments

हम ऊपर आरम्भ में ही उपधातु के प्रसङ्ग में-कह आये हैं कि शरीर में रक्त के प्रसादांश से मांस के साथ ही साथ कण्डरा और सूक्ष्म सिराओं की प्रवृत्ति तथा पुष्टि होती है।

बड़ी २ स्नायुओं (Ligaments) को कण्डरा कहा जाता है ‡। इनके द्वारा शरीर के अवयवों का फैलना और सिकोड़ना क्रिया सम्पन्न होती है। आयुर्वेदानुसार इनकी कुल संख्या १६ मानी जाती है। उनमें से ४ कण्डरायें पैरों में (एक पैर में दो कण्डरायें), तैसे ही एक हाथ में दो, पीठ में चार और ग्रीवा में चार हैं। कहा है—

महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः कण्डरास्तास्तु षोडश।
प्रसारणाकुञ्चनयो दृष्टं तासां प्रयोजनम्॥
चतस्त्रो हस्तयोस्तासां तावत्यः पादयोः स्मृताः।
ग्रीवायामपि तावत्यस्तावत्यः पृष्ठ सञ्ज्ञताः॥

हाथों और पैरों के कण्डराओं का नीचे का अग्रभाग या प्ररोह वह स्थान है जिनमें नखों का निवेश (Insertion) होता है न कि नखें की उत्पत्ति। ग्रीवा और हृदय को बांधने वाली कण्डराओं के नीचे की ओर गये हुए प्रान्त का प्ररोह, गुह्य प्रदेश (Pubic region) या जननेन्द्रियों का स्थान है। इसी के लिये शास्त्र में मेढ्र इस उपलक्षणात्मक शब्द का प्रयोग हुआ है। अर्थात् ग्रीवादि स्थानों की कण्डराओं का निवेश गुह्य प्रदेश में होता है। श्रोणी अर्थात् नितम्ब और पृष्ठ को बांधने वाली कण्डराओं के नीचे की ओर गये हुये प्रान्तका प्ररोह या निवेश, बिम्ब अर्थात् श्रोणिचक्र (Pelvis) है। तथा इन कण्डराओं के ऊपर की ओर गये हुये प्रान्तों के प्ररोह या निवेश मस्तक, ऊरु, वक्ष और बाहुशिर (अंसपिण्ड) है। अर्थात् ग्रीवाश्रित कण्डराओं का उपरिगत प्ररोह मस्तक है। हाथों की कण्डराओं का उपरिगत प्ररोह बाहुशिर है। पैरों की कण्डराओं का ऊपर की ओर गया हुआ प्ररोह ऊरुमण्डल या श्रोणि मण्डल है। तथा पृष्ठ-गत कण्डराओं का उपरिगत प्ररोह या उद्गम (Origin) वक्षमण्डल है। (प्रो. घाणेकरजी की टीका से)

षोडश कण्डराः तासां चतस्त्रः पादयोः, तावत्यो हस्त ग्रीवापृष्ठेषु तत्र हस्तपादगतानां कण्डराणां नखाः (अग्र) परोहाः इत्यादि —सु. शा. अ. ५

नोट—ध्यान रहे, शरीर में मांस, अस्थि और मेद को एकत्र बांधकर रखने वाले बन्धनों को स्नायु कहते हैं। यथा—

स्नायवो बन्धनं प्रोक्ता देहे मांसास्थिमेदसाम्—
शार्ङ्गधर

स्नायुएं चार प्रकार की होती हैं:—

(१) प्रतानवती या सन्धानवती स्नायुएं शाखाओं में तथा सब सन्धियों में होती हैं, इन्हें ही सन्धिबन्धन (Ligaments लिगामेन्टस) कहते हैं।

(२) वृत्त [गोल] स्नायुएं, ये भी शाखाओं और सन्धियों में होती हैं। इन्हें ही पेशीबन्धन या कण्डरा (Tendons) टेन्डन्स) कहते हैं। उक्त प्रतानवती स्नायुओं में जो गोलाकार, श्वेत एवं स्थूल सी होती हैं, वे ही वृत्ता-स्नायु या कण्डरा कहाती हैं। इनमें से प्रमुख १६ कण्डराओं की गणना ऊपर की गई है।

(३) सुषिर स्नायुएं, जो कि आमाशय पक्वाशय और वस्ति प्रदेश में होती हैं। ये एक प्रकार की गोल

‡ शरीर के ऊपर की त्वचा को उतारकर देखा जाय तो अन्दर सर्वत्र मांसमयी पेशियां (लगभग ६०० हैं) दिखाई देंगी प्रत्येक पेशी के दोनों सिरे स्नायु और कण्डरों द्वारा अस्थियों से दृढ़ सम्बद्ध होते हैं। अर्थात् पेशी के ही श्वेत, स्नायुमय सिरों को कण्डरा कहा जाता है। महीन सूत्र जैसे, शरीरगत दृढ़, श्वेत, सूत्रमय धातु (Fibrous tissue) को स्नायु कहते हैं। सन्धिबन्धन (Ligaments) कण्डरा आदि इसी के भेद हैं।

सच्छिद्र पेशियां हैं। इन्हें अंग्रेजी में स्फिन्क्टर मसलस (Sphincter muscles) कहते हैं और—

[४] पृथुल स्नायु—ये चपटे (Flattened or ribbon shaped tendons) स्नायु या कण्डरायें पार्श्व, छाती, पीठ और सिर में होती हैं। इन्हें कण्डरा कला या कण्डरा का तन्तुमय प्रसारण (Aponeurosis) कह सकते हैं ×

यद्यपि स्नायु गणसूत्र के समान शरीरगत एक उपधातु (Fibrous tissue) हैं, और मांसमय पेशियों (Muscles) से ये पृथक ही माने जाते हैं; तथापि उपर्युक्त उनके भेदों से यह सूचित होता है कि ये एक प्रकार की पेशियां ही हैं या पेशियों का ही एक भाग हैं। इसीलिये कहीं-कहीं पेशियों के लिये या पेशियों के अर्थ में ही स्नायु शब्द का प्रयोग देखा जाता है। जैसे—

गृहीत्वार्धं ततोपायुः सिराःस्नायु विशोष्यच।
पक्ष्मयत हन्ति सन्धिन्बधान् विमोक्षयन्॥
(अष्टांग हृदय)

आयुर्वेद में उक्त सब प्रकार की स्नायुओं की संख्या ६०० कही गई हैं और कहा गया है कि शाखाओं में ६००, मध्य शरीर में २३० तथा ग्रीवा के ऊपर ७० स्नायु हैं ‡। ध्यान रहे, इनमें सन्धिबन्धन स्नायु (Ligaments) और पेशिबन्धन स्नायु या कण्डरा Tendons की संख्या अधिक प्रमाण में हैं, तथा शेष कुछ पेशियां भी इनमें सम्मिलित हैं।

इन स्नायु और कण्डराओं के महत्व को दर्शाते हुए कहा गया है कि—स्नायु के पीड़ित, विकृत या विद्ध होने पर जितनी व्याकुलता, अकर्मण्यता या प्राणान्त पीड़ा होती है, उतनी हड्डियों, पेशियों, सिराओं या सन्धियों के पीड़ित, विकृत या विद्ध होने पर नहीं होती। यथा—

न ह्यस्थीनि न वा पेश्यो न सिरा न च सन्धयः
व्यापादितास्तथा हन्युर्यथा स्नायुः शरीरिणाम्॥
सु. शा. अ. ५

एक साधारण सी मोच (Sprain) का ही उदाहरण देख लीजिये। जब पग आदि किसी अङ्ग में मोच आ जाती है, तो कितनी व्याकुलता होती है यह प्रायः सर्व विदित है। सख्त मोच आ जाने पर तो कभी २ यह अङ्ग हमेशा के लिये बेकाम हो जाया करता है अस्तु मोच के विषय में इसी अध्याय के अन्त में देखिये।

समावस्था—कण्डरा या स्नायुओं की समावस्था या अविकृतावस्था में आकुंचन प्रसरणादि शारीरिक क्रियायें ठीक प्रकार से हुआ करती है कहा है—

प्रसारणाकुञ्चनयोरंगानां कण्डरा मताः॥ शार्ङ्गधर

विषमावस्था—कण्डरा या स्नायुओं के विकृत होने पर सम्पूर्ण शरीर या कोई अङ्ग विशेष फैला हुआ या तनावयुक्त (आयाम) हो जाता है या जकड़ (स्तम्भ) जाता है, सिकुड़ जाता है, टेढ़ामेढ़ा, ढीला (शिथिल) हो जाता है। तथा वातप्रकोप जन्य पंगुता, कुबड़ापन अङ्गों में शोथ, प्रसरण आकुंचन रहित शून्यता एवं कई प्रकार की पीड़ायें होती है।

नोट—ध्यान रहे, यद्यपि प्रसरणाकुंचनादि उक्त क्रियायें पेशियों की हैं, तथा उक्त सब विकृतियां आधुनिक मतानुसार पेशियों में ही होती है, तथापि स्नायु या कण्डरायें ये पेशियों के ही विशेष अङ्गभूत होने से "नामैकदेशे नाम ग्रहणम्" इस न्याय से, समन्वयार्थ यहां स्नायु शब्द भी एक प्रकार से पेशियों के लिये ही मान लेने में कोई विशेष आपत्ति नहीं है। इनमें भेद इतना ही है कि स्नायु तंतुयुक्त (Fibrous) होती है, तथा पेशि के अन्तर्गत होती है, और पेशी रेशादार मांसमय (Fleshy) होती है। शरीर में लाल रंग की रेशादार मांसमय एवं आकुंचन प्रसरणशील जो धातु (Tissue) होती है उसके पिण्ड को पेशी (muscle) कहते हैं। अस्तु।

सुश्रुत जी का कथन है कि स्नायु के विद्ध होने से शरीर के अङ्ग में वक्रता, स्तब्धता, स्वकार्य करने की शक्ति न होना, तीव्र पीड़ा, तथा जख्म का देर से भर आना ये लक्षण होते हैं *।

× स्नायूश्चतुर्विधा विद्यात्तास्तु सर्वा निबोधमे। प्रतानवत्यो वृत्ताश्च पृथ्व्यश्च शुषिरास्तथा॥
प्रतानवत्यः शाखासु सर्वसन्धिषु चाप्यथ। वृत्तास्तु कण्डरा सर्वा विज्ञेयाः कुशलैरिह॥
आमपक्वाशयान्तेषु वस्तौ च शुषिराः खलु॥ पार्श्वोरसि तथा पृष्ठे पृथुलाश्च शिरस्यथ॥ —सु.शा.अ. ५

‡ नवस्नायुशतानि। तासां शाखासु षट्शतानि, द्वे शते त्रिंशच्च कोष्ठे, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं सप्तति, —सु. शा. अ. ५

* कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च। चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायु विद्धं मनुजं व्यवस्येत्॥
सु. सू. अ. २५

स्नायुओं या कण्डराओं में कुपित हुआ वात, बाह्यायाम (ओपिस्थोटोनस Opisthotones), अन्तरायाम (एम्प्रोस्थोटोनस (Emprosthotones) खल्ली (muscular spasm of hand and yeet), कुब्जता (कुबड़ापन) सर्वांगवध (डायप्लीजिया Diplegia, General paralysis) एकाङ्गवध (पक्षाघात, हेमीप्लीजिया Hemiplegia, मोनोप्लीजिया monoplegia) स्तम्भ (स्टिफनेस Stifness) या क्याटेलेप्सी (Catalepsy) कम्प (कोरिया Chorea या सेंट बाइटस डान्स St. vitusdance) शूल (कालिक Colic) आक्षेप (कन्वलशन्स Convulsions या स्पैंजम Spasm) आदि रोगों को पैदा करता है। कहा है—

बाह्याभ्यन्तरमायामं खल्लि कुब्जत्वमेवच। सर्वांगकरोगांश्च कुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः स्नायु प्राप्तःस्तम्भकम्पौ शूलमाक्षेपणं तथा —च०नि०अ० २८। सु०नि०अ० १

उपचार—

उक्त किसी प्रकार के भी स्नायु सम्बन्धी विकारों पर—

प्रातः—अश्वगन्धाघृत या वृच्छागलाद्य × घृत (भैषज्य रत्नावली का) की मात्रा आधा तोला से १ तोला तक, उष्ण दुग्ध के साथ सेवन करावें।

उक्त घृत के सेवन के दो घण्टे पश्चात् अश्वगन्धादि गण का क्वाथ (असगंध खरैंटी, कंघी, गगेरन, दशमूल, सोंठ दो प्रकार की नरवी और रास्ना का अष्टमांश क्वाथ) अथवा—माषबलादि योग (उड़द, खरैंटी, कौंच के बीच कत्तृण) रोषातृण) रास्ना, असगन्ध और एरण्डमूल की छाल का क्वाथ * पिलावें।

उक्त अश्वगन्धादि क्वाथ के साथ ही यदि वृहत्वात चिंतामणि रस जिसमें रस सिन्दूर ७ भाग, लोह भस्म और प्रवालभस्म ३-३ भाग, तथा रोप्य भस्म और अभ्रक भस्म २-२ भाग, एकत्र ग्वारपाठा के रस में ३ दिन तक खरल कर १-१ रत्ती की गोली बनाते हैं) की १ गोली सेवन की जाय, अथवा इस रस की मात्रा को असगंध के महीन चूर्ण १ मासा और मधु ६ मासे के साथ मिला सेवन कराया जाय, तो और भी उत्तम लाभ होता है ‡।

× यह प्रयोग आयुर्वेद का एक अमूल्य रत्न है। इसमें छाग मांस (बकरे का जो तरुणावस्था और काले वर्ण का हो, उसका मांस) डाला जाता है। इस घृत को आज कल वैद्य गण बहुत कम बनाते हैं। यह वैद्यों को यश देने वाला बहुत ही उत्तम प्रयोग है। इसे प्रयत्नपूर्वक अवश्य ही बनाकर काम में लाना चाहिए। इसकी विस्तृत विधि भैषज्य रत्नावली के वातव्याधि चिकित्सा प्रकरण देख लें।

* इस माषबलादि क्वाथ के विषय में कहा गया है और अनुभव में भी आया है, कि इस मन्दोष्ण क्वाथ में थोड़ा सेंधानमक और हींग मिलो, नासिका द्वारा पीने से पक्षाघात मन्यास्तम्भ, कर्ण पीड़ा, कर्णनाद और कष्टसाध्य अर्दित ८ दिन में नष्ट हो जाता है। कहा है—'क्वाथो नस्यनिपीतो रामठ लवणान्वितः कोष्णः अपहरति पक्षाघातं मन्यास्तम्भं सकर्णनादरुजम्॥ दुर्जयमर्दित वातं सप्ताह- ज्जियति चावश्यम्। (देखो-चक्रदत्त, योरत्नाकरगदनिग्रह)।

इसमें कतृण से रोहिष घास या कसाधांस लेना चाहिए जिससे अति सुगंधित तैल रुसा तैल निकाला जाता है। उड़द आदि सब द्रव्यों को समभाग लेकर जोकुट कर रखें सर्में से २ तोले चूर्ण लेकर ४० तोले जल में पकावें। १० तोले शेष रहने पर, छानकर हींग (भूनी हुई) १ रत्ती और सेंधा नमक १ माशा मिलाकर पीना चाहिए।

‡ वृ०वातचिंतामणि रस—वात रोगों में दाह घबड़ाहट बेचैनीमस्तिष्क में उष्णता, मुखपाकआदि पित्तप्रधानलक्षणों की प्रतीति हो, विषप्रकोपज शारीरिक उत्ताप अधिक हो प्रसूता को धनुस्तम्भ तथा अन्य सूतिका रोग हों, वृद्धावस्था की वातवृद्धि जन्य दुर्बलता कटिवात आदि हों तो इसका उपयोग बहुत उत्तम होता है। अनुपान की योजना।

वात रोग में—एरण्डमूल क्वाथ से, पित्तरोग में आमला स्वरस से, सान्निपातिक ज्वरों में-तगरादि क्वाथ से, योषापस्मार में—जटामांसी अर्क से, भ्रम में जवासा के क्वाथ से, शिरोग्रह में-भांगरा रस से, अश्मरी में-पाषाणभेद क्वाथ से, गर्भिणी के रोग में-खरैंटी क्वाथ से, सूतिका रोग में-दशमूल क्वाथ से, कर्णनाद में-अपामार्ग क्षार के साथ, स्त्रियों के सोम रोग में-पके गूलर फल का चूर्ण और मधु से, वाजीकरणार्थ-दूध के साथ, प्रमेह में गिलोय स्वरस या त्रिफला क्वाथ से, यक्ष्मारोग जन्य ज्वर में-सितोपलादि चूर्ण और गिलोय सत्व के साथ, दाह में-पित्तपापड़ा या चन्दन के क्वाथ के साथ प्रातः साय १ से २ गोली तक सेवन करावें।

तीसरे प्रहर में रोगी को—

योगेन्द्र रस—(इसमें रस सिन्दूर २ भाग, तथा स्वर्ण-भस्म, कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म मुक्ताभस्म और बंग भस्म १-१ भाग लेकर सबको ग्वारपाठे के रस में घोंटकर गोला बना एरण्ड पत्र में लपेट एवं कच्चे डोरे से बांधकर धान्य-राशी में ३ दिन तक दवाकर रखते हैं। फिर आधे आधे रत्ती की गोलियां छाया शुष्क कर रखते हैं) यदि वात के साथ पित्त का विशेष अनुबन्ध हो, तो मात्रा १ से २ रत्ती तक, खरेंटी छाल का चूर्ण ६ माशे तक और शहद ४ माशे सबको थोड़े से सुखोष्ण जल में घोलकर पिलावें। पित्त प्रधान प्रकृति वाले पुरुषों को तथा सगर्भा, प्रसूता आदि नाजुक प्रकृति की स्त्री को भी यह रस निर्भयता के साथ दिया जा सकता है। जो रोग अन्य औषधियों के दीर्घकाल सेवन से भी निवृत नहीं होते वे इसके प्रयोग से शीघ्र ही दूर होते हैं। पक्षाघात पर इसका सफल प्रयोग होता है। इसके सेवन के साथ-साथ स्नायुओं को कार्यक्षम बनाने के लिए गुनगुने नारायण तेल की मालिश धीरे हाथ से कराते रहना आवश्यक है। अथवा—

रोग से पीड़ित स्थान पर बला तैल (शार्ङ्गधर का) की अथवा महामाष तेल (भैषज्य रत्नावली का यह बहुत ही शीघ्र स्नायुगत वात व्याधि को नष्ट करता है) की अथवा कुब्ज प्रसारिणी या त्रिशतीप्रसारिणी तेल (भैषज्य रत्नावली के) धीरे-धीरे मालिश करावें। पश्चात् उड़द और सेंधा नमक एक साथ थोड़े जल में पकाकर कपड़े की पोटली में बांधकर सेंक करें अथवा केवल सेंधानमक को गरमकर कपड़े की पोटली में बांधकर सेक करें।

नोट—यदि सर्वाङ्गवात या अर्धाङ्गवातपक्षवध की विशेष उग्रता हो तो भैषज्य रत्नावली में कहा हुआ शाल्वणस्वेद [1] से अधिक फायदा होता है।

गृध्रसी—यदि इस स्नायुगत वातप्रकोप के कारण कमर से पैर तक जकड़न आगई हो, सुई टोंचने जैसी पीड़ा हो, बार-बार फड़कन हो तो इस गृध्रसी (साइटिका Sciatica) नामक वातविकार पर सरलातिसरल प्रयोग ये हैं—[2]

सम्भालू या हरसिंगार के पत्तों का क्वाथ मन्द आंच पर पकाकर दोनों शाम पिलावें। अथवा—

छोटी पीपल का चूर्ण गोमूत्र तथा एरण्ड तेल के साथ सेवन करावें। अथवा—

एरण्ड तेल में बैंगन को तलकर (प्रतिदिन १ बैंगन) खिलावें। अथवा—

गोमूत्र में सिद्ध की हुई बड़ी हरड़ का चूर्ण ३ माशे तक, रेंडी का तेल १ तोला और उष्णोदक ५ तोले एकत्र मिला सेवन करावें। †विश्वाची में भी ये ही प्रयोग लाभ देते हैं।

---

[1] इसमें काकोल्यादिगण, वातघ्न भद्रदार्वादिगण, अम्ल द्रव्य, कांजी, आनूप देश के प्राणियों का मांस, चारों स्नेह और नमक एक साथ खूब पकाकर पीड़ा के स्थान पर उष्ण उपनाह (पुल्टिस) बना रक्खें, ऊपर से भलीभांति पट्टिका (बैंडज) कस देवें। चारों स्नेहों की मात्रा उतनी ही होनी चाहिए, जितने में अच्छी तरह पाक हो जाय। गणों के द्रव्य जितने कुछ प्राप्त हो सकें उतने ही से कार्य हो सकता है। मांस की मात्रा काष्ठौषधियों के चूर्ण के समभाग हो। कांजी आदि अम्ल द्रव्य बहुत कम प्रमाण में डालें।

[2] गृध्रसी के रोग के प्रारम्भ में बेचैनी, पैरों में झनझनाहट, नाड़ियों का खिचाव होता है। फिर नितम्ब प्रदेश, जंघा के सामने या पीछे शूल उत्पन्न होता है। असह्य यन्त्रणा होती है, निद्रा नहीं आती, किसी-किसी को ज्वर भी १०२ से १०५ डिग्री तक चढ़ जाता है, वमन, घबराहट, भयंकर सिरदर्द, छाती में वेदना, बेहोशी आदि लक्षण होते हैं।

† ध्यान रहे केवल वातजन्य और कफानुबन्धी वातजन्य ऐसे दो भेद गृध्रसी के चिकित्सा दृष्टि से किए जा सकते हैं। जानुसन्धी से २ अंगुल ऊपर या नीचे गृध्रसी नामक नाड़ी में यह वेदना उठती है। इसी प्रकार की स्तब्धता युक्त वेदना जो बाहु की कूर्परसंधी के ऊपर या नीचे उठती है, अर्थात् बाहु के पृष्ठ भाग से प्रारम्भ होकर हस्ततल तक अंगुलियों की कण्डराओं को दूषित कर, बाहुओं के कर्म को नष्ट करने वाली स्तब्धायुक्त वेदना उठती है उसे विश्वाची (Brachial paralysis, Radio- ulnar paralysis) कहते हैं। कहा है—

सिद्ध प्रयोगों में—

लक्ष्मीविलास रस—(भै. र. वातव्याधि) कृष्णाभ्रक भस्म ४ तोले, शुद्ध गन्धक २-२ तोले, खरैंटी मूल, सहदेई मूल, शतावरी, विदारीकन्द, काले धतूरे के शुद्ध बीज, समुद्रफेन, गोखरू, बिधारे के शुद्ध बीज, भांग के शुद्ध बीज, जायफल, जावित्री और कपूर प्रत्येक का चूर्ण १-१ तोला लेकर, प्रथम कज्जली कर उसमें उक्त शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला खूब खरल कर उसमें १॥ माशा स्वर्णभस्म मिला, पान के स्वरस के साथ ३ घण्टे खरल कर २ से ४ रत्ती तक की मात्रा में गोलियां बनावें।

इस रस की १ गोली प्रातः एरण्डमूल के रस २ तोले के साथ सेवन करावें। अथवा—

वालगजांकुश रस—रस सिन्दूर, लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, हरीतकी, काकड़ासिंगी, शुद्ध बच्छनाग, त्रिकटु, अरणी मूल की छाल, शुद्ध सुहागा १-१ तोला सबको एकत्र महीन खरल कर गोरखमुण्डी के स्वरस या क्वाथ के साथ घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। मात्रा १ से २ गोली तक, मंजिष्ठा क्वाथ ४ तोले में १ रत्ती पीपल का चूर्ण मिलाकर अनुपान में प्रातःकाल पिलावें।

तीसरे प्रहर में—

वातारि गुग्गुल—शुद्ध गुग्गुल, शुद्ध गन्धक और त्रिफला सबका समभाग अलग-अलग महीन चूर्ण बनालें। प्रथम गुग्गुल चूर्ण को एरण्ड तेल (गुग्गुल के ही समभाग) के साथ खरल करें, खूब मुलायम हो जाने पर उसमें गन्धक और त्रिफला चूर्ण मिला सबको अच्छी तरह कूटकर पिण्ड सा बना उसकी १-१ माशे की गोलियां बना रक्खें।

मात्रा—इस गृध्रसी के रोगी को ६ गोलियां तक गरम पानी के साथ सेवन करावें, अथवा गोमूत्र युक्त एरण्ड तेल के साथ देवें। इस वातारि गूगल को कटिशूल में १ से २ गोली एरण्डबीज और सोंठ मिलाकर पकाये हुये दूध के साथ, खंजवात में-रास्ना दशमूल क्वाथ के साथ या एरण्ड तेल और दूध के साथ, पङ्गुता में-एरण्ड तेल और दूध के साथ, क्रोष्टुशीर्षक में भी उक्त अनुपान के साथ, आमवात में-एरण्ड तेल और दशमूल के क्वाथ के साथ सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है। अथवा उक्त अनुपान से ही सिंहनाद गूगल (देखो खंज पंगुता के प्रकरण में) का सेवन करावें। मालिश के लिये कुब्जप्रसारणी तैल की मालिश से उत्तम लाभ होता है। किन्तु मालिश अधिक नहीं करनी चाहिये। अथवा—

प्रातःकाल-में रोगी को चतुर्मुख रस की योजना करें—

(६) विधि—शुद्धपारा, शुद्ध गंधक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म १-१ तोला, और स्वर्णभस्म ३ माशे। प्रथम कज्जली बना, उसमें शेष भस्मों को मिला, ग्वारपाठे के रस में अच्छी तरह खरल कर, शुष्क कर, एरण्ड पत्र में लपेट धान्य राशि में ३ दिन तक रक्खें।

मात्रा—अग्नि बलानुसार १ से २ रत्ती तक, त्रिफलाचूर्ण ३ माशे और ६ माशे मधु के साथ अथवा त्रिफला क्वाथ और मधु के साथ सेवन करावें। यह भै. र. का प्रयोग है, बहुत ही उत्तम है, कई रोगों पर यह दिया जाता है। इसे कृष्ण चतुर्मुख रस भी कहते हैं।

तीसरे प्रहर या याम को-वातगजाङ्कुश रस की मात्रा—१ या २ गोली, सम्भालु (निर्गुण्डी) पत्र स्वरस

तल प्रत्यङ्गुलानां या: कण्डरा बाहु पृष्ठतः। बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची चेति सोच्यते॥ —मा० नि०

गृध्रसी और विश्वाची दोनों की चिकित्सायें प्रायः एक ही प्रकार से की जाती है। सुश्रुत ने दोनों के लिए एक ही प्रकार से सिरावेद करने को कहा है, गृध्रसी में जानुसन्धि से दो अंगुल ऊपर या नीचे तथा विश्वाची में कूर्पर सन्धि के ऊपर या नीचे ४ अंगुल प्रदेश में सिरावेध करना चाहिए। यथा—

जानुसन्धेरुपर्यधो वा चतुरंगुले गृध्रस्याम् सिरां विध्येत् गृध्रस्यामिव विश्वाच्याम् संकुचित जानुकूर्परस्य (सिरां विध्येत्) —सु. शा. अ. ८

सिरावेधन या रक्तमोक्षण की क्रिया देखो आगे चिकित्सा प्रक्रिया प्रकरण में। विश्वाची में माषादि तेल का प्रयोग उत्तम है।

२ तोले और मधु १ माशा के मिश्रण के साथ देवें।

मालिश के लिये (मामूली लेप के लिये, अधिक मालिश से बेचैनी होती है) :—

(१०) त्रिशतीप्रसारणी तैल—प्रसारणी (गन्धक घास जो खूब लम्बी फैलती है), असगन्ध और दशमूल प्रत्येक ६। सेर लेकर पृथक-पृथक जौकुट कर १६-१६ सेर जल में पकावें। ४-४ सेर जल शेष रहने पर छानलें। फिर ४ सेर तिल तैल, १६ सेर दूध, ४ सेर दही और ८ सेर कांजी में उक्त क्वाथ मिश्रण कर, उसमें-पीपलामूल, जवाखार, प्रसारणी, कालानमक, सेंधानमक, मजीठ, चित्रक और मुलैठी १०-१० तोले, जीवनीय गण की जो कुछ औषधि प्राप्त हो जाय ५-५ तोले, सोंठ, २५ तोले, और भिलावे ३० नग इन सबका कल्क बना कर मिलावें, मंदाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान लें।

रुग्ण एवं पीड़ित स्थान पर उक्त तैल की धीरे-धीरे मालिश करावें और ऊपर से लहसुन तथा सेंधानमक दोनों को कुचलकर पोटली में बांधकर सेंक करें। †

निम्न सिद्ध प्रयोग भी परम लाभदायक हैं:—

(११) रसोनादि गूगल—गृध्रसी के उक्त विकारों पर तथा सन्धिवात आदि वातजन्य स्नायुशूल पर उत्तम कार्य करता है—

विधि—शुद्ध गूगल १० तोले, लहसुन साफ किया हुआ ५ तोले, त्रिकटु, रास्ना और रेंडी बीजों का मगज (इस मगज में से अन्दर की पत्ती निकाल देनी चाहिए, अन्यथा औषधि सेवन से उबाक और बेचैनी होने लगती है) प्रत्येक २॥ तोले। सबको एकत्र मिला (त्रिकटु, रास्ना का महीन चूर्ण कर लेवें) घृत के साथ कूटकर, खूब महीन गोली बनाने लायक हो जाने पर २-२ रत्ती की गोलियां बना रक्खें।

इस गूगल की २ से ४ गोली दिन में ३ बार निगल वाये जल के साथ देते रहने से बहुत लाभ होता है। कई रोगियों को कुछ वातुल पदार्थ खाने, शीत काल में बादल वर्षा आदि कारणों से वैसे ही वर्षा ऋतु में भी शरीर के किसी एक अवयव में तो कभी दूसरे अवयव में वातप्रकोप जनित वेदना होती है, उनके लिए यह गूगल हितावह है। +

(रस. तंत्रसार से)

---

† गृध्रसी पर पीतमल्ल प्रयोग रामबाण सिद्ध हुआ है—

पीला संखिया ५ तोला यवकूट कर, दोला यंत्र विधि से २ सेर भेड़ के दूध में स्वेदन करें। दूध के सूख जाने पर पुनः २ सेर दूध में स्वेदन करें। इस प्रकार ७ बार करें। फिर संखिया को शीशी में सुरक्षित रखें। अति कष्टदायक वेदनायुक्त वात व्याधियों की यह परम लाभदायक औषधि है। गृध्रसी के निवारणार्थ इस शुद्ध संखिया में से १ माशा लेकर उसमें १ तोला पुराना (लगभग १० वर्ष का) गुड़ मिला १-१ रत्ती की गोलियां बना प्रातःसायं १-१ गोली हलुवे के साथ सेवन कराने से तत्काल लाभ होता है।

मालिश के लिए—महानारायण तैल को आग पर खूब गर्म कर उसमें तैल का चौथाई मोम और मोम का अर्ध भाग कपूर मिला शीघ्र ही आग पर से उतार पात्र को ढांक कर रखदें। ठण्डा होने पर शीशी में भरलें। कमर, कूल्हे, उरु, जांघ पर इसकी मालिश करें, शीघ्र लाभ होता है। गृध्रसी में अधिक मालिश करना ठीक नहीं।

+ गृध्रसी की चिकित्सा आरम्भ करने के पूर्व रोगी को वमन, विरेचन से शुद्ध कर लेना परमावश्यक है। वमन के लिए एक युवा पुरुष को ६ माशे से ९ माशे तक मैनफल का चूर्ण गर्म जल के साथ पर्याप्त होता है। अथवा लवण २ से ३ तोले तक साधारण ३ पाव उष्ण जल में घोलकर पिलाने से भी वमन हो जाता है। पश्चात् विरेचनार्थ यदि रोगी कफ प्रकृति का हो या रोग में कफ की प्रधानता हो तो निसोथ चूर्ण ६ से ९ माशे तक और सोंठ चूर्ण ३ माशे एकत्र मिला तथा उसमें समभाग शहद मिश्रण कर ताजे ठंडे जल से सेवन कराने से अच्छी तरह विरेचन होकर कोष्ठ की शुद्धि हो जाती है। यदि रोगी वात प्रकृति का हो या गृध्रसी केवल वातज हो तो एक युवा पुरुष के लिए शुद्ध रेंडी तेल २॥ तोला से ५ तोला तक, गर्म गोदुग्ध के साथ पिलावें। इस प्रकार वमन विरेचन के बाद उक्त योगों में से कोई भी योग देश, काल, बल और प्रकृति का विचार कर सेवन कराने से अवश्य रोग की शांति और वैद्य को यश की प्राप्ति होती है। रोगी को विरेचनार्थ तीव्र जुलाब नहीं देना चाहिए, अन्यथा रोगी परेशान हो जाता है और शूल बढ़ जाता है।

गृध्रसीहर गुटिका—महायोगराज गूगल ८ तोले, भुनी हींग २ तोले और पित्ती निकाली हुई रेंडी बीज की मींगी २ तोले, इन तीनों को रास्नादि क्वाथ में ६ घंटे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा—१ से ४ गोली तक, प्रातः या प्रातः सायं, निवाये जल के साथ देते रहें। रोगी को कब्ज हो तो रेंडी तैल के साथ देवें।

शीघ्र लाभ होता है। इस औषधि के सेवन काल में घृत और तेल वाली पदार्थों का सेवन अधिक अनुकूल रहता है। (र. तं.)

त्रयोदशांग गूगल—लहसन, असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावरी, गोखरू, विधारा, रास्ना, सोंफ, कचूर, अजवायन और सोंठ का महीन चूर्ण समान भाग तथा सबके बराबर शुद्ध गूगल, तथा गूगल से आधा घृत लेकर गूगल और समस्त द्रव्यों के चूर्णको एकत्र मिलाकर थोड़ा-थोड़ा घृत मिलाते हुए कूटना चाहिए। यदि गोघृत हो तो और भी उत्तम, तथा घृत उतना ही डालें जितने में अच्छी तरह कूटा जा सके। यह प्रयोग वंगसेन के अनुसार है, भैषज्य रत्नावली आदि ग्रन्थों में लहसन के स्थान पर बबूल (इसकी छाल, या गोंद, या फली) लिया गया है। हमारे मत से गृध्रसी के निवारणार्थ तो लहसन ही ठीक है। गिलोय के स्थान में गिलोय का सत लिया जा सकता है। विधारा के स्थान में उसके बीज लेना और उत्तम है।

अच्छी तरह कूटकर एक जीव हो जाने पर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। मात्रा—२ से ४ गोली, दिन में दो या तीन बार सुरा, मद्य, दूध, मांस रस, यूष या कोष्ण जल से सेवन करावें।

धैर्य पूर्वक इस गूगल का प्रयोग ३ से ६ माह तक यदि कराया जाय तो गृध्रसी आदि जीर्ण स्नायुगत वात-विकार समूल नष्ट हो जाते हैं। शीघ्रता में उतना लाभ नहीं होता। पक्षाघात की प्रारम्भिक अवस्था में इस त्रयोदशांग गूगल का सेवन दशमूल क्वाथ के साथ कराया जाता है, शीघ्र ही लाभ होते देखा गया है।

रसोन पिण्ड—नं.१* श्री. पण्डित श्री गोवर्धन जी छांगाणी भिषक्केसरी का यह प्रयोग बहुत मार्के का, वैद्यों को यश देने वाला है—

विधि—एक पका पेठा लगभग ५ सेर वजन का लेकर उसके डण्ठल के स्थान पर चाकू से छेदकर भीतर से बीज आदि हो सके उतने निकाल देवें। फिर एक पोथी लहसन छिलका और बीच का अंकुर दूर किया हुआ वजन में आधा सेर (४० तोला) उस पेठे के अन्दर भर देवें। बाद में काटे हुये डंठल से छेद को बन्द कर पेठे के चारों ओर कपड़ मिट्टी करें। पश्चात् डण्ठल वाला भाग ऊपर ही रखते हुए उस पेठे को कण्डों के मध्य में रखकर पुटपाक-विधि से पका लेवें। जब कपड़मिट्टी ऊपर से लाल प्रतीत होने लगे, तब बाहर निकाल, शीतल होने पर कपड़ मिट्टी को धीरे से दूर कर लहसुन सहित पेठे को मसल कर जो कुछ बीज पेठे के निकलें उन्हें अलग कर कल्क बना लेवें। फिर कलईदार पीतल की कड़ाही में २० तोले तिल तेल डालकर गर्म करें। उसमें छोंक रूप से हींग (भुनी

---

* रसोन पिण्ड (नं. २)—इसके स्वल्प रसोन पिण्ड, महा रसोन पिंड, रसोनासव नामक कई प्रयोग भैषज्य रत्नावली आदि ग्रन्थों में हैं। उनमें से स्वल्प रसोनपिंड भी उत्तम कार्य करता है—लहसनों को साफ कर (उनके अन्दर का अंकुर भी निकाल दें) ६ तोले लेवें तथा हींग (भुनी) जीरा, सैंधानमक, कालानमक, त्रिकटु, प्रत्येक का चूर्ण १-१ माशा लेकर सबको खरल कर रखें। अग्नि-बलानुसार इसका सेवन एरण्डमूल के क्वाथ के साथ करें।

अथवा—उक्त प्रकार से साफ किये हुए लहसुन को रात भर गाय के दही की छाछ में भिगो, प्रातः धोकर, पत्थर के खरल में महीन पीस लेवें। इस कल्क का एक पंचमांश, अर्थात् यदि कल्क २५ तोले हो तो, निम्न द्रव्यों का समभाग मिश्रित चूर्ण ५ तोले के प्रमाण में मिलावें— काला नमक, अजवायन, हींग (भुनी) सैंधा नमक, त्रिकटु, जीरा और कलौंजी। फिर इस मिश्रण को थोड़ा तिल तैल मिला कांच के पात्र में भरलें। मात्रा —आधा तोला से १ तोला तक उक्त अनुपान के साथ पिलावें। सर्वाङ्गवात, एकांग वात, अर्दित, उरुस्तम्भ, गृध्रसी आदि रोगों पर लाभदायक है। रसोनपिंड (रसोनासव) का प्रयोग ग्रन्थों में या हमारे 'वृहदासवारिष्ट संग्रह' ग्रन्थ में देखिए।

हुई) १ तोला तथा दालचीनी के महीन टुकड़े, जीरा, राई और लौंग का चूर्ण २॥-२॥ तोले डालकर उक्त पेठे के कल्क भी डाल अच्छी तरह चलाते हुए पकावें। कढ़ाही को नीचे उतार कर, शीतल हो जाने पर उसमें—त्रिकटु, अकलकरा, दालचीनी, तेजपात, कालाजीरा, अजवायन, पीपलामूल, धनियां और जीरा इन ११ द्रव्यों का कपड़-छन चूर्ण १-१ तोला तथा सेंधानमक ५ तोले या कम ज्यादा डालकर अमृतवान में भर लें।

गृध्रसी, कटिवात, उरुस्तम्भ (Paraplegia) आदि रोगों से ग्रस्त रोगी को प्रातः सायं इसे ६ माशे से २ तोले तक खिलाकर ऊपर से वायविडङ्ग और एरण्ड मूल का क्वाथ पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

जीर्ण आमवात और सन्धि स्थान के शोथ पर भी यह योग लाभ पहुँचाता है। इसके सेवन से वातवाहिनियां, मांसपेशी और हृदय सबल बनता है, पेशाब साफ आता है। ज्वर रहता हो तो दूर हो जाता है, रक्त दबाव वृद्धि (High Blood pressure) हुई हो तो उसका ह्रास हो जाता है तथा शरीर में पूयोत्पत्ति हुई हो तो पूय कीटाणु नष्ट होते हैं।

पक्षाघात के रोगी को प्रातः सायं मल्लसिन्दूर अथवा व्याधिहरण रस (सोमलयुक्त, इसका प्रयोग उपदंश के प्रकरण में देखिए) अर्ध रत्ती और कस्तूरी चौथाई रत्ती के मिश्रण को अदरख रस और शहद के साथ देते रहें तथा उसके कुछ देर बाद रसोन पिंड २॥-२॥ तोले खिलाते रहने से पक्षाघात रोग शीघ्र दूर हो जाता है। जिन रोगियों को शराब सेवन से पक्षाघात होगया हो तथा जिनको पक्षाघात की दशा में मस्तिष्क और कोष्ठ में अति उष्णता रहती हो उनके लिए यह रसोनपिण्ड का प्रयोग विशेष हितावह है।

महायोगराज गूगल—सोंठ, छोटी पीपल, चव्य पीपलामूल चित्रकमूल छाल, हींग (घृत में भुनी हुई) अजमोद, पीली सरसों, जीरा, कलौंजी (मंगरैला), रास्ना, इन्द्रजौ, पाठा (पाढ मूल), वायविडंग, गजपीपल, कुटकी अतीस भारंगमूल, असगंध और वच प्रत्येक का महीन चूर्ण १-१ तोला, त्रिफला चूर्ण ४० तोले, गिलोय और दशमूल के क्वाथ में शुद्ध किया हुआ गूगल ६० तोले लेकर अठगुने जल में क्वाथ करें, अष्टमांश जल शेष रहने पर छानकर उसमें गूगल मिला ४-६ घण्टे रख दें, फिर खूब मसलकर छानकर मंदाग्नि पर पकावें। गूगल के पकजाने पर उसमें सूक्ष्म पीसा हुआ रससिन्दूर, बंग भस्म, रौप्यभस्म, नागभस्म, लोहभस्म, माक्षिकभस्म अभ्रकभस्म और मण्डूर भस्म प्रत्येक ४-४ तोले और उक्त २० द्रव्यों का महीन चूर्ण मिलाकर, अच्छी तरह खरल या इमामदस्ते में कूटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बना लेवें (लोह खरल की अपेक्षा पत्थर के मजबूत खरल में थोड़ा २ घी या शुद्ध रेंडी तैल मिलाकर इसकी खूब कुटाई करनी चाहिए। जितनी कुटाई होगी उतना ही गुणदायक होगा।) इस प्रकार बनाये हुए योग को महा-योगराज गूगल और बिना भस्मों के बनाये हुए योग को लघु योग राज गूगल कहते हैं

मात्राः—२ गोली महायोगराज की, ३-५ गोली तक लघुयोगराज की है।

जीर्ण स्नायुगत वात विकारों में, जैसे पक्षाघात, गृध्रसी, खल्ली, आक्षेपक, आमवात आदि की जीर्णावस्था में जबकि दोष धातुओं के भीतर लयभाव को प्राप्त हुआ हो, यह उत्तम कार्य करता है। वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य ने अपने सिद्ध योग संग्रह में, इस योग को शार्ङ्ग-धर संहिता से किंचित्परिवर्तित कर उत्तम सिद्ध योग बना दिया है। इसे उक्त प्रकार के स्नायुगत वात-विकारों पर रास्नादि क्वाथ के साथ सेवन कराया जाता है। यदि व्याधि बहुत ही तीव्र हो तो इसकी मात्रा ८ गोली या ३ माशे तक, ५ तोले रेंडी तैल में मिला, गरम कर आधा सेर गरम दूध और ५ तोले मिश्री मिला पिलावें। नित्य दिन में १० बार। ७ दिन के अन्दर ही लाभ होता है ×। गृध्रसी में गोमूत्र युक्त रेंडी तैल के

× अनुपान भेद से यह कई रोगों पर दिया जाता है जैसे—पित्तविकार में काकोल्यादि गण के क्वाथ से, कफ रोग में-आरग्वधादि क्वाथ से, मेदोवृद्धि, कुष्ठ तथा अनार्तव, पीडितार्तव आदि स्त्री रोगों में महामंजिष्ठादि क्वाथ से, क्रोष्टुशीर्ष में-रेंडी तैल और दूध से, शूल और शोथ में पीपल के क्वाथ से, नेत्र पीड़ा में-त्रिफला क्वाथ से, वातरक्त में-गिलोय क्वाथ से, अपस्मार में मुलैठी और वच का क्वाथ तथा पेठे का रस इत्यादि।

साथ भी इसे देते हैं ×

एलोपैथिक प्रयोग—

गृध्रसी (Sciatica) पर सोड़ा सैलिसिलास १५ ग्रेन एन्टिपाइरिन ५ ग्रेन, लिकर मोर्फीन हाइड्रोक्लोर १५ बून्द, स्पिरिट अमोनियां एरोमटिक २१ बून्द, जल १ औंस इस मिश्रण की एक मात्रा, ऐसी ३ मात्रायें दिन में देवें। अथवा—

सोडा सैलिसिलास (Soda Salicylas) ६ ग्रेन पोटाश ब्रोमाइड (Pot. Bromide) ५ ग्रेन, फेनाजोन (Phenazone) ३ ग्रेन, सोड़ा बाईकार्ब ५ ग्रेन, टिंचर बेलाडोना (Tr. Belladonna) ५ बूंद, और जल १ औंस। यह एक मात्रा हुई, ऐसी मात्रायें दिन में ३ बार देवें।

उक्त मिश्रणों के साथ या स्वतंत्र रूप से आटोफेन गोली (Atophan Tabts) १ गोली और सोड़ाबाईकार्ब १० ग्रेन, दोनों का मिश्रण के प्रमाण से दिन में ३ बार देवें। अथवा—

एस्पिरीन ५ ग्रेन, कुनीन सैलिसिलास २ ग्रेन, और कोडीन ¼ ग्रेन, ऐसी १ मात्रा, दिन में ३ बार। अथवा

केवल सिवाल्जिन (Cibalgin Tablets) की १ गोली या नोवल्जिन (Novalgin) १-१ गोली या इरगापायरिन (Irgapyrin) की १-१ गोली का प्रयोग करें।

इन्जेक्शनों में—विटामिन बी. (Vitamin B.) का या मिक्स्ड इन्फैक्शन फाइलेकोजन (पी. डी.) का, ऐटोफिनील (रोरिंग) का, बेरिन (Berin Glaxo) का इत्यादि इञ्जेक्शन पेशी में देवें।

यदि किसी से लाभ न हो तो पीड़ित स्थान में (Sciatica nerve में) नोवोकेन (Novocain) ४ प्रतिशत की ४ सी. सी. अथवा मद्यसार (Alcohol) ५ सी. सी. का इन्जेक्शन देवें।

पीड़ित स्थान को पूर्ण आराम देना आवश्यक है। उस स्थान पर लिनिमेंट मिथिल सैलसिलेट को.(Liniment methyl Salicylate Co.) का अथवा लिनिमेण्ट ए. बी. सी. (Liniment A. B. C.) का प्रलेप करें। अथवा लिनिमेण्ट बेलाडोना इस प्रकार बनाकर काम में लावें—

प्रथम कपूर १ औंस को अल्कोहल ७ औंस में द्रव करें, पश्चात् उसमें लिक्विड एक्ट्रैक्ट बेलाडोना १० औंस और वाष्पजल २ औंस मिला कुल २० औंस लिनिमेण्ट

गृध्रसी पर निम्न प्रयोग प्रशंसनीय एवं परीक्षित हैं :—

समीर सुधा—एरण्ड तैल में शुद्ध किया हुआ कुचला का महीन चूर्ण ३ तोले, पीपलामूल, सोंठ, दालचीनी, सुहागा और कालीमिर्च प्रत्येक का महीन चूर्ण २-२ तोले लेकर सबको एकत्र खूब खरल करें। पश्चात् उसमें उत्तम कस्तूरी ७ माशे, अम्बर ४ माशे और स्वर्ण भस्म ३ माशे इन तीनों को खूब खरल कर मिलादें और पुनः भली-भांति खरल कर शीशी में सुरक्षित रक्खें। मात्रा—४ रत्ती, मुनक्का के अन्दर भरकर खिलावें, मुनक्का के बीज निकाल डाले। एवं दिन में ३ या ४ बार देवें, ऊपर से सुखोष्ण दूध पिलावें। लगातार ७ दिन से ज्यादा इसका प्रयोग न करावे। ७ दिन के बाद कुछ दिनों के अन्तर से २-३ बार सेवन कराने से रोग जड़ से नष्ट हो जाता है।

(वैद्य श्री ताराचन्द जी लोढ़ा, मेडिकल डाइरेक्टर धन्वन्तरि के समन्वय चिकित्सांक से)

× गृध्रसी पर रास्ना गुग्गुल का भी सफल प्रयोग होता है। रास्ना चूर्ण ५ तोले और शुद्ध गूगल ६। तोले, दोनों को एकत्र आवश्यकतानुसार घृत के साथ कूटकर इसे तैयार करते हैं। मात्रा—आधे माशे से २ माशे तक उष्ण जल से सेवन करावें। शुद्ध या केवल वातज गृध्रसी पर यह शीघ्र लाभकारी है। यदि इस गूगल की मात्रा ४ रत्ती के साथ रस सिन्दूर ½ रत्ती शुद्ध कुचला चूर्ण ½ रत्ती मिश्रण (यह १ मात्रा है) दिन में दो बार मधु से देकर ऊपर से रास्नादि क्वाथ पिलाया जाय तो और भी शीघ्र लाभ होता है। यदि इस पर भी ठीक-ठीक लाभ न हो, तो हारसिंगार पत्र अथवा निगुण्डी (संभालू) पत्र के चतुर्थांश क्वाथ के साथ केवल उक्त रास्ना गूगल का सेवन करावें। बड़े-बड़े प्रयोगों से भी दूर न होने वाला यह रोग, उक्त सरल प्रयोग से ही दूर हट जाता है। ऐसा हमारा कई बार का अनुभव है, तथा श्रीनृसिंह देव शर्मा, शास्त्री B. A. आयुर्वेदाचार्य ने भी ऐसा ही अपना अनुभव महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित कराया है।

[मर्दन प्रनेर] तैयार होगा, इसे २४ घण्टे शीशी में बन्द रखकर छान लें।

गृध्रसी आदि वात रोगों पर इसका मर्दन अति उपयोगी होता है। शूल को शीघ्र ही दूर कर देता है। राजयक्ष्मा रोग में वक्षः प्रदेश की मांस-पेशियों में उग्रता तथा त्वचा में स्पर्शशक्ति की अधिकता होने पर इस लिनिमेण्ट का उपयोग किया जाता है तथा इसका प्लास्टर भी लगाया जाता है। स्तनों में वेदना होने पर इसकी मालिश करने से शीघ्र ही लाभ होता है। हृदयशूल पर भी इसके मर्दन से लाभ होता है। अथवा—

लिनिमेण्ट तार्पिन—तार्पिन तेल ६५ औंस, कपूर ५ औंस, मृदु साबुन (Soft Soap) ७॥ औंस और वाष्प-जल २२॥ औंस लेकर तार्पिन तेल में कपूर मिलावें। साबुन को जल में घोल लें। फिर दोनों को मिला घोट-कर प्रलेप तैयार करलें। १०० भाग में कम हो उतना जल और मिला लें।

यह प्रलेप उत्तेजक, प्रत्युग्रतासाधक(Counter irritant) और चर्मप्रदाहक (Rubefacient) है। चिरकारी वातरोग, गृध्रसीशूल, कटिशूल, जीर्ण आमवात, संधिवात आदि में इसका उपयोग होता है। सूतिका रोग में आक्षेप आने पर भी इसकी मालिश करायी जाती है।

—र० त० सार

पक्षाघात पर शीघ्र लाभकारी सिद्ध प्रयोग+

महावात विध्वंसन रस (रस चण्डांशु)—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ तोला लेकर कज्जली करें, फिर उसमें नागभस्म (शतपुटी हो तो और उत्तम है), बंगभस्म लोहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, छोटीपीपल, सोहागे का फूला, सोंठ और कालीमिर्च प्रत्येक का महीन चूर्ण १-१ तोला तथा शुद्ध वच्छनाग का महीन चूर्ण ४॥ तोले मिलावें। फिर उसमें त्रिकटु क्वाथ, त्रिफला क्वाथ, चित्रक मूल क्वाथ, कूठ का क्वाथ, भांगरे का स्वरस, सम्हालू पत्र स्वरस, आंवला स्वरस, अदरखरस, नीबू रस और आक का दूध प्रत्येक की ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

तीव्र वेग वाले आशुकारी पक्षाघात में वातप्रकोप की शान्ति के लिये तथा किसी भी कारण से उत्पन्न किसी भी रोग में वात वाहिनियों के तीव्र क्षोभ-नाशार्थ तथा शूल के शमनार्थ इसकी मात्रा १ से २ गोली तक दिन में ३ वार अदरख के रस के साथ सेवन करायी जाती है।

गृध्रसी की तीव्रावस्था में भी यह उत्तम कार्य करता है, इसे आधी या १ रत्ती की मात्रा में लेकर आम का मुरब्बा ३ माशा और भांगरा स्वरस १ तोला एकत्र मिश्रण को

+ पक्षाघात का अर्थ साधारणतः ऐच्छिक मांसपेशियों की क्रिया अथवा क्षमता का लोप होता है। इसमें सार्वाङ्गिक या स्थानिक चेतनाशक्ति का लोप या ह्रास हो जाता है। संचालन और चेतना दोनों का लोप होने पर पूर्ण पक्षाघात, तथा दोनों में से एक का लोप होने पर आंशिक या अपूर्ण पक्षाघात कहाता है। पक्षाघात के अनेक विभागों में जो अर्धाङ्गवात (Hemiplegia) है, वह विशेष त्रासदायक, दीर्घकाल स्थायी और संतापकारक है। यह विशेषतः उपदंश आदि रोगों से जिनकी रक्तवाहिनियां दूषित हो जाती है, उनको होता है। क्वचित विष-प्रकोप और शीत आदि कारणों से भी हो जाता है। निर्बल हृदय वाले असहनशील मनुष्यों को मन के विरुद्ध कुछ वर्ताव या वार्तालाप होने पर, अकस्मात संताप होकर तत्काल सारे शरीर में विकृति हो जाती है, फिर दूषित रक्तवाहिनियों में रक्तसंचय अधिक होता है, फलतः मस्तिष्क और वातवहा केन्द्रों (Nerve Centres) में रक्तभार की वृद्धि होकर पक्षाघात हो जाता है, रक्तवाहिनियां फूटकर रक्तस्राव होता है, यदि रुधिर संग्रह ज्ञानकेन्द्र के समीप होता है तो रोगी का ज्ञान सर्वांश या न्यूनांश में नष्ट होता है। इस विकार में शरीर की संचालन क्रिया पर अधिकार नहीं रहता। स्नायुओं के बल से शारीरिक संचालन आदि व्यापार होता रहता है। किन्तु स्नायुओं पर अधिकार कम हो जाने से व्यापार शिथिल हो जाता है, रोगी विचलित हो जाता है।

(यह १ मात्रा हुई) धीरे-धीरे चटाते हैं। इस प्रकार ३-४ बार या दिन में दो बार चटाने से तथा विषगर्भ तेल में तार्पिन तेल और कपूर मिलाकर मालिश करते रहने से यन्त्रणा शीघ्र शांत होती है।

एकाङ्गवीर (वृ० नि० र०)—शुद्ध गन्धक, रस सिन्दूर, कांतलोह भस्म, बंगभस्म, नाग (सीसा) भस्म ताम्रभस्म (नाग और ताम्र भस्म यदि शतपुटी हों तो अति उत्तम), अभ्रक भस्म लोह भस्म और त्रिकुट इन ११ औषधियों को समान भाग लेकर खूब महीन चूर्ण कर त्रिफला, त्रिकटु, संभालु, चित्रकमूल, अदरख, सहजने की छाल, कूट, आमला, कुचला, आक का मूल, अकरकरा और पुनः अदरख, इनके क्वाथ या रसकी पृथक-पृथक तीन-तीन भावनायें देकर १ से ३ रत्ती तक की गोलियां बनावें। मात्रा—१ या २ गोली, रास्नादि क्वाथ या अर्क के साथ दिन में दो बार।

इसका प्रयोग पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात आदि प्रायः सब प्रकार के उग्र वातविकारों पर सफलतापूर्वक होता है। किन्तु यह केवल वात प्रधान या वात कफ प्रधान विकृति पर ही उत्तम लाभ करता है। यदि वात के साथ पित्त का अनुबन्ध हो और इसका सेवन कराना आवश्यक हो, तो इसके साथ प्रवालपिष्टी या शिलाजीत आदि पित्त शामक औषधि की योजना करनी चाहिए। अथवा इस रस के स्थान में अर्द्धाङ्ग वातारि रस का प्रयोग करें।

अर्द्धाङ्गवातारि रस (रस रत्नाकर)—शुद्ध पारद में पंचमांश साधारण ताम्रभस्म (यदि पारा २० तोला हो तो ताम्र ४ तो०) मिला जम्भीरी नीबू के रस में एक दिन खरलकर उसमें पारद के समभाग शुद्ध गन्धक मिला कज्जली करें। पश्चात् पान के रस में खूब खरल कर गोला सा बना शुष्क कर, तथा शराव सम्पुट कर भूधर यन्त्र में (जमीन में गड्डे के भीतर सम्पुट को रख, उस पर कुछ मिट्टी दबा, २-४ कण्डों की आंच देवें, उसमें फिर बार-बार १-१ कण्डा डालते जावें, एवं १५ घण्टे आंच देवें) पांच प्रहर तक हलकी आंच से पकावें।

स्वांग शीतल होने पर, औषधि में त्रिकुट के क्वाथ की ३ भावनायें देकर (कोई-कोई रस के समभाग त्रिकुट चूर्ण मिला, और खरल कर रख लेते हैं। इसकी मात्रा २ रत्ती की है) १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

अर्द्धांग या एकाङ्ग वातविकार में इसे शहद के साथ सेवन कराने से लाभ होता है बार-बार शरीर में जो झटके से आया करते हैं वे शमन हो जाते हैं। यह कफ प्रधान प्रकृति वालों एवं स्थूल व्यक्तियों के लिये विशेष हितकर है। जिन ि रक्तवाहिनियों में आम या कफ का संचय हो, एवं जो निर्बल हृदय वाले हों उनके लिये तथा पित्त प्रकृति वालों को भी यह लाभप्रद है। उपदंश विष से पीड़ित और शराबी के लिये तथा वात प्रकृति वालों को एकाङ्गवीर रस का प्रयोग विशेष लाभकारी होगा है।

यदि पक्षाघात ‡ बहुत दिनों का हो गया हो तो इस रस के अनुपान में महारास्नादि क्वाथ, या देवदार्व्यादि क्वाथ अथवा दशमूल क्वाथ की योजना करनी चाहिये। इस रस की मात्रा जहां तक हो सके कम से कम शक्ति का विचार करके देवें।

रोगी को पथ्य में तक्र देना उत्तम है। दूध देना ठीक नहीं। कारण जिस औषधि में ताम्र हो उस पर दूध सेवन ठीक नहीं होता। मूंग का यूष और गेहूँ का दलिया पथ्य में देना उत्तम है। शराब और चाय का व्यसन छुड़ा देना चाहिए। चाय लेना आवश्यक ही हो तो औषधि सेवन के १ या २ घण्टे बाद ले सकते हैं उसमें भी दूध बहुत कम होवे। जिस रोगी का वृक्क दूषित हो उसे यह रस नहीं देना चाहिए।

---

‡ पक्षाघात की सम्प्राप्ति बहुधा रक्तवाहिनियों और वातवाहनियों पर आघात पहुँचने पर होती है। अतः जीर्णावस्था में दोनों पर लाभ पहुँचाने वाली औषधी का प्रयोग किया जाता है। एकांगवीर, योगेन्द्ररस, बृहत् वात चिंतामणि और रसराज (रजराज का प्रयोग देखो धनुस्तंभ प्रकरण में) इनमें से कोई भी दोनों पर लाभ पहुँचा सकते हैं। इनमें से एकांगवीर अति तीक्ष्ण होने से सब उसे सहन नहीं कर सकते। अतः सौम्य प्रकृति वालों के लिये शेष तीन रसों में से ही योजना करनी चाहिए। जिन रोगियों को पित्त प्रकोप न हो, और शुक्रक्षय हो, उनके लिये बृहद् वातचिंतामणि और योगेन्द्र रस की अपेक्षा रसराज विशेष अनुकूल होता है। आवश्यतानुसार नारायण तैल की मालिश आदि बाह्योपचार भी करते रहना चाहिये। (रसतंत्रसार से साभार)

विटपिष्टी योग—कपोत (कबूतर) की बीट (विष्टा) १० तोले, मल्लसिंदूर २ तोले, कस्तूरी उत्तम १ तोला और हरताल का फूला ६ माशे लेकर, प्रथम कबूतर की सूखी बीट को कूट कपड़छन करलें और फिर सब द्रव्यों को मिलाकर खरल में डालकर मजबूत हाथों से तीन दिन तक घुटाई करें। इस दवा में घुटाई का अधिक होना उत्तम गुणाधारक है। उत्तम पिष्टी होने पर शीशी में रक्खें।

मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक, दिन में ३ बार अदरख के रस और शहद के साथ देना चाहिए।

पथ्य में—गेहूँ की रोटी, दलिया, मूंग की दाल, दूध आदि देवें।

यह दवा कष्ट साध्य वातविकारों को भी दूर कर देती है, किन्तु पक्षाघात (लकवा), अर्दित तथा कम्पवात की तो अप्रतीम औषधि है। इसका ४० दिन का प्रयोग है। विकार के प्रारम्भ में ही इसका प्रयोग करने से पांच दिन में ही फल प्रतीत होने लगता है। हमने इसका अनेक जगह प्रयोग किया है। हमारे अनुभव से ८७ प्रतिशत को लाभ हुआ है।

(श्री गुलराज शर्मा मिश्र वैद्य वाचस्पति गुप्त सिद्ध प्रयोगाङ्क से)

एलोपैथी का एक प्रयोग—पोटास ब्रोमाइड १५ ग्रेन, पोटास आयोडाइड ५ ग्रेन, टिंक्चर नक्सवोमिका ५ बूंद तथा वाष्प जल १ औंस। दिन में ३ बार सेवन करावें।

रोगी को पूर्ण विश्रान्ति देवें। यदि वह करवट से लेटे तो अच्छा हो। यदि उसे कब्ज हो तो ४-५ ग्रेन कैलोमल या १ बूंद क्रोटन आयल उसकी जीभ पर रख देवें। कैस्टर आयल (रेंडी तेल) का एनिमा भी दे सकते हैं। रोगी को विश्राम के साथ-साथ हलका और शीघ्र पचने वाला भोजन देना चाहिये, तथा चाय, काफी, मदिरा इत्यादि उत्तेजक वस्तुओं से परहेज रखना चाहिए।

अर्दित (Facial paralysis) ×

अर्दितारि रस—केशर, एरण्ड तेल में शुद्ध किया हुआ कुचिला, हिंगुल, रौप्यभस्म, अकरकरा, जायफल, जावित्री और लौंग १-१ तोला, सोमल (संखिया) और कस्तूरी ३-३ माशे लेकर सबको ब्राह्मी (जलनीम) के क्वाथ में १२ घण्टे तथा अदरख के रस में १२ घंटे खरल कर आध-आध रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१-१ गोली प्रातः सायं गोदुग्ध के साथ सेवन कराने से अर्दित, खञ्जवात, पक्षाघात और कम्पवात आदि रोग दूर होते हैं। जीर्ण अर्दित और जीर्ण पक्षाघात में विशेष लाभदायक है। (रस तंत्रसार भा. २)

(२४) **अर्दितहर योग**—सरसों के तेल में, उड़द के बड़े पकाकर मक्खन के साथ खिलाते रहने से, अति बढ़ा हुआ तीक्ष्ण अर्दित रोग भी एक सप्ताह में शमन हो जाता है। नये रोग के लिये यह उत्तम उपाय है। रोग पुराना होने पर उतना लाभ नहीं पहुंचाती। अत्यधिक बड़े खाने से बद्धकोष्ठ होकर या अपाचित आम अन्त्र में शेष रहकर नया उपद्रव उपस्थित करता है। अतः अन्त्र को पहले एरण्ड तैल से शुद्ध कर लेना चाहिए। और पाचनशक्ति के अनुसार बड़े खाने चाहिए। बड़े पाचन होकर जब तक क्षुधा न लगे, तब तक कुछ भी नहीं खाना चाहिए। (र. तं. सा.)

नोट—अर्दित, जिह्वास्तम्भ, धनुर्वात आदि वात-रोगों में जब कफ दोष का अनुबन्ध विशेष हो तो समीर-पन्नग रस की मात्रा अर्धरत्ती से १ रत्ती तक अदरख और शहद के साथ दिन में २-३ बार सेवन कराने से

× अर्दित यह पक्षाघात का ही एक भेद है। इसमें विशेषतः मुख टेढ़ा हो जाता है, ग्रीवा भी कुछ मुड़ जाती है, सिर कभी-कभी हिलने लगता है, बोलने में रुकावट (वाणी स्तब्ध) होती है, तथा नेत्रादि विकृत होजाते हैं। एवं जिस ओर अर्दित होता है, उसी ओर ग्रीवा, ठुड्डी (चिबुक) और दांतों में व्यथा होने लगती है। जिसकी पूर्वरूपावस्था में रोमहर्ष, कंपकंपी, नेत्रमलिनता, वायु का ऊर्ध्वगमन (ऊर्ध्ववात), त्वक्सुप्तता, तोद, मन्याग्रह और हनुग्रह होता है, उस व्याधि को अर्दित कहते हैं। ध्यान रहे, अर्दित में जो वेदना होती है वह प्रायः उसके वेग के समय होती है। और अर्धाङ्गवात में वेदना प्रायः सर्वदा हुआ करती है। यूनानी में अर्दित को ही लकवा तथा अर्धाङ्गवात को फालिज कहते हैं।

जीर्ण अर्दित दूर हो जाता है।

मर्दन या मालिश के लिये निम्नविधि से कुचिला तैल बनाकर काम में लावें।

(२५) कुचिला तैल—कुचिला को जौकुट कर, वजन से चौगुने जल में भिगो रक्खे। इस पात्र को ऐसी जगह रक्खें, जहां दिन में सूर्य की धूप लगे और रात्रि में चन्द्रका प्रकाश। पात्र, कलई की हुई कड़ाही हो तो उत्तम लाभ होता है। ७ दिन बाद इस कड़ाही में, कुचिला के वजन से १० गुना तिल तैल डालकर मन्दाग्नि पर चढ़ादें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर सुरक्षित रक्खें।

इस तैल के मर्दन से अर्दित के अतिरिक्त अन्यान्य वातरोगों पर, शूल पर, पक्षाघात पर भी लाभ होता है।

यूनानी सिद्ध प्रयोग

(२६) हब्ब सम्मुलफार—श्वेत संखिया (सम्मुलफार) ३ रत्ती, श्वेत कत्था, वंसलोचन प्रत्येक ५ माशे। सबको बारीक पीसकर सोंठ के पानी में खरल करके उड़द प्रमाण की गोलियां बनालें।

प्रतिदिन भोजन के बाद दोनों समय १-१ गोली एक सप्ताह पर्यन्त रोगी को सेवन करावें, तीसरे दिन दवा सेवन के बाद यदि मिश्री का शरबत (पानक) पिला दिया जाय तो रोगी को खुल कर दस्त आ जाते हैं, जिससे अवशिष्ट दोष निकल जाता है।

संशोधन के उपरान्त अर्दित और पक्षवध में इसका सेवन अतीव गुणकारी है। (यू. सि. सं)

(२७) माजून फलासफा—सोंठ, मिर्च, पीपल, कलमी दारचीनी, गुठली निकाला हुआ आमला, हरड़ का वकला, चीता (चित्रक), जरावन्द गिर्द, सालम मिश्री, चिलगोजे की गिरी, बाबूना की जड़, बाबूना पुष्प और नारियल की गिरी। प्रत्येक ६ माशा, मुनक्का बीज निकाला हुआ ३ तोला, शुद्ध शहद २ तोला, मिश्री ४४ तोले। इनका यथाविधि माजून तैयार करलें।

६ माशे माजून मधुशार्कर (माउलअस्ल) या अर्क-सौंफ इत्यादि के साथ सेवन कराने से, अर्दित, पक्षवध, कफजसंन्यास (वलगमी सुवान) और गृध्रसी आदि व्याधियों में परम लाभ होता है। (यू० सि० सं)

(२८) हब्बसुर्ख—अकरकरा, सोंठ १-१ तोला, कालीमिर्च, पीपल, बिरोजा, लौंग (टोपी दूर की हुई शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध सिंगरफ प्रत्येक २-२ तोला, सबका महीन चूर्ण कर २०० नग पान में इतना खरल करें कि गोली बन सके। मूंग जैसी गोलियां बनालें।

मात्रा—४ से ८ गोली तक अर्दित और पक्षवध में, शहद या अदरख के रस के साथ देवें। कफज कास में १-१ गोली बंगला पान में रख खिलावें। परम गुणकारी है।

(२९) हब्ब स्याह—शुद्ध पारा, शुद्ध आमलासार गन्धक, शुद्ध शिंगरफ, हीराकसीस, आमला (गुठली निकाला हुआ), जायफल, पित्तपापड़ा (शाहतरा) पत्र, प्रत्येक १ तोला तथा कचूर, सोंफ, सुहागा (फुलाया हुआ), नीम गिलोय प्रत्येक ६ माशे लेकर, प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना, उसमें सिंगरफ मिला दो प्रहर तक खरल करें। फिर शेष द्रव्यों का महीन चूर्ण मिला, कागजी नीबू का रस थोड़ा-थोड़ा डालकर ४ प्रहर तक खरल करें। गोली बनाने योग्य हो जाने पर बाजरे जैसी गोलियां बनालें।

मात्रा—अर्दित और पक्षवध में २ माशे तक की गोलियां, अदरख रस के साथ सेवन करावें। डब्बा रोग (पसली चलने) पर दूध में घोलकर १ गोली, खांसी पर पान के साथ १ गोली, आमवात में ४-६ गोलियां एरण्ड-मूल के क्वाथ के साथ देने से लाभ होता है।

(यू० सि० सं)

(३०) हलवए दालचीनी—अर्दित में मुख पर बांधने के लिए गेंहू का आटा, गोघृत और गुड़ ४-४ तोला, कलमी दालचीनी, जायफल और लौंग प्रत्येक ४ माशे इनका विधिवद् हलुवा बनाकर अर्दित में मुखमण्डल [चेहरे] पर बांधने से लाभ होता है। (यू० सि० सं)

(३१) रोगन सुर्ख—मालिश के लिए—मजीठ १ पाव, कायफल, नागरमोथा २-२ तोला, तेजपात, लौंग, दालचीनी १-१ तोला, बरकचूर २ तोला, छोटी इलायची ३ तोला, कुचला २ तोला, जावित्री ६ माशे, शुद्ध कस्तूरी ६ माशे, मैदालकड़ी, श्वेत चन्दन का बुरादा २-२ तोला, केशर ४ माशे, हल्दी, दारुहल्दी, कृष्णअगर (ऊदगर्की) १-१ तोला, उत्तम गुलावार्क १ सेर और तिल तेल २ सेर

लेकर, प्रथम उक्त सब द्रव्यों को जव कुटकर, रात्रि में गुलाबार्क में भिगोदें। सवेरे उसे देगची में पकावें, जब आधा अर्क रह जाय, तब तेल मिलाकर पकावें, तेल मात्र शेष रहने पर छानकर तथा बोतल में भर ७ दिन तक जमीन में गाड़ देवें। पश्चात् निकाल कर आवश्यकतानुसार सुहाता गरम कर इसकी मालिश करने से अर्दित, अंगघात या एकाङ्गवात, पक्षवध, आमवात और वातनाड़ियों को अनुपम लाभ पहुंचाता है। (यू० सि० सं) ‡

स्तम्भ (Stiffness)—

स्तम्भ अर्थात् जकड़न, अकड़ाव कई प्रकार का शरीर में होता है। विशेषतः स्नायुओं से जिसका सम्बन्ध है, ऐसे स्तम्भ, उरुस्तम्भ मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ आदि हैं।

ऊरुस्तम्भ—यह विशेष कष्टदायक है, इसका सम्बन्ध स्नायु या कण्डराओं के साथ ही साथ जंघाओं की अस्थियों से है। भोजन के जीर्ण या अजीर्ण की दशा में अति शीतल उष्ण, द्रव, शुष्क, भारी या स्निग्ध पदार्थों के खाने से तथा अति परिश्रम, क्षोभ, निद्रा या जागरण से कफ, मेद और आराम सहित वायु अत्यधिक मात्रा में संचित होकर अन्य दोषों को (पित्त को) दबा कर जांघों पर अधिकार कर लेती है तथा वहां की अस्थियों को मन्द श्लेष्मा से पूरित कर स्तम्भित कर देती है।

इसमें दोनों जांघें स्तब्ध, शीतल, अचेतन, परकीय की तरह (मानों अपनी न हों), भारी और अत्यधिक पीड़ा युक्त हो जाती हैं। साथ ही साथ चिन्ता, अंगों में पीड़ा, शरीर गीले कपड़े से पोंछा हुआ के समान प्रतीत होता है, तन्द्रा, वमन, अरुचि एवं ज्वर भी रहता है। पैरों के उठाने में कठिनाई होती है, उनमें अवसाद या सुप्ति या सुन्नता आ जाती है। इस रोग को आढ्यवात भी कहते हैं।@

इसमें वायु यद्यपि रोग का आरम्भक है, तथापि वह कफ से आवृत्त होजाने से कफ को ही प्रधानता देते हुए चिकित्सा की जाती है। सुप्ति, संकोचादि लक्षणों को देख कर इसमें वात प्राधान्य की भ्रांति से यदि अज्ञानवश स्नेहन चिकित्सा कर दी जाय, तैलादि का मर्दन कर दिया जाय तो लाभ के स्थान में हानि होती है तथा उक्त लक्षणों की वृद्धि होती है। अर्थात अनुपशय होता है।

यदि रोगी दाह पीड़ा, सुई चुभोने की सी पीड़ा और कम्प से पीड़ित हो, उसे असाध्य जानना चाहिए। यदि दाह, पीड़ा और कम्प की विशेपता न हो तथा रोग नया हो तो उसे साध्य मान कर चिकित्सा करनी चाहिये।

ध्यान रहे, उरुस्तम्भ में स्नेह क्रिया, वेधन क्रिया (रुधिर निकलवाना, फसद), विरेचन, वस्ति आदि चिकित्साकर्म नहीं करना चाहिए। क्योंकि इन कर्मों से उलटा परिणाम होता है, रोग और बढ़ जाता है।

इस रोग में कफ आमदोष की प्रधानता होने से सदैव स्वेदन, लंघन और रूक्ष क्रियायें ऐसी करनी चाहिए, जिसमें कफ का शमन हो और वात का प्रकोप न होने पावें। गोमूत्र में अपामार्ग आदि क्षारों को मिला और तपा कर भाफ देना (स्वेदन करना), करंजुआ, सरसों, असगन्ध, आक की जड़, नीम की जड़, देवदारु आदि के महीन चूर्ण से सांयल या जांघ को मलना चाहिए। तथा आगे कही हुई औषधियों का सेवन देश, काल, प्रकृति आदि का विचार करते हुए कराना चाहिए। नदी या तालाब में तैरना, सूर्य की धूप में तपी हुई रेत या बालू पर चलना

---

‡ पाकों में-चोपचीनी पाक का सेवन हितकर होता है। देखो वृहत्पाक-संग्रह (धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़)

@ पाश्चात्य वैद्यक को परप्लेजिया (Paraplegia) नामक रोग को ही ऊरुस्तम्भ मानते हैं। किन्तु वह तो पैर तथा निम्नांग का पक्षाघात है, जिसमें कर्महीनता एवं वेदनाहीनता होती है। उसमें स्नेहन एवं बृंहण चिकित्सा विशेष की जाती है। ऊरुस्तम्भ में पूर्ण कर्महीनता और वेदना का अभाव नहीं होता, रोगी पैरों को इधर-उधर मोड़ सकता है, हिल-डुल सकता है, किन्तु कष्ट अवश्य होता है। यह तो अति परिश्रम या व्यायामजन्य उत्तेजक कारणों (Exciting Causes) से हुई जंघा की तीव्र जकड़न (Spasm or an Involuntary muscular contraction or muscular Fatigue) है। इसे ही संमूढवात कहते हैं, जिसके विषय में माधवनिदान के उपशय प्रकरण में, मधुकोष टीका में लिखा है—

व्यायाम जनित संमूढवाते जल प्रतरण रूप व्यायाम इति।

रोगी के लिए हितकारी है। गेहूं, चना, पुराने चावल, कोदों, मूंग, बैंगन, मूली, बथुआ, तीतर, बटेर, कुक्कुट आदि जंगली जीवों का मांस या मांसरस तथा वर्षा का जल पथ्य में देना चाहिए। शरीर में रूक्षता उत्पन्न करने वाली औषधियां तथा आहार—विहार का सेवन करना चाहिये। खाने के पदार्थों में उक्त पदार्थों के अतिरिक्त जो, कुलथी, सहंजने की फली, करेला परवल, लहसुन, मकोय, बेंत की कोंपल, अमलतास की फली, मधु तथा कड़वे, चरपरे, कसैले, खारी पदार्थ यथैष्ट दे सकते हैं। जल गरम किया हुआ देवें और यथाशक्ति दण्ड, कसरत, बैठक आदि करावें।

ऊपर निदान में कहे हुए आहार विहार तथा भारी शीतल, पतले, चिकने, विरुद्ध, एवं अपने मन के प्रतिकूल पदार्थों का सेवन अहितकर है।

ध्यान रहे, उरुस्तम्भ में प्रायः स्थानीय अन्तर्विद्रधि Internal abscess or Inflamatian) भी कारण हुआ करती है। कभी-कभी रोगियों में क्षय या उपदंश मूलक रोगों का आक्रमण ही इसका कारण हो जाता है। अतः भलीभांति कारणों की समीक्षा करके तदनुरूप इसके चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहिए।

उपचार—उरुस्तम्भ की चिकित्सा के प्रारम्भ में रोगी के कोष्ठ संशोधनार्थ नाराचघृत का सेवन कराना उत्तम होता है।

नाराचघृत (वृहत्)-भै० र०—लोध, चित्रक मूल, चव्य, वायविडंग, त्रिफला, निशोथ, शंखिनी (सातला या ओंघाफूली की जड़) अतीस, त्रिकटु, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी और दन्तीमूल १-१ तोला, इनका महीन चूर्ण कर इसमें अमलतास का गूदा १६ तोले और थूहर का दूध १६ तोले मिला कल्क करें। फिर इस कल्क को गोमूत्र ३२ तोले, गोघृत ६४ तोले, तथा घृत से चौगुना जल मिला, मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—आधे तोले से १ तोला तक प्रातःकाल गर्म जल के साथ ३-४ दिन तक पिलावें।

साथ ही साथ स्थानीय श्लैष्मा के पाचनार्थ कमर से पैर तक रुक्ष सेंक बालू की पोटली से, या अपामार्ग आदि क्षारयुक्त गोमूत्र को तपाकर भाप देवें। सोंठ, कूठ आदि गर्म, खुश्क द्रव्यों को पीसकर सांथल और घुटनों तक मर्दन करे। अथवा—

बाम्बी की मिट्टी, मूली के बीज और असगंध चूर्ण समभाग एकत्र कर मर्दन करें। अथवा—

बाम्बी की मिट्टी में सरसों और नीम पत्र पीसकर शहद मिला मर्दन करते हुए लेप करें। अथवा—

धत्तूर मूल, पोस्त डोंडा, लहसन, कालीमिर्च, काला जीरा, संहजना छाल, अरणी पत्र, और सरसों समभाग गोमूत्र में पीसकर गर्मागर्म लेप साथल और जांघ पर करें। अथवा—

आक (अर्क) की जड़ की छाल को गोमूत्र में पीसकर जांघ और सांथल पर लेप करें।

यदि रोग नवीन हो, तो—

दन्त्यादि क्वाथ—दन्ती (जयपाल वृक्ष की छाल) मूसली, सरसों, अरणी पत्र, सहंजना छाल, वच, कुड़ाछाल और नीम छाल प्रत्येक ६ माशे लेकर जौकुट कर एकत्र आधा सेर जल में पका, चतुर्थांश शेष रहने पर मलकर छान लें। प्रातःसायं सेवन करावें। अथवा—

चित्रकादि चूर्ण—चित्रक मूल की छाल इन्द्रजौ, पाढल, कुटकी, अतीस और हरड़ समभाग महीन चूर्ण कर रक्खें, माशा—३ माशा से ६ माशा तक शहद से चटावें। प्रातःसायं ऊपर से गर्म जल पिलावें।

रोग की मध्यावस्था या बढ़ी हुई अवस्था में रास्नादि क्वाथ (प्रसिद्ध है) का सेवन प्रातःसायं करावें। अथवा—

अभयादि गूगल—हरड़ छाल १ सेर, आमला १ पाव, और पुनर्नवा १ पाव तीनों को अवकूट कर ३२ सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश रहने पर खूब मसलकर छानलें और पुनः मन्द आंच पर पकावें। जब कुछ पतला-गाढ़ा हो जाय, तो नीचे उतार कर उसमें-शुद्ध गूगल ४ तोला तथा दन्ती मूल, चित्रकमूल छाल, गिलोय, त्रिकुट व त्रिफला के प्रत्येक द्रव्य निसोत, दालचीनी, वायविडंग प्रत्येक २-२ तोले लेकर महीन चूर्ण कर मिला, खूब कूट कर १-१ मासे की गोलियां बनालें।

मात्रा—१ से ३ गोलियां तक, दिन में २ या ३ बार गर्मजल अथवा गोमूत्र के साथ सेवन करावें अथवा—

वचादि क्वाथ—वच, अतीस, कूठ, चित्रकमूल, देवदारु, पाठा, चव्य, नागरमोथा, चोक (सत्यानाशी की

जड़), कटेली, कुड़ाछाल, करंज छाल, मूर्वा, कुटकी, अरनी छोटी, अमलतास, पीलु, असना की छाल, सतोना, काली-मिर्च और त्रिफला के प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर अष्ट-मांश क्वाथ सिद्धकर उसमें शहद मिला सेवन करावें। अथवा क्वाथ न बनाते हुए केवल चूर्ण को ही ३ से ६ माशे तक, शहद के साथ दिन में २ बार सेवन करावें। तथा दन्ती के क्वाथ (चतुर्थांश क्वाथ) में चावलों को पका कर पथ्य में सेवन करावें। (गद निग्रह) अथवा—

हरीतक्यादि क्वाथ (क्षीर पाक)—हरड़, अदरख (सोंठ), देवदारु, लालचन्दन और अपामार्ग की जड़ का समभाग चूर्ण २॥ तोले, तथा १ पाव बकरी का दूध, और १ सेर जल एकत्र मिश्रण कर पकावें। दूध मात्र शेष रहने पर छानकर पिलावें। इस प्रकार ७ दिन पिलाने से उरुस्तम्भ और जंघाशूल का नाश होता है।

उक्त क्षीरपाक का सेवन निम्नाङ्कित वृद्धदार्वादि चूर्ण के साथ किया जाय तो और भी उत्तम लाभ होता है।

विधारा की जड़ और सोंठ समान भाग का महीन चूर्ण मात्रा—३ माशे तक। इस चूर्ण को स्वतन्त्र रूप से उष्ण जल के साथ सेवन कराने से भी लाभ होता है। कहा है—

पिबेदुष्णाम्बुना वृद्धदारु नागर चूर्णकम्।
उरुस्तम्भसमुद्भूत विकार व्यथयान्वितः॥
(गद निग्रह)

हरीतकी शृंगवेर देवदारु च चन्दनम्।
क्वाथयेच्छाग दुग्धेन ह्यपामार्गस्य मूलकम्॥
जंघाशूलमुरुस्तम्भ सप्तरात्रेण नाशयेत्॥
(धन्वन्तरि संहिता)

रसों में गुञ्जाभद्र रस—गुंजावीज (विशेषतः श्वेत गुंजा या चिरमिटी को लेकर दोलायंत्र द्वारा कांजी में १ प्रहर उबाल लेने से शुद्धि हो जाती है), अरणी मूल और नीम के बीजों की गिरी, इन तीनों का चूर्ण ६-६ तोले और शुद्ध पारा ३ तोले, शुद्ध गन्धक १२ तोले लेवें। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली कर उसमें शेष द्रव्यों का महीन चूर्ण मिला प्रथम अरणी पत्र स्वरस की, फिर जम्भीरी नीबू के रस की फिर धत्तूर पत्र स्वरस की और अन्त में मकोय के रस की भावना देकर (१२-१२ घण्टे तक प्रत्येक रस के साथ घोटना चाहिये) शुष्क होने पर थोड़े घृत के साथ घोटकर १ या १॥ रत्ती की गोलियां बना रक्खें।

मात्रा—१से२ गोली, भुनी हींग २ रत्ती और सैंधव नमक ४ रत्ती के साथ, दिन में दो बार सेवन करावें। ऊपर से दशमूल क्वाथ अथवा केवल उष्णोदक पिलावें।

शास्त्रों में इस रस का नाम गुंजागर्भरस भी दिया है। इसमें जयपाल (जमालगोटा) और विष (शुद्ध मीठा तेलिया) भी कई ग्रन्थकारों ने थोड़े प्रमाण में मिलाने के लिये कहा है। हमने उक्त प्रयोग रस तरङ्गिणी से लिया है। रस तंत्रकार ने इस विषय में लिखा है कि—शास्त्रमर्यादा अनुसार उरुस्तम्भ में स्नेहन, वमन, विरेचन, और बस्ति-द्वारा शोधन या रक्तमोक्षण नहीं कराया जाता। विकृत मेद या मज्जासंचय को जलाना पड़ता है और नयी उत्पत्ति को रोकना पड़ता है। यद्यपि जमालगोटा परिणाम में कम होने से यहां विरेचन नहीं करा सकता, तथापि आंत्र में उग्रता तो लाता ही है। बहुधा उरुस्तंभ पीड़ितों की आंत्र शिथिल होती है। ऐसी अवस्था में जमालगोटा लाभ नहीं पहुँचा सकेगा एवं जमालगोटा मिलाने पर औषधि लम्बे समय तक नहीं दे सकेंगे, और उरुस्तंभ की थोड़े ही दिनों में निवृत्ति नहीं होती। इसी हेतु से (मालूम होता है) रसतरंगिणीकार ने उसे निकाल दिया है, वह उचित ही प्रतीत होता है।

यदि उरुस्तम्भ की आशुकारी अवस्था हो, और उदर शोधनार्थ जमालगोटा मिलाने की आवश्यकता हो तो इस गुंजाभद्र रस के साथ इच्छाभेदी रस मिलाकर उपयोग करने पर इच्छित लाभ मिल जाता है।

उरुस्तम्भ की उत्पत्ति के अनेक कारण हैं। सुषुम्णा-काण्डपर चोट लगाना, सुषुम्णाकाण्डप्रदाह, मदात्यय, मलेरिया, विषप्रकोप, पाण्डु, मस्तिष्क क्षय आदि। इनमें से सुषुम्णाकाण्डप्रदाह या अन्य कारण से केन्द्र स्थान की शक्ति नष्ट न हो गई हो, तो लाभ पहुँचने की आशा रख सकते हैं।

चोट आदि कारणों से आशुकारी उरुस्तम्भ की सम्प्राप्ति हुई हो, अथवा मलेरिया या अन्य विष प्रकोप होकर चिरकारी रोग की सम्प्राप्ति हुई हो, दोनों पर इस रस की योजना की जाती है। यह दारुण आशुकारी रोग की वेदना को शीघ्र ही दबा देता है। एवं चिरकारी रोग

जो अति जीर्ण न हो गया हो, वह भी पथ्य पालन करने पर २-४ मास में दूर हो जाता है। ध्यान रहे, स्नेह, स्वेद उत्सादन, लेप और व्यायाम आदि का उपयोग रोग और लक्षण के अनुसार करना चाहिये।

गुजाभद्ररस को ही आढ्यवातान्तक रस भी कहते हैं।

आसवों में रोगी के लिये-गण्डीरासव, गुग्गुल्वासव, विडङ्गासव और सारिवासव की योजना की जा सकती है।

मालिश के लिये-अष्टकट्वर तैल—(भै.र. चक्रदत्त) पीपरामूल और सोंठ प्रत्येक ८-८ तोले लेकर पत्थर पर जल के साथ पीसकर कल्क बनालें। फिर सरसों तेल १ सेर को कड़ाही में डाल गरम करें, फिर उसमें उक्त कल्क दही १ सेर और मक्खनयुक्त दही का माठा (कट्वर) ८ सेर मिला, धीरे २ मंदाग्नि से पकावें। कर-छुल से चलाते जांय। जब जलीयांश जल जाय और कल्क बत्ती बनाने पर आसानी से चिकनी बत्ती बन जाय, तब तेल को सिद्ध हुआ समझे। इस प्रकार खरपाक की विधि से तेल को सिद्ध कर नीचे उतार छानकर शीशियों में भर रक्खें। इसमें कट्वर अर्थात् मक्खन युक्त दही का माठा ८ गुना लिया जाता है। इसी लिये यह अष्ट कट्वर तेल कहाता है। इसकी मालिश से उरुस्तम्भ और गृध्रसी में भी यथेष्ट लाभ होता है—ग्रन्थों में कल्क द्रव्य ४-४ तोले ही लेने को कहा है, किन्तु यह प्रमाण में बहुत कम होने से ८-८ तोले लेना ही ठीक है।

इसी प्रकार कुष्ठाद्य तेल और सैन्धवाद्य तेल को भी मालिश के लिये काम में लिया जाता है। कुष्ठाद्य तेल तो रोगी को पिलाया भी जाता है। इनके प्रयोगों को भैषज्य रत्नावली में देखिये।

एलोपैथिक प्रयोग--

कालचिसिन (colchicin)—१ गोली, सक्सिसैलिल (Succisalyal), यीस्ट (Yeast)—१५ ग्रेन इन तीनों का मिश्रण, यह १ मात्रा है, दिन में ३ बार गरम पानी से सेवन करावें।

इरगापायरिन (Irgapyrin) ५ सी. सी. की मात्रा में नितम्ब प्रदेश की पेशी में प्रति तीसरे दिन ४-६ इंजेक्शन देवें। अथवा नोवल्जिन (Novalgin) का ५ सी. सी. की मात्रा में सिराद्वार इंजेक्शन देना बहुत लाभदायक होता है। (आ. प्र.)

मन्यास्तम्भ (गर्दन कीलचक) (STIFFNECK)

ऊंचे नीचे असमस्थान में शयान करने, दिन में सोने, अकस्मात घूमकर ऊपर की ओर देखने, इस प्रकार शरीर की अवास्तव चेष्टाओं में, अथवा एकदम ठंडी वायु के लगने से, या अत्यन्त शीत पदार्थों के सेवन से, मलावष्टम्भ जागरण आदि वात वृद्धि कर कारणों से यह कष्टदायक विकार हो जाता है। यह दीखने में एक साधारण विकार होने पर भी अत्यधिक पीड़ादायक होता है। इस विकार के प्रारम्भ होने पर इधर उधर को हल चल करना खांसना, छींकना, हंसना आदि अशक्य सा हो जाता है। इसमें गले का पिछला भाग जकड़ कर स्थिर सा हो जाता है। गले की मांसपेशियों के विकार से कभी २ गला एक ओर को झुक जाता है। इसे ग्रीवा वक्र या एक पार्श्विकमन्यास्तम्भ (wryneck or torticollis) कहते हैं।

इस विकार में वात को कफ दोष की सहायता पूर्णतया प्राप्त होती है। दिवानिद्रा से-कफ दोष की वृद्धि होती है, तदनन्तर ही उक्त अनैसर्गिक शारीरिक चेष्टाओं से वातवृद्धि होकर गर्दन की स्नायुओं में महान कष्टप्रद जकड़न आजाती है। कहा है—

दिवास्वप्नासमस्थान विकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः।
मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणावृतः॥
(मा० नि०)

उपचार--

इस विकार में भी प्रायः उरुस्तम्भ जैसा ही कफ का अनुबन्ध होने से, बगैर कुछ विचार किये एकदम स्निग्धोपचार करना भयङ्कर भूल है। किंतु जब दिवानिद्रा आदि कोई भी इसका कफप्रकोपक कारण न हो। केवल वातवृद्धि कर कारणों से ही इसकी उत्पत्ति हुई हो तो स्निग्धोपचार-तेल या घृत की मालिश करके आक के या रेंडी के या कदली के पत्रों द्वारा सेंक क्रिया क्रमशः कफ, वात या पित्त के अनुबन्ध को ध्यान में रखते हुए करना श्रेयस्कर होता है। इस प्रकार सेंक क्रिया के पूर्व रोगी की गर्दन को पंचमूल या दशमूल के क्वाथ के द्वारा वाष्प स्वेदन क्रिया करना विशेष हितकर होता है। तत्पश्चात्

मुर्गी के अण्डे के अन्दर का सुचिक्कन द्रव पदार्थ निकाल कर उसमें थोड़ा सेंधानमक मिला और गर्म कर गर्दन की स्नायु पर खूब मर्दन करने से शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—तिल तेल ४ तोले में जायफल के दो नग जलाकर इस तेल की गर्दन पर खूब मालिस करें।

रोगी को दशमूल क्वाथ मात्रा—२॥ तोले तक, प्रातः सायं सेवन करावें।

उक्त मुर्गी के अण्डे के स्थान में असगन्ध की जड़ को पानी में पीस कर और गर्म कर ग्रीवा पर लेप कर और ऊपर से सेंकने से भी लाभ होता है। अथवा—निर्गुण्डी, सहजना की छाल, एरण्डमूल, धतूरपत्र और रास्ना को गोमूत्र में या कांजी में या केवल जल में उबाल कर वाष्प स्वेदन करावे। मन्यास्तम्भ में विशेष उपचार आमवात के अनुसार करना चाहिए।

एलोपैथिक प्रयोग--

सोडा सैलिसिलास (Soda Salicylas) १० ग्रेन, फेनासीटिन (Phenacetin) ३ ग्रेन, स्प्रिट क्लोरोफार्म (Spt. chloroform) १० बूंद, मैग सल्फ(mag sulph) १½ ड्राम, वाष्प जल (Aqua) १ औंस, इस मिश्रण की ३ मात्रायें दिन में ३ वार पिलावें। अथवा--

एस्पीरिन (Aspirin) ५ ग्रेन' कैफीन (Caffein) ३ ग्रेन, इस प्रकार ३ या ४ मात्रायें थोड़े गर्म जल के साथ सेवन कराने से वेदना में लाभ होता है।

इरगापायरिन (Irgapyrin) या नोवालजीन(Novalgin), या मेलोवान (melovan) का प्रयोग मुख द्वारा या इञ्जेक्शन के रूप में करने से तत्काल लाभ होता है।

(धा० प्र०)

लिनिमेन्ट वेलाडोना या लिनिमेन्ट मेथील सेलिसिलेट को (Lint. methyl Salicylate Co) का मालिश कर सेंक क्रिया करें।

उर स्तम्भ (छाती की जकड़न)

उरु अर्थात् जंघा के स्तम्भ के सदृश उर अर्थात वक्षस्थल में भी स्तम्भ होता है। भेद इतना ही है कि उरुस्तम्भ में कफ की प्रधानता होती है और इसमें वात की। इसे छाती की लचक, छाती में लचक, हूक भर जाना भी कहते हैं।

अत्यन्त शीत वायु के लग जाने, अति शीत पदार्थों के सेवन करने, कड़ी धूप में बाहर घूम फिर कर एकदम शीत जल का पान करने या शीत जल में अवगाहन करने आदि से वात प्रकुपित होकर पसलियों की कण्डराओं को जकड़ देता है। पसलियों में तीव्र असह्य शूल होता है। उस समय हिलना-डुलना, खांसना, छींकना, आदि बड़े कष्ट से होता है।

उपचार-

लंघन, वस्ति, लेप, सेंकना आदि उपचार करें। तथा सप्ताह में १ वार एरंड तेल का सेवन करें। नित्य प्रातः सायं शोकनाथ रस की मात्रा २-२ रत्ती अदरख रस घृत और काली मिर्च चूर्ण के साथ सेवन करें।

छाती पर लेप के लिए—वारहसिंगा और आमाहल्दी को पत्थर पर घिसकर जो चन्दन सा निकले, उस गाढ़े चन्दन में थोड़ा सुहागा मिला और गर्म कर प्रलेप करना चाहिए। और ऊपर से वालुका स्वेद करें।

कटि स्तम्भ (Lumbago)

उक्त कारणों से ही, कमर के मध्य भाग में त्रिकास्थि सन्धि में जकड़न हो जाती है, स्नायु अकड़ जाते हैं। इसे कटिशूल, त्रिकशूल, कटिग्रह या कटिवात (Lumbago) कहते हैं। इसमें कमर ऐसी जकड़ जाती है कि एकदम सीधे खड़े होने में तथा खड़े हो जाने के बाद बैठने में असह्य पीड़ा होती है। वीर्य की कमजोरी से भी यह विकार होता है।

उपचार—

जायफल को जलाकर तैयार किया हुआ तिल तैल की, या महानारायण तैल की या मोम के तैल की खूब मालिश कर वालुका स्वेद करें, आलू की दो पोटली बना उन्हें गर्म कर सेंक देवें। अथवा जंगली कण्डों की आंच पर खाट को बिछाकर उस पर रोगी को सुलावें चारों ओर से वस्त्रों से ढक देवें। अथवा उक्त प्रकार से तैल मर्दन कर लोहे के तवे को खूब गर्म कर उसपर एक बोरा डालकर कमर के पीड़ित भागों को उसपर जहां तक सहन हो सके रखना चाहिए। इससे शीघ्र लाभ होता है।

रोगी को अवष्टम्भ हो, कब्जी हो तो —

को गर्म दूध में मिला पिलाकर कोठा साफ कर देना आवश्यक है। ऐसे रोगियों को प्रायः मलावरोध हुआ ही करता है, तथा मलावरोध से अपान वायु की विकृति होकर कटिस्तम्भ होता है ×।

रोगी को त्रयोदशाङ्ग गूगल या वातारि गूगल (देखो प्रयोग पीछे गृध्रसी प्रकरण में) का सेवन उष्णोदक के साथ, उष्ण दुग्ध के साथ, या मास रस के साथ कराया जा सकता है। वैसे तो यह विकार वगैर किसी औषधि सेवन के स्वयमेव केवल मालिश और सैंक द्वारा ही दूर हो जाया करता है। यदि विकार दूर न हो तब ही उक्त गूगल का अथवा निम्नांकित प्रयोगों का सेवन करावें।

हब्ब असगन्ध—श्वेत मुसली, पीपल, देशी अजवायन, और पीपला मूल प्रत्येक १ तोला, मैदालकड़ी, सोंठ असगन्ध नागौरी, और शतावर २-२ तोले लेकर सबका महीन चूर्ण कर पुराना गुड (आवश्यकतानुसार) में मिला चना जैसी गोलियां बना लेवें।

मात्रा—२ गोली, अर्क सौंफ १० तोले के साथ सेवन करें। (यू० सि० सं०)

यदि वीर्य की कमजोरी इसमें खास करण हो, तो—

अकसीर दर्दकमर का प्रयोग करें—कतीरा गोंद श्वेत कत्था वंगभस्म, तालमखाना, लिसोड़ा, खस, कुन्दुर, मुलैठी, गुलनार, रेवन्द, कालातिल, मेंहदी पत्र, कबावचीनी, गुडूची सत्व, सतशिलाजीत, बड़ी इलायची के बीज छोटी इलायची के बीज, वंसलोचन और निशास्ता (गेहूं का सत) इन सबको समप्रमाण लेकर कूट कर कपड़ छान चूर्ण तैयार करें। फिर चूर्ण के समभाग मिश्री मिला तथा खूब खरल कर शीशियों में भर रक्खें।

मात्रा—१ तोला चूर्ण गो दुग्ध से सेवन करें।

यह वाजीकरण, वीर्यस्तम्भनकर्त्ता, शुक प्रमेह नाशक तथा कमर की कमजोरी को दूर करती है, और वीर्य को शुद्ध करती है। (यू० सि० सं.)

मालिश के लिये-रोगन दर्द असबी (वात पीड़ा हर तैल)—दारुहल्दी, देवदार, मुलैठी, कालीमिर्च, और फरफियून ● प्रत्येक ९ माशे सबको पानी में पीसकर तिगुने तिल तैल में मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर तथा सब औषध द्रव्य के जल जाने पर उतारकर छान लें। इसे आवश्यकतानुसार वेदना-स्थल पर मालिश कर रुई से सेंकें। (यू० सि० सं०) इसे रोगन दर्दे-कमर भी कहते हैं। कटिशूल पर परमोपयोगी है।

रोगन मोम—मोम १ सेर, खारा नमक, (नमक शोर) ३ सेर दोनों को देग में डालकर अर्क गुलाब के समान अर्क परिस्रुत करें। यही रोगन-मोम के नाम से प्रसिद्ध है।

इसे सुहाना-गरम कर विकारी स्थान पर मर्दन करने से वातज वेदना, पक्षवध, अर्दित आदि के लिये लाभकारी और दोष-विलीनकारी है। (यु० सि० सं)

एलोपैथिक प्रयोग—

कैफीन साइट्रास (Caffein citras)—२ ग्रेन एस्प्रीन (Asprin)—५ ग्रेन फेनासीटीन (Phenacitin) ३ ग्रेन और कोडीन फास (Codin phos) ½ ग्रेन,

इस मिश्रण की ३ मात्रायें बना ४-४ घंटे से गर्म जल के साथ सेवन करावें। अथवा—

पोटाश आयोडाइड (Pot. Iodide) ५ ग्रेन, पोटाश ब्रोमाइड (Pot. Bromide) १० ग्रेन, कोडीन सल्फ (Codeinsulph) ४ ग्रेन, टिंचर काल्शिकम सेम (Tr. Calchicum sem) १ ड्राम, सिरिप आरेंज (Syrup Orange) १ ड्राम, और जल (Aqua) १ औंस।

इस मिश्रण की ३ मात्रायें ४-४ घंटे से पिलावें।

मालिश के लिए—ऊपर गृध्रसी प्रकरण में कहा हुआ लिनिमेन्ट तारपीन की मालिश लाभदायक है। अथवा

विन्टरग्रीन तैल ५० भाग, पिपरमेन्ट फूल (menthol crystal) १० भाग, निलगिरी तैल (युक्लिप्टिस आईल) २॥ भाग, काजुपुटी तैल २॥ भाग, सफेद मोम (white-bees'wax) २० भाग और ऊनकी चर्बी (Lanoline) (यह एक प्रकार की भेड़ की बालों से निकाली हुई चर्बी है, Purified wool fat) १५ भाग लेकर, प्रथम पिपर-

× कटिशूल या त्रिकशूल में-बालूका स्वेद का जंगली कण्डों की आंच के सेंक के विषय में भावप्रकाश में लिखा है—"कारयेद्वालुकास्वेदं त्रिकशूलेप्रयत्नतः। यद्वाऽधस्तात्करीषाग्निं धारयेत् सततं नरः॥"

● यह एक प्रकार के इंडायूहर का सुखाया हुआ दूध है (Euphorbium)।

पिन्ट को विन्टर ग्रेन तैल में मिलावें, फिर मोम को गर्म कर ऊन की चर्बी मिलावें जब उसकी गरमी थोड़ी कम हो जाय तब सबको एक साथ मिश्रण कर शीशी में भर रक्खें।

यह तेल या बाम किसी भी स्थान की तीव्र पीड़ा को शीघ्र दूर कर देता है। इसकी मालिश करने से कुछ चुनचुनाहट सी होती है, और शीघ्र ही उस स्थान पर पसीना आकर दर्द दूर हो जाता है।

नोट—असगन्ध चूर्ण ३ माशा में मिश्री १ तोला और घृत २ तोला मिलाकर (यह १ मात्रा हुई) प्रातःसायं सेवन करने से भी नवीन कटिग्रह में शीघ्र लाभ होता है। पुराने कटिग्रह में रास्नादि क्वाथ २॥ तोला में शुद्ध रेंडी तैल १ तोला मिला, सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

इंजेक्शनों में—सोडासेलिसिलास आयोडाइड (Soda-salicylas with Iodide) २ सी. सी. को २० सी. सी. वाष्पजल [डिस्टल्ड वाटर] में घोल कर प्रतिदिन या तीसरे दिन नस में इंजेक्ट करें। अथवा—

यूरिया क्विनीन हाइड्रोक्लोराइड (Ureaquinine Hydrochloride) ५ सी. सी. (१ प्रतिशत) कूल्हे में गहरा इंजेक्ट करें।

एटोफेनील (Atophanyl) ५ सी. सी. वाला इंजेक्शन मांसपेशी में और १० सी. सी. वाला नस में प्रतिदिन या दूसरे दिन दिया जाता है। अथवा—

यूनालजन (Unalgen) ५ सी. सी. वाला मांसपेशी में और १० सी. सी. वाला नस में प्रतिदिन दिया जाता है। अथवा—

इर्गापाइरीन (Irgapyrin) ५ सी. सी. वाला चौथे दिन कूल्हे में दिया जाता है। अथवा—

केफीनसोडियम सेलिसिलेट (Caffeine sodium salicylate) २ सी. सी. वाला (६ ग्रेन तक) प्रति दूसरे या तीसरे दिन मांसपेशियों में दिया जाता है। अथवा—

कान्ट्रामाइन (Contramine) का १ इंजेक्शन ७ दिन में एक बार मांसपेशी में देते हैं।

हनु स्तम्भ

जीभ को अत्यधिक खरोंचने, शुष्क और कड़े पदार्थों को चबाने, तथा अभिघात आदि से हनुमूल ‡ स्थित वायु प्रकुपित होकर हनु अर्थात् जबड़े की स्नायुओं में शैथिल्य या जकड़न पैदा कर देता है, जिससे विशेष कर नीचे का जबड़ा अपने स्थान से हट जाता है मुख एकदम बन्द हो जाता है, या खुला रह जाता है। पीड़ा भी अत्यधिक होती है। रोगी चबाने में या बोलने में असमर्थ सा हो जाता है।

उक्त कारणों से या वातप्रकोपक अन्यान्य कारणों से जब दोनों जबड़े सटकर मुख बन्द हो जाता है, उस दशा को हनुग्रह, दांती लगना बत्तीसी बन्द होना तथा अंग्रेजी में लांकजा (Lockjaw) या ट्रिस्मस(Trismus)कहते हैं। अपतानक, हिस्टेरिया आदि आक्षेप जन्य रोगों के पूर्व रूप में इस लक्षण की प्रधानता होती है। इसमें अकस्मात् मुख की पेशियों में और स्नायुओं में संकोच होता है, रोगी अपने जबड़े को खोल नहीं सकता।

हनुसन्धि में उक्त कारणों से वात प्रकोपजन्य शैथिल्य होकर नीचे का जबड़ा जब इधर उधर सरक जाता है, और मुख अर्दित रोग के सदृश टेढ़ा हो जाता है या खुला ही रह जाता है इस दशा को हनुमोक्ष, हनुसन्धि विश्लेष हनुसन्धि बंध ढीला होना Dislocation of the lower-jaw कहते हैं।

दन्त स्थान की समीपता एवं दन्तस्थान में इसके कारण पीड़ा होने से शायद सुश्रुत ने इसे हनुमोक्ष या हनुस्रस्त को एक दन्तरोग माना है। इस व्याधि में अर्दित के बहुत कुछ लक्षण मिलते हैं। यह हनुमोक्ष विकार प्रारम्भावस्था में जबड़े को धीरे से खिसका कर थोड़े झटके के साथ अपने स्थान में यथास्थित बैठाल दिया जा

‡ मुख में ऊपर का जबड़ा (हनु) स्थिर होता है, और नीचे का चलायमान। इन दोनों की सन्धि कर्णमूल के पास होती है, इसे ही हनुमूल कहते हैं। यह सन्धि या दोनों जबड़ों का जोड़-विशेष मजबूत नहीं होता। चोट अभिघात आदि कारणों से नीचे का जबड़ा अपने स्थान से हटकर इधर उधर हो जाता है, या एकदम जकड़ कर नीचे का जबड़ा ऊपर के जबड़े से सट जाता है, जिससे मुख बन्द हो जाता है, अथवा नीचे का जबड़ा नीचे की ओर सरक जाने से मुख खुला ही रह जाता है। जबड़ों की गति अवरुद्ध होजाती है। मुख के बन्द होने की दशा को लांकजा(Lockjaw या trismus कहते हैं। अन्यथा Dislocation of lhe taw सन्धिच्युति कहते है।

सकता है।

उपचार—

सोंठ और पीपल समभाग चूर्ण कर इसमें से थोड़ा-थोड़ा मुंह में रखकर मुख को ढीला छोड़ने से लाभ होता है। अथवा—

रसोन वटक (लहसन के बड़े) बनाकर रोगी धीरे-धीरे उन्हें चबाने का प्रयत्न करें तो लाभ होता है। विधि यह है—

लहसन (साफ किए हुए) और उड़द की दाल दोनों समभाग दोनों को जल में भिगोकर पिट्ठी या कल्क में अद्रक, सेंधानमक, हींग, कालीमिर्च और पीपल मसाले की भांति मिलाकर तिल तेल में बड़ों या पकौड़ों की तरह तल लें। इन रसोन वटकों को धीरे-धीरे चबाते हुए खाने से हनुग्रह नष्ट होता हैं। इससे भी यदि लाभ न हो तो प्रसारणी तेल या नारायण तेल को गर्म कर गले और ठोड़ी के नीचे की मांस पेशियों पर धीरे-धीरे खूब मर्दन कर कुछ झटका देते हुए जोर के साथ मुंह को खोल दें।

जिह्वास्तम्भ का बहुत कुछ सम्बन्ध अर्दित से है। अर्दित के कहे गए उपचारों से ही इसमें लाभ हो जाता है। हनुस्तम्भ का बहुत कुछ सम्बन्ध धनुस्तम्भ से हैं।

धनुस्तम्भ [धनुर्वात]

आयुर्वेदानुसार यह अपतानक या आक्षेपक (Convulsion) का ही एक भेद है। इसमें शरीर की एक भाग की पेशियों का तनाव दूसरे भाग की पेशियों के तनाव से अधिक हो जाने से शरीर धनुष की तरह टेढ़ा हो जाता है। इसे टिटनस (Tetanus) कहते हैं।

"धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु सधनुस्तम्भ संज्ञकः।" —मा. नि.

पाश्चात्य मतानुसार एक प्रकार के कीटाणु (जो सड़कों अस्तबलों, बागों की मिट्टी में पाये जाते हैं) इस रोग के मुख्य उत्पादक कारण हैं। ये कीटाणु शरीर के किसी भी भाग में हुए छोटे से छोटे व्रण या जख्म के मार्ग से भीतर प्रविष्ट होकर २ से १४ दिन के अन्दर ही इस विकार को पैदा कर देते हैं। छोटी से छोटी अवस्था वाले नव जवान शिशु से लेकर बड़ी से बड़ी आयु वालों को यह कीटाणुजन्य संक्रामक विकार होता है नवजात शिशु के नाल कर्तन की असावधानी से भी इसका संक्रामण होकर यह विकार होता है, जिसे भाषा में जमुआ या जमोघा रोग कहते हैं। स्त्रियों को गर्भपात या प्रसव के बाद भी कभी-कभी हो जाता है। कभी-कभी कुनीन या जलेटीन का इञ्जेक्शन लगाने के बाद यह विकार हो जाता है। शीत-प्रधान देशों की अपेक्षा ग्रीष्म-प्रधान देशों में यह विकार अधिक पाया जाता है।

लक्षण—प्रायः नीचे के जबड़े की स्नायुओं का मांस-पेशियों से आरम्भ होकर इसकी संकोचकारक वेदना धीरे धीरे ग्रीवा, मध्य भाग और हाथ पैरों की अंगुलियों तक जकड़न पैदा करते हुए फैलती है। ऐसी दशा में अंगुलियां, गुल्म (टखने), उदर, हृदय, वक्ष और गले में संश्रित वेगवान वायु, जब स्नायु आदि के जाल को आक्षिप्त करता है, अर्थात् झटका देते हुए संकुचित करता है, तब यदि इसका वेग सामने भीतर की ओर हो तो रोगी धनुष के समान झुक जाता है। उसके नेत्र स्तब्ध, पार्श्व में हड़फूटन जैसी पीड़ा, स्तब्ध हनु (हनुस्तम्भ) और कफ की वमन होती है (यह कफ की वमन प्रायः श्वेत झाग रूप से मुख के बाहर आती है)। इसको अन्तरायाम (आभ्यन्तरायाम Emprosthotonus) कहते हैं।

यदि उक्त वायु का वेग पीठ की ओर हो तो वक्ष, कमर और जांघों को तोड़ने वाला बाह्यायाम (Opisthotonus) होता है। इससे शिर का पिछला भाग और कुल्हे की हड्डी बिस्तर पर टिकी रहती हैं तथा कमर ऊपर को उभर आती है। यदि उक्त वेग पार्श्व की ओर हो तो पार्श्वायाम (Pleurosthotonus) और यदि वेग सीधा हो वायु उन्हीं स्थानों से (हृदय, सिर, कनपटी आदि में) कफयुक्त होकर ठहर जाय तो वह सारे शरीर को डण्डे के समान सीधा अकड़ा देता है, तब उस दशा को दण्डापतानक (Orthotonus) कहते हैं।

उक्त प्रकार की किसी भी दशा में मांसपेशियों के संकोच के कारण शरीर में असह्य पीड़ा होती है। रोगी को यदि कुछ भी त्रास न दिया जाय तो उसके लक्षण धीरे,धीरे कम होते जाते हैं। त्रास या छेड़-छाड़ करने से लक्षण और भी उग्र हो जाते हैं। आक्षेप के समय पसीना खूब आता है। रोग की साधारण दशा में नाड़ी, श्वास-गति, शारीरिक उभाय और होश हवास (संज्ञा) में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। ज्वर बहुत ही कम होता है, कभी-कभी १०२ डिग्री तक रहता है। किन्तु रोग की

गम्भीर दशा में आक्षेप अधिक उग्र होते हैं, ज्वर क्रमशः बढ़ते-बढ़ते १०१ डिग्री तक हो जाता है। इस रोग में ज्वर का अधिक होना मृत्यु का द्योतक है। अन्त में श्वासावरोध, संज्ञाहीनता या हृदयातिपात-हार्टफेल होकर मृत्यु हो जाती हैं।

रोग निर्णय—उक्त लक्षणों के समान ही प्रायः लक्षण होते हैं, जबकि अधिक प्रमाण में कुचला या कुचला-सत्व (स्ट्रिकनिया) का सेवन किया जाय, अथवा जब कि पागल कुत्ता, सियार आदि का दंश जन्य विष शरीर में वेग से चढ़े।

इसका निर्णय इस प्रकार कर लेवें। हनुस्तम्भ में रोग या आक्षेपों का प्रारम्भ हनुस्तम्भ से होता है, और कुचला विष से आक्षेपों का प्रारम्भ हाथ पैरों के स्तम्भ से होता है। शरीर में व्रण, जख्म आदि हो जाने के बाद ही यदि किसी प्रकार का स्तम्भ हो तो उसे धनुस्तम्भ का ही श्रीगणेश मानना होगा।

जल संत्रास (पागल कुत्ते आदि के दंश जन्य विष के उपद्रव) की दशा में प्रायः आक्षेप मांसपेशियों में होते हैं, प्रलाप बेहोशी आदि मानसिक विकृति की प्रधानता होती है। जल दीखने पर गले की मांसपेशियों में आक्षेपों की उत्पत्ति होती है। इसमें प्रायः हनुस्तम्भ नहीं होता। हनुस्तम्भ के स्थान में हनुमोक्ष होता है, जबड़े ढीले पड़ जाते हैं, मुख खुला रह जाता है, अर्थात प्रथम धीरे-धीरे जबड़ों में जकड़न तो होती है, किन्तु फिर शीघ्र ही खुल जाते हैं।

धनुस्तम्भ में आक्षेप लगातार होते रहते हैं। जबड़ों की पेशियां दृढ़ता से जकड़ जाती हैं, तथा आक्षेपों का जोर प्रबल होता है। जल संत्रास के सदृश ही प्रायः वमन तथा पक्वाशय में वेदना तो धनुस्तम्भ में भी होती है, किन्तु मानसिक विकृति उतनी नहीं होती, रोगी का होश-हवास प्रायः अन्त तक ठीक रहता है।

जलसंत्रास से पीड़ित रोगी के चेहरे पर उत्तेजना विशेष प्रतीत होती है। बेचैनी और वेदना विशेष रूप से होती है। प्यास अधिक लगती है। किन्तु जल या किसी भी तरल पदार्थ से विद्वेष या घबड़ाहट होती है।

धनुस्तम्भ में चेहरा विकृत हो जाता है, नासिका कुछ ऊपर को खिंच जाती है। ललाट पर सिकुड़न तथा हनुमोक्ष के कारण ओठ गालों की ओर खिंच जाते हैं। प्यास अधिक नहीं लगती। जल या तरल पदार्थों की इच्छा होती है, किंतु मुख से झागयुक्त लार बहुत निकलती है।

एक और अपतानिका (Tetany) नामक रोग होता है। यह प्रायः बालकों में विशेष पाया जाता है। इसे बालधनुर्वात, तथा प्रान्तीय भाषा में आंकड़ी जमोघा आदि कहते हैं। यह प्रायः बच्चों में अतिसार, रिकेट्स आदि के कारण तथा स्त्रियों में गर्भावस्था, प्रसूतावस्था की विकृति या किसी प्रकार अनावश्यक ठंड के लग जाने से होता है। बाल्यावस्था में अर्बुद, रक्तस्राव आदि किसी रोग विशेष के कारण या सहज ही गर्भावस्था से ही जिसकी ग्रीवाग्रन्थि (चुल्लिका ग्रन्थी Thyroid gland) नष्ट हो गई हो या कार्यहीन हो गई हो, तो उसके शरीर में आवश्यक चूना का शोषण नहीं हो पाता। एवं चूना की न्यूनता से यह विकार बालकों में हो जाता है। तथा अस्थिक्षय, विसूचिका, प्रवाहिका, इन्फ्लुएन्जा, मन्थरज्वर, अजीर्ण, अतीसार, आदि चिरकारी पाचन विकारों के कारण यह विकार बड़ी आयु के व्यक्तियों में भी हो जाता है।

लक्षण—शरीर के विभिन्न भागों में आक्षेप होने लगते हैं। किन्तु आक्षेप से पूर्व झुनझुनी, शून्यता, बेचैनी बाहु में कड़ापन, आदि पूर्वरूप के लक्षण होते हैं हाथ कलाइयों पर मुड़जाते है। हाथ पैरों में ऐंठन होती है। ऊंगलियां अन्दर की ओर मुड़ जाती हैं। कोहनी और पहुंचे पर बाहु मुड़कर हाथ छाती पर आ जाता है इसी प्रकार पैर टांगों की ओर मुड़ जाते हैं तलुवा धनुष की भांति मुड़ जाता है, उंगलियां भी मुड़ जाती हैं। कभी-कभी आक्षेप उदर, छाती, पीठ, चेहरे आदि की मांस पेशियों में भी होने लगते हैं।

विशेषतः बच्चों में ये आक्षेप ५ से १५ मिनट तक या कुछ घण्टों तक रहते हैं, और धीरे-धीरे शांत हो जाते हैं फिर कुछ घण्टों या दिनों के पश्चात् इसके दौरे शुरू हो जाते हैं। कभी-कभी तो ये आक्षेप निरन्तर भी होते रहते हैं। इसके और भी निदान एवं लक्षण तथा चिकित्सा आगे देखिये 'बालधनुर्वात' प्रकरण में।

धनुस्तम्भ की साध्यसाध्यता--

चिकित्सा के पूर्व रोग की साध्यासाध्यता का विचार कर लेना आवश्यक होता है।

वैसे तो यह रोग कृच्छ्र या कष्टसाध्य ही होता है, क्योंकि इसकी तीव्र दशा में प्रायः ४० प्रतिशत रोगी ही बच सकते हैं।

यदि रोगी युवावस्था का स्वस्थ हो रोग का संचय-काल (Incubation period, पूर्वरूप) अधिक हो आक्षेप के वेग सौम्य तथा विलम्ब में आते हों खान पान उचित मात्रा में रोगी कर सकता हो, और रोग की यथोचित चिकित्सा शीघ्रातिशीघ्र प्रारम्भ कर दी गई हो तो चिकित्सा में बहुत कुछ सफलता प्राप्त होती हैं, वह प्रयत्न साध्य होता है।

इस रोग की साध्यासाध्यता में रोग के संचयकाल का विशेष महत्व है। इसका संचय काल (शरीर में दोष विकृति या रोग प्रवेष तथा उसके स्पष्ट लक्षण प्रकट होना इन दोनों के बीच का काल) जितना अधिक होगा रोग उतना ही साध्य, और जितना कम होगा उतना ही असाध्य होता है। सामान्यतया यदि यह काल ५ दिन से कम हो तो असाध्य ५ और १० दिन के बीच में कृच्छ्रसाध्य एवं १० दिन के ऊपर होने पर कष्टसाध्य या प्रयत्नसाध्य होता है।

यदि इस व्याधि के उत्पादक जख्म, घाव आदि शरीर के अधोभाग पैर आदि में हो तो साध्य मध्यभाग एवं हाथ आदि में हो तो कष्टसाध्य, तथा सिर, मस्तिष्क में हो, तो असाध्य होता है।

यदि रोग के प्रारम्भ से ही हनुस्तम्भ की तीव्रता हो, तथा आक्षेपों के आवेग शीघ्रता से सतत आते हों, एवं वे अधिक काल तक टिकते हों तो रोगी बहुत ही व्यथित हो जाता है उसके प्राणपोषक आहार की व्यवस्था न हो सकने से वह शीघ्र ही क्षीण दशा को प्राप्त हो जाता है। तथा रोग कृच्छ्रसाध्य या असाध्य हो जाता है।

यदि इस रोग के साथ ही साथ रोगी को फुफ्फुस या धमनी के विकार हों, तीव्रज्वर, निद्रानाश, प्रलाप आदि की अधिकता हो, तो उसे असाध्य ही मानता होगा।

गर्भपात से, अतिरक्तस्राव से, या अभिघात से होने वाला यह रोग प्रायः असाध्य ही होता है। कहा है—

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्चय : ।
अभिघात निमित्तश्च न सिद्ध्यत्यपतानकः ॥

मा० नि०

चिकित्सा--

रोगी को पृथक, एकान्त स्थान में जहां विशेष प्रकाश न हो ऐसे शान्तिदायक स्थान में विश्राम करावें। जिससे रोगी की किसी प्रकार का त्रास या उत्तेजना न हो। उस स्थान में केवल १ या २ व्यक्ति सुश्रुषा के के लिए रहें और यथा संभव किसी प्रकार का शोरगुल न होने पावे। शामक औषधियों का प्रयोग करे। शरीर पर कोई जख्म, खरोंच का चोट आदि हो तो उसे सर्व प्रथम कीटाणुनाशक घोल जैसे फिटकरी का घोल आयोडीन घोल (Iodine Solution) पोटोसियम परमैंगनेट या हायड्रोजन पर आक्साइड का घोल आदि से शुद्ध कर तथा ऊपर से कास्टिक लोशन लगाकर शुद्ध वस्त्र से बांधना चाहिए। अथवा उक्त किसी घोल से साफ कर वहां पर एन्टिटिटेनस सीरम (tetanus antitoxin serum) को मल देना चाहिए या इसका इन्जेक्शन लगा देना चाहिए ×।

रोगी को केवल तरल दूध, अंगूर, अनार, सेव फलों का रस, पतला आहार देना चाहिए। यदि वह मुख से कोई आहार न ले सकें तो नासिका या गुदा द्वारा दुग्ध आदि तरल आहर उसके अन्दर प्रवेश कराना

× पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के अनुसार रोगी को तुरन्त ही इस Antitetanus-serum का २० हजार यूनिट्स का एक इन्जेक्शन हाइपोडरमिक सिरिंज विधि से त्वचा में देते हैं, तथा ६-६ घंटे से यह इन्जेक्शन दिया जाता है। रोग यदि शांत होने लगे तो १० हजार यूनिट्स का सूचीवेध किया जाता है। अन्यथा यूनिट्स की मात्रा बढ़ाते हुए १ लाख यूनिट तक सिरा द्वारा, बाद में प्रति- दिन २० से ४० हजार यूनिट तक पेशी मार्ग से ऐसे कुल २ या २॥ लाख यूनिट तक देते हैं। रोग के प्रारम्भ में इससे पूर्ण लाभ होता है। साथ ही पेनसिलीन के भी ५-५ लाख यूनिट्स के इन्जेक्शन लगाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार मार्फिन एट्रोपीन आदि के भी इन्जेक्शन दिये जाते हैं।

चाहिए। @

जख्म, चोट (अभिघात)द्वारा एक प्रकार के जन्तुजन्य विष के शरीर में फैल जाने से इस रोग की उत्पत्ति का प्रकार आयुर्वेद को भी मान्य है। इसी लिए चिकित्सा में प्रधानतया दो बातों की ओर ध्यान, शस्त्र-निष्णात कुशल आयुर्वेद चिकित्सक दिया करता है—एक तो वात दोष के प्रकुपित होने से, शरीर में प्रविष्ट हुए दूषित कीटाणुओं की प्रगति को नष्ट करना और दूसरी बात यह कि शरीर के जिस स्थान में अभिघातजन्य विकृति हो उसका सुधार करना।

उक्त प्रथम बात की अर्थात् दोषजन्य विष की प्रगति या प्रकोप की शान्ति के लिए कालकूट रस, बृहत् वातचिन्तामणि रस, ताप्यादि लोह आदि का प्रयोग किया जाता है यदि शरीर में इस विकार के लिये विष की अत्यन्त तीव्रता हो, सतत आक्षेप आते हों तथा वात के साथ कफ का भी कुछ अनुबन्ध हो तो कालकूट उत्तम लाभदायक होता है। ‡

कालकूट रस—(रसयोग सागर)—शुद्ध वच्छनाग १ भाग, शुद्ध पारा ३ भाग, शुद्ध गन्धक ९ भाग, शुद्ध मेनसिल ६ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, सुहागे का फूला ६ भाग, शुद्ध हरताल और चित्रकमूल ६-६ भाग, त्रिकटु १२ भाग, त्रिफला १० भाग, भुनी हींग और वच १-१ भाग लेकर पारद गन्धक की कज्जली कर उसमें ताम्रभस्म आदि शेष द्रव्यों का महीन चूर्ण मिला निम्न द्रव्यों के रस या क्वाथ की १-१ प्रहर तक भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना रक्खें—

भावनार्थ द्रव्य—अदरख, चित्रकमूल, जंभीरी, नीबू, लहसुन, करंजपत्र, आक की मूल, कलिहारी, धतूरामूल, मद्रासी नागरवेल के पान, अंकोल मूल, सहिजना मूल, पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) और पंचमूल (बेल, अरनी, श्योनाक, गम्भारी, पाढल)।

अभिघात या गर्भपात या प्रसूति की † अवस्था में

@ नसिका द्वारा पोषण क्रिया से कभी-कभी रोगी को आक्षेप के वेग अधिक आने लगते हैं, तब क्लोरोफार्म द्वारा उसे पूर्ण बेहोश कर उसका पेट दूध तथा अन्य पेय पदार्थों से भर देते हैं। अथवा बेहोश न करते हुए गुदा द्वारा या त्वचा द्वारा पौष्टिक सत्वों को अन्दर पहुंचाते हैं। दिन भर में ब्राण्डी ४ से १२ औंस तक देना भी हितकर माना जाता है।

मलावरोध की दशा में विरेचक औषधि न देते हुए, केवल वस्ति (एनिमा) देना ही ठीक है। यदि मूत्रावरोध भी हो तो सलाई (मूत्र निःसारक सच्छिद्र शलाका Catheter) द्वारा उसे निकालते हैं।

क्लोरोफार्म का सुंघाना आक्षेप नाशक है। मस्तिष्क में प्रविष्ट हुए इस रोग के विष को दूर करता है। अतः आक्षेपों के वेग प्रबल होने पर हल्की बेहोशी हो जाय इतनी मात्रा में क्लोरोफार्म सुंघाया जाता है।

‡ ध्यान रहे इस रोग की चिकित्सा में उपेक्षा करने से रोग शीघ्र ही भयङ्कर रूप धारण कर लेता है। अतः सर्व प्रथम बादाम तेल या गोघृत से स्नेह कर्म करा, काला दाना या निशोथ की मात्रा ६ से ९ माशे तक विरेचनार्थ देवें। फिर एरण्ड तेल १० तोले को १॥ पाव गर्मजल में मिला शौच के पश्चात् वस्ति या एनिमा देवें।

तत्पश्चात् दशमूल का चूर्ण २॥ तोले को आधा सेर पानी में पका, चतुर्थांश शेष रहने पर, मल छानकर उसमें १ माशा पिप्पली चूर्ण मिला पिलावें। क्वाथ के पच जाने पर रोगी के शरीर पर महानारायण तेल की मालिश करावें।

शाम को तथा रात्रि में शयन के पूर्व 'चतुर्भुज रस' (आगे देखो) की मात्रा १-१ रत्ती की मधु और पान के रस के साथ सेवन कराने से रोग की शांति प्रारम्भिक अवस्था में शीघ्र ही हो जाती है। ऐसा हमारा कई बार का अनुभव है।

† प्रसवकाल में या पश्चात् किसी कारणवश गन्दे वस्त्र या मलिन हाथों के संसर्ग से योनिमार्ग में दूषित कीटाणुओं का प्रवेश होकर, धनुस्तम्भ विकार हो जाता है। ऐसी दशा में तीव्र ज्वर, सिर पीड़ा, तृषा, कभी-कभी मूर्च्छा के साथ यदि धनुर्वात के लक्षण हों तो लक्ष्मीनारायण रस भी उत्तम कार्य करता है। इसकी प्रयोग विधि आगे बाल धनुस्तम्भ के प्रकरण में देखिए। उक्त दशा में इस रस की मात्रा १ या २ रत्ती, दशमूलारिष्ट के साथ

अव्यवस्था के कारण होने वाले धनुस्तम्भ में, जब कि रक्त-स्राव न होता हो तथा जड़ता, बेहोशी आदि कुछ कफ-प्रधान लक्षण हों तो कालकूट का प्रयोग आधे-आधे या १-१ रत्ती के प्रमाण में अदरख रस के साथ कराने से बेहोशी में कनपटी पर अदरख रस में मिला धीरे-धीरे मर्दन करने या नासिका द्वारा अन्दर पहुँचाने से इस विकार के दूषित कीटाणुओं का वेग शमन हो जाता है। रोग का प्रतिकार हो जाता है।

यदि रक्तस्राव विशेष होता हो तो इस रस का उपयोग नहीं करना चाहिए। इस रस के प्रयोग में सावधानी की विशेष आवश्यकता है। सगर्भा स्त्री को भूलकर भी इसे नहीं देना चाहिए। बच्चों को बहुत ही सावधानी से स्वल्प मात्रा में इसे दे सकते हैं। बड़ों पर भी विचार पूर्वक ही इसका प्रयोग करें। इस रस के अविचार पूर्वक प्रयोग से कंठ में क्षत होना, जिह्वा फट जाना, उष्णता की अतिवृद्धि होना आदि उपद्रव होने की संभावना है।

इस रस का प्रयोग तो विकार की तीव्रता (जबकि रोगी को बड़े-बड़े आक्षेप आते हैं, सारा शरीर जकड़ जाता है, अन्तरायाम, बाह्यायाम आदि की विशेषता होती है, तीव्र हनुस्तम्भ होकर दांत एकदम मिच जाते हैं) को कम करने के लिये ही किया जाता है। इस रस का विकारोत्पादक विषैले जन्तुओं पर निश्चित ही उत्तम असर होता है। विकार की मन्दावस्था में बृहत् वात चिन्तामणि रस का या ताप्यादि लोह का प्रयोग आगे बाल-धनुर्वात प्रकरण में देखिए।

बृहत् वातचिन्तामणि रस के अभाव में—कस्तूरी, केशर जायफल, और अफीम समभाग लेकर अदरख के रस में खरल कर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। मात्रा—१-१ गोली दिन में ३ बार अदरख रस के साथ सेवन कराने से भी यथेष्ट लाभ होता है।

रसराज रस नं. २ (भै० र० बालरोगाधिकार)—रससिन्दूर ४ तोले, अभ्रकभस्म १ तोला और स्वर्णभस्म ६ माशे इन तीनों को महीन खरल कर उसमें घी कुंवार (ग्वारपाठा) का रस डालकर ३ घण्टे तक घोटकर शुष्क करलें। फिर उसमें लोहभस्म, चांदीभस्म, वङ्गभस्म, असगन्ध, लौंग, जावित्री और क्षीरकाकोली (इसके अभाव में पुनः असगन्ध लेवें) प्रत्येक का महीन चूर्ण ३-३ माशे मिला मकोय के रस के साथ दिन भर मर्दन कर, २-२ रत्ती की गोलियां बना, छायाशुष्क कर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—१ या २ गोली प्रातः-सायं मिश्री मिले हुए दुग्ध के साथ या शर्करोदक (शर्बत) के साथ अथवा च्यवनप्राशावलेह के साथ सेवन करावें।

नोट—रक्त में विष या कीटाणुओं का प्रकोप होकर धनुस्तम्भ हुआ हो उस अवस्था में इस रस से यथोचित लाभ होता है। किन्तु विद्रधि या प्रसवावस्था में अपत्य-मार्ग के भीतर क्षत होकर कीटाणुओं का प्रवेश होने से धनुस्तम्भ के तीव्र आक्षेप आते हों तो उस अवस्था में इसके प्रयोग से विशेष लाभ नहीं होता।

इस रस का प्रयोग विशेषतः पक्षाघात की जीर्णावस्था में तथा हिस्टेरिया आदि अन्य ऐंठन युक्त (आक्षेप) वात-व्याधियों में सफलता पूर्वक किया जाता है। इसके अतिरिक्त ध्वजभंग, नपुन्सकता, शुक्रक्षय आदि वीर्य विकारों पर भी उत्तम लाभदायक है। किन्तु पित्तानुबन्ध युक्त विकार हो या पित्त प्रकृति हो तो वीर्य विकारों में इसकी अपेक्षा रसराज रस नं. १ उत्तम कार्य करता है (देखो शुक्रक्षीणता के प्रकरण में)।

वात रोगों की जीर्णावस्था में जब देह और इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं। गरम या शीतल कोई भी औषधि कारगर नहीं होती, रोगी निराश हो जाता है, तब यह रस विशेष उपकारक होता है। मस्तिष्क हृदय और वातवाहिनियों पर इसका उत्तम प्रभाव पड़ता है।

धनुर्वातहर योग—काली तुलसी, ताजा लहसुन, अदरख प्याज और पोदीना एकत्र कूटकर २ तोले तक

देने से रक्त में मिश्रित हुए विष को वह नष्ट कर देता है, सूतिका ज्वर का वेग भी शान्त हो जाता है। किन्तु साथ ही साथ उत्तर वस्ति द्वारा गर्भाशय, गर्भमार्ग और योनि में उत्पन्न होने वाले सेन्द्रिय विष का भी निरोध करना आवश्यक है। किन्तु ज्वर का वेग कम हो तथा वात प्रकोप भयंकर हो तो इस रस के स्थान में प्रताप लंकेश्वर की योजना दशमूलारिष्ट के साथ करनी चाहिए।

स्वरस निकाल लें, पश्चात् रोगी को ४-५ काली मिर्च खिलाकर ऊपर से २॥ तोले गरम किए हुए गोघृत में उक्त स्वरस मिला पिला दें। इसी प्रकार २-२ तोले स्वरस १-१ घण्टे पर पिलाने से धनुर्वात का आक्षेप तुरन्त शमन हो जाता है। यह योग श्री राधाकृष्ण जी वैद्यराज का रसतन्त्रसार के आधार पर यहां दिया गया है। इसके विषय में कहा गया है कि यह मृगांक के समान आशुगुणकारी एवं बलदायक है।

वड़वानल रस [रसरत्न समुच्चय]—रससिंदूर स्वर्णभस्म, हीराभस्म, ताम्रभस्म, कान्तलोह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध हरताल, काला सुरमा, शुद्ध तूतिया, समुद्रफेन और पांचों नमकों का चूर्ण १-१ भाग लेकर सबको एकत्र मिला १२ घण्टे तक सेहुंड (थूहर) के दूध में खरल कर गोला सा बना, शराव सम्पुट में बन्द कर भूधरपुट में रक्खें। ऊपर का सम्पुट लाल हो जाने पर, स्वांगशीत होने पर अन्दर की औषधि निकाल सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—१ या २ रत्ती तक दिन में ३ बार अदरख के रस के साथ सेवन कर ऊपर से पीपल का चूर्ण मिला हुआ पीपलामूल का क्वाथ पिलावें। इसके सेवन से धनुर्वात, दण्डापतानक और कम्पवायु का नाश होता है।

'वडवानल रस' नाम के कोई २५ प्रयोग शास्त्रों में है उनमें से धनुस्तम्भ के लिए यह विशेष उपयुक्त मालूम देता है।

चतुर्मुखरस (रसेन्द्रसार संग्रह)—रससिन्दूर दो भाग तथा स्वर्णभस्म, शुद्ध मनसिल, कस्तूरी और शुद्ध हरताल (इसके स्थान में रस माणिक्य लेना और भी उत्तम है) १-१ भाग लेकर, सबको ग्वारपाठे के रस में एक दिन घोटकर गोला बना, एरण्ड पत्रों में लपेट, अनाज के ढेर में दबा देवें। ३ दिन बाद निकाल कर महीन खरल कर सुरक्षित रक्खें।

इसे अग्निबलोचित मात्रानुसार, १ या २ रत्ती की मात्रा में शहद और पान के रस के साथ अथवा, त्रिफला चूर्ण और शहद के साथ सेवन करावे।

नोट—मर्दनंगुणवर्धनम् इस न्यायानुसार इसमें प्रथम रससिन्दूर को खुब खरल कर, फिर हरताल या रसमाणिक्य मिला खुब मर्दन करें, बाद इसमें कस्तूरी का सूक्ष्म चूर्ण मिला मर्दन करें, फिर मैनसिल मिला खरल करें, तथा अन्त में स्वर्ण भस्म मिला ग्वारपाटा के रस के साथ १२ घण्टे तक मर्दन कर गोला बना, सुखा लेवें। फिर एरंडपत्र में लपेट धान्यराशि में दाब देवें।

एलोपैथिक प्रयोग -

पोटास ब्रोमाईड २० ग्रेन, क्लोरल हैड्रेट (Chloral Hydrate) १५ ग्रेन, ल्यूमिनाल १ ग्रेन, ग्लूकोज २ ड्राम और जल १ औंस मिश्रण की मात्रा प्रत्येक ३-४ घण्टे पर देते हैं। अथवा—

उक्त मात्रा में पोटास ब्रोमाईड और क्लोरल हायड्रेट के साथ-स्पिरिट क्लोरोफार्म २० बून्द, एक्ट्रैक्ट वैलेरियन (Extract Valerian) १ ड्राम और जल १ औंस मिला, ३ मात्रायें कर ४-४ घंटे से देते हैं।

उक्त दोनों प्रयोगो से आक्षेप, बेचैनी और अनिन्द्रा दूर होती है। इसके लिये ल्यूमीनाल (Luminal) या गार्डिनाल (Gardinal) की आधी या १ ग्रेन की १ गोली दिन में १ या २ बार खिलाते हैं। अथवा इसके १ ग्रेन के एम्पूल को पेशी के अन्तर्गत इंजेक्शन द्वारा दिन रात में केवल १ बार देते हैं।

रोग की तीव्रावस्था में मॉरफीन सल्फ (morphine-sulph) $\frac{1}{4}$ ग्रेन से $\frac{1}{2}$ ग्रेन तक तथा अट्रोपिन सल्फ (Atropine Sulph) $\frac{1}{100}$ ग्रेन का एक इंजेक्शन प्रतिदिन त्वचान्तर्गत दिया जाता है।

गुदा द्वारा–क्लोरेटोन(Chloretone) ३० से ४० ग्रेन तक तथा ब्रोमेथल (Bromethel) १ औंस को ५ औंस पानी में घोलकर लम्बी नली या एनिमा से गुदा द्वारा देने से निद्रा आती है, पीड़ा शांत होती है और आक्षेप या मांसपेशियों का संकोच दूर हो जाता है।

उक्त प्रयोग के समान ही गुदा द्वारा अनुवासन वस्ति के रूप में निम्न प्रयोग भी दिया जाता है—

पोटास ब्रोमाईड २० ग्रेन, क्लोरल हाइड्रेट २० ग्रेन, पैरेल्डिहाइड (Pareldehyde) १ ड्राम और नार्मल सलाइन (Normal saline) २ औंस का मिश्रण गुदा द्वारा अन्दर पहुँचाते हैं, जब कि हनुस्तम्भ के कारण मुख द्वारा औषधि प्रयोग में कठिनाई होती है।

इत्यादि कई प्रयोग एलोपैथिक पुस्तकों में हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य बहुत थोड़े प्रयोग, विस्तार भय से यहां

दिये गये हैं।

बालधनुर्वात (अपतानिका) Tetany

इस रोग के निदान आदि के विषय में पीछे धनुस्तम्भ के रोग निर्णय प्रकरण में संक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है। इसे अंग्रेजी में इन्फेनटाइल टिटनी या कनव्हलशन (Infantile Tetany-Convulsion) कहते हैं।

प्रसूतिगृह की अव्यवस्था सफाई के अभाव से विषैली ग्यास या दूषित कीटाणुओं की उत्पत्ति या नाल छेदन के दूषित प्रकार से बालक के एक ही करवट पर अधिक सोने से या गर्भाशय के विकार से, दूषित दुग्ध पान से, बालक के नाभिप्रदेश में दाह उत्पन्न होने से यह विकार जन्म लेते ही बालक को कभी कभी हो जाया करता है। अथवा शैशवावस्था में दांत निकलने के अवसर पर अधिक दस्त लगने या एकदम मलावरोध हो जाने से, अथवा माता के कुपथ्य या मिथ्याहार-विहार से या कृमिजन्य विकार से भी यह महाभयंकर प्रायः प्राणघातक रोग बालकों को हो जाया करता है।

लक्षण—बालक दूध नहीं पीता, जबड़े बैठ जाते हैं, आंखों की पुतलियां फिरने लग जाती है या एकदम स्थिर हो जाती है, शरीर हिलता है तथा हाथों की मुट्ठी बन्ध जाती है, एकदम आक्षेप या ऐंठन का वेग आता है, गर्दन टेढ़ी हो जाती है, हाथ पांव ऐंठते हुए पेट की ओर आते हैं और बालक धनुषाकर बड़े तनाव के साथ मुड़ जाता है, ज्वर भी काफी रहता है, बेहोशी विशेष रहती है। इस प्रकार का आक्षेप आकर थोड़ी देर बाद निकल जाता है, अथवा इस प्रकार के दौरे लगातार आते रहते हैं।

उपचार—रोगी को होश में लाने के लिए श्वासकुठार रस किंचित लेकर नासिका के अन्दर मल देवें या अन्दर फूंक देवें। अथवा—

एक शीशी में—नौसादर, चूना और कलमी सोरा समभाग अलग-अलग पीसकर भर दें, फिर उसमें थोड़ा कपूर मिल अच्छी तरह हिलकर मजबूत कार्क लगा दें। इसके कार्क (डांट) को थोडा-थोड़ा खोलते हुए रोगी की नासिका में लगावें। इसकी गैस शीघ्र ही अन्दर प्रविष्ट होकर मूर्च्छा को दूर कर देती है।

रोगी जब होश मे आ जाय तब यदि इसे मलावरोध हो तो तुरन्त ही रेंडी का तैल मन्दोष्ण दुग्ध के साथ पिलावें; बच्चा यदि न पी सके तो रेंडी तैल को ऊंगली से थोड़ा शहद मिलाकर धीरे-धीरे चटावें। दस्त हो जाने पर अथवा न भी हों तो मृतसंजीवनी सुरा, मकरध्वज या लक्ष्मी विलास या कुमार कल्याणरस की यथोचित मात्रा शहद के साथ चटावें। अथवा निम्नांकित प्रयोगों का सेवन करावें।

दांत निकलने वाले बालक के मसूड़े यदि बहुत शोथयुक्त हों, तुरन्त ही उसमें चीरा लगवा देवें। शरीर पर हींग और सोंठ चूर्ण को सरसों तैल में पकाकर, उस तैल को धीरे-धीरे मलें। ‡

तारव्यादि लोह—त्रिफला, त्रिकटु, चित्रकमूल, वायविडग प्रत्येक २॥-२॥ तोले, नागरमोथा १। तोले, पीपलामूल, देवदारू दारूहल्दी, दालचीनी और चव्य (सत्यानाशी की जड़) १-१ तोला, शुद्ध शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक भस्म, चांदीभस्म और लोहभस्म प्रत्येक १०-१० तोले, मण्डूरभस्म २० तोले, तथा मिश्री ३२ तोले, लेकर सबको यथाविधि कूट खरल कर मिलाकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा—१ से ३ रत्ती तक, प्रात.सायं गोमूत्र के साथ अथवा मूली के रस के साथ सेवन करावें।

यह प्रयोग एक महाराष्ट्र ग्रन्थ का है, इसके विषय में श्री गुरुशास्त्री जी अपने औषधि गुण धर्मशास्त्र में लिखते हैं कि—

---

‡ सुहागे के फूला का महीन चूर्ण २-२ रत्ती की मात्रा में माता के दूध, या शहद के साथ १-१ घण्टे से चटाते रहने से, शीघ्र ही आक्षेपों का वेग शान्त हो जाता है। साथ ही साथ आक्षेप के समय प्याज काट-काट कर बार-बार सुंघाते रहने से, विशेष लाभ होता है।

यदि कफ की विशेष वृद्धि हो, तो उक्त सुहागे की मात्रा में आधे से एक रत्ती तक वच का महीन चूर्ण मिला देना चाहिये। इससे वमन होकर शीघ्र ही कफ निकल जाता है, मूत्र शुद्धि होती है, तथा आक्षेप दूर होकर शान्त निद्रा आ जाती है। आक्षेप शमन होने पर मूल कारण को दूर करने के लिये आगे दिये हुये प्रयोगो में से लक्ष्मीनारायण रस, या अमृतार्णव रस आदि का प्रयोग हेतु अनुरूप करना चाहिये।

अनेक रोगियों को इसकी मात्रा १ मासा या इससे भी अधिक देनी पड़ती है, तब लाभ होता है। छोटे बच्चों के बालग्रह (धनुर्वात) में यह औषधि उत्तम लाभ पहुंचाती है। किन्तु इसके साथ ही साथ रेंडी तैल या मृदुविरेचन देने की आवश्यकता है। बाल धनुर्वात का प्रथम तीव्र आक्षेप आ जाने के पश्चात् इसका विशेष उपयोग होने के अनेक उदाहरण हैं। जीर्ण बालग्रह, अपचन से उत्पन्न बालग्रह, उन्माद रोग से पीड़ित माता-पिता के सन्तान को, या डरपोक, क्रोधी और निर्बल मनवाली माता के सन्तान को होने वाला बालग्रह इन सब पर ताप्यादि लोह एक सफल औषधि है। जीर्ण रोग हो तो इसके अनुपान में ब्राम्ही का रस देना चाहिये।

इस प्रयोग में शिलाजीत का प्रमाण अधिक है, तथा शिलाजीत यह एक सेन्द्रिय द्रव्य होने से शरीर में प्रविष्ट होते ही उसका शोषण होकर वह अपना कार्य-आम को पचाना, रक्त दोष हरण करना, तथा शरीर में संचित दोषों को एवं मूत्र के दूषित क्षारों का वियोजन कर मूत्र द्वारा बाहर निकाल देना आदि कार्य शीघ्र ही करने लगता है। शिलाजीत के इस गुण के कारण यह प्रयोग जीर्ण आमवात, और वातरक्त एवं इनसे उत्पन्न होने वाले स्नायुसंकोच अथवा वातवाहिनियों की शुष्कता इन सब विकारों पर उत्तम कार्य करता है।

धनुर्वात के विष की तीव्रता को शमन करने के लिये प्रथम कालकूट रस का अल्प से अल्प मात्रा में सेवन कराने के पश्चात् रोग की मन्दावस्था में रक्त प्रसादन करने वाली अर्थात् रक्त को निर्विष करने के लिये ताप्यादि लोह की योजना प्रशस्त होती है। इसके सेवन से रोग के अवशिष्ट लक्षण एवं विष नष्ट हो जाता है।

इस प्रयोग में स्वर्ण माक्षिक (ताप्य) पाचन, दीपन, आक्षेपघ्न, पाण्डुत्वकनाशक(रक्तकणवर्धक),बल्य और रसायन है। शिलाजीत रसायन धातुपरिपोषण क्रम में सहायक और मेहनाशक है। चांदी भस्म-मूत्रल,वृष्य और आक्षेपघ्न है। मण्डूर-रक्तवृद्धिकर, रक्तस्तम्भक, रक्तकणवर्धक एवं धातुवर्धक है। चित्रक-पाचक, अग्निप्रदीपक,वातनाशक और अर्शोघ्न है। त्रिफला-रसायन, मृदुसारक, पचन क्रिया को बलदायक एवं पचनक्रिया बढ़ाने वाला है। त्रिकटु पाचक और अग्निप्रदीपक, तथा वायविडंग कृमिघ्न और पाचक है। संक्षेप में यह प्रयोग-रक्तप्रसादक, रक्त के रक्ताणुवर्धक, मूत्रल, बल्य, रसायन, आक्षेहघ्न, पाचन एवं दीपन गुणयुक्त है।

चन्द्रशेखर रस(र० तंत्रसार)-रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, कांतलोहभस्म, मण्डूरभस्म, गोरोचन और सुहागे का फूला सब समभाग मिला गोकर्णी (कोयल) के रस में १२ घण्टे खरल कर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। मात्रा—आधी से १ गोली तक माता के दूध, जल या रोगानुसार मधुपान के साथ दिन में २-३ बार सेवन कराने से बालकों के सब रोग, ज्वर, स्तन्य दोष से उत्पन्न सन्निपात, धनुर्वात, डब्बा, खांसी, श्वास, वमन, शूल आदि दूर होते हैं, और बालक पुष्ट होता है।

लक्ष्मीनारायण रस—(रस चण्डांशु और यो० र०) शुद्ध गन्धक, सुहागा के फूला, शुद्ध बछनाग, शुद्ध हिंगुल, कुटकी, अतीस, छोटी पीपल, इन्द्रयव, अभ्रकभस्म, सेन्धानमक सब समभाग लेकर प्रथम हिंगुल को महीन खरल कर उसके साथ गन्धक को खूब खरल करें, फिर उसमें अभ्रकभस्म, सुहागा, बछनाग आदि प्रत्येक द्रव्य का महीन चूर्ण क्रम से मिला दृढता से घोटकर, दन्तीमूल के क्वाथ की तथा त्रिफला क्वाथ की ३-३ भावनायें पृथक-पृथक देकर १-१ रत्ती की गोलियां छाया शुष्क कर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—१ या २ गोली दिन में २ या ३ बार अदरख और शहद के साथ सेवन कराने से बालकों का धनुर्वात शीघ्र ही शमन होता है।

यह रस दुष्ट ज्वर, सन्निपात, विसूचिका, विषमज्वर अतिसार, ग्रहणी, सूतिका रोग, वातव्याधि आदि को नष्ट करता है। प्रसूता के धनुर्वात को भी यह दूर कर देताहै।

इस रस के प्रयोग से कभी-कभी रोगी को पसीना खूब आने लग जाता है, ऐसी दशा में इस रस के साथ प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्व मिश्रण कर के देना चाहिये इस रस का विशेष कार्य आन्त्र, यकृत, प्लीहा, रस, रक्त, मांस (स्नायु) और त्वगगत स्वेदपिण्डों पर होता है। यह पित्त की तीव्रता को शीघ्र शमन कर देता है।

अमृतार्णव रस (भै० र० आमाशय रोग)—शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक लोह भस्म और अभ्रक भस्म समभाग लेकर चित्रकमूल के क्वाथ की ७ भावनायें

देकर, १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१ या २ गोली, माता के दूध के दूध के साथ या कण्ठकार्यादि क्वाथ, या पान के और अदरख के रस के साथ शहद मिला सेवन करावें, दिन में २ या ३ बार।

अषधिगुणधर्म शास्त्रकार का कथन है, कि आमाशय के विकार से बालकों को बालग्रह रोग (Infantile Eclampsia) हो जाता है। माता का विकृति दूध भी इस विकार का कारण होता है। मातृ दुग्ध के अतिरिक्त अन्य गोदुग्ध आदि विकृतावस्था में पान कराने से भी आमाशय में कफ दुष्टि एवं सम्पूर्ण कोष्ट में दोष विकृति होकर बालक को धनुर्वात के आक्षेप आने लगते हैं। वस्तुतः वात प्रधान स्थात पक्वाशय में वात विकृति होकर उदर में वेदना, आध्मान, ज्वर, मलावरोध, या बार-बार दुर्गन्धयुक्त थोड़ा-थोड़ा काले रङ्ग का दस्त होना, बार बार आक्षेप (दौरा) तीव्र वेग पूर्वक आना, तथा प्रत्येक दौरे के साथ बालक की शक्ति का ह्रास होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में उक्त लक्ष्मीनारायण रस के समान ही इस रस का उत्तम उपयोग होता है।

नोट—प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना कर ही इसमें अन्य द्रव्यों को मिलाकर खूब मर्दन करना चाहिये कज्जली जन्तुघ्न, योगवाही, रसायन, विकाशी एवं व्यवायी होने से वह श्लेष्म दुष्ट को नष्ट कर धातुसाम्य प्रस्थापित करती हैं। लोहभस्म, रक्त को सशक्त बनाकर सारे शरीर को बल पहुंचाता है, तथा अभ्रक भस्म में वातवाहिनयां और वातवह केन्द्रों के लिये शक्तिदायक, शामक गुण है। वच्छनाग ज्वरहर, वेदनाशामक तथा वात के आवेग को दमन करने वाला है।

वच्छनाग को गोमूत्र में शुद्ध करके प्रयोग में लाने से हृदय की शक्ति क्षीण नहीं होने पाती। चित्रकमूल अग्निप्रदीपक, पाचक, तथा आमाशयस्थ कफदोष की विषमता नाशक एवं लघु अन्त्र और वृहदन्त्र की वात-दुष्टि निवारक है।

इस रोग में अष्टांग हृदय के उन्माद प्रकारण में कहा हुआ 'महाभूतरावघृत' का प्रयोग भी कराया जाता है। विधि इस प्रकार है—

महाभूतराव घृत—तगर, मुलैठी, लताकरंज के पत्र लाख, पटोल, लजालू, बच, पाढल, हींग, सरसों, बड़ी कटेली, हल्दी, दारूहल्दी, प्रियंगु या मालकंगनी, गम्भारी बेर, त्रिकुट, त्रिफला, चौधारा थूहर, देवदारु, बायविड़ंग, जंगली तुलसी, गिलोय, अंकोल, कड़ुवी तोरई का फल सहिंजने की छाल, नीम की अन्तर छाल, नागरमोथा, इन्द्र जौ, कूठ, सिरस के बीज और फूल, अजवायन, मुलैठी गिरिकर्णिका (कोयल) दन्तीमूल, चित्रकमूल, और बेल की छाल प्रत्येक १-१ तोले लेकर सबका कल्क बना ४ सेर घृत (गोघृत मिला तो और उत्तम) और समान भाग मिश्रित आठों मूत्र (गाय, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़ी, गधी, ऊंटनी, और हथिनी का) १६ सेर में सबको एकत्र कर पकावें घृतमात्र शेष रहने पर छान लें।

मात्रा—२ माशे से ४ माशे तक दिन में २ बार चटावें। साथ ही साथ इसी घृत की मालिश नस्य और अंजन रूप में भी प्रयोग किया जाता है। यह बालकों के उन्माद, बालग्रह, अपस्मार ज्वर आदि को दूर कर देता देता है। रसतंत्रसार में लिखा है कि यह घृत भीतर संग्रहीत दोष को बाहर निकालता है, पचन क्रिया को सुधारता है, तथा वातसंस्थान को सबल बनाता है। आन्त्र-विकृति और वात संस्थान की विकृति या शैथिल्य से उत्पन्न रोगों को नष्ट करने में हितकारक है। यह घृत बालक और बड़े सबके लिये हितावह है।

यदि आक्षेपों का मूल कारण कृमि जन्य विकार हो तो

कृमिकुठार रस—[रस चण्डांशु, निघण्ट रत्नाकर] कपूर ८ भाग, इन्द्रयव, त्रायमाण, अजमोद [या अजवायन] वायविडङ्ग, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वच्छनाग और केशर [कोई-कोई नागकेशर लेते हैं] १-१ भाग लेकर महीन चूर्ण करे।

प्रथम हिंगुल को महीन घोंटकर उसमें वच्छनाग का सूक्ष्म चूर्ण मिला मर्दन करे, फिर कपूर मिलाकर खरल करें, पश्चात् केशर को अलग भांगरे के रस में खूब खरल कर मिलावें तदनन्तर शेष द्रव्यों के महीन चूर्ण को मिला भांगरे के रस में १ दिन खरल कर सुखा लेवें। पश्चात् सब चूर्ण के समभाग पलाश बीज का चूर्ण मिला, मूसाकानी और ब्राह्मी के रस की पृथक-पृथक भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना, छाया-शुष्क कर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—१ से ३ गोली तक, सत्यानाशी (स्वर्ण क्षीरी) के रस के साथ, अथवा इसकी जड़ के क्वाथ के साथ, प्रात काल सेवन कराने से सर्व प्रकार के कृमि ७ दिन में नष्ट हो जाते हैं। तथा छोटे वालकों को कृमि जन्य वनुर्वात उदरशूल, शीर्षशूल, पाण्डु तथा अन्य वात रोगों की शान्ति हो जाती है।

विशेषकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म कृमि जो गोल और धान्यांकुर सदृश होते हैं वे ही उक्त विकारों में कारणीभूत होते हैं पेट में दबाकर देखने से यदि रोगी को नाभी के दाहिनी ओर अन्त्रपुच्छ के पास शूल की प्रतीति हो तो जानना होगा कि वनुर्वात का विकार उक्त कृमियों के कारण है। इस प्रकार कृमि का निर्णय कर कृमिकुठार रस की योजना करें। इस प्रकार का कृमिजन्य आक्षेपयुक्त विकार बड़ी आयु वाले को भी होवे हैं। यदि सत्यानाशी रस या मूल के क्वाथ से यह न लिया जा सके तो शहद के साथ ही इसे दिन में २ बार देवें और दूसरे या तीसरे दिन रेंडी तेल देकर विरेचन करा देवें। सब कृमि झड़ जावेगे।

कभी २ बालकों को दन्तोद्गम की विकृति से भी यह रोग हो जाता है। ऐसी अवस्था में कुमारकल्याण घृत की योजना ठीक होती है।

कुमार कल्याण घृत—(भै. र. बालरोगाविकारे) शंखपुष्पी, वच, ब्राह्मी, कूठ, त्रिफला, मुनक्का, मिश्री, (या शक्कर), सोंठ, जीवन्ती (स्वर्ण वर्ण की हरीत भी या सौराष्ट्र में होने वाली डोडीशाक, इसके अभाव में छोंकर वृक्ष की छाल लेवें), जीवक (श्वेतजीरा लेवें), बला (खरेंटी मूल), कचूर, धमासा, बेल वृक्ष की छाल, अनार की छाल, काली तुलसी के पत्र, सरिवन नागरमोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची, छोटी पीपल, (मूल पाठ में गज पीपल है, श्री यादवजी त्रीकमजी आचार्य ने छोटी पीपल के साथ ही साथ इस योग में खस, गोखरू, अतीस, पाढ या पाठा, वायविडंग, देवदार मालती या चमेली के फूल, महुआ के फूल, पिण्डखजूर, मीठे बेर और वंसलोचन इतने द्रव्य और भी मिलाये हैं) प्रत्येक १-१ तोला, सब का महीन चूर्ण कर जल में पीस कल्क करें। कल्क से चौगुन गोघृत, घी से चौगुना गोदुग्ध और छोटी कटेरी के क्वाथ को मिला, मन्दाग्नि पर पकावें। घृत सिद्ध हो जाने पर छानकर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—बालक की अवस्थानुसार १ मासे से ६ माशे तक माता के दूध से या गरम गोदुग्ध में मिला दिन में दो बार पिलावें।

यह घृत ६ मांस से २ वर्ष की आयु वाले बालक के लिये विशेष लाभकारी है। दांत आने के समय कोई कष्ट नहीं होने पाता, कोई व्याधि नहीं होती। उस समय इस घृत के सेवन कराने से दन्तोद्भेद के सभी उपद्रव शांत हो जाते हैं। ६ मास से १ वर्ष तक के बालक को इसकी मात्रा-४ से ८ बूंद या लगभग १ माशा तक काफी है। दांत सरलता से निकल आते हैं। दूध न पीना वमन, ज्वर अतिसार, हर समय रोते रहना आदि उपद्रव नहीं होते। तथा बालग्रह आक्षेप, छाया दोष, कृमिरोग आदि नष्ट हो जाते हैं। यह घृत बल, वर्ण, पुष्टि, पाचकाग्नि और रुचि की वृद्धि करता है।

एलोपैथिक प्रयोग—

स्त्रियों को गोद के बच्चों को दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिये और स्वयं आयरन, आर्सेनिक, लिवर एक्ट्रेक्ट आदि बलदायक औषधियों का सेवन करना चाहिए।

पोटास ब्रोमाइड, क्लोरल हाइड्रेट, टिंचर कैनिबिस-इण्डिका, मार्फिया या क्लोरोफार्म सुंघाना दौरों (आक्षेपों) के लिये अच्छा है। कुछ चिकित्सकों की सम्मति में थाइरोइड ग्लेण्ड और कैल्सियम विशेष उपयोगी हैं।

योग—पोटास ब्रोमाइड ५ ग्रेन, क्लोरल हाइड्रेट २ ग्रेन, टिंचर कैनिबिस इंडिका २ बूंद, सीरप ऑरेंशाई ½ ड्राम और एक्वा (जल) २ ड्राम। यह मिश्रिण २ वर्ष के बच्चे को दिन में ३ बार देवें (वर्मा-एलोपैथिक चिकित्सा से)।

नोट—बाल-आक्षेप (कम्हेड़े Infantile convulsions) का दौरा होते ही कई एलोपैथिक चिकित्सक बच्चे को गुन-गुने जल से स्नान कराते हैं। कब्ज हो तो ग्लसरीन की पिचकारी लगाते हैं या उसकी जीभ पर १ ग्रेन कैलोमल रख देते हैं, जिससे दस्त हो जाते हैं। दौरा यदि सख्त हो, तो एमिलनाइट्रेट या क्लोरोफार्म सुंघाते हैं, जिससे दौरा कुछ रुक जाता है। अथवा क्लोरल हाइड्रेट ३ ग्रेन और पोटास ब्रोमाईट १० ग्रेन तक

दोनों का मिश्रण उसकी गुदा में प्रविष्ट कराते हैं।

बच्चा होश में आ जाने पर उक्त योग का प्रयोग देते हैं। अथवा १ वर्ष के बच्चे को सोड़ा ब्रोमाइड़ ४० ग्रेन, क्लोरल हाइड्रास २० ग्रेन, फिनेजोनम १० ग्रेन, सिरप औरंशाई ½ ड्राम और जल १ औंस का मिश्रण कर इसमें से १-१ ड्राम पिलाते हैं २-२ घंटे से।

खल्ली

(Muscular spasm of hand and feet)

पैर, पिण्डलियां, जांघ और हाथों की कलाई में ऐंठन युक्त पीड़ा होना यह खल्ली रोग का लक्षण है। कहा है-

खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटनी ॥—मा. नि.

इस उद्वेष्टन या ऐंठनयुक्त पीड़ा की उत्पत्ति विशेष कर अत्यधिक परिश्रम करने, परिश्रम करने के बाद एक दम शीत के लग जाने से, अथवा बहुत देर तक एक आसन पर स्थित रहने से, बहुधा वात रक्त (Gout)के रोगियों को या दुर्बल व्यक्तियों को होती है। इसे अंग्रेजी में क्रैम्प (Cramp) भी कहते हैं। लेखक-खल्ली((Writers cramp) भी इसी का एक भेद है। लिखाई का कार्य अत्यधिक लगातार करने से, हाथों की कण्डराओं में वातप्रकोप होकर हाथ कांपने लगते हैं। उंगलियों में ऐंठनयुक्त पीड़ा होती है। ऐसी दशा में न तो कलम पकड़ी जा सकती है और न लिखा जा सकता है।

उपचार—

कुष्ठादि लेप—कूठ और सेंधानमक समभाग एकत्र महीन पीसकर उसमें थोड़ा चूक (चुक्र, चौपतिया नामक खट्टी बूटी, अथवा नीबू, आमला, दाड़िम, आम, अनार आदि खट्टे पदार्थों के रस को निकाल कर गाढ़ा हो जाने पर चूक कहाता है) और सरसों तैल मिला और आग पर थोड़ा गरम कर पीड़ित स्थान पर धीरे-धीरे मर्दन करें।

तथा रोगी को स्निग्ध, खट्टे और नमकीन द्रव्यों से स्वेदन, मर्दन एवं उपनाहन कराना चाहिए।

स्त्रियों को प्रसूतावस्था में होने वाले खल्ली रोग में प्रताप लंकेश्वर रस की मात्रा ३ से ६ रत्ती, दिन में २ या ३ बार चित्रकमूल चूर्ण अदरख रस और शहद मिला सेवन कराने से लाभ होता है।

पुरुषों को भी उक्त रस से लाभ होता है, अथवा स्वर्ण युक्त लक्ष्मी विलास रस की मात्रा ¼ रत्ती से १ रत्ती तक दिन में २ बार छोटी पीपल का चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन करावें।

एलोपैथिक योग—

विटामिन बी कॉम्प्लैक्स २ ड्राम, लिकर स्ट्रिक्नीन हाइड्रोक्लोर ५ बूंद, लिकर आर्सेनिक हाइड्रोक्लोर ३ बूंद तथा पानी १ औंस का मिश्रण दिन में २-३ बार भोजन के बाद सेवन करावें।

खल्ली से पीड़ित स्थान पर बिजली लगावें, वातनाशक तेलों की मालिश करें। तथा आयरन (लोह), स्ट्रिक्नीन (कुचला सत्व), आर्सेनिक (संखिया), फास्फोरस कुनीन आदि बलवर्धक औषधियों का यथाविधि सेवन करावें।

कुब्जता (कुब्जक, कुबड़ापन)

माधव निदान में कुब्जता का अन्तर्भाव धनुस्तम्भ के अन्तरायाम और बहिरायाम मे ही कर लिया गया है। जैसा कि मधुकोष टीका में लिखा है—

"अन्तरायाम बहिरायामाभ्यां तन्त्रान्तरोक्त कुब्जस्यावरोधः।"

किन्तु भावमिश्र जी अन्तरायाम और बहिरायाम से कुब्जता के भेद दर्शाते हुए लिखते हैं कि (*) अन्तरायाम और बहिरायाम में शरीर क्रमशः छाती अथवा पीठ की ओर केवल रोग की अवस्था में झुकनामात्र है, वैसे तो शरीर जैसे का तैसा ही रहता है किन्तु कुब्जता में छाती अथवा पीठ शरीर से बाहर निकल जाती है। यही भेद है अतः प्रकुपित वात जब छाती अथवा पीठ को क्रमशः ऊंची तथा वेदनायुक्त कर देता है, तब उस रोग को कुब्जक कहते हैं। अंग्रेजी में हम्प या हंच बैकेड (Hump or hunch backed) कहते हैं।

(*) ननु अन्तरायामः क्रोडनतो भवति, बहिरायामः पृष्ठनतो भवति, ताभ्यामस्य को भेदः ? उच्यते अन्तरायाम बहिरायामयोः प्रकृतस्यैवान्तः शरीरस्य बहिःशरीरस्य च नमनम्। अत्र तु हृदयं पृष्ठं वा शरीराद्बहिर्भवतीति भेदः। अतः हृदयं यदिवा पृष्ठमुन्नतं क्रमतः सरुक्। क्रुद्धो वायुर्यदा कुर्यात्तदा तं कुब्जमादिशेत् ॥ (भा० प्र०)

उपचार—वातनाशक स्नेह, दशमूल तथा मांस रस का सेवन रोग की प्रारम्भावस्था में करने से लाभ होता है। अधिक बढ़ जाने या पुराना होने पर कुब्ज को असाध्य ही जानना चाहिये। कहा है—

वातघ्नैर्दशमूल्याच नवं कुब्जमुपाचरेत् ।
स्नेहैर्मांसरसैर्वाऽपि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत् ॥
(चक्रदत्त)

वातव्याधियों में जिन चिकित्साओं का वर्णन किया गया है, वे ही सब चिकित्सायें इस रोग में भी करना चाहिये। विशेषतः प्रसारिणी तेल का उपयोग श्रेयस्कर है।

प्रसारणी तेल—मूल, पत्र तथा शाखाओं समेत प्रसारिणी २॥ सेर लेकर अच्छी तरह कूटकर ६॥ सेर जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर, छानकर, उसमें तिल तेल, दही का तोड़ और कांजी प्रत्येक २॥ सेर तथा तेल से चौगुना (१० सेर) गोदुग्ध मिलाकर इसमें चित्रक, पीपलामूल, एरण्ड की जड़, खरैंटी की जड़ मुलैठी, सेंधानमक, वच, सौंफ, देवदारु, गजपीपल, प्रसारिणी की जड़, जटामांसी, लाल चन्दन और सोंठ। इन सबको कुल २५ तोले लेकर कल्क बनाकर उक्त तेल में मिलाकर यथा-विधि पाक करें।

तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। इस विख्यात प्रसारिणी तेल को पीने, नस्य, शिरोवस्ति, मर्दन तथा स्वेदन के लिये उपयोग में लाने से स्तम्भ, अर्दित, कुब्जता, पंगुता आदि वात रोग नष्ट हो जाते हैं। यह तेल क्षीण, वृद्ध तथा वात से जिनका शरीर सिकुड़ गया है ऐसे रुग्ण पीड़ित व्यक्तियों के अंगों को फैलाती है, इसी से इसका नाम "प्रसारणी" रक्खा गया है। कहा है—

क्षीणानांस्थविराणाञ्च वातसङ्कोचितात्मनाम् ।
प्रसारयेद्यतोऽङ्गानि तदुक्तैषा प्रसारणी ॥ +
(भा० प्र०)

कुब्जत्व की प्रारम्भिक दशा में त्रिवङ्गभस्म का प्रयोग दशमूल क्वाथ के साथ कराते रहने से लाभ हो जाता है।

खंज, कलायखंज और पङ्गुता

कमर में रहने वाला वायु प्रकुपित होकर कमर से लेकर पांव के गुल्फ तक की कण्डरा को चलते समय जब जकड़ लेता है या कंपाता है तो उस विकार को खंज (Monoplegiaeruralis मानोप्लेजिया क्रुरालिस) कहते हैं। X इसमें मनुष्य एक पैर से लंगड़ाते हुए चलता है। इसे अंग्रेजी में (Spastic paraplegia) स्पास्टिक पाराप्लेजिया भी कहते हैं।

उक्त वात प्रकोप के कारण ही जब चलना प्रारम्भ करने के समय उक्त खंज के समान ही कांपे या लंगड़ाते हुए चले तथा जिसके सन्धिबन्धन शिथिल (ढीले) हो जांय तो उस विकार को 'कलायखंज (लेथीरिज्म Lathyrism) कहते हैं। ०

खंज और कलायखंज में भेद इतना है कि खंजता की अवस्था में तो चलते समय लगातार पीड़ायुक्त कम्प होता है, और कलायखंज में केवल गमन के प्रारम्भ में कम्प होता है। कलाय खंज यह रूढ़ संज्ञा है। इसमें खंजता अल्प प्रमाण में होती है। इसे ही कहीं-कहीं खंजवात भी कहते हैं। 'कलाय' संस्कृत में मटर को कहते हैं। मटर में एक काले छिलके की छोटी मटर होती, है जिसे भाषा में खेसारी से बड़ा या लेत्तरी, दक्षिण में लाख की दाल कहते हैं। अंग्रेजी में चिकलिंगवेच Chickling vetch और लेटिन में Lathyrus Sativus कहते हैं। इस मटर की दाल को सदैव जो खाते हैं उन्हें यह खंज या कलाय खंज विकार हो जाय करता है। विटामिन 'ए' की कमी से भी यह विकार होता है यह विकार भारतवर्ष में रीवां उत्तर बिहार आदि प्रदेशों के प्रायः गरीब लोगों में अधिक पाया जाता है। अफ्रीका, इटली और ईरान में भी पाया

+ भैषज्य रत्नावली के कुब्जप्रसारिणी तैल के कल्क में—रास्ना और भिलावा डाला गया है। एरण्डमूल, वच, लाल चंदन और सोंठ नहीं है। यदि रोगी के शरीर में वात के साथ ही साथ कफ की भी विशेषता हो, तो इस कुब्जप्रसारणी तैल का उपयोग हितावह होता है। अन्यथा उक्त तैल ही उत्तम निरुपद्रव लाभकारी होता है।

X वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा। खंजस्तदाभवेज्जन्तुः। भा० नि०

० प्रक्रामन् वेपते यस्तु खं जन्निव च गच्छति। कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धि प्रबन्धनम् ॥ —मा० नि०
इसे Locomotor ataxia भी कहते हैं।

जाता है।

इस रोग के प्रारम्भ में प्रायः धीरे-धीरे दाह युक्त पीड़ा पैरों में होती है, फिर अकस्मात् आक्षेप, कम्प एवं जकड़न होना शुरू हो जाती है। पैरों का संज्ञानाश (सुन्नता) नहीं होता। रोगी को एड़ियां उठाकर लड़खड़ाते हुए लकड़ी के सहारे चलना पड़ता है। शरीर के किसी भी अङ्ग में और कोई विकार नहीं होता। यह रोग चिरकारी (Chronic) होता है।

पङ्गु—कमर से पैरों के गुल्फ तक दोनों जांघों के स्नायु जब अवसन्न से हो जाते हैं, चलने की क्रिया नष्ट हो जाती है, उसे पङ्गुता, लूलापन (डाईप्लेजिया Diplegia) कहते हैं। कहा है—

"पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥" मा. नि.

उपचार—उक्त तीनों विकारों की प्रारम्भिक अवस्था में विरेचन, आस्थापन बस्ति, स्वेदन, गुग्गुल (महायोगराज गूगल आदि) के सेवन तथा स्नेहबस्ति द्वारा चिकित्सा करने से लाभ होता है। पथ्य परहेज का पूर्ण पालन करना आवश्यक है। रोग पुराना हो जाने पर प्रायः असाध्य हो जाता है। कहा है—

उपचरेदभिनवं खंजं पंगुमथापि च।
विरेकास्थापन स्वेद गुग्गुलु स्नेहवस्तिभिः ॥
(भा० प्र०)

कलायखंज में स्नेहन क्रिया की विशेष आवश्यकता है। शेष चिकित्सा खंजता और पंगुता की चिकित्सा जैसी ही करनी चाहिये। कहा है—

क्रमः कलायखंजस्य खंजपंग्वोरिपस्मृतः ॥
विशेषात्स्नेहनं कर्म कार्यमत्र विचक्षणैः ॥
(भा० प्र०)

ध्यान रहे कभी-कभी निर्बल अवस्था में शीत के लग-जाने पर (विशेष कर वर्षा या शीत ऋतु में) शरीर के विविध सन्धि स्थानों में जकड़ाहट आ जाती है। उसका यदि योग्य उपचार न किया जाय तो कुछ दिनों बाद कलायखंज जैसी व्याधि खड़ी हो जाती है। जिससे चलने में अति कष्ट होता है, वायु सहन नहीं होती। पेशाब गंदला और थोड़े प्रमाण में होता है, घबराहट, कोष्ठबद्धता आदि शिकायतें शुरू हो जाती हैं। ऐसी हालत में भी स्नेहन चिकित्सा लाभकारी होती है। खंज हो या कलायखंज हो सहचरादि तैल का प्रयोग विशेष हितप्रद है।

सहचरादितैल (गदनिग्रह)—कटसरैया (पियाबांसा) का पंचाङ्ग २॥ सेर, दशमूल २॥ सेर और सतावर १। सेर सबको एकत्र जौकुट कर ५१ सेर १६ तोला जल में पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर, छान लें। तदनन्तर उसमें ३ सेर १६ तोले तिल तैल और उतना ही दूध तथा खस, नख (भुने हुए), कूठ, पद्माख, छोटी इलायची, ब्राह्मी या जलनीम, प्रियंगु सुगन्धित पानडी (नलिका), सुगन्धवाला, भूरिछरिला, लालचन्दन, जटामांसी, अगर, देवदारु, खुरासानी अजवायन, सौंफ, शिलारस और तगर २-२ तोले, सबका कल्क मिला, पुनः मन्दाग्नि पर पकावें। तैल मात्रशेष रहने पर छानकर सुरक्षित रक्खें।

यह तैल मुख द्वारा सेवनार्थ, तथा नस्य, वस्ति और मर्दनार्थ उपयोग में लाया जाता है। खंज या कलायखंज की अवस्था में इसकी मात्रा—१ से ६ माशा तक, गर्म दूध ५ तोले में मिला प्रातः सायं पिलाने से आमविष तथा रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश होता है। यदि तैल को देवदारु, सोंठ और पियाबांसा के क्वाथ के साथ इस तैल का सेवन कर लिया जाय तो और भी शीघ्र लाभ होता है। साथ ही साथ रोगी को दिन में १ या २ बार आरोग्य वर्द्धनी का भी सेवन करा दिया जाय,तो पचनेन्द्रिय-संस्थान निर्दोष होकर रोग वृद्धि में सहायक विष की उत्पत्ति में अवरोध हो जाता है।

खंजनिकादिरस (सिद्धयोगसंग्रह)—शुद्ध कुचले का कपड़छन चूर्ण, मल्लसिन्दूर और रौप्य (चांदी) भस्म समभाग लेकर,प्रथम मल्लसिन्दूर को खूब महीन पीस,उसमें शेष अन्य द्रव्य मिला, अर्जुन वृक्ष की छाल के क्वाथ की सात भावनायें देकर, मूंग जैसी गोलियां बना छायाशुष्क कर रक्खें।

मात्रा—१ या २ गोली, प्रात-सायं, गोदुग्ध के साथ या दशमूल के क्वाथ के अनुपान से सेवन कराने से खंजवात, अर्दित और पुराने पक्षाघात में अच्छा लाभ होता है।
(यादव जी त्रीकम जी आचार्य)

उपदंश के कारण भी यह रोग होता है—

उपदंश के विष का परिणाम वातवह मण्डल, वातचक्र या वातवाहिनियों पर होकर, पक्षाघात कलायखंज, पंगुता आदि विकार होते हैं। कई रोगियों के सर्वाङ्ग में

अत्यन्त शक्तिहीनता आजाती है। साथ ही यदि कफ प्रकोप हो तो विशेष घबराहट एवं अशान्ति बनी रहती है। रोगी एक स्थान पर पड़ा रहता है। तन्द्रा, जड़ता, विचार करने की शक्ति का ह्रास आदि लक्षण होते हैं: ऐसी अवस्था में उपदंश सूर्य का प्रयोग बहुत उत्तम होता है। (रस तन्त्रसार)

उपदंशसूर्य (वृ. यो. त.)—श्वेत संखिया ५ माशे छोटी कटेरी के पंचांग का स्वरस और नीबू रस १५-१५ तोले, सबको लोहे की कड़ाही में या बड़े लोह खरल में डाल छिलके सहित नीम के सोटे से खूब घुटाई करें। जब गोली बनाने लायक गाढ़ा हो जाय (यदि रस कम हो जाय तो और मिला लेना चाहिए)। तब मूंग जैसी गोलियां बना सुरक्षित रक्खें।

एक-एक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल घृत के साथ सेवन करावें। इसे घृत के साथ निगल जाना चाहिए। पथ्य में—गेहूँ की रोटी, घृत-अधिक प्रमाण में, मूंग की दाल लेवें। तैल, मिर्च, खटाई का त्याग करें। नमक में सेंधा नमक किंचित प्रमाण में लेवें। अधिक नहीं।

उक्त रोगी को यह रस अनुभवी चिकित्सक की सलाह से लेना चाहिए। कई चिकित्सक इसका प्रयोग रक्तशोधकारिष्ट या सारिवाद्यासव के साथ कराते हैं।

अथवा उक्त रस के स्थान में—अष्टमूर्तिरसायन का प्रयोग करें। इसकी प्रयोग विधि उपदंश प्रकरण में देखिये।

सिंहनाद गूगल का भी खंजता और पंगुता पर उत्तम लाभदायक प्रयोग किया जाता है—

सिंहनाद गुग्गुल—(भै. र.) लोहे की कढाही में त्रिफला क्वाथ १२ तोला और शुद्ध गूगल ४ तोले को मिलाकर पकावें, फिर उसमें शुद्ध एरंडी तैल १६ तोला मिला दें और कच्छूल से चलाते रहें। जब गाढ़ा हो जाय (गुड़पाक की तरह हो जाय) तब नीचे उतार, ठण्डा होने पर उसमें शुद्ध गन्धक ४ तोला मिला, कूटकर पिंड सा बना १-१ माशे की गोलियां बना रक्खें। मात्रा—१ गोली, खजता में रास्ना और दशमूल क्वाथ के साथ, पंगुता में भी इसी अनुपान से, अथवा एरंड तैल और दूध के साथ तृसेवन करावें। यदि रोगी को कोष्ठ-बद्धता विशेष हो तो हस्तिसिंहनाद गूगल का प्रयोग करें। इसमें जायफल (जमालगोटा) उचित प्रमाण में मिलाया जाता है। और भी कई द्रव्य डाले जाते हैं।

कई वैद्य प्रथम गंधक और गूगल को रेंडी तैल में घोटकर फिर उसमें त्रिफला क्वाथ मिला मंदाग्नि पर पकाते हैं। गाढ़ा होने पर गोलियां बना लेते हैं।

कम्प (वेपथु)

इसके दो भेद हैं–एक तो पक्षाघात का ही एक प्रकार है, जिसे सकम्प पक्षाघात (Paralysis Agitans or shaklnj palsy)कहते हैं। यह प्रायः ५० वर्ष से अधिक आयु में होता है। मस्तिष्क में जो एक प्रकार का भूरा सा अंश (Corpus striatum) होता है, उसके अथवा चेष्टावह केन्द्र के विकार से इस रोग की उत्पत्ति पाश्चात्यों के अनुसार मानी जाती है। इस विकृति के कारण शरीर के भिन्न–२ अङ्गों में अनैच्छिक और अनियमित गतियां होने लगती हैं। आयुर्वेद का भी सूत्ररूप में कथन है—

सर्वाङ्ग कम्प, शिरओवयुर्वेपयुसंज्ञकः।

—मा. नि.

इसे सर्वाङ्गकम्पवात भी कहते हैं, शिर में कम्प विशेष होता है। अतः संस्कृत में इसे वेपयु भी कहते हैं।

प्रारम्भ में रोगी के चेहरे पर एक हाथ में कुछ कम्प सा (फड़कन सा) होने लगता है। फिर यह कम्प धीरे २ बढ़कर सारे शरीर में फैल जाती है। गर्दन में कुछ जकड़न सी होती है, सीधा खड़ा नहीं रहा जाता, स्नायु और मांसपेशियां कम जोर हो जाती हैं। कार्य के समय कम्प बढ़ जाता है, सोते समय कुछ शान्ति रहती है। किन्तु रोग के अत्यधिक बढ़ जाने पर निद्रा की दशा में भी कम्प रहता है।

दूसरा भेद यह है, जिसमें अपने आप और अनियमित रूप से अङ्ग फड़का करते हैं। इसे ताण्डव रोग, नर्तनरोग (Chorea or st. vitus's bance) कहते हैं। मस्तिष्क की उक्त प्रकार की विकृति इसमें भी कारण मानी जाती है। एलोपैथिक चिकित्साकार डा. वर्मा जी का कथन है वह रोग प्रायः बच्चों और लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को अधिक होता है। इसका मुख्य कारण रूमेटिक फीवर (Rheumaticfever) खसरा (measles), लाल ज्वर (Scarlet fever) इत्यादि सांक्रमक रोग होते हैं। भय, सदमा, चोट और गर्भावस्था (युवतियों में) भी

इसके कारण हो सकते हैं।

शरीर के विभिन्न भागों की मांसपेशियों में थोड़ी सी कमजोरी आ जाती है और इनमें झटके के साथ अनियमित गतियां होने लगती हैं। बच्चा चाहे खड़ा हो बैठा हो या लेटा हो हरकत करता है। अंगुलियां कभी बन्द होती हैं, कभी खुलती हैं। कंधा कभी ऊपर को उठता है, कभी नीचे को आ जाता है। भवों, ठोड़ी, आंख आदि में विभिन्न प्रकार की गतियां होने लगती हैं। शिर इधर उधर को मुड़ने लगता है, पांव की अंगुलियों और घुटनों में भी अजीब प्रकार की गतियां होने लगती लगवे हैं। चलते हुए रोगी के पैर झटके के साथ इधर उधर को पड़ते हैं। स्नायु और कण्डरायें इतनी कमजोर हो जाती हैं कि–रोगी अपने हाथ फैलाये तो वे तुरन्त नीचे गिर जाते हैं। यदि वह कोई वस्तु पकड़े तो तुरन्त एक दो अंगुली ढीली पड़ जायेगी और वह वस्तु गिर जायगी। रोगी का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, शक्ल से बेवकूफ दिखाई देता है। स्मरणशक्ति दुर्बल हो जाती है। ५० प्रतिशत रोगियों के हृदय से एक प्रकार का शब्द जिसे मरमर (Murmur) कहते हैं, सुनाई देने लगता है। हृदय भी अनियमित चलने लगता है। इत्यादि

उपचार—रोगी को प्रातः काल–वृहद्वात चिन्ता मणि रस (देखो प्रयोग नं. १ अध्याय १६) की मात्रा २ रत्ती तक शहद के साथ चटाकर ऊपर से असगन्ध चूर्ण १ तोला को १ पाव जल में पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर पिला दें।

सायं काल में--चतुर्मुखरस (देखो प्रयोग ६ अध्याय १६ में) की मात्रा १ रत्ती और सतावरी चूर्ण ३ माशे मिलाकर शहद के साथ देवें और शरीर पर प्रसारणी तेल (देखो प्रयोग नं. १ पीछे कुब्जता के प्रकरण में) की मालिश करें।

उक्त असगंध क्वाथ के लिये असगन्ध की मोटी जड़ लेनी चाहिये (यह श्रीयुत अत्रिदेव जी गुप्त विद्यालंकार का प्रयोग धन्वन्तरि से लिया गया है।)

सर्वाङ्गकम्पारिरस(रसरत्नाकर)–पारद भस्म और ताम्रभस्म दोनों समान भाग लेकर एकत्र खरल कर त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) के क्वाथ की २१ भावनायें देवें। प्रत्येक भावना के पश्चात् औषध को शुष्क कर लेना चाहिये। भावनायें पूर्ण होने के बाद चना जैसी गोलियां बना कर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—आधे से १ गोली तक, सोंठ चूर्ण ३ माशे और शहद मिला नित्य प्रातः सेवन करावें। तथा सायं में निर्गुण्डी क्वाथ का सेवन करावें।

मांस्यादि क्वाथ—जटामांसी १ तोला, असगन्ध ३ माशे, और खुरासानी अजवायन के बीज १॥ माशा इनको जौकुट कर (१ मात्रा है) १० तोले जल में पकावें। ४ तोले जल शेष रहने पर कपड़े से छानकर पिलाने से बालकों का आक्षेप, कम्पवात (Chorea), हिस्टीरिया में भी लाभ होता है। इसी प्रकार दिन में २ वार इस क्वाथ को अकेले या वृहद्वात चिंतामणि रस के साथ, या ब्राम्हीवटी, या सर्पगन्धा योग के साथ या अपतन्त्रकादि वटी (इसका प्रयोग हिस्टीरिया प्रकरण में देखिये) के साथ सेवन करावें। (श्री० पं० यादवजी त्रिक्रम जी)

योग रत्नाकर ग्रन्थ का 'स्वर्णभूपति रस' नामक कूपीपक्व रसायन का भी सफल प्रयोग इस रोग पर किया जाता है। मात्रा १ से १॥ रत्ती तक पीपल चूर्ण और शहद के साथ दिन में २ बार सेवन करावें। इसकी निर्माण विधि आदि देखिये क्षय के प्रकरण में।

स्नेहन के लिये रोगी को सहचरादि तैल या माषतैल का पान, अभ्यङ्ग, अनुवासन वस्ति आदि मे प्रयोग करें। तथा एक टब में तिल तैल आधा भरकर उसमें रोगी को लिटावें, अवगाहन करावें। कहा गया है कि—सर्वाङ्गकम्पवात या सर्वाङ्गवात तथा एकाङ्गवात को तैलावगाहन इस प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे कि पर्वत जल के वेग को नष्ट कर देता हैं। यथा—

> सर्वाङ्गगतमेकांगगतञ्चापि समीरणम्।
> तैलावगाहनं हन्ति तोयं वेगमिवाचलः॥
>
> (भा. प्र.)

यूनानी प्रयोग—कम्पवात को रेअशा कहते हैं।

माजून रेअशा बारिद—गन्दनाबीज (गन्दना एक प्रकार का जंगली प्याज है, जो गेहूं और चने के खेतों में स्वयं उत्पन्न होता है) ३॥ तोले, अकरकरा और नारियल की गिरी प्रत्येक २। तोले, चिलगोजा की गिरी, हब्बतुलखिजरा (इसे बुत्म या गुलेपिस्ता, खंजक भी कहते

है) की गिरी प्रत्येक १॥ तोला, तथा कलौंजी १३॥ माशे, राई २२॥ माशे। इन सबको कूट पीसकर, तिगुने शहद में मिलाकर माजून तैयार करें।

मात्रा—६ माशे सप्ताह में तीन बार सेवन करने तथा मुर्गी के अण्डे की जर्दी तथा कबाब आदि आहार करने से कम्पवात का नाश होता है। (यू० सि० सं०)

हबूब रेअशा—लौंग, बालछड़, उस्तखुद्दूस (इसे जंगली लवंडर भी कहते हैं) प्रत्येक १० माशे, दालचीनी, सूखा पोदीना, काबुली हरड़ प्रत्येक ७ माशे, हींग, गारीकुन (इसे छत्री भी कहते हैं, यह पुराने चीड़ के वृक्षों पर पैदा होती है), निशोथ, जुन्दबेदस्तर (गन्ध बिलाव या ऊदबिलाव के अण्डकोषों का सत्व) प्रत्येक ४ माशे, अकरकरा, केशर ३-३ माशे तथा संखिया २ रत्ती लेकर सबको महीन पीस शहद के साथ कालीमिर्च जैसी गोलियां बनालें।

मात्रा—२ से ४ गोली तक प्रातःसायं भोजन के बाद सेवन करावें।

तथा लेप के लिये—

दवाए अजीब—तारपीन का तेल, मालकांगनी का तैल, रोगन मोम, धतूरा का तैल प्रत्येक ५ तोले और लौंग का तैल १ तोला, इनको एकत्र मिला पीड़ित अंग पर लेप करने (धीरे मलने) और रुई का फाहा बांधने से कम्पवात, आक्षेप, वातजशूल आदि का नाश होता है।

(यू० सि० सं)

एलोपैथिक प्रयोग—

५ से ७ वर्ष तक के बच्चों के लिये—ध्यान रहे बालक को आराम के लिये लिटाये रहना चाहिए। उसकी हंसी मजाक न उड़ावें, और न उसमें किसी प्रकार की चिन्ता या क्रोध का उभार न होने देवें। औषधि प्रयोगों में—

लिकर आर्सेनीकेलिस-३ बूंद, टिंचर फेरीपरक्लोराइड-३ बूंद, ग्लिसरीन-१० बूंद, सीरप औरंशाई-१५ बूंद, एक्वा मैन्थपिप-१ औंस।

मिश्रण की १ मात्रा है। ऐसी ३ मात्रायें दिन में ३ बार भोजन के बाद पिलावें।

क्लोरल हाइड्रेट २ ग्रेन, सोड़ा ब्रोमाइड ५ ग्रेन, सीरप औरंशाई २० बूंद और जल २ ड्राम। यह मिश्रण की १ मात्रा है। जब शरीर में गतियां तेज हों, तब ऐसी मात्रा दिन में ४ बार देवें।

इन्जेक्शनों में—स्टोवर्सोल (Stovarsol), गार्डीनल, मायेनेसीन टेबलेट्स (Myanesin Tablets) आदि दिए जा सकते हैं। (वर्मा एलोपैथिक योग रत्नाकर)

विशेष. द्रष्टव्य—स्नायुगत विकृति या वातरोगों में, विशेषतः शूल, आक्षेप स्तम्भ, कम्प आदि लक्षण मुख्यतया होते हैं। इस पर वाष्प विधि, स्वेदन क्रिया, तैल मर्दन (या शुष्क मर्दन), सेंकना तथा आक्षेप या झटकों की तीव्रता हो तो स्नायु को कसकर बांधना और कभी-कभी दम्भ क्रिया (दागना) करना आवश्यक होता है।

पंचामृतलोह गुग्गुल—भी इस विकृति पर उत्तम लाभदायक होता है।

विधि—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चांदी भस्म, अभ्रक भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म ४-४ तोले लेकर प्रथम पारा गन्धक की कज्जली करें। बाद उसमें प्रत्येक भस्म क्रमशः मिला कर खूब मर्दन करें। फिर उसमें लोहभस्म ८ तोले और शुद्ध गूगल २८ तोले मिला सबको लोह खरल में लोहे की मूसली से थोड़ा-थोड़ा सरसों का तेल लगा-लगा कर ८ घंटे खूब घुटाई करें। फिर २-२ रत्ती की गोलियां बना सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—२ से ४ गोली तक, दिन में २ बार असगन्ध के क्वाथ या एरण्डमूल क्वाथ से सेवन कराने से स्नायुगत रोग, वातव्याधि तथा मस्तिष्क रोगों का नाश होता है। इसके अनुपान में सोंठ चूर्ण युक्त दूध भी दे सकते हैं। यह भैषज्य रत्नावली का प्रयोग है।

इसके विषय में—रसतंत्रसार में लिखा है कि—

जब मस्तिष्कगत वात केन्द्रों में और वात-नाड़ियों में विकृति, रक्त की न्यूनता तथा आमानुबन्ध-सह चिरकारी रोग हो या तीव्र क्षोभवाली अवस्था शांत हो गयी हो तब इस रसायन का उपयोग होता है। यह रसायन आम को जलाता है, रक्त का प्रसादन करता है तथा मस्तिष्क, हृदय, रक्त और रक्त वाहिनियों और वातवाहिनियों को सबल बनाता है। जिससे मस्तिष्क में शून्यता आ जाना, चक्कर आना, घबराहट, मानसिक बेचैनी, अर्दित और देह के विविध स्थानों में वातजनित वेदना होना आदि लक्षण

दूर हो जाते हैं।

यह पंचामृत लोह गुग्गुल वातपित्त मिले हुए प्रकोप या पित्त प्रकृति वालों के उत्पन्न वात रोगों पर व्यवहृत होता है। आयुर्वेद संग्रहकार ने इसे मुख्य मस्तिष्कगत विकार पर लिखा है तथापि भैषज्यरत्नावली के अनुसार तथा हमारे अनुभवानुसार स्नायुगत विकृति एवं अन्यान्य वातरोगों पर इसका बहुत ही उत्तम प्रयोग होता है। इसी प्रकार त्रयोदशाङ्गगूगल (देखो पीछे प्रयोग नं० १३ गृध्रसी प्रकरण में) का भी बहुत उत्तम एवं शीघ्र लाभदायक प्रयोग होता है।

मोच (संधि-स्नायुभ्रंश)

शिथिल अवस्था में झटके के साथ नीचे या ऊपर पैरों के या हाथों के गिर जाने, पड़ जाने या अकस्मात किसी चोट के लग जाने से पैरों के पंजों या गुल्फ प्रदेश में (टखने के पास) या हाथों की हथेली या मणिबन्ध या कलाई में, मांसपेशियों के कण्डरा या जोड़ों (संधियों) के बन्धन (Ligaments) खिंच जाते हैं, वे इधर-उधर हो जाते हैं, उनमें तनाव पड़ जाता है। यही दशा शरीर के अन्यान्य सन्धि प्रदेशों में भी होती है। इसलिये संस्कृत में मोच को 'कण्डरावितान' भी कहते हैं। अंग्रेजी में—स्प्रेन (Sprain) कहते हैं।

मोच की अवस्था में कभी-कभी स्थानीय रक्त वाहिनियां फूटकर उनमें से निकला हुआ रक्त धीरे-धीरे सन्धिस्थान में संचित होता है। उस स्थान पर दाहयुक्त शोथ (सूजन) होती है। सन्धिस्थान या जोड़ों का थोड़ा भी इधर-उधर हिलना या हिलाना महान कष्टप्रद होता है, रोगी तड़प उठता है। यह एक छोटा सा आघात रोगी को कई दिनों तक परेशानी में डाल देता है। कई प्रकार की चिकित्सा करने पर भी यह हठीला विकार शीघ्र राजी नहीं होता। पूर्णतया अच्छा नहीं होता। साधारण मोच तो शीघ्र ठीक हो जाती है, किन्तु असाधारण मोच चिरकाल तक कष्ट देती है। यदि रोगी का स्वास्थ्य पहले से ही गिरा हुआ हो तो, उसका मोच का स्थान क्षयग्रस्त हो जाता है, अथवा उस स्थान में एक प्रकार का सन्धिवात या जीर्ण सन्धिप्रदाह (ओस्टियो आर्थाइटिस (Osteo-arthritis) हो जाता है। तथा वह सन्धिस्थान सदैव के लिये विकारयुक्त, विकृत या बेडौल हो जाता है।

उपचार

त्वक्पत्रादि तेल—तज और मैदालकड़ी ● समभाग लेकर दोनों का महीन चूर्ण कर थोड़े से तिल तेल में मिला, किसी पात्र में रख आग पर पकाते समय थोड़ा दूध मिलादें। हलुवे के समान हो जाने पर उसे गरमागरम, किन्तु सुखोष्ण मोच के स्थान पर रख, बांध देवें। ठंडा हो जाने पर उसमें पुनः तैल मिला और गर्मकर बांधे। इस प्रकार दिन में कई वार उसे बांधना चाहिये। दूसरे दिन नवीन हलुवा तैयार करे और उसी प्रकार कई बार गरम करके बांधे। शीघ्र ही लाभ होता है।

आम्रगन्धि हरिद्रादि प्रलेप—आमाहल्दी, मैदालकड़ी, एरण्ड बीज की गिरी, सड़े नारियल की गिरी और हल्दी समभाग ले, पानी के साथ महीन पीस, आग पर कुछ देर पकाकर सुहाता हुआ मोच स्थान पर गाढ़ा प्रलेप करे। दिन में २-३ बार प्रलेप करने से, २-३ दिन में मोच की पीड़ा, शोथ आदि शान्त हो जाते हैं।

यदि उक्त प्रलेप पर निम्न प्रकार से पोटली सेंक करें तो और भी शीघ्र लाभ होता है।

आम्बा हल्दी २ तोले और नारियल की सड़ी गिरी २॥ तोले लेकर आम्बा हल्दी के महीन चूर्ण को गिरी के साथ मिला खूब कूट पीसकर उसमें ५ तोले खोया (मावा) मिला, उसके दो भाग कर कपड़े की दो पोटलियां तैयार करें। फिर एक कटोरी या लोहे का तवा आग पर रखें। गरम हो जावे पर उस पर १-१ पोटली क्रमशः रखते हुए सुहाते-सुहाते सेंक करें। इस क्रिया से भयंकर मोच चोट का दर्द, सूजन आदि की शीघ्र शांति होती है।

● मैदालकड़ी—इसका सदैव हरा रहने वाला छोटी जाति का पौधा होता है। मध्य प्रदेश, सतपुरा, पंजाब, हिमालय में बहुत पैदा होता है। पत्ते लम्बे और मोटे होते हैं। छाल भूरी रंग की कुछ पीली खुरदरी होती है। फूल कुछ पीले छोटे-छोटे होते हैं। फल कालीमिर्च के जैसे बीज में श्वेत तैल होता है। इसकी छाल को ही मैदा लकड़ी कहते हैं।

हड्डी की चोट पर भी लाभ पहुंचाता है।

नोट—ध्यान रहे चोट या किसी प्रकार का आघात लगते ही उस स्थान को किसी तरह कस कर बांध दें, और ऊपर से शीत जल की धारा डालते रहें, जब तक कि रोगी सहन करें, अथवा चोट आदि लगते ही उस स्थान पर खूब रुई रखकर भली प्रकार पट्टी से कस देवें। पश्चात् उक्त प्रलेप आदि की क्रिया निम्न-लिखित तैलों की मालिश और उक्त प्रकार की पोटली सेंक से भीलाभ होता है। मालिश बहुत हलके हाथों सेधीरे-धीरे होनी चाहिये।

पंचगुण तैल–(कविराज प्रतापसिंह जी)–तिल तैल १ मन, गूगल, राल, बेरोंजा, शिलारस, मोम, आंवला, बहेड़ा, हर्रे प्रत्येक १। सेर, नीम पत्र ३॥। सेर, निर्गुण्डी पत्र ३॥। सेर, जल ४ मन, और कपूर १। सेर।

विधि—उक्त अनुपात से द्रव्यों को लेकर प्रथम तिल तैल को आग पर गर्म कर ठण्डा करलें। फिर अन्य औषधियों के साथ तैल पाक विधि से पाक करें। तैल सिद्ध हो जाने पर कपड़े से छान कर गर्म तैल में ही ऊपर से कपूर मिला बोतलों में भर रक्खें।

चोट आने पर और अन्यान्य वातव्यधि पर इसका प्रयोग अत्युत्तम है। (धन्वन्तरि-वातरोगांक)।

यदि पीड़ा बहुत ही असहनीय हो तथा सूजन बहुत आ गई हो, तो तुरन्त अफीम को पानी में घोलकर उसमें थोड़ा सोंठ का चूर्ण मिला मोटा लेप कर देवें।

एलोपैथिक चिकित्सानुसार—टिंचर ओपियम और लिकर प्लंबाई फोर्ट को जल में घोलकर उसमें मल-मल या लिन्ट का टुकड़ा भिगोकर मोच स्थान पर या चोट पर रखते हैं।

ग्लिसरीन, बेलाडोना और लिनिमन्ट ओपिआई (समभाग) को मोच स्थान पर मलने से भी शीघ्र शान्ति मिलती है। अथवा—

स्प्रिरिट कैम्फर १ औंस, टिंचर आर्निका २ औंस, ऐक्वा हैमेमैलिडिस या हेजलीन कुल १६ औंस एकत्र कर इस लोशन में लिन्ट भिगोकर चोट पर रक्खें।

मांस पेशीगत रोग

ध्यान रहे, कण्डरा या स्नायु विषयक इस प्रकरण के प्रारम्भ में ही हम सूचित कर आये हैं, कि स्नायु या कण्डराओं से पेशियां एकदम पृथक नहीं है। अतः आयुर्वेदानुसार कण्डरा या स्नायु के विकारों में ही मांसपेशीगत विकारों का समावेश हो जाता है। अतः प्रसंगानुसार मांसपेशिगत कुछ विकारों का संक्षिप्त विवरण यहां कर दिया जाता है।

पाश्चात्य वैद्यक में मांसपेशीगत रोगों के प्रधानतः तीन प्रकार प्रदर्शित किये गए हैं—

मांसपेशिक वेदनायें (मायेल्जिया या मायोडिनीया Myalgia, Myodinia)

पेशीक्षीणता (मस्क्युलर एट्रोफी (muscular-atrophy) पैशिक दुर्बलता (मायेस्थिनीया myasthenia)

पैशिक वेदना या शूल—यह विकार प्रायः दुर्बलावस्था में या अच्छी तगड़ी अवस्था में भी अकस्मात शीत के लगजाने (जैसे रात्रि में सोते समय शीतऋतु में शरीर के किसी एक भाग का शीत वायु के प्रवाह से आक्रमित होना) या किसी आर्द्रस्थान में अतिकाल तक रहने, या अत्यधिक शारीरिक व्यायाम,परिश्रम आदि करने से उत्पन्न हो जाता है। मिथ्याहार विहार के कारण शरीर में उत्पन्न होने वाले विष (Toxins) से भी यह विकार कभी-कभी हो जाया करता है।

इसमें एक प्रकार की ऐसी वेदना पेशी के किसी एक भाग में या कई भागों में प्रायः सदैव बनी रहती है, जिसकी विशेष प्रतीति तब होती है, जब रोगी उस विकार ग्रस्त भाग को दबाता है, या उस भाग से कोई विशेष कार्य करने को प्रवृत्त होता है।

उपचार—वेदनायुक्त स्थान पर विषगर्भ तैल तारपीन तैल आदि पीड़ा शामक तैलों की मालिश सेंक, पुल्टिस, बिजली लगाना आदि क्रियायें करनी चाहिए।

औषधियों में रसकामधेनु ग्रन्थ की यहां विजयपर्पटी शीघ्र ही वेदना दूर कर देती है। विधि इस प्रकार है—

विजयपर्पटी—शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक ४-४ तोले लेकर कज्जली तैयार कर, उसमें ताम्रभस्म ४ तोले और शुद्ध वच्छनाग का महीन चूर्ण १ तोला मिला गाय के घी के साथ खूब मर्दन करे। कल्क सा बन जाने पर लोहे की कलछी में उसे लेकर मंदाग्नि पर रक्खें। जब पिघलकर लाल वर्ण का हो जाय, तब गोबर की बेदी पर केले के पत्ते पर डालकर, ऊपर से दूसरा केले का पत्ता दबा कर पर्पटी तैयार कर लेवें।

मात्रा—आधी से १ रत्ती तक दिन में २ बार समभाग जल मिलाकर सिद्ध किए हुए दूध के अनुपान के साथ सेवन करावें।

यह पर्पटी ग्रहणी आदि कई रोगों पर अनुपान भेद से दी जाती है, और पूर्ण लाभ करती है। जैसे—ग्रहणी में पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल और सोंठ समभाग) का चूर्ण और शहद के साथ, उदरवात पर ग्वारपाठे के रस के साथ, राजयक्ष्मा में पीपलचूर्ण और शहद के साथ, सन्निपात ज्वर में अदरख के रस के साथ प्रमेह में–त्रिफला और शहद के साथ, पाण्डुरोग में त्रिफला के साथ, कुष्ठरोग में खैर छाल के क्वाथ से सेवन कराते हैं।

मांस पेशीगत वेदना यदि वातरक्त (Gout) के कारण हो, तो तवकिया हरताल की भस्म की मात्रा १ २ चावल तक चोपचीन्यादि चूर्ण और शहद के साथ प्रातः सायं सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है।

चोपचिन्यादि चूर्ण—चोवचीनी १६ तोले, त्रिकटु, लौंग, पीपलामूल, अकरकरा, खुरासानी अजवायन, वायविडंग और दालचीनी १-१ तोला, तथा मिश्री ४ तोले इन सबका महीन चूर्ण बना रक्खें। यह चूर्ण उपदंश, सुजाक, संधिवात, रक्तविकार, वीर्य विकृति एवं शारीरिक क्षीणता को नाश करता है। इसकी मात्रा–३ से ६ माशे तक शहद के साथ, अथवा घृत और शहद के मिश्रण के साथ या केवल निवाये जल के साथ उक्त रोगों पर दी जाती है।

त्रिगवंभस्म का सेवन इस विकार पर विशेष लाभकारक होता है।

त्रिवंग भस्म—शुद्ध वंग (कलई) शुद्ध सीसा और शुद्ध जसद १५-१५ तोले लेकर कड़ाही में तेज अग्नि पर रखें जब पतला द्रव हो जाय तब उसमें हल्दी। इमलीवृक्ष की छाल, और पीपलवृक्ष की छाल का जौकुट किया हुआ पृथक-पृथक चूर्ण ६०-६० तोले लेकर, क्रमशः थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डालते जांय और वड़ के डंडे से चलाते जांय। चूर्ण के समाप्त हो जाने पर कड़ाही की भस्म को मोटे लोहे के तवे से ढकाकर, १२ घण्टे तक खूब तेज अग्नि देवें। पश्चात् शीतल हो जाने पर भस्म को छान उसे वट जटा के क्वाथ की ३ भावनायें गजपुट देवें, तैसे ही ग्वारपाठा के रस की ४ भावनायें देकर ४ बार गजपुट देने से उत्तम पीतवर्ण की मुलायम भस्म तैयार हो जाती है।

यह मांसपेशीगत वात एवं शूल पर उत्तम कार्य करती है। मासपेशियों की या रक्तवाहिनियों की विकृति से सर्वांग में या किसी एक अंग में शूलवत् वेदना होती है। कभी-कभी इसी कारण हाथ पैर की शक्ति नष्ट होकर कम्प सा होने लगता है।' इस अवस्था में यह भस्म मात्रा – १ से २ रत्ती तक शहद के साथ या उक्त चोपचिन्यादि चूर्ण और शहद के मिश्रण के साथ दिन में २ वार देने से शीघ्र लाभ होता है।

यह भस्म प्रमेह, मधुमेह, संधिवात, तथा स्त्रियों के वंध्यत्व, ऋतु विकार, दूषित आचरण या ऋतुस्नाता होने के पूर्व ही पुरुष समागम से लड़कियों की जननेन्द्रियों की पेशियां वेदनायुक्त एवं निर्बल हो जाती हैं। योनिमुख से चिपचिपा स्राव सदैव होता रहता है, इस विकार में भी यह भस्म विशेष लाभदायक है (देखो अध्याय १८ में श्वेत प्रदर का प्रकरण)।

ऊपर से लेप या मालिश के लिये निम्न प्रयोग उत्तम लाभकारी है—

कपूरादि मलहम—कपूर ५ तोले को १ तोला साबुन के साथ खरल करें। फिर उसमें २० तोले तारपीन तैल मिलाकर शीशी में भर रक्खें। पीड़ा स्थान पर इसकी धीरे-धीरे मालिश करने से शीघ्र वेदना में शान्ति प्राप्त होती है। अथवा—

कृष्ण विष हरण—(स्वकृत) मिट्टी के सफेद तैल २० तोले में कपूर १० तोले, पिपरमेंन्ट का फूल (menthol Crystal) ५ तोले, कार्बोलिक एसिड २॥ तोले और तृण तैल (रोसा तैल) १। तोला मिला रक्खें।

इस मिश्रण की ४-५ बूदें और तारपीन तैल १ तोला एकत्र मिला वेदना स्थान पर मर्दन करने से तुरन्त लाभ होता है।

यह कृष्ण विष हरण अनुपान भेद से सर्प विष, बिच्छू दंश, हैजा, प्लेग आदि कतिपय विकारों पर लाभदायक है। इसका पूर्ण विवरण धन्वन्तरि के पुराने अङ्कों में तथा रसतंत्रसार भाग दो में देखिये।

एलोपैथिक प्रयोग--

सोडा सैलिसिलास १५ ग्रेन, एन्टिपाइरीन ५ ग्रेन,

टिंचर नक्सवोमिका ५ बून्द, स्प्रिरिट अमोनियां एरोमेटिक १५ बून्द और जल १ औंस, मिश्रण दिन में ३ बार पिलाते हैं।

साथ ही साथ ऐस्प्रिरीन, पोटास आयोड़ाइड, फिनैस्टीन आदि का भी प्रयोग किया जाता है।

इंजेक्शनों में-ऐटोफेनील, कैफीन, इर्गापाइरीन, सोड़ा सैलिसिलास आदि का प्रयोग होता है। नोवल्जीन या पैथिडीन हायड्रोक्लोराइड़ के इन्जेक्शनों से भी कभी-कभी अत्यन्त लाभ होता है।

मालिश के लिये—मेन्थाल १५ ग्रेन, लिनिमेन्ट एकोनाइट २ ड्राम, मिथिल सैलिसिलेट २ ड्राम, स्प्रिरिट कैम्फर २ ड्राम तथा लिनिमेण्ट टर्पण्टाइन १ औंस इस मिश्रण की मालिश करने से शीघ्र वेदना दूर होती है।

पेशियों की क्षीणता और पेशियों की दुर्बलता ये विकार मांस धातु की क्षीणावस्था में पाये जाते हैं। इसके विषय में देखिये १७ वें अध्याय में मांसधातु की क्षीणावस्था।

चिकित्सा विशेषांक (द्वितीय भाग) की

प्रयोग-सूची

चिकित्सा—विशेषांक द्वितीय भाग में वर्णित सभी प्रयोगों की अकारादि क्रम से नामावलि प्रकाशित कर रहे हैं। इस नामावलि से पाठकों को इच्छित प्रयोग प्राप्त करने में सुगमता रहेगी।

उसकी सहेलियां यह रहस्य जानना चाहती हैं
सुनीता जानती है कि पति और बच्चों के प्रति उसका कर्तव्य क्या है।
वह जानती है सुख का आधार स्वास्थ्य है।
बच्चों के जन्म में अन्तर रखने से :
बच्चे स्वस्थ्य होते हैं मा निरोग रहती है।
पत्नी पति की ओर अधिक ध्यान दे सकती है।
वह बच्चों को नजदीक के स्वास्थ्य केन्द्र में नियमित रूप से जांच के लिये ले जाती है।

धन्वन्तरि के उपयोगी विशेषांक

वनौषधि विशेषांक

इनमें प्रत्येक वनस्पति के विभिन्न भाषाओं के नाम परिचय, विभिन्न अंगों पत्र, पुष्प, मूल तथा फल आदि का पृथक-पृथक वर्णन, उनके रोगनाशक सरल सफल प्रयोगों का अत्युपयोगी संग्रह दिया है।

प्रथम भाग—पृष्ठ संख्या ५५२, चित्र सख्या ९२ वनस्पति संख्या १४७. 'अ' से 'औ' तक की सम्पूर्ण वनस्पतियों का विस्तृत सचित्र वर्णन है। मू० १०.००

द्वितीय भाग—पृष्ठ संख्या ५४४, चित्र संख्या १७२, वनस्पति संख्या २३७ इसमें 'क' वर्ग की सम्पूर्ण वनस्पतियों का विस्तृत सचित्र विवरण दिया गया है। मू० ८.५०

तृतीय भाग—पृष्ठ सख्या ५४४, चित्र संख्या ३५९ वनस्पति संख्या २१४ इसमें 'च' से 'ध' अक्षरों की सभी वनस्पतियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। पुनः छप रहा है। मूल्य १००० होगा।

चतुर्थ भाग—पृष्ठ संख्या ५००, चित्र संख्या १००, तथा १६४ वनस्पतियों का विवेचन किया गया है। इसमें 'न', 'प' तथा 'फ' अक्षर से प्रारम्भ होने वाली सभी तथा 'ब' अक्षर से प्रारम्भ होने वाली कुछ वनस्पतियों का सचित्र विस्तृत वर्णन किया गया है। मू० ८.५०

पांचवां भाग—इसमें 'ब', 'भ' तथा कुछ 'म' अक्षर से प्रारम्भ होने वाली वनौषधियों का वर्णन किया गया है। इसके लेखन कार्य में श्री उदयलाल जी महात्मा ने भी सहयोग किया है। मू० ९.५०

छठा भाग—यह अन्तिम भाग है इसमें पृष्ठ ५३२ तथा २६६ वनौषधियों का वर्णन है। इसे उदयलाल जी महात्मा ने लिखा है। मूल्य १०.००

यूनानी चिकित्सांक

इसका सम्पादन यूनानी तथा आयुर्वेद के उद्भट सुप्रसिद्ध विद्वान श्री दलजीतसिंह आयुर्वेद बृहस्पति ने किया है। इस विशेषांक के पूर्वार्द्ध में विभिन्न यूनानी चिकित्सकों द्वारा प्रतिपादित शरीर के मूलभूत तत्व महाभूत, प्रकृति, अखलात और शरीर के संगठनकारी घटक आदि का वर्णन और साथ साथ आयुर्वेदीय सिद्धांतों से तुलना, यह प्रकरण विशेष महत्वपूर्ण दिया गया है। इसके उपरात उत्तरार्द्ध में यथाक्रम यूनानी मतानुसार रोगों के नाम सहित हेतु, लक्षण, सम्प्राप्ति, चिकित्सा एवं पथ्यापथ्य का विवेचन दिया है। मू० ८.५०

चिकित्सा विशेषांक (प्रथम भाग)

इसके विशेष सम्पादक आयुर्वेद जगत के जाने माने विद्वान दिल्ली निवासी श्री कविराज बी० एस० प्रेमी हैं। दिल्ली निवासी श्री शिवकुमार व्यास तथा रक्सौल निवासी श्री डा० बनारसीदास जी दीक्षित ने यूनानी, एलोपैथी तथा होमियोपैथी खण्डों का सम्पादन किया है।

इस प्रथम भाग में पाचन संस्थानगत रोगों के लक्षणादि एवं चिकित्सा विस्तार के साथ दी है। यह विशेषांक अपने ढंग का अद्वितीय है। होमियो यूनानी एलोपैथी तथा आयुर्वेद चारों पैथियों द्वारा चिकित्सा विधी ित हैं। हजारों सुपरीक्षित प्रयोगों का अभूतपूर्व संग्रह है। चिकित्सकों के लिये यह विशेषांक अनमोल साहित्य हैं। १ प्रति तुरन्त मंगालें, थोड़ी प्रतियां शेष हैं। मू. १०.००

धन्वन्तरि के लघु विशेषांक

पथरिया रोगाङ्क	१.००
शूल रोगाङ्क	१.००
कास रोगाङ्क	१.००
पंचकर्म विज्ञानाङ्क	१.५०
विधिविधानाङ्क	२.००
आयुर्वेद शिक्षणाङ्क	१.५०
पक्षाघात अङ्क (दो भाग)	४.००
सैक्स रोगाङ्क	२.००
आयुर्वेदिक सूची भरणाङ्क	२.००
वातरक्त रोगाङ्क	२.००
आसव निर्माणाङ्क	२.००
तन्त्र-मन्त्र-यन्त्रांक	२.००

धन्वन्तरि के ग्राहकों को २५ % कमीशन दिया जाता है। पोस्ट व्यय पृथक लगेगा।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ [अलीगढ़]

कई सौ चार्टों-चित्रों सारिणयों तथा तालिकाओं से सजे हुए

डा० हरनारायण 'कोकचा' के हिन्दी के नये डाक्टरी विश्वकोष

(१) एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत चार्टस तथा एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत ज्ञानकोष [विश्वकोष]

- इस पुस्तक के नये संस्करण में प्रत्येक रोग का "परिचय", रोग के "कारण", रोग के प्रमुख "लक्षण", रोग की "पहिचान" और रोग का "परिणाम" (रोग के बढ़ जाने पर क्या हो सकता है ?) आदि चार्टों के रूप में देकर, उसमें दी जाने वाली पेटेण्ट "टेवलेट", "कैप्सूल", पेटेण्ट "पेय", "ड्रोप्स" तथा अपटूडेट "इन्जेक्शन" आदि चार्टों के रूप में दिये हैं। आप इन चार्टों में से कोई एक पेटेण्ट टेवलेट, या पेटेण्ट पेय (मिक्सचर) या कोई भी इन्जेक्शन लगा देंगे तो आपका रोगी निश्चित रूप से "स्वस्थ" हो जायेगा।
- इनमें जो औषधियां बन्द हो गई हैं उनको निकाल दिया है और नई-नई सब प्रकार की पेटेण्ट औषधियों और इन्जेक्शनों को बढ़ा दिया है। इसमें दी हुई सभी पेटेण्ट दवाइयाँ बाजार में आसानी से मिल जाती हैं।
- नये संस्करण में प्रत्येक रोग की "सबसे सस्ती" और सबसे "मंहगी दवा बताई है। इसकी सहायता से आप "गरीब" और "अमीर" सबका सफल इलाज कर सकेंगे।
- इस नये संस्करण में सब प्रकार के सैकड़ों रोगों की "सहायक चिकित्सा", "आनुषंगिक चिकित्सा", "पथ्य चिकित्सा", "सहायक चिकित्सा", 'लक्षण चिकित्सा", "बिजली चिकित्सा", "जलवायु चिकित्सा" तथा "सरल अनुभूत चिकित्सा" आदि का वर्णन विल्कुल सरल हिन्दी में चार्टों में नये ढङ्ग से बढ़ाया गया है।
- अब इसमें विश्वविख्यात डाक्टरों के कई सौ रोगों के चार हजार के लगभग अनमोल अनुभव भी बढ़ा दिये गये हैं। डाक्टरों के ये अमूल्य अनुभव अन्यत्र मिलने दुर्लभ हैं।
- इस नये संस्करण में बैटरी से चलने वाली "बिजली की मशीन" से इलाज करने की विधि दी है। इससे सौ के लगभग रोगों का इलाज करके आप अपनी आय कई गुणा बढ़ा सकेंगे।
- इसमें प्रत्येक रोग की चिकित्सा विधि (Method of Treatment) भी दी है।
- दो-तीन पेटेण्ट औषधियों को आपस में मिलाकर चिकित्सा करने से रोगी जल्दी ठीक होता है। इसलिए इस नये संस्करण में पेटेण्ट औषधियों को मिलाकर उनसे चिकित्सा करने की विधि भी दी है। इसमें बताई विधि से यदि आप पेटेण्ट दवाइयों को मिला कर इलाज करेंगे तो दूर-दूर तक आपका नाम चमक जायेगा।
- इसमें आयुर्वेदिक, यूनानी और होमियोपैथिक औषधियों के साथ-साथ दी जा सकने वाली सैकड़ों "एलोपैथिक" पेटेण्ट "औषधियों" और "सुइयों" का भी विशेष वर्णन किया है।
- सरल हिन्दी में लिखा यह "डाक्टरी ज्ञानकोष" शुद्ध आयुर्वेद और मिश्रित प्रणाली—दोनों प्रकार के इलाज करने वालों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।
- ढाई हजार के लगभग चार्टों चित्रों वाली सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल दस रुपए। डाक खर्च अलग।

(२) 'अपटूडेट एलोपैथिक पेटेण्ट मेडिसन्स नवनीत चार्टस [एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत चार्टस का द्वितीय भाग]

- यह संसार की हिन्दी की पहली पुस्तक है जिसमें सुप्रसिद्ध पेटेण्ट औषधियों का विशाल संग्रह किया गया है। "पेटेण्ट औषधियों" की ऐसी अनुपम पुस्तक "एशिया", "अफ्रीका" और "यूरोप" की किसी भी भाषा में अब तक प्रकाशित नहीं हुई है। इस "पेटेण्ट औषधि विश्वकोष" में लगभग तीन हजार चार्टों में दस हजार के लगभग एलोपैथिक पेटेण्ट औषधियों का अत्यधिक विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।
- इसमें प्रत्येक सुप्रसिद्ध पेटेण्ट औषधि का नाम, बनाने वाली कम्पनी का नाम, मूल्य, पेटेण्ट औषधियों का योग तथा निर्माण विधि, विशेष गुण तथा उपयोग, मात्रा तथा सेवन विधि, प्रत्येक पेटेण्ट औषधि से होने वाले विपाक्त लक्षण और दूर करने के उपाय तथा पेटेण्ट औषधि को सेवन कराते समय ध्यान में रखने योग्य सम्पूर्ण बातों का अत्यधिक विस्तारपूर्वक वर्णन बिल्कुल सरल हिन्दी में दिया गया है।
- "एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत चार्टस" में जिन औषधियों का वर्णन आधी या १-२ लाइन में किया गया है, इस पुस्तक में उन्हीं तथा अन्य पेटेण्ट औषधियों का विवरण अत्यधिक विस्तारपूर्वक किया गया है।

यदि "एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत चार्टस" नामक पुस्तक में से किसी भी रोग की पेटेण्ट औषधि चुन ली है तो आप इसमें उसका पूर्ण विवरण पढ़कर ही अपने रोगी को वह दवा दें ताकि आपकी दी पेटेण्ट दवा की पहली खुराक गले के नीचे उतरते ही रोगी को लाभ होने लगे।

- डा० "कोकचा' की यह पुस्तक उनकी अब तक की लिखी गई सभी पुस्तकों में श्रेष्ठ बन पड़ी है।
- तीन हजार के लगभग चार्टों-तालिकाओंसे सजी, बड़े साइज की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल आठ रुपये।

(३) एलोपैथिक इञ्जेक्शन चिकित्सा नवनीत चार्टस [इञ्जेक्शन विश्वकोष]

- इस बिल्कुल नये "इञ्जेक्शन विश्वकोष" में नाना प्रकार के इञ्जेक्शनों के लगाने से होने वाले दुष्परिणामों, विषैले विकारों को दूर करने के ऐसे उपाय भी बताए गये हैं जिनकी तलाश आपको रात-दिन रहती है। यह बात किसी भी पुस्तक में नहीं बताई गई है।
- इसके नये संस्करण में प्रत्येक रोग के कई-कई 'एलोपैथिक', 'आयुर्वेदिक', 'यूनानी' तथा 'होम्योपैथिक' इञ्जेक्शन चार्टों में दिये हैं। आप इनमें से कोई भी एक इञ्जेक्शन लगा कर अपने रोगी को ठीक कर सकते हैं।
- तीन हजार के लगभग चार्टों-चित्रों वाली सजिल्द, बड़े साईज की पुस्तक केवल दस रुपये की है।

(४) अपटूडेट एलोपैथिक टेबलेट्स गाइड चार्टस तथा टेबलेट्स विश्वकोष [लक्षण चिकित्सा सहित]

- इस टेबलेट्स विश्वकोष में रोजाना सताने वाले सब प्रकार के रोगों का परिचय, कारण और लक्षण, रोगों की पहिचान तथा रोगों का परिणाम (रोग बढ़ने पर क्या होगा ?) आदि देकर, उनका केवल एलोपैथिक पेटेण्ट गोलियों, कैचेटों, कैप्सूलों और ड्रेगियों आदि द्वारा सफल इलाज करना आदि चार्टों में दिया है।
- इस टेबलेट गाइड की गोलियां आदि आयुर्वेदिक वटियों, रस-भस्मों या यूनानी गोलियों, कुश्तों तथा खमीरे-माजूनों की बनिस्बत सस्ती हैं, उपयोगी हैं, बनाने में बिलकुल सरल हैं। १-२ मिनट में ही तैयार हो जाती हैं। महीनों भावना देने और घोटा लगाने की आवश्यकता नहीं हुआ करती।
- इस अद्वितीय पुस्तक में नये-पुराने सब प्रकार के कई सौ रोगों की लक्षणों के अनुसार अनुभूत और सफल पेटेण्ट चिकित्सा बिल्कुल नए ढङ्ग से चार्टों के रूप में वर्णन की है। हिन्दी की केवल यही अकेली पुस्तक है जिसमें कई सौ रोगों की लक्षणों के अनुसार चिकित्सा चार्टों के रूप में विस्तारपूर्वक दी है। इसमें डा० कोकचा को "लक्षण चिकित्सा नवनीत चार्टस (लक्षण चिकित्सा विश्वकोष)" नाम की पुस्तक भी मिला दी है।
- सुमेरियन चिकित्सा, असीरी बेबोलीनी चिकित्सा, वैदिक चिकित्सा, फारसी चिकित्सा, चीनी चिकित्सा, मिस्री चिकित्सा, मूसाई चिकित्सा, यूनानी चिकित्सा, रोमन चिकित्सा तथा एलोपैथिक चिकित्सा आदि दी है।
- एलोपैथिक विष विज्ञान ("डाक्टरी अगदतन्त्र") का चार्टों के रूप में विशेष वर्णन किया है।
- इसमें जटिल रोगों की पहिचानने के लिए सौ के लगभग चित्र दिये हैं। इन चित्रों की सहायता से आप आसानी से कठिन से कठिन रोग भी पहिचान सकेंगे।
- चौदह सौ के लगभग चार्टों-चित्रों से सजी पुस्तक-रत्न का मूल्य केवल आठ रुपये। डाक खर्च अलग।

(५) अनुभव के मोती : डाक्टरों के अनुभव तथा अनुभव विश्वकोष

- इस "अनुभव विश्वकोष" में प्रत्येक रोग का परिचय देकर बाद में विश्वविख्यात डाक्टरों के हजारों बार के अनुभूत चुने हुये तथा सरल से सरल डाक्टरी योग दिये हैं।
- इसमें एशिया, अफ्रीका और यूरोप की सरकारी डिस्पेन्सरियों में रोजाना काम आने वाले "हजारों डाक्टरी नुस्खों" का-पूरा-पूरा हाल नये ढङ्ग से समझाया गया है।
- "डा० हर नारायण "कोकचा" के इस "डाक्टरी ज्ञानकोष" में सैकड़ों सुप्रसिद्ध डाक्टरों के जीवन भर के कई हजार "रत्नों से तोलने योग्य बहुमूल्य अनुभव" दिए गए हैं।
- इसमें सब रोगों के अनुभूत, हजारों पेटेण्ट योगों के अलावा "कई हजार डाक्टरी चुटकुले" भी दिए गए हैं। ये एलोपैथिक चुटकुले सस्ते हैं। बनाने में बिलकुल सरल हैं तथा बहुत ही काम के और अत्युपयोगी हैं।
- डाक्टरी चिकित्सा विज्ञान के इस ज्ञानकोष के द्वारा आप डाक्टरी इलाज की हजारों ऐसी बातें भी जान जायेंगे जिन्हें नामधारी डाक्टर बिलकुल ही नहीं जानते।
- हिन्दी तो क्या, संसार की किसी भी भाषा में डाक्टरी इलाज का ऐसा अनोखा "अनुभव विश्वकोष" (हिन्दी

का साइक्लोपीडिया) आज तक कहीं भी नहीं छपा है।

- नया संस्करण अभी छप कर आया है। यदि आप मिक्सचरों की किसी उत्तम पुस्तक की तलाश में हैं तो इसे आज ही मँगाइये। इसमें छः हजार के लगभग विश्वविख्यात डाक्टरों के अनुभूत मिक्सचर दिये हैं।
- इसमें कई सौ ऐसे नये-नये अनुभूत योग भी दिए हैं जो "आयुर्वेदिक" और "एलोपैथिक" औषधियों को मिला कर बनाए जाते हैं; और तुरन्त लाभ दिखाते हैं।
- सैकड़ों चार्टों, चित्रों तथा हजारों एलोपैथिक योगों, चुटकलों, डाक्टरी चूर्णों, टेबलेटों आदि से भरपूर आठ सौ के लगभग पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक रत्न का मूल्य केवल ६ रुपये। डाकखर्च अलग।

(६) निदान नवनीत चार्टस निदान विश्वकोष [मोडरन डायग्नोसिस तथा व्याधि विज्ञान सहित]

- इस पुस्तक के नए संस्करण में "व्याधि (रोग) विज्ञान", "रोगपरीक्षा पद्धति", "नाड़ी परीक्षा", "स्टेथिस्कोप परीक्षा", "ब्लड प्रेशर परीक्षा", "एक्सरे परीक्षा", "मल परीक्षा", "मूत्र परीक्षा", "वक्ष परीक्षा", "कफ परीक्षा", "रक्त परीक्षा", "वीर्य परीक्षा", "रज परीक्षा", "मातृ दुग्ध परीक्षा", "आयुर्वेदिक निदान नवनीत", "अरिष्ट विज्ञान", 'सरल रोग विज्ञान", "आधुनिक निदान", "कीटाणु विज्ञान", "एलोपैथिक निदान नवनीत", "मोडरन डायग्नोसिस", "थर्मामीटर गाईड", "एलोपैथिक विष विज्ञान" तथा "सरल पेटेण्ट चिकित्सा" आदि लगभग दो दर्जन छोटी-मोटी पुस्तकें मिला दी गई हैं।
- इसमें आजकल की निदान करने की नई-नई विधियां, निदान सम्बन्धी अब तक के हुए नए-नए आविष्कार, अवैज्ञानिक पुस्तकों की बहुत सी बेबुनियाद तथा गलत बातों का खण्डन, विश्वविख्यात हजारों डाक्टरों के निदान सम्बन्धी जीवन भर के बहुमूल्य अनुभवों का विस्तृत वर्णन चार्टों एवं चित्रों के रूप में किया गया है।
- इसमें निदान एलोपैथिक की कई हजार रुपए की पुस्तकों का सार सरल हिन्दी में चार्टों और चित्रों में दे दिया है। "आधुनिक निदान" के साथ-साथ "सरल एलोपैथिक अनुभूत चिकित्सा" भी दे दी है।
- इसके चित्रों तथा चार्टों की सहायता से रोगी का रोग तुरन्त समझ में आ जाता है।
- निदान की केवल यही एक पुस्तक है जिसकी सहायता से आप 'गुप्त रोग विशेषज्ञ", "बाल रोग विशेषज्ञ", "स्त्री रोग विशेषज्ञ", 'नेत्र रोग विशेषज्ञ", "चर्म रोग विशेषज्ञ", "उदर रोग विशेषज्ञ" तथा "जीर्ण रोग विशेषज्ञ" आदि सरलतापूर्वक बनाकर जनता की सेवा कर सकते हैं।
- मैडिकल कालिजों में पूछने योग्य निदान सम्बन्धी सैकड़ों प्रश्नों के उत्तर भी चार्टों के नए ढङ्ग से दिए हैं।
- कई सौ चार्टों-चित्रों, तालिकाओं तथा कोषों से सजे बड़े साइज के सजिल्द हिन्दी के इस विशाल 'निदान विश्वकोष" का मूल्य केवल आठ रुपए। डाक खर्च दो रुपए अलग।

(७) महर्षि वात्स्यायन के पत्रः वयस्कों के नाम, गुप्त रोग विश्वकोषः [कामसूत्र नवनीत चार्टस तथा कामविज्ञान विश्वकोष]

- इसमें करोड़ों की संख्या में बिकने वाली, "२००० पृष्ठ की" "काम शास्त्र की" विश्वविख्यात पुस्तक "कामसूत्र" का निचोड़, चित्रों और चार्टों में दिया है। सोलह परिशिष्टों में काम विज्ञान (Women & Marriage) की एक हजार से ऊपर वैज्ञानिक खोजों का वर्णन है। "पुराने कोकशास्त्र" की गलत बातों का खण्डन है।
- इसमें "प्रेम-विज्ञान", "काम-विज्ञान", "गर्भ-विज्ञान", "विवाह विज्ञान", यौन-विज्ञान, परिवार नियोजन, प्रसूति विज्ञान, मिडवाइफी, दाम्पत्य-विज्ञान, सन्तति विज्ञानकी हजारों वैज्ञानिक बातों का सचित्र वर्णन है।
- इसमें "पुरुषों" तथा "स्त्रियों" को होने वाले सब प्रकार के कई सौ गुप्त रोगों का पूर्ण "निदान" आदि देकर उनकी "एलोपैथिक", "आयुर्वेदिक", 'यूनानी", "प्राकृतिक चिकित्सा" तथा "बिजली चिकित्सा" आदि चित्रों तथा चार्टों के रूप में दी है। "एलोपैथिक दवाइयों" के मेल से बनने वाली "आयुर्वेदिक" और "यूनानी" की औषधियों के बनाने की विधि, सेवन विधि तथा विशेष गुणों का विवरण भी दिया है। इसकी सहायता से आप 'गुप्त रोग विशेषज्ञ" बन कर अपना नाम चमका सकते हैं।
- इस बिल्कुल नई सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल आठ रुपए। दो रुपए डाक खर्च अलग। इस पुस्तक के होने से आपको काम-विज्ञान की कई हजार रुपए मूल्य की हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, अरबी, फारसी, तामिल,

तैलगू, मलयालम, बंगला, गुरुमुखी, गुजराती और मराठी आदि कई सौ पुस्तकों की "काम-विज्ञान" सम्बन्धी उपयोगी सामिग्री घर-बैठे मिल जायेगी। यह सैकड़ों पुस्तकों की एक पुस्तक है।

- यह पुस्तक केवल वैद्यों, हकीमों, डाक्टरों, कम्पाउण्डरों, उपवैद्यों और कैमिस्टों को ही भेजी जयेगी।

(८) सरल चिकित्सा नवनीत चार्टस, सरल चिकित्सा विश्वकोष [लक्षण चिकित्सा सहित]

- इसमें नए पुराने सब प्रकार के सैकड़ों रोगों की 'पथ्य चिकित्सा', 'आनुषंगिक चिकित्सा', 'लक्षण चिकित्सा' 'बिजली चिकित्सा', 'विटामिन चिकित्सा', 'जलवायु चिकित्सा' तथा 'सरल अपटूडेट एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा' का वैज्ञानिक वर्णन बिलकुल सरल हिन्दी में चार्टों के रूप में नए ढंग मे दिया गया है। विश्वविख्यात डाक्टरों के चार हजार के लगभग अनमोल अनुभव दिए गए हैं। एक हजार के लगभग नई-नई एलोपैथिक पेटेण्ट औषधियों का चार्टों के रूप में विवरण हैं। बैटरी से चलने वाली बिजली की मशीन से इलाज करने की विधि दी है। मशीन के द्वारा सौ के लगभग रोगों का इलाज करके आप अपनी आमदनी बढ़ा सकेंगे। एलोपैथिक पेटेण्ट औषधियों के मेल से बनने वाले सैकड़ों आश्चर्यजनक योगों के नुस्खे दिए हैं। इसमें डाक्टरी की लगभग एक दर्जन चिकित्सा पद्धतियों द्वारा सैकड़ों रोगोंकी सरल से सरल अचूक चिकित्सा करने की विधियाँ दी हैं। एक हजार के लगभग चार्टों-चित्रों-पृष्ठों से भरपूर सजिल्द पुस्तक मूल्य केवल पाँच रुपये।

(९) बाल रोग चिकित्सा नवनीत चार्टस [बाल रोग विश्वकोष]

- इस अनमोल पुस्तक में बच्चों के कई सौ रोगों का सचित्र निदान तथा चिकित्सा चार्टों में दी है।
- पाँच सौ के लगभग चार्टों-पृष्ठों से भरपूर पुस्तक रत्न का मूल्य केवल चार रुपया।

(१०) चिकित्सकों के लिए अत्युपयोगी पुस्तकः "चिकित्सा कला"

- इसमें सुमेरियन चिकित्सा, असीरी बेरोलीनी चिकित्सा, वैदिक चिकित्सा, फारसी चिकित्सा, चीनी चिकित्सा, मिश्री चिकित्सा, मूसाई चिकित्सा, यूनानी चिकित्सा, रोमन चिकित्सा तथा एलोपैथिक चिकित्सा आदि के विषयों में उपयोगी जानकारी है। कीटाणुओं का चार्टों और चित्रों में वर्णन है। सम्पूर्ण विष चिकित्सा की विशेष जानकारी चार्टों में दी है। इसमें कठिन रोगों को पहिचानने के लिए सौ के लगभग चित्र देकर उनकी चिकित्सा भी दी है। सैकड़ों पेटेण्ट औषधियों के गुप्त नुस्खे दिये हैं। मूल्य केवल दो रुपए। डाक खर्च अलग।

(११) संसार की सबसे सस्ती पुस्तकः 'चिकित्सा आलोक'

- इसमें "एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा", सरल अनुभूत चिकित्सा, इञ्जेक्शन चिकित्सा, आनुषंगिक चिकित्सा, बिजली चिकित्सा, पुरुष गुप्त रोग चिकित्सा, बाल रोग चिकित्सा आदि चार्टों में दी है। 'लूप' का वर्णन करके उससे होने वाले विकारों की अनुभूत चिकित्सा दी है। "काम विज्ञान" की सौ के लगभग नई-नई खोजें दी हैं। सौ के लगभग चार्टों-चित्रों वाली पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया। डाक खर्च अलग।

(१२) स्त्री रोग चिकित्सा नवनीत चार्टस [स्त्री रोग विश्वकोष]

- डाक्टर "कोकचा" ने इस पुस्तक में स्त्रियों को सताने वाले सब प्रकार के कई सौ रोगों का 'निदान' आदि देकर उनको 'एलोपैथिक', 'आयुर्वेदिक', 'यूनानी' तथा 'प्राकृतिक चिकित्सा' आदि का चार्टों में नए ढङ्ग से विवरण दिया है। चार सौ के लगभग चित्रों-चार्टों तथा पृष्ठों से भरपूर पुस्तक का मूल्य साढ़े तीन रुपए।

(१३) काम सूत्र नवनीत चार्टस [सोलह परिशिष्टों सहित]

- 'वात्स्यायन मुनि' के 'काम सूत्र' का संसार की प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद है। यह 'काम विज्ञान' की विभिन्न भाषाओं में करोड़ों की संख्या में बिकने वाली अनूठी कृति है। डा० हरनारायण 'कोकचा' ने इसी विश्व विख्यात 'काम सूत्र' का सार चित्रों तथा चार्टों के रूप में नए ढङ्ग से पेश किया है। पुस्तक को नया रूप देने के लिये पुस्तक के अन्त में सोलह परिशिष्टों में कई सौ काम-वैज्ञानिकों की लगभग एक हजार नई खोजों का बिल्कुल नये ढङ्ग से वर्णन किया है। मूल्य केवल पाँच रुपए। डाक खर्च अलग।

(१४) महर्षि वात्स्यायन के पत्रः वयस्कों के नाम [परिवार नियोजन नवनीत सहित]

- इस अमूल्य पुस्तक में 'डा० कोकचा' ने आधुनिक काम विज्ञान (Science of Sex) तथा 'परिवार नियोजन' (Family Planing) की सब प्रकार की बातों को तीन सौ के लगभग चित्रों-चार्टों तथा तालिकाओं की सहायता से स्पष्ट किया है। इसमें 'प्रेम विज्ञान', 'काम विज्ञान' 'विवाह विज्ञान', 'यौन विज्ञान', 'दाम्पत्य विज्ञान', 'गर्भ विज्ञान', 'परिवार नियोजन', 'प्रसूति विज्ञान (मिडवायफ्री)' आदि काम सम्बन्धी विज्ञानों, (विभागों)

रजिस्ट्रेशन आफ न्यूज पेपर्स (सेंट्रल) रूल्स, १९५६ के नि
८ के अन्तर्गत 'धन्वन्तरि' नामक मासिक पत्र का विवर

प्रकाशन का स्थान	— विजयगढ़ [अलीगढ़]
प्रकाशन का काल	मासिक
मुद्रक का नाम	वैद्य देवीशरण गर्ग
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	विजयगढ़ [अलीगढ़]
प्रकाशक	वैद्य देवीशरण गर्ग
राष्ट्रीयता एवं पता	उपरोक्त
सम्पादक का नाम	वैद्य देवीशरण गर्ग
राष्ट्रीयता एवं पता	उपरोक्त
पत्र के मालिकों का नाम	वैद्य देवीशरण गर्ग, विजयगढ़ [अलीगढ़]
	ज्वाला प्रसाद अग्रवाल, विजयगढ़ [अलीगढ़]
	दाऊदयाल गर्ग, विजयगढ़ [अलीगढ़]
	मुरारीलाल गर्ग, विजयगढ़ [अलीगढ़]
	श्रीनाथ अग्रवाल, विजयगढ़ [अलीगढ़]
	रामेश्वरदयाल अग्रवाल, विजयगढ़ [अलीगढ़]
	भगवतीप्रसाद अग्रवाल, विजयगढ़ [अलीगढ़]
	रामकिशन अग्रवाल, विजयगढ़ [अलीगढ़]
	गिर्राजकिशोर अग्रवाल, विजयगढ़ [अलीगढ़]
	गोपालशरण अग्रवाल, विजयगढ़ [अलीगढ़]

मैं, श्री देवीशरण गर्ग, यह घोषित करता हूँ कि ऊपर दिया गया विवरण जहां तक मैं जानता हूँ या मुझे विश्वास है सत्य है।

ह० वैद्य देवीशरण गर्ग [प्रकाशक]